माध्यन्दिनीय यजुर्वेद एवं सामवेदकी पाठ-परम्परा

(गोलोकवासी प्रो० डॉ० श्रीगोपालचन्द्रजी मिश्र, भूतपूर्व वेदविभागाध्यक्ष वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय)

पूर्वकालमें हमारे तपःपूत साक्षात्कृतधर्मा ऋषि-महर्षियोंने अनन्त कष्ट सहकर भी जिस महान् वेद-साहित्यकी स्वाध्याय-परम्परा अक्षुण्ण रखा, उसीका फल है कि आज हम कुछ थोड़ा-बहुत उस वेदभगवान्का भाग यथावत् सुरक्षित पा रहे हैं, किंतु आज हमारा समाज अपने धर्मके मूलभूत वेद-साहित्यकी उपेक्षा कर तत्-शाखा-साहित्य (वेदके अङ्ग-उपाङ्ग)-में ही अलंबुद्धि मानकर वेद-साहित्यसे प्रायः उदासीन हो गया है। सम्प्रति यह सनातन-धर्मका प्राण एवं ज्ञान-भण्डार वेद-साहित्य क्षत्रिय, वैश्य तो क्या ब्राह्मण जातिके लिये भी प्रायः अज्ञात-सा होकर दिनानुदिन केवल कुछ विशिष्ट स्थान एवं पुस्तकालयोंमें दर्शनीय मात्र अवस्थामें पहुँच रहा है, यदि यही अवस्था रही तो इस धर्ममूल वेद-साहित्यका केवल नाम ही शेष रह जायगा, वर्तमान समयमें इसका पठन-पाठन तो क्या शिक्षितोंमें उदात्तादि स्वरोंका एवं उनकी हस्तमुद्राओंका यथावत् ज्ञान भी लुप्तप्राय होता जा रहा है। अतः इस परिस्थितिमें द्विजमात्र (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) जो कि इसके अधिकारी हैं और विशेष करके ब्राह्मण-समाजको इस परम्पराकी रक्षा करनेके लिये अङ्गोंसहित वेदाध्ययनपर अवश्य ध्यान देना एवं यत्न करना चाहिये, क्योंकि कहा भी गया है—

'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।'

तथा—

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः।
तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते॥

(मनु० ४। १४७)

अर्थात् आलस्यरहित होकर यथासमय वेदका प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिये, क्योंकि यही मुख्य धर्म है; अन्य धर्म तो गौण हैं।

वेदपाठका फल

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

(अथर्ववेद १९। ७१। १)

तात्पर्य यह कि यथेच्छ वर देनेवाली वेदवाणी, अपने स्वाध्याय करने (पाठ करने)-वाले द्विजमात्रको पाप (दुःख)-रहित करती हुई पूर्ण आयु, रोगादि क्लेश-रहित जीवन, पुत्र-पौत्रादि संतान, कीर्ति (यश), विपुल धन, बल एवं तेज आदि इस लोकके सम्पूर्ण सुख देती हुई अन्तमें ब्रह्मज्ञान प्राप्त कराकर ब्रह्मलोकका अनन्त सुख प्राप्त कराती है।

वेदपाठ-विधि

वेदपाठमें नीचे लिखे नियमोंपर ध्यान रखना चाहिये—वेदमन्त्रोच्चारणके लिये प्रसन्न-मन एवं विनीतभावसे हस्तमुद्रापर दृष्टि रखते हुए चित्रमें दिखाये गये ढंगके



चित्र सं० १

अनुसार शुद्ध आसनपर स्वस्तिक या पद्मासनसे बैठकर बायें हाथकी मुट्ठीपर दाहिना हाथ रख सब अँगुलियाँ मिलाकर गोकर्णाकृति हाथ रखते हुए बैठना चाहिये।

वेदपाठ करनेमें न बहुत शीघ्रता करे, न मन्दता करे। शान्तभावसे स्वरको बिना ऊँचा-नीचा किये एक लयसे उच्चारण करे। मन्त्रपाठ आरम्भ करते समय प्रथम 'हरिः ॐ' का उच्चारण करे।

शुक्ल यजुर्वेदकी माध्यन्दिनीय शाखामें उदात्तादि स्वरोंका हाथसे बोधन कराया जाता है। इन उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि स्वरोंका उच्चारण तथा हस्तमुद्रा दोनों एक साथ रहनी चाहिये। क्योंकि लिखा है—

'हस्तभ्रष्टः स्वराद् भ्रष्टो न वेदफलमश्नुते।'

हस्त-स्वरकी बड़ी महिमा है, इसके ज्ञानके बिना वेदपाठका यथार्थ फल प्राप्त नहीं होता। आचार्योंने कहा है कि—

ऋचो यजूंषि सामानि हस्तहीनानि यः पठेत्।
अनृचो ब्राह्मणस्तावद् यावत् स्वारं न विन्दति॥

जो दिखावामात्रके लिये अर्थात् स्वरज्ञानके बिना हस्त-स्वरका प्रदर्शन करता है, वह पापका भागी होता है।

हस्तहीनं तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम्।
ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति॥

हाथको ठीक गोकर्णाकृति रखना चाहिये।

उदात्त स्वरका कोई चिह्न नहीं होता, स्वरितमें वर्णके ऊपर खड़ी रेखा होती है तथा अनुदात्तमें वर्णके नीचे तिरछी रेखा होती है।

उदात्तमें हाथ मस्तकतक तथा स्वरितमें नासिकाग्र या मुखकी सीधमें एवं अनुदात्तमें हृदयकी सीधमें हाथ जाना चाहिये। जात्यादि स्वरोंमें हाथ तिरछा जाना चाहिये। साधारणतया हाथ उदात्तमें ऊपर (कन्धेके पास), स्वरितमें मध्यमें तथा अनुदात्तमें नीचे रहना चाहिये।

माध्यन्दिनीय यजुर्वेदमें वर्णोच्चारण-सम्बन्धी कुछ नियम

१-'ऋ' कारका उच्चारण 'रे' कारके समान करना चाहिये।

२-अनुस्वारके भेद—

१-जहाँपर 'ꣳ' यह चिह्न हो, वहाँपर लघु (एकमात्रिक) अनुस्वार जानना।

२-उपर्युक्त चिह्नके बाद यदि संयोग (संयुक्त वर्ण) हो तो गुरु जानना।

३-'ठँ' चिह्न हो तो वह भी दीर्घसंज्ञक है।

उपर्युक्त चिह्नित अनुस्वारका उच्चारण 'गुं' इस ध्वनिसे (लघु या दीर्घानुसार) होना चाहिये, 'ग्वं' रूपसे नहीं।

४-विसर्गका उच्चारण हकारके समान होता है, पर इसको हकार नहीं मानना चाहिये। यथा—

'देवो वं÷ सविता' हकारके समान उच्चारण होगा।
'देवी' हिकारके समान ,, ,,
'आखुस्ते पशु' हुकारके समान उच्चारण होगा।
'अग्नेः' हेकारके समान ,, ,,
'बाह्वोः' होकारके समान उच्चारण होगा।
'स्वैः' हिकारके समान ,, ,,
'द्यौः' हुकारके समान ,, ,,

५-'रंग' अर्थात् अर्धानुस्वारके दो भेद हैं, यथा—

'शत्रूँ १॥', **'लोकाँ २॥'** (इसमें ह्रस्व या दीर्घ रंगका उच्चारण पूर्वस्वरके साथ सानुनासिक होता है)।

६-जहाँ दो स्वरके मध्य 'ऽ' चिह्न हो वहाँ एक मात्रा काल विराम होता है।

७-जहाँ यकारके पेटमें तिरछी रेखा हो वहाँ जकारके समान उसका उच्चारण होता है।

८-हल् रकारका उच्चारण—

श, ष और ह वर्णोंके पूर्वके हल् रकारको 'रे' उच्चारण करना।

९-मूर्धन्य षकारका उच्चारण—

यदि ट=वर्ग= (ट ठ ड ढ ण)-से युक्त न हो तो क-वर्गीय 'ख' कारके समान उच्चारण होता है।

१०-ज्ञकारका उच्चारण 'ज्ञ'= ('ज् ञ')—मिश्रितके समान होना चाहिये, महाराष्ट्रीय सम्प्रदायमें **'ग्न्य'** भी कहा जाता है।

माध्यन्दिनीय यजुर्वेदमें प्रयुक्त विशेष चिह्न—

उदात्त—चिह्नरहित होता है—क
स्वरित—वर्णके ऊपर खड़ी रेखा—क॑।
अनुदात्त—वर्णके नीचे तिरछी रेखा—ख॒
अनुस्वार ह्रस्व—ꣳ
अनुस्वार दीर्घ या ठँ.
विसर्ग उदात्तके आगे—
विसर्ग अनुदात्तके आगे—
मध्यावर्ती स्वरित— L या ४
अर्धन्युब्ज तथा पूर्णन्युब्ज—ʷ

उदात्तादि स्वरोंकी मुद्राओंका विवरण

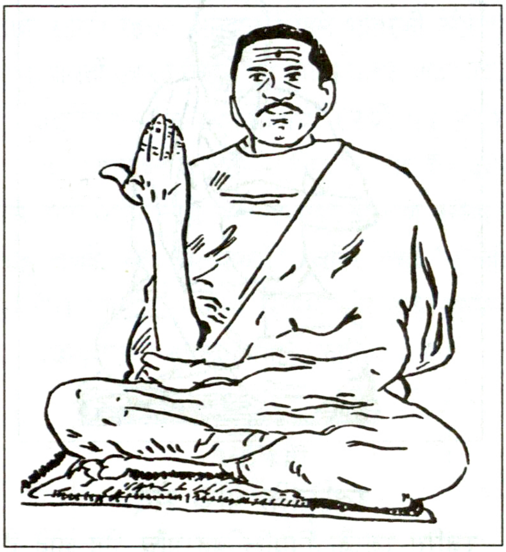
उदात्तस्वरके दो भेद—

उदात्तस्वरके मुख्यरूपसे दो भेद हैं—'ऊर्ध्वगामी' और 'वामगामी' उदात्तवर्णका परिचायक कोई चिह्न नहीं होता।

प्रथम—

(क) स्वरित (ऊर्ध्व रेखा-चिह्नित) वर्णसे पूर्व जो वर्ण चिह्नरहित हो तो हाथ ऊपर जायगा।

उदाहरण—'**आहमजानि**' (रुद्री १। १)



चित्र सं० २

(ख) न्युब्ज चिह्नवाले स्वरितसे आगे और ऊर्ध्व रेखायुक्त स्वरितसे पूर्व जो वर्ण चिह्नरहित हो तो हाथ ऊपर जायगा।

उदाहरण—'**बृहत्युष्णिहा**' (रुद्री १। २)

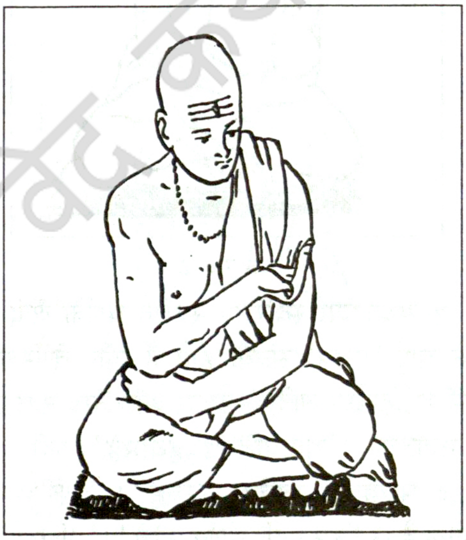
द्वितीय—

वामगामी उदात्तके तीन अवान्तर भेद—

(क) दो अनुदात्तोंके मध्यमें उदात्त (चिह्नरहित वर्ण) हो तो हाथ अपनी बाँयी ओर जायगा।

उदाहरण—'**गायत्री त्रिष्टुब्ज०**' (रुद्री १। २)

(ख) वामगामी उदात्त—



चित्र सं० ३

मन्त्रके मध्यके निश्चित अवसान या समाप्तिके अवसानके चिह्नरहित वर्ण यदि अनुदात्तसे परे तथा अग्रिम मन्त्रांश अनुदात्तसे प्रारम्भ हो तो हाथ बाँयीं तरफ जायगा।

उदाहरण—'**गर्भधम्**' (रुद्री १। १)

(ग) वामगामी उदात्त—

मन्त्रारम्भका वर्ण जो अनुदात्त चिह्न (नीचे तिरछी रेखा)-से पूर्व हो तो हाथ बाँयी ओर जायगा।

उदाहरण—'**य एतावन्तश्च**' (रुद्री ५। ६३)

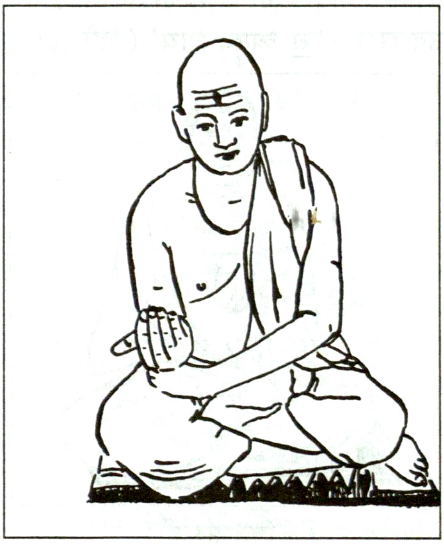
इस प्रकार दो प्रकारका ऊर्ध्वगामी और तीन प्रकारका वामगामी उदात्त स्वर होता है, इसके ऊपर या नीचे कोई चिह्न नहीं रहता।

अनुदात्तके पाँच भेद

अनुदात्त स्वरके नीचे तिरछी रेखा (क इस प्रकार) रहती है। अनुदात्त स्वके पाँच भेद हैं। यथा—१-निम्नगामी, २-अन्त्यदर्शी, ३-दक्षगामी, ४- तिर्यग्दर्शी और ५- अन्तर्गामी। इनका विवरण—

१-निम्नगामी अनुदात्त—'अनुदात्त, उदात्त और स्वरित'—इस क्रमसे वर्ण हो तो अनुदात्त चिह्नमें हाथ नीचे जायगा।

उदाहरण—'**गणानान्त्वा**' (रुद्री १। १)

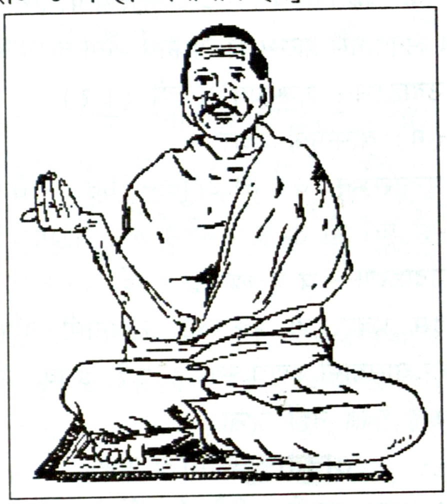


चित्र सं० ४

२-अन्त्यदर्शी अनुदात्त—अनेक अनुदात्त स्वर (निम्न रेखावाले) हो तो अन्तिम अनुदात्तमें हाथ नीचे जायगा।

उदाहरण—'**ब ल विज्ञाय स्थविरः**' (रुद्री ३। ५)

[निम्नगामी एवं अन्त्यदर्शी—इन दोनों अनुदातोंका चित्र सं० ४ में ही अन्तर्भाव है।]



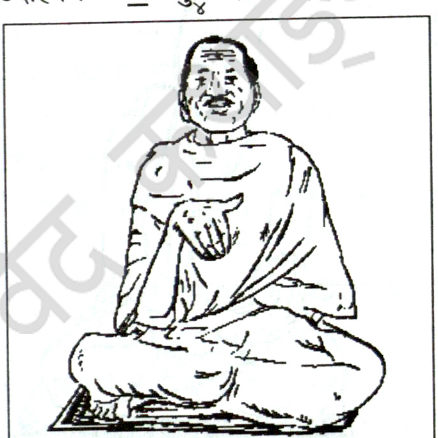
चित्र सं० ५

३-**दक्षगामी अनुदात्त**—'अनुदात्त, उदात्त और अनुदात्त', इस क्रमसे स्वर हो तो प्रथम अनुदात्तमें हाथ दाहिनी ओर जायगा।

उदाहरण— '**पङ्क्त्या सह**' (रुद्री १। २)

४-**अन्तर्गामी अनुदात्त**—यदि मध्यावर्ती स्वर (जिस स्वरके नीचे चार '४' अङ्क अथवा 'L' यह चिह्न हो, वह 'मध्यावर्ती' कहा जाता है)-से अव्यवहित पूर्व अनुदात्त स्वर हो तो हाथ पेटकी तरफ घूम जायगा।

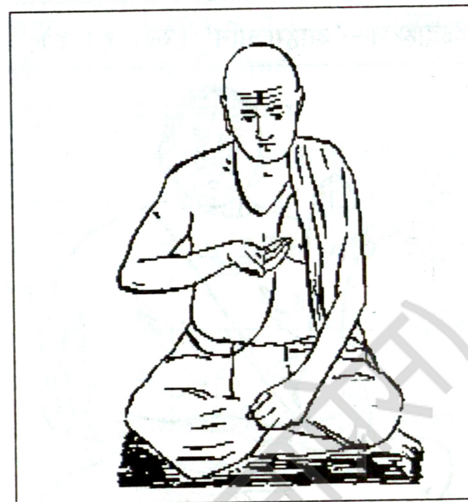
उदाहरण— '**च व्युप्तकेशाय**' (रुद्री ५। २९)



चित्र सं० ६

५-**तिर्यग्दर्शी अनुदात्त**—यदि अनुदात्तसे परे 'न्यूज' चिह्न (ᵕ) हो तो अनुदात्तमें हाथ पिण्डदानके समान दाहिनी ओर झुकेगा।

उदाहरण— '**बृहत्युष्णिहा**' (रुद्री १। २)



चित्र सं० ७

स्वरितके पाँच भेद

स्वरित स्वरके निम्नलिखित पाँच भेद होते हैं— १-मध्यपाती, २-मध्यदर्शी, ३-मध्यावर्ती, ४-पूर्णन्युब्ज और ५-अर्धन्युब्ज। इसका मुख्य चिह्न (।) वर्णके ऊपर खड़ी रेखा होती है।

१-**मध्यपाती स्वरित**—जहाँ स्वरित चिह्न (खड़ी रेखा), हो वहाँपर हाथ मध्यमें (हृदयकी सीधमें) जाता है।

उदाहरण— '**गणाना त्वा**' (रुद्री १। १)



चित्र सं० ८

२-**मध्यदर्शी स्वरित**—स्वरित वर्णके बाद बिना चिह्नके वर्ण 'प्रचय' संज्ञक होते हैं और वे स्वरितके स्थानमें ही दिखाये जाते हैं, इनपर कोई चिह्न नहीं होता।

उदाहरण— '**गणपतिं ꣳ हवामहे**' (रुद्री १। १)

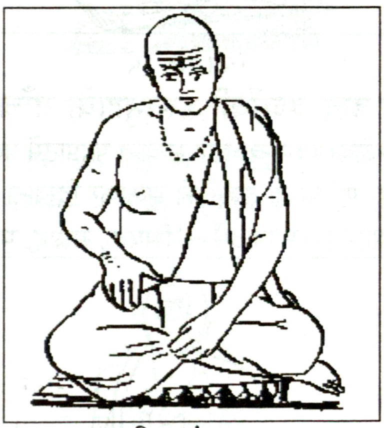
३-**मध्यावर्ती स्वरित**—(चिह्न 'L' या ४ वर्णके नीचे होता है।) जिस पदमें वर्णके नीचे 'L' अथवा ४ यह

चिह्न हो, उसके पूर्वमें अनुदात्त चिह्न अवश्य रहेगा। वहाँ हाथ छातीके सामने रहकर अनुदात्त चिह्नमें भीतरकी ओर घूमेगा और मध्यावर्ती स्वरित चिह्नमें पूरा घुमाव करके बाहर आयेगा।

उदाहरण— **'च॒ व्युप्तकेशाय'** (रुद्री ५। २९)

४-पूर्णन्युब्ज स्वरित—(चिह्न 'ш' यह है) अनुदात्त स्वरसे आगे वर्णके नीचे 'ш' यह चिह्न हो तथा उसके आगे अचिह्न वर्णके बाद 'मध्यपाती' स्वरित चिह्न '।' हो तो न्युब्जबोधी चिह्न 'ш' में हाथ नीचेकी ओर उलट जायगा।

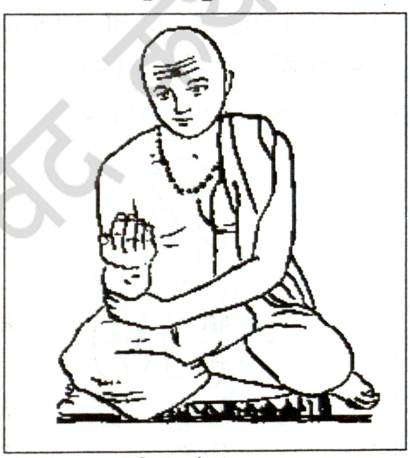
उदाहरण— **'बृ॒हत्यु॒ष्णिहा'** (रुद्री १। २)



चित्र सं० ९

५-अर्धन्युब्ज स्वरित—(चिह्न ш) अनुदात्त चिह्नके आगे 'ш' यह चिह्न हो और उसके आगे अचिह्न वर्णके बाद अनुदात्त चिह्न हो तो न्युब्जबोधी चिह्नमें हाथ दाहिनी ओर उलटा किया जायगा।

उदाहरण— **'र॒थ्यो॒ न र॒श्मीन्'** (रुद्री १। ४)



चित्र सं० १०

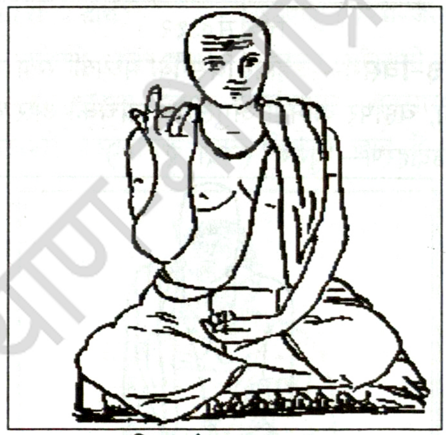
विशेष—'न्युब्ज' चिह्नमें अग्रिम स्वरोंके सहयोगसे हाथ नीचे या दाहिनी ओर जाता है। (१) अधोगामी पूर्णन्युब्जके उदाहरणके अनुदात्तमें नीचेकी ओर पिण्डदानके समान हाथ झुकेगा। (२) दक्षगामी अर्धन्युब्जके उदाहरणके अनुदात्तमें हाथ दाहिनी ओर जाकर पिण्डदानके समान झुकेगा।

विसर्गकी हस्तमुद्राएँ—

विसर्गमें ये तीन चिह्न होते हैं—

१-विसर्ग—[क] जहाँ विसर्गके मध्यकी रेखा ऊपरकी ओर अंकित हो और ऊर्ध्वगामी उदात्त हो तो वहाँपर तर्जनी अँगुली ऊपरकी ओर करना।

उदाहरण— **'आ॒शुः॒शिशा॑नो'** (रुद्री ३। १)



चित्र सं० ११ (क)

[ख] और यही विसर्ग यदि वामगामी उदात्तके बाद हो तो बायीं ओर हाथ रखते हुए तर्जनी अँगुली बाहर निकालना।

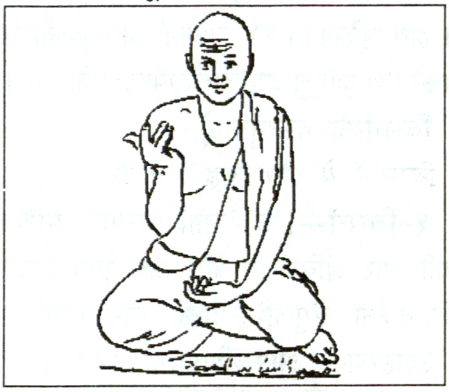
उदाहरण— **'स॒हस्रा॒क्ष?'** (रुद्री २। १)



चित्र सं० ११ (ख)

२-विसर्ग—जहाँ विसर्गके मध्यमें तिरछी रेखा हो वहाँपर कनिष्ठा और तर्जनीको सीधी रखते हुए मध्यमा और अनामिकाको हथेलीकी तरफ मोड़ना।

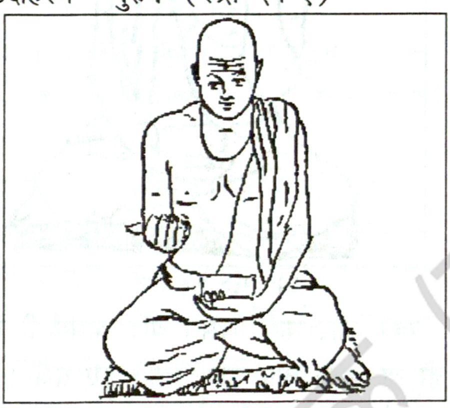
उदाहरण— '**सूचीभि ÷**' (रुद्री १। २)



चित्र सं० १२

३-विसर्ग—जहाँपर विसर्गके मध्यकी रेखा नीचेकी ओर हो, वहाँपर कनिष्ठा अँगुलीको नीचेकी ओर करना।

उदाहरण— '**पुरुष**' (रुद्री २। १)

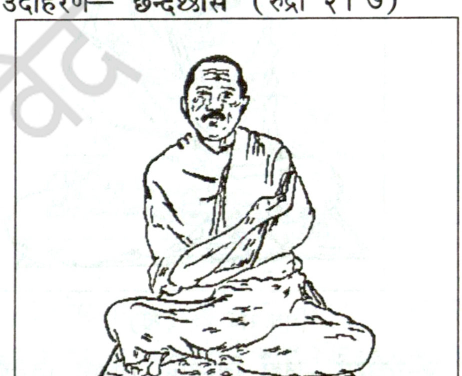


चित्र सं० १३

अनुस्वारकी मुद्राके दो भेद—

१-अनुस्वार—जहाँ अनुस्वारको '**ᳵ**' इस रूपमें दिखाया गया हो, वह एकमात्रिक या लघु है, वहाँ तर्जनी अँगूठा मिलाना चाहिये।

उदाहरण— '**छन्दᳵसि**' (रुद्री २। ७)



चित्र सं० १४

२-अनुस्वार—जहाँपर 'ᳲ' इस रूपमें दिखाया गया हो, वहाँपर केवल तर्जनी सीधी करके दिखाना चाहिये।

उदाहरण— '**सभूमि ᳲ**' (रुद्री २। १)

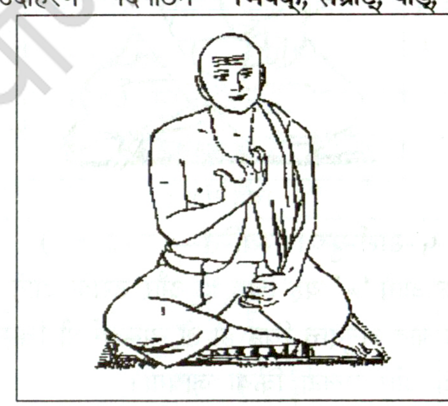


चित्र सं० १५

अन्तिम हल् वर्णोंकी हस्तमुद्राके पाँच भेद—

१-अवसान मन्त्रार्ध या मन्त्रान्त पदपाठमें पदान्तमें हल् 'क्, ट्, ङ्, ण्' हो तो तर्जनीको झुकाकर दिखाना चाहिये।

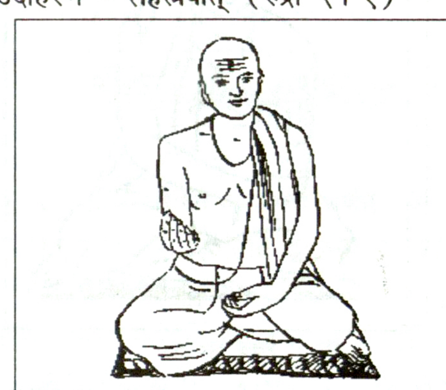
उदाहरण— पदपाठमें— '**भिषक्, सम्राट्, पाङ्, वृषण्**'



चित्र सं०१६

२-अवसानमें हल् 'त्' हो तो तर्जनीको अँगूठेसे मिलाकर कुण्डलकी आकृति करना।

उदाहरण— '**सहस्रपात्**' (रुद्री २। १)



चित्र सं० १७

३-अवसानमें हल् 'न्' हो तो तर्जनीके बगलसे अँगूठाके नखका स्पर्श करना।

उदाहरण— **'रश्मीन्'** (रुद्री १। ४)



चित्र सं० १८

४-अवसानके हल् 'म्' में मुट्ठी बाँधकर दिखाना।

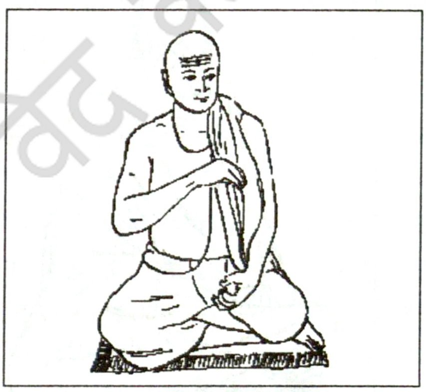
उदाहरण— **'गर्भधम्।'** (रुद्री १। १)



चित्र सं० १९

५-अवसानके हल् 'प्' में पाँचों अँगुली मिलाना।

उदाहरण— पदपाठमें **'ककुप्'**



चित्र सं० २०

वर्जित हस्तमुद्रा

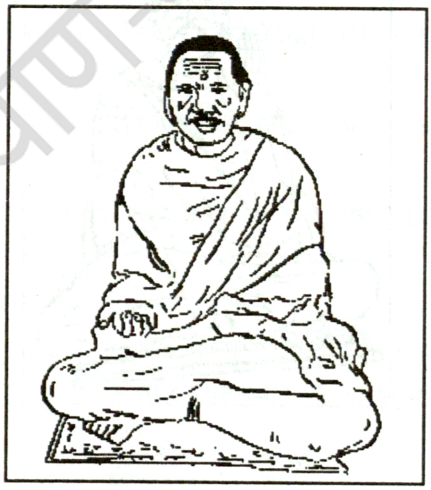
आजकल प्राय: देखा जाता है कि अधिकतर स्वरसञ्चालन शिक्षारहित कर्मठवृन्द मिथ्या-रूपाकृतियुक्त हस्तमुद्राका प्रदर्शन करते हैं, अत: कम-से-कम शुद्धरूपसे हस्तमुद्राके स्वरूपका ज्ञान होनेमें सहायक हो, इसलिये वर्जित हस्तमुद्राके स्वरूप भी बतलाये जाते हैं। जैसा कि शास्त्रमें उल्लेख है—

चुलुर्नौका स्फुटो दण्डः स्वस्तिको मुष्टिकाकृतिः।
परशुर्हस्तदोषाः स्युस्तथाङ्गुल्या प्रदर्शनम्॥

(सम्प्रदाय प्रबोधिनी शिक्षा)

१-चुलु (चुल्लू— आचमनमुद्रा)	५-स्वस्तिक (अभय मुद्रा)
२-नौका (नौकाके समान हाथ)	६-मुष्टिक (मुट्ठी बंद हाथ)
३-स्फुट (सीधा हाथ)	७-परशु (फरसे-जैसा हाथ)
४-दण्ड (चपेटाके समान हाथ)	८-तर्जन (अँगुलीसे स्वरप्रद)

—इन ऊपर लिखे विवरणके अनुसार नीचे क्रमिकरूपसे हस्तदोषके चित्र दिखाये जाते हैं—



हस्तदोष १-चुलु



हस्तदोष २-नौका

वेद कथाङ्क (कल्याण-गीताप्रेस)



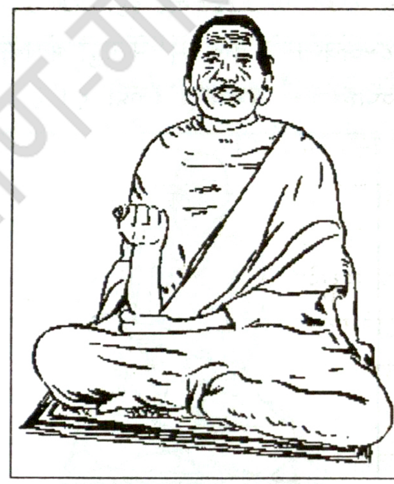
हस्तदोष ३-स्फुट



हस्तदोष ४-दण्ड



हस्तदोष ५- स्वस्तिक



हस्तदोष ६-मुष्टिक



हस्तदोष ७-परशु



हस्तदोष ८-तर्जन

वेद कथाङ्क (कल्याण-गीताप्रेस)

सामगानकी संक्षिप्त विधि

सामवेद संहिताके दो भाग हैं—प्रथम भाग 'आर्चिक' या 'पूर्वार्चिक' है दूसरा 'उत्तरार्चिक' है। दोनोंमें मन्त्र-संख्या १,८१० है। यदि एक ही मन्त्र जो कि दो बार आया है, उसको छोड़ दें तो केवल १,५४९ ही मन्त्र हैं। सब मन्त्र ऋग्वेदके हैं, उनमें ७५ स्वतन्त्र हैं। पूर्वार्चिकमें ५८५ ऋचाएँ हैं। इसके बाद एक आरण्यकाण्ड है, उसमें ५५ मन्त्र हैं। उसके बाद 'महानाम्नी आर्चिक' है, तत्पश्चात् 'उत्तरार्चिक' है उसमें १२३५ मन्त्र हैं।

सामका अर्थ है 'गान' या 'संगीत'। '**ऋचि अध्यूढꣳ साम गीयते।**' ऋचाके आधारपर ही सामका गान होता है। उत्तरार्चिकमें प्रायः ४०० 'प्रगाथ' अर्थात् गेय सूक्त हैं। पूर्वार्चिकमें अग्नि, इन्द्र, सोम देवताओंकी ऋचाएँ हैं। इनमें ग्रामगेय (जो ग्राममें गाये जायँ) और आरण्यगेय (जो वनमें गाये जायँ)-का वर्णन है। आरण्यगेयको 'रहस्यगेय' भी कहते हैं।

दो ऋचाओंके समूहको 'प्रगाथ' कहते हैं। ऊहगान—ग्रामगेयके तथा ऊह्यगान—आरण्यगेयके विकृति-गान कहे जाते हैं। सामवेद आर्चिकमें स्वर उदात्त[1] अनुदात्त[3] और स्वरित[2] के अङ्कसे दिखाये जाते हैं। दो अनुदात्त (३) चिह्नोंके मध्यमें रहनेवाला उदात्त (२) अङ्कसे दिखाया जाता है तथा ओंकारको सामवेदी 'उद्गीथ' कहते हैं। इन गानोंमें अक्षरोंके ऊपर—१, २, ३, ४, ५—इन अङ्कोंसे संगीतके स्वरोंका निर्देश किया जाता है। प्रायः मन्त्रोंमें ५ ही स्वर लगते हैं। कुछ थोड़ी ऋचाओंमें ७ तक भी स्वर लगते हैं। इन सात स्वरोंका वंशीके ७ स्वरोंसे इस प्रकार सम्बन्ध है—

१-(म) मध्यम	२-(ग) गांधार
३-(रे) ऋषभ	४-(स) षड्ज
५-(नी) निषाद	६-(ध) धैवत
७-(प) पञ्चम	

इन्हीं स्वरोंके अनुसार उद्गाता लोग यज्ञोंमें सामगान करते हैं।

स्तोभ—ऋचामें जो वर्ण नहीं हैं, उन्हें आलापके लिये जोड़कर गान करना ही 'स्तोभ' कहलाता है। स्तोभ अनेक हैं। यथा—औ हो वा। हा उ। ए हाऊ। होयि। औहोइ। ओहाइ आदि।

अनेक ऋषियोंने मन्त्रोंका अपने ढंगसे या लयसे गान किया, वे गीतियाँ उन्हींके नामसे प्रसिद्ध हुईं। जैसे— वामदेव्य, माधुछन्दस, श्यैत, नौधस आदि इनके अनेक नाम हैं। सामगानका उदाहरण—

३१२ ३२ ३२३ १२ ३१२ ३१२३ १२
अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम।
२ ३ १२३ २उ ३१२ ३२उ ३१२ ३१२
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि॥ ५९४॥

इस ऋचाके सामगानका विस्तार—

२र र र १रर २ २१
हाउ हाउ हाउ। सेतूꣳ स्तर। (त्रिः)। दुस्त। रान् (द्वे त्रिः)
र२र१रर२
दानेनादानम्। (त्रिः)।
र र र र१ २ १११
हाउ हाउ हाउ। अहमस्मिप्रथमजाऋताऽ२३स्याऽ३४५॥
२र र र १रर २ १
हाउ हाउ हाउ सेतूꣳ स्तर। (त्रिः) दुस्त। रान् (द्वे त्रिः)।
र२र १र२र १र २र र
अक्रोधेनक्रोधम्। (द्विः) अक्रोधेनक्रोधम्। हाउ हाउ
र र र र र १ २ १११
हाउ। पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्यनाऽ२३ माऽ ३४५॥
२र र र १रर २ १
हाउ हाउ हाउ। सेतूꣳ स्तर। (त्रिः)। दुस्त। रान् (द्वे त्रिः)।
२ १र २र
श्रद्धयाऽश्रद्धाम् (त्रिः)।
र र र र र र र१ २ १ १ १
हाउ हाउ हाउ। योम ददाति सईदेवमाऽ २३ वा ऽ३४५ त्॥
२र र र १रर २
हाउ हाउ हाउ। सेतूꣳस्तर। (त्रिः)।
१ २१र र २ र र र
दुस्त। रान्। (द्वे त्रिः)। सत्येनानृतम्। (त्रिः)। हाउ हाउ हाउ।
१ २ १११ २ऽ ऽ ऽ
अहमन्नमन्नमदन्तामाऽ २३ द्मीऽ ३४५। हाउ हाउ हाउ वा॥
र१र
एषागतिः (त्रिः)।
२र१२१ १ २ १र२
एतदमृतम्। (त्रिः)। स्वर्गच्छ। (त्रिः)। ज्योतिर्गच्छ। (त्रिः)।
१रर २र १र२१ १११
सेतूꣳ स्तीर्त्वा चतुरा २३४५॥

किसी भी मन्त्रको सामगानमें गानके उपयुक्त करनेके लिये नीचे लिखे आठ प्रकारके विकारोंका भी प्रयोग किया जाता है—

सं०संज्ञा विवरण उदाहरण

१-विकार—एक वर्णके स्थानमें दूसरा बोलना **'अग्ने=ओग्नायि'**

२-विश्लेष—सन्धिका विच्छेद करना **'वीतये=वोयि तोया २ यि'**

३-विकर्षण—लम्बा खींचना **'ये=या २३ यि'**

४-अभ्यास—बार-बार उच्चारण करना **'तो या २ यि, तोया २ यि'**

५-विराम—पदके मध्यमें भी ठहरना—**'गृणानो हव्यदातये= गृणानोहा व्यदातये'**

६-स्तोभ—निरर्थक वर्णका प्रयोग **'औ हो वा, हा उ, हावु'**

७-आगम—अधिक वर्ण-प्रयोग **'वरेण्यम्=वरेणियोम्'**

८-लोप—वर्णका उच्चारण न करना **'प्रचोदयात्=प्रचो ऽ१२ऽ१२। हुम्। आ २। दायो। आ ३४५**

नीचे लिखे मन्त्रमें इन आठ विकारोंका उदाहरण देखिये। मूल-मन्त्र ऋग्वेदमें इस प्रकार हैं—

'अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये।' निहोता'। सत्सि-बर्हिषि॥ (ऋग्वेद ६।- १६।- १०)।

सामगानके प्रयोगमें यही मन्त्र—

१ ४ २र२ १ - १- १र २र

ओं। ओऽग्नाई॥ आयाहिऽ३ वाइतोयाऽ२इ। तोयाऽ२इ। गृंणानोह।

१ १ १ २र १

व्यादातोयाऽ२इ। तोयाऽ२इ॥ नाइहोता साऽ२३॥

५रर ३ ५

त्साऽ२इबा २३४ औहोवा। ही ऽ२३४ षी

इस प्रकार संक्षेपमें सामगानकी रूपरेखा दिखायी गयी है।

ऋक् तथा यजुर्वेदमें उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इनमेंसे उदात्तको चिह्नरहित रूपसे और अनुदात्तको वर्णके नीचे तिरछी रेखा तथा स्वरितवर्णको ऊपर खड़ी रेखासे अङ्कित किया जाता है। किंतु सामवेदमें यही मन्त्र संहितामें इस प्रकार लिखा जाता है—

२३ १ २ ३१२ ३२ ३१२ १ २र

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि

३१२

बर्हिषि॥ (सामवेद ६६०)

सामगानके विशेष चिह्न—

१-सामवेदमें कहीं-कहीं वर्णोंपर 'र' 'क' और 'उ'-के चिह्न देखे जाते हैं। उनका तात्पर्य यह है कि जब दो उदात्त एकत्र हो जाते हैं, तब पहले उदात्तके ऊपर र का अङ्क लगता है और दूसरा बिना चिह्नके ही रहता है। परंतु इस दूसरे उदात्तके आगेवालेपर रकारसहित २ का अङ्क लगेगा।

२-अनुदात्तके बादके स्वरितपर भी '२र' यही चिह्न होता है, किंतु तब स्वरितके पहले अनुदात्तपर '३क' यह चिह्न होता है।

३-यदि दो उदात्त सन्निकृष्ट हों और बादमें अनुदात्तस्वर हो तो प्रथम उदात्तके ऊपर '२उ' यह चिह्न दिया जाता है और दूसरा स्वर चिह्नरहित होता है।

वेदपाठकी रक्षा एवं आवश्यकता—

वेदपाठके सम्बन्धमें हमारे धार्मिक कृत्य (कर्मकाण्ड)-में यजुर्वेदकी हस्तस्वर-प्रक्रिया और सामवेदकी गान-शैली—ये दोनों प्रकार ही आजकल अति कठिन होनेके कारण दिन-प्रतिदिन क्षीण होते जा रहे हैं। सम्प्रति इस कठिन समयमें सर्वसाधारणको बड़े-बड़े यज्ञ-यागादि देखनेका अवसर ही यदा-कदा प्राप्त होता है और कभी कदाचित् यदि देखते भी हैं तो उनके लिये एक खेल-सा ही रहता है। इसीलिये इस आजीविकासे जीवन-यापन करनेवाले हमारे पूज्य कर्मठ याज्ञिकवृन्द भी इस अति आवश्यक शिक्षा-ग्रहणमें शिथिल होते जा रहे हैं। अतः सर्वसाधारण चाहे स्वयं यथावत् शिक्षा ग्रहण न भी करें तो भी अपनी अमूल्यनिधिका ज्ञान तो कम-से-कम होनी चाहिये, क्योंकि वेदोच्चारणका यह आर्ष प्रकार है। यद्यपि वर्तमानमें बहुत श्रद्धालु नहीं हैं, जो इस कठिन परिपाटीमें पड़ना पसन्द करें, पर सनातनधर्म महान् है, आज भी श्रद्धालुओंकी कमी नहीं है। क्या बिना श्रद्धाके ही बदरी, केदार आदिकी महाकठिन एवं अति व्ययसाध्य यात्रा प्रतिवर्ष लाखों मनुष्योंद्वारा होना सम्भव है? इसी प्रकार कुम्भ आदि पर्वपर पचासों लाख जनसमूहका समवेत होना भी इसका प्रमाण है तथा दूसरा प्रयोजन यह भी है कि इस शिक्षाकी इच्छावाला विद्यार्थी गुरूपदिष्ट शिक्षाको इसकी सहायतासे सहजमें हृदयङ्गम करता हुआ अभ्यास कर सके। इससे पाठक और विद्यार्थी दोनोंको ही सरलता होगी, पाठको बारम्बार आलोडनके परिश्रमसे मुक्ति मिलेगी और विद्यार्थी इसके द्वारा अपने विस्मृत स्वरका ज्ञान प्राप्त कर सकेगा। वेदसाहित्य-विषयक ज्ञातव्य विषय तो महान् है, किंतु नित्य-नैमित्तिक और काम्य कर्म तथा देवपूजा आदिमें व्यवहृत होनेवाले वेदमन्त्रोंका यथाविधि पाठ करनेकी इच्छावाले श्रद्धालु धार्मिकोंके लिये यह एक सरणि या दिग्दर्शन है।

हम चाहते यही हैं कि शिक्षाप्राप्त वेदपाठीका यथायोग्य सत्कार हो और धार्मिक जनोंको धर्मकी प्राप्ति हो। वेदपाठके विषयमें यह सर्वजन-विदित है कि उपनीत द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य)-मात्र इसके अधिकारी है, द्विजमात्रका यह परम धर्म है, अतः वेदज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये।

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 7, No. 12 (125-130) January-June 2019 ISSN 2277-4351

यजुर्वेदीय ब्राह्मणों के सन्दर्भ में 'वाणी' का वेदत्व

डॉ. अपर्णा (धीर) खण्डेलवाल

असिस्टेन्ट प्रोफेसर,

इन्स्टिटयूट ऑफ ऐड्वान्स्ड साइन्सीस,

डार्टमोथ, एम.ए., यू.एस.ए.

भूमिका

सम्पूर्ण विश्व में मनुष्य ही सर्वोत्तम जीव है, जो वाक्-व्यवहार द्वारा अपने विचार-विनिमय एवं ज्ञान-विज्ञान के चिन्तन को व्यक्त करने में समर्थ है। वास्तव में 'वाक्' भाषा के प्रकाशन का माध्यम है क्योंकि ज्ञान भाषा है और उसकी अभिव्यक्ति वाणी द्वारा ही सम्भव है।[1] निरुक्त में स्पष्टतः कहा है कि जो बोली जाती है, वही भाषा वाक् है।[2] वाणी के महत्त्व की ओर वैदिक ऋषियों ने प्रथमतः ऋग्वेद के वाक्-सूक्त (10.125) में ध्यान आकृष्ट किया है। ऋग्वैदिक दृष्टि में भाषा का संस्कार-सम्पन्न स्वरूप 'वाक्' है।[3]

ऐसा माना गया है कि वैदिक संहिताओं में कहे गये मन्त्रों की ही व्याख्या, विवेचन अथवा विश्लेषण प्रायः ब्राह्मण ग्रन्थों में यत्र-तत्र उपलब्ध है। कहा भी गया है- *'वेदानां ब्रह्मणां व्याख्यानानीमानि'*।[4] मन्त्रब्राह्मणात्मक वेदशास्त्र को भारतवर्ष की मौलिक निधि माना गया है।[5] इस दृष्टि से यहाँ वाणी के स्वरूप एवं उसके वेदत्व के अध्ययन हेतु शुक्लयजुर्वेदीय वाजसनेयी-संहिता की माध्यंदिन शाखा से सम्बद्ध शतपथ ब्राह्मण और कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय-संहिता से सम्बद्ध तैत्तिरीय ब्राह्मण को मूल आधार के रूप में ग्रहण किया गया है।

---

1. कपिलदेव द्विवेदी, *भाषा-विज्ञान एवं भाषा-शास्त्र*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2003, पृ. 43
2. वाक् कस्मात् वचेः। निरुक्त 2.23
3. शशि तिवारी, *ऋग्वैदिक अध्ययन*, न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली, 2018, पृ. 216
4. सावित्री देवी शर्मा, *शतपथब्राह्मण के प्रतीक (एक विवेचनात्मक अध्ययन)*,श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट, राजस्थान, 2004, पृ. 301 में उद्धृत।
5. मोतीलाल शास्त्री, *'वेद का स्वरूप विचार'*, राजस्थान पत्रिका पा. लिमिटेड, जयपुर, पृ. 5

वाणी का स्वरूप

वस्तुतः वेद साक्षात् ईश्वर की वाणी है। जिस प्रकार ऋग्वेद-संहिता[1] में वाक्तत्त्व को विरूप और नित्य कहा गया है, उसी प्रकार तैत्तिरीय ब्राह्मण[2] में वाणी को प्रथम उत्पन्न होने वाला, अक्षर एवं शाश्वत माना है। यही कारण है कि वाणी से ही समस्त संसार की उत्पत्ति कही गई है- *'वाचं देवी उपजीवन्ति विश्वे'*।[3] इन यजुर्वेदीय ब्राह्मणों में कर्मकाण्ड का ऐसा विवेचन है कि समस्त संसार यज्ञमय कहा गया है- *'सर्वं यज्ञमयं जगत्'*। यज्ञ-शैली का कथन करने वाले इन ग्रन्थों में बताया गया है कि हम आहुतिकाल के समय जो मन्त्रोच्चारण करते हैं, उसी से समस्त संसार बनता है। शतपथ ब्राह्मण में भी यज्ञ की दृष्टि से इस तथ्य को प्रतिपादित किया गया है। कथित है कि वाणी से ही यज्ञ का स्वरूप बनता है इसीलिए चार ऋत्विजों में से वाक् को यज्ञ का होता माना गया है।[4] क-च-ट-त आदि वर्ण वाणी के माध्यम से शब्दों में परिगणित होकर मन्त्र का रूप लेते हैं। मन्त्र के साथ डाली गई अग्नि में आहुति देवताओं द्वारा ग्राह्य होती है। इस प्रकार वाणी द्वारा ही यज्ञ सफलतापूर्वक सम्पादित किया जाता है।[5] अतः वाणी का स्वरूप उसमें प्रयुक्त शब्दों पर आधारित है।

शब्दों के माध्यम से समस्त व्यवहार सम्भव है। वास्तव में व्यवहार ही समस्त क्रियाकलाप से बने इस संसार का मूल है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में इसी दृष्टि से वर्णित है कि समस्त प्राणीजन यथा- मनुष्य, गन्धर्व, पशु आदि वाणी द्वारा ही व्यवहार करते हैं और इस प्रकार लोकव्यवहार से ही समस्त भूमण्डल का निर्माण होता है।[6] आचार्य दण्डी ने भी **काव्यादर्श** में शब्द को महत्त्वपूर्ण बताते हुए कहा है कि यदि शब्द रूपी ज्योति संसार में न जलती तो संसार में चारों ओर अधेरा ही रहता।[7] शब्द-व्यवहार पर आधारित इस संसार में ऐसा माना जाता है कि सार्थक शब्द ही ज्ञान के साधन होते हैं। ब्राह्मणकालीन ऋषि ने मनुष्य की वाणी को समझने योग्य माना

---

1. वाचा विरूपनित्यया। ऋग्वेद 8.8.75.6
2. वागक्षरं प्रथमजा ऋतस्य।तै. ब्रा. (तैत्तिरीय ब्राह्मण) 2.8.8.5
3. वही, 2.8.8.4
4. वाग्वै यज्ञस्य होता। श. ब्रा.(शतपथ ब्राह्मण) 12.8.2.23, 14.6.1.15
5. मोतीलाल शास्त्री, *शुक्लयजुर्वेदीय-माध्यन्दिन शतपथब्राह्मण विज्ञानभाष्य*, 'अध्वरनाम' तृतीयकाण्डान्तर्गत प्रथम खण्ड, जयपुर, पृ. 310
6. वाचं गन्धर्वाः पशवो मनुष्याः। वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता। तै. ब्रा. 2.8.8.4
7. इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
   यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।। काव्यादर्श 1-4

है क्योंकि सभी प्रकार के पशुओं, जीव-जन्तुओं आदि में से केवल मानव-जाति की वाणी ही सार्थक शब्दों से अलंकृत है।[1]

वाणी के स्वरूप को बताते हुए यजुर्वेदीय ब्राह्मणोंमें *'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि'*[2] कहकर शब्द-व्यवहार की ओर संकेत किया गया है अर्थात् वाणी चार प्रकार की है। आगे कहते है कि मेधावी विद्वान् इसके ज्ञाता हैं; उसके तीन पद गुहा में निहित, बुद्धिगम्य और अज्ञात हैं; चौथे पद को ही साधारण मनुष्य बोलते हैं। इस विषय में सायणाचार्य के मतानुसार परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी चार प्रकार के पद होते हैं, मनीषिगण इन चारों पदों के ज्ञाता माने गये हैं। उनके अनुसार परा, पश्यन्ती, और मध्यमा शरीर के मध्य गूढ़ रूप से स्थापित रहते हैं, केवल वैखरी पदों में ही मनुष्य बोलते हैं।[3] अतः शब्द-संचार वैखरी द्वारा सम्भव है, वाणी के अन्य तीनों रूप चैतन्य भाव से स्थित रहते हैं। इस प्रकार वाणी के स्वरूप को समझने हेतु हमें 'परा' को सूक्ष्मतम और 'वैखरी' को स्थूलतम जानना चाहिए। इस प्रकार ऋक्, यजु और साम भेद से सार्थक वाणी के तीन रूप कहे गये हैं- मौन (या धीरे बोलना), थोड़ी से तेज, एवं ऊँची।[4] तीनों तरह की यह वाणी सत्य और अनृत के रूप में सुनाई पड़ती है।[5] एक सन्दर्भ में संगीत की वाणी को 'परम वाणी' कहा गया है[6] क्योंकि कर्णों को प्रिय लगने वाली वाणी वास्तव में परम है। यज्ञ के सन्दर्भ में कहा गया है कि ऋक्, यजु और साम भेद वाली यह वाणी वस्तुतः दैवी है परन्तु अध्वर्यु जब मानुषी वाणी में आदेश देता है 'यह करो वह करो', तभी वेदी चिनी जाती है।[7]

इसके अतिरिक्त भी तैत्तिरीय ब्राह्मण में *'एकाक्षरां द्विपदा षट्पदां च'*[8] बताकर वाणी की विविधता को स्पष्ट किया गया है। एकाक्षर अर्थात् प्रणव रूपी, द्विपद अर्थात् संस्कृत और अपशब्द रूपी, तथा षट्पद अर्थात् प्राकृत, पैशाचिक आदि भाषाओं के भेद से वाणी को षड्विध अथवा उससे भी कहीं अधिक भेद वाली

1. तदेतत्तुरीयं वाचो निरुक्तम् यन्मनुष्या वदन्ति। श. ब्रा. 4.1.3.16
2. तै. ब्रा. 2.8.8.5; श. ब्रा. 4.1.3.17
3. तैत्तिरीयब्राह्मणम् (श्रीमत्सायणाचार्यविरचितभाष्यसमेतम्), (सं.) पुष्पेन्द्र कुमार, नाग प्रकाशक, दिल्ली, 2003, भाग-2, पृ. 759
4. ...त्रेधाविहिता हि वागृचो यजूंषि सामान्यथो यदिदं त्रयं वाचो नूपमुपांशु व्यन्तरामुच्चैः। श. ब्रा. 6.5.3.4
5. ...दैवं च वदति मानुषं चाथो यत्सत्यं चानृतं...। वही, 6.3.1.34
6. एषा वै परमा वाग्या सप्तदशानां दुन्दुभीनां...। वही, 5.1.5.6
7. वागेवोपनिषद्वाचा हि चीयत....सा वा एषा वाक् त्रेधा विहिता। ऋचो यजूँषि सामानि। वही, 10.5.1.1-2
8. तै. ब्रा. 2.8.8.4

आचार्य सायण ने माना है।[1] इस प्रकार वाक्शक्ति को सर्वत्र सहस्र रूपों में व्याप्त जानना चाहिए। शतपथ ब्राह्मण में भी इस ओर इंगित करते हुए वाणी के लिए 'सहस्र'[2] शब्द का प्रयोग किया गया है।

वाक् द्वारा सृष्टि

यजुर्वेदीय ब्राह्मणों में कुछ आख्यान ऐसे मिलते हैं, जिन में वाणी को सृष्टि का कारण बताया गया है। जैसे–

तैत्तिरीय ब्राह्मण के आख्यानानुसार प्रजापति ने प्रजा की कामना की। उसने स्वयं को दस भागों में विभक्त करके दशहोतृ मन्त्र के द्वारा तप किया। सृष्टि की कामना से किया गया पर्यालोचन (विवेचन) ही तप है। इस मनन रूपी यज्ञ में अन्तःकरणवृत्ति ही स्रुक् थी। अन्तःकरण आज्य था। प्रजापति ने दशहोतृ मन्त्रानुष्ठान से चतुर्होतृ मन्त्र को रचा। उसने चतुर्होतृ मन्त्र से पुनः तप किया। अपने इस परिश्रम से थक कर प्रजापति ने दीर्घ निःश्वास छोड़ा, जिससे 'भू' शब्द निकला। भू से भूमि को रचा। तत्पश्चात् अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास आदि यज्ञों द्वारा तप किया। अपने इस परिश्रम से थक कर प्रजापति ने दीर्घ निःश्वास छोड़ा, जिससे 'भुवः' शब्द निकला। भुवः से अन्तरिक्ष को रचा। फिर चातुर्मास्य यज्ञ द्वारा तप किया। अपने इस परिश्रम से थक कर प्रजापति ने दीर्घ निःश्वास छोड़ा, जिससे 'सुवः' शब्द निकला। सुवः से द्युलोक की रचना की। इस प्रकार ये भू आदि व्याहृतियाँ लोकत्रय रूप में परिणत हो गई। इन लोकों का अनुसरण करते हुए प्रजा, पशु, छन्द इत्यादि उत्पन्न हुए। इसी प्रकार पंचहोतृ मन्त्र द्वारा तप करके प्रजापति ने क्रमशः असुरों और देवों को रचा। सप्तहोतृ मन्त्र द्वारा तप करके प्रजापति ने फिर स्वर्गलोक की रचना की।[3] इस वाक्य में व्याहृतियों के आधार पर रचे गये यज्ञ द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि कही गई है।

शतपथ ब्राह्मण के आख्यानानुसार पहले सब सलिल था। उन्होंने प्रजा की कामना कर श्रम एवं तप किया। तब सालभर में एक अण्डे से पुरुष बना। वह पुरुष ही प्रजापति हुआ। सालभर बाद उसने बोलने की इच्छा की। उसने 'भू' शब्द से पृथिवी को, 'भुवः' शब्द से अन्तरिक्ष को तथा 'सुवः' शब्द से द्युलोक की रचना की।[4]

---

1. तैत्तिरीयब्राह्मणम् (श्रीमत्सायणाचार्यविरचितभाष्यसमेतम्), (सं.) पुष्पेन्द्र कुमार, नाग प्रकाशक, दिल्ली, 2003, भाग–2, पृ. 757
2. वाग्वाऽएषा निदानेन यत्साहस्त्रययातयाम्नी...श. ब्रा. 4.5.8.3,
   वाग्वाऽएषा निदानेन यत्साहस्त्री तस्या एतत्सहस्त्रं वाचः। वही, 4.5.8.4
3. तै. ब्रा. 2.2.4.1–6
4. श. ब्रा. 11.1.6.1–3

तैत्तिरीय ब्राह्मण के द्वितीय काण्ड के तृतीय प्रपाठक के अष्टम अनुवाक में प्राप्त आख्यानानुसार असुर, पितर, मनुष्य और देव इन चारों सृष्टियों को जल के समान कहा गया है– '*तानि वा एतानि चत्वार्यम्भांसि। देवा मनुष्याः पितरोऽसुराः*'। प्रस्तुत आख्यान में जल को नभ के समान कहा गया है– '*तेषु सर्वेष्वम्भो नभ इव भवति*' अर्थात् सब प्रकार का जल आकाशादि है और ये सब आकाशादि प्रजापति के रूप हैं। इस प्रकार आकाश को समस्त सृष्टि के कारण के रूप में जाना जा सकता है। आकाश का गुण है शब्द। व्याकरण-दर्शन के अनुसार सारा संसार शब्द से ही उत्पन्न हुआ है।[1] शब्द (वाणी) से सृष्टि का अभिप्राय भी आकाश से सृष्टि का उद्भव सिद्ध करता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में इसी ओर इङ्गित करते हुए आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से वनस्पत्ति, वनस्पत्ति से अन्न, अन्न से पुरुष की उत्पत्ति कही गई है।[2] शब्द या वाणी को संसार के रचयिता के रूप में प्रतिपादित करते हुए शतपथ ब्राह्मण में वाणी के लिए प्रयुक्त सृष्टि-प्रक्रिया के मूल तत्त्व विराट्, विश्वकर्मा एवं प्रजापति विशेषण निश्चित ही प्रशंसनीय है।

इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण में भी पुनः एक आख्यान में कहा है कि प्रजापति ने प्रजा की इच्छा की। उसके पास उस समय केवल त्रयी विद्या रूपी वाणी ही थी। इस वाणी से प्रजापति ने जल एवं सम्पूर्ण सृष्टि बनाई।[3]

वाणी के लिए विशेषण

अपनी उपरोक्त प्रभावशीलता के कारण वाणी के लिए शतपथ ब्राह्मण में अनेक विशेषण कहे गये हैं। इन विशेषणों द्वारा वाणी के स्वरूप तथा महत्त्व को ज्ञात किया जा सकता है। यथा-'विराट्', 'विश्वकर्मा', 'प्रजापति', 'सर्वभेषजम्', 'लोकम्पृणा', 'इन्द्र', 'अनुष्टुप्', 'धेनु', 'प्राण', 'चन्द्रमा', 'ब्रह्म', 'यज्ञ', 'देवता', 'वसिष्ठ' इत्यादि विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं।[4] अर्थात् वाणी सबसे विशाल है, वाणी से ही विश्व के

---

1. शब्दस्य परिणामोऽयम्....एतद् विश्वं व्यवर्तत। वाक्यपदीय 1.120
2. तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः....स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।
   तैत्तिरीयोपनिषद् 2.1
3. श. ब्रा. 6.1.1.8-9
4. वाग्वै विराट्। श. ब्रा. 3.5.1.34,
   वाग् वै विश्वकर्मर्षिः। वाचा हीदं सर्वं कृतम्। वही, 8.1.2.9,
   वाग् वै प्रजापतिः। वही, 5.1.5.6, 13.4.1.15,
   वागु सर्वभेषजम्। वही, 7.2.4.28
   वाग् वै लोकम्पृणा। वही, 8.7.2.7,

सभी कर्म किये जा सकते है, वाणी संसार की पालक और शक्तिशाली है, वाणी सब औषधी है (वाणी रूपी मधुर-हितकारी वचनों से शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक कष्ट दूर होते हैं), वाणी ब्रह्म है, वाणी यज्ञ है, वाणी सब देवता है आदि विशेषणों द्वारा वाणी की सर्वव्यापकता दिखाई गई है।

निष्कर्ष

उपरोक्त सन्दर्भो से वाणी के वेदत्व को निश्चित ही जाना जा सकता है। जिस प्रकार हम सभी वैदिक ज्ञान को शाश्वत और नित्य कहते हैं, उसी प्रकार वाक् तत्त्व को भी शाश्वत और नित्य जानना चाहिए क्योंकि वाणी कुछ और नहीं अपितु अक्षर ब्रह्म ही है। इसी वाणी से त्रयी विद्या प्रकट हुई क्योंकि सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय उत्कृष्ट ओम् पद में ही तो विद्यमान है। यही वाणी समस्त सृष्टि के मूल में विद्यमान है। सार्थक शब्दों से युक्त वाणी ही ज्ञान का सृजन करती है और इसी ज्ञान के आधार पर समस्त लोक-व्यवहार एवं क्रियाकलाप निर्भर करता है। वैदिक ज्ञान का सार्थक स्वरूप शब्दों में निहित ज्ञानमय मन्त्रराशि वास्तव में कर्मकाण्डीय गतिविधियों की सफलता की कुँजी है। दार्शनिक रूप से देखें तो भी सृष्टि का कारण वाक् तत्त्व पञ्चमहाभूतों में से मुख्यतः आकाश का गुण माना गया है इसीलिए शतपथ ब्राह्मण में वाणी को अग्नि, आदित्य, द्यौ कहा गया है।[1] सामान्य शब्दों में कह सकते हैं कि वाणी वह ऊर्जा स्रोत है, जो साक्षात् ईश्वर है, चेतना है, (समस्त शुभाशुभ कर्मों की) प्रेरक है। यजुर्वेदीय ब्राह्मणों में प्राप्त वाक् तत्त्व विषयक चर्चा को भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत चर्चित ध्वनि-विज्ञान, व्याकरण-शास्त्र में प्राप्त शब्दार्थ, वाक्य आदि कथन, तर्क-शास्त्र में वर्णित शब्द प्रमाण तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययन में कथित मन एवं वाणी के संयोग को समझने में पृष्ठभूमि के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।

✦✦✦

प्राणो वै वाक्। वही, 1.1.2.14
वाग्वै ब्रह्म। वही, 2.1.4.10
वाग्वै यज्ञः। वही, 1.1.2.2, 3.1.3.27,
वागिति सर्वे देवाः। वही, 14.4.3.13

1. वागेव अग्निः। श. ब्रा. 3.2.2.13, वाग्वा अग्निः। वही, 6.1.2.28,
सा या वागसौ स आदित्यः। वही, 10.5.1.4,
वाग्घवा द्यौर्वा। वही, 12.4.1.1

9

साधारण स्वर-२

वैदिक काल से लेकर के आज भी गुरुकुलो में तथा विभिन्न प्रतिष्ठानो में गुरु शिष्य माध्यम से वेदपाठ प्रचलित है। वेदों के पाठ गुरु परम्परा के अनुसार स्वर सहित करते है। अत: वेद में स्वर का स्थान सबसे ऊपर है। केवल वेद पाठ से ही वेद में कहा पर क्या स्वर होगा ऐसा विद्वान मनुष्य जानने में समर्थ नहीं हो सकते है। अत: व्याकरण से स्वर निर्णय करने की कुशलता सभी को विदित ही है। बहुत काल पहले ही महर्षि पाणिनि ने सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय के स्वर निर्णय के लिए सूत्रों की रचना की। उन सूत्रों में कुछ विशिष्ट प्रयोग पाणिनि के द्वारा निर्देश नहीं किया है। अत: बाद के काल में वार्तिककार ने कुछ वार्तिकों की रचना की है। अत: इस पाठ में साधारण स्वर प्रतिपादक पाणिनीय सूत्र तथा वार्तिको की आलोचना की है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- सूत्रों के द्वारा स्वर सिद्धि प्रक्रिया को समझ पाने में;
- स्वर सम्बन्धी वार्तिकों को जान पाने में;
- एकश्रुति विषय को जान पाने में;
- सूत्र अर्थ के समन्वय को समझ पाने में; और
- साधारण स्वर विषय में सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर पाने में।

9.1 उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः॥ (८.४.६६)

सूत्र का अर्थ - उदात्त से उत्तर अनुदात्त को स्वरित आदेश होता है।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से स्वरित स्वर का विधान करते हैं। उदात्ताद् अनुदात्तस्य स्वरितः ये सूत्र आये हुए पदच्छेद हैं। तीन पद वाले इस सूत्र में उदात्ताद् यह पञ्चमी का एकवचनान्त है, अनुदात्तस्य यह षष्ठी का एकवचनान्त है, स्वरितः यह प्रथमा का एकवचनान्त पद है। स्वरितः यह प्रथमान्त होने से इसका ही विधायक है। उदात्ताद् अनुदात्तस्य स्वरितः इति सूत्र में आये हुए पद योजना है। उदात्ताद् यहाँ पञ्चमी निर्देश होने से 'तस्मादित्युत्तरस्य' इस परिभाषा से उदात्त से उत्तर का यह अर्थ प्राप्त होता है। और इस प्रकार इस सूत्र का अर्थ होता है उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित स्वर होता है।

उदाहरण- अग्निमीळे (अग्निमीळे) इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- अग्निमीळे यहाँ पर गति अर्थ की अगि धातु से 'धातोः' इस सूत्र के अनुसार से अकार उदात्त है। उसके बाद 'अङ्गेर्नलोपश्च' इस सूत्र से नि-प्रत्यय होने पर इस धातु का इकार इत होने से (अगि-धातु इकार इत्संज्ञक है) इदितो नुम् धातोः इससे नुम आगम और अनुबन्ध लोप होने पर इस स्थिति में नकार का उससे ही (अङ्गेर्नलोपश्च) सूत्र से लोप होने पर अग्नि शब्द निष्पन्न होता है। यहाँ नि प्रत्यय का नकार से उत्तर इकार 'आद्युदात्तश्च' इससे उदात्त है। इस प्रकार अग्नि यहाँ पर दो उदात्त स्वर है, एक धातु का दूसरा प्रत्यय का। यहाँ अगि धातु से अकार का उदात्त स्वर धातुपाठ में निर्देश किया है, परन्तु नि-प्रत्यय के इकार का उदात्त स्वर सूत्र से उपदेश किया है, अतः 'सतिशिष्टस्वरो बलीयान्' (६.१.१५८) इस परिभाषा सूत्र से बाद में होने वाला स्वर का (पर निर्देश किया स्वर) बलवान होता है। उसको 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इस सूत्र से धातु के (अगि-इसके) अकार का अनुदात्त स्वर है प्रत्यय का नहीं है। इसी प्रकार अग्नि-यहाँ पर अकार अनुदात्त, इकार उदात्त ये सिद्ध होते है। उस अम्-प्रत्यय के करने पर 'अनुदात्तौ सुप्पिता' इससे अनुदात्त स्वर है। वहाँ अग्नि अम् इस स्थिति में 'अमि पूर्वः' इससे उदात्त-इकार का और अनुदात्त-अकार के स्थान में पूर्वरूप एकादेश इकार में 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इससे उसका (इकार का) उदात्त स्वर है। ईड स्तुतौ इस धातु से लट लकार उत्तम पुरुष एकवचन में 'ईळे' यह रूप बनता है। यहाँ पर 'द्वयोश्चास्य स्वरयोर्मध्यमेत्य संपद्यते स डकारो लकारः' इस प्रातिशाख्य वचन से डकार के स्थान में लकार होता है। यहाँ अग्निम् ईळे इस स्थिति में 'तिङ्ङतिङः' इस सूत्र से सभी को अनुदात्त स्वर प्राप्त होता है। इसी प्रकार यहाँ उदात्त से (इकार से) पर अनुदात्त का (ईकार का) वर्तमान से प्रकृत सूत्र के द्वारा पर अनुदात्त के स्थान में स्वरित स्वर होता है। ईळे यहाँ पर स्वरित ईकार से परे ळे इसके एकार के अनुदात्त होने से 'स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्' इस सूत्र से एकार की एकश्रुति स्वर (उदात्त अनुदात्त स्वरित का तिरोधान) होता है। इस प्रकार अग्निमीळे यह रूप सिद्ध होता है।

विशेष- यहाँ पर 'अग्निम् ईळे' उदात्त अनुदात्त के (इकार-ईकार के) मध्य में मकार की विद्यमानता होने से कैसे इकार से परे ईकार को स्वरित स्वर होता है इस प्रकार कहा है, 'स्वरविधौ

व्यञ्जनमविद्यमानवद्' इस परिभाषा से यहाँ मकार के विद्यमान होने पर भी स्वर विधि के नहीं होने से उसको ग्रहण नहीं करते है, उससे यहाँ मकार से व्यवधान का अभाव होने से स्वरित का कोई तोड़ नहीं है।

प्रकृत सूत्र आठवें अध्याय के चौथे पाद में है, अत: तीन पाद में स्थित इस सूत्र से जिस स्वरित स्वर का नियम किया है, वह 'अनुदात्तं पदमेकं वर्जम्' (६.१.१५८) इस सवा सात्त अध्याय में स्थित सूत्र की दृष्टि से असिद्ध है। इसलिए ईळे यहाँ पर 'अनुदात्तं पदम् एकवर्जम्' यह सूत्र यहाँ पर नहीं लगता है। उस के द्वारा उदात्त स्वरित दोनों ही स्वर सुने जाते है।

9.2 नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्॥ (८.४.६७)

सूत्र का अर्थ - उदात्त परे है जिससे एवं स्वरित परे है जिससे ऐसे अनुदात्त को स्वरित नहीं होता है। गार्ग्य आदि मत को छोड़कर।

सूत्र की व्याख्या - छ प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह निषेध विधायक सूत्र है। इस सूत्र से स्वरित स्वर का निषेध होता है। न उदात्तस्वरितोदम् अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् ये सूत्र में आये हुए पदच्छेद है। तीन पद वाले इस सूत्र में न यह अव्ययपद है, उदात्तस्वरितोदयम् यह प्रथमा एकवचनान्त है, अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। उदात्तस्वरितोदयं न अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् यह सूत्र में आये पद का अन्वय है। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित:' इस सूत्र से अनुदात्तस्य इस षष्ठ्यन्त पद की और स्वरित: इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। उदात्तश्च स्वरितश्च उदात्तस्वरितौ उदयौ यस्माद् इति उदात्तस्वरितोदयम् इति बहुव्रीहिसमास:। उदय शब्द पर शब्द से समान अर्थ है ऐसा प्रातिशाख्यों में प्रसिद्ध है। उदात्त स्वर परे जिसका उस प्रकार के, अथवा स्वरित स्वर परे जिसका उस प्रकार के अनुदात्त स्वर का यह अर्थ है। न गार्ग्यकाश्यपगालवानाम् इति अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् इति नञ्समास:। गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में तो नहीं होता है यह अर्थ है। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित:' इस सूत्र का ही यहाँ निषेध है। उससे सूत्र का अर्थ होता है, उदात्त परे और स्वरित परे जो अनुदात्त, उसको 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित:' इस सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर नहीं होता है, गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में तो होता ही है।

उदाहरण- वोश्वा: क्वा १ भीर्शव: (ऋ.५।६१।१२) इति। प्र य आ रु: इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- यहाँ पर क्व शब्द से उत्तर 'किमोऽत्' इस सूत्रे से अत्-प्रत्यय करने पर तथा 'क्वाति' इससे किम: के स्थान में क्व- यह आदेश होने पर क्व-यह रूप सिद्ध होता है। अत्-प्रत्यय के तकार की इत्संज्ञक होने से 'तित्स्वरितम्' इस सूत्र से अत्-प्रत्ययान्त के क्व-शब्द का अकार का स्वरित स्वर है। युष्मद् के स्थान में वस् यह आदेश होने पर सकार को रुत्व होने पर 'अतो रोरप्लुतादप्लुते' इससे रु के उत्व होने पर 'आद्गुण:' इससे अकार-उकार के स्थान में गुण ओकार होकर के वो-यह रूप सिद्ध होता है। यहाँ वस्-यह आदेश 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' इसके अधिकार में होता है अत: वकार से उत्तर अकार अनुदात्त है। अशू-धातु से 'अशूप्रुषिलटिकनिखटिविशिभ्य: क्वन्' इस उणादि सूत्र से क्वन्-प्रत्यय करने पर बहुवचन प्रक्रिया में अश्वा: यह रूप सिद्ध होता है। क्वन्-प्रत्यय के नकार की इत् संज्ञा होती है, अत: क्वन् प्रत्ययान्त

टिप्पणियाँ

अश्व शब्द 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र के अनुसार से आद्युदात्त होता है। उसके बाद में 'वो अश्वा:' इस स्थिति में 'एङ: पदान्तादति' इस सूत्र से ओकार-अकार के स्थान में पूर्वरूप होने पर 'एकादेश उदात्तेनोदात्त:' इस सूत्र से वकार से उत्तर उकार उदात्त है, 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इस सूत्र के अनुसार से श्वा- यहाँ पर आकार अनुदात्त है। यहाँ वोऽश्वा: (व: अश्वा:) क्व इस वकार से उत्तर उकार उदात्त है, श्व से उत्तर आकार अनुदात्त तथा क्व से उत्तर अकार स्वरित है। इस प्रकार यहाँ उदात्त से परे अनुदात्त के होने से 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित:' इस पूर्वसूत्र से अनुदात्त को स्वरित स्वर की प्राप्ति होने पर उसका स्वरित परे होने से इस प्रकृत सूत्र से, पूर्व सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर का निषेध होता है। उससे जैसे पहले अनुदात्त स्वर था वैसे ही रहेगा।

प्र य आ रु: यहाँ पर ये यह यत् शब्द का प्रथमा बहुवचन फिट् स्वर से 'फिषोऽन्त उदात्त:' इस सूत्र से अन्त उदात्त है। 'अतेर्लिटि' प्रथमा बहुवचन में झि प्रत्यय करने पर आरु: यह रूप बनता है। यहाँ पर 'परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमा:' इससे उस्-प्रत्यय का नियम किया है और वह प्रत्यय स्वर से उदात्त है। आरु: यहाँ पर आकार का 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर:' इससे अनुदात्त स्वर है। इस प्रकार यहाँ यकार से उत्तर अकार उदात्त है, आकार अनुदात्त है, और रु: का उकार उदात्त है। उससे यहाँ उदात्त से परे अनुदात्त के होने से 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित:' इस पूर्व सूत्र से अनुदात्त के स्थान में स्वरित की प्राप्ति, उसका उदात्त परे होने पर प्रकृत सूत्र से पूर्व सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर का निषेध होता है। उससे जैसे पूर्व अनुदात्त स्वर था वैसे ही रहेगा। इससे प्र य आ रु: यह सिद्ध होता है।

गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में तो स्वरित का निषेध नहीं होता है, अपितु पूर्व सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर ही होता है।

विशेष- निश्चित रूप से 'अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणा:' (आदि मात्रा के कम होने पर भी पुत्र उत्सव के समान वैयाकरण उत्सव मनाते है) वह यहाँ पर कैसे उदय शब्द के प्रयोग उस स्थल में पर शब्द के प्रयोग से तो लघु होता तो यहाँ कहते है की उदय शब्द मङ्गलार्थ है। 'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि भवन्त्यायुष्मत्पुरुषाणि च' इस प्रकार वृद्धिरादैच् इस सूत्रभाष्य में पतञ्जलि ने कहा है। यहाँ उदय शब्द के प्रयोग से पाणिनि के द्वारा मङ्गल किया है, ये एक समाधान है।

दूसरा समाधान होता है की पर्यायवाची के ग्रहण करने में लघु गुरु की चिन्ता नहीं करते है इस नियम से यहाँ पर-पर्याय का उदय शब्द के ग्रहण करने में कोई हानि नहीं है।

पाठगत प्रश्न 9.1

1. उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित: इस सूत्र से किस स्वर का विधान है?
2. 'अग्निमीळे' यहाँ पर मकार से उत्तर ईकार का क्या स्वर है?
3. 'ईळे' यहाँ पर 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' यह सूत्र कैसे नहीं लगा?

4. उदात्त परे का, स्वरित परे का अनुदात्त का स्वरित निषेध किससे होता है?
5. किनके मत में उदात्त के परे स्वरित के परे अनुदात्त को स्वरित होता है?
6. 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' इस सूत्र में उदय शब्द का क्या अर्थ है?

9.3 एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ॥ (१.२.३३)

सूत्र का अर्थ - दूर से बुलाने में वाक्य एकश्रुति हो जाता है।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से वाक्यों की एकश्रुति होने का विधान है। एकश्रुतौ दूरात् सम्बुद्धौ ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। यहाँ पर दूरात् इसमें 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' इस सूत्र से पञ्चमी, सम्बुद्धौ यहाँ पर सप्तमी एकवचन है। और भी एकश्रुति यहाँ नपुंसक लिङ्ग प्रथमा एकवचनान्त पद वाक्य है प्रथमा एकवचनान्त पद का विशेषण है। अत: वहाँ नपुसंक लिङ्ग में प्रथमा एकवचन है। और इस प्रकार दूरात् सम्बुद्धौ वाक्यम् एकश्रुति ये यहाँ सूत्र में आये पदो का अन्वय है।

सूत्र में सम्बुद्धौ इस पद से 'एकवचनं सम्बुद्धि:' इस सूत्र से निर्दिष्ट पारिभाषिक सम्बुद्धि शब्द का बोध नहीं करना है, अपितु सम्बुद्धि:- भली प्रकार से किसी को बुलाना यह अर्थ लिया है। वैसे ही दूरात् इस पञ्चम्यन्त पद का यहाँ वर्तमान सम्बुद्धि से इस शब्द का यहाँ अन्वर्थ रूप से ग्रहण किया है। 'एकवचनं सम्बुद्धि:' इस सूत्र में निर्दिष्ट सम्बुद्धि शब्द का सम्बन्ध तो दूर से है, प्रकृत सूत्र स्थित पद से नहीं हो सकता है। अत: जिस वाक्य से सम्बोधन करते हैं, वह संबोधन है, अर्थात् सम्बुद्धि यह अर्थ यहाँ जानना चाहिए। और उस प्रकार के वाक्य का प्रकृत सूत्र से एकश्रुति होने का विधान है।

यहाँ एकश्रुति: इस पद में विग्रह क्या है? क्या 'एकस्य श्रुति: इति', अथवा एका चासौ श्रुति:' च इति। इस प्रश्न के होने पर कहा जाता है, एकश्रुति: इस पद में 'एका चासौ श्रुति: चेति' इस विग्रह में एकश्रुति है, एकश्रुति है इस वाक्य की इति एकश्रुति है। यहाँ श्रुति: यह वेद का पर्यायवाची शब्द नहीं है। यहाँ श्रवण अर्थ में श्रु-धातु से क्तिन्-प्रत्यय करने पर और विभक्ति कार्य में श्रुति: यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। और उसका सुनना यह अर्थ है। एक ही श्रुति अर्थात् एक श्रवण यह ही अर्थ है। जिस वाक्य में श्रवण का भेद नहीं है, अर्थात् जहाँ भिन्न श्रुति न हो वह ही वाक्य एकश्रुति कहलाता है। यहाँ किसका अभेद है? इस जिज्ञासा में कहते हैं, उदात्त आदि के स्वरो का। और इस प्रकार प्रकृत सूत्र से वाक्यों का उदात्त आदि स्वरों के अभेद का विधान है। उसके द्वारा सूत्र का अर्थ होता है - दूर से बुलाने के अर्थ में अर्थात् सम्बोधन वाक्य में एकश्रुति होती है।

उदाहरण - आगच्छ भो माणवक देवदत्त।

सूत्र अर्थ का समन्वय -यहा वाक्य आर्गच्छ भों माणवक देववत्त यह है। यह वाक्य जब दूर से किसी को सम्बोधन करने में प्रयोग करते हैं, तब प्रकृत सूत्र यहाँ उदात्त अनुदात्त आदि स्वर गत

भेद को दूर करने से तथा एक का ही उदात्त स्वर का विधान करने से आगच्छ भो माणवक देवदत्त यहाँ एकश्रुति में उदात्त स्वर का ही समावेश होता है।

यहाँ दूर से सम्बोधन होता है, तो ही प्रकृत सूत्र से उस सम्बोधन बोधक पद में एकश्रुति करने का विधान है, अन्यथा एक श्रुति नहीं होती है। जैसे - आगच्छ भों माणवक देवदत्त इस वाक्य को जब पास से ही बुलाने का विधान है, तब उदात्त अनुदात्त आदि स्वर वहाँ होते है।

विशेष- यहाँ दूरं नाम कितने दूर को इस प्रकार की जिज्ञासा स्वाभाविकता से होती ही है। उसका समाधान कहते है की जितने स्थान में स्वाभाविक प्रयत्न से उच्चारण करने पर सम्बोध्य मान व्यक्ति को नहीं सुनाई देता है, उस स्थान को ही दूर शब्द से ग्रहण करते है। इसी प्रकार 'दूराद्धूते च' इत्यादि सूत्र में भी जानना चाहिए।

9.4 यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु॥ (२.१.३४)

सूत्र का अर्थ - यज्ञकर्म में मन्त्र एकश्रुति हो जाते है, जप न्यूङ्ख साम को छोड़कर।

सूत्र की व्याख्या - संज्ञा-परिभाषा-विधि-नियम-अतिदेश-अधिकार छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इससे जप आदि से भिन्न प्रयोगो में वाक्यो के एकश्रुति होने का विधान है। यज्ञकर्मणि अजपन्यूङ्खसामसु यह सूत्र में आये पदच्छेद है। वहाँ यज्ञकर्मणि यह सप्तमी एकवचनान्त पद है, और अजपन्यूङ्खसामसु ये सप्तमी बहुवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ एकश्रुति इस नपुसंक लिङ्ग प्रथमा एकवचनान्त विधेय बोध पद की अनुवृति है। यज्ञ का कर्म यज्ञकर्म यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास है, उस यज्ञकर्म में। जप, न्यूङ्ख और साम जपन्यूङ्खसामानि, न जपन्यूङ्खसामानि अजपन्यूङ्खसामानि, उन अजपन्यूङ्खसामसु यहाँ द्वन्द्वगर्भ नञ्तत्पुरुष समास है। और इस प्रकार यहाँ पर अजपन्यूङ्खसामसु यज्ञकर्मणि एकश्रुति ये सूत्र में आया अन्वय है। और उससे यहाँ सूत्र का अर्थ होता है - यज्ञकर्म में उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरो की एकश्रुति होती है, जप न्यूङ्ख साम को छोड़कर। इस सूत्र का मन्त्र एकश्रुति होता है यह इसका सार है।

जप अनुकरण मन्त्र अथवा उपांशु प्रयोग, न्यूङ्ख सोलह प्रकार का ओंकार, उससे यहाँ मन्त्र उच्चारण का प्रकार विशेष जानना चाहिए। साम वाक्य विशेष में स्थित गीत है। वहाँ जप में, न्यूङ्ख में और साम में उदात्त अनुदात्त आदि स्वर युक्त मन्त्रों का उच्चारण है। यहाँ कहते हैं की यदि इनसे भिन्न यज्ञ सम्बन्धी कर्म में मन्त्रों का प्रयोग होता है, तो उनके मन्त्रों की एकश्रुति होती है। अर्थात् उन यज्ञकर्म में प्रयुङ्क्त मन्त्रों में उदात्त, अनुदात्त आदि भेद नहीं रहता है।

उदाहरण - अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वतो३म् (ऋ. ८.४४. १६)।

सूत्र अर्थ का समन्वय - उदाहरण रूप में दिया यह मन्त्र यज्ञकर्म में प्रयुङ्क्त है। अतः प्रकृत सूत्र से इस मन्त्र में एकश्रुति का विधान है। उससे यहाँ उदात्त आदि स्वरों का भेद नहीं दिखाई देता है। अतः यहाँ उदात्त स्वरो का ही समावेश दिखाई देता है।

टिप्पणियाँ

यहाँ यह जानना चाहिए की जब जप में, न्यूङ्ख में, और साम में मन्त्रों का प्रयोग होता है, तब प्रकृत सूत्र से यह एकश्रुति नहीं होती है। जैसे - यहाँ उदाहरण रूप से दिए मन्त्र का जब सपाठ में अर्थात् स्वाध्यायकाल में प्रयोग होता है, तब एकश्रुति नहीं होती है। इसी प्रकार जप में प्रयुङ्क्त मन्त्रों की भी एकश्रुति नहीं होती है। न्यूङ्ख सोलह प्रकार के ओकार, उनमे कुछ उदात्त और कुछ अनुदात्त है। अथ वहाँ पर भी प्रकृत सूत्र से एकश्रुति नहीं होती है। साम में भी वैसे ही एकाश्रुति नहीं होती है। जैसे वहाँ उदाहरण है - ए३ विश्वं समन्त्रिणं दह३ इति।

9.5 उच्चैस्तरां वा वषट्कारः॥ (१.२.३५)

सूत्र का अर्थ - यज्ञकर्म में वौषट्- शब्द उदाततर विकल्प से होता है पक्ष में एकश्रुति है।

सूत्र की व्याख्या - छ प्रकार के सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इससे वौषट्- शब्द की विकल्प से उदात्ततर, और एकश्रुतिका विधान है। उच्चैस्तरां वा वषट्कारः ये तीन पद यहाँ है। वहाँ उच्चैस्तराम् इति और वा इति ये दो अव्ययपद हैं, वषट्कारः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु इस सूत्र से यहाँ यज्ञकर्मणि इस सप्तमी एकवचनान्त पद की, एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ इस सूत्र से एकश्रुति इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। उच्चैस्तराम् इसका अर्थ उदात्ततर है। स्वरित स्वर से यदि अनुदात्त स्वर होता है, तब स्वरित स्वर का आधा भाग उदात्ततर स्वर विशिष्ट होता है। वषट्कार- इस शब्द से यहाँ वौषट् इस अव्यय का ग्रहण है। और इस प्रकार यहाँ यज्ञकर्मणि वषट्कारः उच्चैस्तराम् एकश्रुतिः वा ये सूत्र में आये पद अन्वय होते है। और उससे यहाँ सूत्र का अर्थ होता है - यज्ञकर्म में वषट्कारः अर्थात् वौषट्- शब्द एकश्रुति उदात्ततर विकल्प से होता है।

यहाँ वषट्कारः इसमें कार शब्द का कैसे ग्रहण किया है इस विषय में अनेक मत हैं। यहाँ कार शब्द से वौषट् इस अव्यय का ग्रहण किया है ऐसा कुछ का मत है। वौषट्- शब्द से अन्य शब्दों का भी जैसे विकल्प से उदात्ततर और एकश्रुति हो उसके लिए कार शब्द का ग्रहण है ऐसा कुछ मत है। और इनके मत के अनुसार 'अस्तु श्रौषट्' यहाँ पर भी श्रौषट्- शब्द उदात्ततर स्वर विशिष्ट होता है। और अन्यो के मत से यहाँ कार ग्रहण अवर्ण से भी कार प्रत्यय होता है, यह इसका ज्ञापक है, इनके मत के अनुसार ही एवकार इत्यादि पद सिद्ध होते है। और अन्यों के मत से पाणिनि के सूत्र विचित्र होते हैं इसको बताने के लिए यहाँ कार शब्द का ग्रहण किया है। इस कारण से ही पाणिनीय सूत्रों में कही पर कम अक्षरों की प्रधानता होती है, और कही पर ज्ञान लाघव प्रधान होता है। और यहाँ वषट्कार वौषट् इस शब्द में निरूढ यह यहाँ प्रधान रूप से जानना चाहिए।

उदाहरण - सोमस्याग्ने वीहि वौ३षट्। सोमस्याग्ने वीहि३ वौ३षट् (ऐतरेय. ३.५.४.६)।

सूत्र अर्थ का समन्वय -उदाहरण से दिया यह मन्त्र यज्ञकर्म में प्रयुङ्क्त है। अतः वहाँ वर्तमान वौषट्-शब्द विकल्प से उदात्ततर होता है, और उसके अभाव पक्ष में एकश्रुति होती है।

विशेष - स्वरित स्वर से यदि अनुदात्त स्वर होता है, तब स्वरित स्वर का आधा भाग उदात्ततर स्वर विशिष्ट होता है यह तो सभी को ज्ञात ही है, परन्तु यहाँ विधीयमान उदात्ततर स्वर का उस

समय क्या स्वरूप है इस जिज्ञासा में कहते है - उच्चैः इससे उदात्त का ग्रहण करते हैं, यह उदात्त है, यह उदात्त है, यह इन दोनों में उससे अधिक उदात्त है उच्चैस्तराम् अर्थात् उदात्ततर है। वैसे ही उदात्त स्वर का जिस स्थान से उच्चारण करते हैं, उस उच्चतर स्थान से भी जब किसी स्वर का उच्चारण करते है, तब वह स्वर उदात्ततर है ऐसा कहलाता है। और उस प्रकार के उदात्ततर का ही यहाँ प्रकृत सूत्र से विकल्प का विधान है।

9.6 विभाषा छन्दसि॥ (१।२।३६)

सूत्र का अर्थ - वेद विषय में तीनो स्वरों को विकल्प से एकश्रुति हो जाती है।

सूत्र की व्याख्या - संज्ञा-परिभाषा-विधि-नियम-अतिदेश-अधिकार छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस छन्द में अर्थात् वेद में विकल्प से एकश्रुति का विधान है। इस सूत्र में विभाषा छन्दसि ये दो पद हैं। वहाँ विभाषा यह अव्ययपद है, और 'छन्दसि' ये सप्तमी एकवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ पर 'एकश्रुति' इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति आती है। छन्दसि यहाँ पर विषय सप्तमी है, अतः छन्द विषय में ऐसा अर्थ प्राप्त होता है। यहाँ पर पदों का अन्वय - छन्दसि एकश्रुतिः विभाषा है। और उससे सूत्र का अर्थ इस प्रकार होता है - छन्द विषय में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों की एकश्रुति विकल्प से होती है। छन्द में मन्त्रों की उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों की विकल्प से एकश्रुति होती है यह इस सूत्र का निष्कर्ष निकला है। यहाँ एकश्रुतिः यह विशेषण पद नहीं है, अपितु विशेष्य पद ही है। अतः उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों की एक अभिन्न श्रुति होती है ऐसा अर्थ यहाँ पर समझना चाहिए।

यहाँ यह जानना चाहिए की 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से जप, न्यूङ्ख, साम से भिन्न यज्ञकर्म में एकश्रुति का विधान सम्भव होने से प्रकृत सूत्र का प्रयोग स्थलों में छन्दों में भी एकश्रुति सम्भव है, परन्तु यहाँ एकश्रुति विकल्प से चाहिए है, अतः सूत्र में विभाषा यह पद दिया है। और भी यहाँ सूत्र में 'वा' इस पद के प्रयोग करने से ही कार्य सम्भव होने पर, विभाषा इस पद के ग्रहण करने से यज्ञकर्मणि इस पद की निवृत्ति हो जाती है। वैसे ही यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु इस सूत्र से जप, न्यूङ्ख, साम से भिन्न यज्ञकर्म में ही नित्य एकश्रुति का विधान है, अतः जप, न्यूङ्ख, साम से भिन्न में, और यज्ञकर्म से भिन्न स्थलों में छन्द में भी विकल्प से एकश्रुति हो उसके लिए इस नये सूत्र की रचना की है। उस प्रकृत से सूत्र से यज्ञकर्म भिन्न में स्वाध्याय काल में भी वेदों में विकल्प से एकश्रुति होती है।

उदाहरण - 'इषे त्वोर्जे त्वा। इषे त्वोर्जे त्वा' (वाज. सं. १.१.१)। 'अग्न आया हि वीतये। अग्न आया हि वीतये' (ऋ. ६.१६.१०)

सूत्र अर्थ का समन्वय - 'इषे त्वोर्जे त्वा। अग्न आया हि वीतये' इन दोनों मन्त्रों का प्रयोग छन्द में देखते है। अतः प्रकृत सूत्र से इन दोनों मन्त्र में उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों का विकल्प से एकश्रुति होती है। तथा एकश्रुति होने पर इन दोनों मन्त्रों में सभी जगह एक ही उदात्त स्वर का विधान होने पर 'इषे त्वोर्जे त्वा। अग्न आया हि वीतये' ये दोनों वैकल्पिक प्रयोग सिद्ध होते हैं।

विशेष – यहाँ विभाषा इस पद के ग्रहण से यज्ञकर्मणि इसकी निवृत्ति भी होती है, अलग से छन्दसि इस पद के ग्रहण से छन्द रूप में, यज्ञकर्म में, विकल्प से एकश्रुति प्राप्त होती ही है, परन्तु यहाँ कोई दोष नहीं है, उस 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र में यज्ञकर्मणी यहाँ पर कर्म शब्द के ग्रहण से यज्ञकर्म में, छन्द में उस सूत्र से नित्य ही एकश्रुति होती, प्रकृत सूत्र से वैकल्पिक एकश्रुति नहीं होती है। इस प्रकृत सूत्र के वैकल्पिक होने से 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से वहाँ निषेध जप, न्यूङ्ख, और साम में प्रकृत सूत्र से विकल्प में एकश्रुति प्राप्त होती है। परन्तु उन जप आदि पदों का यहाँ ग्रहण के अभाव होने से और 'छन्दसि' इस पद का ही उल्लेख होने से उन जप आदि में प्रकृत सूत्र से वैकल्पिक एकश्रुति नहीं होती है।

पाठगत प्रश्न 9.2

1. वाक्य कब एकश्रुति होता है?
2. सम्बुद्धि क्या है?
3. जप क्या है?
4. न्यूङ्ख क्या?
5. वषट् कार से किस शब्द का ग्रहण होता है?
6. उच्चैस्तराम् इसका क्या अर्थ है?
7. विकल्प से एकश्रुति कहाँ पर होती है?

9.7 न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः॥ (१.२.३७)

सूत्र का अर्थ – सुब्रह्मण्या नामवाले निगद में 'यज्ञकर्मणि' इससे और 'विभाषा छन्दसि' इससे प्राप्त एकश्रुति नहीं होती है, किन्तु स्वरित को उदात्त हो जाता है।

सूत्र की व्याख्या – छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह निषेध सूत्र है, और विधि सूत्र भी है। इससे एकश्रुति का निषेध होता है, और स्वरित के स्थान में उदात्त होता है। 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तु उदात्तः ये सूत्र में आये पदच्छेद है। वहाँ 'न' और 'तु' ये अव्ययपद है, सुब्रह्मण्यायाम् यह सप्तमी एकवचनान्त पद है, स्वरितस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, और उदात्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ 'एकश्रुति' इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति आ रही है। यहाँ पर भी एकश्रुतिः यह विशेषण पद नहीं है, अपितु विशेष्य पद ही है। अतः उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों की एक अभिन्न श्रुति है यह उसका अर्थ है। यहाँ 'सुब्रह्मण्यायाम् एकश्रुतिः न, स्वरितस्य तु उदात्तः' यह सूत्र में आये पद का अन्वय है। सुब्रह्मण्या यह नाम विशेष है। और उससे सुब्रह्मण्या नाम वाले निगद को जानना चाहिए। अथ यह निगद क्या है? इस जिज्ञासा में कहते है निगद शब्द में वर्तमान गद् – धातु से अपाद बन्ध अर्थक है, नि पूर्वक से गद् – धातु

हमेशा गद्यते इस कर्म अर्थ में 'नौ गदनदपठस्वन:' इस सूत्र से अप् - प्रत्यय होता है। और उसके बाद प्रक्रिया कार्य में निगद: यह रूप सिद्ध होता है, यहाँ नि शब्द प्रकर्ष अर्थ में है। ऊँचे से अपादबन्ध यजुरात्मक जो मन्त्र वाक्य पढ़ते हैं, वह निगद होते है। उस निगद में पाद व्यवस्था नहीं है, और न ही अर्द्ध ऋचा की व्यवस्था है। इस प्रकार यहाँ सूत्र का अर्थ होता है - सुब्रह्मण्या नामवाले निगद में एकश्रुति नहीं होती है, और सूत्र से प्राप्त स्वरित के स्थान में उदात्त होता है।

उदाहरण - 'सुब्रह्मण्यो३म् इन्द्रागच्छ, ह रिव आगच्छ, मेधातिथेर्मेष वृ षणश्वस्य मेने गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै जार कौशिकब्राह्मण गौतमब्रुवाण श्व: सु त्यागमागच्छ मघवन्' (शत. ब्रा. ३.३.११९)।

सूत्र अर्थ का समन्वय - यहाँ उदाहरण मन्त्र का यज्ञकर्म में विहित होने से और छन्द में होने से 'यज्ञकर्मणि' इस और 'विभाषा छन्दसि' इन दो सूत्रों से प्राप्त एकश्रुति का प्रकृत सूत्र से निषेध प्राप्त होता है। और सुब्रह्मण्यो३म् यहाँ पर स्वरित के स्थान में उदात्त होने का उपदेश है। वैसे ही यत् प्रत्ययान्त सुब्रह्मण्य शब्द की स्त्रीत्व विवक्षा में वहाँ 'अजाद्यतष्टाप्' इस सूत्र से टाप् में टाप् के टकार की 'चुटू' इस सूत्र से टकार की और 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से पकार की इत् संज्ञा में और 'तस्य लोप:' इससे उन दोनों इत् संज्ञा के लोप होने पर और विभक्ति कार्य होने पर सुब्रह्मण्य यह रूप बनता है। सुब्रह्मण्य शब्द का यत् प्रत्ययान्त होने से और उस यत् प्रत्यय के तित् होने से 'तित् स्वरितम्' इस सूत्र से यहाँ अन्त्य अकार को स्वरित स्वर होता है। टाप् के आकार के स्थान में और सुब्रह्मण्य शब्द के अकार के स्थान में विहित आकार 'स्थानेऽन्तरतम:' इस सूत्र से अन्तरतम होने से स्वरित ही होता है। यहाँ टाप् प्रत्यय के पित् होने से 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' इस सूत्र से आकार का अनुदात्त स्वर विशिष्ट होने पर भी उन दोनों में स्वरित अनुदात्त के स्थान में स्वरित ही होता है, 'स्वरितानुदात्तसन्निपाते स्वरितम्' इस सूत्र से स्वरित के और अनुदात्त के स्थान में स्वरित का ही निर्देश होने से। अत: पर सुब्रह्मण्या + ओम् इस अवस्था में 'ओमाङोश्च' इससे पररूप ओंकार होने पर 'सुब्रह्मण्योम्' इस शब्द का निपात अन्त होने से और उस निपात का 'निपाता आद्युदात्ता:' इस सूत्र से आद्युदात्त होने से और वहाँ आकार के और ओकार के स्थान में विहित ओंकार का ही स्वरित स्वर होता है। इस प्रकार 'सुब्रह्मण्योम्' यहाँ पर अन्तिम ओंकार स्वरित सिद्ध है। और उसके बाद प्रकृत सूत्र से ओकार के स्थान में सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर के स्थान में उदात्त स्वर का विधान है।

विशेष - यहाँ सुब्रह्मण्या + ओम् इस अवस्था में स्वरित के और उदात्त के स्थान में 'एकादेश उदात्तेनोदात्त:' इस सूत्र से एकादेश में उदात्त स्वर नहीं होता है, उस सूत्र में 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोप:' इस सूत्र से अनुदात्तस्य इस पद की अनुवृति होने से उस सूत्र से उदात्त के और अनुदात्त के स्थान में ही उदात्त एकादेश होता है।

9.7.1 असावित्यन्तः॥ (वा. ६५१)

वार्तिक का अर्थ - उस निगद में ही प्रथमान्त का अन्त उदात्त होता है।

वार्तिक की व्याख्या - यह वार्तिक 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा हुआ है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। असौ इति अन्तः ये वार्तिक में आये पदच्छेद हैं। वहाँ असौ यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, इति यह अव्ययम है, और अन्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। 'सुब्रह्मण्योम् सुब्रह्मण्योम् सुब्रह्मण्योम् इन्द्रागच्छ हरिव आगच्छ ...... वासुदेवस्य पुत्रः पशुपतेः पौत्रो नारायणस्य नप्ता रामभद्रस्य पिता महेन्द्रस्य पौत्रः कमलाकस्य प्रपौत्रो देवदत्तो यजते सुत्याम्' - निगद में इस प्रकार का विधान होने से जाना जाता है की मन्त्र में यजमान के नाम प्रथमान्त से प्रयोग करने चाहिए, और उससे पूर्व पुरूषों के नाम षष्ठ्यन्त से प्रयोग करने चाहिए। यहाँ वार्तिक में 'असौ' इस पद से उस यजमान का ही प्रथमान्त नामवाचक पद को ग्रहण किया है। अथ इस वार्तिक से उस यजमान नामवाचक के प्रथमान्त पद के अन्त का उदात्त स्वर करने का नियम है।

उदाहरण - गार्ग्यो यजते।

वार्तक अर्थ का समन्वय - गार्ग्यः यहाँ पर 'गर्गादिभ्यो यञ्' इस सूत्र से यञ् प्रत्यय का विधान है। और उस यञ्प्रत्यय का ञित होने से गार्ग्य शब्द का 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आद्युदात्त की प्राप्ति में प्रकृत वार्तिक से यहाँ अन्त के उदात्त स्वर का विधान किया है।

9.7.2 अमुष्येत्यन्तः॥ (वा. ६५२)

वार्तिक का अर्थ - षष्ठ्यन्त का भी अन्त उदात्त होता है।

वार्तिक की व्याख्या - यह वार्तिक 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा गया है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। यहाँ अमुष्य इति अन्तः ये वार्तिक में आये पदच्छेद है। यहाँ अमुष्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, इति यह अव्यय है, अन्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। यहाँ पर भी 'वासुदेवस्य पुत्रः पशुपतेः पौत्रो नारायणस्य नप्ता रामभद्रस्य पिता महेन्द्रस्य पौत्रः कमलाकस्य प्रपौत्रो देवदत्तो यजते सुत्याम्' - इस रूप से मन्त्र में षष्ठ्यन्त से विहित पद का अमुष्य इस पद से ग्रहण किया है। अतः इस वार्तिक से उस षष्ठ्यन्त से विहित पद के अन्त को उदात्त स्वर का विधान है।

यहाँ यह जानना चाहिए की स्यान्त के विना अन्य षष्ठ्यन्त पदो की यहाँ विवक्षा है। यहाँ स्यान्त षष्ठ्यन्त का तोड़ा हुआ पद है, 'स्यान्तस्योपोत्तमं च' इस वार्तिक में 'स्यान्तस्य' इस पद ग्रहण से।

उदाहरण - दाक्षेः पिता यजते।

सूत्र अर्थ का समन्वय - दाक्षेः यहाँ पर दाक्षि - शब्द का षष्ठी एकवचन का रूप है। दक्ष शब्द से 'अत इञ्' इस सूत्र से इच्ञ्प्रत्यय करने पर इञ्प्रत्यय के ञकार की 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से इत् संज्ञा करने पर 'तस्य लोपः' इस सूत्र से उस ञकार का लोप होने पर और प्रक्रिया कार्य में दाक्षेः यह रूप सिद्ध होता है। यहाँ इञ्प्रत्यय के ञित्त्वाद होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आद्युदात्त की प्राप्ति में प्रकृत वार्तिक से यहाँ अन्त को उदात्त स्वर करने का विधान है।

9.7.3 स्यान्तस्योपोत्तमं च॥ (वा. ६५३)

वार्तिक का अर्थ - स्यान्त के और उपोत्तम के अन्त्य को उदात्त स्वर होता है।

वार्तिक की व्याख्या - यह वार्तिक 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा गया है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। स्यान्तस्य उपोत्तमं च ये वार्तिक में आये पदच्छेद है। वहाँ स्यान्तस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, उपोत्तमम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, च यह अव्ययपद है। यहाँ स्यान्त पद से निगद में षष्ठ्यन्त से प्रयुज्यमान स्यान्त पदों का ग्रहण है। और इस प्रकार प्रकृत वार्तिक से उस पद के ही और उपोत्तम अर्थात् अन्त्य से पूर्व अन्त्य को उदात्त स्वर का विधान है। यहाँ चकार से अन्तः इस पद की अनुवृति आ रही है। उस प्रकृत वार्तिक से स्यान्त पद के अन्त्य का, और अन्त्य से पूर्व का उदात्त स्वर करने का विधान है।

उदाहरण - गार्ग्यस्य पिता यजते।

वार्तिक अर्थ का समन्वय - गार्ग्यस्य यहाँ पर गार्ग्यस्य यह स्यान्त पद है, उससे यहाँ ग्य - इस उपोत्तम अकार का और स्य - यहाँ अकार का प्रकृत वार्तिक से उदात्त स्वर का विधान है।

9.7.4 वा नामधेयस्य॥ (वा. ६५४)

वार्तिक का अर्थ - स्यान्त नामधेय का उपोत्तम उदात्त विकल्प से होता है।

वार्तिक की व्याख्या - यह वार्तिक भी 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा गया है। इससे विकल्प से उदात्त स्वर का विधान है। यह दो पद वाला वार्तिक है। यहाँ वा यह अव्ययपद है, और नामधेयस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है। 'स्यान्तस्योपोत्तमं च' इस वार्तिक से यहाँ स्यान्तस्य इस षष्ठी एकवचनान्त पद, उपोत्तमम् इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। स्यान्तस्य यह नामधेय इस पद का विशेषण है। यहाँ नामधेयस्य इस पद से निगद में षष्ठ्यन्त से प्रयोग किये गये नामवाचक स्यान्त पदो का ग्रहण करते हैं। अतः प्रकृत वार्तिक से उस नामवाचक स्यान्त पद के उपोत्तमस्य अर्थात् अन्त्य से पूर्व का उदात्त स्वर करने का विधान है। यहाँ वा इस पदग्रहण से वह उदात्त स्वर विकल्प से होता है। इस वार्तिक से जिस पक्ष में उपोत्तम के उदात्त स्वर का अभाव है उस पक्ष में स्यान्त के अन्त का उदात्त स्वर होता है। यह भी अन्त स्थानीय उदात्त स्वर इस वार्तिक से ही होता है।

उदाहरण - देवदत्तस्य पिता यजते।

वार्तिक अर्थ का समन्वय - देवदत्तस्य यह नामवाचक पद है, किन्तु यहाँ यह पद स्यान्त है। अतः प्रकृत वार्तिक से यहाँ नामवाचक देवदत्तस्य इस पद के उपोत्तमस्य अर्थात् अन्त्य से पूर्व का विकल्प से उदात्त स्वर होता है। उसके अभाव पक्ष में अन्तस्य इसके स्य - इसके अकार को उदात्त स्वर होता है।

पाठगत प्रश्न 9.3

1. विभाषा छन्दसि इस सूत्र में विभाषा इस पद का ग्रहण कैसे किया है?
2. निगद क्या है?
3. निगद में यजमान के नामवाचक प्रातिपदिक में कौन सी विभक्ति होती है?
4. अमुष्येत्यन्तः इस वार्तिक से कैसे स्यान्तस्य षष्ठ्यन्त पद का अन्त उदात्त नहीं होता है?
5. उपोत्तमं नाम क्या है?

9.8 देवब्रह्मणोरनुदात्तः॥ (१.२.३८)

सूत्र का अर्थ– देव ब्रह्मन् शब्दों को स्वरित के स्थान में अनुदात्त होता है, सुब्रह्मण्या निगद में।

सूत्र की व्याख्या – छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। देवब्रह्मणोः अनुदात्तः ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। वहाँ देवब्रह्मणोः ये सप्तमी द्विवचनान्त पद है। और अनुदात्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। पूर्व 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र से स्वरितस्य इस षष्ठ्यन्त तथा सुब्रह्मण्यायाम् इस सप्तम्यन्त पद की यहाँ अनुवृति है। सुब्रह्मण्यायां देवब्रह्मणोः स्वरितस्य अनुदात्तः यह पद का अन्वय है। देवब्रह्मणोः यहाँ पर 'देवश्च ब्रह्मा च इत्यनयोः द्वन्द्व समास में 'देवब्रह्माणौ, तयोः देवब्रह्मणोः। इस देव शब्द में, ब्रह्मन् शब्द मे परे इस अर्थ में है। अनुदात्तः यह प्रथमान्त विधीयमान पद है। सुब्रह्मण्यायाम् इसके सुब्रह्मण्य नाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में इस अर्थ में। इस प्रकार सूत्र अर्थ होता है – सुब्रह्मण्य नाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में देव ब्रह्मन् शब्द के स्वरित के स्थान में अनुदात्त स्वर होता है। 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र से उदात्त प्राप्ति प्रकृत सूत्र से उसको अनुदात्त स्वर होता है ऐसा जानना चाहिए।

उदाहरण– देवा ब्रह्माण आगच्छत् इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय – सुब्रह्मण्यनाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में देवशब्द तथा ब्रह्मण्-शब्द का प्रयोग है। अतः देवा ब्रह्माण आगच्छत् इस उदाहरण में देवा यहाँ पर वकार से उत्तर आकार का तथा ब्रह्माण यहाँ ह्मा से उत्तर आकार का 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इससे उदात्त की प्राप्ति है इस प्रकृत सूत्र से उसको अनुदात्त स्वर का विधान है।

9.9 स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम्॥ (१.२.३९)

सूत्र का अर्थ– स्वरित से उत्तर संहिता विषय में अनुदातों को एकश्रुति होती है।

सूत्र की व्याख्या – छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। वहाँ स्वरिताद् यह पञ्चमी एकवचनान्त पद है, संहितायाम यह सप्तमी एकवचनान्त तथा अनुदात्तानाम यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ एकश्रुतिः इस

एकवचनान्त पद की अनुवृति आती है। स्वरिताद् यह पञ्चम्यन्त पद है, अत: तस्मादित्युत्तरस्य इस परिभाषा से स्वरित से परे इस अर्थ को जानना चाहिए। एकश्रुति: यह प्रथमान्त पद है, अत: उसका विधायक पद है। अनुदातों का यहाँ जाति में बहुवचन है। उससे एक दो और बहुतों की विधि समझनी चाहिए। अत: अनुदात्तानाम् इसका अर्थ है, अनुदात्त का, दो अनुदातों का, अथवा अनेक अनुदात्तों का। संहितायाम् यहाँ पर विषय सप्तमी है। 'एका श्रुति: यस्य तत् एकश्रुति' इति बहुव्रीहि समास है। श्रवण को श्रुति कहते है। दूर से बुलाने पर, उदात्त-अनुदात्त-स्वरित स्वरों की एकश्रुति होती है। जहाँ उदात्त अनुदात्त स्वरित के पृथक् कोई भी स्वर सुनाई नहीं देता है, वह एकश्रुति स्वर है। संहितायां स्वरिताद् अनुदात्तानाम् एकश्रुति: स्याद ये सूत्र में आये पदों का अन्वय है। सम्पूर्ण रूप से सूत्र का अर्थ होता है - संहिता के होने पर स्वरित स्वर से परे विद्यमान अनुदात्त स्वरों की एकश्रुति होती है, अर्थात् कोई भी विशिष्ट स्वर सुनाई नहीं देता है यह भाव है।

उदाहरण- इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- इस उदाहरण में 'मे' इस शब्द में स्वरित स्वर है। उससे परे गङ्गे-यमुने इत्यादि शब्द है। और ये अनुदात्त है। स्वरित स्वर से परे विद्यमान होने से अनुदातो की उन गङ्गे यमुने इत्यादि शब्दों की एकश्रुति सिद्ध होती है।

9.10 उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर:॥ (१.२.४०)

सूत्र का अर्थ- उदात्तस्वरितौ परौ यस्मात्तस्य अनुदात्तस्य सन्नतर: स्यात्।

सूत्र की व्याख्या - छ: प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद विद्यमान है। वहाँ 'उदात्तस्वरितपरस्य' यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, सन्नतर: यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, किन्तु अनुदात्तानाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। अनुदात्त ग्रहण की अनुवृति आती है। उदात्तस्वरितपरस्य यहाँ पर 'पर' शब्द का प्रत्येक के साथ अभिसम्बन्ध है। उदात्त परे है जिससे वह उदात्तपर:, स्वरित परे है जिससे वह स्वरितपर:। उदात्त परे और स्वरित परे अनुदात्तके स्थान में अनुदात्तर आदेश हो जाता है। सन्न शब्द का नीचे के इस अर्थ में प्रयोग है। अत: सन्नतर इसका अर्थ अनुदात्ततर है। और इस प्रकार सूत्र का अर्थ होता है - उदात्त स्वर और स्वरित स्वर जब परे रहते है, तब पूर्व के अनुदात्त स्वर को अनुदात्तर आदेश होता है।

उदाहरण- इमं मे गङ्गे सरस्वति शुतुद्रि व्यचक्षयत्स्व:, माणवक जटिलकाध्यापक क्व गमिष्यसि इति च।

सूत्र अर्थ का समन्वय- वेद में सम्बोधन पद को आमन्त्रित शब्द से कहते हैं। और अनुदात्त स्वर निघात शब्द को कहते है। यहाँ 'मे' शब्दको आश्रित करके सरस्वति यहाँ पर आमन्त्रित निघात है। शुतुद्रि शब्द का तो पाद आदि होने से निघात नहीं होता है। पाद के आदि में विद्यमान होने से, आमन्त्रित होने से षष्ठी से और आमन्त्रित के स्थान से शुतुद्रि शब्द के शकार से उत्तर उकार उदात्त होता है, अत: उसके परे होने पर पूर्व सरस्वति शब्द की इकार के स्थान से अनुदात्त के स्थान में अनुदात्तर आदेश होता है। व्यचक्षयत्स्व: यहाँ पर 'वि-इति' उपसर्ग होने से आद्युदात्त है।

वि इससे परे अचक्षयत्स्व इस तिङन्त की तिङ् इससे निघात है। स्व: यहाँ 'न्यङ्स्वरौ स्वरितौ' इससे स्वरित है। उस स्वरित स्वर परे होने पर ऊपर के सूत्र से यकार उत्तर अकार को सन्नतर (अनुदात्ततर) स्वर सिद्ध होती है।

द्वितीय उदाहरण में क्व इस शब्द में स्वरित स्वर विद्यमान है। अत: उससे परे होने पर अध्यापक शब्द के ककार से उत्तर अकार अनुदात्त है, उसका इस सूत्र से सन्नतर आदेश होता है।

9.11 अनुदात्तं च॥ (८.१.३)

सूत्र का अर्थ- जिसकी आम्रेडित संज्ञा होती है वह अनुदात्त भी होता है।।

सूत्र की व्याख्या - छ: प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद विद्यमान है। वहाँ अनुदात्तम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। च यह अव्ययपद है। पूर्व से 'तस्य परमाम्रेडितम्' इस सूत्र में आम्रेडित संज्ञा करते है। 'सर्वस्य द्वे' इस अधिकार में यह सूत्र है। इस अधिकार में कहे हुए शब्दों को द्वित्व होता है। द्वित्व करने पर उन दोनों शब्दों के मध्य में जो दूसरा शब्द है, उसकी 'तस्य परमाम्रेडितम्' इस सूत्र से आम्रेडितसंज्ञा होती है। आम्रेडित का उदाहरण है- चौर चौर, वृषल वृषल, दस्यो दस्यो घातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा इत्यादि। उस आम्रेडित संज्ञक की इस सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है। और इस प्रकार सम्पूर्ण सूत्र का अर्थ होता है की दो कहे हुए शब्दों के मध्य में जो पर है, उसको अनुदात्त हो।

उदाहरण- दिवेदिवे इति।।

सूत्र अर्थ का समन्वय- इस उदाहरण में दिवे दिवे यहाँ पर दो बार दिवे-शब्द का प्रयोग है। अत: दूसरे दिवे-शब्द का इस सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है।

विशेष- प्रकृति स्वर में प्राप्त पर के स्थान में अनुदात्त कहा है। अनुदात्त शब्द यहाँ पर शास्त्रीय अनुदात्त नहीं है, तो क्या है? इसका यहाँ अन्वर्थ ही ग्रहण किया है। उसका विग्रह होता है अविद्यमान उदात्त को अनुदात्त को। शास्त्रीय अनुदात्त की यदि विवक्षा होती तो वहाँ सम्बन्ध अर्थ में षष्ठी का उच्चारण होता है यह विशेष है।

पाठगत प्रश्न 9.4

1. 'सुब्रह्मण्यायाम्' इसका क्या अर्थ है?
2. 'देवब्रह्मणोरनुदात्त:' इस सूत्र का क्या अर्थ है?
3. 'सुब्रह्मण्यायाम् उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर:' इस सूत्र में विधीयमान एकश्रुति स्वर क्या है?
4. 'स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम्' इस सूत्र का क्या अर्थ है?

5. सन्नतर नाम क्या है?
6. वेद में आमन्त्रित शब्द का अर्थ क्या है?
7. 'उदात्तस्वरितपरस्य' का विग्रह लिखिए।
8. 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर:' इस सूत्र का अर्थ लिखिए।
9. 'अनुदात्तं च' इस सूत्र का अर्थ लिखिए।
10. 'अनुदात्तं च' इस सूत्र में अनुदात्त शब्द का अर्थ क्या है?

पाठ का सार

उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित होता है, परन्तु यदि अनुदात्त के परे उदात्त अथवा स्वरित हो तो पूर्व अनुदात्त के स्थान में स्वरित नहीं होता है। गार्ग्य आदि ऋषियों के मत में तो स्वरित ही होता है उसका निषेध नहीं होता है। दूर से सम्बोधन वाक्य की एकश्रुति का विधान है। यहाँ एकश्रुति विषय में विग्रह सहित उदाहरण का भी वर्णन है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों के लोप को ही एकश्रुति कहते हैं। 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से जप, न्यूङ्ख और साम से भिन्न यज्ञकर्म के मन्त्र में एकश्रुति होती है। जप अनुकरण मन्त्र को कहते है, न्यूङ्खा नाम सोलह प्रकार के ओकार को कहते है, और साम वाक्य विशेषस्थ गीत को कहते है। यहाँ वषट्कार: इस पद से वौषट् इस अव्ययपद को ग्रहण करते है। यहाँ कार शब्द के ग्रहण करने के विषय में अन्य भी अनेक मत है। 'विभाषा छन्दसि' इस सूत्र से छन्द में विकल्प से एकश्रुति का विधान है। 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्त:' इस सूत्र से सुब्रह्मण्य नामवाले निगद में 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से विभाषा छन्दसि इस सूत्र से प्राप्त एकश्रुति का निषेध होता, और स्वरित स्वर के स्थान में उदात्त स्वर का विधान है। जिस मन्त्र वाक्य में पाद व्यवस्था नहीं होती है, उसे निगद कहते है। सुब्रह्मण्या+ओम् इत्यादि स्थलों में स्वरित स्वर का और उदात्त स्वर के स्थान में एकादेश उदात्तेनोदात्त: इस सूत्र से एकादेश में उदात्त स्वर नहीं होता है, उस सूत्र में अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोप: इस सूत्र से अनुदात्तस्य इस पद की अनुवृति आती है, किन्तु उस एकादेश विधायक सूत्र से उदात्त अनुदात्त के स्थान में ही एकादेश उदात्त होता है, उदात्त स्वरित के स्थान में एकादेश नहीं होता है। असावित्यन्त: इस वार्तिक से निगद में प्रथमान्त पद का अन्त उदात्त होता है। स्यान्तस्योपोत्तमं च इस वार्तिक से स्यान्त पद के अन्त के और अन्त से पूर्व उदात्त स्वर होता है। वा नामधेयस्य इस सूत्र से नामवाचक स्यान्त पद के अन्त से पूर्व को विकल्प से उदात्त स्वर होता है, जिस पक्ष में वहाँ अन्त से पूर्व उदात्त नहीं होता है, वहाँ अन्त के स्थान में उदात्त स्वर होता है। देव ब्रह्मण शब्दों के स्वरित के स्थान में अनुदात्त हो। किन्तु स्वरित से परे अनुदात्त की एकश्रुति हो। दोबार कहे हुए शब्दों में बाद वाला आम्रेडित संज्ञक शब्द अनुदात्त होता है।

टिप्पणियाँ

पाठांत प्रश्न

1. 'अग्निमींळे' इस रूप को स्वर सहित सिद्ध कीजिए।
2. 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. 'एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. 'उच्चौस्तरां वा वषट्कार:' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
6. 'विभाषा छन्दसि' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
7. 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्त:' इस सूत्र का एक उदाहरण लिखिए।
8. 'असावित्यन्त:' इस वार्तिक की व्याख्या कीजिए।
9. 'देवब्रह्मणोरनुदात्त:' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
10. 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर:' इस सूत्र के उदाहरण के प्रकारों को लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

9.1

1. स्वरित स्वर का विधान है।
2. स्वरित स्वर।
3. 'उदात्तानुदात्तस्य स्वरित:' इसके असिद्ध होने से।
4. 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' इससे।
5. गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में।
6. पर इस अर्थ में।

9.2

1. दूर से संबोधन करने वाले वाक्य में एकश्रुति होती है।
2. संबोधन करता है, जिस वाक्य से वह सम्बुद्धि है।
3. अनुकरण मन्त्र अथवा उपांशु प्रयोग जप है।
4. न्यूङ्ख नाम सोलह ओकार का है।
5. वौषट् - यह शब्द है।

6. अतितर उदात्त है।
7. छन्द में।

9.3

1. यज्ञकर्मणि इस पद की निवृत्ति के लिए।
2. उच्चै अपाद बन्ध यजुरात्मक है क्योकि जो मन्त्र वाक्य पढ़ते है वे निगद होते है।
3. प्रथमा विभक्ति।
4. 'स्यान्तस्योपोत्तमं च' इस वार्तिक से स्यान्तस्य इस पद ग्रहण से।
5. अन्त्य से पूर्व।

9.4

1. सुब्रह्मण्य नाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में यह अर्थ है।
2. देव ब्रह्मण शब्द में स्वरित के स्थान में अनुदात्त हो यह अर्थ है।
3. जहाँ उदात्त, अनुदात्त, स्वरित का पृथक् से कोई भी स्वर सुनाई नहीं देता है वह एकश्रुति स्वर है।
4. स्वरित से परे अनुदात्तों की संहिता में या एकश्रुति हो यह अर्थ है।
5. अनुदात्ततर है।
6. सम्बोधन पद को।
7. उदात्त परे है जिससे वह उदात्तपरः, स्वरित परे है जिससे वह स्वरितपरः।
8. उदात्त स्वरित के परे जिससे उस अनुदात्त के स्थान में अनुदात्तर हो।
9. दो बार कहे हुए शब्दों के पर रूप को अनुदात्त हो।।
10. अविद्यमान उदात्त को, अनुदात्त को।

।। नौवाँ पाठ समाप्त।।

वेद कथाङ्क (कल्याण-गीताप्रेस)

वेद-मन्त्रोंके उच्चारण-प्रकार—प्रकृतिपाठ एवं विकृतिपाठ

अपौरुषेय एवं ईश्वरोक्त वाणी वेद-शब्दराशिको सुरक्षित तथा पूर्णतः अपरिवर्तितरूपमें मानवसमाजके कल्याणके लिये अक्षुण्ण रखनेहेतु ऋषियोंने इसकी पाठ-विधियोंका उपदेश किया है। ये सभी पाठ ऋषियोंके द्वारा दृष्ट हैं, अतः अपौरुषेय हैं। इनमें तीन प्रकृतिपाठ तथा आठ विकृतिपाठ हैं। संहितापाठ, पदपाठ तथा क्रमपाठ—ये तीन प्रकृतिपाठ हैं। आठ विकृतिपाठोंके नाम हैं—जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड,रथ और घन। इन पाठोंके द्वारा विविध प्रकारसे अभ्यास किये जानेके कारण वेदको आम्नाय (**'आसमन्तात् म्नायते अभ्यस्यते'**) कहा गया है। इन विविध पाठोंकी महिमाके कारण ही आज भी मूल वेदशब्दराशि एक भी वर्ण अथवा मात्राका विपर्यय न होते हुए हमको उपलब्ध हो रही है। सम्पूर्ण विश्वमें ऐसी कोई अविच्छिन्न उच्चारण-परम्परा दृष्टिगोचर नहीं होती। यह वैदिक शब्दराशिका वैशिष्ट्य है।

वेदके संहितापाठका जिन ऋषियोंने दर्शन किया, उनका स्मरण विनियोग आदिमें किया जाता है। वस्तुतः सर्वप्रथम परमेश्वरने ही वेदशब्द-संहिताका दर्शन किया तथा उन्होंने इसका उपदेश किया। इसी प्रकार पदपाठके आद्य द्रष्टा रावण और क्रमपाठके बाभ्रव्य ऋषि हैं। मधुशिक्षाका वचन है—

भगवान् संहितां प्राह पदपाठं तु रावणः।
बाभ्रव्यर्षिः क्रमं प्राह जटां व्याडिरवोचत्॥

प्रत्येक शाखाके पृथक् पदपाठके ऋषि भी उल्लिखित हैं, यथा—ऋग्वेदकी शाकलशाखाके शाकल्य, यजुर्वेदकी तैत्तिरीय शाखाके आत्रेय तथा सामवेदकी कौथुमशाखाके गार्ग्य ऋषि पदपाठके द्रष्टा हैं। इसी प्रकार प्रातिशाख्यमें

विकृतियोंके सम्बन्धमें भी श्लोक है—

जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः॥

इससे यह स्पष्ट होता है कि महर्षियोंने क्रमपाठ एवं विकृतिपाठोंका दर्शन करनेके अनन्तर उनका उपदेश किया। मधुशिक्षाके अनुसार जटापाठके ऋषि व्याडि, मालापाठके ऋषि वसिष्ठ, शिखापाठके ऋषि भृगु, रेखापाठके ऋषि अष्टावक्र, ध्वजापाठके ऋषि विश्वामित्र, दण्डपाठके ऋषि पराशर, रथपाठके ऋषि कश्यप तथा घनपाठके द्रष्टा ऋषि अत्रि हैं। इस प्रकार ये सभी पाठ ऋषिदृष्ट होनेके कारण अपौरुषेय हैं।

संहितापाठ तथा उसकी महिमा—'वर्णानामेकप्राण-योगः संहिता' (कात्यायन), **'परःसन्निकर्षः संहिता'** (पाणिनि), आदि सूत्रोंके द्वारा संहिताका स्वरूप बतलाया गया है। वेदवाणीका प्रथमपाठ जो गुरुओंकी परम्परासे अध्ययनीय है और जिसमें वर्णों तथा पदोंकी एकश्वासरूपता अर्थात् अत्यन्त सांनिध्यके लिये सम्प्रदायानुगत सन्धियों तथा अवसानों (निश्चित स्थलोंपर विराम)-से युक्त एवं उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित—इन तीन स्वरोंमें अपरिवर्तनीयतासे पठनीय वेदपाठको 'संहिता' कहते हैं। इसका स्वरूप है—

गुरुक्रमेणाध्येतव्यः ससन्धिः सावसानकः।
त्रिस्वरोऽपरिवर्त्यश्च पाठ आद्यस्तु संहिता॥

यह संहिता नामक वेदपाठ पुण्यप्रदा यमुना नदीका स्वरूप है तथा संहितापाठसे यमुनाके स्नानका पुण्य मिलता है—**'कालिन्दी संहिता श्रेया'**, (या० शि०)। संहितारूप वेदका पाठ सूर्यलोककी प्राप्ति कराता है—**'संहिता नयते सूर्यपदम्,** (या० शि०)। संहितापाठ पदपाठका मूल है।**'पदप्रकृतिः संहिता'** (यास्क), **'संहिता पदप्रकृतिः'** (दुर्गाचार्य) आदि वचनोंके आधारपर यह प्रथम प्रकृतिपाठ है। ऋषियोंने मन्त्रोंके संहितारूप वेदपाठका ही दर्शन किया और यज्ञ, देवता-स्तुति आदि कार्योंमें वेदके संहितापाठका प्रयोग किया जाता है। कहा भी गया है— **'आचार्याः सममिच्छन्ति पदच्छेदं तु पण्डिताः'**। संहिता प्रथम प्रकृतिपाठ है।

पदपाठ तथा उसकी महिमा—'अर्थः पदम्' (वा० प्रा०), **'सुप्तिङन्तं पदम्'** (पाणिनि) आदि सूत्रोंके द्वारा पदका स्वरूप बतलाया गया है। इसका तात्पर्य है कि किसी अर्थका बोध करानेके लिये पाणिनीय आदि व्याकरणके अनुसार **'सुप्-तिङ्'** आदि प्रत्ययोंसे युक्त वर्णात्मक इकाईको 'पद' कहते हैं। वेदके संहितापाठकी परम्पराके अनुसार स्वरवर्णोंकी सन्धिका विच्छेद करके वैदिक मन्त्रोंका सस्वर पाठ पदपाठ कहा जाता है। वेदमन्त्रोंका पदपाठ द्वितीय प्रकृतिपाठ माना जाता है। यद्यपि पदपाठका आधार संहितापाठ है, तथापि अग्रिम क्रमपाठका आधार (प्रकृति) पदपाठ होनेके कारण यह प्रकृतिपाठ है। स्वरके सम्बन्धके अनुसार पदके ग्यारह प्रकार होते हैं। शिक्षा-ग्रन्थोंमें कहा गया है—

'नव पदशय्याः एकादश पदभक्तयः'

वेदमन्त्रोंका पदपाठ पुण्यप्रदा सरस्वती देवनदीका स्वरूप है। पदपाठ करनेसे सरस्वतीके स्नानका फल प्राप्त होता है—**'पदमुक्ता सरस्वती,'** (या० शि०)। पदपाठका अध्ययन करनेवाला व्यक्ति चन्द्रलोककी प्राप्ति करता है—**'पदं च शशिनः पदम्'** (या० शि०)। विद्वज्जन अर्थज्ञानकी सुविधाके लिये पदपाठको विशेषरूपसे ग्रहण करते हैं। वेदमन्त्रोंके पदपाठसे आराध्य देवके गुणोंका गान किया जाता है।

तैत्तिरीय आदि अनेक शाखाओंमें संहिताके प्रत्येक पदका पदपाठमें साम्प्रदायिक उच्चारण है। ऋग्वेदमें भिन्न पदगर्भित पदोंमें अनानुपूर्वी संहिताको स्पष्ट पद-स्वरूप देकर पढ़ा जाता है। शुक्लयजुर्वेदकी शाखाओंमें प्रातिशाख्यके नियमोंके अनुसार एकाधिक बार आये हुए विशेष पदोंको पदपाठमें विलुप्त कर दिया जाता है। शास्त्रीय परिभाषामें ऐसे विलुप्त पदोंको गलत्पद तथा ऐसे स्थलके पाठको संक्रम कहा जाता है।

पदपाठमें प्रत्येक पदको अलग करनेके साथ यदि कोई पद दो पदोंके समाससे बना हो तो उसे माध्यन्दिनीय शाखामें 'इतिकरण' के साथ दोहरा करके स्पष्ट किया जाता है। प्रातिशाख्यके नियमोंके अनुसार कतिपय विभक्तियोंमें तथा वैदिक लोप, आगम, वर्णविकार, प्रकृतिभाव आदिमें भी 'इतिकरण' के साथ पदका मूल स्वरूप स्पष्ट किया जाता है। जैसे—**'सहस्रशीर्षेति सहस्रशीर्षा।'** इसे 'अवग्रह' कहते हैं।

पदपाठमें स्वरवर्णोंकी सन्धिका विच्छेद तथा अवग्रह आदि विशेष विधियोंके प्रभावसे यह पाठ संहितासे भी अधिक कठिन हो जाता है। इन नियमोंके कारण ही यह पदच्छेद नहीं है, किंतु पदपाठ कहा जाता है।

क्रमपाठ तथा उसकी महिमा— 'द्वे द्वे पदे सन्दधात्युत्तरेणोत्तरभावसानमपृक्तवर्जम्' (वा० प्रा०) आदि सूत्रोंके द्वारा क्रमपाठका स्वरूप बतलाया गया है। अपृक्त आदि विशेष स्थलोंको छोड़कर सामान्यतः दो-दो पदोंका सन्धियुक्त अवसानपर्यन्त सस्वर पाठ 'क्रमपाठ' कहलाता है। पाणिनिके धातुपाठके अनुसार एक-एक पैरको बढ़ाना क्रम है। उसी भावसे क्रमपाठमें भी एक-एक पदको आगे बढ़ाकर पढ़ते हैं। इस कारण इस पाठको क्रमपाठ कहा जाता है। क्रमपाठ यद्यपि पदपाठके आधारसे ही है, तथापि जटा आदि विकृतिपाठोंका मूल क्रमपाठ है। अतः आठों विकृतिपाठोंका प्रकृतिपाठ क्रमपाठ है तथा यह तृतीय प्रकृतिपाठ है।

ऐतरेय आरण्यक (३। १। ३) तथा ऋग्वेद प्रातिशाख्य वर्गद्वयवृत्तिके अनुसार अन्नकामनाकी पूर्तिके लिये संहितापाठ, स्वर्गकामनाकी पूर्तिके लिये पदपाठ तथा अन्न-स्वर्ग दोनों कामनाओंकी पूर्तिके लिये क्रमपाठका विधान है। वाराहपुराणमें कहा गया है कि संहितापाठसे दोगुना पुण्य, पदपाठसे तिगुना पुण्य तथा क्रमपाठसे एवं जटादि विकृतियोंके पाठसे छः गुना पुण्य प्राप्त होता है—

संहितापाठतः पुण्यं द्विगुणं पदपाठतः।
त्रिगुणं क्रमपाठेन जटापाठेन षड्गुणम्॥

आठ विकृतिपाठ और उनकी महिमा—मन्त्रात्मक वैदिक शब्दराशिकी अक्षुण्ण तथा निर्भ्रान्त परम्पराकी सुरक्षा इन जटा आदि आठ विकृतिपाठोंसे ही हो सकी है। इसलिये जटादि विकृतिपाठोंमें निरत विद्वानोंको 'पङ्क्तिपावन' माना गया है—

जटादिविकृतीनां ये पारायणपरायणाः।
महात्मानो द्विजश्रेष्ठास्ते ज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः॥

यद्यपि कुछ व्यक्ति इन वचनोंके आधारपर भी मात्र ऋग्वेदमें अष्टविकृतिपाठ होता है, यह कहते हैं; परंतु माध्यन्दिन आदि शाखाओंके अध्येता वैदिक विद्वानोंकी अत्यन्त प्राचीन अविच्छिन्न परम्परासे सभी विकृतिपाठोंका अध्ययनाध्यापन प्रचलित है। कात्यायनीय चरणव्यूह आदि ग्रन्थोंके (वारे शास्त्री प्रभृतिद्वारा सम्पादित) प्रामाणिक संस्करणोंमें विकृतियोंका उल्लेख होनेके कारण अन्य शाखाओंमें भी विकृतिपाठ करना अत्यन्त प्रामाणिक है। इसके लिये स्कन्दपुराणके ब्रह्मखण्डमें जगत्‌की आधारभूता वेदात्मिका गौ जटा-घन आदि विकृतियोंसे विभूषित है, यह उल्लेख है—

सर्वस्याधारभूताया वत्सधेनुस्त्रयीमयी।
अस्यां प्रतिष्ठितं विश्वं विश्वहेतुश्च या मता॥
ऋक्पृष्ठासौ यजुर्मध्या सामकुक्षिपयोधरा।
इष्टापूर्तविषाणा च साधुसूक्ततनूरुहा॥
शान्तिपुष्टि शकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता।
उपजीव्यमाना जगतां पदक्रमजटाघनैः॥

इसके द्वारा चतुर्वेदात्मिका त्रयीवाणी जटा-घन आदि विकृतिपाठोंसे प्राणियोंपर अनुग्रह करती है, यह स्पष्ट निर्देश है। विकृतिपाठ-सम्बन्धी इन वचनोंको वैदिक परम्परामें प्रामाणिक माना जाता है; क्योंकि वेदसम्मत स्मृतिवचनों तथा आचारोंका प्रामाण्य मीमांसा एवं धर्मशास्त्रमें सर्वांशतः माना गया है।

जटापाठ—इस प्रथम विकृतिपाठमें दो पदोंको अनुक्रम तथा संक्रम इस प्रकार तीन बार सन्धिपूर्वक अवसानरहित पढ़ा जाता है। जैसे—**'विष्णोः', कर्माणि विष्णोर्विष्णोः कर्माणि।'** इत्यादि। जटापाठ पञ्चसन्धियुक्त भी होता है। इसमें अनुक्रम, उत्क्रम, व्युत्क्रम, अभिक्रम तथा संक्रम—ये पाँच क्रम होते हैं। पदोंको संख्याके साथ प्रदर्शित करते हुए इसका स्वरूप इस प्रकार है—**'विष्णोः कर्माणि** (अनुक्रम), **कर्माणि, कर्माणि** (उत्क्रम), **कर्माणि विष्णोः** (व्युत्क्रम), **विष्णोर्विष्णोः** (अभिक्रम) और **विष्णोः कर्माणि** (संक्रम)।'

मालापाठ—इसके दो भेद हैं—पुष्पमाला और क्रममाला। अधिक प्रचलित पुष्पमालापाठमें जटाकी भाँति ही तीनों क्रम पढ़े जाते हैं, किंतु प्रत्येकके बीचमें विराम किया जाता है। जैसे—**'विष्णोः कर्माणि। कर्माणि विष्णोः। विष्णोः कर्माणि।'** इत्यादि।

शिखापाठ—जटापाठके त्रिविध क्रमोंके बाद एक आगेका पद ग्रहण करनेपर शिखापाठ हो जाता है।

जैसे— '**विष्णोः कर्माणि कर्माणि विष्णोर्विष्णोः कर्माणि पश्यत।**' इत्यादि।

रेखापाठ—इसमें आधी ऋचा अथवा सम्पूर्ण ऋचाके दो पदोंका क्रमपाठ, तीन पदोंका क्रमपाठ, चार पदोंका क्रमपाठ—इस प्रकार क्रमशः किया जाता है। इसी प्रकार व्युत्क्रममें भी करनेके बाद संक्रममें दो-दो पदोंका ही पाठ होता है। प्रत्येक क्रमके आरम्भमें एक पूर्ववर्तिपद छोड़ते हुए अवसानपूर्वक यह पाठ होता है। जैसे—

ओषधयः सं। समोषधयः। ओषधयः सं॥
सं वदन्ते सोमेन। सोमेन वदन्ते सं। सं वदन्ते॥
वदन्ते सोमेन सह राज्ञा। राज्ञा सह सोमेन वदन्ते।
वदन्ते सोमेन॥ सोमेन सह। सह राज्ञा। इत्यादि।

ध्वजपाठ—इसके अन्तर्गत प्रथम दो पदोंका क्रम तथा अन्तिम पदोंका क्रम, इस प्रकार साथ-साथ आदिसे अन्त और अन्तसे आदितक पाठ होता है। यह एक मन्त्रमें अथवा एक वर्गमें आदिसे अन्ततक हो सकता है। जैसे—

ओषधयः सं। पारयामसीति पारयामसि। सं वदन्ते। राजन् पारयामसि। वदन्ते सोमेन। तं राजन्। इत्यादि।

दण्डपाठ—अनुक्रमसे दो पदोंके पाठके अनन्तर व्युत्क्रममें क्रमशः एक-एक पद बढ़ाते हुए पाठ करना दण्डपाठ है। यह विधि अर्धर्चतक चलती है। जैसे— '**ओषधयः सं। समोषधयः। ओषधयः सं। सं वदन्ते॥ वदन्ते समोषधयः। ओषधयः सं। सं वदन्ते। वदन्ते सोमेन॥ सोमेन वदन्ते समोषधयः।**' इत्यादि।

रथपाठ—इसके तीन भेद हैं—द्विचक्र, त्रिचक्र तथा चतुश्चक्र। द्विचक्र रथ अर्धर्चशः होता है। त्रिचक्र रथ समानपद संख्यावाले तीन पदोंकी गायत्री छन्दकी ऋचामें ही पादशः होता है। चतुश्चक्र रथ भी पादशः होता है। त्रिचक्र रथका उदाहरण यह है—

प्रथम अनुक्रम—विष्णोः कर्माणि। यतो व्रतानि। इन्द्रस्य युज्यः।

व्युत्क्रम—कर्माणि विष्णोः। व्रतानि यतः। युज्य इन्द्रस्य।

द्वितीय अनुक्रम—विष्णोः कर्माणि। यतो व्रतानि। इन्द्रस्य युज्यः। कर्माणि पश्यत। व्रतानि पस्पशे। युज्यः सखा।

व्युत्क्रम—पश्यत कर्माणि विष्णोः। पस्पशे व्रतानि यतः। सखा युज्य इन्द्रस्य। इत्यादि।

घनपाठ—वैदिक विद्वानोंमें सर्वाधिक समादृत घनपाठ भी चार प्रकारका है। घनके दो भेद तथा घनवल्लभके भी दो भेद हैं। घनपाठमें शिखापाठ करके उसका विपर्यास करनेके बाद पुनः उन तीन पदोंका पाठ किया जाता है। जैसे— '**ओषधयः सं समोषधय ओषधयः सं वदन्ते वदन्ते समोषधय ओषधयः सं वदन्ते॥**' इत्यादि। घनवल्लभमें पञ्चसन्धियुक्त पाठ होता है। अनुक्रम, उत्क्रम, व्युत्क्रम, अभिक्रम और संक्रम—इन पाँच प्रकारकी सन्धियोंसे युक्त होनेके कारण इसे पञ्चसन्धियुक्त घन भी कहते हैं। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

'**पावका नः। नो नः। नः पावका। पावका पावका। पावकानः। पावका नो नः पावका पावका नः सरस्वती सरस्वती नः पावका पावका नः सरस्वती।**' इत्यादि। इनके अतिरिक्त अन्य भी अवान्तर भेद हैं, जो ज्योत्स्नावृत्ति आदि ग्रन्थोंसे ज्ञातव्य हैं।

उपर्युक्त अष्टविकृतिके प्रकारोंसे यह स्पष्ट है कि महर्षियोंने इन वैज्ञानिक पाठ-प्रकारोंके आधारपर वेदमन्त्रोंकी रक्षा अत्यन्त परिश्रमपूर्वक की तथा इसमें एक भी स्वरवर्ण अथवा मात्राकी त्रुटि न हो, इसका उपदेश दिया। इन पाठोंके कारण आज भी विश्वकी धरोहरके रूपमें वेद शुद्धरूपसे प्राप्त हो रहे हैं।

[**डॉ० श्रीश्रीकिशोरजी मिश्र**]

जो नित सबमें देखता, चिन्मय श्रीभगवान्।
होता कभी न वह परे हरि-दृगसे विद्वान्॥
ले जाते हरि स्वयं आ, उसको निज परधाम।
देते नित्य स्वरूप निज चिदानन्द अभिराम॥

माध्यमिक पाठ्यक्रम

वेदाध्ययन–245

पुस्तक–1

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर–62,

नोएडा-201 309 (उत्तर प्रदेश)

वेबसाइट : www.nios.ac.in, टोल फ्री नं. 18001809393

सलाहकार समिति

प्रो. सरोज शर्मा
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तरप्रदेश

डॉ. राजीव कुमार सिंह
निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तरप्रदेश

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

समिति अध्यक्ष
डॉ. के. इ. देवनाथन्
कुलपतिः
श्रीवेङ्कटेश्वर वैदिक विश्वविद्यालय
चन्द्रगिरि परिमार्ग अलिपिरि
तिरुपति - 517 502 (आन्ध्रप्रदेश)

समिति उपाध्यक्ष
डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कालेज
दक्षिणेश्वर, कलकत्ता - 700 035 (पश्चिम बंगाल)

डॉ. रामनाथ झा
प्रोफेसर (संस्कृत एवं प्राच्य विधा संस्थान)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. सन्तोष कुमार शुक्ल
प्रोफेसर (संस्कृत एवं प्राच्य विधा संस्थान)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

आचार्य फूलचन्द
वैदिक गुरुकुल
पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

आचार्य प्रद्युम्न
वैदिक गुरुकुल, पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

श्री सन्तु कुमार पान
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
विजयनारायण महाविद्यालय
पत्रालय - इटाचुना, मण्डल - हुगली - 712 147 (प. बंगाल)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुड-मठ, मण्डल हावडा - 711 202 (प. बंगाल)

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा - 201309 (उत्तरप्रदेश)

पाठ्यक्रम-समन्वयक

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा - 201309 (उत्तर प्रदेश)

पाठ लेखक

(पाठ 1, 5, 6, 17-24)
श्री राहुलगाजि
अनुसन्धाता (संस्कृत विभाग)
जादवपुर विश्वविद्यालय
ककोलकाता - 700032 (प. बंगाल)

(पाठः 8)
स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुड मठ, मण्डल - हावडा - 711202 (प. बंगाल)

(पाठ 2, 3, 4, 7, 9-15)

श्रीमान् विष्णुपदपाल

अनुसन्धाता (संस्कृताध्ययनविभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय
मण्डल हावडा-711 202 (प.बंगाल)

(पाठः 16)

डॉ. दिलीप पण्डा

सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कॉलेज फॉर विमिन दक्षिणेश्वर
कोलकाता - 700 035 (पश्चिम बंगाल)

संपादक मण्डल

डॉ. दिलीप पण्डा

सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कालेज
दक्षिणेश्वर, कलकत्ता - 700 035 (पश्चिम बंगाल)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द

प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुड-मठ, मण्डल हावडा - 711 202 (प. बंगाल)

अनुवादक मण्डल

डॉ. विजेन्द्र सिंह

सहायक प्रोफेसर (संस्कृत)
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली-110067

श्री शिवराम

अनुसंधाता,
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली-110067

डॉ. राम नारायण मीणा

सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा-201309 (उत्तर प्रदेश)

श्री पुनीत त्रिपाठी

वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

रेखाचित्राङ्कन और मुख पृष्ठ चित्रण एवं डीटीपी

स्वामी हररूपानन्द

रामकृष्ण मिशन्,
बेलुर-मठ
मण्डल - हावडा - 711202 (प. बंगाल)

मैसर्स शिवम ग्राफिक्स

431, ऋषि नगर,
रानी बाग, दिल्ली - 110034

आपसे दो बातें ...

अध्यक्षीय सन्देश

प्रिय शिक्षार्थी,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए आपका हार्दिक स्वागत है। भारत अति प्राचीन और विशाल देश है। भारत का वैदिक वाङ्मय भी उतना ही प्राचीन, प्रशंसनीय और श्रेष्ठ है। सृष्टिकर्ता भगवान ही भारतीयों के सम्पूर्ण विद्याओं के प्रेरक हैं, ऐसा सिद्धान्त शास्त्रों में प्राप्त होता है। भारत के प्रसिद्ध विद्वान, सामान्य जनमानस तथा अन्य ज्ञानी लोगों के बीच प्राचीन काल में आदान-प्रदान का माध्यम संस्कृत भाषा ही थी ऐसा सभी को ज्ञात है। इतने लम्बे काल में भारत के इतिहास में जो शास्त्र लिखे गए, जो चिन्तन उत्पन्न हुए, जो भाव प्रकट हुए वे सभी संस्कृत भाषा के साहित्यरूपी भण्डार में निबद्ध हैं। इस भण्डार का आकार कितना है, भाव कितने गंभीर हैं, मूल्य कितना अधिक है, इसका निर्धारण करने में कोई भी समर्थ नहीं है। प्राचीन काल में भारतीय क्या-क्या पढ़ते थे, वह निम्न श्लोक के माध्यम से प्रकट करते है -

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।

पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥ (वायुपुराणम् 61.78)

इस श्लोक में चौदह प्रकार की विद्याएँ बताई गयी हैं। चार वेद (और चार उपवेद), छः वेदाङ्ग, मीमांसा (पूर्वोत्तरमीमांसा), न्याय (आन्वीक्षिकी), पुराण (अट्ठारह मुख्य पुराण और उपपुराण), धर्मशास्त्र (स्मृति) ये चौदह विद्या कहलाते हैं। इसके अलावा अनेक काव्य ग्रंथ और बहुत ही शास्त्र हैं। इन सभी विद्याओं का प्रवाह ज्ञान प्रदान करने वाला, प्रगति करने वाला और वृद्धि करने वाला है जो प्राचीन समय से ही चल रहा है। समाज के कल्याण के लिए भारत में विद्या दान परम्परा के रूप में गुरुकुलों में आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, आयुर्वेद, राजनीति, दण्डनीति, काव्य, काव्य शास्त्र और अन्य बहुत से शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन होता रहा है।

विद्या के शिक्षण के लिए ब्रह्मचारी परिवार को छोड़कर गुरुकुल में ब्रह्मचर्याश्रम को धारण कर जीवन बिताते थे। और इन विद्या में पारंगत होते थे। इन विद्याओं में आज भी कुछ लोग पारंगत है। प्राकृतिक परिवर्तनों, विदेशी आक्रमणों, स्वदेश में हो रही ऊठा-पटक इत्यादि अनेक कारणों से पहले जैसी अध्ययन-अध्यापन की परंपरा अब छूटती जा रही है। इन पाठ्यक्रमों की परीक्षा, प्रमाणपत्र इत्यादि आधुनिक शिक्षण पद्धति के द्वारा कुछ राज्यों/प्रदेशों में होता है, परन्तु बहुत से राज्यों/प्रदेशों में नहीं होता है। अतः इन प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन, परीक्षण, और अधिक प्रमाणीकरण का होना आवश्यक है। इसे ध्यान में रखकर यह पाठ्यक्रम राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के द्वारा प्रारम्भ किया गया है। लोगों के कल्याण के लिए जितना ज्ञान आवश्यक है वैसा ज्ञान इन शास्त्रों में निहित है और मनुष्य के सामने प्रकट हो, ऐसा लक्ष्य है। जिसके द्वारा यहाँ पर सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी कल्याण दृष्टि से कल्याणकारी हों, किसी को कोई दुख प्राप्त नहीं हो, कोई किसी को दुःख नहीं दे इस प्रकार अत्यन्त उदार उद्देश्य 'भारतीयज्ञानपरम्परा' इस नाम से इस पाठ्यक्रम की रचना की गई है। विज्ञान शरीरारोग्य का चिन्तन करता है। कला विषय मनोविज्ञान को तथा मनोविज्ञान आध्यात्मिक विज्ञान को मनोरंजन के रूप में सोचते हैं। विज्ञान साधनस्वरूप और सुखोपभोग साध्य है। अतः निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि कला शाखा विज्ञान से भी श्रेष्ठ है। लोग कला को छोड़कर विज्ञान से सुख नहीं प्राप्त कर सकते हैं परन्तु विज्ञान को छोड़कर कला से सुख को प्राप्त कर सकते हैं।

यह वेदाध्ययन विषय का पाठ्यक्रम छात्रानुकूल ज्ञानवर्धक लक्ष्यसाधक और पुरुषार्थसाधक है ऐसा मेरा मानना है।

इस पाठ्यक्रम के निर्माण में जिन हिताभिलाषी विद्वांन, उपदेष्टा, पाठलेखक, त्रुटिसंशोधक और मुद्रणकर्ता ने साक्षात् या परोक्षरूप से सहायता की, उनको संस्थान पक्ष से हार्दिक कृतज्ञता ज्ञपित करता हूं। रामकृष्णमिशन- विवेकानन्द-विश्वविद्यालय के कुलपति श्रीमान् स्वामी आत्मप्रियानन्द जी का विशेषरूप से धन्यवाद जिनकी आनुकूलता और प्रेरणा के बिना इस कार्य की परिसमाप्ति दुष्कर थी।

इस पाठ्यक्रम के अध्येताओं का विद्या से कल्याण हो, सफल हो, विद्वांन हो, सज्जन हो, देशभक्त हों, समाजसेवक हो ऐसी हमारी हार्दिक इच्छा है।

अध्यक्ष

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आपसे दो बातें ...

निदेशकीय वाक्

प्रिय पाठक,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम को पढ़ने की इच्छा से उत्साहित भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुरागी और उपासकों का हार्दिक स्वागत करता हूँ। अत्यधिक हर्ष का विषय है, की जो गुरुकुलों में पढ़ाया जाने वाला पाठयक्रम हमारे राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के पाठयक्रम में भी सम्मिलित किया गया है। आशा है की लम्बे समय से हमारी प्राचीन संस्कृति से जो दुरी थी वह अब समाप्त हो जाएगी। हिन्दु जैन और बौद्धों के धार्मिक, आध्यात्मिक और काव्यादि वाङ्गमय प्रायः संस्कृत में लिखा हुआ है। सैकड़ों, करोड़ों मनुष्यों के प्रिय विषयों की भूमिका के माध्यम से प्रस्तुत् प्रवेश योग्यता के द्वारा और मन को प्रसन्न करने के लिए माध्यमिक स्तर और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कुछ विषय सम्मिलित किये गए हैं। जैसे आंग्ल-हिन्दी आदि भाषा ज्ञान के बिना उस भाषा के लिखे गए माध्यमिक स्तरीय ग्रन्थ पढने में और समझ में सक्षम नहीं हो सकते हैं, वैसे ही यहाँ पर प्रारम्भिक संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को नहीं जानते तो, इस पाठ्यक्रम को जानने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। अतः प्रारम्भिक संस्कृत के विद्वान् छात्र यहाँ इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के अधिकारी हैं ऐसा जानना चाहिए।

गुरुकुलों में अध्ययन करने वाले छात्र आठवीं कक्षा तक जितना संभव हो अपनी परंपरा से अध्ययन करें। नौंवीं दसवीं कक्षा और ग्याहरवीं तथा बारहवीं कक्षा तक भारतीय ज्ञान परम्परा के इस पाठ्यक्रम का निष्ठा से नियमित अध्ययन करें। इस पाठ्यक्रम से विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए योग्य होंगे।

संस्कृत के विभिन्न शास्त्रों में किया गया कठिन परिश्रम विद्वान्, प्राध्यापक, शिक्षक, और शिक्षाविद् इस पाठ्यक्रम का प्रारूपरचना में, विषय निर्धारण के लिए विषयपरिमाण निर्धारण में, विषय प्रकट करने का, भाषास्तर निर्णय में और विषयपाठ लिखने में संलग्न हैं। अतः इस पाठ्यक्रम का स्तर उन्नत होना है।

वेदाध्ययन की यह स्वाध्याय सामग्री आपके लिए पर्याप्त, सुबोध, रुचिकर, आनन्दरस को प्रदान करने वाली, सौभाग्य देने वाली, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरूषार्थों के लिए उपयोगी रहेगी, ऐसी हम आशा करते है। इस पाठ्यक्रम का प्रधान लक्ष्य है की भारतीय ज्ञान परम्परा का शैक्षणिक क्षेत्रों में विशिष्ट और योग्य स्थान स्वीकृत होना चाहिए। यह लक्ष्य इस पाठ्यक्रम के माध्यम से पूर्ण होगा, ऐसा हमारा दृढ विश्वास है। पाठक अध्ययनकाल में यदि मानते हैं, की इस अध्ययन सामग्री में, पाठ के सार में, जहाँ संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन संस्कार चाहते हैं, उन सभी के प्रस्ताव का हम स्वागत करते हैं। इस पाठ्यक्रम को फिर भी और अधिक प्रभावी, उपयोगी और सरल बनाने में आपके साथ हम हमेशा तत्पर हैं।

सभी अध्येताओं के अध्ययन में सफलता और जीवन में सफलता के लिए और कृतकृत्य के लिए हमारे आशीर्वचन हैं–

किं बाहुना विस्तरेण।
अस्माकं गौरववाणीं जगति विरलाम् सर्वविद्याया लक्ष्यभूताम् एव उद्धरामि -

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥
दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।
शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आपसे दो बातें ...

समन्वयक वचन

प्रिय जिज्ञासु,

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

परम्परा को आधार मानकर यह प्रार्थना है कि हमारा अध्ययन विघ्नों से रहित हो। अज्ञान का नाश करने वाला तेजस्वी हो। द्वेष भावना का नाश करने वाला हो। विद्या लाभ के द्वारा सभी कष्टों का निवारण करने वाला हो।

'भारतीय ज्ञान परम्परा' इस पाठ्यक्रम के अङ्गभूत यह पाठ्यक्रम माध्यमिक कक्षा के लिए निर्धारित किया गया है। इस पाठयक्रम की अध्ययन सामग्री आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। सरल संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को जो जानता है, वह इसके अध्ययन में समर्थ है।

विद्वानों का अभिप्राय और अनुभवों के आधार पर काव्य शास्त्र का फल रस ही है। आनंद रस स्वरूप ही है। सभी प्राणियों का सभी कार्य आनंद और सुखपूर्वक संपन्न हो, यही प्रबल इच्छा है। काव्य के सभी विषय रस में ही स्थित हैं। काव्यों के अनेक प्रकार हैं और काव्य प्रपंच सबसे महान हैं। काव्य बहुत हैं उनमें से विविध काव्याशों का चयन करके इस पाठ्य सामग्री में सम्मिलित किया गया है। इसी प्रकार साहित्य का सामान्य स्वरूप, काव्य का स्वरूप, भेद आदि प्रारंभिक ज्ञान यहाँ दिया गया है। पारंपरिक गुरुकुलों में जिस शिक्षण पद्धति से पाठ दिए जाते थे, उसी पद्धति का अनुसरण कर ये पाठ्यक्रम प्रतिपादित किया गया है।

माध्यमिक कक्षा हेतू निर्धारित साहित्य विषय का यह पाठ्यक्रम अत्यंत उपकारक है। शिक्षार्थी इसके अध्ययन से ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होंगे। इसके अध्ययन से छात्र अन्य काव्यों में प्रवेश के योग्य होंगे। ये पाठ्य सामग्री काव्य और काव्यशास्त्र का श्रद्धा सहित अध्ययन में प्रवेश के लिए और मन को शांति देने वाली है। इस पाठ्यक्रम के आकार पर नहीं जाना चाहिए और न इससे भय होना चाहिए। परंतु गंभीर रूप से अध्ययन करना चाहिए।

सम्पूर्ण पाठ्यपुस्तक दो भागों में विभक्त है।

पाठक पाठों को अच्छी प्रकार से पढ़कर पाठ में आये प्रश्नों के उत्तरों पर स्वयं विचार कर अन्त में दिए हुए प्रश्नों के उत्तरों को देखें, और उन उत्तरों को अपने उत्तरों से मिलाएँ। प्रत्येक पत्र में दिए हुए रिक्त स्थान पर टिप्पणीं करनी चाहिए। पाठ के अन्त में दिए प्रश्नों के उत्तरों का निर्माण करके परीक्षा के लिए तैयार हो जाएँ।

शिक्षार्थी अध्ययन काल में किसी भी कठिनता का अनुभव करते हैं, तो अध्ययन केन्द्र में किसी भी समय जाकर समस्या के समाधान के लिए आचार्य के समीप जाएँ या राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के साथ ई-पत्र द्वारा सम्पर्क करें। वेबसाइट पर भी संपर्क व्यवस्था है। वेबसाइट www.nios.ac.in इस प्रकार से है।

ये पाठ्यविषय आपके ज्ञान को बढाएं, परीक्षा में सफलता को प्राप्त करवाए, आपकी विषय में रुचि बढाए, आपका मनोरथ पूर्ण करे, ऐसी कामना करते है।

अज्ञानान्धकारस्य नाशाय ज्ञानज्योतिषः दर्शनाय च इयं में हार्दिकी प्रार्थना -

ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भवत्कल्याणकामी

पाठयक्रम समन्वयक (शैक्षिकम्)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थानम्

अपने पाठ कैसे पढ़ें!

वेदाध्ययन, माध्यमिक स्तर की इस पाठ्य सामग्री को विशेष रूप से आपकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया है। आप स्वतंत्र रूप से स्वयं पढ़ सकें इसलिए इसे एक प्रारूप में ढाला गया है। निम्नलिखित संकत आपको सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग करने का तरीका बताएंगे। दिए गए पाठों को कैसे पढ़ना है आइए, जानें–

पाठ का शीर्षक : इसे पढ़ते ही आप अनुमान लगा सकते हैं कि पाठ में क्या दिया जा रहा है। इसे पढ़िए।

भूमिका : यह भाग आपको पूर्व जानकारी से जोड़ेगा और दिए गए पाठ की सामग्री से परिचित कराएगा। इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए।



उद्देश्य : प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद आप इस पाठ से उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाएंगे। इन्हें याद कर लीजिए।



पाठगत प्रश्न : इसके एक शब्द अथवा एक वाक्य में पूछे गए प्रश्न हैं तथा कुछ वस्तुनिष्ठ प्रश्न हैं। ये प्रश्न पढ़ी हुई इकाई पर आधारि हैं इनका उत्तर आपको देते रहना है। इसी से आपकी प्रगति की जाँच होगी। ये सवाल हल करते समय आप हाथ में पेंसिल रखिए और जल्दी-जल्दी सवालों के समाधान ढूँढ़ते रहिए और अपने उत्तरों की जाँच पाठ के अंत में दी गई उत्तरमाला से मिलाइए। उत्तर ठीक न होने पर इकाई को पुनः पढ़िए।



आपने क्या सीखा : यह पूरे पाठ का संक्षिप्त रूप है–कहीं यह बिंदुओं के रूप में है, कहीं आरेख के रूप में तो कहीं प्रवाह चार्ट के रूप में। इन मुख्य बिंदुओं का स्मरण कीजिए। यदि आप कुछ अपने मतलब की मिलती-जुलती नई बातें जोड़ना चाहते हैं तो उन्हें भी वहीं बढ़ा सकते हैं।



पाठांत प्रश्न : पाठ के अंत में दिए गए लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्न हैं। इन्हें आप अलग पृष्ठों पर लिख कर अभ्यास कीजिए। यदि चाहें तो अध्ययन केंद्र पर अपने शिक्षक या किसी उचित व्यक्ति को दिखा भी कते हैं और उन पर नए विचार ले सकते हैं।



उत्तरमाला : आपको पहले ही बताया जा चुका है इसमें पाठगत प्रश्नों और क्रियाकलापों के उत्तर दिए जाते हैं। अपने उत्तरों की जाँच इस सूची से कीजिए।

पुस्तक-1

वैदिक साहित्य का इतिहास

1. वेद विषय में प्रवेश
2. वेदों का काल, पाठ प्रकार और मंत्रों में ऋषि, छन्द और देवता विनियोग
3. वेदों के भाष्यकार
4. वेद भाष्य की पद्धति
5. वैदिक आख्यामाण तथा वेदों के विषय में दार्शनिक विमर्श
6. वैदिक यज्ञ
7. वैदिक देवता

वैदिक सूक्तों का अध्ययन

8. सूर्यसुक्त और सञ्ज्ञान सूक्त
9. पूषन्-सूक्त और उषस्सूक्त
10. वरुण सूक्त
11. यम सूक्त
12. शुन:शेपोपाख्यान-1
13. शुन:शेपोपाख्यान-2
14. शुन:शेपोपाख्यान-3
15. विश्वामित्र नदी संवाद

पुस्तक-2

वैदिकी प्रक्रिया

16. अष्टाध्यायी का प्रथम और द्वितीय अध्याय
17. अष्टाध्यायी का तृतीय (3) अध्याय
18. अष्टाध्यायी का चतुर्थ (4) अध्याय
19. अष्टाध्यायी का चतुर्थ (4) अध्याय
20. अष्टाध्यायी का पंचम और षष्ट (5-6) अध्याय
21. अष्टाध्यायी का षष्ठ और सप्तम (6, 7) अध्याय
22. अष्टाध्यायी सप्तम (7) अध्याय
23. अष्टाध्यायी अष्टम (8) अध्याय
24. अष्टाध्यायी अष्टम (8) अध्याय

वेदाध्ययन - 245

पुस्तक-1

1

वेद विषय में प्रवेश

प्रस्तावना

भारतीयों के धर्म, आचार, अध्यात्म और वाङ्गय का मूल वेद है। यहाँ सबसे पहले संस्कृत साहित्य क्या है इसका प्रतिपादन करेंगे। उसकी विशेषता और महत्त्व क्या है इन सबका विवेचन इस पाठ में करेंगे। संस्कृत साहित्य के वैदिक वाङ्मय के वैशिष्ट को जगत में कौन नहीं जानता। वैदिक वाङ्मय के विभूति विषय में अतिशयोक्ति नहीं है। यह वाङ्मय बहुत प्राचीन है, सम्पूर्ण पृथिवी से भी इसका परिमाण विशाल है। इसका वैभव अतिशय रहित है, इसके सौन्दर्य गुण का कोई तौल नहीं है। यह वाङ्मय मौलिक और प्राचीन है। यहाँ हमारा हमेशा अभिनिवेश होता है। केवल इतना ही नहीं, अन्य भी बहुत से कारण वैदिक वाङ्मय के अध्ययन में विद्यार्थियों की विशेष रुचि उत्पन्न करते हैं।

संस्कृत साहित्य में वेदों का स्थान सर्वोपरि है। भारतीय दर्शन एवं धर्म का जीवन वेद ही है। वैदिक वाङ्मय अनादि और अपौरुषेय है। यह वाङ्मय मन्त्रब्राह्मणात्मक और वेद के समान आचरण करने वाले सभी शास्त्रों का तात्पर्य है। यह वाङ्मय प्राचीनतम सभी भाषाओं के साहित्यों का मूलभूत है, इस विषय में भाषाओं के तत्त्ववेत्ता विद्वानों को लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। इस वाङ्मय का अध्ययन अत्यावश्यक है, ऐसा भाषाओं के तत्त्ववेत्ता विद्वान अनुभव करते हैं। भारतीयों के लिए वैदिक वाङ्मय का इतिहास अनुपम एवं अक्षय धान के समान है। इस कारण भारतीय विद्वान इस विषय के अध्ययन में आनन्द अनुभव करते हैं।

आर्यों की सभ्यता और संस्कृति वेदों के आधार पर ही है। वेदों को न केवल भारतीय विद्वान अपितु विदेशी विद्वान भी श्रद्धा की दृष्टी से देखते हैं। परम् सत्य के अनुसन्धान कर्ता महर्षियों ने जिस महान तत्त्व का अनुभव किया, उसके बोधयिता विद्वान आज भी पृथ्वी पर विराजमान हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार वेद अपौरुषेय हैं। अतिप्राचीन

टिप्पणी

काल से ही इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार के अलौकिक उपाय उनके द्वारा ही जाने जाते हैं। वेदों में ज्ञान-विज्ञान-धर्म-दर्शन-सदाचार-संस्कृति-नैतिक-सामाजिक-राजनैतिक आदि जीवन के उपयोगी विषयों का सन्निवेश है। जहाँ प्रत्यक्ष और अनुमान का प्रवेश नहीं होता वहाँ भी वेद प्रविष्ट होते हैं। स्मृति पुराणादि वेदानुगामी हैं, इसलिए ही स्मृति पुराण आदि ग्रहण योग्य हैं। ये स्मृति पुराण आदि विश्वकोष हैं, ऐसा विद्वानों का मत है। वेद हमारे श्रेय और प्रेयकर्मों के साधन हैं। प्राचीन धर्म समाज और व्यवहार के विषय में जानने में श्रुति ही समर्थ है। वेद अखिल धर्म के मूलभूत हैं, इसलिए वे हमेशा आदरणीय हैं। स्मृतिकार मनु ने भी कहा है –

'वेदोऽखिलो धर्ममूलम् तथा वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ।' इति।

और भी, महाभाष्यकार पतंजलि ने ब्राह्मण के लिए षडङ्गवेदाध्ययन अनिवार्य है इस कथन का समर्थन करते हुए कहा कि-

'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।'

वेदों में आध्यात्मिक दर्शन का उत्कृष्ट भण्डार है। किन्तु उनके प्रतिपादन की रीति आधुनिकों की प्रतिपादन शैली से सर्वथा भिन्न है। मानव जीवन का दर्शन वेदों में करना चाहिए। विश्व के साहित्य में वेदों का महत्त्व और वैशिष्ट्य स्पष्ट दिखाई देता है। इस प्रकार आप आगे वेद शब्द का अर्थ और उसके पर्यायवाची शब्दों को जानेंगे। और अन्त में वेद पौरुषेय है या अपौरुषेय इस विषय में सामान्य विचार करेंगे।

अखिल ज्ञानराशि का आधार वेद है। वेदों में प्राचीनतम ऋग्वेद है, यह ही विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है। ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं है जो वेदों में न हो। वायुयान से लेकर ब्रह्मविद्या पर्यन्त सारा ज्ञान वेदों में है। परन्तु आज-कल वेदों का वैसा अध्ययन नहीं मिलता है। यहाँ पर तो सामान्य स्थूलांश का स्पर्श किया गया है। वेदादि शब्दों के धातु-प्रत्यय आदि के निर्देश पूर्वक निर्वचन आदि भी यहाँ प्रदर्शित किए गए हैं। यहाँ वेद की विभिन्न शाखाओं का नाम निर्देशपूर्वक तथा वहां विद्यमान मन्त्रों की संख्या भी दी गई है।

वेद में स्वर की महिमा का वर्णन किया गया है। इसलिए स्वर विषय का भी संक्षेप से इस पाठ में वर्णन करेंगे।

उद्देश्य

यह पाठ पढ़ने के बाद आप सक्षम होंगे:

- वेदों का वैशिष्ट्य जान पाने में;
- वेदों का क्या महत्त्व है, समस पाने में;
- वैदिक वाङ्मय क्या होता है, इसे जान पाने में;

टिप्पणी

- वैदिक वाङ्मय की विभूति क्या है, यह जान पाने में;
- वेद का शब्दार्थ और वेद के पर्यायवाची शब्दों को जान पाने में;
- वेद पौरुषेय है अथवा अपौरुषेय इस विषय में सामान्य विचारों को ग्रहण कर पाने में;
- वेद का लक्षण जान पाने में।

1.1 वेदों का वैशिष्ट्य

अत्यन्त विशिष्ट और व्यापक है वेदों का महत्त्व। वैदिक वाङ्मय के महत्त्व का सामान्यतया वर्णन करने में लोग प्रायः असमर्थ हैं। यहाँ सर्वाङ्गपूर्ण मानवजीवन के उद्देश्यभूत धर्म अर्थ काम मोक्ष नामक चार पुरुषार्थों की भी आलोचना की गयी है। इसलिए वैदिकवाङ्मय में मानवजीवन के सभी उपयोगी विषय अच्छी तरह से विवेचित हैं, यह कथन उचित ही है। यहाँ प्रेय शास्त्र और श्रेय शास्त्र दोनों ही समान भाव से वर्णित हैं। इसलिए यहाँ भोग और मोक्ष की सत्ता का सम्पूर्ण वाङ्मय की अपेक्षा विशिष्ट वर्णन है। यह वैदिकसाहित्य अतिमहत्त्वपूर्ण है। यह सबसे प्राचीन है, ऐसा सब जानते ही हैं। यह व्यापकता और परिमाण में बहुत प्रसिद्ध है। इसका अध्ययन अपरिहार्य और अनिवार्य है। जो द्विज वेद का अध्ययन न करके अन्यत्र श्रम करता है, वह शूद्र होता है ऐसा माना जाता है। जैसे –

'योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥'– मनु

भारतीय विचारधारा का यह दृढ विश्वास है कि वेदतत्त्वज्ञ मनुष्य ही ब्रह्म को जानने में समर्थ होता है। जैसे–

'वेदशास्त्रर्थतत्त्वज्ञो यत्र कुत्रश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥'

अपनी विशिष्टता के कारण वैदिकवाङ्मय का महत्त्व प्रतिष्ठित है। वेदों के ज्ञान के बिना जीवन का अन्तिम लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए वैदिकवाङ्मय का स्थान महत्त्वपूर्ण है। ज्ञान की विमल धारा समस्त जैवमण्डल और सभी दिशाओं में वेदों से ही निकलकर बहती है। वेद न केवल भारतीयों के अपितु पृथिवी में रहने वाली समस्त मानवजातियों के हितसाधन हेतु हैं।

हमारे पूर्वजों ने किस प्रकार से जीवनयापन किया। किन खेलों के द्वारा उन्होंने अपना मनो विनोद किया। उन्होंने किन देवताओं को पूजा। उन्होंने विवाहसम्बन्ध का क्या उद्देश्य निर्धारित किया। और किस विधि के द्वारा वे प्रातः अग्नि में आहुति समर्पित करते थे, इत्यादि विषयों पर हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न होती है, तो उन विषयों का यथार्थ ज्ञान वेदों से ही प्राप्त कर सकते हैं।

टिप्पणी

वेदों का उपादेयत्व और महत्त्व उनकी भाषादृष्टि से भी अधिक देखा जाता है। इस वैदिकभाषा का महान प्रभाव आधुनिक भाषाविज्ञान में भी दृष्टिगोचर होता है। इस वैदिकभाषा ने भाषाविदों के मध्य विस्तृत प्राचीनभाषाविषयक मतभेदों का निराकरण किया। यदि आज कल के भाषाशास्त्र के पण्डित चाहते हैं कि उनके मत का विषय पूर्णतया परिपक्व हो, तो वे वेदों का अध्ययन करें, वेदज्ञान को जानने का प्रयत्न करना चाहिए। वेदों का अध्ययन तथा अनुशीलन करके वे विभिन्न भाषाओं में आये हुए पाड्ँ-नाइट-फार्चून आदि पदों का मूलरूप तथा उनके रूपान्तरण का सही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। बहुत से प्रयोजनों के साधक होने के कारण वस्तुत: वेद परममहत्त्वभाजक ग्रन्थ हैं।

1.2 वेदों का महत्त्व

ऋषियों ने वेदों को बनाया ऐसा पाश्चात्य पण्डित मानते हैं। वेद शब्दराशि हैं ऐसी पाश्चात्य पण्डितों की आधिभौतिक दृष्टि है। इसलिए वे शब्द राशि समूहात्मक वेद सामान्यग्रन्थ ही है ऐसा मानते हैं। परन्तु वेदमर्मज्ञ भारतीय मेधावी उनको शब्दराशी तथा ऋषिकृत नहीं मानते। भारतीय विद्वानों के मत में ऋषि वैदिक मन्त्रों के द्रष्टा हैं कर्ता नहीं। अलौकिक सामर्थ्यशाली ऋषियों ने अपनी दिव्य प्रतिभा से मन्त्रों के दर्शन किये। उन मन्त्रराशियों का प्रकाश उनकी बुद्धी में आविर्भूत हुआ। 'ऋषति पश्यति इति ऋषि:' इस व्युत्पत्ति से प्राप्त 'ऋषि' इस पद का अर्थ 'मन्त्रद्रष्टा' है। ऋषि शब्द 'इगुपधात् कित्' इस औणादिक सुत्र से इनि प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। और निरुद्र में विद्यमान- 'तद्येनास्तपस्यमानन् ब्रह्मस्वयम्भ्वभ्यानर्षत्।' इत्यादि पङ्क्तियाँ ऋषि के मन्त्रद्रष्टृत्व का समर्थन करती हैं।

प्रधान रूप से वेद दो प्रकार का है- मन्त्ररूप और ब्राह्मणरूप। मन्त्रों का समुदाय ही संहिताशब्द से जाना जाता है। ब्राह्मणरूप वेदभाग तो संहिताभाग का व्याख्यारूप ही है। और यह ब्राह्मणभाग यज्ञ के स्वरुप का बोधक है ऐसा कहा जाता है। ब्राह्मणग्रन्थ भी तीन प्रकार से विभक्त होता है- ब्राह्मण, आरण्यक,और उपनिषत्। यज्ञ के स्वरूप का प्रतिपादक ब्राह्मणभाग है। और अरण्य में पढे गये जो यज्ञ के आध्यात्मिक रूप का विवेचन करते हैं वे वेदभाग आरण्यक कहलाते हैं। उपनिषद् ब्रह्म के स्वरूप के बोधक तथा मोक्ष के साधान हैं, यही भाग वेद का अन्तरूप तथा साररूप होने के कारण वेदान्त कहलाता है। ब्राह्मणभाग गृहस्थों के लिए उपयोगी है, आरण्यकभाग वानप्रस्थों के लिए उपयोगी है, उपनिषद्भाग संन्यस्तों अथवा सन्यासियों के लिए उपयोगी है, यह भी कहा जा सकता है।

पाठगत प्रश्न 1.1

1. द्विज वेद को न पढकर अन्य कर्म करता है तो क्या होता है?
2. कौन ब्रह्म को जानने में समर्थ होता है?

3. वेदशास्त्रार्थ....इस कारिका को पूर्ण कीजिए।
4. योऽनधीत्य.....इस कारिका को पूर्ण कीजिए।
5. पाश्चात्य पण्डितों के अनुसार वेदों की रचना किसने की?
6. भारतीय विद्वानों के मतानुसार ऋषि कौन होते हैं?
7. ऋषि शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ क्या है?
8. ऋषि शब्द किस प्रत्यय से निष्पन्न होता है?
9. निरुक्त की कौनसी पङ्क्ति ऋषि शब्द का मन्त्र द्रष्टा अर्थ होता है, इसका समर्थन करती है।
10. वेद के प्रधान विभाग कौन कौन से होते हैं?
11. मन्त्रसमुदाय का दूसरा क्या नाम है?
12. ब्राह्मणरूप वेदभाग कौनसा है?
13. ब्राह्मणग्रन्थ कितनी प्रकार से विभक्त होते हैं। और वे कौन कौन हैं?
14. ब्राह्मण किसका प्रतिपादक है?
15. आरण्यक क्या होता है?
16. उपनिषद् क्या होता है?
17. ब्राह्मणभागों में कौन कौन से भाग किस किसके उपयोग के लिए होते हैं?

1.3 वैदिक वाङ्मय

भारतीय ज्ञान का प्रवाह गङ्गा के प्रवाह की तरह है। और उसके स्रोत वेद ही हैं। वेद के तुल्य दूसरा कोई भी दीप्तपुंज ग्रन्थ नहीं है। वेद की प्रभा से न केवल वेद स्वयं प्रकाशित होता है अपितु उसकी प्रभा से समस्त भारतीयवाङ्मय प्रकाशित होता है। वेद शब्द से जैसे चार मन्त्रों की संहिताओं का ग्रहण होता है वैसे ही वैदिक शब्द से वेदोत्तरकालिक समस्त वैदिकवाङ्मय का बोध होता है। वैदिक शब्द तो वेदविषयक बहुविधा ज्ञान की सामग्री का सूचक तथा द्योतक है। वेदविषयक सामग्री से यहाँ छः वेदःङ्ग-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषद् आदि का बोध होता है। वेदों से भिन्न होते हुए भी ये वैदिकग्रन्थ वेदोद्धृत ही हैं। वैदिकवाङ्मय के अन्तर्गत ही ये छःवेदाङ्ग आदि ग्रन्थ आते हैं।

यद्यपि साहित्य शब्द वर्तमान में वाङ्मय अर्थ में प्रयुक्त होता है जिस अर्थ में 'लिटरेचर'-शब्द विदेशियों द्वारा प्रयुक्त किया जाता है। तथापि यहाँ वेद शब्द का प्रयोग मन्त्र और ब्राह्मण

टिप्पणी

के निमित्त है। आपस्तम्ब द्वारा कहा गया है- 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'। जिससे यज्ञों का अनुष्ठान निष्पन्न होता है, और देवताओं का स्तुतिविधान जहाँ उल्लिखित है वह मनन करने के कारण मन्त्र कहलाता है। ब्राह्मण पद तो ग्रन्थ विशेष वाचक है। यज्ञों के विविध क्रियाकलापों के प्रतिपादक ग्रन्थ 'ब्राह्मण' कहलाते हैं। 'ब्राह्मण' इस पद का अर्थ- 'वर्धन विस्तार तथा वितान एवं यज्ञ' हैं। ब्राह्मण भी तीन भागों में विभक्त है। पहला भाग 'ब्राह्मण', दूसरा भाग 'आरण्यक', और तीसरा भाग 'उपनिषद्' कहा जाता है।

वेद स्वरूप भेद से तीन प्रकार का होता है- ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। जहाँ अर्थ के कारण पाद व्यवस्था है उन छन्दोबद्ध मन्त्रों का नाम 'ऋक्' है। ऋचाओं का समूह ही 'ऋग्वेद' है इस पद के द्वारा व्यवहार किया जाता है। 'यजु' शब्द यज्-धातु से उसि प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। जिस वेद में यज्ञ याग आदि क्रियाकलापों वाले मन्त्रों का सन्निवेश है उसे 'यजुर्वेद' कहते हैं। जहाँ गीतिरूप मन्त्र होते हैं वह उपासनाकाण्ड परक वेद 'सामवेद' है। मन्त्र तीन प्रकार के होते हैं इसलिए वेद 'त्रयी' इस नाम से प्रसिद्ध हैं।

मन्त्रों का समूह 'संहिता' इस नाम से जाना जाता है। यज्ञानुष्ठान को दृष्टी में रखकर वेदव्यास ने विभिन्न ऋत्विजों के लिए संहिताओं का सङ्कलन किया। मन्त्रों की संहिताओं का सङ्कलन चार प्रकार से किया गया, इसलिए संहिताः चार हैं। ऋक्संहिता, यजुःसंहिता, सामसंहिता, अथर्वसंहिता। इसलिए वेद चार चार हैं।

अतिव्यापक और विस्तृत है हमारा वैदिकवाङ्मय। और यह सर्वाङ्गपूर्ण है, क्योंकि यहाँ मानव जीवन के उद्देश्यभूत धर्म अर्थ काम मोक्ष ये चार पुरुषार्थ विवेचित हैं। यह वाङ्मय सुप्राचीन, समग्रपृथिवीव्यापि, परिमाण से दुरूछेद्य, सौन्दर्य और उत्कर्ष से अनन्यतुल्य है। महान मौलिक और पुरातन है यह वैदिकवाङ्मय। अतः यहाँ हमारे अभिनिवेश का सर्वथा समर्थन किया जाता है। केवल इतना ही नहीं अपितु अन्य कारणों से भी वैदिकवाङ्मय के अध्ययन में पण्डित जिज्ञासू तथा छात्रों की रूचि उत्पन्न होती है।

पाठगत प्रश्न 1.2

18. वेद विषयक सामग्री शब्द से किसका बोध होता है?
19. साहित्यशब्द वर्तमान में किस अर्थ में प्रयुक्त होता है?
20. वेद के विषय में आपस्तम्ब में क्या कहा गया है?
21. मन्त्र शब्द का क्या अर्थ है?
22. ब्राह्मण शब्द का क्या अर्थ है?
23. वेद स्वरूप भेद से कितने प्रकार का है? और वे कौन कौन से हैं?

24. ऋक् क्या है? और ऋग्वेद क्या है?

25. यजुर्वेद क्या है?

26. सामवेद क्या है?

27. वेद का त्रयी नाम किसलिए रखा गया?

28. ऋत्विजों के लिए संहिताओं का सङ्कलन किसने किया।

29. संहिताओं की संख्या बताओ।

30. वैदिकवाङ्मय में हमारा अभिनिवेश कैसे होता है।

1.4 वैदिक वाङ्मय की विभूति

वैदिकवाङ्मय का अध्ययन ऐतिहासिकों की परमप्रीति के लिए कल्पित है। और यह वाङ्मय न केवल विशाल भारत के लोगों की अपितु सहस्रों वर्षों से भी पहले से स्थित यहाँ के इतिहास की आज तक रक्षा कर रहा है, इसके अलावा भी तिब्बत-जापान-चीन-कोरिया आदि देशों में, तथा लङ्काद्वीप-मलयद्वीप, और पश्चिम में रहने वाले लोगों की बौद्धिक-प्रवृत्तियों में भी प्राचीनकाल में इसका बहुत बड़ा प्रभाव और विस्तार था तथा प्रत्येक युग में इस वाङ्मय का प्रभाव परिलक्षित होता है।

पूर्व में तमिल-तेलुगु-मलयालम-कनाडी इन चार भाषा-वर्गों को छोड़कर प्राय: सभी भारतीय भाषाएं वैदिकसंस्कृत से उत्पन्न हुई हैं। पश्चिम में प्राय: सभी यूरोपीय भाषाएं वैदिकसंस्कृत से निकली हुई हैं। सभी धर्मों की उत्पत्ति का परिचय जितना इस साहित्य के आश्रय से प्राप्त होता है, उतना अन्य साहित्य के आश्रय से प्राप्त नहीं होता है।

धर्म और दर्शन इन दोनों के विकास और ज्ञान के लिए वैदिकवाङ्मय का अध्ययन अपरिहार्य है। मैकडोनल महोदय ने कहा कि- 'भारोपीय भाषी भाषित लोगों में केवल भारतीयों के द्वारा ही केवल वैदिकधर्म नामक महान् राष्ट्रीय धर्म, और इसका प्रतिपक्षी बौद्धधर्म नामक महान् सार्वभौमधार्म का निर्माण किया गया।

उपज्ञासमृद्ध वैदिकवाङ्मय अन्य वाङ्मयों से विशेष है। 400 ई.पू. में भारतवर्ष पर यवनों का आक्रमण हुआ। उससे पहले ही आर्यसभ्यता एवं हमारी वैदिकवाङ्मयविभूति प्रौढ़ता को प्राप्त कर चुकी थी। और उसके बाद अन्य कई देशों के आक्रमण होने के कारण संसर्ग दोष उत्पन्न हो गया। मेकडोनल महोदय ने कहा कि-'सभी सनातन साहित्यों के मध्य वैदिकवाङ्मय ने मौलिकता के मूल्य एवं सौन्दर्यगुण में महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त किया। मानव प्रकृति विकाशानुशीलन की प्रधानसाधानता तो वेदों में अन्य वाङ्मयों से नि:संशय उत्कृष्ट ही है'।

भारतीय साहित्य का इतिहास वैदिककाल तथा लौकिक संस्कृतकाल नामक दो कालों में

विभक्त है। पाणिनि से पूर्व का प्रथम काल, तथा बाद का द्वितीय काल गिना जाता है। आदि काल ही वेद, ब्राह्मण, आरण्यकग्रन्थ, उपनिषद्, और कल्प सारस्वत माने जाते हैं। इस वैदिकवाङ्मय मंप आर्यसभ्यता का विलक्षण और निरन्तर गमन देखा जाता है। प्रार्थना, उपासना, मन्त्रजप, जननी के उदर में शरीरग्रहण से लेकर शरीरत्याग पर्यन्त आर्यजीवन को विशेषित करने वाले जो सोलह संस्कार, अरणीयों से हव्यवाह का जनन, श्रौतसूत्र गृह्यसूत्र आदि बहुत सी विधियाँ ईसा के जन्म के पूर्व से आज तक प्रचलित हैं।

यूरोपीय संस्कृति और दर्शनों का जो विकास हुआ उसके ज्ञानार्थ वैदिक वाङ्मय का अध्ययन अवश्य करना चाहिए तथा विण्टरनिट्ज महोदय ने कहा कि–'यदि हमारी स्वसंस्कृति का उपक्रम प्रक्रम समाप्त हो जाए, और यदि हमारी प्राचीन भारोपीय संस्कृति जानने की इच्छा हो तब जहाँ भारोपीय लोगों का वर्षिष्ठ वाङ्मय सुरक्षित हो ऐसा स्थान भारतवर्ष ही होगा, ऐसी हमारी मानना है।

भारतीयों को विशेष रूप से इस वाङ्मय के इतिहास का अध्ययन करना चाहिए। भारतीयों के प्राचीन वाङ्मय और संस्कृति का श्रेष्ठ दर्पण वैदिक वाङ्मय है। और भी आधुनिक हिन्दी-पंजाबी-बंगला-ओडिया-गुजराती-मराठी-राजस्थानी-बिहारी-असमिया आदि उत्तर भारत में बोली जाने वाली सभी भाषाओं की जननी है यह भाषा। दक्षिणभारत में भी जो तमिल-तेलगु-मलयालम-कन्नड़ आदि आधुनिक भाषाएं हैं वे भी वैदिकवाङ्मय से बहुत प्रभावित हैं। जैसे धागे में मोती ग्रंथित होते हैं वैसे ही इसे वैदिकवाङ्मय में सभी भारतीय भाषाएं ग्रंथित हैं। वैदिकवाङ्मय के ज्ञान के बिना आधुनिक भाषाओं का सही प्रकार से ज्ञान असम्भव है।

'मैं कौन हूँ। कहाँ से आया। मुझे सुखप्राप्ति कैसे होगी और दुःख का निराकरण कैसे होगा।' ये मानवों की अध्यात्म विषयक सनातन जिज्ञासाएं वैदिक वाङ्मय में आलोचित हैं। **अतः वैदिकवाङ्मय का इतिहास संक्षेप से कहा गया।**

पाठगत प्रश्न 1.3

31. वैदिकवाङ्मय का अध्ययन किसलिए अपरिहार्य है?
32. वैदिकसाहित्य का इतिहासकाल कितनी प्रकार से विभक्त है?
33. कौन-सी वैदिकवाङ्मय से भाषा बहुत प्रभावित है?
34. वैदिकवाङ्मय में कैसी जिज्ञासा आलोचित है?

1.5 वेद शब्द का अर्थ

'विद्यन्ते धर्मादयः पुरुषार्थाः यैस्ते वेदाः' ऐसा बह्वृक्प्रातिशाख्य में कहा गया है। यदि वेदों के स्वरूप के विषय में मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती है तो तद्विषयक ज्ञान वेदों में ही

प्राप्त कर सकते हैं। सायण ने तो 'अपौरुषेयवाक्यं वेद' ऐसा कहा। इष्टप्राप्ते: अनिष्टपरिहारस्य च अलौकिकम् उपायं यो वेदयति स: 'वेद:' **यह भाष्यभूमिका में सायण ने कहा।** उसका प्रमाण भी दिया गया है-

> **''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।**
> **एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।।'' इति।**

आम्नाय, आगम, श्रुति, वेद, छन्द ये सब शब्द वेद शब्द के पर्यायवाची हैं। ज्ञानार्थक वेद शब्द विद्-धातू से घञ्प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी के चुरादिप्रकरण में तो चारों अर्थों में विद्-धातु का प्रयोग है। जैसे:-

> **''सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे।**
> **विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्लुक्श्यनम्शेष्विदं क्रमात्।'' इति।**

उद्र अर्थों के वाचक होने से विद्-धातु से वेद शब्द निष्पन्न है। सत्तार्थक होने से विद्-धातु से घञ्प्रत्यय होने पर 'वेद' पद का अर्थ होता है- 'विद्यते सत्तां गृह्णाति वस्तु अनेन इति वेद:।' ज्ञानार्थक होने पर विद्-धातु घञ्-प्रत्यय से निष्पन्न 'वेद' पद का अर्थ है- 'विदन्त्येभि: धर्मब्रह्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वा इति वेद:।' विचारार्थक होने पर विद्-धातु से अच्-प्रत्यय से निष्पन्न वेदशब्द का अर्थ -'विन्ते विचारयति धर्मब्रह्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वेति वेद' इति। लाभार्थक विद्-धातु से घञ्-प्रत्यय से निष्पन्न 'वेद' शब्द का अर्थ 'विदन्ते स्वरूपं लभन्ते वस्तु अनेनेति वेद:।' ऋग्वेदभाष्यभूमिका में -'विदन्ति जानन्ति, विद्यते भवन्ति, विन्ते विचारयति, विदन्ते लभन्ते सर्वे मनुष्या: सत्त्वविद्यां यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदा:' इति। आपस्तम्बानुसार- 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधोयम्' इति।

वेद के स्वरूप के विषय में पश्चिमी विद्वान वेदों को ऋषिप्रणीत मानते है। इतना ही, नहीं सांसारिक उन शब्दराशियों को सामान्य ग्रन्थ ही मानते हैं। परिणामस्वरूप जो ऋषि जिस मन्त्रविशेष से सम्बद्ध है वह उसका कर्ता हुआ। ऋग्वेद में भी कर्तृत्वपद का स्पष्टतया उल्लेख प्राप्त होता है- 'इदं ब्रह्मक्रियमाणं नवीय: (ऋ0 7।35।14), 'ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठा:' (ऋ0 7।37।4), 'ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि' (ऋ0 7।97।9) अनेक मन्त्रों में 'ऋषिप्रणीता एवं वेदमन्त्र: सन्ति' इस कथन का उल्लेख स्पष्टतया प्रतीत होता है। भाषाशास्त्रदृष्टि से मण्डित, आध्यात्मिक भावना से विहीन कतिपय आधुनिक भारतीय पण्डित भी 'ऋषय एव वैदिकमन्त्रणां कर्तृतार: सन्ति' ऐसा मानते हैं और कुछ वेदमर्मज्ञ भारतीय मेधावी उनको ऋषिप्रणीत नहीं मानते हैं। उनका मत यह है कि ऋषि वैदिकमन्त्रों के द्रष्टा है न कि कर्तृता। असङ्ख्य वैदिक मन्त्रों के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि अलौकिक सामर्थ्यशाली ऋषियों ने दिव्य प्रभा से मन्त्रों का दर्शन किया (देखें- ऋ0 7।33,7।13 मन्त्रों में)। कुछ मन्त्रों में मुनि वसिष्ठ द्वारा दिये गये अलौकिक ज्ञान का उल्लेख है (ऋ0 7।87।4, 7।88।4), ऋग्वेद में अनेक जगह वाणी की भव्य स्तुति दृष्टिगोचर होती है। मन्त्रों के प्रकाश का उनकी बुद्धि में आविर्भाव हुआ। जैसे-

टिप्पणी

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्। ऋ0 10।71।3

ऋषिदृष्ट प्रार्थना के अलौकिक फल का निर्देश भी वेद में ही उपलब्ध है (ऋ0 3।53।12, 7।33।3) मन्त्रों में ही वैदिक वाणी की नित्यता के प्रमाण प्राप्त होते हैं, उन प्रमाणों में 'वाचा विरूपनित्यता' (ऋ0 8।75।6) मुख्य है। 'ऋषि' इस पद की व्युत्पत्ति के आधार पर (ऋषति पश्यति इति ऋषिः) अर्थ ही मन्त्रद्रष्टा है। ये ऋषि शब्द 'इगुपधात् कित्' औणादिक सूत्र से इनि प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ। निरुक्त में च विद्यमान होने से 'तद्येनास्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत्....' इत्यादि पङ्क्तयः ऋषियों का मन्त्रद्रष्टृत्व प्रतिपादित होता है। इसप्रकार ऋषि मन्त्रों के द्रष्टा है न कि कर्त्ता।

'ऋषिर्मन्त्रद्रष्टा। ऋषियों ने गत्यर्थत्व र्जानार्थत्व से मन्त्र को देखा।' ('श्वेतवनवासिरचितवृत्तौ' उणादिसूत्रम् 4।129 देखे) और निरुक्त में भी 'तद्येनांस्तपस्यमानां ब्राह्मस्वयम्भ्वभ्यानर्षत् त ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते ऋषिदर्शनात्। मन्त्रान् ददर्श इत्यौपमन्यवः।'

न्यायवैशेषिक के मत में वेद पौरुषेय और नित्य है। परन्तु सांख्य-वेदान्त-मीमांसा के मत में वेद अपौरुषेय है। ये दर्शन उनका नित्यत्व स्वीकार करते हैं। प्रायः स्मृति पुराणों में भी वेद सम्बन्धित उनके जैसी ही भावना प्राप्त होती है, जैसे मीमांसा में प्रकाशित है। मनु वेदों को नित्य और अपौरुषेय मानते हैं। उन्होंने कहा-

'पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः॥' इति

विद्-धातु से घञ्-प्रत्यय करनेपर वेदशब्द निष्पन्न होता है। सामान्यतः यहां विद्-धातु ज्ञानार्थक है। ज्ञायते का अर्थ वेद इस भाव में वेद शब्द की व्युत्पत्ति मानकर वेद शब्द ज्ञानवाची है ऐसा व्यवहार होता है। किन्तु वेद शब्द ग्रन्थवाचक हो तो ''विद्यते ज्ञायते अनेन इति वेदः'' इस प्रकार करण में वेद शब्द की व्युत्पत्ति जाननी चाहिए। जिस ग्रन्थ के द्वारा ज्ञान होता है या जो ज्ञान का साधन है वो ग्रन्थ वेद है। **और न ही अन्य** ज्ञानप्रतिपादक ग्रन्थ वेद है, किन्तु धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति के विषय में अलौकिक ज्ञानराशि के प्रतिपादक ग्रन्थ ही वेद हैं। उसके द्वारा अतीन्द्रियज्ञान प्रतिपादक ग्रन्थ के रूप में वेद शब्द रूढ़ है। विद् धातु के चार अर्थ हैं। और भी विद्-धातु चातुरर्थिक विषय में अन्य एक कारिका-

वेत्ति वेद विद ज्ञाने विन्ते विद विचारणे।
विद्यते विद सत्तायां लाभे विन्दति विन्दते॥ इति

ज्ञानार्थक 'विद ज्ञाने' इति अदादिगणीय विद् धातु से ''विदन्ति जानन्ति एभिः धर्मब्रह्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वा'' इस व्युत्पत्ति से वेद शब्द उत्पन्न होता है। विचारार्थक से 'विद विचारणे' इति रुधादिक होने से विद् धातु ''विन्ते विचारयति धर्मादिकमनेनेति'' व्युत्पत्ति से वेद शब्द उत्पन्न होता है। सत्तार्थक 'विद सत्तायाम्' दिवादि होने से विद् धातु ''विद्यते सत्तावद् भवति वस्तु अनेनेति'' व्युत्पत्ति से वेद शब्द की उत्पत्ति होती है। लाभार्थक 'विदलृ लाभे' इ तुदादि होने से विद् धातु ''विन्दते विन्दति वा स्वरूपं ब्रह्मणः अनेनेति'' व्युत्पत्ति

से वेदशब्द उत्पन्न होता है। कुछ तो 'विद् चेतानाख्याननिवासेषु' चुरादिगणीय धातु से वेदशब्द निष्पादित मानते है। उनके मत में अर्थसंङ्गति इसप्रकार है - 1. चेत्यते ज्ञायते धर्मब्रह्मतत्त्वं येन स इति 2. आख्यायते महतां चरितज्ञातं येन स इति 3. निवसति सर्वदेवगण: पाठकशरीरे येनेति। और मनु ने कहा ''वदोऽखिलोधर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्'' इति। सायण ने भी कहा है - 'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेद' इति।

1.6 वेद शब्द के पर्यायवाची

प्राचीनकाल में गुरुशिष्यों में श्रुतिपरम्परा द्वारा वेदज्ञान धारण कियाजाता था। इसीलिए वेद को श्रुति भी कहते है। उसीको ''गुरुमुखोच्चारणनुच्चारणं'' वेद ऐसा कहते है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ये तीनों वेद त्रयी के नाम से जाने जाते हैं। यद्यपि अथर्ववेद को भी वेद स्वीकार किया गया तो भी इसका सामादि तीनों के अंतर्गत आने वाले यागों के प्रयोग विशेष में अभाव के कारण पृथक् उल्लेख नहीं किया गया। किन्तु इसका वेदत्व अक्षत है। तथा बृहदारण्यकोपनिषद् में भी कहा गया है कि- 'अस्य महतो भूतस्य नि:श्वसितमेतद् ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस'। प्रधान याग सम्बन्धि अभावों में भी अभिचार आदि यागों में शान्ति और पौष्टिक आदि कर्मों में अथर्ववेद के मन्त्र प्रयुक्त होते हैं। पुरुषार्थो में मोक्ष ही इसका मुख्य वर्णन अथर्ववेद में है, और मोक्ष उपाय ही केवल इसका वेदत्व नही है, अपितु ''अयमात्मा ब्रह्मेति'' महावाक्य माण्डूक्य आदि के आत्म ज्ञान उपदेश का उपनिषदो में इस गुरु के गुरुत्व होने में अन्य वेदो को अलग करता है, ऐसा वेदान्तियों का मत है।

यह सब छोडकर भी आम्नाय, आगम, अनुश्रव छन्द ये वेद के पर्यायवाची हैं। जो सही रूप से जीवन जीने का वर्णन करे वह आम्नाय वेद कहलाता है। प्राचीन काल में पाठक गुरुमुख उच्चारण के पीछे अनुच्चारण द्वारा श्रवण कर और कण्ठस्थ कर वेदाभ्यास किया करते थे। इसलिए ही वेद आम्नाय इस नाम से जाना जाता है।

वेद के अन्य नाम आगम अथवा निगम है। तथा हि वेदार्थ में आगम निगम शब्द का प्रयोग बहुत जगह देखा जाता है। और पतंजलि ने कहा है रक्षा उह आगम लघु असन्देह मुख्य प्रयोजन है। श्रीधारस्वामी ने भागवत व्याख्या में निगम को ही वेद कहा है, वह ही कल्पवृक्ष सभी पुरुषार्थ के उपाय है। स्वाध्याय भी वेद का पर्यायवाची है। और वेदपाठी को स्वाध्याय (वेद) पढ़ना चाहिए। छन्दांसि छादनात् इस व्युत्पति से छन्द-शब्द वेद मन्त्र वाचक है।

पाठगत प्रश्न 1.4

35. बह्वृक्प्रातिशाख्य में क्या कहा गया है?

36. सायण ने भाष्यभूमिका में वेद शब्द के विषय में क्या कहा है?
37. न्याय वैशेषिक के मत में वेद कैसा है?
38. किन के मत में वेद अपौरुषेय हैं?
39. विद्-धातू के चार अर्थ बताओ?
40. विचारार्थक विद्-धातू से क्या रूप बनता है?
41. मनु ने वेद के विषय में क्या कहा है?
42. सायण के मत में वेद का लक्षण बताओ?
43. भाष्यभूमिका में वेद का क्या लक्षण किया गया है?
44. वेद शब्द के पर्यायवाची शब्द बताओ?
45. वेद शब्द किस धातु से बना?
46. वेद शब्द कैसे निष्पन्न होता है?
47. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदि के चुरादिप्रकरण में किन अर्थों में विद्-धातू का प्रयोग किया गया। और वे अर्थ कौन-कौन से हैं?
48. ज्ञानार्थक विद्-धातु से घञ्-प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुए 'वेद' शब्द का क्या अर्थ है?
49. विचारार्थक विद्-धातू से अच्-प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुए वेद शब्द का क्या अर्थ है?
50. वेद ऋषियों द्वारा प्रणीत नहीं हैं ऐसा कौन मानते हैं?
51. ऋषि शब्द का क्या अर्थ है?
52. ऋषि शब्द कैसे निष्पन्न होता है?
53. न्याय और वैशेषिक के मत में वेद कैसे होते हैं?
54. मनु के मत में वेद कैसे हैं?

1.7 वेद पौरुषेय या अपौरुषेय पर विचार

मीमासंक सांख्य वैदान्तिक नैयायिक मत - वेद अपौरुषेय है ऐसा वेदान्ती स्वीकार करते है। मीमांसक भी वेदों के अपौरुषेयत्व को मानते है। अत: कोई भी मरणधर्मा वेद का कर्ता नहीं है। और ईश्वर भी उसका कारक नहीं है। वह स्मर्ता ही है। इसीलिए

आम्नात को इसका महान कर्ता माना क्योंकि ये ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद है। भ्रम-प्रमादादि-पुरुषदोष से रहित होने से वेद अपौरुषेय है। भ्रम प्रमाद विप्रलिप्सा और साधानपटुता ये पुरुषदोष है। प्रत्येक कल्प में परमेश्वर वेद का बार बार उपदेश करता हैं।

इसलिये पराशरसंहिता में कहा है-

> **''न कश्चिद् वेदकर्तास्ति वेदस्मर्ता चतुर्मुखः।**
> **ब्रह्माद्या ऋषयः सर्वे स्मारका न तु कारकाः॥'' इति**

ऋषि भी वेदकर्ता नही है। वे भी तपस्या से वेदमन्त्रों का दर्शनकर लोक व्यवहार को जानकर लोक में प्रचार करते है। इसीलिए कहा है कि-

> **''युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।**
> **लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा॥'' इति**

उनका यह अभिप्राय है कि वेद अनादि हैं। उनकी उत्पत्ति कब हुई और, किस प्रकार हुई ये कोई नही जनता है। अनादि होने से वेदों की अनन्तता भी सिद्ध है। अनादि वेद ही अनाद्यनन्त ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं। ब्रह्मविषय में या पारलौकिक विषयों के विषय में, मोक्षादि का वेद ही प्रमाण है। ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म'' यह श्रुति सृष्टी के कारणरूप का प्रतिपादन करती है। शास्त्रों में नित्यता से ब्रह्मसूत्र ब्रह्म के विषय में ब्रह्मशब्दवाच्यभूत वेद ही प्रमाण हैं ऐसा प्रतिपादन करते हैं। वेद की अपौरुषेयता कहने वाले भी मानते है की सृष्टि के आदि में भगवान् पूर्वकल्प के समान पुनः वेद को बार-बार ब्रह्म को उपदेश देते हैं। मीमांसक ऐसा मानते हैं कि शब्द नित्य है। शब्द का नित्यत्व केवल उच्चारण द्वारा प्रकट होता है न कि निर्मीत होता है। वेदों का शब्दात्मक होने से नित्यत्व है। और नित्यत्व होने से अपौरुषेयत्व है-

सांख्य और वैदान्तिक वेद के संकेत अक्षरों की नित्यता को अस्वीकार करते हुए भी प्रवाह को नित्य मानते है। नैयायिक विद्वान् मानते है कि वेद तो पौरुषेय है, महाभारत आदि वाक्य के समान वेद भी पुरुषबुद्धिपूर्वक रचित है न कि जड़ आदि वेदकर्ता है। वेद भ्रम-प्रमादादि रहित है और ईश्वर भी अतः ईश्वर ही वेदकर्ता है इसीलिए वेद अपौरुषेय है। ईश्वरप्रणीत होने से ही वेद की प्रामाणिकता सिद्ध है। शब्दों के अनित्यत्व से वेदों की भी अनित्यता सिद्ध होतीहै। इस प्रकार वेदों का कर्ता सर्वज्ञ ईश्वर ही है। सर्वज्ञ ईश्वर ही सकल प्रकार से ज्ञान विज्ञान सम्पन्न वेद रचकर ब्राह्मणों को दिया। वेद उसकी सहज निर्दिष्टी है वेद वाक्य का अभिप्राय है कि, जिस प्रकार से जीव विना प्रयास के निःश्वसन करता है, उसके समस्त कार्य ही सहजगतिसे होते हैं। उसी प्रकार सर्वज्ञता से विना प्रयास के ही वेदों कानिर्माण या प्रतिपादन करता है।

आधुनिकमत - अर्वाचीन वैदेशिक प्रभाव से प्रभावित विचारका प्रतिपादन करते हैं कि

वेद ऋषिकृत है। वे कहते है कि जिस ऋषि का सम्बन्ध जिस मन्त्र के साथ है वह ही ऋषि उस मन्त्र का प्रणेता है। 'इदं ब्रह्मक्रियमाणं नवीयः', 'ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः' 'ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि' इत्यादि वाक्यों द्वारा प्रतीत होता है कि वेद ऋषिकृत ही है।

किन्तु भारतीय मनीषियों का अभिप्राय है कि ऋषि मन्त्रकर्ता नहीं है, अपितु वे अपौरुषेय वेदमन्त्रों के साक्षात्कर्ता है। मन्त्र द्रष्टृत्व रूप ही उनका ऋषित्व है और वेद अपौरुषेय होने से पौरुषेयकृति में उत्पन्न भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, साधानपटुता दोष से रहित है।

1.8 वेदकालक्षण

आपस्तम्ब ने वेद लक्षण को उल्लिखित करते हुए मन्त्र ब्राह्मण को वेद नाम से जाना जाता है। सायण ने भी ऋग्वेद भाष्य में उदृत वेदलक्षण के बारे में कहा है मन्त्र ब्राह्मण की शब्द राशि ही वेद है। मन्त्र मनन करने से। जिससे कर्म उसके उपकरण देवता आदि का ज्ञान होता है वह मन्त्र है। मन्त्रों के द्वारा हि आध्यात्मिक आधिदैविक आधियाज्ञिक विषय का बोध अच्छी प्रकार से होता है। इसलिए मन्त्रो का मन्त्रत्व है। अथवा जिनके मनन से आपत्तियों से मनुष्य रक्षा को प्राप्त करता है वे मन्त्र है। चारो वेदों की संहिता ही मन्त्र पद वाच्य है। मन्त्र ही संहिता है। वैदिक संहिता छन्दोबद्ध पद रचनात्मक होती है। ब्राह्मण ग्रन्थ तो हमेशा गद्यात्मक ही होते है। वैदिक संहिता एक और अखण्ड है। कहा भी जाता है की कृष्णद्वैपायनव्यास ने ही वेद को चार भागों में विभक्त कर संहिता सामसंहिता, यजुःसंहिता, अथर्वसंहिता नाम दिए।

जिससे प्रसन्न और स्तुति की जाए वह ऋक्। जैमिनि द्वारा ऋग्लक्षणकिया गया है 'तेषामृक् यत्र अर्थवशेन पादव्यवस्था' इति। ऋग्वेद ही सर्वप्रथम रचित हुआ था। अत एव ऋक्मन्त्रों का अभिधान हुआ है। अन्य वेदों का जो विधान है वह शिथिल क्रम में हुआ / ऋग्वेद में जो विधान है वह प्रबल होता है। और भी आम्नात तैत्तिरीयसंहिता में 'यद्वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तद्, यदृचा तद् दृढमिश्ति। सामवेद का लक्षण 'गीतिषु सामाख्या' है। सामवेद गीतिपरक मन्त्र हैं। यजु का लक्षण 'शेषे यजुःशब्द' है। यजुर्वेद में ही सभी यज्ञ आदि विधानों का वर्णन है- 'अनियताक्षरावसानो यजुः' यह यजुर्वेद का लक्षण किया है। जहां अक्षरों की संख्या नियत या निश्चित नहीं है वो यजुर्वेद है। यजुर्मन्त्र भी गद्यात्मक होते है - अतः ऋक्-सामविलक्षण गद्यात्मक मन्त्रों का संग्रह यजुर्वेद है। शुक्लयजुर्वेद, कृष्णयजुर्वेद यजुर्वेद के दो भाग है। शुक्लयजुर्वेद में दर्शपूर्णमासादियाग के मन्त्र संकलित है- कृष्णशाखा में मन्त्र और ब्राह्मण का मिश्रण है- अथर्व मन्त्रों का कोई विशेष नहीं है- वेदान्त मन्त्र यहां मुख्यतः समाविष्ट हैं। अभिचारादिकर्म में अथर्ववेदीय मन्त्रों का उपयोग होता है।

प्राचीनकाल में महर्षि वैशम्पायन ब्रह्महत्या पाप से पातक होने पर शिष्यों को बुलाकर कहा आप सब में से कौन गुरू के पापक्षालन के लिए तप आचरण करना चाहता है। याज्ञवल्क्य ने कहा 'भगवन, हीनविद्या से युक्त अन्य शिष्यों के तप द्वारा पापक्षालन दुष्कर

है। मेरे अकेला ही तप से तुम्हारे पाप नष्ट कर सकता हूं। 'शिष्य के अविनय से क्रुद्ध गुरु ने दी गई विद्या का प्रत्यर्पणपूर्वकं आश्रम त्याग का आदेश दे दिया। याज्ञवल्क्य भी सपद्य अधीत वेदविद्या का वमन कर देते हैं। तब गुरु की आज्ञा से अन्य शिष्यों ने तितर पक्षी-कीट रूप में उद्गीर्ण विद्या स्वीकार की। अत एव उनके द्वारा प्रचारित वह वेदसंहिता तैत्तिरीय संहिता इस नाम से जानी जाती है। याज्ञवल्क्य ने तब सूर्य से वेद विद्या प्राप्त करने के लिए सवितृदेव को स्तवन द्वारा प्रसन्न किया। सूर्य देव ने भी वाजि के रूप में याज्ञवल्क्य को उपदेश किया। वाजि नाम सूर्यरश्मी का है, सनिशब्द धनवाची है। सूर्यकिरण से यह वेदधन प्राप्त किया तब वह वाजसनेय संहिता नाम से लोक में प्रसिद्ध हुई- उद्गीर्ण वस्तु तामसिक होने से तैत्तिरीय संहिता कृष्णयजुर्वेद द्वारा कही गई है। सूर्य सहायता से जो वेद विद्या सीखी गई थी वह सात्त्विक व शुक्लत्व है।

वेदवृक्ष की बहुत शाखा है। गुरु शिष्य परम्परा में वेदाध्ययन में स्वराद्युच्चारण शैली भेद दिखाई देता है- उन्ही से वेदशाखा की उत्पत्ति हुई। इतना ही नहीं ॠग्वेद में चौबीस ॠक्शाखा समुपलब्ध होती है - शाकल-मुद्गल-गालव-वास्कलादि। उनके मध्य में शाकल-वास्कलशाखा आज भी समुपलब्ध होती है। जैमिनि-सुमन्तु-सुकर्म अनेक शाखा सामवेद की प्रसिद्ध है। त्वरक-कठादि कृष्ण की। जाबालि-काण्व-माध्यन्दिनादि शाखा शुक्लयजुर्वेद में प्रसिद्ध है। अथर्ववेद की पैप्पलाद-प्रभृतिशाखा प्रसिद्ध है। वस्तुत: किस वेद की कितनी शाखा है ऐसा विचारण अतीव कठिन है। महाभाष्य पस्पशाह्निक में भाष्यकार पतंजलि ने कहा - 'एकविंशतिधा वा, एकशतमधवर्युशाखा:, सहस्रवर्त्मा सामवेद' इति।

अत: शाखा शब्द से संहिताभेद नहीं होता है। किन्तु अध्ययनभेद होता है। इसीलिए वेदज्ञ सत्यव्रतसामाश्रमवासी ने कहा 'शाखा भेद केवल अध्ययनभेद है न की ग्रन्थभेद' एक एक वेद की अनेक शाखा होने पर भी तात्त्विकभेद का अभाव है।

इसप्रकार यह क्रम से समस्त मन्त्र पदों का उच्चारण होता है, वह माला पाठ है। रेखा पाठ में भी कंही यथाक्रम कंही विपरीत क्रम कंही दो पदों का कंही तीन पदों का एकत्र पाठ होता है। जटापाठ का ही अनुरूप दिखता है शिखापाठ में। यहा मध्य- मध्य में तृतीय षष्ठ नवम चरण में तीन तीन पद होते हैं- ध्वजपाठ में भी पहले तो क्रमपाठ के समान छ: पदों का उच्चारण कर वापस उन्ही छ: पदों का विपरीत उच्चारण करते है- जहां क्रम पाठ के दो-दो पद यथाक्रम तीन-तीन बार उच्चारित होते हैं- द्वितीय बार में तो व्युत्क्रम पाठ होता है, वह दण्ड पाठ है। रथ पाठ में भी क्रम पाठ का और उसके विपरीत क्रम का सङ्गम दिखता है। घन पाठ भी विलक्षण और क्लिष्ट होता है। वहां अनुलोम-विलोम क्रम से पदों की बार-बार आवृति उत्पन्न होती है। ये एकादश पाठ निर्भुज-प्रतृणभेद से दो है- मूल का अविकृत पाठ निर्भुज है। संहितापाठ ही निर्भुजपाठ है- उसको छोडकर अन्य विकृतपाठ प्रतृणा कहलाते है।

वेद के विविधा विभाग आगे दिखाएगे।

पाठगत प्रश्न 1.5

55. न्यायमत में वेद पौरुषेय है या नहीं?

56. मीमांसामत में वेद पौरुषेय है या अपौरुषेय?

57. वेद की प्रवाहनित्यता कौन मानते हैं?

58. निर्भुजपाठ क्या है?

59. शुक्लयजुर्वेद में शाखा प्रसिद्ध है?

60. वाज नाम किसका है? सनि शब्द का अर्थ क्या है?

61. ऋक्शब्द की क्या व्युत्पत्ति है?

62. किस वेद में दर्शपूर्णमासादियाग के लिए मन्त्र संकलित है?

63. अभिचारादि कर्म में किस प्रकार के मन्त्रों का उपयोग होता है?

64. जैमिनि द्वारा ऋक्लक्षण क्या है?

1.9 अथ संहिता

आपस्तम्भ में वेद का लक्षण कहा है कि **मन्त्रब्राह्मणयोः वेदनामधेयम्।** जहां मन्त्र तथा उनके प्रयोग निर्धारक ब्राह्मण होते हैं वह वेद हैं। उपोद्घातभाष्य में सायणाचार्य ने भी अनुरूप लक्षण कहा है – **'मन्त्रब्राह्मणात्मकशब्दराशिर्वेदः'** इति। मन्त्र और संहिताभाग पर्याय है, सन्निकर्ष रूप धारण करता है या सम्यक् रूप से धारण करते है मन्त्रों को जिसमें ऐसा यहां विग्रह में सम्पूर्वक डुधाञ् धारणपोषणयोः इति धातु से क्त प्रत्यय और स्त्रीलिंग में टाप प्रत्यय होने पर संहिताशब्द निष्पन्न होता है। निष्कर्ष यह है कि मन्त्र जहां होते हैं वह संहिताभाग है।

शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदान्ते शाखिनोऽभवन् इस भागवत वचन से गुरु-शिष्य-प्रशिष्य-परम्परा से वेद की रक्षा से देशकालव्यद्रिभेद से वेदपाठ की विभिन्नता से अनेक शाखा हो गई। किस वेद में कितनी शाखा है इस विषय में महाभाष्यकार पतञ्जलि का वचन सुप्रसिद्ध है –

> **''एकविंशतिधा बाहवृच्यम् सहस्रवर्त्मा सामवेदः।**
> **एकशतमधवर्युशाखाः नवधाथर्वणो मतः।'' इति।**

ऋग्वेद की एकविंशति शाखा है, शाखा विषय में विद्वानों में मतभेद होता ही है। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने तो इसकी पञ्चदश शाखा प्रतिपादित की है। ऋक्संहिता की प्रसिद्ध पंच शाखा

है - शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शांखायन, माण्डूकायन। सामवेद की हजार शाखा थी परन्तु अब केवल तीन शाखा प्राप्त होती है - कौथुमी राणायणीय जैमिनीय।

यजुर्वेद की सौ शाखा थी। कृष्णयजुर्वेद की प्रसिद्ध शाखा है तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ, कपिष्ठल और शुक्लयजुर्वेद की वाजसनेयी, माध्यन्दिनी, काण्व शाखा प्रसिद्ध है।

अथर्ववेद की नौ शाखा थी। अब दो शाखा प्राप्त होती है शौनक, पिप्पलाद।

1.10 अथ ब्राह्मण

ब्राह्मण शब्द का विविध अर्थ है उनमे ब्राह्मण भी है। ''**तस्माद् वेदमधीते तद्वेद वा**' ऐसा विग्रह होने पर ''**तदधीते तद्वेद**'' इस सूत्र के द्वारा ब्रह्मन् शब्द से अण्प्रत्यय करने प्र ब्राह्मण शब्द की निष्पत्ति हुई। अथवा ब्रह्म ही ब्राह्मण है। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है कि '**ब्रह्म वै ब्राह्मणः**' इति। दयानन्द सरस्वती मत में पुरोहित ही ब्राह्मण है, उनके द्वारा निष्पाद्य यागादि विधि जहां उपदिष्ट है वो ब्राह्मण है। उन्होंने कहा है - ''**चतुर्वेदविद्भिर्ब्रह्मभिर्ब्राह्मणैर्महर्षिभिः प्रोक्तानि यानि वेदव्याख्यानानि तानि ब्राह्मणानि**'' इति। जैमिनि ने तो 'शेषे ब्राह्मणशब्दः' ऐसा ब्राह्मणलक्षण कहा है। मन्त्रांश को छोडकर वेद का अवशिष्ट भाग ब्राह्मण है। आपस्तम्भ में कहा है 'कर्मचोदना ब्राह्मणानि' इति। यागादि क्रिया विधि जहां वर्णित वह ब्राह्मण है। ब्राह्मणों में वर्णन करने वाले विषय षट् है - विधि, अर्थवाद, निन्दा, प्रशंसा, पुराकल्प, प्राकृति।

ऋग्वेद के ऐतरेय और कौषीतकि या शांख्यायन दो ब्राह्मण है। सामवेद के ब्राह्मणों में प्रसिद्ध है पंञ्चविंश षड्विंश छान्दोग्यं, जैमिनीय तलवकार या सामविधान, आर्षेयः, वंश, देवताध्यायन इति। शुक्लयजुर्वेद का शतपथब्राह्मण, कृष्णयजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण। अथर्ववेद का गोपथ नामक एक ही ब्राह्मण है।

1.11 अथ आरण्यक

आरण्यक ब्राह्मणों के परिशिष्ट होते हैं। आरण्यकों में अध्यात्म तत्त्व आलोकित हैं। और निष्काम भाव से यागादि कर्म भी वहाँ उपदिष्ट हैं। अरण्य में पढ़े जाने के कारण इसका आरण्यक नाम रखा गया। तथा अरण्य शब्द से वुञ्प्रत्यय करने पर आरण्यक शब्द निष्पन्न होता है।

आरण्यक के विषय में भाष्यकार सायण ने कहा कि-

> **'अरण्याध्ययनादेतदारण्यकमितीर्यते।**
> **अरण्ये तदधयेतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते।'**

ऋग्वेद के दो आरण्यक प्राप्त होते हैं ऐतरेय और सांख्यायन। सामवेद का आरण्यक

टिप्पणी

छान्दोग्यारण्यक है। शुक्लयजुर्वेद का आरण्यक वृहदारण्यक है। कृष्णयजुर्वेद के तैत्तिरीय और मैत्रायणीय दो आरण्यक हैं, अथर्ववेद का एक भी आरण्यक नहीं है।

1.12 अथ उपनिषद्

आरण्यक का ही सारभूत उपनिषद् हैं। आरण्यक में प्रारम्भ की गई अध्यात्म तत्त्व की आलोचना उपनिषदों में ही परम् स्फूर्ति को प्राप्त होती है तथा समाप्त होती है। वेद के अन्तिम लक्ष्य होने से ये उपनिषद् वेदान्त कहलाते हैं। (वेद का अन्त वेदान्त, अन्त शब्द के यहाँ दो अर्थ हैं सारभाग तथा अन्तिम अंश।) उप+नि+पूर्वक विशारण गत्यवसादनार्थक सद् धातु से णिच् तथा क्विप् प्रत्यय करने पर उपनिषद् शब्द की निष्पत्ति होती है ऐसा शङ्कराचार्य ने कहा। उप् शब्द का सामीप्य तथा सत्व अर्थ है तथा नि शब्द निश्चयार्थक है उससे शीघ्र व निश्चय संसारी जनों को संसार सारमति प्राप्त होती है शिथिल होती है 'परमश्रेय रूप प्रत्यगात्मा को प्राप्त कराता है या ज्ञान कराता है, दुःख जन्मादि मूल अज्ञान को हटाता है या नाश करता है उपनिषत् के पद ज्ञान द्वारा। उपनिषद्विद्या ब्रह्मविद्या या रहस्यविद्या होती है। ऋग्वेद के उपनिषद ऐतरेय और शांखायन, सामवेद के छान्दोग्य केनोपनिषद्, कृष्ण यजुर्वेद के कठ-श्वेताश्वतर-महानारायण उपनिषद है- शुक्ल यजुर्वेद ईश और वृहदारण्यक, अथर्ववेद के प्रश्न मुण्डक, माण्डुक्य, उपनिषद् प्रधानरूप से उपलब्ध होते है। शङ्कराचार्य ने दश प्रसिद्ध उपनिषदों पर भाष्य लिखा है- जैसे -

'ईशकेनकठप्रश्नमुण्डमाण्डुक्यतैत्तिरिः।
ऐतरेय्च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा॥'

कुछ विद्वान कहते है कि श्वेताश्वतरोपनिषद् भाष्य भी शङ्कराचार्य ने किया। किसी अन्य ने नहीं।

यह वेदज्ञान ब्रह्म ने भारद्वाज के लिए प्रदान किया, भारद्वाज से अंङ्गिरस ने, आङ्गिरस से शौनक ऋषि ने एवं उत्तरोत्तरकाल में बहूत ऋषियों ने यह ज्ञान प्राप्त किया। परन्तु कालक्रम में आयु और बुद्धि के ह्रास से एक व्यक्ति समग्रवेद को गंभीरतया पढ़ने और पढ़ाने में असमर्थ था अतः व्यास महर्षि ने वेदों को चार भागों में विभक्त कर अपने शिष्यों में (ऋग्वेद जैमिनि को, सामवेद वैशम्पायन, यजुर्वेद और अथर्ववेद सुमन्तु को) वेद रक्षण कार्य प्रदान किया। भागवत में कहा भी गया है -

''पराशरात् सत्यावत्यामंशांशकलया विभुः।
अवतीर्णो महाभागो वेदं चक्रे चतुर्विधाम्॥'' इति।

पाठगत प्रश्न 1.6

65. आपस्तम्भ में वेद लक्षण क्या है ?



टिप्पणी

66. महाभाष्य कार पतंजलि के मत में ऋग्वेद की कितनी शाखाएं हैं ?

67. सामवेद की एक शाखा का नाम क्या है ?

68. माध्यन्दिनी शाखा किस वेद की है ?

69. अथर्ववेद की कितनी शाखायें थीं?

70. आपस्तम्भ में कहा गया ब्राह्मण लक्षण क्या है ?

71. ब्राह्मणों में वर्णित छह विषय कौन से हैं?

72. शतपथ ब्राह्मण किस वेद का है ?

73. अथर्ववेद के ब्राह्मण का नाम क्या है?

74. आरण्यक शब्द किस प्रत्यय से निष्पन्न है ?

75. ऋग्वेद के दो आरण्यकों के नाम क्या है?

76. उपनिषद् शब्द का दूसरा नाम क्या है ?

77. उपनिषद् में सद् धातु किस अर्थ में है ?

78. कठोपनिषद् किस वेद में है?

79. महर्षि वेदव्यास ने सामवेद का उपदेश किसको दिया ?

1.14 ऋग्वेद

''ऋच्यते स्तूयते यया सा भवति ऋक्'' इति ऋच् स्तुतौ से क्विप् प्रत्यय से यह शब्द निष्पन्न हुआ। स्तुतिपरक होने से ऋक् है। पूर्व मीमांसाकार जैमिनि के मत में जहाँ अर्थानुसार पाद व्यवस्था विहित है वह ऋक् होता है। उन्होंने कहा भी है कि – **''तेषामृक् यत्र अर्थवशेन पादव्यवस्था''** ऋक् का स्वरूप तैत्तिरीयोपनिषद् में भी वर्णित हैं – **''यद्वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तद् यद् ऋचा तद्दृढमिति''।** ऋक्संहिता के विभाग प्रकार दो प्रकार से विभक्त होते हैं– पहला तो इस प्रकार – मण्डल, अनुवाक, सूद्र, ऋक् इति। दूसरा-अष्टक, अध्याय, वर्ग, मन्त्र। पहला प्रकार से ऋक्संहिता में दस (10) मण्डल, पिच्चासी (85) अनुवाका, एक हजार सत्रह (1017) सूक्त, दस हजार एक सौ छ (10600) ऋचाएं है– ऋग्वेद की शाकल बाष्कल शाखा के मध्य शाकल शाखा में बालखिल्यर्षि दृष्ट ग्यारह बालखिल्य सूक्त नहीं गिने गये है, उनको छोड़कर ऋक्संहिता में एक हजार सत्रह (1017) सूक्त है– दूसरा विभागप्रकार से ऋक्संहिता में आठ (8) अष्टक, चौंसठ (64) अध्याय, दो हजार छः (2006) वर्ग है। सम्पूर्ण ऋक्संहिता में चार लाख बत्तिस हजार (432000) अक्षर हैं।

टिप्पणी

1.15 अथ सामवेद

स्यति श्रवणमात्रेण पापानि नाशयति इति, स्यति यहां गानसुधा सेचन द्वारा यज्ञानुष्ठान कर्ता के कर्मानुष्ठान से उत्पन्न पाप नष्ट होते है। विग्रह अर्थ में **''षोऽन्तकर्मणि''** इस धातु से कर्ता अर्थ में मणिन् प्रत्यय से सामशब्द की निष्पत्ति होती है। कुछ तो **''सामसान्त्वप्रयोगे''** इति चुरादिगणीय धातु से भी सामशब्दोत्पत्ति मानते हैं। **उनके मत में सामयति गूढतत्त्वं गीतद्वारा वेदप्रतिपत्तारं बोधायित्वा तं सान्त्वयति इति साम।** ऋचाओं में गीतोचित स्वरों के होने से साम उत्पन्न होता है बृहदारण्यक में कहा गया है। **सा (ऋक्) च अमः (गीतोचितस्वरः) च तत्साम्नः सामत्वम्** जैमिनि द्वारा ऋग्वेद के मन्त्रों में जो ऋचाएं गीत रूप में उपस्थापन योग्य है वो सामवेद द्वारा कही गई है ऐसा वर्णन प्रतिपादित किया गया है। अतः उसका निष्कर्ष भूत लक्षण होता है **'गीतिषु सामाख्या'** इति। सायणाचार्य के द्वारा भी सामवेद भाष्य भूमिका में कहा गया है – **'गीयमानस्य साम्नः आश्रयभूता ऋचः सामवेदे समाम्नायन्ते'** इति। सामवेद संहिता में अठारह सौ दस (1810) मन्त्र विद्यमान है। इनमें 85 तो केवल अपने बचे हुए ऋग्वेद से लिए गये है। कौथुमी शाखा के मत में सामवेद संहिता पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक भेद से दो प्रकार है। यहाँ प्रथम पूर्वार्चिक प्रपाठकों द्वारा प्रपाठक दशती में विभक्त है। प्रत्येक दशती में दश मन्त्र है – इसप्रकार सम्पूर्ण सामसंहिता में पूर्वार्चिक में पांच सौ पच्चासी (585) मन्त्र है। इसी प्रकार उत्तरार्चिक में चार सौ (400) स्तोत्र है। और प्रत्येक स्तोत्र में तीन या चार ऋचाएं है। यह सामगान चार प्रकार से विभक्त है –ग्रामगेय, अरण्यगेय, ऊहगान, और ऊह्यगान।

1.16 अथ यजुर्वेद

यज्यतेऽस्मिन् इति इस विग्रह पूर्वक यज् देव पूजा सङ्गति करण दानेषु इस धातू से उसि-प्रत्यय करने पर यजु शब्द निष्पन्न होता है। यजुर्वेद के मन्त्र देवों की आहुतिपरक हैं, जिन मन्त्रों में अक्षरों की संख्या नियत रूप से विद्यमान न हो वे यजुर्मन्त्र कहलाते हैं। कहा भी गया है– **''अनियताक्षरावसानो यजुः'' ''गद्यात्मको यजुः''**। जैमिनि ने तो ऋग्वेद के मन्त्रों और सामवेद के मन्त्रों को छोड़कर अवशिष्ट वेदमन्त्र यजु हैं ऐसा प्रतिपादित किया। तथा उसका लक्षण इसप्रकार किया– **''शेषे यजुश्शब्दः''**। यज्ञ के साथ सम्बद्ध यजुर्मन्त्रों का यजुर्त्व वायुपुराण में वर्णित है–

> **''यच्छिष्टञ्च यजुर्वेदे, तेन यज्ञमयुञ्त।**
> **यजनाद्धि यजुर्वेद, इति शास्त्रस्य निर्णयः॥''**

यजुर्वेद के दो भेद शुक्ल और कृष्ण यजुर्वेद हैं। सूर्य से प्राप्त होने तथा सात्विक होने के कारण एवं मन्त्र और ब्राह्मण के पृथक् प्रयोग होने से शुक्लत्व। उद्गीर्य के तामसिकत्व के कारण तथा मन्त्र एवं ब्राह्मण के मिश्रित होने से कृष्णत्व। शुक्लयजुर्वेद के माध्यन्दिनशाखा

में चालीस अध्याय (40) एक सौ तीन अनुवाक (303) तथा उन्नीस सौ पचहत्तर (1975) कण्डिका हैं। काण्व शाखा में तो चालीस अध्याय (40) तीन सौ अट्ठाईस (328) अनुवाक और दो हजार तीन (2003) मन्त्र हैं। कृष्णयजुर्वेद के अन्तर्गततैत्तिरीय शाखा में सात (7) काण्ड, चवालीस (44) प्रपाठक (प्रश्न) छह सौ इक्यावन (651) अनुवाक हैं।

1.17 अथ अथर्ववेद

''आनन्तर्ये परब्रह्म गमयति प्रापयतीति वा'' विग्रह में अथ पूर्वक ''ॠ गतिप्रापणयो:'' धातु से वनिप्प्रत्यय करने पर अथर्व शब्द की उत्पत्ति होती है। जल्दी ही परब्रह्म की प्राप्ति जिससे होती है वह अथर्व होता है।

अथर्ववेद में बीस (20) कण्डिका, अड़तीस (38) प्रपाठक, नब्बे (90) अनुवाक्, सात सौ इक्कत्तिस (731) सूक्त तथा प्राय: छह हजार मन्त्र अथर्वेद में हैं।

पाठगत प्रश्न 1.7

80. ऋक्-शब्द का निर्वचन क्या है?
81. ऋक्संहिता के विभाग के दो प्रकार कौन से हैं?
82. समग्र ऋक्संहिता में कितने अक्षर हैं?
83. साम शब्द किस धातु से निष्पन्न होता है?
84. सामवेद का लक्षण सायणाचार्य के द्वारा क्या किया गया?
85. सामवेद में स्वयं के कितने मन्त्र हैं?
86. सामगान कितने प्रकार से विभक्त है, और उनका नाम बताओ?
87. देवों के आहुति परक मन्त्र कौन से हैं?
88. यजुर्वेद के दो भेद कौन से हैं?
89. अथर्व शब्द किस धातु से निष्पन्न होता है?
90. अथर्व वेद में कितनी कण्डिका हैं?

1.18 वैदिक स्वर

सभी अक्षर स्वर और व्यञ्जन भेद से दो प्रकार से विभक्त हैं। स्वयं राजन्ते इति स्वरा:।

टिप्पणी

अर्थात् इनके उच्चारण में अन्य वर्ण की सहायता अनावश्यक है। इन स्वरों के उदात्त अनुदात्त स्वरित भेद से तीन धर्म हैं। जिस स्वर का उदात धर्म होता है वह स्वर उदात्त स्वर कहलाता है। जिस स्वर का अनुदात्त धर्म होता है वह स्वर अनुदात्त स्वर कहलाता है। जिस स्वर का स्वरित धर्म है वह स्वर स्वरित स्वर होता है। यह सारा स्वर प्रपञ्च शिक्षा ग्रन्थ में विस्तरशः वर्णित है। पाणिनीय तन्त्र में स्वर का दूसरा नाम अच् है।

उदात्त और अनुदात्त ये दो वर्ण धर्म जिस स्वर में समाहित होते हैं वह स्वर स्वरित संज्ञक है। जिस स्वर में उदात्त अनुदात्त ये दो वर्ण धर्म मिला होता है वह स्वर संज्ञी है। स्वरित उसकी संज्ञा है। स्वर का ज्ञान स्वर के उच्चारण स्थानों से जानना चाहिए।

वर्णो के उच्चारण का स्थान

वर्णों के उच्चारण के लिए मुख के विविध स्थान उपयोग में आते हैं। वे स्थान आठ है। यहाँ पाँच स्थान ही बताए गये हैं।

गले में या ग्रीवा भाग के सम्मुख में उन्नत भाग होता है। वह ठोड़ी के निचले भाग में होती है। उसका नाम काकलक है। उसी को लोक में कण्ठमणि कहते है। काकलक से प्रारम्भ होकर होठ तक पञ्च स्थान उच्चारण के लिए ग्रहण किये जाते है। वे इस प्रकार है - (1) कण्ठ (2) मूर्धा (3) तालु (4) दन्त (5) औष्ठ इति।

अवर्ण के उच्चारण के लिए श्वास नलिका का आकुञ्चन किया जाता है। नलिका का जो अंश आकुञ्चित होता है उसका नाम कण्ठ है। मुख विवर के उपरि भाग में गोलाकार उन्नततम स्थान मूर्धा होता है। वहां से लेकर दन्त पर्यन्त विस्तीर्ण भाग का जो मध्य बिन्दु है वह तालु कहलाता है। दन्त दस प्रसिद्ध है। और दो होठ।

उदात्त कौन होता है -

कण्ठ भाग जिनके उच्चारण के लिए उपयोगी होता है उसके दो भाग करने चाहिए। ऊर्ध्व भाग और अधो भाग। पाणिनी सूत्र हैं - उच्चैरुदात्तः।

यहाँ उच्चै इस शब्द का अर्थ - ऊर्ध्व भाग में। उच्चै का अर्थ यहाँ उच्च या तीव्र ध्वनि नहीं है। कण्ठ के ऊर्ध्व भाग से प्रयास करने से जो स्वर उत्पन्न होता है वह उदात्त कहलाता है।

यथा कण्ठ के भाग मानते हैं जैसे ऊर्ध्व भाग और अधो भाग। वैसे तालु के, मूर्धा के, दन्त के, ओष्ठ के भी भाग मानने चाहिए।

अनुदात्त कौन होता है -

अनुदात्त संज्ञा विधायक पाणिनीय सूत्र होता है - नीचैरनुदात्तः। सूत्र में स्थित नीचै शब्द का अर्थ होता है - अधोभाग। नीचै अर्थ यहाँ निम्न या धीमी ध्वनि नहीं है। कण्ठ के अधोभाग में प्रयास या बल से जो स्वर उत्पन्न होता है वह अनुदात्त कहलाता है।

स्वरित कौन होता है -

समाहार: स्वरित:- ये पाणिनी सूत्र है। उदात्त स्वर का धर्म उदात्त है। अनुदात्त स्वर का धर्म अनुदात्त है। जिस स्वर में उदात और अनुदात्त दोनों होते है वह स्वर स्वरित स्वर कहलाता है। अत: स्वरित के उच्चारण में कण्ठादी ऊर्ध्वभाग और अधोभाग का भी ग्रहण होता है।

स्वरिते उदात्तत्वस्य अनुदात्तत्वस्य च विभाग: -

स्वरित के किस भाग मे व उदात्त और किस भाग में अनुदात्त है ये जानना जरुरी है। स्वरित स्वर में पूर्वार्ध भाग उदात्त होता है। उत्तरार्ध भाग अनुदात्त होता है। स्वरित स्वर से परे यदि अन्य कोई उदात्त या स्वरित स्वर हो तो इसके अनुदात्त भाग का उच्चारण अनुदात्त ही होता है। यदि इस स्वरित स्वर से पर में अनुदात्त स्वर हो तो स्वरित का जो अनुदात्त भाग उसका उदात्त के समान उच्चारण होता है। अर्थात् उदात्त से भी ऊर्ध्व भाग से निष्पन्न होगा।

स्वरित से परे उदात्त या स्वरित स्थिति हो तो अनुदात्त भाग का अनुदात्त ही उच्चारण होता है।

स्वरित से परे अनुदात्त या प्रचय स्थिति होने पर अनुदात्त भाग का उदात्त से ज्यादा उच्चारण होता है।

प्रचय: एकश्रुति:

स्वरित स्वर के बाद अनुदात्त स्वर तथा उसके बाद उदात्त हो ऐसी जब स्थिति होती है तब उदात्त से पूर्व विद्यमान अनुदात्त एक अधोरेखा से चिह्नित होता है। उससे पूर्व् विद्यमान अनुदात्त स्वर चिह्न रहित होता है। उन्ही चिह्नहीन अनुदात्त स्वरों का नाम प्रचय या एक श्रुति है उदाहरण -अग्निमीळे पुरोहिंतम् (ऋ.1.1.1)। उपं त्वाग्ने दिवेदिंवे (ऋ. 1.1.7)। अप्रंयुतामेवयावो मतिं दा:। (ऋ.7.100.2)

अग्निमीळे पुरोहिंतम् ये ऋग्वेद के अग्निसूक्त का प्रथम शब्दत्रय है। इस अग्निमीळे यहाँ अकार अनुदात्त है। इकार उदात्त है। ईकार स्वरित है। एकार प्रचय है। इसीलिए ही ईकार का जो उत्तरार्ध भाग उसका उदात्त उच्चारण होता है। व्यञ्जन के उदात्त नहीं होते है।

उप त्वाग्ने दिवेदिंवे (ऋ.1.1.7) यहाँ उप का उकार उदात्त, पकार से परे अकार स्वरित होता है। दिवे यहाँ दकार से पर वाला इकार अनुदात्त है। 'त्वाग्ने' यहाँ सभी स्वर प्रचय है।

अप्रंयुतामेवयावो मतिं दा:। (ऋ.7.100.2) यहाँ अप्रं इसमें प्रथम अकार उदात्त है, द्वितीय अकार स्वरित है। मतिं यहाँ मकार से परवर्ती अकार अनुदात्त है। 'युतामेवयावो' यहां सभी स्वर प्रचय है।

टिप्पणी

पाणिनीय शास्त्रोक्त दिशा में कहे गये उदात्त-अनुदात्त-स्वरित- तीनों स्वरों का त्रिविध उच्चारण होता है। स्वर ज्ञान का विशेष स्थान है क्योंकि स्वर ज्ञान के विना मन्त्रोच्चारण काल में स्वर भेद होता है जिससे मंत्र का अर्थ भिन्न होता है। इस विषय में इन्द्रशत्रुः इति पद का उदाहरण दिया जाता है। इसीलिए कहा गया है पाणिनीयशिक्षा में -

''मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थम् आह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।''

इन्द्रशत्रुः इस शब्द में यदि इन्द्र का पूर्वपद आद्युदात्त है तो इस पद में बहुव्रीहि समास होता है। तब इस पद का अर्थ होता है - **इन्द्रः शत्रुः यस्य** इति। तब इसका अर्थ इसप्रकार होता है की **वृत्रः वर्धताम् यस्य शत्रुः इन्द्रः अस्ति** इति। अर्थात् जिसको मारने वाला इन्द्र है। शत्रु शब्द का अर्थ होता है - हनन कर्ता, और विनाशक। यदि पूर्वपद अन्तोदात्त होता है तो इस पद में तत्पुरुष समास का ज्ञान होता है। और फिर इसका विग्रह होगा **इन्द्रस्य शत्रुः** इति। उससे इस पद का अर्थ होता है इन्द्रस्य विनाशकः अर्थात इंद्र का विनाशक। इससे यह ज्ञान होता है की बिना स्वर ज्ञान के उच्चारित पद किस प्रकार भिन्न अर्थ प्रतिपादित करता है। उदात्तस्वर के उच्चारणार्थ कण्ठताल्वादि स्थानों की उत्कृष्टता होनी चाहिए। अनुदात्स्वर के उच्चारणार्थ अपकृष्टता चाहिए। स्वरितस्वर के उच्चारणार्थ उत्कृष्टता और अपकृष्टता सम्मेलन अपेक्षित है। इसका प्रमाण है उच्चैरुदात्तः, नीचैरनुदात्तः, समाहारः स्वरितः ये पाणिनीय सूत्र हैं। ऋग्वेद के प्रातिशाख्य ग्रन्थ में इन तीनों स्वरों का क्रम से आयाम, विश्रम्भ, आक्षेप, ये नामकरण विहित है।

1.18.1 स्वरांकन पद्धत्ति

संहिता में वाक्य को आश्रित करके स्वराङ्कन होता है। किन्तु इन सभी के साथ प्रत्येक पदों का भी पृथक् स्वर सिद्ध होता है। क्योंकि **अनुदात्तं पदमेकं वर्जम्** इति पाणिनीय सूत्रानुसार एक ही पद में उदात्त स्वर दो नहीं हो सकते है। ऋग्वेद-शुक्लयजुर्वेद-तैत्तिरीयसंहिता-अथर्ववेद- तैत्तिरीय-ब्राह्मणानुसार उदात्ताक्षर से परे कोई भी चिह्न नहीं होता है, अनुदात्त स्वर को बताने के लिए अक्षर के अधोभाग में चिह्न होता है, अ इति उदाहरण। स्वरिताक्षर के ऊपर चिह्न होता है। अं इति उदाहरण।

मैत्रायणीसंहिता में और कुछ काठकसंहिता में उदात्ताक्षर के उपरिभाग में दण्डरेखा दी जाती है जैसे- उदाहरण प्रं तद्विष्णुः (मै.सं.1.29) चित्तिः स्रुक् (क्र.सं 9.8)। अथर्ववेद के पैप्पलाद संहिता में तो उदात्ताक्षर के नीचे चिह्न होता है। स्वरित स्वर के नीचे बिन्दु होता है। जैसे उदाहरण है- देवाष्नाम् (अथर्व. पै. 2.30.1) यहां न के बाद अकार के उदात्त बोध के लिए बिन्दु दिया गया है। सामवेद में उदात्त-अनुदात्त-स्वरित-स्वरों के लिए तो अक्षरों के ऊ अ^1 अ^2 अ^3 ये चिह्व दिए जाते है।

शतपथ ब्राह्मण में केवल उदात्ताक्षर के नीचे रेखा है। यदि एक ही पद में अनेक उदात्त

स्वर होते है, तब अन्तिम के ही उदात्तस्वर अंकित होता है। सत्यमाज्यम् यहां सत्यम् के य के बाद वाले अकार, और आज्यम् यहां आकार दोनों भी उदात्त होते है।

पाठ का सार

वैदिक वाङ्मय के परिचय के लिए यह प्रथम पाठ है। यहां कुछ मुख्य प्रारम्भिक विषयों का वर्णन किया गया है। उनमें पहले वेद का वैशिष्ट्य और महिमा बताई गई है। उसके बाद वैदिक वाङ्मय की विभूति प्रदर्शित की गई है। वेदशब्द के अर्थों का विविध प्रकार से उपन्यास किया गया है। वेदशब्द के अनेक पर्याय है जिसका शास्त्रों में बाहुलता से प्रयोग मिलता है वे पर्याय भी वहां उल्लिखित है। वेद अपौरुषेय है। अपौरुषेय पद से क्या जानना चाहिए ये विचार भी यहां पाठ में है। वेद के विविध लक्षण हैं। विविध आचार्यकृत लक्षण भी यहां प्रस्तुत है।

वेदशब्द की पाँच धातुओं से निष्पत्ति होती है। ऋग्वेद सर्वप्राचीन है। संहिता-आरण्यक-ब्राह्मण-उपनिषद् भेद से प्रत्येक वेद चार प्रकार से विभक्त है। ऋग्वेद के विभाग प्रकार के भेद से मन्त्रादि संख्या दी गई है। बालखिल्यान सूक्तों का वर्णन भी मिलता है। शाखा भेद पाठ भेद में ऋगादि वेदों की मन्त्रादि संख्या दी गई है। यजुर्वेद के दो भेद प्राप्त होते है। सामवेद के अधिकतर मन्त्र ऋग्वेद से ही गृहीत है। अथर्ववेद बहुत से वेदों में संयोजित होकर बना है एसा अनेक विद्वान मानते है।

वैदिक मन्त्रों में स्वर ज्ञान अनिवार्य है। अत: वैदिक स्वर कौन से है, उनका लक्षण क्या है, उनके प्रकार कौन से हैं, और भी स्वर की अर्थ निर्णय में और पुण्यार्जन में क्या विशिष्टता है। ये विषय भी यहा पाठ में समाविष्ट है।

पाठान्त प्रश्न

91. वेद के आधार पर टिप्पणी लिखो।
92. वेद लक्षण संक्षेप में लिखो।
93. वेद पौरुषेय है या अपौरुषेय सामान्यरूप से बताओ।
94. वेद के विभूति विषय में लिखो।
95. वेदशब्द के अर्थ को स्पष्ट करो।
96. वेद का महत्त्व का प्रतिपादन करो।
97. दार्शनिक मत प्रतिष्ठापन से वेद के रचनाकाल विषय में लिखो।
98. वेद का लक्षण लिखो।

99. वेदशब्द के लक्षण के आधार पर व्युत्पत्ति का प्रतिपादन करो।

100. संहिता का प्रतिपादन करो।

101. ऋग्वेद वर्णन करो।

102. यजुर्वेद वर्णन करो।

103. वेद में कितने स्वर है और वे कौन से हैं।

104. वैदिक स्वर का सविस्तार परिचय दो।

105. प्रचय स्वर कैसे होता है?

106. स्वरित स्वर के उत्तरभाग का कब और किस प्रकार उच्चारण होता है ?

107. स्वर का प्रयोजन कैसे है ?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

वेदों का वैशिष्ट और महत्त्व

108. यदि द्विज वेद को बिना पढ़े अन्य कर्म करता है तो वह शूद्र माना गया है।

109. वैदिक जन ही ब्रह्म को जानने में समर्थ होते है।

110. **'योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्॥**
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥' इति

111. **'वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र कुत्राश्रमे वसन्।**
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥' इति

112. ऋषियों के द्वारा।

113. मन्त्रद्रष्टा।

114. ऋष्यति पश्यति इति ऋषिः।

115. इनि प्रत्यय से।

116. 'तद्येनास्तपस्यमानन् ब्रह्मस्वयम्भ्वभ्यानर्षत्' इति पङ्क्ति।

117. मन्त्र रुप भाग और ब्राह्मण रूप भाग।

118. संहिता।

119. संहिता भाग का व्याख्या रुप।

120. तीन प्रकार से विभक्त, ब्राह्मण, आरण्यक, और उपनिषद् विभाग।

121. यज्ञस्वरूपप्रतिपादक।

122. अरण्य में पढ़े गये यज्ञ के आध्यात्मिक रूप का विवेचन करने वाले भाग।

123. ब्रह्मस्वरूप के बोधक और मोक्ष साधन उपनिषद्।

124. ब्राह्मण भाग गृहस्थों के लिए उपयोगी, आरण्यक भाग वानप्रस्थ आश्रितों के लिए उपयोगी, उपनिषद् संन्यस्त या सन्यासियों के लिए उपयोगी।

वैदिक वाङ्मय

125. षड् वेदाङ्ग-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषदादि का बोध होता है।

126. वाङ्मयम् इस अर्थ में।

127. **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधोयम्'।** इति।

128. जिन से यागों का अनुष्ठान निष्पन्न होता है और, देवता की स्तुति विधान जहाँ उल्लिखित है, मननात् मन्त्र कहा गया है।

129. यज्ञ का विविध क्रियाकलाप प्रतिपादिकग्रन्थ 'ब्राह्मणम्' संज्ञा के नाम से जाने जाते है।

130. वेद स्वरूपभेद से त्रिविध है - ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद।

131. जहां अर्थ के कारण पादव्यवस्था होती है उन छन्दोबद्ध मन्त्रों का नाम 'ऋक्' है। ऋचाओं का समूह ही 'ऋग्वेद' है।

132. जिस वेद में यज्ञ यागादि क्रिया कलापों के अनुरोध से मन्त्र का सन्निवेश है वह 'यजुर्वेद' है।

133. जहां गीतिरूप मन्त्र होते है वह उपासनाकाण्डपरक वेद 'सामवेद' है।

134. मन्त्र त्रिविध है अत एव वेदो को 'त्रयी' नाम से जानते है।

135. वेदव्यास ने इनकी रचना की।

136. तीन संहिता।

137. यह वैदिक वाङ्मय महान मौलिक और पुरातन है। अतः यहां हमारा अभिनिवेश होता है।

वैदिक वाङ्मय की विभूति

138. धर्म और दर्शन दोनों के विकास और ज्ञान के लिए वैदिकवाङ्मय का अध्ययन अपरिहार्य होता है।



टिप्पणी

139. दो काल में विभक्त।

140. हिन्दी-पंजाबी-बंगला-उडिया-गुजराती-मराठी-राजस्थानी-आसामी अनेक उत्तरभारतीयभाषा, दक्षिणभारत में भी तामिल-तेलगु-मलयालम-कन्नडादि आधुनिक् भाषा भी वैदिकवाङ्मय से अत्यधिक प्रभावित है।

141. अध्यात्म विषय वाली सनातनी जिज्ञासा वैदिकवाङ्मय में आलोचित हुई है।

वेदार्थ और पर्याय शब्द

142. 'विद्यन्ते धार्मादय: पुरुषार्था: यैस्ते वेदा:' इति।

143. इष्ट्यप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो वेदयति स वेद: इति।

144. वेद पौरुषेय और नित्य है।

145. सांख्य-वेदान्त-मीमांसा।

146. वेत्ति, विचारणा, सत्ता, लाभश्च।

147. जानते है।

148. वेदोऽखिलधार्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।

149. 'अपौरुषेयवाक्यं वेद' इति।

150. इष्टप्राप्ते: अनिष्टपरिहारस्य च अलौकिकम् उपायं यो वेदयति स: 'वेद:' इति।

151. आम्नाय, आगम, श्रुति, वेद, छन्द ये सभी शब्द वेद शब्द के पर्याय है।

152. विद्-धातु।

153. सत्तार्थक-विद् धातु घञ्प्रत्यय से निष्पन्न वेदशब्द।

154. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुददी में चुरादिप्रकरण में चार अर्थो में विद्-धातु का प्रयोग है। वे चार अर्थ है - सत्ता, ज्ञान, विचारण, प्राप्ति।

155. 'विदन्त्येभि: धर्मब्रङ्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वा इति वेद:।'

156. 'विन्ते विचारयति धर्मब्रह्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वेति वेद' इति।

157. वेदमर्मज्ञ भारतीय मेधावी मानते है।

158. मन्त्रद्रष्टा इति।

159. ऋषिशब्द 'इगुपधात् कित्' इस औणादिक सूत्र से इनिप्रत्यय से निष्पन्न है।

160. न्यायवैशेषिक के मत में वेद पौरुषेय और नित्य है।

161. मनु वेदों को नित्य और अपौरुषेय मानते।

वेद का पौरुषेयत्व अपौरुषेयत्व विचार और , लक्षण

162. पौरुषेय।

163. अपौरुषेय।

164. वेदान्ति और सांख्य।

165. संहितापाठ।

166. जाबालि-काण्व-माध्यन्दिनादिशाखा शुक्लयजुर्वेद की प्रसिद्ध है।

167. वाजि नाम सूर्य की रश्मि का है, सनिशब्द धनवाची है।

168. गुणगान या स्तुति जिससे की जाए उसे ऋचा कहते है।

169. शुक्लयजुर्वेद में दर्शपूर्णमासादियाग के लिए मन्त्र संकलित है।

170. अभिचारादिकर्म में अथर्ववेदीय मन्त्रों का उपयोग होता है।

171. तेषामृक् यत्र अर्थवशेन पादव्यवस्थाश इति।

संहितादि

172. मन्त्रब्राह्मणयोः वेदनामधोयम् इति।

173. ऋग्वेद की छः शाखा है।

174. कौथुमीयशाखा।

175. शुक्लयजुर्वेद।

176. अथर्ववेद की नौ शाखा है।

177. कर्म में प्रेरित करने से ब्राह्मण कहलाते है।

178. विधि, अर्थवाद, निन्दा, प्रशंसा, पुराकल्प, पराकृति।

179. शुक्लयजुर्वेद में।

180. गोपथब्राह्मण।

181. वुङ्प्रत्यय से।

182. ऋग्वेद के दो आरण्यक है ऐतरेय और सांख्यायन।

183. वेदान्त है।

184. विशारणगत्यवसादनार्थ के।

185. कृष्णयजुर्वेद में।

186. वैशम्पायन ऋषि के लिए।

ऋगादि वेद

187. ऋच्यते स्तूयते यया सा भवति ऋक् इति

188. प्रथम रूप से - मण्डल, अनुवाक, सूक्त, ऋक्। द्वितीय रूप से - अष्टक, अध्याय, वर्ग, मन्त्र।

189. चार लाख बत्तिस हजार (432000) अक्षर है।

190. षोऽन्तकर्मणि धातु से निष्पन्न।

191. "गीतिषु सामाख्या" इति।

192. पचहत्तर (75) मन्त्र है।

193. सामगान चार प्रकार से विभाजित है -ग्रामगेय, अरण्यगेय, ऊहगान, ऊह्यगान।

194. यजुर्वेद में मन्त्र है।

195. शुक्ल और कृष्ण।

196. ऋ-धातु से।

197. बीस (20)।

प्रथम अध्याय समाप्त

2

वेदों का काल, पाठ प्रकार और मन्त्रों में ऋषि, छन्द और देवता विनियोग

प्रस्तावना

वेदों का महत्त्व और गौरव के विषय में वैदिक विद्वानों में यद्यपि मत समान है फिर भी, उनमें वेद के आविर्भाव काल के विषय को लेकर गम्भीर मतभेद है। वेद के आविर्भाव काल के विषय में यहां संक्षेप में आलोचना विहित है। उसके बाद वेदों के प्रक्षिप्तत्व निवारण के लिए पाठ प्रकार ऋषियों के द्वारा आविष्कृत किये गये हैं, उनके प्रकार भी बताए गये हैं। और अन्त में मन्त्रों के निरर्थकत्व आपत्तिवारण के लिए अवश्य ज्ञातव्य विषय है, ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग। वे भी यहां बताए गये है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे–

- वेद के आविर्भावकाल के विषय में अनेक आचार्यमतों के विषय में जान पाने में;
- वेदपाठ के प्रकारों को तथा उनके वैचित्र पूर्ण महिमा को जान पाने में;
- वेदों के 'ऋषिच्छन्दोदेवताविनियोग' के विषय में विस्तर से जान पाने में;
- इन वेद का समाज में एक विशिष्ट महत्त्व है जिसको जान पाने में;
- स्वय ही वेदों के काल विषय में लघुप्रबन्ध लिख पाने में।

2.1 वेदों का आविर्भावकाल

भारतीय सभ्यता का प्राचीन रूप जानने के लिए वैदिकग्रन्थों की उपयोगिता नितान्त मानी

गई है। इस सिद्धान्त के स्वीकरण में किसी विद्वान को आपत्ति नहीं है। और भी, इस वैदिक सभ्यता की ज्योति ने कभी सम्पूर्ण भारतवर्ष की पवित्र भूमि को आलोकित किया। किसी काल में ऋषियों के चित्त में आध्यात्मिक ज्ञान के दिव्य सन्देश देने की यह इच्छा जागृत हुई। कभी उनके आलोक सामान्य से गूढार्थ युक्त मन्त्र विरचित हुए। इनके प्रश्न का समुचित उत्तर आज भी कोई देने में समर्थ नहीं है, और न ही भविष्यत्काल में भी कोई देने में समर्थ होगा।

भारतीयपरम्परा में जो विद्वान श्रद्धा रखते है उनके समक्ष में तो वेद के कालनिर्णय के विषय में प्रश्न ही नही उठता है। उनकी दृष्टी में तो वेद अनादि है। वे नित्य और अपरिच्छिन्न है। परन्तु पाश्चात्यानां वेदज्ञ पण्डित और कुछ उनके अनुगामी भारतीयों की दृष्टि में वेद का आविर्भावकाल सम्बन्धी प्रश्न समाधान करने योग्य है। प्राचीन भारतीय विद्वान् वेदों को अपौरुषेय मानते है, उनके मत में तो वेद का रचनाकाल का विचार निरर्थक है। अब कुछ पाश्चात्य विद्वान यथा बुद्धि वैभव से वेद रचना काल का निर्धारण करते है। पाश्चात्य विचारकों की जो परम्परा को जानने वाले जो भारतीय विद्वान हैं उन्होंने खोज भी की है उन्ही के मार्ग से वेदकाल का निर्णय करने का प्रयास करते है। यहां उस विषय से सम्बन्धित कुछ विचार प्रस्तुत है।

पाठगत प्रश्न

198. किनके मत में वेद अनादि है?

199. प्राचीनभारतीय विद्वान् वेदों को क्या मानते है?

200. इस समय कौन वेद रचना काल का निर्धारण कर रहे है?

2.1.1 डॉ. मैक्समूलर का मत

सर्वप्रथम डॉ. मैक्समूलर महोदय ने 1859 ईस्वी में अपने प्राचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास ग्रन्थ में वेदों का काल निर्णय के लिए प्रशसनीय प्रयास किया। उनके मत में वेदों में प्राचीन तम ऋग्वेद की रचना 1200 ई.पू. काल में सम्पन्न हुई। उनके मत में ऋग्वेद की रचना 1150 ई.पू. के आस पास ही हुई। मानव कल्याणार्थ इस देश में अभिनव बौद्धधर्म का उदय हुआ ये समस्त वैदिक वाङ्मय का अस्तित्त्व स्वीकार करता है। क्या इस बौद्ध धर्म के उदय से पहले ही ब्राह्मण ग्रन्थ विरचित हुए ? बुद्ध ने ब्राह्मण ग्रन्थ में विवेचित विधि की कटु आलोचना करते थे। अत: बुद्ध से पहले (500 ई.पू.) ही ब्राह्मणोपनिषद् भाग उत्पन्न हो चुके थे। वैदिक साहित्य में चार युग हैं - छन्द युग, मन्त्र युग, ब्राह्मण युग, सूत्र युग। प्रत्येक युग के विकास में दो सौ वर्ष का काल माना गया है, तदनुसार बुद्ध से 600 वर्ष से पूर्व छन्द युग की सत्ता मिलती है। अत: ऋग्वेद

की रचना 1150 ई.पू. समय की बाद नहीं हुई। इस प्रकार अब ऋग्वेद के 3200 वर्ष हुए ऐसा कहा जा सकता है। डॉ. मैक्समूलर महोदय दो ऋग्वेद के उदय विषय में कुछ बिन्दुओं के आधार पर इस बात को कहा। वे स्वयं के द्वारा कहे गये वेदों के उत्पत्तिकाल निर्णय से सहमत नही थे। क्यों कि वे एकबार अपने भाषण में स्वयं ही कहते है कि इस भूतल पर कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो वैदिक मन्त्र रचना के काल को सही-सही बता सके। उन्होंने यह विचार 1889 ई.सदी में भौतिक धर्माख्यान जिफोर्ड व्याख्यान माला के प्रकट किया। और उसके बाद के उनके अनुयायी पाश्चात्य विद्वान इस तर्क के आधार पर इनके काल का निर्णय करने में प्रवृत हुए।

पाठगत प्रश्न

201. वेदों में प्राचीनतम ग्रन्थ कौन है ?

202. ऋग्वेद की रचना कब सम्पन्न हुई ?

203. वैदिक साहित्य में कितने युग है और वे कौनसे है ?

204. वर्तमान में उपलब्ध ऋग्वेद के कितने वर्ष हो गये ?

2.1.2 ज्यौतिष आधारित मत

वैदिक संहिताओ में ब्राह्मणों में निर्दिष्ट ज्यौतिष सम्बन्धित सूचना है। उन सूचनाओं को ध्यान में रख कर लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक और डा. याकोबी जर्मनी विद्वान् वेदों को उत्पन्न हुए 2400 वर्ष मानते है।

भारत में षड् ऋतुए होती है। ये ऋतुएँ सूर्य की गति और स्थिति पर आधारित है। ये भी प्रसिद्ध है कि प्राचीन काल की अपेक्षा आज ये ऋतुएँ पीछे जा रही हैं। अर्थात् पूर्व में जहाँ नक्षत्र में जिस ऋतु का उदय होता था अब वह ऋतु उससे पहले वाले नक्षत्र में उदित होती है। प्राचीनकाल में वसन्त वर्षा के पहले तक होती थी। अत एव उसकी सुविशालता भगवद् विभूतिभाव ने गीता में कहा है कि – ''ऋतूनां कुसुमाकर:'' इति। परन्तु अब वसन्त का आरम्भ मीन सङ्क्रान्ति काल से आरम्भ होती है। मीन सङ्क्रान्ति पूर्वभाद्रपद नक्षत्र के चतुर्थ चरण में होती है। ऐसी ये स्थिति नक्षत्रों के क्रमश: पश्चाद् गमन से उत्पन्न हुई है। पहले कभी वसन्त काल का आरम्भ उत्तरभाद्रपद-रेवती-अश्विनी-भरणी-कृत्तिका- मृगशिरा अनेक नक्षत्रों में थी। उससे पीछे जाने पर इस वसन्त का आरम्भ आजकल की स्थिति के अनुसार हो गया।

ज्योतिष के वेत्ता सूर्य के सङ्क्रमण वृत्त को 27 नक्षत्रों में विभक्त करते है। पूर्वसङ्क्रमणवृत्त 360 अंशों का है। और वो प्रत्येक नक्षत्र 360 ÷ 27 = 131/2 अंशों का चाप निर्मित

करता है। सङ्क्रमण विन्दु 72 वर्षों में एक अंश को छोडकर दुसरे अंश पर चला जाता है। इस प्रकार एक नक्षत्र से सङ्क्रमण विन्दु दुसरे नक्षत्र को चला जाता है। वहां 73 × 131/2 = 972 वर्षात्मक कुल काल लगता है। अब वसन्त का आरम्भ पूर्वभाद्रपद नक्षत्र के चतुर्थ चरण में होता है। और तब इस वसन्त का आरम्भ कृत्तिका नक्षत्र में होता था। उसको वर्तमान स्थिति को प्राप्त होने में 41/2 नक्षत्र पार करने होते है। यदि एका नक्षत्र पार करे तो 172 वर्ष का काल लगता है। और फिर 41/2 नक्षत्र पार करने में 972 × 41/2 = 4374 वर्षात्मक काल अवश्य अपेक्षित है। इस प्रकार वेदोक्त ज्यौतिष तत्त्व के अनुसार वेदों की 2400 ई. पूर्वकालिकता प्रतीत होती है।

पाठगत प्रश्न

205. भारत में कितनी ऋतुएँ है ?

206. वर्तमान समय में वसन्त का आरम्भ कब होता है ?

207. मीन सङ्क्रान्ति कब होती है?

208. ज्योतिर्विद सूर्य के सङ्क्रमणवृत्त को कितने नक्षत्रों में विभक्त करते है ?

209. सङ्क्रमण विन्दु कितने वर्षों में एक अंश को छोडकर दूसरे अंश पर जाता है?

210. वेदोक्त ज्योतिषतत्त्व के अनुसार वेद का रचनाकाल क्या है ?

2.1.3 शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित के मतानुसार

महाराष्ट्र के विख्यात पण्डित ज्योतिर्विद् श्री शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित महोदय है। उन्होंने अति परिश्रम से शतपथ ब्राह्मण से महत्त्वपूर्ण एक वर्णन की खोज की। उससे उनके ग्रन्थ के रचना काल विषय में पर्याप्त प्रकाश मिलता है। वैदिक संहिताओं में नक्षत्र निर्देशक बहुत से वर्णन मिलते है। शतपथ ब्राह्मण के इस सन्दर्भ में ये कथन द्रष्टव्य है-

'एकं द्वे त्रीणि चत्वारि वा अन्यानि नक्षत्राणि, अथैता एव भूयिष्ठा यत् कृत्तिकास्तद् भूमानमेव एतदुपैति, तस्मात्कृत्तिकास्वादधीत। एताहवै प्राच्या दिशो न च्यवन्ते सर्वाणि ह वां अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यादिशश्च्यवन्ते। (शतपथ. 2/1/2)'

इससे यह प्रतीत होता है कि शतपथ ब्राह्मण रचनाकाल में कृत्तिका नियम पीछे था। आजकल ये कृत्तिका पूर्व दिग् बिन्दु से थोड़ा उत्तर दिशा में उदय होता है। दीक्षित महोदय की गणना से इस प्रकार की ग्रह स्थिति 3000 ई.पू. काल में सम्भव थी। इसीलिये वो ही शतपथ का निर्माण काल है। तैत्तिरीय संहिता शतपथ से प्राचीन है। ऋग्वेद से तैत्तिरीय संहिता भी प्राचीन है। ऋग्वेद 34000 ई.पू. काल में प्रणीत हुआ। इस प्रकार आज ऋग्वेद 4400 वर्ष से प्राचीन है।

पाठगत प्रश्न

211. श्री शङ्कर बाल दीक्षित महोदय ने एक महत्त्वपूर्ण वर्णन कहाँ से खोजा ?

212. नक्षत्र निर्देश बहुत से वर्णन कहां से प्राप्त होते है?

213. कृत्तिका नक्षत्र किस दिशा में उदित होता है ?

2.1.4 बाल गङ्गाधर तिलक के मतानुसार

तिलक के मत में वेदकाल इससे भी कुछ प्राचीन सिद्ध होता है। उन्होंने मृगशिरानक्षत्र में वसन्त काल आरम्भ के बहुत से साधक वेद वाक्यों को सङ्गृहीत किया था। तैत्तिरीयसंहिता में कहा है कि **फाल्गुनी पूर्णिमा वर्षादिः**। तिलक का यह मत अनुकूल है, क्योंकि जब पूर्णचन्द्र फाल्गुनी होता है तो सूर्य मृगशिरा में ही होता है और तभी वसंत का आरम्भ होता है। मृगशिरा में वसन्त का आरम्भ काल पूर्वोक्त कृत्तिका के काल से प्राय 2000 वर्ष पूर्व होता है। जैसे मृगशिरा से कृत्तिकापर्यन्त पश्चात् गमन में द्विसहस्र 2000 वर्षो का समय लगता है। एक नक्षत्र से दुसरे नक्षत्र तक जाने के लिए 970 वर्ष लगते है ऐसा पहले भी कहा जा चुका है। इसीलिये जिन मन्त्रों में मृगशिरा में वसन्त का उल्लेख है वे मन्त्र 4500 ई.पू. समय से अर्वाचीन नहीं हो सकते है। मृगशिरा से भी पूर्व पुनर्वसु में वसन्त के प्रारम्भ के बोधक वेदवचन तिलक को मिले। इसलिए वेदमन्त्रों को उससे भी पूर्वकाल के भी कहा जा सकता है। डा.याकोबी- जार्मानी के विद्वान् वेद के उत्पत्ति के चौबिस हजार 24000 बीत गये ऐसा मानते है। गृहसूत्रों में उल्लिखित ध्रुवदर्शन के आधार पर वो ही समय स्वतन्त्र रूप से वेदों का रचनाकाल निर्धारित करते है।

लोकमान्य तिलक के मतानुसार -

(1) अदितिकाल- 6000 ई. पूर्व से 4000 पूर्वपर्यन्त। इस काल में उपास्यदेवों के गौणमुख्य चरितादिबोधक गद्य पद्यमय मन्त्र रचित हुए, जो मन्त्र यज्ञों में प्रयुक्त होते थे।

(2) मृगशिर काल- 4000 ई.पूर्व से 2500 ई.पू. पर्यन्त। यहाँ इस महत्त्व शालिन काल में बहुत से ऋग्वेद मन्त्रों की रचना हुई।

(3) कृत्तिकाकाल- 2500 ई. पूर्व से 1400 ई.पू. पर्यन्त। इस काल में शतपथ ब्राह्मणगत तैत्तिरीय संहिता का प्रणयन हुआ।

(4) अन्तिम काल- 1400 ई.पू. से 400 ई. पूर्व पर्यन्त। इस काल में शौतसूत्र, गृह्यसूत्र, दर्शनसूत्र आदि आर्षग्रंथों की रचना हुई। उन्हीं ग्रन्थ के विरोध में प्रतिक्रियारूप में बौद्धधर्म का उदय हुआ।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न

214. तैत्तिरीय संहिता में कौन वर्षादि कहा गया है ?

215. एक नक्षत्र से दुसरे नक्षत्र में गमन के लिए कितना समय लगता है?

216. वेदों के उत्पत्ति के चौबिस हजार वर्ष बीत गये ऐसा कौन मानता है?

217. लोकमान्य तिलक ने कितने काल बताये है ?

2.1.5 शिलालेख

वर्तमान में होने वाले शोधकार्यों का फल भी तिलक महोदय के मत को पुष्ट करता है। उन्नीस सौ सात ईस्वी (1907 ई.पू.) सन् डा. हूगोविन्कलर 'बोधाज् कोड्' नामक वर्तमान टर्की देश के अन्तर्गत खननकार्य में एक प्राचीन शिलालेख प्राप्त हुआ। उस शिलालेख से ज्ञात होता है कि पश्चिम-एशिया के विभाजन में समय वहां टर्की देश में किन्हीं दो प्राचीन जातियों का निवास स्थान था। वहां एक जाति का नाम 'हित्तिति' और दूसरी का 'मितानि' था। इन दोनों जातियों के मध्य में राजा पारस्परिक कलह का निवारण सन्धि द्वारा करते थे। वहां संधि में दोनों पक्षों में सन्धि के संरक्षक के तौर पर देवों के नाम बताते थे। उनमें मितानि जाति के देवों में मित्र, वरूण, इन्द्र, और नासद विशिष्ट थे। ये देव आर्यों के ही थे। इससे यह प्रतीत होता है कि वहां कोई आर्य ही रहते थे।

इस शिलालेख का समय 1400 ई.पू. है। आर्य प्राग् आर्यावर्त्त में स्वधर्म वेदों को स्थिर करके कहीं चले गये। अत: 1400 ई. पूर्व से पहले ही वैदिकसभ्यता का उदय मानना चाहिए। इस प्रकार वेदों का काल 2000 ई. पूर्व सिद्ध होता है। यह काल निश्चय तिलक द्वारा दिए गये मत का समर्थन करता है। वस्तुत: ये सब अभी भी स्पष्ट नही है।

केवल माना गया है कि जब कभी भी काल निश्चय होने पर वेद पूर्वोक्तकाल से भी पूर्वकाल के है ऐसा सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न

218. उन्नीससौ सात सप्ताधिकैकोनविंशतिशततमेशवीये (1907 ई.पू.) सन में 'बोधाज् कोड्' नामक वर्तमान टर्की देश में डा. हूगोविन्कलर महोदय ने कहां से और क्या प्राप्त किया ?

219. उस शिलालेख से क्या पता चलता है ?

220. टर्कीदेश में दो प्राचीन जातियों के नाम क्या थे ?

221. डा. हूगोविन्कलर-महोदय द्वारा आविष्कृत शिलालेख का समय क्या था ?

222. वेदों का काल क्या है ?

2.2 वेदपाठ के प्रकार

ऋचाओं में प्रक्षेप के प्रतिषेध के लिए वैदिक ऋषियों द्वारा विविध उपाय किये गये। चरण व्यूह ग्रन्थ में ऋचा को संख्यानुसार गिनकर रखा। फिर भी समाक्षर पद प्रक्षेप को रोकना मुश्किल था। अतः बहुत विचार कर ऋषियों द्वारा मन्त्र पाठभेद बनाए गये। मन्त्र शुद्धि रक्षार्थ इस प्रकार की चमत्कार पूर्ण रचना किसी भी धर्मग्रन्थ के प्राचीन पुस्तकों में नही दिखती है। ये कुल 11 पाठ है। तीन और आठ विकृतियां है। संहिता पद क्रम पाठ प्राकृतिक है। संहितापाठ की प्रकृति से प्रकृति और पदक्रम में रूढ है।

समय के साथ प्रक्षिप्तों का प्रवेश वेदमन्त्रों में न हो ऐसा विद्वानों और ऋषियों द्वारा उपाय खोजे गये। जैसे शौनक ऋषि ने उस चरण व्यूहग्रन्थ में संहिता की सूक्त संख्या, ऋक्संख्या, पदसंख्या और कुछ समग्र संहिता की अक्षर संख्या की भी रचना की। अक्षर संख्या या पदसंख्या रचित हो, परन्तु दो-दो अक्षरों में यदि परस्पर विपरीत लिखे जाएं फिर भी अक्षर संख्या या पद संख्या समान ही होती है, इससे बचने का उपाय क्या है इसका भी ऋषियों द्वारा समाधान किया गया है। उसके निवारण के लिए वेद मन्त्रों की भिन्न रीति से पाठ की रीति खोजी गई। उनकी यह बुद्धि वर्तमान विद्वानों को आकृष्ट करती है। ऋक्संहिता में जैसा लिखित है वैसा ही सन्धि-समास द्वारा जो पाठ है वो संहितापाठ है। पाठ के ग्यारह (11) प्रकार है। उनमें तीन प्रकृतिपाठ और, आठ 8 विकृति पाठ। प्रक्रिति पाठ तीन है- 1. संहितापाठ, 2. पदपाठ 3. क्रमपाठ। और संहितापाठ दो प्रकार की योग प्रकृति है, और दूसरी दो रूढ़ा प्रकृति कहलाती है। आठ 8 विकृति पाठ है जटा-माला-शिखा-रेखा-ध्वज-दण्ड-रथ-घनपाठ। इनके नाम में पहले सर्वत्र क्रम शब्द कहा गया है क्रमजटापाठ, क्रममालापाठ। व्याडी मुनि ने स्वकृत जटापटलाख्य ग्रन्थ के कहा है -

जटा-माला-शिखा-रेखा-धवजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वाः महर्षिभिः॥ इति॥

एकादश प्रकारों में संहितापाठ से पदपाठ प्राचीनतम है। ऐतरेयारण्यक, में पदपाठ मिलता है, उसके बाद ऐतरेयारण्यक से ऋक्प्रातिशाख्य से और निरुक्त से पदपाठ प्राचीन है। विकृतिपाठों में जटा और दण्ड प्रकृष्ट है, शेष पाठों का उद्‌भव शिखापाठ और जटापाठ के अनुसार है। माला-लेखा-रथ-ध्वज पाठों का दण्डपाठ से उत्पत्ति होती है। घनपाठ की उत्पत्ति जटा और दण्डपाठ दोनों से है। अब हम सभी प्रकृति-विकृति पाठों को लक्षणमुख से और दृष्टान्तमुख से जानेंगे। ऋग्वेद की आदि ऋचा को ही हम दृष्टान्त के रूप में लेते है। आदिम ऋचा को हम सब जानते है-

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधतमम्॥ (ऋ.म.1.1.1)॥ इति

पाठगत प्रश्न

223. विकृति पाठ के कितने भेद है ?

224. व्याडी मुनि का ग्रन्थ कौन सा है ?

225. घन पाठ किससे उत्पन्न होता है ?

226. ऋग्वेद का आदि सूक्त कौन सा है ?

227. अग्निसूक्त की एक ऋचा लिखो।

2.2.1 संहिता पाठ

वेद में संहिता भाग में जैसा लिखित है, वैसा ही पाठ होता है वह संहिता पाठ है। संहिता पाठ - संहिता की यथावत् स्थित ऋचाओं का तथावत पाठ संहिता पाठ। विसंहितव्यस्तपद पाठ पदपाठ है। यथा

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधतमम्॥ (ऋ.म.1.1.1)॥इति

2.2.2 पद पाठ

एक मन्त्र के प्रत्येक पदों का स्वतन्त्र पूर्वक तथा समास का विभाजन करके जो पाठ होता है वह पदपाठ है। प्रकृत की ऋचाओं का पाठ पदपाठ है -

अग्निम्। ईडे। पुरः ऽहितम्। यज्ञस्य। देवम्। ऋत्विजम्।
होतारम्। रत्न ऽधतमम्॥इति॥

इस पदपाठ में पुरोहितम् तथा रत्नधातमम् इन दो स्थान पर अवग्रह से समास का व्यस्त किया गया है। शाकल्य ऋषि छः ऋचाओं को छोडकर अन्य ऋचा को पदपाठ में रचा, अतः इसका शाकल्यसंहिता नाम भी है। वे छः ऋचाएं क्यों छोड़ी इसका कारण नही पता। मूल संहिता में वे ऋचाएं नहीं है, कुछ ऐसा भी मानते है।

2.2.3 क्रम पाठ

क्रमपाठ में एक ऋचा में दो पदों को एक बार ग्रहण करते है, तथा आदि और अन्तिम को छोडकर मध्यस्थ पदों को दोबार पढ़ते है।

अग्निम् ईळे। इळे पुरोहितम्। पुरोहितं यज्ञस्य।
यज्ञस्य देवम्। देवम् ऋत्विजम्। ऋत्विजम् होतारम्।
होतारम् रत्नधतमम् ।।इति।।

यहां आदि पद अग्निं तथा अन्तिम रत्नधातमम् को छोडकर अन्य पद दो वार पढ़े गये है। इस पाठ से मध्यस्थ पदों की प्रक्षिप्तत्व शङ्का निरस्त हो जाती है, परन्तु आदिम और अन्तिम में विकार सम्भावना रह ही जाती है। ये शङ्का जटापाठ से निरस्त हो जाती है। आङ्गल भाषा में क्रमपाठ भी कहा जाता है।

2.2.4 जटा पाठ

वस्त्र वयन के आतान प्रतान को छोडकर प्रथम और अन्तिम पदों को तीन करके मध्यस्थ षोढोच्चारण जिस पाठ में होता है वह जटापाठ होता है। जैसे वस्त्रवयन में ओतप्रोतत्व दिखता है वैसे ही जटापाठ में पद प्राय: ओत-प्रोतरूप में होते है। अत: कुछ जटा पाठ भी कहते है। यहां आदि और अन्तिम तीन बार तथा मध्यस्थ वर्णो को छ: बार उच्चारण करते है। यथा-

अग्निम् ईळे ईळे अग्निम् अग्निम् ईळे।
ईळे पुरोहितम् पुरोहितम् ईळे ईळे पुरोहितम्।
पुरोहितम् यज्ञस्य यज्ञस्य पुरोहितम् पुरोहितम् यज्ञस्य।
यज्ञस्य देवम् देवम् यज्ञस्य यज्ञस्य देवम्.........।।इत्यादिवत्।।

2.2.5 माला पाठ

पहले पहला दूसरा पद का, उसके बाद छठे पांचवे पद का, फिर दूसरे तीसरे पद का फिर पांचवे चौर्शपद का पाठ माला पाठ कहलाता है। आङ्गल में यह पाठ माला पाठ भी कहलाता है। इसके पाठ की रीति सुकठिन है। पांच प्रकार के पुष्प का संगृह करके एक सूत्र में बाधते है तो उसके शोभा वर्धन के लिए क्रम अवश्य पता होना चाहिए उसी प्रकार कुछ पदों को ग्रहण कर क्रमश: पाठ इसकी रीति होता है। यथा-

अग्निम् ईळे ऋत्विजं देवम्।
ईळे पुरोहितं देवं यज्ञस्य पुरोहितं यज्ञस्य यज्ञस्य पुरोहितम्।
देवम् ऋत्विजम् ईळे अग्निम्।। इत्यादिवत्।।

इस पाठ के विषय में एक श्लोक–

माला मालेव पुष्पाणां पदानां ग्रन्थिनी हि सा।
आवर्तन्ते त्रयस्तस्यां क्रम-व्युत्क्रम-संक्रमाः।।इत्यादिवत्।।

2.2.6 रेखा पाठ

क्रम पाठ में भी यथा क्रम और व्युत्क्रम से कुछ पद द्वन्द्व के, कुछ पद त्रय के पाठ होते है क्रम पाठ के विपरीत यह होता है। यथा–

अग्निम् ईळे ईळे अग्निम् अग्निम् ईळे
ईळे पुरोहितम् यज्ञस्य यज्ञस्य पुरोहितम् ईळे
ईळे पुरोहितम्, पुरोहितम् यज्ञस्य....।इत्यादिवत्।।

रेखापाठ के विषय में यह श्लोक कहा गया है –

क्रमाद् द्वित्रिचतुःपञ्च्पदक्रममुदाहरेत्।
पृथक् पृथक् विपर्यस्य रेखामाहुः पुनः क्रमात्।।

2.2.7 शिखा पाठ

जटा के अनुरूप होता है शिखापाठ। मध्य मध्य में या तीसरे में, छठे में, नवें चरण में तीन तीन चरण होते है। यह प्रायः जटापाठवत् होता है। यथा–

अग्निम् ईळे। ईळे अग्निम्। अग्निम् ईळे पुरोहितम्।
ईळे पुरोहितम्। पुरोहितम् ईळे। ईळे पुरोहितम् यज्ञस्य।
पुरोहितम् यज्ञस्य। यज्ञस्य पुरोहितम्। पुरोहितम् यज्ञस्य देवम्।
यज्ञस्य देवम्। देवम् यज्ञस्य। यज्ञस्य देवम् ऋत्विजम्।।

2.2.8 ध्वज पाठ

क्रम पाठ के अनुरूप छः पदों को उच्चारण कर व्युत्क्रम से उसकी पुनः आवृत्ति ध्वज पाठ में होती है। यहां क्रमपाठवत् छः पद होते है, पुनः विपरीत क्रम में छः पदों का ही पाठ होता है यथा

अग्निम् ईळे ईळे पुरोहितम् पुरोहितम् यज्ञस्य।
पुरोहितम् यज्ञस्य ईळे पुरोहितम् अग्निम् ईळे।
यज्ञस्य देवम् देवम् ऋत्विजम् ऋत्विजम् होतारम्।
ऋत्विजम् होतारम् देवम् ऋत्विजम् यज्ञस्य देवम्।।

2.2.9 दण्ड पाठ

क्रम पाठ के अनुरूप से एक ही काल में दो पद का यथाक्रम त्रिकृत्व उच्चारण और, दूसरे बार विपरीत क्रम में जहां पाठ दिखता है वह दण्ड पाठ है। यहाँ क्रम पाठ के दो पद आदि में यथाक्रम तीन वार और, तदनन्तर विपरीत क्रम से पाठ है। यथा

अग्निम् ईळे ईळे अग्निम् अग्निम् ईळे
ईळे पुरोहितम् पुरोहितम् ईळे अग्निम्।।इत्यादिवत।।

दण्ड पाठ के लक्षणश्लोक इस प्रकार है –

क्रममुक्ता विपर्यस्य पुनश्च क्रममुत्तमम्।
अर्धर्चादेव मुक्तोयं क्रमदण्डोऽभिधीयते।।

2.2.1 रथ पाठ

क्रम पाठ के और उसके विपरीत मिश्रण से रथ पाठ होता है। एक चरण के एक पाद या सम्पूर्ण चरण एक काल में मिलाकर यहां बोला जाता है। क्रम पाठ धारा तथा तद्विपरीत धारा को देखकर रथपाठ की पङ्क्ति में एकांश समग्र पङ्क्ति के आधार पर सृष्टी हुई।

प्रथम प्रकार–

समिधाग्निम् अग्निम् समिधा।
घृतैर्बोधायेत् बोधयेत् घृतैः समिधा अग्निम्।।इति।।

द्वितीय प्रकार–

अग्निम् ईळे यज्ञस्य देवम।
ईळे अग्निम् देवम् यज्ञस्य।
अग्निम् ईळे ईळे पुरोहितम।
यज्ञस्य देवम् देवम् ऋत्विजम्।।इत्यादिवत्।।

2.2.2 घन पाठ

यहां पर भी प्रारम्भ के चार पदों के दो दो भाग को लेकर जटा पाठानुसार पढ़ते है। और उसके बाद तीन करके यथा क्रम व्युत्क्रम और विपर्यास से पढ़ते है। यहां चारों पदों में आदि के दो पदों में जटापाठवत्, उसके बाद पद त्रय यथा क्रम विपरीत क्रम और विपर्यास से उच्चारण करते है तब वह घनपाठ है।

अग्निम् ईळे ईळे अग्निम् अग्निम् ईळे पुरोहितम्
पुरोहितम् ईळे अग्निम्, अग्निम् ईळे पुरोहितम्...इत्यादिवत्॥

यहां उल्लिखित ग्यारह पाठ निर्भुज-प्रतृण भेद से द्विध विभक्त है। संहिता भाग में जैसे मन्त्र है उसके अनुरूप जो पाठ है वह निर्भुज पाठ है जैसे संहिता पाठ है। व्यतिक्रम से जो पाठ है वह प्रतृण पाठ है, जैसे पद-क्रम-जटादि।

इन पद क्रमादी पाठों के फलश्रुति और प्रशंसा शिक्षा ग्रन्थ में दिखाई देता है। याज्ञवल्क्यशिक्षा में कुछ श्लोकों में इनकी प्रशस्ति विहित है-

संहिता नयते सूर्यपदं च शशिनः पदम्।
क्रमश्च नयते सूक्ष्मं यत्तत्पदमनामयम्॥
कालिन्दी संहिता ज्ञेया पदयुक्ता सरस्वती।
क्रमेनावर्तते गङ्गा शम्भोर्वाणी तु नान्यथा॥
यथा महादं प्राप्य क्षिप्तो लोष्ट्रो विनश्यति।
एवं दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृत्ति मज्जति॥

संहिता पाठ से सूर्य लोक, पदपाठ से चन्द्र लोक तथा क्रम पाठ से अक्षय लोक प्राप्त होता है। संहिता पाठ कालिन्दी स्वरूप या यमुना स्वरूप, पद पाठ सरस्वती स्वरूप, तथा क्रमपाठ गङ्गा स्वरूप होता है। संहितादि पाठ पूर्वक वेद पढ़ते है तो समस्त पापों का नाश होता है।

2.3 ऋषि छन्द देवता विनियोग

प्रतिवेद, प्रतिसूक्त और प्रतिमन्त्र में ऋषि छन्द और देवता विनियोग होता है। केवल मन्त्रार्थ ज्ञान ही हमारा उद्देश्य नहीं, अपितु ऋषि छन्द देवता आदि का ज्ञान भी आवश्यक है। कोई यदि वेद मन्त्रार्थ मात्र का अध्ययन करता है और सिखाता है, तब वह मन्त्र कण्टक है ऐसा कहा जाता है -

ऋषिच्छन्दोदैवतानि ब्राह्मणार्थं स्वराद्यपि।
अविदित्वा प्रयुजानो मन्त्रकण्टक उच्यते॥इति॥

कोई भी गुरु यदी ऋषि छन्द देवता विनियोग न जानकर शिष्यों को पढाता है, वह पाप भागी होता है। कहा भी गया है -

अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।
योध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयान् जायते तु सः॥इति॥

2.3.1 ऋषि

ऋष्-धातु से इन् प्रत्यय करने पर ऋषि शब्द निष्पन्न हुआ। ऋष्-धातु गमन अर्थ में है। और भी यास्क ने - **'यदेतान् तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भुः अभ्यनार्यत तदृषयो भवन् तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते।'** इति। स्वयम्भु ब्रह्म स्वय ही ऋषियों के समक्ष गये इसीलिए उसका ऋषित्व ऐसा अर्थ है। कुछ दर्शनार्थक ऋष्-धातु से ऋषि शब्द निष्पन्न मानते है। उनका अभिप्राय- तपस्या करने वाले ऋषियों ने ब्रह्मा के आशीर्वाद से वेदमन्त्रों का दर्शन किया इसीलिये वो ऋषि कहलाते हैं। अतः यास्क ने कहा है - 'ऋषिर्दर्शनात्। स्तोमान् ददर्श इति औपमन्यवः' इति। यास्क दर्शनार्थक ऋष्-धातु से मानते है तथाहि - **'साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुः'** इति। मन्त्र दर्शन और मन्त्ररचयिता के मध्य में क्या अन्तर है इसका प्रतिपादन करते हुए यास्क द्वारा अनेक मत प्रदर्शित किये। वेद अपौरुषेय है, वेद किसी के द्वारा नहीं रचित है। मीमांसक भी स्वीकार करते है की पुरुष द्वारा बनाई वस्तु का नाश निश्चित है, वेद अपौरुषेय अनादि और अनन्त है पुरुष कर्तृकत्व अभाव से ऋषियों के तप के फल से ही ब्रह्मा के आशीष से वेद उनके हृदय में स्वतः ही उत्पन्न हुए। इसप्रकार जिस ऋषि के हृदय में जो मन्त्र, सूक्त, क्षेत्र विशेष से उत्पन्न हुआ वह उस मन्त्र का द्रष्टा हुआ। यथा ऋग्वेद के आदिमसूक्त के द्रष्टा मधुच्छन्दा ऋषि है। इसीप्रकार ऋग्वेद के गृत्स मद-विश्वामित्रा-वामदेव-अत्रि-भारद्वाज-वसिष्ठ-कण्व ऋषि हुए है। युगान्त कल्पारम्भ में ऋषि द्वारा वेद तप से प्राप्त होते है। इस विषय में कहा गया है -

युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा।।इति।।

पाठगत प्रश्न

228. मन्त्रा कण्टक किसको कहा जाता है ?

229. ऋषि शब्द की उत्पत्ति किससे हुई ?

230. कौन ऋषि कहलाता है ?

231. ऋग्वेद के ऋषि कौन है ?

2.3.2 देवता

प्रत्येक मन्त्र का कोई देवता अवश्य है। उस-उस मन्त्र से उन-उन देवों को प्रसन्न और आवाह्न किया जाता है। देवता, देव, देवी इत्यादि शब्द प्रकाशार्थक दिव्-धातु से निष्पन्न है। जो स्वयं प्रकाशित होते हैं वे देव हैं। निरुक्त में यास्क ने देव शब्द के निर्वचन

प्रसङ्ग में कहा है –'देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा भवति' इति। इसका अर्थ जो दाता, स्वयंप्रकाश, स्वतेज से अन्य का भी प्रकाशक है वह देव है। इस प्रकार मन्त्र के चैतन्य में ही देव है। क्योंकि चैतन्य स्वयं प्रकाशित है। चैतन्याभास से ही अन्यवस्तु प्रकाशित होती है। अत: सच्चिदा नन्द स्वरूप आत्मचौतन्य ही देवता है ऐसा विद्वान मानते है। ऋग्वेद में भी उल्लेख है –

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति, अग्निं यमं मातरिश्वानमाहु: इति।।

जैसे एक ही वायु के अग्नि-यम-मातरिश्वा आदि नाम होते है, वैसे ही एक ही ब्रह्मा के भिन्न नाम विद्वानों द्वारा कहे जाते हैं। वेद में बहुत देवों के नाम प्राप्त होते है। यास्क ने तो अग्नि-इन्द्र-सूर्य इन्हीं को देवस्वीकार किया। इस विषय में पूर्व में ही विस्तार से निरूपण किया है। तीनों देवों से ही देवों की उत्पत्ति हुई, और कहा भी है– **'तासामेव भक्तिसाहचर्याद् बहूनि नामधोयानि भवन्ति कर्मपृथक्त्वाद्वा'। इति।**

पाठगत प्रश्न

232. यास्क ने देवता निर्वचन प्रसङ्ग में क्या कहा?

233. एकं सद्विप्रा: कं बहुधा वदन्ति?

234. यास्क ने कितने देव स्वीकार किये है और वे कौन से है ?

2.3.3 छन्द

निरुक्त और ब्राह्मण ग्रन्थ में छन्द शब्द की बहुत व्याख्याएं प्राप्त होती हैं। जो पाप का आच्छादन करता है वह छन्द है। तैत्तिरीय संहिता में छन्द की उत्पत्ति के विषय में ये आख्यायिका प्राप्त होती है कि पहले प्रजापति ने अग्नि को बनाया, वह अग्नि भीषण रूप धारण कर देवों को जलाने जाती है। उसके बाद स्वयं की रक्षा के लिए छन्द शरीर द्वारा देव अग्नि के समीप गये। इस प्रकार कुछ लोग छन्द की उत्पत्ति मानते है। और अन्य ऋषियों के सामने आविर्भूत मन्त्र के स्पन्द से ऋषियों ने जो अनुभूत किया, वह ही छन्द कहलाता है।

वेद में सात प्रधान छन्द है। वे छन्द गायत्री-उष्णिक्-अनुष्टुप्-बृहती-पङ्क्ती-त्रिष्टुभ्-जगती। वैदिकछन्द को अक्षरच्छन्द नाम से भी जाना जाता है। सप्त छन्दों के अक्षर बताते है–

1) गायत्री-24

2) उष्णिक्-28

3) अनुष्टुप्-32

4) बृहती-39

5) पङ्क्ती-40

6) त्रिष्टुप्-44

7) जगती-48

छन्द बद्ध मन्त्रों के चार पद होते हैं, प्रत्येक पाद में समान संख्या के अक्षर होते हैं। जैसे अनुष्टु आदि चारों पादों में मिलाकर 32 अक्षर होते हैं। इस प्रकार एक पाद में 8 अक्षर होते है। ऐसे ही अन्य में भी जानने चाहिए। द्विजातियों द्वारा गायत्री मन्त्र नित्य उच्चारित होती है। गायत्री छन्द में यह मन्त्र लिखित है। परन्तु गायत्री मन्त्र में 24 चौबिस अक्षर होने चाहिए परन्तु है तेईस 23, अतः यह अनियम पिङ्गलर्षि ने समाधान प्रस्तुत किया कि - तत्सवितुर्वरेण्यम् यहाँ वरेण्यम् इस स्थान पर वरेणिअम् ऐसा पढना चाहिए। ऋग्वेद में त्रिष्टुप्छन्द अधिक् प्राप्त होता है। अग्नि के मन्त्र गायत्री में, और इन्द्र के त्रिष्टुप में है। ऋग्वेद का आदिसूक्त अग्निसूक्त गायत्री छन्द में है। अग्निमीळे पुरोहित यहां पर चौबिस (24) अक्षर हैं।

पाठगत प्रश्न

235. कौन से प्रधान छन्द हैं ?

236. द्विजातियों से नित्य उच्चारित गायत्री मन्त्र में कितने अक्षर है ?

237. गायत्री मन्त्र लिखो।

2.3.4 विनियोग

यज्ञकर्म में मन्त्र के प्रयोग स्थान को विनियोग कहते है। विशेषरूप से प्रयोग का अर्थ विनियोग है। **'अनेन इदं तु कर्तव्यं विनियोगः प्रकीर्तितः, अस्मिन् यज्ञकर्मणि अस्य मन्त्रस्य प्रयोगः कर्तव्यः इतिविनियोगः।** किस याग में कौन सा मन्त्र प्रयोग करना है उसका विधान सौत्र सूत्र में है। सायाणाचार्य ने अपने भाष्य में सौत्र सूत्र से उद्धृति पूर्वक प्रतिमन्त्र के विनियोग को प्रदर्शित किया है। सामान्य और विशेष भेद से विनियोग दो प्रकार का है - समग्रसंहिता-पारायण में विनियोग सामान्य विनियोग कहलाता है। प्रति सूक्तनुसार मन्त्र के आश्वालयन प्रदर्शित विनियोग विशेष विनियोग कहलाते हैं। सूक्तानुसार या सूक्तान्तर्गत मन्त्रानुसार विनियोग भिन्न होता है। जैसे ऋक्संहिता के प्रथम मण्डल एक सौ पन्द्रहवाँ 115 सूक्त सूर्यदेव को उद्देश्य करके कहा गया है। 'चित्रं देवानामुदगादनीकम्' ये प्रथम ऋचा का प्रथम चरण है। सायणाचार्य ने कहा है कि आश्विन शास्त्र में सूर्योदय से ऊपर सौर्य सूक्त प्रशंसनीय है वहां यह सूक्त प्रशंसनीय है। सूक्त कहता है कि 'चित्रं

टिप्पणी

देवानां नमो मित्रस्य'। सोमयाग में सोमयाग निष्कासन पक्रिया को स्तुत्यादि द्वारा कहा जाता है। उसके पूर्ववर्ति दिन में रात्रि भाग के अन्तिमांश में उषस् अग्नि अश्विनी के युगल त्रय देवताओं की स्तुति होती है। ये स्तुति प्रातरनुवाक नाम से जानी जाती है। गीत रहित स्तुति शस्त्राम कहा जाता है। सोम याग के सप्त 7 संस्था है। अनुष्ठान के प्रकार विशेष संस्था कहलाते हैं। यथा क्रम से सप्त संस्था (अग्निष्टोम, अत्याग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय अतिरात्र, और आप्तर्याम) प्रत्येक प्रक्रिया में चार शस्त्रकीर्तन होते है। त्रिविध प्रक्रिया के अनन्तर आश्विन शस्त्रकीर्तन करना चाहिए। इस आश्विन शस्त्र में उषा अग्नि और अश्विनी देवों की स्तुति होती है। पक्षियों के कूजन से पूर्व सूर्योदय से पूर्वप्रातरनुनाक की समाप्ति कर लेनी चाहिए। सूर्योदय के अनन्तर आश्विन शास्त्र में सूर्य देवता सम्बन्धित सूक्तों का संकीर्तन बताया गया है। उन्हीं में ये सूर्य सूक्त है। आश्वलायन के श्रौतसूक्त में 5-618-वें सूत्र में ये विधि लिखित है। इसके बाद सूर्य सूक्तगत- सभी ऋचाओं का विशेष विनियोग के सम्बन्ध में सायणाचार्य ने कहा है कि -**शास्त्र-आदितस्त्रिस्त्र ऋचः सौर्यस्य पाशोर्वपा पुरोडाश हविषां क्रमेणानुवाक्या:। ततो द्वे वपापुरोडाशयोर्याज्ये इति।** सूक्त की प्रथम तीन ऋचाओं को यथा क्रम में सूर्य देवता के उद्देश्य वपा पुरोडाशादि हविग्रहण समय में अनुवाक्य रुप के कहने चाहिए। अग्रि को दो ऋचाओं और चौथी व पांचवीं ऋचा को यथा क्रम में और पुरोडाशवपादि यज्ञाग्नि में हविर्दान काल में याज्य रुप में पाठ करना चाहिए। देवता के उद्देश्य में पुरोहित जब हवि का ग्रहण करता है तब कही जाने वाली ऋचा को अनुवाक्य कहते हैं। यज्ञाग्नि में आहुति के अर्पणकाल में बोली जाने वाली ऋचा याज्य कहलाती है। पहले अनुवाक्य और तदनन्तर याज्य का पाठ होना चाहिए। अनुवाक्य बैठकर और याज्या खड़े होकर पढनी चाहिए। कहा है-'अनुवाक्या तिष्टन्नाह, आसीनो याज्यां यजति' इति। हूयते इति हवि:। यज्ञाग्ननि में जो दिया जाता है वह ही हवि कहलाती है। पशुमांस, पिष्टतण्डुलादि, पुरोडाश नामक रोटिका, सोमरस, घृतादि सभी हविपद के वाच्य है। इन हव्य द्रव्यों के मध्य आज्य का अधिक प्रचलन से बदलते हुए काल में हवि से घृत पद का ग्रहण होने लग गया।

पाठगत प्रश्न

238. सूर्यसूक्त का आदि मन्त्र क्या है ?

239. शस्त्र क्या है ?

240. अनुवाक्या क्या है ?

241. यज्या क्या है ?

242. हवि क्या है ?

243. हवि शब्द से किसका ग्रहण होता है ?

पाठ सार

वेद अपौरुषेय है ये भारतीय सिद्धान्त है। इससे स्पष्ट है कि वेद पहले से ही है। अत एव वेद का काल चिन्तन हास्य कल्पित होता है। वेदादियों में भ्रमादि नहीं है। अत एव वेद अपौरुषेय है अनादि काल से इसलिए वेद के विद्यमानत्व के काल पर चिन्ता सम्भव नहीं है। परन्तु पाश्चात्यों के मत में तो वेदों को ऋषियों ने बनाया। अत: याकोबि इत्यादि वैदेशिक पण्डित वेद के काल निर्णय में सर्वदा तत्पर रहते हैं। उनके मत में वेद पौरुषेय है। कुछ भारतीय विद्वान भी वेद के कालनिर्णय में सदा तत्पर दिखते हैं। उनमें लोकमान्य तिलक, बालकृष्ण दीक्षित इत्यादि हैं। उसके बाद वेदपाठ के प्रकार कहे गये है। कुल ग्यारह 11 पाठ है। तीन प्रकृति और आठ विकृति। संहिता पद क्रम पाठ प्राकृति है। अष्ट विकृति पाठ जटा-माला-शिखा-रेखा-ध्वज-दण्ड-रथ-घनपाठ है। मन्त्रादि से एक देवता को उद्दिश्य करके स्तुति की जाती है। फिर वेद के नित्य होने पर भी कोई स्मर्ता तो आवश्यक है। उसके बाद प्रतिसूक्त का कोई ऋषि, कोई देवता, और कोई छन्द भी हो इसका वर्णन किया है। यथा- अग्निसूक्त का देवता- अग्नि, ऋषि- मधुच्छन्दा, छन्द जगती है। इस प्रकार इस पाठ में ऋषि देवता छन्द विनियोग उल्लेखित है।

पाठान्त प्रश्न

244. संहितापाठ की व्याख्या करो।
245. घनपाठ की व्याख्या करो।
246. वेदपाठ कितने प्रकार का है।
247. ऋषि का स्वरूप स्पष्ट करो।
248. देवता का स्वरूप लिखो।
249. छन्द की उत्पत्ति विषय में क्या आख्यायिका है ?
250. गायत्रीमन्त्र के अक्षर विषय में पिङ्गल ने क्या कहा है ?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

वेदों के उत्पत्ति काल

251. भारतीय विद्वानों के मत में।

252. वेद को अपौरुषेय मानते है।

253. पाश्चात्य विद्वान यथा बुद्धि वैभव से वेद रचना काल का निर्धारण करते है।

डॉ. मैक्समूलर का मत

254. ऋग्वेद।

255. ऋग्वेद की रचना 1150 ई.पू के आस-पास हुई

256. चार युग है। छन्दोयुग, मन्त्रयुग, ब्रह्मणयुग, सूत्रयुग।

257. 3200 वर्ष हो गये।

वेद के विषय में ज्यौतिषतत्त्वआधारित मत

258. षट् ऋतु है।

259. मीन सङ्क्रान्ति काल से शुरू।

260. मीन सङ्क्रान्ति पूर्वभाद्रपद नक्षत्र के चतुर्थ चरण में होती है।

261. 27 नक्षत्रों में विभक्त होते है।

262. 72 वर्ष में।

263. ईशवीय पूर्व (2500) शतक।

शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित का मत

264. शतपथ ब्राह्मण से।

265. वैदिक संहिताओं में।

266. पूर्वदिग्बिन्दु से थोड़ा उत्तर दिशा में।

बाल गङ्गाधर तिलक का मत

267. फाल्गुनी पूर्णिमा।

268. फाल्गुनी पूर्णिमा।

269. चौबिस साल 24।

270. अदितिकाल, मृगशिर काल, कृत्तिका काल, और अन्तिम काल ये चार काल है।

शिला लेख

271. वर्तमान के टर्की देश के अन्तर्गत खनन कार्य में प्राचीन एक शिलालेख मिला।

272. पश्चिम-एशिया विभाजन के समय में वहां टर्की देश में दो कोई प्राचीन जातियों का निवास स्थान था।

273. 'हित्तिति' और 'मितानि'।

274. ईश्वी पूर्व (1907) शतक।

275. ईश्वी पूर्व (2000) शतक।

वेदपाठ के प्रकार

276. अष्ट

277. जटा पटलाख्ये ग्रन्थ में

278. जटा और दण्ड दोनों से।

279. अग्निसूक्त।

280. अग्निमीते पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधतमम्।। (ऋ.म.1.1.1)।इति

ऋषि

281. ऋषि छन्द देवता आदि के ज्ञान के बिना यदि वेद मन्त्रार्थ मात्र कोई सीखता है

282. ऋष्-धातु इन् प्रत्यय ऋषि शब्द निष्पन्न है

283. तप के फल से ब्रह्म के आशिष से वेद स्वत जिनके हृदय में आविर्भूत हुए वे ऋषि है

284. गृत्समद-विश्वामित्रा-वामदेव-अत्रि-भारद्वाज-वसिष्ठ-कण्व ऋषि हुए।

देवता

285. देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा भवति इतिआत्मान्।

286. तीन 3

287. अग्नि-इन्द्र-और सूर्य

छन्द

288. (1) गायत्री-24, (2) उष्णिक्-28, (3) अनुष्टुप्-32, (4) बृहती-39, (5) पङ्क्ती-40, (6) त्रिष्टुप्-44, (7) जगती-48

289. 23

290. ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सदितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धीयो यो नः प्रचोदयात्।

विनियोग

291. चित्रं देवानामुदगादनीकम्।

292. गीत रहित स्तुति

293. देवता के उद्देश्य से पुरोहित जब हवि का ग्रहण करता है तब बोली जाने वाली ऋचा अनुवाक्या कहलाती है

294. यज्ञाग्नि में आहुति के समय बोली जाने वाली ऋचा यज्या हैब

295. यज्ञाग्नि में जो दी जाती है वह ही हवि है

296. हवि का घृत पद से ग्रहण होता है।

दूसरा अध्याय समाप्त

3

वेदों के भाष्यकार

प्रस्तावना

वेद का अर्थ इतना अति सुगम नहीं है। तथा वैदिक साहित्य में जो भाषा व्यवहृत है वह भाषा हमारी संस्कृत भाषा से भिन्न भी है। इसलिए बहुत से आचार्यों के वेदों के अर्थ का प्रतिपादन करने के लिए अनेकों भाष्य किये। उन वेद भाष्यकारों में स्कन्द स्वामि-नारायण-उद्गीथ- माधवभट्ट-वेङ्कट माधव-धनुष्कयज्व-आनन्दतीर्थ-आत्मानन्द-सायण आदि भाष्यकार सर्वत्र सुप्रसिद्ध हैं। इस पाठ में वेद के बहुत से भाष्यकारों के विषय में आप जानेंगे। वहाँ सबसे पहले ऋग्वेद के भाष्यकारों के विषय में, तथा मध्य में शुक्लयजुर्वेद के और अन्त में सामवेदीय भाष्यकारों के विषय में आलोचना की गयी है।

उद्देश्य

यह पाठ पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- ऋग्वेद के भाष्यकारों के विषय में जान पाने में;
- शुक्लयजुर्वेद के भाष्यकारों का परिचय प्राप्त कर पाने में;
- उनके देश काल और कृति के विषय में जान पाने में;
- ऋग्वेद आदि का अवलम्बन करके लघुप्रबन्ध काव्य की रचना करने के विषय को जान पाने में।

3.1 ऋग्वेद के भाष्यकार

स्कन्द स्वामी ने ऋग्वेद का सुविस्तृत भाष्य किया। उन्होंने निरुक्त पर भी टीका की

रचना की। इन्होंने ही सर्वप्रथम ऋग्वेदसंहिता का भाष्य रचा। और यह भाष्य वैदिक साहित्य में अतीव आदरणीय है। यह ग्रन्थकार अत्यन्त प्राचीन है। यह भाष्य अच्छी प्रकार विषय का प्रतिपादक होने से लोगों में समाद्रित और प्रशंसनीय है। स्कन्द स्वामी प्रतिभावान् एवं प्रभावशाली विद्वान् थे। स्कन्द स्वामी का जन्म गुजरात प्रदेश के वल्लभी नगर में हुआ था एवं यह नगर विद्यापीठ के लिए प्रदेश की राजधानी स्वरूप था। इनके पिता का नाम भर्तृधरुव था। ऋग्वेदभाष्य के प्रथमाष्टक के अन्त में भाष्यकार ने स्वयम् इसकी चर्चा की–

'वलभीविनिवासस्येतामृगर्थागमसंहृतिम्।
भर्तृध्ररुवसुतश्चक्रे स्कन्दस्वामी यथा स्मृतिः॥

3.1.1 स्कन्द स्वामी

आचार्य स्कन्द स्वामी का कौन सा काल था इस विषय में निश्चय से नहीं कहा जा सकता। परवर्ती ग्रन्थों में इसके नामोल्लेख से इसके आविर्भाव का काल सूचित होता है। यह शतपथ ब्राह्मण के विख्यात भाष्यकार हरि स्वामी के गुरु थे। अतः इनका समय सातवीं शताब्दी निश्चिय से कह सकते हैं।

ऋग्वेद का स्कन्द स्वामी ने सुविस्तृत तथा विलक्षण भाष्य किया। इस भाष्य में प्रत्येक सूक्तों के आरम्भ में उस सूक्त के ऋषि और देवता का उल्लेख किया गया है। उसके बोधक प्राचीन अनुक्रमणि ग्रन्थों के श्लोक भी उद्धृत हैं। निघण्टु निरुक्त आदि वैदिक अर्थ के उपबोधक ग्रन्थों से उपयुक्त प्रमाण भी वहाँ सङ्कलित किये गये हैं। यह भाष्य अतीव सरल और अल्पाक्षर है। यहाँ संक्षेप से व्याकरण-विषयक तथ्यों का उल्लेख है। सायण भाष्य के प्रथमाष्टक के समान व्याकरण का अतिविस्तार से यहाँ प्रदर्शन नहीं किया गया है। सायणकृत ऋगभाष्य के ऊपर स्कन्द स्वामी के भाष्य का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इसके अनेक उदाहरण हैं। स्कन्द स्वामी का भाष्य ऋग्वेद के चतुर्थाष्टक पर्यन्त ही उपलब्ध होता है। शेष आधे की पूर्ति अन्य दो आचार्यों ने की है। जिसका वर्णन आगे होगा। अनन्त शयन ग्रन्थावली में इस भाष्य का अब प्रकाशन क्रमशः आरम्भ हो चुका है।

पाठगत प्रश्न

297. भाष्य करने वाले कुछ विद्वानों के नाम लिखो?

298. स्कन्दस्वामी ने किस पर टीका लिखि?

299. ऋग्वेद संहिता का सर्वप्रथम भाष्य अभी किस का उपलब्ध होता है ?

300. स्कन्दस्वामी का जन्म कहाँ हुआ?

301. स्कन्द स्वामी के पिता का क्या नाम था?

302. हरि स्वामी के गुरु कौन थे?

303. शतपथ ब्राह्मण के विख्यात भाष्यकार कौन थे?

304. स्कन्द स्वामी ने किसका सुविस्तृत भाष्य किया?

3.1.2 नारायण

ऋग्वेदभाष्य में वेङ्कटमाधव ने लिखा कि-

"स्कन्दस्वामी नारायण उद्गीथ इति ते क्रमात्।
चक्रुः सहैकमृग्भाष्यं पदवाक्यर्थगोचरम्"॥

इससे ज्ञात होता है कि नारायण और उद्गीथ स्कन्द स्वामी के समय में ही हुए। नारायण ने ऋग्वेद भाष्य की रचना में स्कन्द स्वामी की सहायता की, यह वेङ्कट माधव कहते हैं। उद्गीथ का उल्लेख सायण और आत्मानन्द ने किया। उनकी भाष्य शैली स्कन्द स्वामी की भाष्य शैली की तरह है। श्लोक क्रम और शब्द से अनुमान लगाया जाता है कि ऋग्वेद के मध्यभाग पर नारायण ने अपना भाष्य लिखा। कुछ विद्वान साम भाष्यकार माध व के पिता नारायण तथा ऋग्वेद भाष्य के कर्त्ता नारायण को एक ही मानते हैं। इसके समय का कोई भी सुस्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। इसका भी समय विक्रम की सातवीं शताब्दी ही प्रामाणित होता है।

पाठगत प्रश्न

305. नारायाण और उद्गीत किसके समय थे?

306. नारायण ने ऋग्वेद के भाष्य में स्कन्दस्वामी की सहायता की,यह किसका मत है?

307. नारायण किसके समय में हुए?

3.1.3 उद्गीथ

वेंकट माधव की कथा के अनुसार ज्ञात होता है कि उद्गीथ ने स्कन्द स्वामी के ऋग्भाष्य को लिखने में सहायता की। इस महापुरुष ने ऋग्वेद के अन्तिम भाग का भाष्य किया। प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर उसने अपने विषय में लिखा- वनवासीविनिर्गताचार्य उद्गीथ कृत ऋग्भाष्य में......अध्याय समाप्त इस कथन से होता है इसलिए उद्गीथाचार्य का वनवासियों के साथ सम्बन्ध था ऐसा प्रतीत होता है। प्राचीनकाल में आधुनिक कर्णाटक

का पश्चिम भूखण्ड 'वनवासीप्रान्त' इस नाम से विख्यात था। अतः कहा जाता है कि- उद्गीथाचार्य इसी प्रान्त के निवासी थे ऐसा अनुमान लगाया जाता है। इस महापुरुष के विषय में इससे अधिक कुछ भी ज्ञात नहीं है।

सायण और आत्मानन्द ने उद्गीथ का नामोल्लेख अपने भाष्य में किया। उनकी भाष्य शैली भी स्कन्द स्वामी की भाष्यशैली की तरह ही है। इसका प्रभाव सायण के भाष्य पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। सायण ने ऋग्वेद के इस मन्त्र भाष्य में (10/46/5) उद्गीथ की व्याख्या का उल्लेख किया। इससे उद्गीथ सायण के पूर्ववर्ती भाष्यकार सिद्ध होते हैं। यह व्याख्या उद्गीथ के भाष्य में उपलब्ध होती है। यह भाष्य ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पाँचवे सूक्त से लेकर तिरासीवे (83) सूक्त के पाँचवे मन्त्रपर्यन्त है। 1934 ईसवी में लाहौर नगर के डी.ए.वी. महाविद्यालय के शोधविभाग ने इस भाष्य के प्रारम्भिक आधे भाग को प्रकाशित किया। अन्तिम आधा भाग अभी भी अमुद्रित है। सायण भाष्य के साथ उद्गीथ भाष्य की यदि तुलना करें तो ज्ञात होता है कि सायण ने भाष्य के लेखन के लिए उद्गीथ भाष्य में स्थित विपुलसाधनों का साधु उपयोग करके ही अपना भाष्य लिखा। अत एव तिलक वैदिक संशोधन मण्डल में प्रकाशित सायण भाष्य की त्रुटीयों तथा सन्दिग्ध पाठों के संशोधन के लिए उद्गीथ भाष्य से ही सहायता ली जाती है। एवं प्रसिद्ध सायण भाष्य के पाठ संशोधनार्थ भी इस भाष्य का अतीव महत्त्व है।

पाठगत प्रश्न

308. ऋग्वेद के अन्तिम भाग का भाष्य किसने किया?
309. प्राचीनकाल में आधुनिक कर्णाटक के पश्चिमीभूखण्ड का क्या नाम था?
310. उद्गीथाचार्य किस प्रान्त के प्रायः निवासी माने जाते हैं ?
311. 1934 ईस्वी में लाहौर नगर के डी.ए.वी. महाविद्यालय के शोधित विभाग ने किस भाष्य के प्रारम्भिक आधे भाग को प्रकाशित किया।

3.1.4 माधव भट्ट

इतिहासकार माधव-नामक चार भाष्यकारों के नामोल्लेख करते हैं। उनमें एक ने सामवेद संहिता और अन्य तीन ने ऋग्वेद पर भाष्य लिखा। कुछ के मत में माधव नामक कोई भी भाष्यकार नहीं हुआ। सायण अथवा वेङ्कट ही 'माधव' इस नाम विख्यात थे। अन्यों के मत में माधव सायण और वेङ्कट से भिन्न थे। माधव का ऋग्वेद पर विलक्षण पाण्डित्य दिखता है। सायण और वेङ्कट दोनों ने माधव के भाष्य का अनुसरण किया। अन्य भी एक माधव है। जिसकी ऋग्वेद के पहले अष्टक की टीका अभी ही मद्रास विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुई। अतीव सारगर्भित है यह टीका विस्तृत नहीं। तो भी मन्त्रों

के अर्थावबोधन में नितान्त महत्त्वपूर्ण है यह टीका पण्डित साम्बशिव शास्त्री वेङ्कटमाधव का जन्म बाहरवीं शताब्दी में हुआ ऐसा मानते हैं। वेङ्कट का भाष्य अतिसंक्षिप्त है। उन्होंने पर्यायवाची पदों को रख कर मन्त्रों के साथ अर्थ ग्रहण करने का प्रभूत प्रयत्न किया।

यह माधवभट्ट ऋग्वेद के महान् विद्वान् थे यहाँ पर सन्देह का अवसर नहीं है। इस टीका के लेखन से पूर्व ही उन्होंने ग्यारह अनुक्रमणी लिखी। जिनमे प्रत्येक अनुक्रमणी शब्द कोष के समान रह कर ऋग्वेद के शब्द और अर्थों को प्रकट करने में समर्थ है। इन उपलब्ध अनुक्रमणीयों में केवल दो ही अनुक्रमणी प्रकाशित हैं। वे नामानुक्रमणी और आख्यातानुक्रमणी नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके अध्ययन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ ऋग्वेद के नाम और धातुओं का एकत्र संग्रह है। और भी अधिक अति महत्त्वपूर्ण अनुक्रमणी-निर्वचनानुक्रमणी-स्वरानुक्रमणी-छन्दानुक्रमणी आदि आज भी उपलभ्यमान नहीं होती हैं। इन अनुक्रमणियों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुक्रमणी 'स्वरानुक्रमणी भी उपलब्ध' नहीं होती है। इस ग्रन्थ से वैदिकस्वर का जितना ज्ञान हो सकता है उतना अन्य टीकाओं से नहीं हो सकता। इसके वैशिष्ट्य का सङ्केत वेदों के मर्मज्ञ विद्वान देवराज यज्वा ने पहले ही निघण्टु के निर्वचन से प्राप्त कर लिया था। इससे प्रतीतहोता है कि देवराजयज्वा माधव से भ्रान्ति शून्यता से भी परिचित नहीं थे। इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में इन्होंने वेङ्कटमाधव का सङ्केत किया। यह हो सकता है कि यहाँ माधव कथन का वेङ्कटमाधव से ही अभिप्राय हो। इस ग्रन्थ के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि माधव के द्वारा निर्दिष्ट विषयों में एक भी निर्देश वेङ्कटमाधव के ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता है। और भी कुछ निर्देश सायण माधव के बृहद्भाष्य में ही मिलते हैं। यह ग्रन्थ उसकी स्वयं की रचना नहीं है। यदि यह समग्रग्रन्थ उपलब्ध हो जाए तो देवराजयज्वा के सारे निर्देश इस अभिनव माधव के ग्रन्थ में ही मिलने की सम्भावना है। इस ग्रन्थ का जितना अंश उपलब्ध हुआ है उसमें आधे से अधिक निर्देश मिलते हैं। इसलिए यह माधव वेङ्कटमाधव से भिन्न ही है यह प्रमाणित होता है।

पाठगत प्रश्न

312. इतिहासकार किन चार भाष्यकारों का नामोल्लेख करते हैं?

313. माधव का विलक्षण पाण्डित्य कहाँ दिखता है?

314. किन दो विद्वानों ने माधव भाष्य का अनुसरण किया?

3.1.5 वेङ्कट माधव

वेङ्कट माधव का सम्पूर्ण-ऋक्संहिता पर भाष्य प्रणीत है। कुछ आलोचक अनुमान लगाते

टिप्पणी

हैं कि इस विद्वान् ने ऋक्संहिता पर दो भाष्य लिखे। वेङ्ट माधव ने स्वरचित प्रथम भाष्य के अन्तिम भाग में अपने वंश का परिचय दिया। उसके अनुसार इस वेङ्कट माध व ने वसिष्ठ गोत्र में जन्म प्राप्त किया। इनके पूर्वज आन्ध्र प्रदेश में स्थित दक्षिणा पथीय चोल देश में रहते थे। इनके पिता वेङ्कटाचार्य और माता सुन्दरी देवी थी। इनका मातृगोत्र भी वसिष्ठ था। इनके एक सङ्कर्षण नामक अनुज भी थे। वेङ्कट माधव के वेङ्कट और गोविन्द नामक दो पुत्र भी थे। इनके काल का निर्णय करने के लिए एक ही उपाय है जिससे इनका समय विशेष रूप से निर्धारित किया जा सके।

माधव का भाष्य अत्यन्त संक्षिप्त है। **'वर्जयन् शब्दविस्तारं शब्दैःकतिपयैरिति।'** यह लिखकर उन्होंने यह तथ्य स्वयं ने स्वीकार किया। इस भाष्य में केवल मन्त्रों के पदों की ही व्याख्या है। भाष्य के संक्षेप के लिए भाष्यकार ने मूल पदों का समावेश अत्यन्त अल्प ही किया। इस भाष्य के अध्ययन से मन्त्रों का अर्थ सरलता से ही ज्ञात हो सकता है। स्कन्द स्वामी के भाष्य की अपेक्षा यह भाष्य अतिसंक्षिप्त है। व्याकरण जन्य तथ्यों का निर्देश तो इस भाष्य में नहीं है। प्रायः सब जगह ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रामाण्य अच्छी तरह उल्लिखित है। जिससे माधव की ब्राह्मण ग्रन्थों के विषय में विशेष व्युत्पत्ति प्रतीत होती है। माधव ने कहा कि वेदों के गूढ अर्थ के बोधार्थ ब्राह्मण ग्रन्थ नितान्त उपयोगी हैं। इसलिए उनका कथन है कि-

'संहितायास्तुरीयांशं विजानन्त्यधुनातनाः।
निरुक्तव्याकरणयोरासीत् येषां परिश्रमः॥
अथ ये ब्राह्मणार्थानां विवेद्रारः कृतश्रमाः।
शब्दरीतिं विजानन्ति ते सर्वं कथयन्त्यपि॥

माधवाचार्य की यही आस्था है ब्राह्मणग्रन्थों के प्रति। इसलिए यह भाष्य ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुकूल है। दिल्ली से मोतीलाल बनारसी दास ने यह भाष्य प्रकाशित किया। इस भाष्य के सम्पादक डॉ. लक्ष्मणस्वरूप हैं।

पाठगत प्रश्न

315. वेङ्ट माधव ने किस संहिता पर भाष्य लिखा?

316. वेङ्ट माधवचार्य ने किस गोत्र में जन्म लिया?

317. वेङ्ट माधव के पिता का क्या नाम था?

318. वेङ्ट माधव की माता का क्या नाम था?

319. वेङ्ट माधव के अनुज का क्या नाम था?

320. वेङ्ट माधव के कौन दो पुत्र थे?

3.1.6 आनन्द तीर्थ

आनन्द तीर्थ ही 'मध्व' नाम से सुप्रसिद्ध थे। यह मध्व वह है जिसने द्वैतवाद का प्रवर्तन किया। इन्होंने बहुत से ग्रन्थों की रचना की। आनन्द तीर्थ ने कतिपय वैदिक मन्त्रों का व्याख्यान भी किया। यह व्याख्या छन्दोबद्ध है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के कतिपय मन्त्रों के ऊपर ही यह व्याख्या है। इस सन्दर्भ में राघवेन्द्रयति का यह कथन यथार्थ रूप से प्रमाणित है कि - 'ऋक्शाखागत एक हजार एक सूक्तों में कोई चालीस सूक्तों की व्याख्या श्रीभगवत्पाद के द्वारा ही की गयी।'

श्रीमद् भगवद् गीता में आत्मा के विषय में श्रीकृष्ण का यह कथन है- 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' अर्थात् सभी वेद मेरा ही प्रतिपादन करते हैं। अतः वेदों में सर्वत्र नारायण का ही प्रतिपादन है इसलिए जो आनन्द तीर्थाचार्य का मत है वह सही तरह से प्रतिपादित है। अपने भाष्य के आरम्भ में आनन्द तीर्थाचार्य ने कहा कि-

'स पूर्णत्वात् पुमान् नाम पौरुषे सूक्त ईरितः।
स एवाखिलवेदार्थः सर्वशास्त्रार्थं एव च॥'

अर्थात् नारायण पूर्ण पुरुष है। अतः पुरुष सूक्त में - 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इत्यादि ऋचाओं में वह ही पुरुष पद से अभिहित है। समस्त वेदों और शास्त्रों का अभिप्राय उसी पूर्ण पुरुष का प्रतिपादन है। इसी दृष्टी से ही वैष्णवाचार्य आनन्द तीर्थ ने ऋग्वेद के मन्त्रों का अर्थ किया। जयतीर्थ के कथनानुसार इस भाष्य में आधिभौतिक और आधिदैविक अर्थ के अतिरिक्त आध्यात्मिक अर्थ का भी सुन्दर प्रतिपादन है- और ऋग्वेद का अर्थ तीन प्रकार से होता है। एक प्रसिद्ध अग्निरूप, दूसरा उसके अन्तर्गत ईश्वर के लक्षण, और तीसरा आध्यात्मरूप, तथा यह भाष्य भी तीनों अर्थो को दृष्टि में रख कर किया गया है।' विलक्षण है यह ऋग्वेद का माधव भाष्य। द्वैत वादियों में अतीव प्रसिद्ध है यह भाष्य। इसके मध्यभाग के रचनाकाल से तीस वर्ष बाद प्रसिद्ध मध्वाचार्य ने इसकी जयतीर्थ टीका लिखी। जयतीर्थ टीका की विवृति 1718 विक्रमी सम्वत में नरसिंह ने लिखी। नारायण ने भी अपर विवृति 'भावरत्नप्रकाशिका' -लिखी। आनन्द तीर्थ का आविर्भाव काल विक्रमी सम्वत बारह सौ पचपन से तेरह सौ पैतीस तक (1255- 1335) स्वीकार किया जा सकता है। सुना जाता है कि आनन्द तीर्थ अस्सी वर्ष जीये।

पाठगत प्रश्न

321. आनन्द तीर्थ किस नाम से सुप्रसिद्ध थे?

322. आनन्द तीर्थ का यह व्याख्या कैसा है?

323. 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' यह वचन कहां का है?

324. आनन्द तीर्थाचार्य किस सम्प्रदाय के थे?

325. व्याख्याकार नारायण कौन थे?

326. मध्वने द्वैतवाद का प्रवर्तन किया या नहीं?

327. मध्वभाष्य किस वेद पर है?

328. जय तीर्थ के टीका की विवृति किसने और कब की?

329. आनन्द तीर्थ का आविर्भाव का काल बताओ?

3.1.7 सायणाचार्य

आचार्य सायण विजय नगर के संस्थापक महाराज बुक्क और महाराज हरिहर के अमात्य और सेनानी थे। सायण वैदिक सम्प्रदाय के यथार्थ ज्ञाता थे। अतएव उनका वेदभाष्य वेदार्थ के सभी भाष्यों में श्रेष्ठ भाष्य है। सायणाचार्य दुर्ग इस वेददुर्ग में सरलता से ही वेदार्थ के जिज्ञासु का प्रवेश करवाते हैं।

महाराज बुक्क के प्रधानमन्त्री का पद सायणाचार्य ने 1394 ईस्वी 1378 ईस्वी तक अलंकृत किया। तदनन्तर उन्होंने 1379 ईस्वी से 1387 ईस्वी अर्थात् मृत्युपर्यन्त महाराज हरिहर के मन्त्रिपद को अलंकृत किया। अतः चोदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध ही सायण भाष्य का रचनाकाल था ऐसी कल्पना की जा सकती है। सायणाचार्य के ज्येष्ठ भ्राता माधवाचार्य थे। माधवाचार्य ने ही अपने भाई सायणाचार्य को व्याख्या कार्य में प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित किया। भाई से प्रेरित होकर ही सायणाचार्य व्याख्या कार्य में प्रवृत्त हुए। इसलिए यह भाष्य माधवीय इस नाम से विश्व प्रसिद्ध हुआ।

पाठगत प्रश्न

330. आचार्य सायण किन दो राजाओं के अमात्य और सेनानी थे?

331. आचार्य सायण के भाष्य का नाम बताओ?

332. महाराज बुक्क का प्रधानमन्त्री पद सायणाचार्य ने कब से कब तक अलंकृत किया?

333. सायण भाष्य का रचना काल बताइए?

334. सायणाचार्य के भाई का नाम बताओ?

335. महाराज हरिहर का मन्त्रीपद सायणाचार्य ने कब अलंकृत किया?

3.2 सामवेद के भाष्यकार

3.2.1 माधव

यह माधव सामसंहिता के प्रथम भाष्यकार प्रतीत होते हैं। उसने सामवेद के दोनों खण्ड- छन्दार्चिक और उत्तरार्चिक पर भाष्य किया। इस भाष्य का नाम 'विवरण' है। छन्दार्चिक भाष्य का नाम 'छन्दसिकाविवरण' तथा उत्तरार्चिकभाष्य का नाम 'उत्तरविवरण' है। आज तक यह भाष्य अमुद्रित अवस्था में ही है। सत्यव्रतसामश्रयी महोदयने इस भाष्य का अन्वेषण किया। उन्होंने सर्व प्रथम अपने सायण भाष्य के संस्करण में इस भाष्य का भी कुछ अंशं टिप्पणी-रूप में सन्निविष्ट किया।

माधव के पिता का नाम नारायण था। कतिपय विद्वान् इनको स्कन्द स्वामी के ऋग्भाष्य के पूरक और सहायक नारायण से अभिन्न मानते हैं। किन्तु उन दोनों की अभिन्नता के प्रदर्शक प्रबल प्रमाण का आज भी अभाव है। तो भी इनका आविर्भावकाल निश्चित रूप से बताया जा सकता है। बाहरवीं शताब्दी में देवराजयज्वा ने अपने निघण्टु भाष्य की भूमिका में किसी माधव का निर्देश किया। सम्भवत: यह माधव ही सामभाष्य का-रचयिता है। इतना ही नहीं अपितु बाणभट्ट की कादम्बरी का भी यह श्लोक है-

'रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तम: स्पृशे।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नम:।।

माधव के 'सामविवरण' में यह मङ्गलाचरण के रूप में उपलब्ध होता है। इस श्लोक के 'त्रयीमयाय' इस शब्द से ज्ञात होता है कि यह श्लोक किसी वैदिकग्रन्थ का ही मङ्गलाचरण था। अत: अनुमान किया जाता है कि- सर्वप्रथम सामभाष्य के मङ्गलार्थ माधवने यह श्लोकरचा। भाष्यकार माधव बाणभट्ट के कोई पूज्याचार्य भी हो सकते हैं। बाणभट्ट के पूर्वज भी वेद में पारङ्गत विद्वान् थे। हर्षचरित से प्रमाणित होता है कि बाणभट्ट के गुरु भी कोई वेदवेदाङ्ग में पारङ्गत विद्वान् ही थे। यह घटना पूर्वानुमान को ही पोषित करती है। अत: बाणभट्ट के पूर्ववर्ती माधव का समय विक्रम की सातवीं सदी स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसलिए यदि बाणभट्ट सातवीं शताब्दी ईस्वी के प्रारम्भकाल में थे तो माधव का समय छठी शताब्दी कहा जा सकता है। माधव का यह भाष्य अतीव महत्त्वपूर्ण है।

पाठगत प्रश्न

336. सामसंहिता के प्रथम भाष्यकार कौन थे?

337. माधवकृत भाष्य का क्या नाम है?

टिप्पणी

338. 'विवरण' इस भाष्य का अन्वेषण कर्ता कौन है?

339. माधव के पिता का नाम बताओ?

340. 'त्रयीमयाय'-इस शब्द क्या ज्ञात होता है?

3.2.2 गुणविष्णु

गुणविष्णु ने साम मन्त्रों की व्याख्या रची। उस व्याख्या की मिथिला तथा बङ्गप्रदेश में अतिप्रसिद्धि है। उन्होंने नित्यनैमित्तिक विधनों के उपयोगी साम मन्त्रों की व्याख्या करके अति महत्त्वपूर्ण कार्य किया। ये महापुरुष मिथिला के बङ्गप्रदेश के किसी भाग में रहते थे। इनका छान्दोग्य मन्त्र भाष्य पर एक सुन्दर संस्करण था। वह भाष्य 'कलकत्ता-संस्कृत-परिषद्' नामक संस्था से प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में विद्वानों के सम्पादक गुणविष्णु के विषय में अनेक ज्ञातव्य विषयों का विवेचन किया गया है।

यह छान्दोग्य मन्त्र भाष्य सामवेद की कौथुम शाखा पर है। ('हलायुध का काण्व के विषय में तथा कौथुम के विषय में गुणविष्णु के द्वारा') 'सायणकृत मन्त्र भाष्य का आधार गुणविष्णु का भाष्य ही है' ऐसा आलोचक कहते हैं। हलायुध ने भी इस ग्रन्थ का उपयोग किया यह भी प्रमाण मिलता है। गुणविष्णु बल्लाल सेन अथवा उसके प्रसिद्ध पुत्र लक्ष्मण सेन के राज्यकाल में हुए थे। इसलिए इन गुणविष्णु का समयविक्रम की बाहरवीं शताब्दी का अन्तिम भाग तथा तेरहवीं शताब्दी का आदि भाग निश्चित होता है।

गुणविष्णु का 'छान्दोग्यमन्त्रभाष्य' नितान्त विख्यात ग्रन्थ है। इनके दो अन्य ग्रन्थ-मन्त्र ब्राह्मण भाष्य, और पारस्करगृह्यसूत्र भाष्य भी हैं। इससे ज्ञात होता है कि ये उस समय के प्रख्यात वैदिक विद्वान् थे।

पाठगत प्रश्न

341. गुणविष्णु का साम मन्त्र व्याख्या कहाँ अतिप्रसिद्ध है?

342. गुणविष्णु ने किसकी व्याख्या लिखा?

343. गुणविष्णु कहाँ के थे?

344. छान्दोग्य मन्त्र भाष्य का एक सुन्दर संस्करण कहाँ से प्रकाशित हुआ?

345. गुणविष्णु किसके राज्यकाल में थे?

346. बल्लाल सेन के पुत्र का क्या नाम था?

347. गुणविष्णु का समय बताओ?

348. गुणविष्णु का नितान्त विख्यात ग्रन्थ कौन सा है?

टिप्पणी

3.3 शुक्ल यजुर्वेद के भाष्यकार

3.3.1 उव्वट

उव्वट काश्मीर प्रदेशीय विद्वान् थे ऐसा बहुत से विद्वानों का मत है। इनका कहीं कहीं 'औबट:' और कहीं 'उवट' नाम भी उपलब्ध होते हैं। उव्वट ने यजुर्वेद संहिता पर अपने नाम का भाष्य लिखा जो आज भी प्राप्त होता है। इनके पिता का नाम 'वज्रट' था। 'ये मम्मट के भ्राता थे' यह सुधासागरकार भीमसेन का मत है। परन्तु उवट के विषय में कुछ तथ्य प्राप्त है। उनके द्वारा रचित यजुर्वेद संहिता भाष्य में एक पद्य उपलब्ध होता है-

'ऋष्यांदीनश्च पुरस्कृत्य अवन्त्यामुवटो वसन्।
मन्त्रभाष्यमिदं चक्रे भोजे राष्ट्रं प्रशासति॥'

उसी भाष्य की एक अन्य पुस्तक में एक और पद्य उपलब्ध होता है-

'आनन्दपुरवास्तव्यवज्रटाख्यस्य सूनुना।
मन्त्रभाष्यमिदं क्लृप्तं भोजे पृथ्वीं प्रशासति॥'

इन दोनों पद्यों के द्वारा 'उव्वट' वज्रट के पुत्र तथा भोज के समकालिक थे ऐसा सिद्ध होता है। यदि ये उव्वट भीम सेन के कथनानुसार मम्मट के भ्राता होते तो मम्मट के जैयटपुत्र होने से उनके भाई उव्वट के भी जैयटपुत्र होते। तब उव्वट के श्लोकोक्त वज्रट किसी भी प्रकार पुत्र नहीं कहे जा सकते। यद्यपि काश्मीर देशीय जैयटगोत्र के वज्रट के दत्तक पुत्र थे ये उव्वट इस कल्पना में जैयटपुत्र उव्वट का वज्रट पुत्रत्व उपपद्यमान होता है, तथापि उनका भोज का समकालिकत्व अनुपपन्न होता है। क्योंकि उनके ज्येष्ठ भ्राता मम्मट भोजराज से अर्वाचिन थे। अत: उनके भ्राता उव्वट भी भोजराज से अर्वाचिन सिद्ध होते हैं। अवन्ती में (उज्जयिनी) रहते हुए उन्होंने भाष्य का निर्माण किया एक जगह ऐसा उल्लेख है, गुजरात के आनन्दपुर में रहते हुए उन्होंने भाष्य लिखा ऐसा दूसरी जगह उल्लेख है, यह भी विप्रतिषिद्ध ही है। यदि उव्वट के पिता वज्रटआनन्दपुर में रहते थे उव्वटने तो उज्जयिनि में रहकर ही भाष्य लिखा ऐसी कल्पना की जाए तो भी वज्रट का काश्मीरिकत्व सन्देहित होता है।

महाराज भोज धारा नगर के शासक और परमार वंशी थे। उसने 1018 ईश्वी में सिंहासनारूढ होकर 1063 ईश्वी पर्यन्त राज्य किया इसलिए उसका काल ग्यारहवीं सदी है। भोज का कविजन प्रियत्व प्रसिद्ध है। शेखगिरि शास्त्री लिखते हैं कि यह भोज धारा से अपनी

टिप्पणी

राजधानी उज्जयिनी में लाया ऐसा 'आइने अकबरी' पुस्तक में लिखा हुआ है। इसलिए पूर्व उल्लिखित भोज राज का समय 1018 ईश्वी से 1063 ईश्वी तक था। अतः भोज राज के समकालिकत्व से उव्वट ग्याहरवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुए ऐसा निश्चय से कहा जा सकता है। इसका भाष्य लघ्वक्षर होते हुए भी अतीव उज्ज्वल है, तथा सरल और प्रामाणिक है। इस भाष्य में अनेक मन्त्रों का अध्यात्मपरक अर्थ दर्शित है। इससे प्रतीत होता है कि ये मध्ययुग के एक नितान्त प्रौढ वेदज्ञ थे। इनकी अन्य कृतियों में- (क) ऋक्प्रातिशाख्य की टीका, (ख) यजुःप्रातिशाख्य की टीका, (ग) ऋक्सर्वानुक्रमणी भाष्य, और (घ) ईशावास्यो पनिषद्-भाष्य ये चार ग्रन्थ नितान्त प्रौढ, प्रसिद्ध और प्रकाशित हैं।

पाठगत प्रश्न

349. उव्वट किस देश के विद्वान् थे?

350. उव्वट ने यजुर्वेदसंहिता नामक अपना भाष्य लिखा अथवा नहीं?

351. उव्वट के पिता का नाम बताओ?

3.3.2 महीधर

वैदिक काल से ही संस्कृत विद्या का अन्यतम प्रधान केन्द्र काशी थी ऐसा हम सब जानते ही हैं। यहीं गौतम आदि तथा अन्य बहुत से वेदों के मन्त्रद्रष्टा विद्वान हुए। इतिहास पुराणों में भी विशिष्ट पण्डितों से सुसज्जित काशी नगरी का स्पष्ट वर्णन है।

आचार्य महीधर का भी जन्म इसी काशी नगरी में हुआ था। वहां उनके वासस्थान के समीप में एक पुष्करिणी आज है ऐसा परम्परा से सुनते आरहें हैं। ये नागर-ब्राह्मण वंशीय विद्वान् थे। उन्होंने काशी में ही अध्ययन करके विद्वज्जनों में प्रतिष्ठा प्राप्त की। उसके बाद कतिपय ग्रन्थों की रचना करके महीधर काशीनरेश की शरण में गये। इसीलिए प्रायः राजाश्रितः पण्डितः 'महीधरः' इस उक्ती से उनका बोध होता है। वहीं उन्होंने वेददीप नामक सामभाष्य की रचना सम्पादित की। यद्यपि यह भाष्य मौलिक नहीं है तथापि अर्थ की विशदता की दृष्टी से नितान्त ग्राह्य है। इस सामभाष्य की पाण्डुलिपि सरस्वती भवन पुस्तकालय में संगृहीत है। इस भाष्य पर उव्वट भाष्य की स्पष्ट छाया दीखती है। कुछ जगह इस विद्वान् ने निरुक्त श्रौतसूत्रादि ग्रन्थों से उदाहरण देकर याज्ञिक क्रिया का विधानकिया। ये काशीवासी महीधर तन्त्र रहस्यज्ञ थे। ये महीधर वैदिक साहित्य में पारङ्गत थे। महीधराचार्य प्रतिभावान् और विद्वान् थे। तन्त्रादि रहस्यमय शास्त्रों का भी उन्होंने सम्यक् अध्ययन किया। उन्होंने विनय एवं भक्ति के द्वारा गुरुजनों को प्रसन्न किया। जिससे उन्होंने इन्हें गुह्य से भी गुह्यतर रहस्यमयी विषय-वस्तूओं का उपदेश दिया। सर्ववेद पारङ्गत इस परमविद्वान् ने आचार्य की उपाधि प्राप्त की। महीधर ने 'मन्त्रमहोदधि'-नामक तन्त्र रहस्य

विवेचक एक ग्रन्थ विक्रम की 1645 शताब्दी (1588 ई) में लिखा। इस ग्रन्थ के अन्त में भाष्यकार ने यह लिखा-

'अब्दे विक्रमतो जाते बाणवेदनृपैर्मिते।
ज्येष्ठाष्टम्यां शिवस्याग्रे पूर्णो मन्त्रमहोदधिः।।'

अतः इसके भाष्यकार का समयसोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध निश्चित होता है। उव्वटाचार्य से ये पन्द्रह वर्षबाद में हुए। महीधराचार्य नरसिंह के उपासक थे। इसका उल्लेख बहुत से ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

पाठगत प्रश्न

352. वैदिक काल से ही संस्कृत विद्या का अन्यतम प्रधानकेन्द्र क्या था?

353. काशी में उत्पन्न कुछ विद्वानों के नाम लिखो?

354. नागर-ब्राह्मणवंशीय विद्वान् कौन थे?

355. महीधरकाशी में अध्ययन समाप्त करके किसकी शरण में गये?

356. महीधर ने किस वेद का भाष्य लिखा?

357. महीधर तन्त्र रहस्यज्ञ थे अथवा नहीं?

358. 'मन्त्रमहोदधि'- यह ग्रन्थ किसने लिखा?

359. महीधर का समय बताओ?

360. महीधर किसके उपासक थे।

3.3.3 हलायुध

सायण के परवर्त्ती अनन्ताचार्य-आनन्दबोध आदि बहुत से विद्वानों ने काण्व संहिता पर भाष्य किये। किन्तु सायण के पूर्ववर्त्ती प्रधानाचार्यों में हलायुधने ही शुक्ल यजुर्वेद की काण्व संहिता पर विशिष्ट भाष्य रचा। इस भाष्य का नाम 'ब्राह्मणसर्वस्वम्' है। भाष्य के प्रारम्भ में ही हलायुध अपने विषय में कुछ लिखा। बाल्यकाल में ही हलायुध राज पण्डित हो गये थे। नवयौवन में उन्होंने श्वेतछत्र धारण का अधिकार प्राप्त किया। वृद्धावस्था में राजा लक्ष्मण सेन के धर्म अधिकारिपद पर वे नियुत्त हुए।

'बाल्ये ख्यापितराजपण्डितपदं श्वेतार्चिबिम्बोज्ज्वल-
च्छत्रोत्सिक्तमहामहस्तमुपदं दत्वा नवे-यौवने।
यस्मै यौवनशेषयोग्यमखलक्ष्मापालनारायणः
श्रीमान् लक्ष्मणसेनदेवपतिर्धमाधिकारं ददौ।।

राजा बल्लालसेन के बाद उनके पुत्र 'लक्ष्मणसेन' ने अतीवयोग्यतापुर:सर गौडक्ष्माकी रक्षा की। ग्यारह सौ सत्तर ईश्वी में ये राजसिंहासन पर आरूढ हुए (द्रष्टव्य है- प्राचीन भारत का इतिहास- स्मिथ)। लक्ष्मणसेन ने तीस वर्ष (30 ब.) राज्य किया। आर्यों को मुक्त हाथ से दान दिया। वे पराक्रम में इन्द्र के तुल्य थे। उनके राज्य में सभी सुख से रहते थे। ये तीस वर्ष शासन करके बारहवीं शताब्दी में परलोक सिधारे थे। हलायुध गौड क्षितिपाल लक्ष्मण सेन के धर्माध्यक्ष थे। लक्ष्मण सेन का समय वि.स. (1227-1237 (ईशवी 1170-1200) है। अत: हलायुध भी तत्कालिक ही थे।

हलायुध उस काल के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् थे। हलायुध ने 'ब्राह्मण सर्वस्व' ग्रन्थ लिखा। ये हलायुध शैव दर्शन के आचार्य थे। ये वेद-मीमांसा मर्मज्ञ और वेदपारङ्गत थे। विशेषत: शैव-वैष्णवागम के रहस्यज्ञ विद्वान् थे। इनकी ख्रतियों में ब्राह्मण सर्वस्व, मीमांसा सर्वस्व, वैष्णव सर्वस्व, शैव सर्वस्व, और पण्डित सर्वस्व ये पांच ग्रन्थ नितान्तप्रौढ और प्रसिद्ध थे। हलायुध अपनी योग्यता के बल से गौडराज्याधिपति लक्ष्मणसेन के सभापण्डित और धर्माध्यक्ष बने थे।

पाठगत प्रश्न

361. हलायुध ने किस वेद की संहिता पर अपना विशिष्ट भाष्य रचा?

362. हलायुध के भाष्य का क्या नाम है?

363. लक्ष्मणसेन ने कितने वर्ष राज्य किया?

364. लक्ष्मणसेन का समय बताओ?

365. हलायुध किस दर्शन के आचार्य थे?

366. हलायुध के प्रसिद्ध ग्रन्थ कौन से हैं?

3.3.4 भट्ट भास्कर

भट्ट भास्कर के समय का निर्धारण वैदिकभाष्यकारों के इतिहास के लिए नितान्त आवश्यक है। सायणाचार्य ने अपने भाष्य में भट्ट भास्कर मिश्र का स्मरण किया। इससे ज्ञात होता है कि वे विक्रम से पाँच सौ वर्ष पूर्व वर्ती थे। सायण के पूर्ववर्ती लक्ष्मणापर नामक वेदाचार्य ने सुदर्शन मीमांसा ग्रन्थ में न केवल भटभास्कर मिश्र का नामोल्लेख किया, अपितु उन्होंने उनके ज्ञान यज्ञ नामक भाष्य ग्रन्थ का भी उल्लेख किया। 'तत्र भाष्यकृता भास्करमि श्रेण ज्ञानायज्ञाख्ये भाष्ये एतत्प्रमाण व्याख्या नसम ये चरणमिति देवता विशेष इति तदनुगुणमेव व्याख्यातम्।। (सुदर्शनमीमांसा पृ.4)। देवराज यज्वा ने भी अपने ग्रन्थ में इस भाष्य को उद्धृत किया। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् हरदत्त ने एकाग्नि काण्ड के अपने

भाष्य में भास्करकृत भाष्य से सहायता प्राप्त की थी। अत: भास्कर मिश्र का समय विक्रम की ग्याहरवीं शताब्दी कहा जा सकता है। हरिदत्त ने अपने भाष्य में आर्यभट्टीय-अमरकोष-काशी का आदि ग्रन्थों का नामोल्लेख किया। इससे भी हरदत्तादिभाष्य कारों से इनका पूर्वकालिकत्वं प्रतीत होता है। यह प्रमाण भी पूर्वकथित समय को सिद्ध करता है।

भट्टभास्कर ने तैत्तिरीय संहिता पर ज्ञान यज्ञ नामक भाष्य लिखा। यह भाष्य बहुत से तथ्यों द्वारा समृद्ध है। प्रमाणपुर:सर कतिपय वैदिक ग्रन्थों के मन्त्रों के उद्धरण इस भाष्य में उपस्थापित हैं। विद्वान् भट्टभास्कर ने लुप्तनिघण्टुग्रन्थ के उद्धरण संगृहीत किये। उसने मन्त्रों के अर्थप्रदर्शन के समय विभिन्न आचार्यों के मत भी प्रदर्शित किये। इस भाष्य में न केवल यज्ञपरक अर्थ का निर्देशन है, अपितु अध्यात्म और अधिदैव पक्षों के अर्थ का भी प्रदर्शन किया गया है। जैसे- 'हंस: शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसत्' इस प्रसिद्ध मन्त्र में 'हंस'-पद की तीन प्रकार से व्याख्या की गयी। वह इस प्रकार है= अधियज्ञ पक्ष में हंसपद की व्याख्या - 'हन्ति पृथिवीमिति हंस:' अधिदैव पक्ष में -हंसपद का अर्थ आदित्य होता है, तथा अध्यात्म पक्ष में - 'हंस' - पद का अर्थ 'आत्मा' किया गया। अत: इस भाष्य का वैदिक साहित्य में अतीव महत्त्व है।

3.4 अथर्व वेद के भाष्यकार

3.4.1 गोविन्द स्वामी

तेहरवीं शताब्दी में उत्पन्न 'दैव' पद की टीका 'पुरुषाकार' है। इस टीका के कर्त्ता श्रीकृष्ण लीलांशुक मुनि थे। श्रीकृष्ण लीलांशुक मुनि ने 198 कारिकाओं की टीका में गोविन्द स्वामी का नामोल्लेख किया। यह ग्रन्थ अनन्तशयन ग्रन्थ माला से प्रकाशित है। यह उद्धरण माधवीयधतुवृत्ति में भी मिलता है। बौधयनीय धर्म विवरण के भी कर्ता सम्भवत: ये ही थे। इस ग्रन्थ में कुमारिल तथा उसके ग्रन्थ तन्त्रवार्तिक के भी उद्धरण उपलब्ध होते हैं। इसलिए इनका समय आठवीं शताब्दी के बाद तथा तेहरवीं शताब्दी के पूर्व अर्थात् सम्भवत: दशवीं शताब्दी कहा जा सकता है।

पाठगत प्रश्न

367. 'दैव' पद की कौन सी टीका है?

368. पुराषाकार टीका के कर्त्ता कौन थे?

369. पुरुषाकार यह ग्रन्थ कहां से प्रकाशित हुआ था?

370. गोविन्द स्वामी का काल बताओ?

3.4.2 षड्गुरु शिष्य

इस विद्वान टीकाओं की सङ्ख्या कम नहीं है। इस विद्वान् ने ऐतरेयब्राह्मण, ऐतरेयारण्यक, आश्वलायन श्रौतसूत्र, और आश्वलायन गृह्यसूत्र की व्याख्या की। वेदान्तदीपिकाख्य कात्यायन की सर्वानुक्रमणि की व्याख्या इस विद्वान् की है जो कि उसके सरस रचना कौशल के द्वारा अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह व्याख्या आक्स्फोर्ड-विश्वविद्यालय के द्वारा सुसम्पादित एवं प्रकाशित है। ग्रन्थकार ने स्वयं इस टीका का रचनाकाल 1234 सं. तथा तदनुसार 1177ई. लिखा। अत: सद्गुरु शिष्य का समय बाहरवीं शताब्दी का पूर्वार्ध ही है, ऐसा निश्चय से कहा जा सकता है।

पाठगत प्रश्न

371. सद्गुरु शिष्य ने किनकी व्याख्या लिखी?

372. सर्वानुक्रमणी व्याख्या किसने सुसम्पादित की?

पाठ का सार

इस पाठ में हमने ऋक्सामयजुरथर्व वेदों के भाष्यकारों के विषय में विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया। ऋग्वेद के भाष्यकारों में प्रसिद्ध हैं स्कन्दस्वामी-नारायणोद्गीथ-माधवभट्ट-वेङ्कटमाधव-आनन्दतीर्थ-सायणाचार्य आदि। उनके जन्मस्थान जन्म काल और उनके द्वारा किये गये वेदभाष्यों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। और उसके बाद हमने माधव और गुणविष्णु इन दोनों सामवेद के भाष्यकारों का परिचय प्राप्त किया। और उनके काल आदि के विषयमें बहुत सी चर्चा की। उसके बाद उव्वट-महीधर-हलायुध-भट्ट भास्कर आदि शुक्लयजुर्वेद के भाष्यकारों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। और उनमे उव्वट के काल के विषय में प्रवर्तमान विवाद का अवलोकन किया। तदनन्तर अथर्व वेद के भाष्यकार गोविन्द स्वामी और षड्गुरुशिष्य के देश काल आदि के विषय में जाना। यद्यपि इनसे अतिरिक्त भी अनेक वेद भाष्यकार हैं तो भी ये ही अधिक प्रसिद्ध हैं। अत: इनके जीवनावलोकन के साथ ही हमने वेदभाष्यकारों का सामान्य ज्ञान इस पाठ से प्राप्त किया। और उनके द्वारा लिखित भाष्यों में कौन से प्रकाशित हैं और कौन से अभी तक अप्रकाशित हैं यह भी जाना।

पाठान्त प्रश्न

373. स्कन्द स्वामी की उपल्बिधयों का कीर्तिका वर्णन करो?

374. माधवभट्ट के देशकाल और कीर्ति का परिचय लिखो?

375. आनन्द तीर्थाचर्य का परिचय लिखो?

376. सायणाचार्य की कीर्ति का वर्णन करो?

377. गुणविष्णु के देशकाल और कीर्ति के परिचय की व्याख्या करो?

378. उव्वट के विषय में संक्षेप से लिखिए?

379. हलायुध की कीर्ति की व्याख्या कीजिए?

380. भट्टभास्कर का परिचय दीजिए?

381. गोविन्द स्वामी के विषय में संक्षेप से लिखिए?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर (ऋग्वेद के भाष्यकार)

382. स्कन्दस्वामी-नारायण-उद्गीथ-माधवभट्ट-वेङ्कटमाधव-आनन्दतीर्थ-आत्मानन्द-सायण आदि भाष्यकारों में सुप्रसिद्ध पण्डित हैं।

383. स्कन्द स्वामी ने निरुक्त पर टीका लिखी।

384. ऋग्वेद संहिता के सर्वप्रथम भाष्यकार स्कन्द स्वामी थे।

385. स्कन्दस्वामी का जन्म गुजरात की विद्यापीठ प्राचीन काल की विख्यात राजधानी वल्लभी में हुआ।

386. स्कन्दस्वामी के पिता का नाम भर्तृध्रुव था।

387. हरिस्वामी के गुरु स्कन्द स्वामी थे।

388. शतपथब्राह्मण के विख्यात भाष्यकार स्कन्द स्वामी थे।

389. स्कन्द स्वामी ने ऋग्वेद के सुविस्तृत भाष्य को रचा।

उत्तर (नारायण)

390. नारायण और उद्गीथ स्कन्द स्वामी के समय में ही थे।

391. नारायण ने ऋग्वेद के भाष्य में स्कन्द स्वामी की सहायता की यह वेङ्कट माधव का मत है।

392. नारायण का समय विक्रम की सातवीं शताब्दी ही प्रामाणित होता है।

उत्तर (उद्गीथ)

393. ऋग्वेद के अन्तिम भाग का भाष्य उद्गीथ ने किया था।

394. प्राचीन काल में आधुनिक कर्णाटक का पश्चिमी भूखण्ड 'वनवासीप्रान्त' नाम से विख्यात था।

395. उद्गीथाचार्य 'वनवासीप्रान्त' के प्राय: निवासी थे।

396. उन्नीस सौ पैंतीस ईश्वी में लाहौर नगर के डी.ए.वी. महाविद्यालय के शोधित विभागने इस भाष्य का ऋग्वेद का प्रारम्भिक अर्द्ध भाग को प्रकाशित किया था।

उत्तर (माधवभट)

397. इतिहास कार माधव-नामक चार भाष्यकारों का नामोल्लेख करते हैं।

398. माधव का ऋग्वेद पर विलक्षण पाण्डित्य दिखता है।

399. सायण और वेङ्कट दोनों ने ही माधव के भाष्य का अनुसरण किया।

उत्तर (वेङ्ङकट माधव)

400. वेङ्कट माधव ने सम्पूर्ण ऋक्संहिता पर अपना भाष्य लिखा।

401. वेङ्कट माधव ने वसिष्ठ गोत्र में जन्म ग्रहण किया था।

402. वेङ्कट माधव के पिता वेङ्कटाचार्य थे।

403. वेङ्कट माधव की माता सुन्दरी देवी थी।

404. वेङ्कट माधव के एकसङ्कर्षण नामक अनुज भी थे।

405. वेङ्कट माधव के वेङ्कट और गोविन्द नामक दो पुत्र थे।

उत्तर (आनन्द तीर्थ)

406. आनन्द तीर्थ ही मध्व नाम से सुप्रसिद्ध थे।

407. आनन्द तीर्थ का यह व्याख्यान छन्दो बद्ध है।

408. 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य:' यह वचन श्रीमद्भगवद् गीता में उपलब्ध होता है।

409. आनन्दतीर्था चार्य वैष्णव सम्प्रदाय के थे।

410. नारायण पूर्ण पुरुष है।

411. मध्व ने द्वैतवाद का प्रवर्तन किया।

412. मध्व का भाष्य ऋग्वेद पर है।

413. जयतीर्थ टीका की विवृति 1718 विक्रमी सम्वत में नरसिंह ने लिखी।

414. आनन्द तीर्थ का आविर्भाव काल विक्रमी सम्वत बारह सौ पचपन से तेरह सौ पैतीस तक था।

उत्तर (सायणाचार्य)

415. आचार्य सायण विजय नगर के संस्थापक महाराज बुक्क और महाराज हरिहर के अमात्य और सेनानी थे।

416. आचार्य सायण का वेदभाष्य है।

417. महाराज बुक्क के प्रधनमन्त्री पद को सायणाचार्य ने 1364 ईस्वी से 1378 ईस्वी तक अलंकृत किया।

418. चौदहवीं शताब्दी ईस्वी का उत्तरार्द्ध ही सायण के भाष्य का रचना काल कहा जा सकता है।

419. सायणाचार्य के ज्येष्ठ भ्राता का नाम माधवाचार्य था।

420. सायणाचार्य ने 1379 ईस्वी से 1389 ईस्वी पर्यन्त महाराज हरिहर के मन्त्री पद को मृत्यु पर्यन्त अलङ्कृत किया।

उत्तर (माधव)

421. माधव साम संहिता के प्रथम भाष्यकार थे।

422. माधव कृत भाष्य का नाम विवरण है।

423. 'विवरण' इस भाष्य के अन्वेष्टा सत्यव्रत सामश्रयी महोदय हैं।

424. माधव के पिता का नाम नारायण था।

425. 'त्रयीमयाय' - इस शब्द से ज्ञात होता है कि यह श्लोक किसी वैदिक ग्रन्थ का ही मङ्गलाचरण था।

उत्तर (गुण विष्णु)

426. गुण विष्णु के साम मन्त्र व्याख्यान का नाम मिथिला और बङ्गप्रदेश में अतिप्रसिद्ध है।

427. गुणविष्णु ने साम मन्त्रों की व्याख्या की।

428. ये महापुरुष मिथिला अथवा बङ्गप्रदेश के किसी भाग में रहते थे।

टिप्पणी

429. छान्दोग्य मन्त्र भाष्य का एक सुन्दर संस्करण 'कलकत्ता-संस्कत परिषद्' संस्था से प्रकाशित हुआ।

430. गुणविष्णु का समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी का उत्तर भाग था तेहरवीं शताब्दी का आदि भाग निश्चित किया जाता है।

431. बल्लालसेन के पुत्र का नाम लक्ष्मणसेन था।

432. गुणविष्णु का समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी का उत्तर भाग तथा तेहरवीं शताब्दी का आदि भाग निश्चित किया जाता है।

433. गुणविष्णु का नितान्तविख्यात ग्रन्थहै छान्दोग्यमन्त्र भाष्य।

उत्तर (उव्वट)

434. उव्वट काश्मीर प्रदेश के विद्वान् थे।

435. उव्वट ने यजुर्वेद संहिता पर अपने नाम का भाष्य लिखा।

436. उव्वट के पिता का नाम वज्रट था।

उत्तर (महीधर)

437. वैदिक काल से ही संस्कृत विद्या की अन्यतम प्रधान केन्द्र काशी थी।

438. काशी में गौतम आदि और अन्य भी बहुत से विद्वान हुए।

439. महीधर नागर-ब्राह्मण वंशीय विद्वान् थे।

440. महीधर काशी में अध्ययन समाप्त करके काशी के राजा की शरण में गये।

441. महीधर ने सामवेद का भाष्य लिखा।

442. महीधर तन्त्ररहस्यज्ञ थे।

443. 'मन्त्रमहोधि' - यह ग्रन्थ महीधर ने लिखा।

444. महीधर भाष्यकार का समय सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध निश्चित होता है।

445. महीधर नरसिंह के उपासक थे।

उत्तर (हलायुध)

446. हलायुध का शुक्ल यजुर्वेद की काण्व संहिता पर अपना विशिष्ट भाष्य है।

447. हलायुध के भाष्य का नाम 'ब्राह्मणसर्वस्व' है।

448. लक्ष्मण सेन ने तीस वर्ष तक (30 ब.) राज्य किया।

449. लक्ष्मण सेन का समय वि.स. 1226-1237 (ईस्वी 1170-1200) है।

450. हलायुध शैव दर्शन के आचार्य थे।

451. हलायुध के ब्राह्मण सर्वस्व, मीमांसा सर्वस्व, वैष्णव सर्वस्व, शैव सर्वस्व, और पण्डित सर्वस्व ये पांच ग्रन्थ नितान्त प्रौढ एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ थे।

उत्तर(गोविन्दस्वामी)

452. 'दैव'इस पद की टीका 'पुरुष कार' है।

453. पुराषाकार इस टीका के कर्ता श्रीकृष्ण लीलांशुक मुनि हैं।

454. पुरुषाकार यह ग्रन्थ अनन्तशायी ग्रन्थमाला में प्रकाशित है।

455. गोविन्दस्वामी का समय आठवीं शताब्दी के बाद तथा तेहरवीं शताब्दी से पूर्व अर्थात् सम्भवत: दशवीं शताब्दी कहा जा सकता है।

उत्तर(सद्गुरुशिष्य)

456. सद्गुरुशिष्य ने ऐतरेयब्राह्मण ऐतरेयारण्यक, आश्वलायन श्रौतसूत्र, और आश्वलायन गृह्यसूत्र की व्याख्या लिखी।

457. सर्वानुक्रमणी की व्याख्या आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालय के द्वारा सुसम्पादित है।

तीसरा पाठ समाप्त

4

वेदभाष्य की पद्धति

प्रस्तावना

इस पाठ में वेद मन्त्रों का अर्थ कैसे किया जाता है इस विषय में संक्षेप में आलोचना प्रस्तुत है। निरुक्तकार आदि वेद के अर्थ कैसे प्रतिपादित करते हैं उसको भी यहां वर्णित किया है। वेद की कौन सी पद्धतियाँ है जिनसे विद्वान वेद मन्त्रों की व्याख्या की है, भारतीय पद्धति आध्यात्मिक पद्धति तथा पाश्चात्य पद्धति। और फिर कौत्स महोदय के पूर्व पक्ष तथा यास्क महोदय सिद्धान्त पक्ष यहां आलोचित है। विभिन्न व्याख्या में सायण प्रतिपादित भाष्य का कहीं सर्वातिशय है क्यों? पाश्चात्य पौरस्त्य सभी इसी का मत स्वीकार करते है इत्यादि का यहां अच्छी प्रकार उल्लेख किया गया है। अरविन्द का विशिष्ट मत को तथा श्रीमदानन्द कुमार की विशिष्ट व्याख्यान शैली वर्णित है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे–

- मन्त्र व्याख्या की तीन पद्धतियां जान पाने में;
- पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष से कौत्स और यास्क के मत को जान पाने में;
- निरुक्त के विषय में जान पाने में;
- सायण भाष्य के महत्त्व को जान पाने में;
- अरविन्द के तथा आनन्द कुमार के मतों से अवगत हो पाने में।

4.1 भारतीय पद्धति

भाषाविज्ञान पण्डितों के मत में आर्यभाषा से मेटिक भाषा दो भाषा के लोगों ने सभ्यता और संस्कृति का निर्माण किया। आर्य भाषा भी पाश्चात्य-पौरस्त्य भेद से द्विविध है। इस आर्य भाषा के पाश्चात्य प्रभेद में यूरोपीय देश की प्राचीन और आधुनिक ग्रीक-लैटिन-फ्रेंच-जर्मन-आङ्ग्ल प्रभृति भाषाएँ सम्मिलित है। आर्य भाषा के पौरस्त्य भेद में ईरानी भाषा और संस्कृत भाषा सम्मलित है। ईरानी भाषा जेन्द-अवेस्ता-नाम से जानी जाती है, जिसमे पारसीयों के धर्म ग्रन्थ निबद्ध है। संस्कृत भाषा में भारतीय धर्म ग्रन्थ निबद्ध है।

कालक्रम से अत्यन्त अतीत काल में निर्मित किसी ग्रन्थ का अवबोधन उसके उत्तर कालिक पाठकों के लिए अति दुरूह व्यापार होता है। प्राचीनता से भाव गाम्भीर्य, और भाषा की कठिनता भी आती है और तब तो यह और भी दुर्बोध्य हो जाती है। वेद तो वैसे भी पहले से स्वयं किसी दूरालोकगत अतीत काल की कृति है, और ऊपर से भाषा वैषम्य और विचार गाम्भीर्य। फलत: वेदार्थाऽवबोधन, गवेषण, और मर्मान्वेषण एक दुर्बोधप्रहेलिका हो गई। तथापि इस प्रहेलिका का अर्थावबोधन में उद्योग प्राचीन काल से ही होता आया है। यास्क महोदय के निरुक्त में इस उद्योग का कुछ आभास भी प्राप्त होता है - षड्भाव विकारा: भवन्तीति वार्ष्यायणि:। जायतेऽस्ति विपरिण मते वर्धतेऽपक्षीयते विनश्यतीति। यास्क के कथनानुसार प्राचीन ऋषियों ने स्वकीय विशिष्ट तपोबल से धर्म का साक्षात्कार किया। और कुछ अर्वाचीन ऋषियों ने भी उस धर्म के साक्षात दर्शन करने का प्रयास नहीं किया। अपर कालिक ऋषियों की इस प्रकार की दुर्बलता को देखकर उन पर दयावश प्राचीन ऋषियों में मन्त्र का उपदेश ग्रन्थ और अर्थ उभय प्रकार से दिया। प्राचीन ऋषियों ने तो बिना श्रवण के ही धर्मों का साक्षात दर्शन किया। अत: धर्म के साक्षा दर्शन करने से उनका ऋषित्व स्वत:सिद्ध ही है और कुछ अर्वाचीन ऋषियों ने तो ग्रन्थ रूप से और अर्थ रूप से श्रवण किया तत्पश्चात् वे धर्मदर्शन के कर्ता कहलाये। अत: श्रवण के बाद दर्शन की योग्यता सम्पादन से इन ऋषियों द्वारा उपयुक्त वाणी 'श्रुतर्षि' कहलायी। अवरेभ्योऽवरलिकेभ्यो: शक्तिहीनेभ्य: श्रुतर्षिभ्य:। तेषां हि श्रुत्वा तत्पश्चादृषित्वमुप जायते न यथा पूर्वेषां साक्षात्कृद्धर्माणां 'श्रवणमन्तरेणैव' (दूर्गाचार्य:)। ये श्रुतियां ऋषियों ने लोकहित के लिए तथा वेदार्थाव बोधन के प्रयोक्तओं के लिए शिक्षा-निरुक्त-वेदाङ्गादी की रचना की। आधुनिक लोग तो वेदार्थ की दुरूहता पर अंगुली उठाते हुए दोषारोपण करके वेदार्थ को यथा नहीं भूले, वेद मूलक आचार धर्म से विमुख न हो इस विषय में समुन्नत भावना से प्रेरित थे। प्राचीन ऋषि वेदार्थोपदेश के लिए सतत जागरूक थे। यास्क महोदय ने भी कहा है - **'साक्षात्कृद्धर्माण ऋषयो बभूवु:। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मेभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्राहु:। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणाय इमं ग्रन्थं वेदञ्च् वेदाङ्गानि च।'**।

वैदिकशब्दों का अर्थ के तात्पर्य बोधन के लिए बहुत पण्डितों ने उस प्रकार चेष्टा की।

आजकल उपलब्ध यास्क विरचित निरुक्त से भी प्राचीनतर निघण्टु ग्रन्थ है, वहां वैदिक शब्दों की विस्तृत व्याख्या है। निघण्टु शब्द का भी अर्थ होता है शब्दानां सूची', निघण्टु ग्रन्थ में संहिता के कठिन और संदिग्ध अर्थ शब्दों को संकलित कर उनके अर्थ विशेष की सूचना प्राप्त होती है। समुपलब्ध ग्रन्थों के केवल निघण्टु ग्रन्थ में ही वेदार्थस्फुटी करण का प्रथम प्रयास परिलक्षित होता है। प्रातिशाख्य की रचना उसके उत्तरकाल में ही हुई। इन ग्रन्थो में वैदिक भाषा के विचित्र पद, स्वर और सन्धि पदों का ही विवेचन है। साक्षात् रूप पदार्थ पर्यालोचन के इस ग्रन्थ में नितान्त ही अभाव है। प्राचीन अनेक निरुक्त ग्रन्थों की सत्ता थी। जिसकी सूचना अन्य ग्रन्थो में यत्र तत्र उद्धरण रूप में समुपलब्ध है। उसको लेकर आज भी वेदार्थ विवेचन के सर्वाधिक गौरवशालि ग्रन्थ यास्क विरचित निरुक्त ही है। इस ग्रन्थ रत्न के परीक्षण से अनेक प्रकार के ज्ञातव्य विषयों का पर्याप्त बोध होता हो। इस ग्रन्थ में यत्र तत्र यास्क महोदय ने आग्रायण-औपमन्यव-कात्थक्य-शाकटायन-शाकपूणि-शाकल्यादि अनेक निरुक्ताचार्यों का ऐतिहासिक याज्ञिक-नैदान प्रभृति-व्याख्याकार का क्रमशः व्यक्ति रूप में और सामूहिक रूप से उल्लेख समादर पूर्वक किया। इससे यह ज्ञात होता है कि वेदार्थानुशीलन की परम्परा अतीव प्राचीनकाल से ही चली आ रही है।

यास्क द्वारा स्वनिरुक्त में (1/15) किसी कौत्स नामक आचार्य का मत उल्लिखित है। न जाने कौत्सनामक कोई आचार्य थे या नहीं। वस्तुतः ये कौत्स कोई ऐतिहासिक पुरुष थे अथवा केवल पूर्वपक्ष निमित्त से स्थापित कोई यास्क की कल्पना प्रसूत व्यक्ति थे। कौत्स महोदय का मत है कि मन्त्र निरर्थक होते है। इस कथन के पुष्टि के लिए वहां अनेक विधि से असारयुक्तियाँ प्रदर्शित की। कौत्स मत ही परिवर्तित चार्वाक-बौद्ध-जैन-अनेक वेदनिन्द कों ने स्वीकृत की।

4.2 कौत्स का पूर्वपक्ष

1. जैसे मन्त्रों के पद नियत है, तथैव शब्द क्रम भी नियत ही है। यह सामवेद का प्रथम मन्त्र है- 'अग्न आयाहि वीतये' इति। ये पद विपरीत क्रम में - 'वह्नेः आगच्छ पानाय' ऐसा नहीं कह सकते। यहां अनुपूर्वीय क्रम भी नियत ही है। पूर्वोक्त मन्त्र में व्यवस्थापित किया है - 'अग्न आयाहि' यहाँ पदक्रम को परिवर्तन - व्यातिक्रम से - 'आयाह्यग्ने' ऐसा भी नहीं कह सकते है। इसका नियत और आनुपूर्व्य अर्थ क्या है। यदि मन्त्र सार्थक हो तो उनके पदों का पदक्रम का भी परिवर्तन सार्थकवाक्य शैली भी सर्वथा तर्कसंगत हो। इस प्रकार 'नियतवाचोयुक्तयः, नियतानुपूर्व्याः भवन्ति।' (नि.1/5/2)

2. यहाँ ब्राह्मण वाक्यों द्वारा मन्त्रों का विनियोग विशिष्टानुष्ठानों में होता है। यथा- (शु.य. 1/22) 'ऊरूप्रथस्व' इस मन्त्र का विनियोग प्रथमकर्म में, और विस्तार कार्य में शतपथ ब्राह्मण करता है। यदि मन्त्रों में अर्थद्योतन की क्षमता होती तो स्वत:सिद्घ अर्थ और मन्त्र के ब्राह्मण ग्रन्थ से विनियोग दर्शन की अपेक्षा कैसे होती। निरुक्त

में कहा है - अथापि ब्राह्मणेन रूपसम्पन्ना: विधीयन्ते। 'ऊरूप्रथस्व' इति प्रथयति। 'प्रोहाणि' इति प्रोहति' (नि. 1/5/1)।

3. मन्त्रों का अर्थ अनुपपन्न होता है, अर्थात यह उत्पत्ति या युक्ति से यह सिद्ध नहीं हो सकता है। यजमान कहता है - 'औषधे! त्रायस्व एनम्' अर्थात् हे औषधे! तु इस की रक्षा कर। औषधि तो स्वय ही निर्जीव होती है। वो तो स्वयं की रक्षा करने में असमर्थ है वो वृक्ष की रक्षा कैसे कर सकती है। यजमान स्वयं परशु से वृक्ष के ऊपर प्रहार करता है और कहता है - हे परशु ! तु इस वृक्ष को मत काट - 'इससे अनुपपन्न अर्थ होते है। औषधे त्रायस्व एनम्। स्वधीते मा एनं हिंसी:, इत्यहं हिंसन्' (नि.1/5/1)। यजमान स्वयं जिसके ऊपर प्रहार करता है उसी की रक्षा के लिए प्रार्थना भी करता है। इसीलिए मन्त्र अनुपपन्नार्थ होते है।

4. वैदिक मन्त्रों में परस्पर विरोध भी दृष्टि गोचर होता है। रुद्र विषय में यह द्रष्टव्य मन्त्र है - 'एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीय:' (तैत्ति.सं. 1/8/6/1)। रुद्र एक ही है कोई अन्य नहीं ऐसा प्रतिपादित होता है। यहीं द्वितीय मन्त्र रुद्र का अनेकत्व प्रतिपादित करता है। यथा- 'असंख्यानां सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्' (तैत्ति.सं. 4/8/6/1)। अर्थात इस धरा पर असंख्य रुद्र है। इस प्रकार से एकता और अनेकता में सन्देह से रुद्र के विषय में किसी भी तथ्य का निर्णय सम्भव नहीं है। (अथापि विप्रतिषिद्धार्था: मन्त्रा: भवन्ति)

5. वैदिकमन्त्रों में कार्य विशेष के अनुष्ठान के लिए अर्थ ज्ञान कुशल पुरुषों की भागीदारी होती है। यथा होता को कहते है कि - 'अग्नये समिध्यमानाय अनुब्रुहि' (श. ब्रा. 1/3/2/3)। अर्थात् प्रज्वलित अग्नि के लिए दो। होता स्वकर्म में निरत होने पर उसके नियोजन के लिए यह उक्ति निरर्थक होती है।

4.3 यास्क का सिद्धान्तपक्ष

1. लौकिक भाषा में भी पदों का नियत प्रयोग होने पर उसके पदक्रम का नियत रूप दृष्टि गोचर होता है। यथा- इन्द्राणी एवं पितापुत्रौ। इन दोनों के प्रयोग में न तो क्रमभंग कर सकते है और न ही शब्द परिवर्त्तन ही कर सकते है। इस प्रकार नियमाभाव से भी इन शब्दों की सार्थकता स्वत:सिद्ध होती है।

2. ब्राह्मण ग्रन्थ मन्त्रों का विनियोग विधन मुद्रितानुवाद मात्र ही है, अर्थात् मन्त्रों में अर्थ प्रतिपादन अभीष्ट होता है उसी अर्थ का अनुवाद ब्राह्मण ग्रन्थों में है।

3. वैदिक वेद मन्त्रों का अर्थ अनुपन्न नहीं है। परशुप्रहार काल में जो अहिंसा की चर्चा है वह भी वेदविहित है। परशु द्वारा वृक्षछेदन अपराध होने से हिंसा का द्योतक अवश्य है क्यों कि वेद से ही यह ज्ञात होता है कि परशुछेदन हिंसा का द्योतक नही है। जिस कर्म में पुरुष वेद द्वारा नियुक्त होता है, वह कर्म अहिंसात्मक होता

है। औषधि-पशु-मृग-वनस्पति जैसे अनेक यज्ञ में उपयोग होते है। उससे वे परमोत्कर्ष को प्राप्त करते है। अतः यज्ञ में इनका विधान अभ्युदय प्रदायक होता है न की हिंसात्मक। इस प्रकार किसी भी वृक्ष का यज्ञार्थ विधि पूर्वक शाखच्छेदन का अनुग्रह ही है न की हिंसा का। ये हिंसा- ये हिंसा ऐसा कहने से यह प्रतीत होता है। प्रत्येक विशिष्ट वैदिक को कहने के लिए यह विधान है। इस प्रकार से अन्य आगमनों को भी जानना चाहिए। अनुगृह्णाति यज्ञविनियोगार्थ विधानतः छिन्दन् (दुर्गाचार्यः, निरुक्तस्य टीका 1/16/6)।

4. मन्त्रों में ही रुद्र का एकत्व है। किसी अनेकत्व का उल्लेख में भी पारस्परिक विरोध नहीं है क्योकि देव महिमशाली होते है। एकत्व में भी वे अनेक प्रकार से वर्तमान होते है। यथा इन्द्र अजातशत्रु है अर्थात् जिसका कोई शत्रु उत्पन्न नही हुआ है,। वैसे तो इद्र शत्रु का विजेता है ऐसा भी कह सकते है, इसमें कोई दोष नहीं है। ये वर्ण रूपकाश्रित कल्पना में ऊपर रखा गया है। लोक में भी शत्रुरहित भी राजा शत्रुहीन कहलाता है।

5. यज्ञानुष्ठान में परिचित भी सम्प्रेषण अव्यर्थ नहीं बोल सकता है। क्योंकि विशिष्ट अतिथि के आगमन पर मधुपर्कदान सर्वविदित है, फिर भी लोक व्यवहार में भी विधिपुरुष से तीन बार मधुपर्क याचना होती है। उसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थ की भी सम्प्रेषणा निरर्थक नहीं है।

पाठगत प्रश्न

458. आर्य भाषा कितने प्रकार की है ?

459. भारतीय धर्म ग्रन्थ किस भाषा में लिखित है ?

460. श्रुतर्षि किसका नाम है ?

461. निरुक्तकार कौन है ?

462. निर्घण्टु शब्द का क्या अर्थ है ?

463. आधुनिक जनों को वेदार्थ अवगमन में कहाँ कमजोरी है ?

464. एक निरुक्त टीकाकार का नाम लिखो ?

4.4 पाश्चात्यपद्धति

वेदार्थानुसन्धान विषय में आजकल प्रधानतया तीन मत है, जिनमें प्रथम पाश्चात्य वैदिकार्थ अनुसन्धान्कर्ताओं का मत है। अन्य दो मत भारतीय विद्वान् के ही है। पाश्चात्य पण्डितों के मतानुसार वेदार्थानुशीलन के लिए तुलनात्मक भाषाशास्त्र का और ऐतिहासिक ग्रन्थ का अध्ययन भी अतीव आवश्यक है। भारत के अलावा दुसरे देशों के लोगों का आचार

व्यवहार का ज्ञान भी वेदार्थानुसन्धान में आवश्यक है। जिससे इन दोनों का पारस्परिक तुलना से ही हमारे वैदिक धर्म का मूल स्वरूप का परिचय हो सकता है। इसी कारण से यह ऐतिहासिक पद्धति (History method) इति नाम से विख्यात हुई। भारतीय परम्परा के प्रति वैदेशिक विद्वान उदासीन ही है। अत: वे आङ्गल विद्वांन ब्राह्मण टीका पर आक्षेप करते है। राथ जैसे अनेक पाश्चात्य विद्वान भारतीय पण्डितों को वेदार्थानुसन्धान में सर्वथा अयोग्य ही मानते है। वे पाश्चात्य पण्डितों को ही योग्य मानते है, जो भारतीय परम्परा को बिलकुल भी नहीं जानते केवल भाषा शास्त्र मानव शास्त्र जैसे अनेक विषयों को ही जानते है।

इस पद्धति में अनेक गुण है किन्तु बहुविध अवगुण भी है। वेदो का आविर्भाव इसी आर्यावर्त में हुआ। वेदनिहित तत्त्व को आश्रित्य कर कालान्तर में स्मृत्यादि ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। वेद भारतीयों की अपनी समृद्धि है। ऋषि आत्मज्ञानी विद्वांनों को और तत्त्वद्रष्टा और महर्षि ने वेदों का दर्शन जैसे किया वैसे ही उनका अनुशीलन हमारा कर्त्तव्य है। उसी रूप में उनके गूढार्थ अवबोधन ही वेद के अर्थ वास्तविक अनुशीलन है ऐसा कह सकते हैं। वेद से भारतीयता का निस्वार्थ भारतेतर धर्म से और विज्ञान की सहायता लेकर उसके अर्थावबोधन का दु:साहस मूल में कुठाराघात ही है अन्य कुछ नहीं। इस प्रकार से वेदो का अर्थ करके वैदिकाचार्य के विषय में उन्मादवत्प्रलाप किसी भी तरह उचित नही है। उदाहरणार्थ हम यहाँ एक शब्द का परीक्षण करते है।

वैदिकयुग में इस देश में लिङ्ग पूजा प्रचलित थी या नही इस विषय में ये पाश्चात्य पण्डित बड़े ही कोलाहल से अपने सिद्धान्त को स्थापित किया जो कि बालकों के लिए भी उपहसन योग्य है। 'शिश्नदेव:' इस पद का प्रयोग ऋग्वेद में (7/21/5, 10/99/3) दो स्थान पर मिलता है। पाश्चात्य विद्वान इस शब्द का उत्तरभाग को अभिधप्रधान मानकर अपने सिद्धान्त को रखकर कहते है कि वैदिक काल में भी इस देश में लिङ्गपूजा का प्रचलन था। परन्तु यहां इस शब्द का वास्तविकार्थ वैसा नही है। वस्तुत: देवशब्द आलंकारिक है यहाँ। वेद में अन्यत्र प्रयुक्त पितृदेव-मातृदेव-आचार्यदेव अनेक शब्द तथैव है। यहाँ देवशब्द का अर्थ 'पूजक' ही होता है न की अन्य। तैत्तिरीयोपनिषदि (1/1) प्रयुक्त- मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यो देवो भव इत्यादि शब्दों के अर्थ होते हैं- माता को देवता की तरह पूजें, पिता को देवता की तरह पूजें, आचार्य को देवता की तरह पूजें। इन शब्दों के व्याख्या के अवसर पर आचार्य शङ्कर कहते है कि - देवतावत् उपास्या: एते ऐसा अर्थ है। श्रद्धा देव ये शब्द भी शिश्नदेव से भिन्न नहीं है। यहाँ दोनों जगह 'देव'-शब्द का प्रयोग आलंकारिक ही है। ऐसी स्थिति में शिश्नदेव का भी अर्थ होता है - शिश्न: (लिङ्ग:) देवता अस्ति अस्येति, अर्थात् कामक्रीडा में नियत पुरुष। अत्र पण्डिता: अस्य परम्परागतार्थअब्रह्मचर्य' ऐसा अर्थ स्वीकार करते है। और कुछ पाश्चात्य विद्वांन यहाँ प्रयोगमूलक परम्परागत अर्थ की उपेक्षा करके निर्मूल अप्रामाणिक सिद्धान्त को ग्रहण करते है। इसी प्रकार पारस्करगृहसूत्र 'कूर्मपित्तमङ्के निधय जपति' इस वाक्य में प्रयुक्त कूर्मपित्त शब्द का परम्परागतार्थ जल पूर्ण घट का उपहास करके जर्मन विद्वान् ओल्डनवर्ग महोदय ने 'कच्छपपित्तं क्रोडे निधाय' ये अर्थ किया।

पाठगत प्रश्न

465. कुछ पाश्चात्य विद्वानों के नाम लिखो।

466. कूर्मपित्त शब्द का परम्परागत अर्थ क्या है ?

4.5 आध्यात्मिक पद्धति

स्वामी दयानन्द सरस्वती-महोदय ने कुछ विशिष्ट व्याख्याकारों की चर्चा स्वभाष्य में करते है। वेदों का अनादित्व सिद्धान्त अपने भाष्य में प्रतिपादित किया गया इस विद्वान् द्वारा। इस महापुरुष के विचार में वेद में लौकिक इतिहास का सर्वथा अभाव ही है। वेद में प्रयुक्त सभी शब्द यौगिक और योग रूढ है। इन्द्र अग्नि वरुणादि ये देवता वाचक शब्द है सभी यौगिकत्व से ही परमात्मा के पर्यायवाची हैं। स्वामी जी का यह सिद्धान्त अंशतः समुचित ही लगता है। निरुक्त कर्ता तो स्पष्ट कहते है - जितने देव है वे सभी एक ही महान देव परमेश्वर के विशिष्ट शक्ति के प्रतीक स्वरूप है। **'महाभाग्यात् देवतायाः एक आत्मा बहुधा स्तूयते। एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।'** (निरुक्तः 7/4)। ऋग्वेद में तो इसका स्पष्ट प्रतिपादन है - **'एकं सद्विप्रा बहुध वदन्त्यग्निं यमं मातारिश्वानमाहुः'** इति (ऋ.सं 1/164/46)। इसलिए अग्नि ऐश्वर्यशाली परमेश्वर का ही रूप है, और यही स्वीकार करना सर्वथा उचित ही है। यहाँ कोई विरोध नहीं है, क्योंकि जब इस शैली में अग्न्यादि देव का वर्णन होता है तब तो विरोध का अभ्युदय होता ही है।

वेद में देवताओं का विशिष्ट स्थान है। मानव सदा प्रकृति देवों की नाना लीला को देखता है, वैदिक काल के महर्षियों ने उनकी लीला के तत्त्व के आधार पर भिन्न देवता की कल्पना की है। महर्षियों का यह विश्वास है की इन देवों की अनुकम्पा से ही सभी कार्य संचालित होते है। जगत में चल रहे सभी प्रपञ्च का कारण भूत देव ही है। यास्क कहते है कि देवता में कुछ पृथिवी स्थानीय, कुछ अन्तरीक्ष स्थानीय, और कुछ द्यु स्थानीय है। पृथिवी स्थानीय देवता में अग्नि, अन्तरीक्ष स्थानीय में इन्द्र, द्युस्थानीय देवता में सूर्य विष्णु अनेक देव है। ऋग्वेद में भी देवता प्राण शक्ति के महत्त्व से 'असुर' कहलाते है। पाश्चात्यों का प्रधान देवों को उद्देश्य करके यह विचार है कि भौतिक घटना के उत्पन्न होने से प्राकृतिक दृश्यों को देवता के रूप में कल्पित किया है। ऋग्वेद के आदि के युग में बहुत देवताओ की सत्ता थी। समय के साथ मनोविकास के साथ लोगों ने देवता को उनका एक ही अधिपति की कल्पना कर ली। पुरुष सूक्त सर्वेश्वरवाद को स्पष्ट रूप से उपस्थापित करता है।

यास्क के निरुक्त में दैवत काण्ड में देवता स्वरूप का सुन्दरतया विवेचन किया गया है। जगत के मूल में एक ही महत्वशालिनी महाशक्ति शोभित होती है। वह निरतिशय-ऐश्वर्य शालिनी होने से 'ईश्वर' कहलाती है। वही शक्ति अनेक प्रकार से स्तुत होती है। और

ऐतरेयारण्यक एतं ह्येव बह्वृचा महत्युक्थे मीमांसान्त- एतमग्नावधवर्यव एतं महाव्रते छन्दोगाः' इससे विद्वानों का कहा विचार ही परिपुष्ट होता है।

देवता प्रायः तीन रूप में होते है - आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। इन्द्रियगम्य रूप आधिभौतिक होता है, इन्द्रिय से अगम्य आधि दैविक और आध्यात्मिक होते है। 'विष्णुर्नुकं वीर्याणि......।' 'प्रविष्णवे शूषमेतु।' 'मन्यगिरिरिक्षत उरुगायाय वृष्णे......।' इत्यादि मन्त्र से वेद विष्णु देवता के कहे गये तीनों रूप प्रदर्शित होते हैं।

मानव उन देवता की शक्ति को भली भांति न जानते हुए उनके निवारण के लिए प्रयास करते है। इसीलिये श्रुति के आधार पर उसके रूपों को इसके साथ रखते है।

मन्त्र से देवों के न केवल एक ही अपितु बहुत रूप प्रतिपादित है। इस प्रकार से प्रतीच्य विद्वानों की उस बात पर कैसे विश्वास हो, जहां देवता भौतिक दृश्य के अधिष्ठातृ और प्रतीकत्व के रूप में परिकल्पित होते हैं। वेद वर्णित प्रमुख विषयों में देवता स्तुति भी एक प्रमुख विषय है।

इस विचार से अग्न्यादि शब्द न केवल परमेश्वर के ही वाचक है, अपितु उन-उन विशिष्ट देवों के भी वाचक है। अग्नि शब्द यहां भौतिक अग्निपद का बोधक है, जिस अग्नि की कृपा से इस चराचर जगत के सकल व्यवहार नियमित है। यह शब्द उस देव के भी सूचक है, जो इस भौतिकाग्नि में भी अधिष्ठित है। उसी के साथ यह शब्द इस जगत के नियामक परमात्मा के अर्थ को भी प्रकट करता है। अग्निदेव के ये तीन रूप भी समुचित ही है। अग्निमन्त्र के सूक्ष्म पर्यालोचन से सिद्ध होता है कि यह अग्नि मन्त्र ऊपर वर्णित अग्नि देव के तीनो रूपों को समभाव से बताता है। इसीलिए अग्नि देव के पूर्व वर्णित दो रूप देखकर अग्निपद परमपद के ही वाचक है ये मत तो प्राचीन परम्परा के सर्वथा विरुद्ध ही है। इसी कारण से इस शैली के सर्वथानुसरण से सर्वमान्य नहीं होता है।

स्वामी जीव महोदय ब्राह्मणग्रन्थों को संहिताग्रन्थ ही अनादित्व से और प्रामाणिकत्व से नहीं स्वीकृत करते हैं। श्रुति अन्तर्गत ब्राह्मण ग्रन्थों की गणना इसकी आवश्यकता नहीं है। इसलिए संहिता के स्वरूप दृष्टी से स्वामी जी का यह सिद्धान्त अयथार्थ ही है। तैत्तिरीयसंहिता में मन्त्र के साथ ब्राह्मणांश का भी गद्यात्मक स्वरूप समुपलब्ध होता है। इस प्रकार से तैत्तिरीय संहिता का एक भाग श्रुति तथा अपरभाग अश्रुति सा ही लगता है। स्वामी के अनुयायि वैदिक पण्डितों के सम्मत में वेद में आधुनिक-भौतिक-विज्ञान के सभी आविष्कृत पदार्थ की सत्ता स्वीकृत है। तो क्या वेद का यह ही महत्त्व है कि, इन वेदों में वैज्ञानिक अविष्कृत सकल वस्तुओं का वर्णन समुपलब्ध होता है। वेद तो आध्यात्मिक ज्ञान की निधि है। भौतिक विज्ञान द्वारा आविष्कृत पदार्थो का वर्णन नही है वेद का प्रयोजन। ऐसा होने पर यौगिक प्रक्रियानुसार इनका भौतिक विज्ञान में आविष्कृत पदार्थ का वेद में अस्तित्व स्वीकरण उपयुक्त नही लगता है। अतः स्वामी जी की यह पद्धति सर्वांशतः एव स्वीकार्य नहीं हो सकती है।

वैदिक मन्त्र का अर्थ गूढ है, ऋषि प्रदर्शित मार्गानुसार आर्ष दृष्टी से ही मन्त्रार्थ जानने चाहिए। मन्त्र के शब्दों में व्याकरणजन्य सरलता होने पर भी, उनके अभिधेयार्थ का अन्वेषण और नितान्त दुरूह है। गूढार्थ प्रतीति के लिए इस मन्त्र का यह रहस्यवाद देखने योग्य है -

'चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्याम् आविवेश॥ -ऋ. 4/58/3

इस मन्त्र का सामान्य अर्थ है कि - इसके चार सींग, तीन पैर, दी सिर और सात हाथ है। तीन प्रकार से यह बद्ध वृषभ उच्च स्वर से कोलाहल करता है। महादेव मर्त्यलोक में प्रवेश करता है तथा कौन है यह महादेव वृषभ। यास्क ने इस मन्त्रार्थ का रहस्योद्घाटन किया - कुछ के मत में यह महादेव वृषभ यज्ञ है। चार वेद इसके चार शृङ्ग है, पद त्रैकालिक अनुष्ठान कर्म है, सिर प्रायणी-उदयनीय-नाम की दो हवि है। सप्त हस्त सप्तछन्द है, यह यज्ञ मन्त्र-ब्राह्मण-कल्प से त्रिधा बद्ध है। इस प्रकार से यज्ञ रूप में महादेव यजनार्थ मरणधार्मि में प्रविष्ट हुए। कुछ के मत में महादेव वृषभ सूर्य है, जिसकी चार दिशा ही चार शृङ्ग है, तीन वेद पातीन है, दिन और रात दो सिर है, और सात किरणसात हस्त है। सूर्य पृथिवी-आकाश-अन्तरिक्ष तीनों से सम्बद्ध है, और भी मतों यह सूर्य ग्रीष्म-वर्षा-शिशिर- ऋतु का उत्पादक, अतः इसको इस मन्त्र में 'त्रिधा बद्धः' कहा गया है (द्रष्ट.नि. 13/3)। पतञ्जलि के पस्पशाह्निक में इस मन्त्र की शाब्दिक व्याख्या समुपस्थापित है। उनके मत में तो यह महादेव शब्द है, जिससे इसके चत्वार शृङ्गचतुर्विधा शब्द है (नाम-आख्यात-उपसर्ग-निपाताः), त्रीणि पदान्त के भूत-वर्तमान-भविष्यत तीनकाल है, दो प्रकार की भाषा, नित्या और कार्या दो सिर, सातहाथ से प्रथमा से सात तक विभक्तियां है। शब्द का उच्चारण हृदय-कण्ठ-मुख तीन प्रकार से होता है, इस प्रकार यह शब्द तीन प्रकार से बद्ध है। शब्दगत अर्थ वृष्टकरण से यह शब्द वृषभ पद वाच्य होता है। राजशेखर ने इस मन्त्र की व्याख्या अपनी काव्य मीमांसा में साहित्य शास्त्र के दृष्टी से ही की। सायण भाष्य में इसके अतिरिक्त अर्थ का ही वर्णन है। उपर वर्णित अर्थ में प्रत्येक अर्थ सम्बद्ध ही है, अतः वे सभी अर्थ स्व-स्वदृष्टी से समादरणीय और माननीय है। मन्त्र के गूढार्थ की यह ही महानता है। इन पवित्र मन्त्रों का अर्थ विविधरूप से कर सकते है। यास्क ने इस प्रसङ्ग में छ से अधिक मतो की चर्चा की है। इन चर्चा में ऐतिहासिक-वैयाकरण-परिव्राजक-याज्ञिक आदि प्रमुख है। इसके अतिरिक्त विविध ग्रन्थ के समर्थक आचार्य के मतों का भी यथास्थान उल्लेख मिलता है।

पाठगत प्रश्न

467. वेद में कैसे शब्द हैं ?

468. सभी मतों में ऐकात्म्य का प्रतिपादन करते हुए निरुक्तकार ने क्या कहा ?

469. देव किस रूप में है ?

470. अग्नि शब्द किसका वाचक है ?

471. वेद मन्त्रों का अर्थ कैसे जानते है ?

472. महादेव वृषभ के कितने अङ्ग है और वे कौन से है ?

4.6 सायण भाष्य महत्त्व

आचार्य सायण ने स्वभाष्य लेखन काल में स्मृति पुराणादि ग्रन्थ से यथा आवश्यकता सहायता ली। उन्होंने परम्परागत अर्थ ही स्वीकार किया। उनके प्रमाण की पुष्टी के लिए आवश्यकतानुसार यत्र तत्र पुराण-इतिहास-स्मृति-महाभारतादि ग्रन्थ से प्रमाण एकत्र कर उल्लेख किया। वेद के अर्थ ज्ञान के लिए षङ्गाध्ययन का भी महत्त्व है। सायण तो इस सिद्धान्त से पूर्ण परिचित थे। इन्होने ऋग्वेद के प्रथमाष्टक व्याख्या में शब्दों के पर्यालोचन में व्याकरण के नैपुण्य से निरूपण किया। प्राय: प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शब्द की व्युत्पत्ति में, सिद्धि में, स्वराघात वर्णन को पाणिनीय सूत्र की सहायता से और प्रातिशाख्य सहायता से किया। सावधनतया इसके अध्ययन से समस्त ज्ञातव्य विषयों की सुन्दरता से अवबोध होता है। निरुक्त का उपयोग किया गया है इस भाष्य में। ''यास्क ने व्याख्या की है'' ऐसा सायणाचार्य उन मन्त्रों के भाष्य लेखन काल में स्पष्ट लिखा है। इसको छोड़कर सायणाचार्य ने ऋग्वेद के प्राचीन भाष्य कर्ता स्वन्द स्वामि-माधवादिकृत अर्थ भी यथा स्थान ग्रहण किया है। कल्प सूत्र का भी उपयोग सविस्तार किया स्वभाष्य में। यज्ञ विधान में तो सायण की प्रगाढ प्रतिभा परिलक्षित होती है। और भी कल्पसूत्र विषयगत आवश्यक तत्त्वों के वर्णन प्रसङ्ग में सर्वत्र अपनी विशिष्ट प्रतिभा का भी प्रदर्शन किया। सूक्त की व्याख्या के आरम्भ में ही उनके विनियोग ऋषि का, देवतादि जानने योग्य तथ्य का वर्णन प्रामाणिक ग्रन्थ का उद्धरण प्रस्तुत किया सूक्त सम्बन्धि उपलब्ध आख्यायिका भी सप्रमाण समुपस्थापित की गई। मीमांसा के विषय का भी निवेश भाष्य के आरम्भ में प्रस्तावना में बोधगम्य भाषा द्वारा प्रदत्त सायण वेदविषयक समग्र सिद्धान्त का प्रतिपादन और रहस्योद्घाटन भी किया। इसी कारण सायणकृत वेद भाष्य को गौरव प्राप्त है। अपने भाष्य में सायण ने याज्ञिक पद्धति को ही महत्त्व दिया है। उस काल में उसी की आवश्यकता थी। तब कर्मकाण्ड की प्राधानता थी। ये सब अच्छी तरह सोचकर सायण ने भाष्य निर्मित किया।

इसी कारण से मध्य में सायणाचार्य का विशिष्ट महत्त्व है। सायण भाष्य के विना वेदार्थानुशीलन की कैसी दशा होती ये कहा नहीं जा सकता है। यथेष्ट व्युत्पत्ति के आधार पर एक ही अर्थ के विरुद्ध बहुत प्रकार से अर्थ करने में प्रवृत्त पाश्चात्य पण्डितों के बीच परमगतार्थ का ही अपने भाष्य में स्थान देने वाले सायण को छोड़कर उचितमार्ग को कौन प्रदर्शित करने में समर्थ है। वस्तुत: आंग्ल की शिक्षा पद्धति को हमने स्वीकार कर लिया। आङ्गल जन स्वार्थ प्रवृत्ति से हमारे इन वेदोपनिषद् स्मृति पुराण का तिरस्कार किया, हमने भी

उनको सहन किया। आक्रान्ता स्वार्थबुद्धि वाले और अन्धे हो गये थे, परन्तु हम भी अज्ञानता से दुसरे के ज्ञान से अन्धभक्त हो गये। प्रचीनकाल के हमारे देश के राजा विद्वज्जन को अपनी सभा में आश्रय देते थे, संस्कृत अध्ययन अध्यापनार्थ अवसर और उचित वृत्तिदेते थे-

परं आज वैसी व्यवस्था कही जीवित नही दिखती है। आज इससे पुराणादि ग्रन्थ वेदार्था व बोधर्थ की परम आवश्यकता है।

सायण वैदिक सम्प्रदाय के यथार्थ ज्ञाता थे। इससे यह वेदभाष्य वस्तुतः वेदार्थ प्रतिपादक भाष्य में मूर्धन्यतम भाष्य है। जो कि दुर्गम वेद दुर्ग में सरलतया प्रवेश कराता है वेदार्थ जिज्ञासुओं का। वैदिक विद्वानों पर बहुत ऋण है सायणाचार्य का। पाश्चात्य पण्डितों ने वेदार्थाव बोधन में विपुल प्रयास किया। इस प्रयत्न में वे जो थोड़ी कुछ सफलता प्राप्त कर सके है वो सायणाचार्य की अनुकम्पा का ही फल है। सायण भाष्य की साहायता से ही ये पाश्चात्य पण्डित वैदिक मन्त्र का अर्थावबोधन में काम कर सके। किन्हीं शब्द के अर्थावबोधन में विरोधाभास के देखकर सायणाचार्य का उपहास उनके द्वारा किया गया ये और बात है। लेकिन मुख्यतः संहिता पंचक पर ऐसा सुव्यवस्थित, पूर्व पर विरोध हीन उपयोगी और पाण्डित्य पूर्ण भाष्य लेखन अतीव श्रम साध्य है। इस प्रकार की महत्ता और उपादेयता भाषा दृष्टी से भी विचारणीय है। ये वैदिक भाषा ऐसी है की जो भाषा विदो के मध्य में फैला हुआ प्राचीन भाषा विषयक मतभेद को हटाता है। अब के भाषा शास्त्र पण्डित चाहते हैं कि इनके द्वारा कहा गया विषय पूर्णतया परिपक्वता को प्राप्त हो। वे वेदों को धारण और अनुशीलन कर उस उस भाषा में समाहित पाड्रे-नाइट-फार्चून-इत्यादियों के मूलरूप को और उनके रुपान्तरता को सही कहते है। और ये भी जानते है की भौतिक अर्थ में प्रयुज्यमान पदयुगान्तर में किस प्रकार आध्यात्मिक अर्थ में प्रयुक्त होने आरम्भ हो गये। बड़े ही प्रयत्न और प्रयोजन साधक होने से वस्तुतः सायण भाष्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। और भी सायणाचार्य की अनुकम्पा से वेदार्थ में प्रविष्ट पाश्चात्य पण्डित कहते है कि - 'Las von Sayana' (सायण का बहिष्कार करो) तो वहाँ क्या आश्चर्य है और क्या वेदना। यद्यपि सायणाचार्य के भाष्य भी दोष रहित है, ऐसा भी नहीं कह सकते है। क्योकिं मानवकृति में त्रुतिराहीत कार्य की कल्पना व्यर्थ है, फिर भी सायणाचार्य परम्परागतार्थ के ज्ञाता है, यहाँ लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। सायणाचार्य के वेदभाष्य वेदार्थ ज्ञान की कुञ्जिका रूप में दिखती है। वेदों के दुर्गम दुर्ग में प्रवेश के लिए इस भाष्य में विशाल सिंह द्वार का कार्य करता है।

और अब कुछ पाश्चात्यानुसन्धानकर्ता भी सायण के महत्त्व से अपरिचित नहीं हैं। ऋग्वेद के प्रथमानुवादक आङ्गल विद्वान विल्सन महोदय की ये उक्ति अविस्मरणीय है-

'Sayana undoubtedly had a knowledge of his text far beyond the pretensions of any European scholar, and must have been in possession either through his own learning or that of his association, of all the interpretation which have been perpetuated by traditional teaching from the early times.'

–Translation of Rigveda

सायणभाष्य के प्रथम पाश्चात्य सम्पादक डा. मैक्समूलर महोदय की भी ये उक्ति दर्शनीय है-

We ought to bear in mind that five and twenty years ago, we could not have made even our first steps, we could never at least have gained a firm footing without his leading string. —Introduction to Rigveda; Edon.

वेदार्थ ज्ञान में वस्तुतः सायणाचार्य अन्धें के लिए लाठी के समान है। सौभाग्य से सायण के प्रति अब तो पाश्चात्य पण्डितों के भी विचार परिवर्तन हो गये उनमें अब उपेक्षा के स्थान पर सम्माननीय भाव दिखता है। सायण कृत वेदार्थ की प्रामाणिकता भी प्रामाणित हुई पाश्चात्य विद्वानों के सम्बन्ध में। इस विषय में जर्मनीय विद्वांन पिशल और गौल्डनर ने बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य को किया। दोनों विद्वानों ने 'विदिशेस्तूदियन्' (वैदिकानुशीलनम्) नामक ग्रन्थ के तीनों भागों में विविध गूढ़ वैदिक शब्दों का अनुसन्धान किया। जिससे सायणचार्य द्वारा किया अर्थ भलिभांति प्रमाणित हुआ है।

कुछ तो सायणाचार्य के ही अर्थ से ही हम संतुष्ट नही है। वेद की गभीरता और रहस्यमयता बड़ी ही गौरवास्पद है। उसी कारण विभिन्न समय में नवीन व्याख्या सम्प्रदाय का उद्भव हुआ। और उन व्याख्या कर्ताओ ने अपने अपने व्याख्या कौशल से प्रतिष्ठा को प्राप्त किया ।

4.7 अरविन्द का महत्त्व

आज कल तत्त्व चिन्तक और आध्यात्म साधकों में अरविन्द महोदय मान्य और मूर्धन्य है। उनकी दृष्टी में जिन विद्वानों की वेद के प्रति असीम श्रद्धा है उनके सम्मुख में स्वतः ही एवं वैदिक शब्दों का अर्थ प्रस्फुट होता है। वेद का अर्थ रहस्यात्मक और निगूढ है। इसकी सूचना भी वेद से ही प्राप्त होती है। वैदिक ऋषियों की ये दृढ़ धारणा थी कि मन्त्र का उद्भव हृदय के अन्तरतम प्रदेश से होता है। अतः वेदों में निगूढ ज्ञान की निधिप्रक्षिप्त है। एक मन्त्र में (ऋ. 4/3/13/9) ऋषि वामदेव ने अपने आत्मा अन्त:प्राज्ञ सम्पन्नता से उपस्थापित किया। इन ऋषि ने अपनी वाणी से निगूढ़ वाक्यों की अभिव्यक्ति की। दीर्घतमा नामक ऋषि का भी ये अनुभव ही कि वेद मन्त्र नित्य, और अक्षर व्योम में निवास करते हैं। क्या जो उस परमात्मा को ही नही जानता वह ऋचाओं से क्या करेगा। उसका ऋचाओं से क्या प्रयोजन है। और कहा भी है -

> **''ऋचो अक्षरो परमे व्योमन्, यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः।**
> **यस्तन्न वेद किं ऋचा करिष्यति य इत् तत् विदुस्त इमे समासते॥''**
> **इति। (ऋ.1/164/69)**

वैदिक मन्त्र अक्षर सम्बन्ध दिव्य उच्चतर स्तर के साथ ही हैं (ऋ.1/164/46)। इस प्रकार वैदिक मन्त्रों के दिव्यत्व वैदिक प्रामाण से ही स्वत:सिद्ध होता है। और कुछ वैदिक मन्त्र तो प्रत्येक शब्द किसी भी आध्यात्मिक तत्त्व के प्रतीक होते है।

श्री अरविन्द महोदय के मत में योग और तप से विधूत पवित्र हृदय में एवं परमात्मा प्रस्फुट होता है। वैदिक शब्द आध्यात्मिक तत्त्व की ही प्रतीकता है। इसी प्रकार प्रत्येक वैदिक शब्द किसी भी शक्ति से, आध्यात्मिक सामर्थ्य के और तपोबल प्रतीक होते है। वैदिक ऋषि किसी मन्त्र में जब अश्व की प्रार्थना करता है तब उसका अर्थ अश्व रूप सामान्य घोड़ा नहीं होता है, अपितु अश्व पद से वहाँ अंतर्बल के स्फुरण के प्रति सङ्केत होता है। घृत शब्द यज्ञ के साधन भूत सामान्य घृत का बोधक है। और तो अरविन्द महोदय के मत में तो घृतशब्द का प्रकाश अर्थ भी होता है। अत एवं इन्द्र का अश्व जब 'घृतस्नु'-पद से बोधित होता है तब उसका अर्थ घृत का क्षरण नहीं होता है, अपितु प्रकाश का सर्वत्र विकिरणकर्ता ऐसा अर्थ होता है। और अग्नि पद से न केवल बाह्य वह्निपद का बोध होता है, अग्नि शब्द से यहाँ अन्त:स्फुरित चौतन्य का ही बोध होता है। यद्यपि संहिता भाग में मुख्यत: यज्ञकर्मादि प्रतिपादित है फिर भी वहाँ आत्म तत्त्व भी निहित है। उपनिषद् में अभिव्यक्त बहुत सी व्याख्या से अद्वैततत्त्व का पूर्ण सङ्केत प्राप्त होता है संहिता ग्रन्थों में जो भी विद्वान् वैदिक संहिता के मन्त्र को केवल कर्म का प्रतिपादक और कुछ उपनिषद् ज्ञान के प्रतिपादिक है ऐसा मानकर दोनों के बीच भिन्नता प्रदर्शित करते हैं तो वे सत्य से दूर हैं। संहिता ग्रन्थ कर्म के साथ ज्ञान का भी स्पष्ट प्रतिपादक है। ऋग्वेद के सिद्धान्त जैसे वेदान्त के तथ्यों का सङ्केत करते है वैसे ही उसके अन्तर्विद्यमान साधना की और नियमन शिक्षा विगत युग में प्रतिष्ठित योग के प्रति स्पष्टतया सङ्केत करते है। ऋग्वेदसंहिता में उस परम तत्त्व की आलोचना बहुत मन्त्रों में प्राप्त होती है। जैसे "एकं तत्" (ऋ.1/164/46), "तदेकम्" (ऋ.10/129/2) इत्यादि। वैदिक ऋषि इसी को परम सत्य रूप में स्वीकार करते है, अन्य देव तो उसी के शक्ति से विविध रूप से अभिव्यक्त मात्र है। इस प्रकार श्री अरविन्द के मत में वेद सिद्धों की ही वाणी है। ये वेद आन्तरिक जगत आध्यात्मिक तथ्यों के निरूपक है। इसी रूप में जिन सामान्य शब्दों का प्रयोग वेद करते है उनका अर्थ नितान्त निगूढ तथा साधना के ऊपरी भाग पर आधारित है। वेद का अर्थ मुख्यत: रहस्यमय और आत्मपरक है। इस दृष्टी से श्री अरविन्द के मत की व्याख्या के प्रति विद्वानों का ध्यानाकर्षण भी स्वाभाविक ही है।

4.8 श्रीमत आनन्दकुमार का महत्त्व

डॉ. आनन्दस्वामी आधुनिक भाषाविदों में परमतत्त्वज्ञ और गम्भीर चिन्तक थे। भारतीय कला के अन्त:स्वरूप के प्रत्यभिज्ञान में अतुलनीय तथा उस कला के विशद व्याख्याकरण और स्वविषय के विद्वान् थे। तब उनके जैसा दुर्लभ था। कलाक्षेत्र में और वैदिक क्षेत्र में पूर्ण मर्मज्ञता के साथ इन्होने प्रवेश लिया। इन्होनें उनके अन्तरङ्ग का परीक्षण और विश्लेषण बड़ी ही विद्वता के साथ किया। इस विषय में उनकी प्रसिद्ध पुस्तक है - 'A newApproach to the Vedas'। ग्रन्थ में वेद की विशिष्ट व्याख्या शैली का प्रदर्शन किया इस विद्वान का कथन है कि -वेद तो, सिद्धों की वाणी होती है। इसलिए उसके व्याख्या लेखन में इस्वी सन मध्ययुग के संतों और आत्मपरक कवि की अनुभूति से भी पर्याप्त साहायता

ली जा सकती है। आध्यात्मिक जगत में अति उच्चस्तर के संतों की अनुभूति में वैचारिक समानता होती ही है। उनकी अनुभूति प्रकट करने वाले प्रयुक्त प्रतीकों में तथा मूर्ति विधन में एकरूपता दृग्गोचर होती ही है। डॉ. कुमारस्वामी मध्य युगीय इसाई धर्म अनुयायि महात्मा की वाणी के मर्मज्ञ विद्वान् थे। फलतः इन्होने अपनी वैदिक व्याख्या में उनके ज्ञान का और अनुशीलन का उपयोग बड़ी ही भली प्रकार से किया। इस महापुरुष के वैदिक मन्त्रों की व्याख्या ही इसके स्पष्ट उदाहरण है। देंखे –

"As for the Vedic and Christian source each illuminates the other. And that is in itself an important contribution to understanding. What ever may be asserted or denied with respect to the value of the Vedas; this at least is certain that their fundamental doctrines are by on means singular."

(A New Approach to the Vedas- Page 9)

पाठगत प्रश्न

473. ऋग्वेद में देवता को क्यों 'असुर' इस नाम से कहा है ?

474. देवताओं के तीन रूप कौन से है ?

475. इस जगत का नियामक कौन है ?

476. अरविन्द मत में घृत शब्द का अर्थ क्या है ?

477. वेदभाष्य विषय में किन – किन विद्वानों ने भाष्य रचना की ?

पाठसार

आर्यभाषा की प्राचीनता के भेद में संस्कृत भाषा अंतर्निहित है। विभिन्न आचार्यो की दृष्टी से वेदमन्त्रों का व्याख्यान होता है। वेदमन्त्र के अर्थ निर्देशकों में यास्काचार्य सबसे प्रसिद्ध है। उन्होंने विस्तार से गूढ शब्दों का अर्थ निर्दिष्ट है।

वेदार्थ अनुसन्धान विषय में पाश्चात्य विद्वानों का एक मत है, तथा भारतीय पण्डितों के दो मत है। आध्यात्मिक पद्धति में एक ही अग्निशब्द भौतिकाग्नि, अग्निदेव का तथा परमेश्वर का वाचक होता है। चत्वारि शृङ्गाः इत्यादि मन्त्रों में यह महादेव वृषभः कौन है ऐसे प्रश्न में यास्क ने याग रूपी वृषभ को प्रतिपादित किया, दूसरों ने तो महादेव वृषभ सूर्य है ऐसा कहा है, पतञ्ज्लि ने पस्पशाह्निक में उस मन्त्र की शाब्दिक व्याख्या समुपस्थापित की, सायण भाष्य में तो भिन्न ही वर्णन है। सायण ने वेद के व्याख्या अवसर में इतिहास–स्मृति–पुराणादि ग्रन्थ की साहायता स्वीकार की। उनके व्याख्यान की प्रधान वैशिष्ट्य है कि उनके द्वारा वेद के प्रायः प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शब्द की व्युत्पत्ति, सिद्धि और स्वराघात

टिप्पणी

का वर्णन पाणिनीय सूत्रों की सहायता और प्रातिशाख्य की सहायता से की। सूक्त के व्याख्या के आरम्भ में ही उसका विनियोग- ऋषि-देवता-छन्द आदि तथ्यों का वर्णन उन्होंने प्रामाणिक ग्रन्थ के उद्धरण के साथ किया। दूसरे एक महान् वेद तत्त्वज्ञ है अरविन्द महोदय वे तत्त्व चिन्तक और अध्यात्म साधकों में मान्य तथा मूर्धन्य है। उनकी दृष्टि में जिन विद्वानों की वेद के प्रति असीम श्रद्ध है, उनके सम्मुख में स्वत: एव वैदिक शब्दों का अर्थ प्रस्फुट होता है। डॉ. आनन्द स्वामी आधुनिक कलाविदों में परम तत्त्वज्ञ तथा गभीर चिन्तक थे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक है - 'A New Approach to the Vedas'। इस ग्रन्थ में वेद विशिष्ट व्याख्या शैली प्रदर्शित की है।

पाठान्त प्रश्न

1. वेदार्थानुशीलन की परम्परा अतिप्राचीन काल से ही चली आ रही है। .. इस वचन का समर्थन करो।
2. कौत्स महोदय के पूर्वपक्ष का वर्णन करो।
3. पाश्चात्यों ने कैसे वेद की हानि की।
4. स्वामी जीव महोदय के मत को प्रस्तुत कर विभाजित करो।
5. चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादा-इत्यादि श्लोक में क्या प्रतिपादित किया है ?
6. सायणभाष्य के महत्त्व को प्रतिपादित करो।
7. पाश्चात्य विद्वान् सायणाचार्य भाष्य कर्ता की क्यों निंदा करते है?
8. अरविन्द का महत्त्व बताओ।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-

478. आर्यभाषा पाश्चात्य और पौरस्त्य भेद से दो प्रकार की है।

479. संस्कृत भाषा में।

480. श्रवणान्तर दर्शनस्य योग्यता सम्पादनेन अर्वाचीनानामृषीणाम् उपयुक्तभिधा श्रुतर्षि कहा गया।

481. यास्काचार्य ने।

482. शब्द सूची ये अर्थ।

483. वेद में भाव गाम्भीर्य, भाषा वैचित्र्य, विचित्र पदों का और स्वरों की सन्धि पदों का विवेचन है।

484. दुर्गाचार्य।

उत्तराणि

485. ज्याकोबी, पिशेल, मैक्समुलर, पोल इत्यादि।

486. जल पूर्ण घट ये अर्थ।

उत्तराणि

487. सभी शब्द यौगिक, योग रूढ़ और रूढ़ है ।

488. **महाभाग्यात् देवताया: एक आत्मा बहुध स्तूयते। एकस्यात्मनोऽन्ये देवा: प्रत्यङ्गानि भवन्ति।'** (निरुक्त: 7/4)

489. तीन रूप में होता है - आधि भौतिक, आधिदैविक और अध्यात्मिक।

490. भौतिकाग्नि के, अग्नि देव के तथा परमेश्वर के।

491. ऋषि प्रदर्शित मार्ग से तथा आर्ष दृष्टी से।

492. चत्वारि शृङ्गाणि, त्रय: पादा:, द्वे शिरसी, सप्त हस्ताश्च।

उत्तराणि

493. प्राण शक्ति शाली होने से।

494. आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।

495. ईश्वर।

496. अरविन्द महोदय के मत में प्रकाश ये अर्थ होता है।

497. सायण, अरविन्द महोदय, श्रीमदानन्द कुमाराचार्य और भी अन्य है।

चौथा पाठ समाप्त

5

वैदिक आख्यान तथा वेदों के विषय में दार्शनिक विमर्ष

प्रस्तावना

इस पाठ में हम वेद में वर्णित कुछ आख्यानों का वर्णन देखेंगे। जैसे लौकिक कथा ग्रन्थों को तथा रस अलङ्कार गुण से युक्त शब्द राशि को कवियों ने रचा। वैसे ही वैदिक काल की भी सामाजिक रीति आदि को वैदिकोंपाख्यान नामक अध्याय के द्वारा हम यहाँ देखेंगे। कथा ग्रन्थों में जैसे कान्ता सम्मित वचन हैं, वैसे ही नीति पूर्ण वचन तथा प्रभु सम्मित उपदेशों से नीतिज्ञान वेदोपाख्यानों में कुछ स्थानों में प्राप्त होता है। कुछ उपाख्यानों के विषय में हम यहाँ पढेंगे। वहां आख्यान प्रतिपाद्य विविध दार्शनिकों के मत में भी वेद प्रतिपादित है। और वेद के पौरुषेयत्व तथा अपौरुषेयत्व का विचार किया गया है। पुरुष कृत पौरुषेय है। सृष्ट की ही अनित्यत्वापत्ति है। क्योंकि जिसकी सृष्टि होती है उसका विनाश अवश्यम्भावी होता है। जन्य-पदार्थो के अनादित्व के असम्भव से वे अनित्य हैं। वे कभी अपौरुषेय नहीं हो सकते। अत: वे अनित्य और पौरुषेय हैं। वेद पौरुषेय हैं अथवा अपौरुषेय इस विषय में दार्शनि कों के अनेक मत हैं। न्याय वैशेषिक-मीमांसक-सांख्य- वैयाकरण के मत में वेद का पौरुषेयत्व और अपौरुषेयत्व नित्यत्व और अनित्यत्व प्रस्तुत करते हैं।

उद्देश्य

इस पाठको पढ़ कर आप सक्षम होंगे–

- आख्यान के विषय में विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- शुन:शेपोपाख्यान, और ऊर्वशी-पुरूरवा उपाख्या के विषय में जान पाने में;
- स्वयं भी आख्यानादि की रचना कर पाने में;

- वेद के पौरुषेयत्व तथा अपौरुषेयत्व के विषय में लघुप्रबन्ध रचना कर पाने में;
- वेद के विषय में नैयायिक तथा साङ्ख्यों के मत जान पाने में।

5.1 शुनःशेप उपाख्यान

शुनःशेपोपाख्यान ऋग्वेद के बहुत से सूक्तों में प्राप्त होता है (1/24-25)। इससे यह घटना सत्याश्रित थी ऐसा प्रतीत होता है। ऐतरेय ब्राह्मण में (7/3) यह आख्यान अतिविस्तार से वर्णित है। यह उपाख्यान पहले हरिश्चन्द्र और अन्त में विश्वामित्र का सम्बन्ध परिकल्पित करके परिवर्धित है। वरुण की कृपा से इक्ष्वाकु राजा हरिश्चन्द्र के घर में पुत्र उत्पन्न हुआ। समर्पण के समय अरण्य में हरिश्चन्द्र के पुत्र का पलायन, हरिश्चन्द्र के उदरजन्य रोगोत्पत्ति, मार्ग में अजीगर्त मध्यम पुत्र शुनःशेप का खरीदना, देवता की कृपा से उस शुनःशेप की शाप से मुक्ति, विश्वामित्र के द्वारा शुनःशेप को पुत्र के रूप में स्वीकार करना आदि विषय आलोचित है इस पाठ में। तथा यह कथा इस प्रकार सुनते हैं-

हरिश्चन्द्र नामक कोई निःसन्तान राजा था। वरुण की उपासना करके उसने पुत्र प्राप्त किया। वरुण ने कहा कि, उत्पन्न पुत्र की मुझे बली दो। बारह वर्षीय रोहित वन को चला गया। वरुण के कोप से हरिश्चन्द्र जलोदर रोग से ग्रस्त हो गया। जब-जब रोहित वन से घर को आना चाहता था तब-तब इन्द्र उसे चरैवेति चरैवेति का उपदेश देता रहता था। अन्त में वह पिता के दुःख को सहने में असमर्थ होकर घर की ओर आ रहा था तभी मध्य मार्ग में अजीगर्त नामक ब्राह्मण के मध्यम पुत्र शुनःशेप को बली के लिए खरीदा। आयोजित यज्ञ में यूप में संयत शुनःशेप को सेकड़ों मूल्य पर जब मारने को उद्यत हुए तब उसके पिता अजीगर्त को विश्वामित्र ने शुनःशेप के लिए गाथा त्रय का उपदेश किया, जिनके पाठमात्र से ही वरुण बली के बीना ही प्रसन्न हो गया। उसके बाद विश्वामित्र ने शुनःशेप को पोष्य पुत्र बना कर अपने सौ पुत्रों में इक्यावनवाँ पुत्र बनाया। जिससे उसके नीचे विद्यमान रुष्ट हुए तथा विश्वामित्र के पुत्र विश्वामित्र के ही शाप से बहेलिये-पुलिन्द-म्लेच्छ आदि होकर वहाँ रहने लगे। शुनःशेपाख्यान ऋक्शत गाथा पर आश्रित है, ऐसा एतरेयब्राह्मण के 'ऋक्शतगाथं शौनःशेपमाख्यानम्'' इस जगह स्वीकृत है।

पाठगत प्रश्न

498. शुनःशेपोपाख्यान में आदि और अन्त में किनकी परिकल्पना की गई है?

499. हरिश्चन्द्र का पुत्र किसके आशीर्वाद से उत्पन्न हुआ?

500. शुनःशेप के पिता का नाम क्या था?

501. किस वेद में यह आख्यान प्राप्त होता है?

502. शुन:शेप किसका पोषित पुत्र था?

503. गाथा त्रय किसने किसको सुनाई?

5.2 ऊर्वशी-पुरूरव उपाख्यान

वैदिक युग की यही एक रोमाञ्च्कारिणी प्रणय गाथा है। राजा पुरूरवा के साथ ऊर्वशी प्रणयपाश में आबद्ध हुई। अत: उसके तीन शर्त थे।

1) वह सदैव घृताहार करेगी।

2) उसके दो प्रिय भेड सदैव उसकी शय्या के पास रस्सी से बंधे होंगे, जिससे उनको कोई भी आहत नहीं कर सकेगा, और न कोई चुरा सकेगा।

3) किसी भी अवस्था में वह राजा को नग्न नहीं देखेगी यदि क्षण भर के लिए भी ऐसा हुआ तो वह उसको छोड़ कर चली जाएगी।

राजा ने उर्वशी के तीनों शर्त सहर्ष स्वीकार किये। उसके साथ सानन्द समय यापन कर रहा था। किन्तु उर्वशी के बीना गन्धर्व स्वर्ग में नीरस और निर्जीव अनुभव करने लगे। उसके बाद वे कपट के प्रबन्ध से राजा की प्रतिज्ञा भंग करने में उद्यत हो गये। एक बार रात में उन गन्धर्वों ने कपट से भेड़ों को उर्वशी के पास से चूरा लिया। भेड़ो की करुण ध्वनि को सुन कर उर्वशी ने राजा को चोर के साथ युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। राजा भी शीघ्र ही भेड़ों को चोरों से बचाने के लिए आकाश की और दौड़ा। तभी आकाश में विद्युत् के प्रकाश में गधर्वो ने छल से राजा का नग्न रूप उर्वशी को दिखा दिया। राजा को नग्न अवस्था में देख वह भी बाहर चली गयी। राजा उसके बिना विरहातुर होकर उन्मत्त की तरह भूमण्डल पर विचरने लगा। एक बार कुरुक्षेत्र के एक जलाशय में हंसी के रूप में उसने अपनी प्रिया को देखा। राजा ने उससे वापस चलने के लिए बहुत बार प्रार्थना की। लेकिन वह तो राजा के पास पुन: जाने के लिए तैयार ही नहीं हुई। राजा की दयनीय दशा देखकर गन्धर्वो के भी हृदय में सहानुभूति उत्पन्न हुई। उन्होंने भी उसे अग्नि विद्या का उपदेश किया। उनके अनुष्ठान उसने उर्वशी का अविच्छिन्न समागम प्राप्त किया।

ऋग्वेद के प्रख्यातसूक्त में (10/94) दोनों का कथोपकथन मात्र ही है। शतपथ ब्राह्मण में (1/1/5/1) यह कथानक रोचक और विस्तार से वर्णित है। वहां इस कथानक के लेखन में साहित्यिक सौन्दर्य का भी परिचय प्रदत्त है। विष्णुपुराण (4/6), मत्स्यपुराण (अ-24), और भागवत्पुराण(9/14) में इस कथानक का हम रोचक विवरण प्राप्त करते हैं। महाकवि कालिदास ने विक्रमोर्वशीय नामक नाटक में इस कथानक को नितान्त मञ्जुल नाटकीय रूप दिया। इस आख्यान के विकास में एक विशेष तथ्य की सत्ता प्राप्त होती

है। पुराणों में यह कथानक प्रणय गाथा के रूप में व्यक्त है। और वैदिकाख्यानों में पुरूरवा प्रथम व्यक्ति है, जिसने श्रौताग्नि अर्थात् आहवनीय, गार्हपत्य और दाक्षिणाग्नि नामक त्रिविध अग्नि की स्थापना का रहस्य जानकर यज्ञ संस्था का प्रथम विस्तार किया। पुरूरव के परोपकारी रूप की अभिव्यक्ति के द्वारा इस वैदिकाख्यान का वैशिष्ट्य वर्णित है।

पाठगत प्रश्न

504. पुरुरवा किसकी उपमा है?

505. उर्वशी ने राजा का परित्याग क्यों किया?

506. उर्वशी कौन थी?

507. उर्वशी प्रदत्त शर्त को राजा ने क्यों स्वीकार किया?

508. प्रथम शर्त का क्या नाम था?

509. उर्वशी के बिना स्वर्ग की कैसी दशा हो गई?

510. भेड़ो को किसने चुराया?

511. राजा आकाश की और क्यों गया था?

512. उर्वशी स्वर्ग क्यों गयी?

513. राजा ने अपनी प्रिया को कहाँ देखा?

514. क्या करके राजा ने उर्वशी को प्राप्त किया?

515. उर्वशी-पुरूखा के उपाख्यान से कलिदास ने कौन सा नाटक लिखा?

516. आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्नी का रहस्य सर्व प्रथम किसने विस्तारित किया?

5.3 च्यवान भार्गव तथा मानवी सुकन्या का आख्यान

यह आख्यान भारतीय नारी के चरित्र का एक नितान्त उज्ज्वल दृष्टान्त समुपस्थापित करता है। यह कथा ऋग्वेद के आश्विन से सम्बद्ध सूक्तों में (1/116, 117) सङ्केतित है। यही कथा ताण्ड्यब्राह्मण (14/6/11), निरुक्त (4/19) शतपथब्राह्मण (का. 4), और भागवत्पुराण (स्क. 9अ. 3) में अतिविस्तार से प्राप्त होती है। च्यवन का वैदिक नाम 'च्यवान' है। सुकन्या की वैदिक कथा उसकी पौराणिक कथा की अपेक्षा अधिक उदात्त और आदर्शमयी है। पुराणों में सुकन्या स्वयं अपराधिनी है। वह च्यवन की दिव्य आँख को फोड़ती है। इस कर्म के लिए उसको दण्ड का विधान स्वाभाविक ही है। किन्तु वेद में उसका त्याग उच्च कोटी से वर्णित है। सैनिक बालकों के निवारण के लिए



टिप्पणी

किये गये अपराध के लिए च्यवान के सम्मुख वह आत्म समर्पण करती है। उसके दिव्य प्रेम से अश्विनों ने प्रभावित होकर उसे वार्द्धक्य से मुक्तकिया तथा उसे नूतन यौवन दिया।

तुलनात्मक अध्ययन से प्रतीत होता है कि अनेक आख्यान कालान्तर में विकृत हो जाते हैं। विकास प्रक्रिया में अनेक अवान्तरकालिकीय घटनाएँ विद्यमान हैं। वे आख्यानों से संश्लिष्ट होकर उनको अभिनव रूप देती हैं। ये परिवर्तित रूप मूलरूप से भिन्न होते हैं। शुन:शेप, विश्वामित्र वसिष्ठ इन कथानकों के अनुशीलन तथा इसके विचित्र सिद्धान्त के प्रदर्शन से दृष्टान्त समुपस्थापित होता है। शुन:शेप का आख्यान ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में (सू 24, 25) स्पष्टत: साङ्केतित है। इसका ही विस्तार ऐतरेय की समय पञ्चिका में उपलब्ध होता है। यहाँ शुन:शेप के आख्यान के आरम्भ में राजा हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित के साथ तथा कथा के अन्त में मुनि विश्वामित्र के साथ सम्बद्ध होकर एक भव्य धारण करता है। कालान्तर में इस कथानक में रोचकता बढ़ाने के लिए ही उसके दो भाई, तथा पिता की दरिद्रता का विक्रयण की परिकल्पना की गई प्रतीत होती है। शुन:शेप का भी यहाँ 'कुक्कुर' अर्थ नहीं होता है। 'शुन'-शब्द का अर्थ 'सुख' और कल्याण होता है तथा 'शेप'-शब्द का अर्थ 'स्तम्भ' होता है। अत: शुन:शेप का अर्थ 'सौख्य का स्तम्भ' होता है। इस प्रकार यह कथानक वरूणपाश से विमुक्ति का सन्देश देता हुआ कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करता है।

पाठगत प्रश्न

517. भारतीय नारी के चरित्र के नितान्त उज्वल दृष्टान्त का नाम लिखो?

518. च्यवन का वैदिक नाम क्या था?

519. च्यवन की दिव्य आँखे किसने फोड़ी?

520. शुन:शेप का क्या अर्थ है?

5.4 वशिष्ठ तथा विश्वामित्र का आख्यान

ऋग्वेद में यह स्वत:सङ्केतित आख्यान है। ये दोनों ऋषि सम्भवत: भिन्न-भिन्न-काल में राजा सुदास के पुरोहित रहे थे। चातुर्वर्ण्य के क्षेत्र से बाहर के ये ऋषि थे ऐसा स्वीकारा जा सकता है। दोनों के मध्य में परम सौहार्द की भावना का साम्राज्य था। दोनों तपस्वी, तेजस्वी, और अलौकिक गुणशाली महापुरुष थे। किन्तु रामायण-पुराण-बृहद्देवता आदि कुछ ग्रन्थों में इन दोनों के मध्य सङ्घर्ष-वैमनस्य- और विरोध आदि की कल्पना का उदय हुआ। विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिए लालायित हो गये।

वसिष्ठ ने उन्हें अङ्गीकृत नहीं किया। उससे क्रुद्ध होकर विश्वामित्र ने वसिष्ठ के पुत्रों का संहार किया। इस कल्पना को ही आधार बना कर आलोचकों ने क्षत्रियों और ब्राह्मणों के मध्य घोर विद्रोह और अमङ्गल की प्राचीर को स्थापित किया। वस्तुतः यह विचार निराधार, उपेक्षणीय तथा नितान्तभ्रामक है। वैदिक आख्यान से अपरिचित व्यक्ति ही इस प्रकार के पावन चरित्र वाले ऋषियों के अवान्तर कालिक वर्णन से भ्रान्त होते हैं। वैदिक आख्यानों का विकास अवान्तर काल में किस प्रकार से सम्पन्न हुआ यह अध्ययन का एक गम्भीर विषय है। कुछ आख्यानों के विकास का इतिहास विद्वानों ने रोचक रीति से वर्णित किया है।

पाठगत प्रश्न

521. वसिष्ठ और विश्वामित्र का आख्यान कहाँ प्राप्त होता है?

522. राजा सुदास के दो परोहित कौन कौन थे?

523. विश्वामित्र किस वर्ण के थे?

524. विश्वामित्र किस वर्ण को प्राप्त करने के लिए लालायित थे?

5.5 आख्यानों का तात्पर्य

वैदिक आख्यानों का क्या तात्पर्य है। इस प्रश्न के उत्तर में विद्वानों में वैमत्य देखा जाता है। अमेरिका के निवासी विद्वान् डाँ ब्लूम फील्ड महोदय ने इस विषय पर चर्चा करके उन विद्वानों के मत का खण्डन किया। जिन विद्वानों ने वैदिक आख्यानों की रहस्यमयी व्याख्या की। उदाहरणार्थ- इन रहस्य वादियों ने वैदिक आख्यानों में एक गम्भीर रहस्य का दर्शन किया। उनके विचार में पुरूरवा सूर्य तथा उर्वशी उषा है। उषा और-सूर्य का पारस्परिक संयोग क्षणिक होता है। उनका वियोग काल अतिदीर्घ होता है। वियुक्त सूर्य उषा की खोज में सम्पूर्ण दिन व रात घूमता है। दूसरे दिन प्रभात में उनका मेल होता है। प्राचीन भारतीय विद्वानों के मत में वैदिक आख्यानों का यही स्वरूप था। अतः मानवीय मूल्यों से विहीन वैदिक आख्यानों का चित्रण किसी भी प्रकार उपयुक्त नहीं है।

इन आख्यानों के अनुशीलन के विषय में दो तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए-

क) ऋग्वेदीय आख्यान इस प्रकार के विचारों का सारवर्णित करते हैं कि जो मानव और समाज के कल्याण के साधन के लिए नितान्त अपेक्षित हैं। इसका अध्ययन भी उसी प्रकार मानवीय मूल्यों को दृष्टी में रख कर करना चाहिए। ऋग्वेदीय-ऋषियों ने इन आख्यानों में मानव के कल्याणमय उपादेय तत्त्वों का समावेश किया।

ख) उसी युग के वातावरण का स्मरण करके उसी परिवेश में इन उपाख्यानों का

टिप्पणी

मूल्य निर्धारण करना चाहिए। उसी युग में इन आख्यानों का मूल्य निर्धारण करना चाहिए, जिस युग में इन आख्यानों का आविर्भाव हुआ। अर्वाचीन अथवा नवीन दृष्टी से इनका मूल्य निर्धारण इतिहास के प्रति अन्याय होगा। इन तथ्यों की आधार शिला पर आख्यानों की व्याख्या उचित और वैज्ञानिक होगी।

वैदिक आख्यानों की शिक्षा मानव समाज के सामूहिक कल्याण विश्व के मङ्गल तथा अभिवर्द्धान के लिए है। भारतीय संस्कृती के अनुसार मानव का देवों से सम्बन्ध है। मानव यज्ञों में देवों को आहुति प्रदान करता है। देव भी प्रसन्न होकर उसे प्रसन्न करते है। उसकी अभिलाषा की पूर्ती करते हैं। इन्द्र विषयक तथा अश्विनी विषयक आख्यान इस कथन के विशद दृष्टान्त हैं। यजमानों द्वारा प्रदत्त सोम रस पीकर इन्द्र नितान्त प्रसन्न होता है। वह उनकी कामना को सफल करता है। अवर्षण के वृत्र दैत्य को अपने वज्र से भेद कर नदी को प्रवाहित करता है। वृष्टी से मानव तृप्त होते हैं। संसार में शान्ति विराजमान होती है। यह वैदिक तथ्य अल्पाक्षरों में महाकवि कालिदास द्वारा व्यक्त किया गया (रघु 4/16)।

प्रत्येक आख्यानों का सार मानव के शिक्षण के लिए है। आत्रेयी और कपाल का (ऋक् 8/91) आख्यान नारी चरित्र का उदात्तता और तेजस्विता का विशद प्रतिपादक है। राजा त्र्यरुण-त्रैवृष्ण-वृषजों का आख्यान (ऋग् 5/2, ताण्ड्यब्रा 13/6/12, ऋग्विधान 12/52, बृहद्देवता 5/14-23) वैदिक कालिक पुरोहित की महिमा और गरिमा का स्पष्ट रूप से सङ्केत करते हैं। सोभरि और काण्व का आख्यान (ऋ् 8/19, निरूक्ति: 4/15,भाग 9/6) सङ्गती की महिमा का प्रतिपादन करता है। उषसति चाक्रायण (छान्दोग्य:, प्रथ प्रपाठ खण्ड 10/11) इस आख्यान में अन्न के सामूहिक प्रभाव तथा गौरव की कमनीय कथा है। शुन:शेप आख्यान में देवता की अनुकम्पा का उज्ज्वल सङ्केत मिलता है। देवों की कृपा से शुन:शेप अपनी रक्षा करने में समर्थ हुआ। वसिष्ठ विश्वामित्र आख्यान भी उचित विश्लेषण के अभाव के कारण अनर्गल कल्पना का समुत्पादक हुआ। वसिष्ठ शारीरिक तपस्या की प्रति मूर्ति थे। विश्वामित्र तो पुरुषकार का स्वरूप थे। दोनों के मध्य प्रगाढ मैत्री थी। वैदिक राजा के यज्ञ सम्पादन में समान रूप से दोनों ही सहायक थे। उनका वैरभाव और सङ्घर्ष क्षणिक था। यावाश्व-आत्रेय की कथा (ऋग् 5/61) ऋषि के गौरव, प्रेम महिमा, और कवि की साधना को सुन्दर रीति से अभिव्यक्त करता है। ऋग्वेदीय युग की यह प्रख्यात प्रणय कथा है। जिसमें प्रेमकी सिद्धि के लिए श्यावाश्व एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हुए। दध्यङ्गाथर्णव का आख्यान (1/116/12, 14/4/5/13, 2/5, भागव 6/10) राष्ट्रिय-मङ्गल- जीवन दान की शिक्षा देकर क्षुद्र स्वार्थ से ऊपर उठने और जन कल्याण का उपदेश देता है। पुराण में इसका ही नाम ऋषि दधीची है। ये ही लोकहित एवं वृत्रासुर के वध के लिए सुरेन्द्र को अपनी अस्थियों का दान करते है। वज्र निर्माण के लिए अस्थियों का दान करके आर्य सभ्यता की रक्षा की। अनधिकारी को रहस्यमयी-विद्या के उपदेश का विषम परिणाम इस वैदिकाऽख्यान में प्रदर्शित है। इन आख्यानों का यही उपदेश है कि परमेश्वर के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा जीवात्मा से प्रेम। विश्व कल्याण के लिए यही मङ्गलमय मार्ग है।

कुछ ऋषियों के चारित्रिक दोषों तथा अनैतिक आचरण का भी वर्णन वैदिक आख्यानों में उपलब्ध होता है। इससे उपदेश ग्रहण करना चाहिए। ये आख्यान अनैतिकता के गर्त में पतन से रक्षा के लिए निर्दिष्ट हैं। तप से पवित्र जीवन में भी प्रलोभन के अवसर पर चारित्रिक पतन की सम्भावना है। कामिनी काञ्चन का प्रलोभन सामान्यजन का हृदय आकर्षित करती हैं फलतः उनसे सदैव जागरूक रहना चाहिए। इस विषयमें महाभारत का यह कथन ध्यातव्य है –

'कृतानि यानि कर्माणि दैवतैमुनिभिस्तथा।
न चरेत्तानि धर्मात्मा श्रुत्वा चापि न कुत्सयेत्॥
अनमन्यैरुपालब्धैः कीर्त्तितैश्च व्यतिक्रमैः।
पेशलं चानरूपञ्च कर्तव्यं हितमात्मनः॥' (महाभा 12/291/17)

पाठगत प्रश्न

525. आत्रेयी-कपाल का आख्यान क्या प्रतिपादित करता है?

526. वसिष्ठ किसकी प्रतिमूर्ति थे?

527. विश्वामित्र किसकी प्रतिमूर्ति थे?

528. श्यावाश्व-आत्रेय कथा की क्या विशिष्टता थी?

529. आख्यानों में क्या उपदेश है?

5.6 दार्शनिकों के मत में वेद का पौरुषेयत्व और अपौरुषेयत्व का वेदविमर्श

5.7 न्याय दार्शनिकों के मत में वेद

नैयायिक वेद के प्रामाण्य को स्वीकार करते हैं, और वेद के अनित्यत्व और अपौरुषेयत्व को नहीं स्वीकार करते हैं। उनके मत में परम पुरुष के द्वारा वेद रचित हैं। और परम पुरुष परमेश्वर हैं। इसलिए वेद पौरुषेय हैं उनका यह मत है। जैसे रघुवंश आदि कालिदास के ग्रन्थ अनित्य हैं।

पाठगत प्रश्न

530. किसका विनाश अवश्यम्भावी है?

531. नैयायिकों के मत में वेद पौरुषेय हैं अथवा अपौरुषेय?

टिप्पणी

532. नैयायिकों के मत में वेद नित्य है अथवा अनित्य?

533. नैयायिकों के मत में वेद किसके द्वारा रचित हैं।

534. परम पुरुष कौन है?

5.8 मीमांसा और वेदान्त के मत में वेद

मीमांसक और वैदान्तिक वेद का अपौरुषेयत्व प्रतिपादित करते हैं। अपूर्ण हैं पुरुष। अत: उनका ज्ञान भी अपूर्ण है। इसलिए उनकी रचना अथवा वाक्य में भ्रम प्रमाद और विप्रलिप्सा होती ही है। और इन्द्रिय की अपूर्णता के कारण दोष सम्भव हैं। परन्तु वेद वाक्य में भ्रम प्रमाद आदि दोष नहीं हैं। इसलिए वेद पौरुषेय नहीं है। सर्वज्ञत्व और सर्वशक्तिमत्त्व से परमेश्वर ही रचने में समर्थ है। तथापि वेदों को परमेश्वर ने रचा नहीं। सूर्य की रश्मियाँ जैसे सूर्य से स्वयं प्रकाशित होती हैं वैसे ही वेद भी परमेश्वर से स्वयं प्रकाशित हुए। जैसे कि बृहदारण्य कोपनिषद् में कहा गया है – 'अस्य महतो भूतस्य नि:श्वसितं यदेतत् ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेद:' इति। श्वास जैसे स्वाभावि कार्य है इसको लेने में चेष्टा नहीं की जाती वैसे ही वेद भी परमेश्वर के प्रज्ञा स्वरुप हैं चेष्टा कृत था बुद्धि परिकल्पित नहीं हैं। यहाँ ज्ञातृ और ज्ञान में अभेद है। प्रतिकल्प में परमेश्वर से वेद का ज्ञान प्रकाशित होता हैं। ब्रह्मा वेद के कर्ता नहीं हैं, वह तो स्मर्ता अर्थात् केवल स्मरण कर्ता है। पराशर संहिता में कहा गया है कि – 'न कश्चित् वेदस्य कर्तास्ति वेदस्मर्ता चतुर्मुख:' इति।

अर्थात् कोई भी वेद का कर्ता नहीं है। ब्रह्मा केवल वेद का स्मरण कर्ता है।

ब्रह्मा आदि सभी ऋषि वेद के स्मारक हैं न की कारक। ब्रह्मा आदि सभी ऋषि मन्त्र द्रष्टा वेद के धारक तथा वाहक हैं वेद के कर्ता अथवा रचयिता नहीं हैं। नित्य विद्यमान वेद परमेश्वर प्रत्येक कल्प में ब्रह्मा को देते हैं।

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै'। वेद नित्य, तथा सदा विराजमान रहते हैं। प्रत्येक कल्प में ब्रह्मा उसकी पुनरावृत्ति करता है। युगान्त अथवा प्रलयकाल में भी वेद परब्रह्म में ही अभिन्न रुप से रहते हैं। कल्प के आरम्भ में पुन: ऋषि तपस्या के द्वारा वेद मन्त्रों को प्राप्त करते हैं। अत: कहा भी गया है–

युगान्ते अन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षय:।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भूवा।।

यास्क के मत में ऋषि शब्द का अर्थ मन्त्र द्रष्टा है। यास्क के मत में ऋषि शब्द की व्युत्पत्ति है –अजानन् ह वै पृश्नीं स्तपस्य मानान् ब्रह्म स्वयम्भू अभ्यानर्षत्तदृषयोऽभवन्। तपस्यारत जन्म रहित ऋषियों के समीप स्वयं ब्रह्म अर्थात् वेद गये। मन्त्र द्रष्टा ऋषि कहे जाते हैं। निरुक्त में वेद स्वयम्भू उत्पत्ति रहित तथा अपौरुषेय कहे गये हैं।

वेदभाष्यकार सायणाचार्य ने वेद का अपौरुषेयत्व स्वीकार किया। भाष्य रचना के पूर्व महेश्वर को प्रणाम करके निवेदन करते हैं।

'यस्य निःश्वसितं वेदाः यो वेदेभ्योऽखिलं जगत।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम।

अर्थात् वेद चतुष्टय से उत्पन्न निखिल भुवन जिसका निःश्वास स्वरूप है, और जो सब विद्या का आधार है उस परमेश्वर महेश्वर की मैं वन्दना करता हूँ। वेद महेश्वर के निःश्वास स्वरूप हैं ऐसा कह कर सायणाचार्य ने वेद का अपौरुषेयत्व प्रतिपादित किया।

परमेश्वर वेद के आधार हैं न की रचयिता। परमेश्वर के वेद कर्तृत्व के प्रतिपादन में वेद का अनित्यत्व, तथा परमेश्वर का सर्वज्ञत्व का अभाव सिद्ध होता है। परमेश्वर त्रिकालदर्शी है। अतः वह सर्वज्ञ है, इससे उसके लिए किसी भी विषय का ज्ञान अगम्य है ऐसा नहीं कहा जा सकता। परमेश्वर ने वेद रचे ऐसा कहने पर उसके सर्वज्ञत्व का अभाव सिद्ध होता है। उसके सर्वज्ञत्व से वेद सर्वदा उसके ज्ञानगम्य थे। अतः वेद नित्य हैं। कल्पभेद में भी उसमें परिवर्तन नहीं होता है।

जिसका आदि नहीं होता वह अनादि कहलाता है। आदि उच्चारण मात्र से शब्द तथा वाक्य का कर्तृत्व प्रतिपादित होता है, और आदि उच्चारण मात्र से पूर्व वह शब्द नहीं था ऐसा ज्ञात होता है अतः वह शब्द अथवा वाक्य पौरुषेय है। यही पौरुषेय का धार्म तथा वैशिष्ट्य है। अतः प्रत्येक कल्प में वेद का स्मरणत्व प्रतिपादित है न की उच्चारणत्व। उसके बाद प्रत्येक कल्पमें वेद का सजातीय उच्चारणत्व भी प्रतिपादित है। इससे वेद अनादि था अनन्त हैं। अत वेद अपौरुषेय हैं न की पौरुषेय। क्योंकि पुरुष का आदि है। आदि होने से उसका विनाश भी अवश्यम्भावी है। वेद के अपौरुषेय होने से उसका विनाश नहीं होता अतः वह अनादि अनन्त और नित्य है। अतः परमेश्वर के साथ वेद का सम्बन्धभी अनादि तथा अनन्त काल से है।

पूर्व मीमांसकों के मत में वेद नित्य है। और उसका आधार परमेश्वर नहीं होता है। पूर्वमीमांसकों और वेदान्तियों के मत में ब्रह्म वेद का उत्सर्जन कर्ता और आधार है। वेदान्त दर्शन के ब्रह्मसूत्र में 'शास्त्रयोनित्वात' इस प्रथमाध्याय के तीसरे सूत्र में ब्रह्म को वेद चतुष्टय की योनि कहा है। अतः वेद का कारण ब्रह्म है। इस सूत्र के भाष्य में भगवान् शङ्कराचार्य ने कहा- 'न ही शस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञात् अन्यतः सम्भवोऽस्ति'। अतः सभी विद्या के आधार अखिल धर्म मूल, वेदशास्त्र के उत्स्रष्टा सर्वज्ञ ब्रह्म ही है अन्य कोई नहीं। शुक्ल यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि- ''ब्रह्म ही त्रयीविद्या अथवा वेदविद्या का प्रकाशक है''। अतः कहा है कि -'ब्रह्म एव प्रथमसृजत त्रयीमेव विद्याम्' (6-1-14)। कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय ब्राह्मण में ब्राह्मण को वेद का उत्स्रष्टा कहा है। अतः तमनु त्रयो वेदा असृजन्त (2-3-10-1)। वैशेषिक दर्शन में तो वेद को ईश्वर की वाणी बताया गया है। अतः उसका प्रमाण स्वीकार किया जाता है।

वेदान्त दर्शन और पूर्वमीमांसा दर्शन में वेद का अपौरुषेयत्व तथा प्रामाणत्व प्रतिपादित है। किन्तु वेद के नित्यत्व के विषय में दोनों दर्शनों में प्रस्थान भेद लक्षित होता है। पूर्वमीमांसा दर्शन में शब्द का नित्यत्व प्रतिपादित है। न्यायदर्शन में शब्द का अनित्यत्व प्रतिपादित

है। जैमिनि तथा न्याय दर्शन में शब्द के अनित्यत्व का खण्डन तथा नित्यत्व प्रतिपान है। शब्द का नित्यत्व प्रमाणित होने पर वेद का भी नित्यत्व प्रतिपादित होता है। कूटस्थ नित्यता और अप्रवाह नित्यता भेद से वेदान्त दर्शन में नित्यता दो प्रकार की है। कूटस्थ अर्थात् हमेशा एक रुप निर्विकार। वेदान्त दर्शन में परब्रह्म की कूटस्थ नित्यता और पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की जाती है। ब्रह्म वै सर्वे एव अनित्याः यह वेदान्तियों का सिद्धान्त है। जिसके आविर्भाव के साथ तिरो भाव हैं। जो प्रत्येक कल्प में अभिव्यक्त होता है, और जिसका प्रलय काल में कुछ समय के लिए तिरोभाव होता है वहीं प्रवाहनित्यता है। वैसे पदार्थ की कूटस्थनित्यता नहीं है केवल प्रवाह नित्यता है। क्योंकि प्रत्येक कल्प में उनकी सृष्टि और प्रलय होता है। तथा वेद प्रलयकाल में परमेश्वर में लीन हो जाते हैं। कल्प के आरम्भ में पुनः परमेश्वर वेद को स्मरण करता है। अतः वेदान्त में वेद की प्रवाह नित्यता स्वीकृत है न की कूटस्थ नित्यता। वेद की नित्यता के प्रसङ्ग में वैदान्तिक सिद्धान्त ब्रह्म सूत्र में प्रतिपादित हैं (1-3-29)। वाचा विरूपनित्यया, अनादिनिधाना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयमभूवा आदि श्रुतिस्मृती के वाक्यों में वेद की प्रवाह नित्यता उद्घोषित है। पूर्व मीमांसकों के मत में एकरूप जगत की प्रवाह नित्यता का प्रसङ्ग ही नहीं है। अतः मीमांसा दर्शन में वेद की कूटस्थ नित्यता तथा पारमार्थक नित्यता स्वीकृत है।

पाठगत प्रश्न

535. मीमांस कों तथा वैदान्तियों के मत में वेद पौरुषेय है अथवा अपौरुषेय?

536. पुरुषों का ज्ञान अपूर्ण किस लिए होता है?

537. पुरुषों की रचना में दोष क्यों होते हैं?

538. वेद किससे स्वयं प्रकाशित हुए?

539. वेद परमेश्वर का कौन सा स्वरुप है?

540. वेद का स्मरण कर्ता कौन है?

541. कौन मन्त्र द्रष्टा हैं?

542. प्रत्येक कल्प में परमेश्वर वेद का ज्ञान किसको देता है?

543. प्रलय काल में वेद कहाँ रहते हैं?

544. यास्क के मत में ऋषि शब्द का क्या अर्थ है?

545. वेद के विषय में निरुक्त कार का क्या मत है?

546. आचार्यसायण के मतानुसार वेद पौरुषेय है अथवा अपौरुषेय?

547. वेद भाष्यकारों के मतमें वेद किसके स्वरुप हैं?

548. क्या अनादि है?

549. क्या अनन्त है?

550. पूर्वमीमांसकों के अनुसार वेद नित्य है अथवा अनित्य?

551. पूर्वमीमांसकों के मत में वेद का उत्स्रष्टा कौन है?

552. शास्त्रयोनित्वत् इस सूत्र का सामान्य अर्थ क्या है?

553. किस दर्शन में वेद को ईश्वर की वाणी कहा है?

554. नैयायिकों के मत में शब्द नित्य है अथवा अनित्य?

555. नित्यता कितनी हैं। और कौन-कौन सी हैं?

556. वेदान्त दर्शन में ब्रह्म की कैसी नित्यता वर्णित है?

557. कूटस्थ नित्यता का साधारण लक्षण बताओ?

558. प्रलय काल में वेद कहाँ लीन हो जाते हैं?

559. मीमांसा दर्शन में वेद की किस प्रकार की नित्यता का वर्णन है?

5.9 सांख्य के मत में वेद

सांख्य दर्शन में वेद की नित्यता को स्वीकार नहीं किया गया किन्तु वेद को अपौरुषेय स्वीकार किया है। वेद ऋषि गण कर्तृक और दृष्ट हैं। अत: वेद का कोई रचयिता नहीं है। और न कोई अपने मतानुसार वेद प्रामाण्य अथवा वेद के आविर्भाव का विषय स्वीकार करता है। अत: वेद अपौरुषेय हैं। वेद के कर्ता का कोई भी स्वरुप नहीं है। अत:- न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुु: पुरुषस्य अभावात् (सांख्यसूत्रं 5-46)। श्रुति तथा स्मृती के अनुसार प्रतिपादित वेद की नित्यता सांख्य के मत में गुरु शिष्य परम्परा में वेद का अविच्छिन्न प्रवाह है। ऋषिगण के द्वारा उच्चारित वैदिक शब्दों का समूह गुरु शिष्य परम्परा में आज भी अक्षुण्ण रूप से उच्चारण होता है। परमेश्वर की तरह ही तथा सांख्य के पुरुष की तरह ही अनादि नित्यता तथा कूटस्थ नित्यता वेद की नहीं है। क्योंकि प्रत्येक मन्त्र का द्रष्टा कोई ऋषि है। अत: उस ऋषि से पूर्व उस मन्त्र का अस्तित्व नहीं था। मन्त्र द्रष्टा से लेकर गुरु परम्परा पर्यन्त वेदाध्ययन निरवच्छिन्न भाव से चलता है। अत: जैसे पूर्वकाल में वेदोच्चारण होता था। उसके समान उच्चारण से आज भी वही उच्चारण प्रथा आदि काल से ही चल रही है। इसलिए वेद के सजातीय उच्चारण प्रवाह की नित्यता स्वीकार की जाती है अर्थात् प्रवाह नित्यता सांख्य दर्शन में स्वीकृत है। न की अनादि अनन्त नित्यता है।

5.10 वैयाकरणों के मत में वेद

महाभाष्यकार भगवान् पतञ्ज्लि ने पाणिनिप्रणीत 'तेन प्रोक्तम्' इस सूत्र के भाष्य में वेद की नित्यता के प्रसङ्ग में कहा कि-वेद का अर्थ नित्य है किन्तु शब्द राशि अथवा वर्णानुपूर्वी अनित्य है। उन्होंने कहा कि- अर्थ नित्य है, किन्तु यह वर्णानुपूर्वी ही तो है। प्रत्येक महाप्रलय के अनन्तर वेद की वर्णानुपूर्व्य अक्षर परम्परा का विनाश होता है। प्रत्येक कल्प में पुन ऋषि गण वेद का स्मरण करते हैं। वर्णराशी के लोप होने पर भी वेद के अर्थ नित्य ही रहते हैं। वर्णानुपूर्व्य के भेद से नाना प्रकार की शाखाओं की उत्पत्ति हुई। जैसे ऋग्वेद के इक्कीस, सामवेद के हजार भेद (सहस्रवर्त्मा सामवेदा:) हैं। अत: महाभाष्यकार पतञ्ज्लि के मतानुसार वेद के अर्थ नित्य हैं, तथा वर्णानुपूर्वी अनित्य है। अर्थात् आंशिक रूप में नित्य तथा आंशिक रूप में अनित्य हैं।

न्याय दर्शन में वेद और शब्द की नित्यता स्वीकार नहीं की गयी है। वेद की अनाद्यनन्त नित्यता अर्थात् कूटस्थ नित्यता स्वीकार नहीं की जाती है। परन्तु प्रवाह नित्यता स्वीकार की जाती है। और वहाँ मन्त्रायुर्वेद की तरह ही उसका प्रमाण है आप्त प्रमाण से न्याय दर्शन के सूत्र भाष्य में वात्स्यायन ने कहा कि- मन्वन्तरयुगान्तरेषु चातीतानागतेषु सम्प्रदायाभ्यास-प्रयोगा विच्छेदो वेदानां नित्यत्वम् इति अर्थात् अतीत, अनागत, मन्वन्तर, प्रलय, कल्प तथा सम्प्रदाय क्रम में उसके अभ्यास और प्रयोग निरवच्छिन्न भाव से चलते रहते हैं वही वेद की नित्यता है। यही प्रवाह नित्यता है।

भाष्यकार सायणाचार्य वेद की अनादि अनन्त नित्यता स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मतानुसार वेद की नित्यता एक कल्पस्थायी है। प्रत्येक कल्प में वेद अभिव्यक्त होकर प्रलय काल में परमेश्वर में लीन हो जाते हैं। अर्थात् पुन: प्रत्यावर्तित होते हैं। अत: वेद भाष्यकार आचार्यसायण के मतानुसार वेद की प्रवाह नित्यता है।

पाठगत प्रश्न

560. सांख्य के मत में वेद नित्य है अथवा अनित्य?

561. वैयाकरणों के मत में वेद नित्य है अथवा नहीं?

पाठ का सार

वशिष्ठ और विश्वामित्र का आख्यान, च्यवान भार्गव तथा मानवी सुकन्या का आख्यान, ऊर्वशी-पुरूवरा का उपाख्यान, शुन:शेप का उपाख्यान इत्यादि उपाख्यान हमने यहाँ जाने। इनके आलावा भी अनेक उपाख्यान हैं। परन्तु विस्तार के भय से उनका यहाँ वर्णन नहीं किया गया।

इसके बाद हमने वेद के पौरुषेयत्व के विषय में कुछ मतों को जाना। पूर्व मीमांसा दर्शन

वेदान्त दर्शन तथा सांख्य दर्शन में वेद अपौरुषेय है केवल न्याय दर्शन में ही पौरुषेय है। पूर्व मीमांसा दर्शन में वेद की कूटस्थ नित्यता स्वीकार की गई है। वेदान्त दर्शन सांख्य दर्शन तथा न्याय दर्शन में वेद की प्रवाह नित्यता स्वीकृत है न कि कूटस्थ नित्यता। वैयाकरणियों के मत में वेद के अर्थ नित्य हैं परन्तु शब्द राशी अनित्य है। श्रुति स्मृति आदिग्रन्थों में वेद की नित्यता स्वीकार की गई है। वेदान्त सांख्य और न्याय के मत में वेद का कारण ब्रह्म है। वेद के उत्सर्जन से वेद प्रामाण्य और प्रवाह नित्य है। पूर्व मीमांसकों के मत में परमेश्वर ने वेद का उत्सर्जन नहीं किया। उनके मत में शब्द नित्य है। वे जैमिनि न्याय दर्शन में प्रमाणित शब्द के अनित्यत्व का खण्डन करके शब्द के नित्यत्व का प्रतिपादन करते हैं। उनके मत में शब्द के नित्यत्व से वेद का भी नित्यत्व सिद्ध होता है।

पाठान्त प्रश्न

562. उर्वशी पुरुरवा की एक रहस्य वादिनी व्याख्या लिखो?
563. वसिष्ठ विश्वामित्र के उपाख्यान को संक्षेप से लिखो?
564. उर्वशी के तीन शर्त कौन से थे?
565. पुरुरवा ने उर्वशी से कैसे अविच्छिन्न समागम प्राप्त किया?
566. च्यवान भार्गव तथा मानवी सुकन्या का आख्यान कहाँ-कहाँ प्राप्त होता है?
567. उर्वशी के तीन शर्तो के नाम लिखो?
568. उर्वशी-पुरुरवा के आख्यान का प्रतिपादन करो?
569. च्यवान भार्गव तथा मानवी सुकन्या का आख्यान लिखो?
570. वसिष्ठ विश्वामित्र का आख्यान संक्षेप में लिखो?
571. आख्यानों का तात्पर्य लिखिए?
572. शुन:शेप उपाख्यान को लिखिए?
573. न्याय दर्शन के मत में वेद का प्रतिपादन कीजिए?
574. मैमांसिको के मत में वेद का प्रतिपादन कीजिए?
575. सांख्य दार्शनिकों के मत में वेद का प्रतिपादन कीजिए?
576. वैयाकरणियों के मत में वेद का प्रतिपादन कीजिए?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-1

577. हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र

578. वरुण का

579. अजीगर्त।

580. ऋग्वेद में।

581. विश्वामित्र का।

582. विश्वामित्र शुनःशेप के लिए।

उत्तर-2

583. उर्वशी को।

584. राजा को नग्न देखकर।

585. उर्वशी एक अप्सरा थी।

586. समय को स्वीकार करके विचार करके किया।

587. वह सदा घृताहार करेगी।

588. उर्वशी के बीना गन्धर्वों को स्वर्ग नीरस और निर्जीव लगने लगा।

589. गन्धर्वों ने कपट से भेड़ चुराया।

590. भेड़ की करुण धवनि को सुनकर, और चोरों से भेड़ की रक्षा के लिए।

591. राजा का नग्न रूप देखकर।

592. कुरुक्षेत्र के एक जलाशय में हंसी के स्वरूप में स्वप्रिया को देखा।

593. अग्नि विद्या के अनुष्ठान से।

594. विक्रमोर्वशीय नामक नाटक।

595. पुरुरवा।

उत्तर- 3

596. मानवी सुकन्या।

597. च्यवन।

598. मानवी सुकन्या।

599. सौख्य का स्तम्भ'।

उत्तर- 4

600. ऋग्वेद में।

601. वसिष्ठ और विश्वामित्र।

602. क्षत्रीय।

603. ब्राह्मणत्व प्राप्ति के लिए।

उत्तर- 5

604. नारी चरित्र की उदात्तता और तेजस्विता का प्रतिपादन।

605. शारीरिक तपस्या का।

606. पुरुषकार का।

607. ऋषि के गौरव, प्रेम महिमा, और कवि की साधना अभिव्यक्त करता है।

608. परमेश्वर के प्रति प्रगाढ श्रद्धा, जीवात्मा के साथ प्रेम, विश्व कल्याण के लिए यही मङ्गलमय मार्ग है।

उत्तर- 6

609. सृष्ट का।

610. पौरुषेय।

611. नित्य।

612. परम पुरुष के द्वारा।

613. परमेश्वर।

उत्तर- 7

614. अपौरुषेय।

615. वे अपूर्ण हैं अत: उनका ज्ञान भी अपूर्ण है।

टिप्पणी

616. भ्रम प्रमाद विप्रलिप्सा और इन्द्र के अपूर्ण होने कारण दोष उत्पन्न होते हैं।

617. परमेश्वर के साथ से।

618. प्रज्ञा स्वरुप।

619. ब्रह्मा।

620. वेद मन्त्रों को जिसने देखा।

621. ब्रह्म में।

622. परब्रह्म में अभिन्न रुप से।

623. मन्त्र द्रष्टा।

624. वेद स्वयम्भू अपौरुषेय है।

625. अपौरुषेय।

626. महेश्वर के निश्वास स्वरुप।

627. जिसका आदि नहीं है।

628. जिसका अन्त नहीं है।

629. नित्य।

630. ब्रह्म।

631. ब्रह्म वेद चतुष्ट की योनि।

632. वैशेषिक दर्शन में।

633. अनित्य।

634. दो प्रकार से। कूटस्थ नित्यता और प्रवाह नित्यता।

635. कूटस्थ नित्यता।

636. जिसके आविर्भाव के साथ तिरोभाव होता है।

637. परब्रह्म में।

638. कूटस्थ नित्यता।

उत्तर-8

639. अनित्य

640. नित्य।

पांचवां पाठ समाप्त

6

वैदिक यज्ञ

प्रस्तावना

वैदिक काल से भारतीय संस्कृती में यज्ञों का अनुष्ठान शुभ कार्य का सूचक होने से महान फल लाता ही है इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। यज्ञ शुद्धी भवन की क्रिया विशेष होता है। इस क्रिया में अग्नि पवित्रता के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठापित की जाती है। आयुर्वेद के औषधीय-विज्ञान के मतानुसार यज्ञ में अग्नि से उत्पन्न धुएँ से वायु शुद्ध होती है यह गुण यज्ञ के प्रचार और प्रसार में बहुत ही सहायक सिद्ध होता है। जैसे कि याग के माहात्म्य के विषय में भगवान ने भगवद्गीता में कहा गया है कि- अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृताम वर (8/4)। यज्ञशब्द के तीन अर्थ हैं -- 1- देवपूजा, 2-दान, और 3-संगतिकरण। संगतिकरण का अर्थ संस्थापन है। यज्ञ का एक प्रमुख उद्देश्य धर्मिक प्रवृत्ति और सत्प्रयोजन की सिद्धि में लोगों का एक मिलनसार साधन होना है। इस कलयुग में संघ में शक्ति मुख्य है। परास्त हुए देवताओं की पुन: विजय के लिए प्रजापति ने उनकी पृथक्-पृथक्-शक्तियों का एकीकरण करके एक संघ-शक्ति के रूप में दुर्गा-शक्ती का प्रादुर्भाव किया। और उससे सभी आपदाएं दूर हो गई। मानवजाति की समस्याओं का समाधन समूह शक्ती संघ में गूहित है, अकेला मानव दुर्बल और स्वार्थी हो जाता है।

यज्ञ का तात्पर्य त्याग होता है। अपना प्रिय पदार्थ अग्नि तथा वायु के माध्यम से सकल संसार के कल्याण के लिए यज्ञ के द्वारा बाँटा जाता है। वायु के शोधनसे सभी के आरोग्य वर्धन का अवसर प्राप्त होता है। आहूत वायु प्राणी मात्र का स्वास्थ्य वर्धन करती है, और रोग निवारण में सहायक होती है। यज्ञकाल में उच्चरित वेदमन्त्रों से लोगों के अंत:करण में सात्त्विक शुद्धता उत्पन्न होती है। इस प्रकार स्वल्प प्रयास से ही लोगों का महान् उपकार होता है। यदि माता अपने रक्त-मांस के एक भाग को एक नवजातक के निर्माण के लिए नही छोड़ती, प्रसव वेदना को सहन नहीं करती, नवजातक को दुग्ध नहीं पिलाती, पालन-पोषण आदि में यत्न नहीं करती, सब नि:स्वार्थ भाव से नहीं करती, तो मनुष्यों का जीवन सम्भव नहीं है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे–

- यज्ञ आदि का भेद जान पाने में;
- होम की विधि आदि जान पाने में;
- इष्ट्यादी के विषय में विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- पशु यागों की विधि जान पाने में;
- सोम आदि यागों की विधि आदि जान पाने में;
- सत्र याग के विषय में ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- स्वयं भी यागादि के विषय में लघु प्रबन्ध रचना कर पाने में।

6.1 यागों का सामान्य परिचय

यागों के सामान्यतः पांच प्रकार देखे जाते हैं- होम, इष्टि, पशु, सोम, और सत्र। वैदिक याग प्रकृति और विकृति के भेद से दो प्रकार के हैं। प्रकृतियाग प्रधानयाग कहलाते हैं। प्रत्येक प्रकृतियाग की बहुत सी विकृतियाँ हैं। समान जातीय यागों का मूल स्वरूप प्रकृति याग कहलाता है। उसी प्रकृतियाग के आश्रय में विकृतियाग अनुष्ठीत होते हैं। विकृतिया का दूसरा नाम अङ्गयाग है। प्रकृतियाग अंगी है। पांच प्रकार के प्रकृतियागों की प्रकृति यहाँ दिखाई गयी है।

6.1.1 होम

होम याग दर्वीहोम कहलाता है। इस याग में प्रतिदिन प्रातः काल और सायंकाल गृहस्थ के अग्निकुण्ड में दूध, दही, पुरोडाश आदि की आहुति दी जाती है। सूर्य और अग्नि इस होमयाग के देवता हैं। प्रातः सूर्य को तथा सायं को अग्नि उद्देश्य करके मन्त्रपाठ आहुति दी जाती है। क्योंकि दर्वी के अग्निकुण्ड में आहुति दी जाती है। अतः इसे दर्वीहोम भी कहते हैं। होमजातीय यागों की प्रकृति अग्निहोत्र है। वैदिक काल में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य के लिए प्रतिदिन अग्निहोत्र अनिवार्य था। उनको स्वयं ही यह यज्ञ करना होता था, पुरोहित के द्वारा इसे करने की विधि नहीं थी। क्षत्रिय और वैश्य तो पुरोहित से करवाते थे। लेकिन ब्राह्मण को प्रतिदिन स्वयं अग्निहोत्र करना होता था।

ब्राह्मण प्रतिदिन अग्निहोत्र करे "ब्राह्मणोऽहरहः अग्निहोत्रं जुहुयात्" यह श्रुति प्रमाण है। शतपथ ब्राह्मण की उक्ति है "एतद्वै जरामर्यसत्रं जरया ह्येवास्मात् मुच्यते मृत्युना वा" अर्थात् अग्निहोत्र ही जरामर्यसत्र कहा जाता है। इसी कारण मृत्यु के बीना इस याग के नित्यानुष्ठान

से ब्राह्मण की निष्कृति नहीं है। यह ब्राह्मण का नित्य कर्म है। आज भी दाक्षिणात्य और महाराष्ट्र में बहुत से अग्निहोत्रकारी ब्राह्मण दिखते हैं। इस याग में प्रातः सूर्य तथा सायं अग्नि को उद्देश्य मानकर आहुति दी जाती है। एक ही मन्त्र प्रातः और सायं दोनों समय पढ़ा जाता है। प्रातः केवल ''सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः'' तथा सायं सूर्य शब्द के स्थान पर अग्नि शब्द का प्रयोग करके ''अग्निर्ज्योतिः ज्योतिरग्निः'' ऐसा पढ़ा जाता है। सायंकाल में सूर्य उसका तेज अग्नि में प्रतिष्ठापित करके अस्त हो जाता है, अतः सूर्य के स्थान पर अग्नि का पाठ विहित है। प्रातःकालीन आहुति सूर्योदय से पूर्व तथा, सायंकालीन आहुति सूर्य के अस्तगमन के बाद देनी चाहिए इस विषय में ब्राह्मण ग्रन्थों में ऐसा विचार है। एक पक्ष में प्रातः सूर्योदय से पूर्व होम का विधान है, उनके मत में यदि ऐसा नहीं करते तो आदित्य आहुति को स्वीकार नहीं करता है। सूअर उस आहुति को स्वीकार करता है। दूसरे पक्ष में इसके विपरीत मतं प्रदर्शित किया गया है। सूर्योदय होने पर आहुति का दान निष्फल होता है। इस प्रकार दोनों पक्षों के मतानुसार आहुति प्रदान करनी होती है। श्रौत सूत्र में इस विवाद का समाधान विहित है। वेद के शाखा भेद के अनुसार ही आहुति के समय का भी भेद किया गया है। जैसे- बह्वृच्-छन्दोमय शाखा के द्विजातिगण सूर्योदय से पूर्व होम करें। इस कारण वे अनुदित होमी कहलाते हैं। दूसरी जगह कठ-तैत्तरीय-मैत्रायण शाखा के ब्राह्मण उदय के बाद में ही होम करें ऐसा विधान है। इसलिए वे उदित होमी कहलाते हैं। किन्तु दोनों ही सूर्योदय से पूर्व ही गार्ह पत्याग्नि का चयन करके होम कुण्ड का प्रज्वालन करें।

अग्निहोत्र का प्रधान आहुति द्रव्य दुग्ध है, इसलिए यजमान एक गाय का पालन करता है। वह अग्निहोत्री गाय कहलाती है। यज्ञवेत्ता मृदा के एक पात्र से दुग्ध गर्म करता है। वह उष्ण दूध अग्निहोत्रवनी इस नाम से दर्व्य अग्नि में आहूत किया जाता है। प्रातः दो आहुति एक सूर्य, और दूसरी प्रजापति को उद्देश्य करके दी जाती है। जिस दिन अग्निहोत्र आरम्भ किया जाता है। उसी दिन सायंकाल में भी अग्निहोत्र करना होता है। उसी कारण यह अग्निहोत्र नाम से प्रसिद्ध होता है **स्तम्भ श्रौत सूत्र के मत में।**

पहले ही कहा गया है कि ब्राह्मण को स्वयम् ही यह करना होता है। यदि ब्राह्मण अस्वास्थ्य के कारण अक्षम हो तो वह कार्य उसके पुत्र को, और पुत्राभाव में पुरोहित करे। किन्तु पूर्णिमा तथा अमावास्या पर अस्वस्थ होते हुए भी ब्राह्मण को ही करना चाहिए। अविवाहित को अग्निहोत्र का अधिकार नहीं है। विवाहित है किन्तु जो विपत्नीक हो गया, उसको भी अधिकार नहीं है। अतः पुनर्विवाह करना होता है। ऐतरेयब्राह्मण में लिखा है कि यदि उसकी पत्नी मर चुकी है तो पुनर्विवाह करना चाहिए अथवा श्रद्धा को पत्नी रूप में कल्पित करके ब्राह्मण अग्निहोत्र करे।

पाठगत प्रश्न

641. होमयाग का दूसरा नाम क्या है?

टिप्पणी

642. होमयाग की प्रकृति क्या है?

643. किनके लिए अग्निहोत्र आवश्यक था?

644. अग्निहोत्र करने का अधिकार किसको है?

645. विपत्नीक अग्निहोत्री क्या करे?

6.1.2 इष्टि

इष्टि याग की प्रकृति दर्श पूर्णमास है। दर्शशब्द का अर्थ सूर्येन्द्ुसङ्गम अर्थात् अमावस्या है। पौर्णमासी अर्थात् पूर्णिमा। यह यज्ञ पूर्णिमा और अमावास्या को किया जाता है। विवाहित, सस्त्रीक आहिताग्नि ब्राह्मण तथा क्षत्रिय अथवा शूद्र भी इस याग के अधिकारी हैं। आहिताग्नि शब्द का अर्थ जिसने गार्ह पत्याग्नि को प्रतिष्ठित किया है। अमावास्या पर दो दिन तथा पूर्णिमा पर दो दिन इस याग का अनुष्ठान करना चाहिए। यह याग पूर्णिमा की प्रातः आरम्भ होता है तथा दुसरे दिन अर्थात् प्रतिपदा के मध्याह्न में समाप्त होता है। अमावास्या पर भी इसी प्रकार का अनुष्ठान विहित है। इस याग का प्रथम दिवस पूर्णिमा हो। अर्थात् अमावास्या पर इसका आरम्भ न करें। इस याग में चार पुरोहित होते हैं - होता, अधवर्यु, अग्नीध्र, और ब्रह्मा। पुरोहितों में तारतम्य नहीं है। सोमयाग में ब्रह्मा सर्वश्रेष्ठ होता है। सभी उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हैं। किन्तु इष्टियाग में सभी पुरोहितों का अधिकार समान होता है। यद्यपि विविध गौण आहुतियाँ तथा देवताओं के नाम इष्टियाग में होते हैं, तथापि उसमें आहुति ही मुख्य होती है। पहली आहुति अग्नि को उद्देश्य करके पुरोडाश की दी जाती है। दूसरी आहुति उपांशु के रूप में प्रसिद्ध है। वह विष्णु-प्रजापति-अग्नि-सोम आदि के लिए निवेदन की जाती है। तीसरी आहुति अग्नि और सोम को उद्देश्य करके पुरोडाश को अर्पित की जाती है। अमावस्या पर तो पुरोडाश निष्ठ पहली आहुति अग्नि के लिए इष्ट होती है। और दूसरी आदि आहुतियों का देवता इन्द्र होता है। और हव्य द्रव्य यथा क्रम दही और दूध हैं। इष्टियाग की समाप्ति पर अग्नि स्विष्टकृत् आहुति अग्नि के लिए अर्पित की जाती है। इसके बाद पुरोहित यज्ञ की आहुति का अवशिष्ट अंश प्रसाद के रूप में ग्रहण करते है, और वह ईडा भक्षण कहलाता है। सभी हव्य द्रव्यों के मिश्रण से ईडा प्रस्तूत किया जाता है। अनुयाज और पत्नीयाज के बाद यजमान के प्रतीक रूप में कुश निर्मित मूर्ति को अग्नि में निक्षिप्त की जाती है। वह कुशमूर्ति कुश पत्थर कही जाती है। वह मूर्ति जब अग्नि में दग्ध होकर भस्मसात् होती है, तब यजमान इस प्रकार चिन्तन करता है कि उसका पार्थिव शरीर दग्ध हो गया। तथा यज्ञ के द्वारा उसकी आत्मा ने विष्णु सायुज्य प्राप्त कर लिया। यह अनुध्यान यजमानों को प्रेरणा देता है। यजमान सोचता है कि वह विष्णु के साथ एकीभूत हो गया। और ''विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधो पदम्'' इस मन्त्र का उच्चारण करके त्रिपद जाता है। इष्टियाग नित्य और काम्य दोनों प्रकार का हो सकता है। जो निरन्तर पूर्णिमा तथा अमावास्या पर इसका अनुष्ठान करते हैं उनके लिए नित्य। और जो नित्य नहीं करते

हैं, केवल कामना सिद्धि के लिए ही करते हैं उनके लिए तो काम्य है। काम्यानुष्ठान में धान्य से पुरोडाश का निर्माण करना चाहिए, वहाँ गेहूँ का व्यवहार निषिद्ध है।

शतपथ ब्राह्मण के मत में दर्शपूर्ण मास सभी यागों की प्रकृति है। इस ब्राह्मण के आदि में ही इष्टी की आलोचना देखी जाती है। इष्टियाग के बहुत से प्रकार हैं। पुत्र की प्राप्ति के लिए पुत्रेष्टि, अनावृष्टि के समय वृष्टी के लिए होने वाला इष्टि याग, खेत की प्रथम फसल देवता को अर्पण करने के लिए आग्रायणेष्टि इत्यादि। अग्निप्रीत्यर्थक पुरोडाशयाग, इन्द्रप्रीत्यर्थक पुरोडाशयाग, और इन्द्रप्रीत्यर्थक पयोद्रव्ययाग तीनों यागों का समुह दर्शयाग होता है। अष्ट कपाल पुरोडाशयाग, उपांशुयाग, और एकादशकपाल पुरोडाशयाग इन तीनों यागों का समुह पौर्णमासयाग कहलाता है। इन समान फलदायक छः यागों का समूह दर्शपौर्ण मासयाग कहलाता है। यह दर्शपौर्णमासयाग तीस वर्षात्मक होता है।

पाठगत प्रश्न

646. इष्टियाग की प्रकृति क्या है?

647. दर्श शब्द का क्या अर्थ है?

648. इष्टियाग के चार पुरोहित कौन से हैं?

649. सोमयाग में सर्वश्रेष्ठ कौन है?

650. पुरोहितों के प्रसाद भक्षण को क्या कहते हैं?

6.1.3 पशु

दैक्ष तथा प्राजापत्य पशु सभी पशुयागों की प्रकृति है। यह ही निरूढ पशुयाग के नाम से प्रसिद्ध है। आहिताग्नि त्रैवर्णिक पुरुष इस याग के अधिकारी हैं। इस याग को प्रतिशरद ऋतु में एकवार करने का निर्देश किया गया है। चाहे तो दो बार अथवा छह बार भी किया जा सकता है। यदि एक बार ही सम्पादन करना हो तो उसका वर्षा ऋतु में सम्पादन करना चाहिए। यदि दो बार करना हो तो प्रथम सूर्य की उत्तरायण वेला में तथा द्वितीय दक्षिणायन के समय में करना चाहिए। यदि छह बार करना हो तो प्रत्येक ऋतु में एक एक सम्पादन करना चाहिए।

पशु इस याग का आहूतिद्रव्य है। इसलिए यह याग पशुयाग कहलाता है। इस याग के देवता प्रजापति, सूर्य, इन्द्र अथवा अग्नि होते हैं। इस याग में छह पुरोहित अपेक्षित होते हैं - अधवर्यु, प्रतिप्रस्थाता, होता, मैत्रावरुण, अग्नि, और ब्रह्मा। इष्टि मूलक यागों में होता ही अनुवाक्य और याज्य उभयविध मन्त्रों का व्यवहार करता है। किन्तु पशुयाग में होता केवल याज्य मन्त्रों का उच्चारण करता है। मैत्रावरुण नामक ऋग्वेदीय पुरोहित अनुवाक्य

टिप्पणी

मन्त्रों का उच्चारण करता है। प्रैषमन्त्रों को भी मैत्रावरुण ही पढ़ता है।

पशुओं की आहूति के लिए खूंटे की अपेक्षा होती है। पलाश खदिर विल्व रोहितक इन चारों वृक्षों में से किसी भी एक की काष्ठ से खूंटे का निर्माण होता है। प्रत्येक खूंटे से विशिष्ट ऐहिक पारलौकिक फल का लाभ होता है। यज्ञ वेदी की पूर्व दिशा में खूंटा स्थापित करना चाहिए। साधारण तया अन्ग विहीन आदि दोष रहित बकरे ही बली के लिए लाए जाते हैं। मन्त्र पूत बकरे को पुरोहित पलाशवृक्ष की शाखाओं से स्पर्श करके ''अग्नये त्वा जुष्टमुपाकरोमि'' इस मन्त्र का पाठ करता है। इसे उपाकरण कहते हैं। बलित्व से प्रदास्यमान पशु श्वास के रोधन से मर जाता है। इस प्रकार के निधन को संज्ञपन कहते हैं। निहत पशु के अङ्ग पुरोहित समान रूप में काटता है। यज्ञ स्थल की उत्तर पूर्व दिशा में पशु संज्ञपन व्यवच्छेद आदि के निमित्त एक स्थान निर्दिष्ट है। पशु का वसा अर्थात् हृदय की मेद को अधवर्यु नामक पुरोहित आहवनी याग्नि में आहुत करता है। एक मिट्टी के पात्र में पशु के अङ्गशामित्र प्रवेश के बाद शामित्र नामक अग्नि कुण्ड में पकाए जाते हैं। याग के समय एक पुरोडाश को यज्ञाग्नि में आहुत किया जाता है। केवल प्रतिप्रस्थाता के अलावा सभी यजमान और पुरोहित समर्पित पुरोडाश के अवशेष को खाते हैं। इष्टियाग की आलोचना में कहा गया कि यह कर्म ईडा भक्षण नाम से प्रसिद्ध है। तदनन्तर पशु के पक्के हुए अ्ंग मृत्पात्र से निकालकर टुकड़े टुकड़े करके अधवर्यु आहवनीयाग्नि में आहुति देता है। मिटटी के पात्र में पशु के मांस का वसा नामक जो रस सञ्चित होता है, उसकी भी पुरोहित आहुति देता है। इसके बाद ग्यारह अनुयाज और पत्नी संयाज अनुष्ठीत किये जाते हैं।

इस पशुयाग में जो पशु के संज्ञपन श्वास रोधन आदि किये जाते हैं वे पशुवध नहीं माने जाते। वैदिक विधानों के अनुसार यह न तो वध और न ही पाप होता है। यज्ञ में कोई पशु आहुत होता है तो वह पशु अपना पार्थिव शरीर छोड़कर जिस देव को उद्देश्य करके वह आहूत किया गया उस देव के समीप जाता है। यज्ञ से यह पशु अनायास ही दैवी रूप को प्राप्त करता है। पशु को उद्देश्य करके इस प्रस्ंग में ऋक्संहिता का एक ऋम्मन्त्र उल्लिखित है –

''न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवा –
इदेसि पथिभिः सुगेभिः।'' इति।

अर्थात् हे पशू, तू मृत्युलोक को नहीं जा रहा है और न हम तेरी हिंसा कर रहे हैं। तू सरल पथ से देव के समीप जा रहा है। मनु ने भी इस मत का समर्थन किया – यज्ञे वधोऽवधः। अर्थात् यज्ञ मं किया गया वध अवध है। यज्ञ में पशु नहीं मारे जाते हैं। अपितु उसको देवत्व की प्राप्ति होती है।

पुरोडाश के ईडा भक्षण की तरह ही पशुयाग में आहूति के अवशेष पशुमांस को खाने का विधान देखा जाता है। इस पशुमांस के भक्षण के विषय में दो विपरीत मत हैं। कुछ तो पशु को यजमान का चिह्न स्वरूप मानते हैं। पशु के द्वारा यजमान स्वयं की

आहूति देकर देवत्व को प्राप्त करता है। अत: यजमान यदि पशुमांस को खाता है तो वह यजमान के लिए स्वमांस भक्षण के समान होगा। अत: यह निषिद्ध है। किन्तु ऐतरेय ब्राह्मण में इस मत को समालोचित और खण्डित किया गया है। अग्नि और सोम इन दोनों देवताओं की सहायता से इन्द्र ने वृत्र का वध किया। अत: अग्नि और सोम ने इन्द्र से एक पशु माँगा। इन्द्र ने भी प्रार्थित वर प्रदान कर दिया। यहाँ यज्ञकाल में इन्द्र द्वारा प्रदत्त वर की परिपूर्ति के लिए अग्नि और सोम को पशु बली का विधान है। यजमान के प्रतीक के लिए पशुबली नहीं दी जाती। अत: पुरोहितों के लिए अवशिष्ट पशु मांस का भक्षण दोष रहित है, तथा निषिद्ध भी नहीं है। आज भी दाक्षिणात्य पुरोहित पशुयाग में आहूत पशु का अवशिष्ट मांस प्रसाद के रूप में ही खाते हैं।

पाठगत प्रश्न

651. सभी पशु यागों की क्या प्रकृति है ?
652. पशु याग में आहुति के रूप में क्या दिया जाता है?
653. पशु याग के देव कौन हैं?
654. पशु याग के छह पुरोहित कौन से हैं?
655. खूंटा किन वृक्षों की काष्ठ से निर्मीत होता है?

6.1.4 सोम

सभी प्रकार के सोम याग की प्रकृति अग्निष्टोम है। बहुत से ब्राह्मणों में सोमयाग की विवृति देखी जाती है। सोमर रस ही सोम याग की प्रधान आहुति है। पाँच दिन तक यह याग चलता है। वहाँ पहले दिन यजमान पुरोहितों को अभिनन्दन करता है, और दक्षिणा की प्रति श्रुति देकर तथा यज्ञ का नियोजन होता है। दूसरे दिन प्रायणीय-इष्ट का अनुष्ठान किया जाता है। जिस इष्टी से यज्ञ का आरम्भ होता है वह इष्टि प्रायणीय-इष्टि कहलाती है। तदनन्तर दश द्रव्यों के विनिमय से शूद्र के साथ सोमलता का क्रयण किया जाता है। सोम जैसे देवताओं का वैसे ही ब्राह्मणों का राजा है। तीसरे दिन यज्ञस्थल की पूर्व दिशा में प्राग्वंश-नामक महा वेदी का निर्माण होता है। चौथे दिन निरूठ पशुबन्ध याग की प्रक्रिया के अनुसार अग्नि और सोम को उद्देश्य करके एक पशुयाग किया जाता है। अन्तिम दिन अर्थात् पाँचवे दिन प्रकृत अग्निष्टोम का अनुष्ठान होता है। पूर्व के चार दिनों में अनुष्ठित अनुष्ठान अग्निष्टोम अनुष्ठान की भूमिका स्वरूप होते हैं। पाँचवे दिन सोमरस का निष्काशन करना चाहिए। यह अनुष्ठान सोमाभिषव अथवा सोमसवन कहलाता है।

सभी प्रकार के सोमयाग की प्रकृति हि अग्निष्टोम याग है, वह ज्योतिष्टोम भी कहलाता है। इस याग में सोम लता का रस ही प्रधान आहुति द्रव्य है। ऐसे याग में जो बारह

स्तोत्र गाए जाते हैं, उनमें अन्तिम स्तोत्र को अग्निष्टोम कहते हैं। क्योंकि अग्निष्टोम नामक सामगान से यज्ञ समाप्त होता है, अतः तज्जन्य याग भी अग्निष्टोम कहलाता है। बहुत से ब्राह्मण यागों में सोमयाग की विवृति देखी जाती है। ऐतरेयब्राह्मण में विशेषतः अग्निष्टोम याग का विवरण है। इस ब्राह्मण में चालीस अध्याय हैं। वहाँ प्रारम्भ के सोलह अध्यायों में अग्निष्टोम याग के ऋग्वेदीय पुरोहितों का कर्तव्य विहित है।

प्रति संवत्सर वसन्त-ऋतु में त्रैवर्णिक यजमान सपत्नीक इस याग का अनुष्ठान करें। बहुत दूर दुर्गम प्रदेश से सोमलता को लाकर यत्न से उसकी रक्षा की जाती थी। अब सोमलता दुष्प्राप्य हो गई। अतः उसके स्थान पर पूतिका-लता का विधान किया जाता है। वैदिक युग में ही सोमलता दुष्प्राप्य थी। शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि यदि सोमलता प्राप्त नहीं होती, तो पूतिका से यज्ञ सम्पन करें। इस याग में सोलह पुरोहित अर्थात् सभी अपेक्षित हैं। यजमान और ब्राह्मण मिलकर कुल सत्तरह लोग होते हैं। किसी वेदग्रन्थ में देखा जाता है कि - 'सदस्य' - नामक पुरोहित सत्तरह संख्या का परिपूरक होता है। यज्ञ के प्रथम दिन ही यजमान पुरोहितों का अभिनन्दन करता है तथा दक्षिणा की प्रतिश्रुति देकर यज्ञ का नियोजन करता है। यह रीति ऋात्विजवरण कहलाती है। तदनन्तर दीक्षणीय-इष्टी का अनुष्ठान होता है। यजमान और उसकी पत्नी यज्ञ में दीक्षित होते हैं, इस प्रकार दीक्षा से उन दोनों का नया जन्म अर्थात् आध्यात्मिक जन्म होता है। दूसरे दिन प्रातः प्रायणीय-इष्टी का अनुष्ठान विहित है। जिससे इष्ट् यज्ञ का आरम्भ होता है वह प्रायणीय इष्टि कहलाती है। इस इष्टी में पथ्यास्वति, अग्नि, सोम, सविता, और अदिति इन पांच देवाओं का आह्वान किया जाता है। अदिति पुरोडाश तथा अन्य चार देवओं के लिए तेज घृत व आज्य आहुतित्व का विधान है। याज्ञिक परिभाषा में घृत यदि तरल हो तो वह आज्य कहा जाता है, किन्तु पीण्डिभूत हो तो घृत कहलाता है। ''हविर्विलीनमाज्यं स्याद् घनीभूतं घृतं विदुः'' यह श्रुति है। प्रायणीय इष्टी के बाद सोमलता क्रयण का अनुष्ठान देखा जाता है। यह सोमक्रय कहलाता है। दशद्रव्यों के विनिमय से किसी छोटी सोमलता का क्रय किया जाता है। वे दश द्रव्य एकवर्षीय गोवत्स, सुवर्ण, एक बकरा, एक दूध देने वाली गाय और उसका बछड़ा, एक सांड, शकट वहन के लिए एक बैल, एक छोटा सांड, एक गोवत्स, और एक वस्त्र। सोम देवताओं तथा ब्राह्मणों के राजा हैं। अतः राजकीय सम्मान सहित सोम का वहन किया जाता है। पुरोहित गणों के द्वारा चालित दो बैलों के द्वारा वाहित दो शकटों से सोम यज्ञ स्थल पर लाया जाता है। राजा सोम यजमानों के मान्य अतिथि हैं। सोम के लिए आतिथ्येष्टि नामक इष्टी का विधान है यहाँ इस इष्टी में नौ मृत्क-पाल विष्णु को उद्देश्य करके पुरोडाश को अर्पण किये जाते हैं। आतिथ्येष्टी के बाद प्रवर्ग्य नामक अनुष्ठान, और तदनन्तर उपसत्-इष्टी का अनुष्ठान किया जाता है। तीसरे दिन यज्ञ स्थल की पूर्व दिशा में प्राग्वंश-नाम का महावेदी का निर्माण किया जाता है। चौथे दिन निरूठ पशुबन्धयाग की प्रक्रियानुसार अग्नि और सोम को उद्देश्य करके एक पशुयाग विहित है। इस दिन दक्षिणस्थ दिशा में हविर्विधन वेदी में सोम ले जाया जाता है। यह अनुष्ठान हविर्विधन प्रणयन कहलाता है। माध्यन्दिन सवन में पशुमांस और पुरोडाश की आहुति निर्दिष्ट है, सायन्तन अर्थात् तीसरेसवन में पशु के नाना-अङ्ग आहुति

के रूप में दिए जाते हैं। एतदनन्तर पत्नीसंयाज अनुष्ठित है। पुरोहित इस दिन प्रत्यूषा पूत सलिल में अवगाहन करके सोम सवन करते हैं। विहङ्ग काकली के आरम्भ से पूर्व होता प्रातः अनुवाक पढ़ता है। एक प्रस्तर खण्ड पर सोमलता को स्थापित करके उसके ऊपर 'वसतीवरी' नामक जल का सिञ्च्न करते हैं। दूसरे पत्थर पर सोमलता के पेषण से रस निकाला जाता है। ग्रह नामक पात्र में निष्काशित सोमरस स्थापित किया जाता है, बकरे के चर्म से निर्मित 'दशापवित्र' नामक तित उसे उसका परिशोधन किया जाता है। द्रोणकलश नामक पात्र में विशुद्ध रस स्थापित किया जाता है। प्रत्येक दिन तीन बार सोमरस के निष्काशन का विधान है, प्रातः मध्याह्यण और सायंकाल। इन तीनों सवनों का नाम यथाक्रम प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन, तृतीयसवन है। आहुति के अवशिष्ट सोमरस का चमस से पुरोहितगण और यजमान को पान कराया जाता है। माध्यन्दिन सवन के बाद पुरोहितगण को दक्षिणा दी जाती है। गौ, अश्व, गधा, बकरा, भैसा, तिल, दाल मांस धन्य और जौ दक्षिणा के रूप में दीये जाते हैं। तृतीयसवन के बाद अवभृथ स्नान का अनुष्ठान किया जाता है। और यह अनुष्ठान अवभृथ-इष्टिनाम से जाना जाता है। यजमान और अन्य सभी पुरोहित अवभृथ स्नान के लिए जलाशय को जाते हैं। यह अवभृथ-इष्टि ही अग्निष्टोम का अन्तिम अनुष्ठान है। वरुण और अग्नि इसके इष्ट देवता हैं। चार प्रयाजों और दो अनुयाजों का अनुष्ठान विहित है। वरुण को उद्देश्य करके एक पुरोडाश अर्पण करते हैं। अवभृथ-इष्टी में सभी आहुतियाँ जल में ही दी जाती हैं, न की अग्नि में। यजमान अवगाहन रत पुरोहितों के शिर पर जल सिञ्चता है। दीक्षणीय-इष्टिकाल में यजमान और उसकी पत्नी पांच दिन तक परिधृत वस्त्र अवभृथ स्नान के अनन्तर छोड़ कर उन्नेता नामक पुरोहित द्वारा प्रदत्त नवीन वस्त्र का परिधान करते हैं। जलाशय से यज्ञ स्थल की और प्रत्यागमन के समय में यजमान उदयनीय नामक अन्तिम अनुष्ठान का आचरण करता है। उदयनीय-इष्टी में दूध-मधु-दही-शर्करा-आदि के मिश्रण से निर्मित चरु आहुति के रूपमें दी जाती है।

पाठगत प्रश्न

656. अग्निष्टोम का दूसरा नाम क्या है?

657. अग्निष्टोम में मुख्य आहुति कौन सी है?

658. किस ब्राह्मण में अग्निष्टोम का विवरण विस्तृत रूप से है?

659. देवता और ब्राह्मणों का राजा कौन है?

660. याज्ञिक परिभाषा में द्रुत घृत का क्या नाम?

661. सोमयाग के लिए कितने दिन अपेक्षित हैं?

662. प्रतिदिन कितनी बार सोमरस के निष्काशन का विधान है?

663. अग्निष्टोम का अन्तिम अनुष्ठान क्या है?

टिप्पणी

6.1.5 सत्र

हमारी लौकिक संस्कृती में बहुत से याग हमारे द्वारा परिलक्षित तथा पालित हैं। वस्तुत: तो वैदिकों के लिए याग बहुत पुण्य प्रदायक हैं। हम यहाँ बहुत से यागों के विषय में जान सकते हैं। हम जान सकते हैं कि कौन सा याग कितने दिनों में समाप्त होता है, किस प्रकार उन यागों का अनुष्ठान करना चाहिए इत्यादि।

सत्र याग की प्रकृति गवामयन नामक यज्ञ है। गवामयन याग सोमयाग के अन्तर्गत आता है। अत: गवामयन की प्रकृति अग्निष्टोम है। सत्र और गवामयन के मध्य श्रेणी विन्यास पर्यालोचना की जाती है। अत: कहा जाता है कि – यज्ञ को जातिगत दृष्टी से देखें तो गवामयन याग सोमयाग के अन्तर्गत आता है परन्तु काल की दृष्टी से उनके स्वरूप वश श्रेणी विन्यास किया जाता है। जो याग एक दिन समाप्त होता है वह एकाहयाग कहलाता है। जो याग एकाधिक दिवसीय अथवा बारह दिनों से कम दिनों में सम्पन्न होते हैं वे अहीनयाग होते हैं। बारह दिनों से अधिक दिन जिस याग में लगते हैं वह सत्रयाग कहलाता है। सामवेद के पञ्चविंश ब्राह्मण में विविध सत्र याग की विधि और अनुष्ठान का स्वरूप वर्णित है। गवामयन याग के सम्पादन के लिए एक वत्सर अपेक्षित है। अत: गवामयन याग सत्रयाग के अन्तर्गत आता है। सत्रयाग तीन भागों में विभक्त है – प्रथमार्ध में 180 दिन, द्वितीयार्ध में 180 दिन और तृतीयार्ध में 180 दिनों की अपेक्षा है। सौकर्य के लिए गवामयन याग के अन्तर्गत यागों के अनुष्ठान काल आदि की सूची नीचे उपस्थापित है –

	याग का नाम	**अनुष्ठानकाल-दिनसंख्या**
प्रथम से छह मास में	अतिरात्रयाग	1
	चतुर्विंशस्तोमयुक्त-उक्थ्य	1
	चत्वार: अभिप्लवषडह: (4*6=24) एक: पृष्ठ्यषडह: (1*6=1) 24+6=30(पञ्चकृत्व: आहुति: = 30*5= 150	150
	त्रय: अभिप्लवषडह: (3*6)	18
	एक: पृष्ठ्यषडह: (1*6)	6
	अभिजित्	1
	त्रय: स्वरसाम:	3
	कुल दिवस	- 180

	विषुवदिवसः (एकविंशयागः)	1
	त्रयः स्वरसामः	3
	विश्वजित्	1
	एकः पृष्ठ्यषडहः	6
	त्रयः अभिप्लवषडहः (3*6)	16
शेष मास में	एकः पृष्ठ्यषडहः (1*6=6) चत्वारः अभिप्लवषडहः (4*6 = 24) 24+6=30 (चतुःकृत्वः आहुतिः = 30*4 = 120	120
	त्रयः अभिप्लवषडहः	18
	एकः गोष्टोमः एकः आयुष्टोमश्च	2
	दशरात्रः	10
	महाव्रतः	1
	अतिरात्रः	1
	सम्पूर्ण दिवस –	180
	महायोग– 180+1+180	361

इस सूची से स्पष्ट ही ज्ञान होता है कि आदि 180 दिनों और अन्तिम 180 दिनों के अनुष्ठान में विपरीतानुक्रम का अनुसरण किया जाता है।

आदि के 180 दिनों के अनुष्ठान में प्रथमदिन में अतिरात्र और अन्तिम दिन में स्वर साम विहित हैं परन्तु अन्तिम 180 दिनों के अनुष्ठान में प्रथम दिन स्वर साम और अन्तिम दिन में अतिरात्र विहित है। अतः विपरीत अनुक्रमानुसरण वश दो की दर्पण प्रतिविम्ब से तुलना की जाती है। उपर्युक्त आवली में दोनों प्रकारों के षडह का उल्लेख दिखाई देता है, अभिप्लव षडह और पृष्ठ्य षडह। षडह याग छह दिनों में निष्पन्न होने वाला याग है। अभिप्लव षडह के छः दिन –

पहले दिन – ज्योतिष्टोम।

दूसरे दिन – गोष्टोम।

तीसरे दिन – आयुष्टोम।

चौथे दिन – गोष्टोम।

पांचवे दिन - आयुष्टोम।

छठे दिन - ज्योतिष्टोम।

अभिप्लव षडह के प्रथमदिन तथा अन्तिम दिन ज्योतिष्टोम याग का विधान है। अतः कहा भी है - ''उभयतो ज्योतिरभिप्लव षडहः।'' दोनों ज्योतिष्टोम यागों के मध्यस्थ दिन उक्थ्यनाम से जाने जाते हैं। परन्तु पृष्ठ्य षडह के प्रथमदिन ज्योतिष्टोम याग होने पर भी अन्तिमदिन उक्थ्ययाग विहित होता है, इस दिन ज्योतिष्टोम याग नहीं होता है। गवामयन यज्ञ की अनुष्ठानावली और काल विभाग अच्छी तरह से परिलक्षित किये जाये तो ज्ञात होता है कि सूर्य की वार्षिकगति से इसका सौसादृश्य है। सम्पूर्ण याग दो विभाग में विभक्त है। और प्रतिभाग के अनुष्ठान काल में छः माह लगते हैं प्रतिमास में तीस दिनों का अनुष्ठान भी विहित है। दोनों भागों का मध्यस्थ विषुव दिवस है। आदित्य की वार्षिक गति के दोनों भागों में भी विपरीत क्रम दिखता है। सूर्य के उत्तरायण में होने से दिन के स्थिति काल की वृद्धि होती है, दक्षिणायन में दिन के स्थिति काल का ह्यासहोता है। यह वृद्धि ह्रास समानानुपात से ही होते हैं।

गवामयन याग सोमयाग के अन्तर्गत आता है अतः सोमयाग की प्रकृति अग्निष्टोम है। इसलिए दोनों यागों के समान संख्यक पुरोहित और समानाहुति द्रव्य प्रयुक्त होते हैं। 360 दिनों से अधिक दिनों में निष्पाद्य सभी सत्र यागों की प्रकृति गवामयन याग है और 360 दिन से कम दिनों में निष्पाद्य सकल सत्र यागों की प्रकृति द्वादशाहनामक याग है।

पाठगत प्रश्न

664. सत्रयाग की क्या प्रकृति है?
665. गवामयन याग किसके अन्तर्गत आता है?
666. जो याग एक ही दिन में समाप्त हो जाते है उनके नाम लिखो?
667. जो याग एक से अधिक दिन तक किन्तु बारह दिवसों से कम दिनों तक है उसका क्या नाम है?
668. बारह दिनों से अधिक दिन जिस याग में अपेक्षित हैं, उस याग का क्या नाम है?

पाठसार

दूसरा एक याग गवामयन याग है। जो सत्रयाग की प्रकृति है। यह गवामयन याग सोमयाग के अन्तर्गत आता है। इस कारण गवामयन याग की प्रकृति अग्निष्टोम है। एक ही दिनमें सम्पन्न याग एकाह याग कहलाता है। बारह दिनमें सम्पन्न याग अहीन याग कहाता है। उससे अधिक दिनों में सम्पन्न याग सत्र याग होता है। गवामयन याग में अनुष्ठानावली

का काल विभाग के साथ सूर्य का वार्षिकगत सादृश्य है। सोमयाग की प्रकृति अग्निष्टोम है अतः दोनों के समान संख्यक पुरोहित समानाहुति द्रव्य प्रयोजन होते हैं। 360 दिनों से अधिक दिनों में जो याग सम्पादित होते हैं उन यागों की प्रकृति गवामयन याग होता है। और 360 दिनों से कम दिनों में जो याग निष्पन्न होते है उनकी प्रकृति द्वादशाहनामक याग है। इस प्रकार यहाँ संक्षेप से सोम-सत्र-पशु-आदि और कुछ याग विस्तार से वर्णित हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक याग हैं। उनका विस्तार के भय से यहाँ वर्णन नहीं किया जा सका। ऐसे कुछ याग वैदिक काल में आर्यों के द्वारा अनुष्ठीत होते थे, परन्तु आज काल के ग्रास से प्रायः बहुत से लुप्त हो गये। तथापि अभी भी ब्राह्मणों द्वारा ये याग बहुत सी जगह किये जाते हैं। हमें वैदिक रीति की अवश्य ही रक्षा करनी चाहिए।

पाठान्त प्रश्न

669. याग के विषय में विस्तार से व्याख्या लिखो?

670. अग्निष्टोम याग के विषय में संक्षेप से आलोचना करो?

671. सोमयाग में पांच दिनों में अनुष्ठित अनुष्ठानों का संक्षेप से विविरण लिखो?

672. सोमरस के विषय में संक्षिप्त टिप्पणी लिखो?

673. सोमयाग में पाँच दिनों में विहित अनुष्ठान का विवरण लिखो?

674. इष्टियाग कब-कब अनुष्ठीत होते हैं?

675. तीन आहुतियाँ किनको दी जाती हैं?

676. इष्टियाग के अन्तमें पुरोहित क्या करते हैं?

677. इष्टियाग किनके लिए नित्य है और किनके लिए काम्य है?

678. इष्टियाग के काम्यानुष्ठान का क्या-क्या वैशिष्टय है?

679. होम की दर्वी होम यह अभिध कैसे दी गई?

680. होमयाग में किस समय आहुति दी जाती है?

681. होमयाग की आहुति के प्रदान के विषय में कैसी मति होती है।

682. अस्वस्थ होने पर ब्राह्मण और यजमान क्या करें?

683. अग्निहोत्र विधी में अविवाहित तथा विपत्नीक को क्या करना चाहिए?

टिप्पणी

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-1

684. दर्वीहोम।

685. अग्निहोत्र।

686. ब्राह्मणों का।

687. सपत्नीकों का।

688. पुनर्विवाह।

उत्तर-2

689. दर्शपूर्णमास।

690. सूर्येन्दुसङ्गम।

691. होता, अधवर्यु, अग्नीध्र, और ब्रह्मा।

692. ब्रह्मा।

693. ईडाभक्षण।

उत्तर-3

694. दैक्ष अथवा प्राजापत्य।

695. पशु।

696. प्रजापति, सूर्य अथवा इन्द्र, और अग्नि

697. अधवर्यु, प्रतिप्रस्थाता, होता, मैत्रावरुण, अग्नि और ब्रह्मा।

698. पलाश खदिर विल्व रोहितक इन चार वृक्षों में से किसी की भी।

उत्तर-4

699. ज्योतिष्टोम।

700. सोमरस।

701. ऐतरेय ब्राह्मण में।

702. सोम।

703. आज्य।

704. पाँच।

705. तीन बार।

706. अवभृथ-इष्टि

उत्तर-5

707. गवामयन नामक यज्ञ।

708. सोमयाग में।

709. एकाहयाग।

710. अहीनयाग।

711. सत्रयाग।

छठा पाठ समाप्त

7

वैदिक देवता

प्रस्तावना

ब्राह्मण वेदविधि का अनुसरण करके यज्ञादि करते हैं, और उससे स्वर्गादि प्राप्ति, मानवों के अच्छे जीवन तथा प्राकृतिक दुर्योग आदि से स्वयं की तथा दुसरे की रक्षा, इत्यादि रूप फल प्राप्त करते हैं। और वह फल देवों की सन्तुष्टी के लिए देव ही पाते हैं। अत: वेदोक्त कर्म का लक्ष्य देवों को सन्तुष्टि प्रदान करना है। कौन देव? इस विषय में इस पाठ में विस्तार से आलोचना प्रस्तुत है। देवों के स्थान भेद से तथा काल भेद से भु, अन्तरीक्ष तथा द्युलोक के देव होते है इसका विवरण इस पाठ में प्राप्त होता है। देवों में कौन मूल है इस विषय में यास्क और कात्यायन ने अपने अपने मत दिए है। वे इस अध्याय में बताए जाएंगे। देव साकार है या निराकार इस विषय में पण्डितों के कुछ अभिप्राय है, वे भी यहाँ बताए गये है। कुछ मुख्य देव हैं यथा– इन्द्र, अग्नि, रुद्र, वरुण इत्यादि। और पाठान्त में इन देवों के स्वरूप विषय में संक्षेप में आप जान सकेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे–

- देवताओं का सामान्य परिचय जान पाने में;
- देवताओं का विभाजन जान पाने में;
- देवता विषय में यास्क मत और कात्यायन मत जान पाने में;
- देवता के साकार चिन्तन कर पाने में।

- इन्द्र का स्वरूप जान पाने में;
- अग्नि के स्वरूप को जान पाने में;
- वरुण का स्वरूप जान पाने में;
- अश्विन का स्वरूप तथा रुद्र का स्वरूप को जान पाने में।

7.1 देवताओं का सामान्य परिचय

7.1.1 देवता पद का निर्वचन

दिवादिगणीय दिव्-धातु से अच्प्रत्यय होने पर देवः ऐसा रूप सिद्ध होता है। दीव्यति प्रकाशते इति देवः। दिव्-धातु के क्रीडाविजिगीषादि बहुत अर्थ है। यहाँ द्युति अर्थ वाली या कान्ति अर्थ वाली ग्रहण की है। देव शब्द से तल् प्रत्यय करने पर देवता बनता है। देव और देवता शब्द दोनों पर्याय हैं।

देव शब्द के निर्वचन के प्रसङ्ग में निरुक्तकार यास्काचार्य कहते है – ''देवो दानाद् वा दीपनाद् वा द्योतनाद् वा भवति'' इति। अर्थात् जो दान करता है, जो चमकता है और जो अन्य को प्रकाशित करता है वह देव है। यज्ञादि में वेदमन्त्रों से देवों की स्तुति की जाती है। लेकिन उन देवों द्वारा यजमान की अभीष्ट की सिद्धि होती है। इस प्रकार से देवकामना को पूरा करने वाले हैं। मन्त्रों के देव चैतन्य स्वरूप है। देवों का प्रकृत स्वरूप ब्रह्म ही है और ब्रह्म स्वयं प्रकाश स्वरूप है। वो ब्रह्म एक ही है तथ भिन्न रूप से प्रकाशित होता है। कहा भी है – **''एकं सद्विप्रा बहुध वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहु:''** इति। और उसके प्रकाश से ही ये समस्त जगत प्रकाशमान है। अतः द्योतनात् देवः ये सिद्ध हो जाता है।

वेद में बहुत से देवों के नाम मिलते हैं। वैदिक साहित्य में प्रधान रूप से दो ग्रन्थों में वेद के देवता तत्व का प्रतिपादन करते हैं। एक तो शौनक द्वारा रचित बृहद्देवता ग्रन्थ, और दूसरा यास्कर्षि विरचित निरुक्त का दैवत काण्ड। वेद का प्रत्येक मन्त्र किसी देव को उद्देश्य करके ही प्रयुक्त है। अतः वेद के सही ज्ञान के लिए देवता ज्ञान आवश्यक है। बृहद्देवता में कहा है-

> **वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः।**
> **दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थ मवगच्छति॥ इति॥**

अर्थात् वेद के प्रतिमन्त्र के देवता का ज्ञान प्रयास पूर्वक अर्जित करना चाहीए। क्योंकि देवता ज्ञान होने पर ही मन्त्र का अर्थहृदयगत होता है। वेद में बहूत से देवों के तथा बहुत सी देवियों के नाम मिलते हैं। कुछ देव इस प्रकार है – अग्नि, वायु, इन्द्र, सूर्य, विष्णु, सोम, वरुण, पूषा, मरुत्, रुद्र, सविता, अर्यमा, अपान्नपात्, अश्विन, आदित्य, द्यौ,

ऋभु, यम आदि अनेक है। कुछ देवियाँ इस प्रकार है - वाक्, उषा, अदिति, रात्रि, पृथ्वी, सरस्वती, श्री, धिषणा जैसी अनेक है। कुछ देवता के नाम द्वन्द्व समास में सर्वदा कीर्तित है यथा - मित्रावरुणौ, इन्द्राग्नी, सूर्याचन्द्रमसौ, द्यावापृथिव्यौ, अग्नीषोमौ इत्यादि। अश्विन देवता सदा युगलरूप में तथा यमजरूप मर कल्पित है, अतः अश्विनौ ये द्विवचन प्रयोग दिखता है। प्राचीन रोम के क्यास्टर (Castor) तथा पोलुक्स् (Pollux) जिस प्रकार युगल है वैसे ही अश्विन देव भी युगल रूप में स्वीकृत है। विश्वे देवाः ये सर्वदा बहुवचनान्त रूप में प्रयुक्त है, क्योंकि ये गोष्ठी वाचक और बहुदेवता वाचक शब्द है।

पाठगत प्रश्न

712. बृहद्देवता-ग्रन्थ किसकी रचना है ?

713. कुछ देवों के नाम लिखो।

714. कुछ देवियों के नाम लिखो।

715. द्वन्द्व समास से कौनसे देव कहलाते हैं ?

716. विश्वेदेवाः यहां बहुवचन क्यों है ?

7.2 देवताओं का विभाजन

निरुक्तकार यास्क के मत में वेद के देव स्थान भेद और काल भेद से तीन प्रकार में विभक्त है। यथा भूलोक के देव, अन्तरिक्ष लोक के देव और द्युलोक के देव। वहां अग्नि, आप, पृथ्वी, सोम भूलोक के देव है। इन्द्र, मरुत्, अपान्नपात् (विद्युत्), पर्जन्य जैसे अनेक अन्तरिक्ष के देव है। सूर्य मित्र, वरुण, द्यु, पूषा, सविता, आदित्य, अश्विनी कुमार, ऊषा, रात्रि इत्यादि देव द्युलोक के हैं। उन तीनो में प्रत्येक लोक का एक देव प्रधान है और अन्य उसकी भिन्न अभिव्यक्तियां है। भूलोक के देवों में **अग्निः**, अन्तरिक्ष के इन्द्र और द्युलोक के सूर्य ये मुख्य देव हैं। यास्क ने भी कहा है - "तिस्र एवं देवता इति नैरुक्ता अग्निः पृथ्वी स्थानो वायुर्वेन्द्रो वाऽन्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः" इति। इन तीनों देव के भिन्न कर्म और भिन्न विशेषण हैं अन्य देव के नाम करण के अनुसार प्रयोजन है। अग्नि के विशेषण भेद से या कार्य भेद से वैश्वानर, जातवेदा, नाराशंस, सुसमिद्ध, तदनुपात् इत्यादि नाम, और भी वायु से मातरिश्वा, इन्द्र, रुद्र, अपान्नपात् अनेक देवों के नाम तथा सूर्य से आदित्य, विष्णु, मित्र, वरुण, पूषा, भग, ऊषा, अश्विनीकुमार, सविता ये नाम उत्पन्न हुए। यास्क का ये मत कपोल कल्पित नहीं है, अपितु ऋग्वेद में इस मत का समर्थन किया है, "सूर्यो नो दिवस्पातु वातोऽन्तरिक्षादग्निर्नः पार्थिवेभ्यः" (10.151.1) इति। ऋग्वेद में सभी देव के नाम नहीं उल्लेखित है, केवल तीन नाम उल्लेखन से उनका मुख्यत्व प्रतिपादित होता है। देवों का निवास स्थल पृथ्वी, अन्तरिक्ष

द्युलोक यथाक्रम से भूः, भुवः, स्वः इन नामों से जाने जाते है। वैदिक ग्रन्थ में देवों की संख्या तैंतिस 33 स्वीकृत है। वहां 11 भूलोक में, 11 अन्तरिक्ष में और 11 द्युलोक में रहते है। शतपथ ब्राह्मण में भी 33 देवों को स्वीकृत किया गया है। किन्तु ऋक्संहिता में 3.1.9 तथा 10.52.6 संख्या के मन्त्र में 3339 देव है ऐसा कहा गया है। पौराणिक काल में ये संख्या 33 करोड़ तक हो गई थी। मुख्य अग्नि वायु और सूर्य में अग्नि निकटतम (अग्निर्वै देवानामवमः), तथा सूर्य अधिक दूर (सूर्यो देवानां परमः)। अन्य देवों का इन्ही दोनों में अन्तर्भाव हो जाता है। सूक्ष्म विचार से ज्ञात होता है कि वे तीनों देव परमात्मा की ही तीन अभिव्यक्तियां है। देवता के विचार में निरुक्त में यास्क ने कहा है कि -देवतायाः एक आत्मा बहुध स्तूयते (निरुक्ते 7-4)'। जैसे एक ही देह के भिन्न-भिन्न अङ्ग होते है वैसे ही एक ही अङ्ग आत्मा के वे भिन्न देव अङ्ग स्वरूप होते हैं – एक ही आत्मा के अन्य देव प्रत्यङ्ग होते हैं। वेद की संहिता में भी देवों का स्वरूप स्पष्ट बताया गया है–

एकं सद्विप्रा बहुध वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। (ऋ. 1.164.64)
एकं सन्तं बहुध कल्पयन्ति। (ऋ. 10.114.5)

ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के 55 वें सूक्त के प्रत्येक मन्त्र के अन्तिम पाद में -'महद्देवानामसुरस्त्वमेकम्' ऐसा कहा गया है। असून् प्राणान् राति ददाति इति असुरः, प्राण को देने वाला वह परमात्मा ही है। ऋग्वेद के अपर मन्त्र में कहा है – 'एकं वै इदं विभु बभूव सर्वम्' इति। परमात्मा से ही देवों की उत्पत्ति हुई है- शुक्लयजुर्वेद में स्पष्ट शब्दों में कहा है – 'एतस्यैव सा विसृष्टिरेष उ ह्येव सर्वे देवाः इति। इस प्रकार ये सब देव एक ही परमात्मा के अंश है, ऐसा ज्ञान होता है।

वेद में वर्णित देव किसी न किसी पार्थिव वस्तु या पार्थिव प्राकृतिक पदार्थ के प्रतीक है। प्रत्येक पार्थिव पदार्थ की चौतन्य सत्ता या अधिष्ठाता कोई न कोई देव होता है। यथा 'यमान पार्थिव अग्नि का चैतन्यमयी देवता अग्नि, चक्षुर्ग्राह्य सूर्य का अधिष्ठाता सूर्यदेव, आदित्यदेव, या सविता हैं। एवं पार्थिव पवन वायु, झञ्झावात आदि के देव मरुत हैं, विद्युत के अपान्नपात्, मेघ के पर्जन्य हैं। सूर्य का गगन में स्थान भेद से तथा पृथ्वी पर आवर्तन होने से, स्थान भेद से और काल भेद से सूर्य के मित्र-वरुण-सवितृ-भग-पूषा-आदित्यादि नाम होते है। वज्र के देव रुद्र, इस विषय में वेद में बहुत वर्णन प्राप्त होता है। वज्र से सभी जीव डरते हैं, शिर पर वज्राघात से मृत्यु ही हो जाती है। अत एव रुद्र का मन्त्र में सदैव विद्रूप और संहारक रूप में भीषण वर्णन मिलता है। रुद्र की शिवमूर्ति ऋग्वेद में नही है। शुक्लयजुर्वेद में रुद्राष्टाध्ययी में रुद्र का भीषण रूप तथा कल्याण रूप दोनों को वर्णित किया गया है। 'घोरञ्च मे घोरतरञ्च मे' यहाँ भीषणत्व तथा 'शिवाय च शिवतराय च' यहां कल्याणत्व घोषित है।

पाठगत प्रश्न

717. भूलोक के देव कौन है ?

718. अन्तरिक्ष के देव कौन है ?

719. द्युलोक के देव कौन है ?

720. असुर शब्द का अर्थ क्या है ?

721. देवों का निवास स्थान विषय में निरुक्त में क्या कहा गया है ?

722. वायु कौन से देव उत्पन्न करते है ?

723. अग्नि को निकटत्व कहने वाली श्रुति कौन सी है ?

724. वज्र के देव कौन है ?

725. रुद्र का कल्याणत्व किस श्रुति से प्रतीत होता है ?

7.3 देवता विषय में यास्कमत और कात्यायनमत

निरुक्तकार यास्क के मत में सभी देवों का मूल **अग्निः** ही है। उनके मत का समर्थन ब्राह्मण ग्रन्थ में स्थित प्रमाण से मिलता है 'अग्निः सर्वा देवताः' इति। पार्थिवाग्नि ही अन्तरिक्ष में इन्द्ररूप में तथा विद्युद्रूप में द्युलोक में सूर्यरूप में प्रकटित होती है। द्युलोक के सभी देव सुर्य के तथा अन्तरिक्ष के सभी इन्द्र के नाना प्रकाश स्वरूप है। सूर्य और इन्द्र अग्नि के रूप भेद मात्र है। त्रिलोक के सभी देवता अग्नि के नाना अभिव्यक्ति मात्र है ऐसा मान के अग्नि एक ही देव है इसके निरूपण के लिए यास्क ने ऋग्वेदीय मन्त्र उद्घृत किया – 'तमू अकृण्वन् त्रेधा भुव' इति (10.88.10)। ये अग्नि तीन प्रकार की है अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक ये तीनों स्थान भेद से भिन्न है। बृहद्देवता ग्रन्थ में देखें तो –

इहाग्निभूतस्तु ऋषिभिर्लोके स्तुतिभिरीडितः।
जातवेदा स्तुतो मध्ये स्तुतो वैश्वानरो दिवि॥ इति॥

कात्यायन ने इस मत का समर्थन नहीं किया। 'सर्वानुक्रमणी' इस ग्रन्थ में वैदिक देवता का मूल सूर्यःया आदित्य है ऐसा कहा है। सभी देवों की उत्पत्ति का बीज सूर्य का ही लक्षण तथा वर्णन प्राप्त होता है। निःसन्देह रूप से उन्होंने स्पष्ट कहा है – 'एक एव महानात्मा वेदे स्तूयते, स सूर्य इति व्याचक्षते' इति, तथा एकैव देवता स्तूयते आदित्य इति' इति च। आदित्य के कार्य या गुणों के आधार पर देवों के नाम हुए। वैसे ही दिवस में आदित्य का नाम सूर्य, रात्री में वह अकृश्य होता है तब वह वरुण है। रात्रि

समाप्ति पर अल्प अन्धकार में ये सविता है। अन्धकार के नष्ट होने पर यह अश्विन है। सूर्योदय से पहले पूर्व दिशा रक्त वर्ण युक्त होती है तब ये उषा कहलाता है। उदित मात्र होने तक ये भग है। मध्याह्न में गगन मण्डल के मध्य भाग में जब होता है तब ये विष्णु कहलाता है - इसी प्रकार 12 आदित्य होते है। ऐतरेय ब्राह्मण में आदित्य का अस्त होना वर्णित है - 'आदित्यो वा अस्तं गच्छन् अग्नावनुप्रविशति' इति।

यहाँ यास्क और कात्यायन के मत में समन्वय प्रदर्शित किया है। यास्क के अग्नि का तथा कात्यायन के सूर्य का सकल देवतात्व परस्पर विरुद्ध होने पर भी यास्क द्वारा उनका समन्वय प्रदर्शित किया है। देवता के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि – मनुष्यों में जैसे पिता से ही पुत्र की उत्पत्ति है वैसे देवों में नहीं है। क्योंकि देव इतरेतर जन्मा तथा इतरेतर प्रकृति वाले होते है, अर्थात् परस्पर संयोग से उत्पन्न होते है। श्रुति में भी कहा है कि - 'अग्नेर्वा आदित्यो जायते' इति। अग्नि से जैसे सूर्य का जन्म वैसे ही सूर्य से आदित्य का जन्म हुआ ऐसा तात्पर्य है। पदार्थ विज्ञान की दृष्टि से भी यास्क ने ये प्रमाणित किया है - सूर्य की रश्मि काँच या मणि का भेदन कर शुष्कतृण के उपर गिरती है तो अग्नि उत्पन्न होती है। इस प्रकार सूर्य अग्नि का जनक हुआ। जैसे मिट्टी से निर्मित घट शुरई थाली आदि परस्पर भिन्न हैं परन्तु मिट्टी की दृष्टि से सभी एक ही है परन्तु देव की दृष्टि से सभी देव भिन्न हैं परन्तु एकत्व की दृष्टि से सभी में परमात्मा का स्वरूप निहित है।

पाठगत प्रश्न

726. तमू अकृण्व त्रेधा भुवे इसका क्या तात्पर्य है ?

727. बृह देवता में अग्नि का निवास त्रय सूचक श्लोक कौन सा है ?

728. अग्नेर्वा आदित्यो जायते इससे क्या ज्ञात होता है ?

7.4 देवता का साकार और निराकार

देव साकार है या निराकार, शरीर धारी है या अशारीरक इस विषय में नाना दर्शनों में नानानिरूक्तकारों ने नाना मत बताएं हैं। वैदिक काल में भी इसमे मत भेद था आलोचना द्वारा साकार और निराकार का समन्वय प्रदर्शित किया गया है। यास्क ने साकार या शारीरिक इस अर्थ में पुरुषविध शब्द और निराकार या अशारिक इस अर्थ में अपुरुषविध शब्द प्रयुक्त किया है। वहां देव: पुरुषविध: साकार: इस विषय में युक्त से आलोचना करते है -

1) देवों का शरीर पुरुष के शरीर के समान नही होता है तो कर्मादि भी नही होने चाहिए। तब उनकी स्तुति भी उन्माद प्रलापवद् ही होनी चाहिए। और फिर मन्त्र

भी निरर्थक होने चाहिए। और भी ऋग्वेद में बहुत से संवाद सूक्त हैं यथा सरमापणि संवाद, ऊर्वशी पुरुरवा संवाद, यमयमी संवाद इत्यादि। सूर्य सूक्त में सूर्य के विवाह में बहूत से देवों का आवाह्न दिखाई देता है। इस प्रकार देवों का शरीर चैतन्य नही होता है तो आलाप, विवाह या प्रणय कथा की प्रासंगिकता कैसे हो सकती है ?

2) वेदमन्त्रों में मनुष्य में समान देव के भी पाणि-पाद या नयन -कर्ण इत्यादि सम्यक् वर्णित हैं। जैसे- शुक्लयजुर्वेदीय पुरुषसूक्त में वेद पुरुष का बड़ा ही विस्तृत वर्णन है।

3) वेद में देवों के अश्व, रथ, वज्र, गृह, पत्नी, दुर्ग आदि का भी वर्णन प्रमाणित करता है कि मनुष्य के समान देव भी शरीरधारी हैं। इन्द्र और सूर्य में अश्व का, रूद्र का वज्र निर्माण, इन्द्र का वज्र प्रयोग, अग्नि इन्द्र सविता देव की रथ की कहानियाँ वेद में बहुत प्राप्त होती है। अग्नि इन्द्र रुद्र का यथा क्रम अग्नायी-इन्द्राणी-रुद्राणी स्त्रीयों का भी वर्णन प्राप्त होता है।

4) मनुष्य जैसे कर्मादि करते हैं, वेद में देवों के भी कर्मादि वर्णित हैं। जैसे इन्द्र सोम रस पीते है, युद्ध करते हैं, वृत्र को मरते हैं और अश्व चलाते हैं। अग्नि यज्ञ की हवि ग्रहण करते हैं, मरुत वंशीं बजते हैं, रुद्र भीषण गर्जन करते हैं, विष्णु विशाल नेत्रों से समग्र जगत् का निरीक्षण करते हैं, ऐसी कथाएं वेदों में मिलती हैं।

इस प्रकार कुछ लोग इस युक्ति चतुष्टय से देवों का साकारत्व प्रतिपादित करते है और कुछ इन युक्ती का खण्डन करके देवों का निराकारत्व प्रमाणित करते हैं। और वे युक्तियाँ इस प्रकार हैं -

1) मनुष्यों के शरीर प्रत्यक्ष दृश्य हैं, अग्नि वायु सूर्य आदि का शरीर प्रत्यक्ष प्रमाण से नहीं सिद्ध है, इस कारण उनका साकारत्व नहीं स्वीकार ने योग्य है।

2) स्तुति कृत उसी से देवों के शरीर होते हैं ये कारण अयुक्त हैं। क्योंकि वेद में अचेतनों की भी स्तुति विंहित है। जैसे - अक्षक्रीडा, ओषधिवृक्ष, पत्थर, उलूखमूषल इत्यादि का वर्णन प्राप्त है।

3) देव कर्म करते हैं इससे वे पुरुषवत् है ये युक्ति सही नहीं है क्योंकि अचेतन भी कर्म करते हैं ऐसा वेद में प्राप्त होता है। जैसे सोमरस के निष्कासन के लिए जो पत्थर के टुकड़े थे उनके लिए कहा गया है -'अभिक्रन्दति हरितेभिरासभिः' इति। एक अन्य जगह भी कहा है -'होतुश्चित् पूर्वं हविरद्यमाशते' यहां पत्थर के टुकड़े होता से पहले ही हवि का भोग करते है, ऐसा कहा है।

4) पुरुष भोग्य द्रव्य ही देवों के साकारत्व को प्रमाणित नही कर सकते हैं, क्योंकि वेद में अपुरुषविध अशरीरि भी पदार्थ में भोग्यद्रव्यों का प्रयोग करते दिखते है, यथा 'सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्मिन्' यहाँ नदी और रथ योजना की कथा कही गई है।

जैमिनी के मत में तो देवों का अलग रूप नहीं है। मन्त्रमयी देवता हैं। मन्त्र को छोड़कर देवों की पृथक् सत्ता नहीं है। यज्ञादि क्रिया में जब मन्त्र उच्चारित होते हैं तब मन्त्ररूप में देवों का आविर्भाव होता है। इस मत के समर्थन करते हुए उक्ति भी कही गई है की देवों का पृथक रूप से शरीर होता है यदि एक ही क्षण में भिन्न-भिन्न यज्यों में एक साथ सम्पूर्ण यज्ञ में उपस्थिति सम्भव नहीं है। इसलिए उसे मन्त्रमयी स्वीकार किया है। इससे यह पता चलता है की उनका मन्त्रोच्चारण काल में ही आविर्भाव होता है। महाभाष्यकार भी इसीलिये कहते है - 'एक इन्द्रशब्दः क्रतुशते प्रादुर्भूतः' इति। वेदान्त दर्शन में वेदव्यास ने तथा पूर्वमीमांसास्थ जैमिनि इससे समर्थित नहीं हैं। शङ्कराचार्य भी ब्रह्म सूत्र भाष्य में वेदव्यास को समर्थन देते है।

पाठगत प्रश्न

729. साकार शब्द के दो पर्यायवाची लिखो।

730. कुछ संवाद सूक्त के नाम लिखो।

731. 'अचेतनानां स्तुतिः' विहिता इसका क्या तात्पर्य है ?

732. देवों के साकारत्व के विषय में जैमिनि का क्या मत है ?

7.5 इन्द्र का स्वरूप

इदि-धातु से निष्पन्न इन्द्र शब्द परमेश्वर वाचक है। इन्द्र सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, शासक, स्थावर और जङ्गम के तथा चेतन अचेतन पदार्थ के नियन्त्रक हैं। वेद के देवों में इन्द्र का स्थान महत् है। गुरुत्व, महिमाशाली, शौर्य और वीर्य और सूक्त संख्या में इन्द्र अद्वितीय हैं। ऋग्वेद में प्रायःदो सौ सूक्तों द्वारा इन्द्र का आह्वान किया है। उसका रूप वर्णन भी ऋषियों ने किया। वो अधार ओष्ठ से चारु, नासिका से उन्नत, और वर्ण से उज्ज्वल है। वैदिक काल में आर्यों की शरीराकृति कैसी थी इस विषय में विद्वान् इन्द्र का रूप वर्णन दिखाकर ही सिद्धान्तमत को पुष्ट करते है। कपिशवर्ण से युक्त अश्व उसके रथ को ले जाते हैं। त्वष्टा एक सहस्र सुवर्ण वज्रों को बनाकर उसको समर्पित करता है। उन वज्र राशि से उसने असुरों का नाश किया।

सम्वर-अहि-वृत्र-अर्वुद-विश्वरूप आदि असुरों का इन्द्र ने नाश किया। वृत्र ने जल को रोका इसलिए इन्द्र में उसका नाश कर धरा पर जल गिराया। इन्द्र स्थल पर अश्व से तथा नदी में नाव से चलते हैं। उसके शत्रुओं द्वारा अजेय व् नए-नए दुर्गों में कुछ लौह से, और कुछ पत्थरों से निर्मित थे। ये देवों के अधिपतित्व का वर्णन है। इन्द्र सोम को आनन्द से पीता है सभी सूक्त में कीर्ति व्याप्त है। उसकी पत्नी इन्द्राणी या शची है। और वह नाना वर्ण से युक्त परिधान धारण करती है। इद्र का अन्य एक नाम शतक्रतु

भी है। क्रतु शब्द का अर्थ यज्ञ या कर्म है। शतक्रतु इसका अर्थ अनन्त कर्म कर्ता हुआ। इन्द्र युद्ध जय, असुर वध, दुष्टों का नाशक, जल निष्कासन इत्यादि कर्म करता था। बलवीर्य के सभी सर्व कर्म इन्द्र के ही है। और कहते है –'या च का च बलकृतिः इन्द्रकर्मैव तत्' इति। वृत्र का हन्ता वह ही है, अतः वृत्रघ्न नाम भी है। उपासकों के प्रति वह दयालु है तथा उनको बहुत धन देता है। अतः मघवा नाम भी है।

इन्द्र के सभी सूक्त त्रिष्टुप में ही हैं। त्रिष्टुप्छन्द, अन्तरिक्ष लोक, माध्यन्दिन सोम सवन, ग्रीष्मऋतु, सोमपान, वीरत्व पूर्ण कर्म, असुर वध ये सब विषय इन्द्र के साथ नित्य सम्बद्ध है। इन्द्र का असुर वध ऐतिहासिक वृत्तान्त और प्राकृतिक विघ्न चिह्न इन विषयों में विद्वत्सभा में नाना मत है। कुछ इन्द्र का असुर वध को आर्यों द्वारा अनार्य के वध का प्रतीक कहते हैं, और कुछ सुर्य द्वारा असुरनाश भी कहते हैं। अन्य कुछ असुर के साथ मेघ का तथा इन्द्र के साथ वज्र-विद्युत्-वायु का समावेश करते है।

पाठगत प्रश्न

733. इन्द्र शब्द किस धातु से निष्पन्न है ?

734. इन्द्र के अश्व किस वर्ण के हैं ?

735. इन्द्र की पत्नी कौन है ?

736. इन्द्र का शतक्रतु नाम करण क्यों हैं ?

737. इन्द्र के स्तुतिपरक सूक्त किस छन्द में रचित है ?

738. इन्द्र का वृत्रघ्न ये नामकरण क्यों है?

739. इन्द्र को क्यों मघवा कहा जाता है ?

7.6 अग्नि स्वरूप

इन्द्र से परम तथा गुरुत्व दृष्टी में अग्नि का नाम आता है। ऋग्वेद में दो सौ सूक्त से अग्नि का आवाहन और स्तुति विहित है। उसका आनन और पृष्ठ देश घृतवर्ण से युक्त है। केशराशि स्फुलिङ्ग वर्ण युक्त है। 'मश्रु पीले रंग से युक्त है। दन्तपङ्क्ति सुवर्ण के समान चमकदार हैं। देवों में यह निकटतम हैं (अग्निर्वै देवानामवमः)। देवसाक्षात् रूप से हवि ग्रहण नहीं करते हैं, अग्नि द्वारा ही देव हवि का आस्वादन करते हैं। अतएव अग्नि को देवों का मुख कहा है (अग्निर्वै मुखं देवानाम्)। वैदिक आर्यों के गृह में गार्हपत्याग्नि होती थी। अग्नि का रथ हिरण्य वर्णीय और उज्ज्वल है। कपिश वर्णीय अश्व उसके रथ को ले जाते हैं। ये देवों का प्रतिनिधि है, पुरोवर्ती होकर देवों का आह्वान करता है, इसलिए वह पुरोहित कहलाता है। होता, अधवर्यु, पुरोहित और ब्रह्मा ये चार नाम

अग्नि को उद्देश्य करके प्रयुक्त हैं। द्युलोक-भूलोक-अन्तरिक्षलोक सर्वत्र ही इसका गमन है। ऋग्वेद के आदिसूक्त अग्निसूक्त से ही अग्नि की प्रधानता स्पष्ट हो जाती है। दो अरणि के घर्षण से अग्नि उत्पन्न होती है। इसी को ही अग्नि मन्थन कहा जाता है। अतएव दो अरणीयाँ पार्थिव अग्नि की माता-पिता कहलाती हैं। अग्नि के सभी सूक्त गायत्री छन्द में वर्णित/लिखित है।

पाठगत प्रश्न

740. अग्निमुखाः देवाः इति क्यों कहा गया है ?

741. अग्नि को पुरोहित क्यों कहा जाता है ?

742. अग्नि को उद्देश्य करके कौन सी संज्ञा प्रयुक्त होती है ?

743. ऋग्वेद का आदि सूक्त कौन सा है ?

744. अग्नि के मन्त्र कौन से छन्द में है?

7.7 वरुण का स्वरूप

ऋग्वेद के बारह सूक्तों में वरुण की स्तुति की गई है। ऋग्वेद के मुख्य देवों में से ये एक है। ये मित्र का सहचर, अतः समास प्रकरण में मित्रा-वरुणौ ये प्रयोग मिलता है। दिवसीय सूर्य का नाम मित्र है। रात्री कालीन सूर्य का नाम वरुण है। निरुक्त में वृ-धातु से वरुण शब्द निष्पन्न है। आवृणोति सतः पदार्थान् इति वरुणः। अतएव सूर्य रात्रि में भी रहता है ये आर्य जानते थे, ऐसा ज्ञात होता है, और भी ऐतरेय-कौषीतकि-पञ्च्विंशब्राह्मण में ये विषय सुस्पष्ट उल्लिखित है। वरुण नैतिकी जगत में नियम का रक्षक है। उसी के नियन्त्रण से सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रादि अपनी कक्षा में ही घूमते हैं। अतएव धृतव्रत, धर्मपति उसी की संज्ञा है। विहगऊर्ध्व को जहाँ जाते है, दिक्चक्र वाले पोत जहां जाते है, सब वह देखता है। रात्रि में चौर्य-व्यभिचारादि पाप उससे परोक्ष नहीं होते है। अतएव वरुण के तुष्ट होने पर पाप नष्ट होते हैं। अतएव उसको आर्य सम्राट् या चर कहते है।

पाठगत प्रश्न

745. वरुण शब्द किस धातु से निष्पन्न है ?

746. सूर्य का दिवस में और रात्रि में दो नाम क्या है ?

747. सूर्य चन्द्रादी को कक्ष में घुमने से कौन नियन्त्रित करता है ?

748. वरुण को चर क्यों कहा जाता है ?

टिप्पणी

7.8 रुद्र का स्वरूप

ऋग्वेद में रुद्रदेव का स्थान माहात्म्य इन्द्र-अग्नि-वरुणादि देवों की अपेक्षा बहुत न्यून है। किन्तु यजुर्वेद और अथर्ववेद में रुद्रदेव का स्थान अतीव महत्त्वपूर्ण है। यजुर्वेद में एक सम्पूर्ण अध्याय रुद्रदेव सम्बन्धि है। और वह अध्याय रुद्राध्याय कहलाता है। जन्म के बाद ये देव रोया था इसीलिये रुद्र का रुद्रत्व कारण है। और कहा भी है – ''स जात एवारोदीत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्'' इति।

यजुर्वेदीय रुद्राध्याय के अनुसार रुद्र एक बलवान् सुसज्जित योद्धा है। रुद्र के हस्त में सुवर्ण निर्मित धनुष और बाण हैं। उसका धनु सहस्र जनों को भी मारने में समर्थ है। और उसके हाथ में कृपाण है। ये सभी वज्रायुध उसके हाथ में सर्वदा सुशोभित होते है। शरीर के रक्षण के लिए उसके शिर पर छत्र रखा है और चर्मवस्त्र से आच्छादित हैं। रुद्रदेव का धनु सर्वदा ही बाण सहित ही रहता है। उसके आयुध इतने भयङ्कर हैं कि ऋषि भी इनसे अपने प्राण, पुत्र-पौत्र गो, अश्वादी प्राणियों की रक्षा के लिए सर्वदा प्रार्थना करते हैं। इसलिए यजुर्वेद में कहा है – ''मा न स्तोके तनये मा न आयुषि मा न गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः''।

ऋग्वेद में रुद्रदेव की बलशालित्व के कारण स्तुति है। ये स्वर्ग के रक्त वाराह कहलाते हैं। वह मरुतों का पिता है। रुद्र का रूप सौन्दर्य भी बहुत जगह प्राप्त होता है। साथ ही उसकी बाहू बलिष्ठ, देह आदित्य के सामान चमकती हुई, सुवर्ण निर्मित आभूषणों से भूषित उसकी देह, कनक कान्ति से युक्त जटा कलाप है। इसके त्री अम्बक अर्थात् लोचन है। अम्बकत्रय होने से इसका नाम त्र्यम्बक है। जटावत्व के कारण कपर्दी भी कहते है। ''इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने'' इति श्रुति। अनेक रूप धारण करने से रुद्र को पुरुरूपः भी कहते है।

जिस रुद्रदेव का संहारक रूप प्राप्त होता है वैसे ही उसकी शिवमूर्ति भी बहुत जगह प्राप्त होती है। वह सभी वैद्यों में श्रेष्ठ वैद्य है। ''भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि'' इति श्रुति। ऋग्वेद में भी कहा है ''शतं हिमा अशीय भेषजेभिः'' इति। अर्थात् तेरे द्वारा प्रदत्त औषध से मैं भली प्रकार सौ वर्ष तक जीवित रहूं। वेद में रुद्र को भयंकर से भयंकर कहा है तो वहीं उसे शिव से शिवतर अर्थात् कल्याणकारी भी कहा है।

पाठगत प्रश्न

749. रुद्र के रुद्रत्व का क्या कारण है ?

750. क्यों रुद्र को त्र्यम्बक कहा जाता है ?

751. किसका नाम कपर्दी है ?

752. रुद्र के भिषक्त्व अर्थात वैद्य का प्रमाण किस श्रुति में मिलता है ?

753. रुद्राध्याय किस वेद में है ?

7.9 अश्विन का स्वरूप

द्युलोक के दो देव हैं, अश्विनौ। ये परस्पर यमज या युग्मक है। अश्वाः अनयोः सन्ति इति अश्विनौ। ये दीप्तिमान और कमल मालाधारी हैं। ये अधिक मधु पीते हैं। ऋग्वेद में अश्विनों को रुद्र और सिन्धु का पुत्र कहा है। वे दोनों पूर्व में राजा थे। परंतु पुण्यकर्म से देवत्व को प्राप्त कर लिया। सूर्य कन्या सूर्य ने स्वयम्बर सभा में अश्विनौ को पति रूप में परिगृहीत किया। अश्विनों के साथ सूर्या रथ से जाती है। उसका रथ मधुमय है। उसके रथ को कभी अश्व, कभी विहङ्ग, कभी वृषभ और कभी पक्षयुक्तहय अर्थात् गरुड़ ले जाते है। उषाकाल और सूर्योदय के मध्य में अश्विन का आविर्भाव होता है। अर्थात् उषा के आगमन के बाद ये उसका अनुकरण करते हैं।

विपत्ति में प्राणियों का रक्षण उनका मुख्यकर्म है। ऐसे ही एक बार समुद्र में भुज्यु नाम के राजा का पोत भङ्ग होने पर अश्विनों की प्रार्थना की और अश्विनों ने उस राजा की प्राण रक्षा की अत्रि को तमोमयकार गृह से छुड़ाया। इसीलिये ऋग्वेद में कहा है - ''ऋषीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति'' इति। न केवल मनुष्यों को अपितु मनुष्येतर प्राणियों की भी प्राण रक्षा वो ही करते हैं ऐसे ऋग्वेद में बहुत उदाहरण प्राप्त होते हैं। ऐसे ही एक बार वृक-वर्तिका-संग्राम में वर्तिका पक्षि की वृक् से रक्षा की तब ऋग्वेद में कहा - ''आस्नो वृकस्य वर्तिकाममीके, युवं नरा नासत्यामुमुक्तम्'' इति। स्वर्ग लोक के चिकित्सक रूप में ये दोनों बहुप्रसिद्ध हैं। इन दोनों को स्ववैद्य भी कहते है। इनकी चिकित्सा से अन्धे भी दृष्टि शक्ति को प्राप्त कर लेते हैं। रोगी रोग मुक्त हो जाते हैं। अश्विनों ने ही च्यवन नाम के वृद्ध ऋषि को यौवन प्रदान किया।

पाठगत प्रश्न

754. अश्विन कौन हैं ?

755. ये अधिक क्या पीते है सोम या मधु?

756. अश्विन के पत्नी कौन है ?

757. अश्विनों का मुख्य कर्म क्या है ?

758. वृक-वर्तिका-संग्राम में अश्विनों ने किससे और किसकी रक्षा की ?

पाठसार

हमारा मानव जीवन जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र भेद से चतुर्विध होता है। वैसे ही वेदोक्त देवों का भी वर्ण भेद होता है। और कहा भी है महाभारत के शान्ति पर्व में-

आदित्याः क्षत्रियास्तेषां विशश्च मरुतस्तथा।
अश्विनौ तु स्मृतौ शूद्रौ तपस्युग्रे समास्थितौ॥
स्मृतास्त्वङ्गिरसो देवा ब्राह्मणा इति निश्चयः।
इत्येतत्सर्वदेवानां चातुर्वर्ण्यं प्रकीर्तितम्॥

वेद में प्रत्येक मन्त्र किसी न किसी देव को उद्देश्य करके ही प्रयुक्त है। वेद में अग्नि-वायु-इन्द्रादि देवों के तथा वाक्-उषा-आदित्यादि देवियों का वर्णन प्राप्त होता है। और वही भूलोक के देव में अग्नि, अन्तरीक्ष के देव इन्द्र, द्युलोक के सूर्य मुख्य देव है। यास्क मत में मुख्य देव अग्नि हैं तथा कात्यायन मत में मुख्य देव सूर्य हैं कुछ पण्डित देवों का साकारत्व तथा कुछ निराकारत्व प्रतिपादन करते हैं। वेद में मुख्यतया वर्णित इन्द्र अग्नि वरुण देवों का विस्तृत रूप से व्याख्यान प्राप्त होता है। रुद्र भी वेद में बहुत से मन्त्रों से प्रशंसित हैं और परस्पर यमज अश्विनी कुमार विपत्ति में प्राणियों की रक्षा करते हैं, उनके विषय में भी संक्षेप से ज्ञात होता है इस पाठ में।

पाठान्त प्रश्न

759. संक्षेप से देवों का विभाजन करो ?

760. वरुण का स्वरूप लिखो।

761. अग्नि का स्वरूप लिखो।

762. इन्द्र का असुरवध इससे क्या-क्या द्योतित होता है ?

763. इन्द्र का माहात्म्य वर्णन करो।

764. इन्द्र के रूप का वर्णन करो।

765. देवों का साकारत्व युक्ति पूर्वक बताओ।

766. वेदों का मन्त्रमय शरीरत्व प्रमाणित करो।

767. सूर्य के स्थान भेद से नाम कैसे भिन्न है ?

टिप्पणी

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

देवताओं का सामान्य परिचय

768. शौनक द्वारा

कुछ देव अग्नि, वायु, इन्द्र, सूर्य, विष्णु, सोम, वरुण, पूषा, मरुत्, रुद्र, सविता, अर्यमा, अपान्नपात्, अश्विन, आदित्य, द्यौ, ऋभु, यम इत्यादि।

769. कुछ देवियाँ वाक्, उषा, अदिति, रात्रि, पृथ्वी, सरस्वती, श्री, धिषणा आदि अनेक।

770. मित्रावरुणौ, इन्द्राग्नी, सूर्याचन्द्रमसौ, द्यावापृथिव्यौ, अग्नीषोमौ इत्यादय

771. गोष्ठिवाचकत्व तथा बहुदेवता वाचकत्व से

देवों का विभाजन

772. अग्नि, आप, पृथ्वी तथा सोम भूलोक के देव है और इन्द्र, मरुत्, अपान्नपात् (विद्युत्), पर्जन्य अन्तरिक्ष के देव हैं।

773. सूर्यः मित्रः, वरुणः, द्युः, पूषा, सविता, आदित्यः, अश्विनी कुमार, ऊषा, रात्रि इत्यादि देव द्युलोक के है

774. असून् प्राणान् राति ददाति इति असुरः, प्राणदेने वाला वह परमात्मा ही है।

775. तीन ही देवता है नैरुक्तकार के मत में

776. अग्नि पृथ्वी स्थान वायु और इन्द्र अन्तरिक्ष स्थानीय सूर्य द्युस्थानीय इति।

777. वायु के मातरिश्वा, इन्द्र, रुद्र, अपान्नपात् अनेक हैं।

778. अग्निर्वै देवानामवमः इति।

779. रुद्र।

780. शिवाय च शिवतराय च

देवताविषय में आचार्य यास्क का मत और कात्यायन मत

781. सूर्य और इन्द्र अग्नि की ही अभिव्यक्ती है ऐसा मानकर अग्नि ही एक व अभिन्न देव है ऐसा निरूपण करते हुए यास्क ने ऋग्वेद में उद्धृत किया है –'तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे' इति (10.88.10)।

782. ये अग्नि भूत लोक में ऋषियों द्वारा स्तुतियों से याद किया जाता है। जात वेदास्तुति के मध्य में तथा वैश्वानर दिन में।।

टिप्पणी

783. अग्नि से जैसे सूर्य का जन्म वैसे सूर्य से आदित्य का जन्म हुआ

देवताओं का आकार चिन्तन-

784. शारीरिक, और पुरुषविध।

785. संवाद सूक्त जैसे सरमापणि संवाद, ऊर्वशी पुरुरवा संवाद, यमयमी संवाद इत्यादि

786. यथा अक्षक्रीडा, ओषधिवृक्ष, प्रस्तर, उलूखमूषल इत्यादि का वर्णन वेद में प्राप्त होता है।

787. देवों का पृथक्तया रूपादि नहीं है।

इन्द्र का स्वरूप

788. इदि-धातू से निष्पन्न।

789. कपिश वर्णीय।

790. इन्द्राणी या शची।

791. शतक्रतु का अर्थ अनन्त कर्म कर्ता। इन्द्र युद्धजय, असुरवधा, दस्युओ का नाश, जलसंवादसूक्त यथा सरमापणि संवाद, ऊर्वशीपुरुरवा संवाद, यमयमी संवाद इत्यादि का निष्कासन कर्म करता है।

792. त्रिष्टुप्छन्द से।

793. वृत्र का हन्ता है वह।

794. उपासकों के प्रति वह दयालु तथा उनको बहुत धन देता है।

अग्नि का स्वरूप-

795. देव साक्षात् हवि नहीं खाते है, अग्नि द्वारा ही देव हवि का आस्वादन करते है।

796. देवों का यह प्रतिनिधि है, पुरोवर्ती होकर देवों का आवाह्न करता है।

797. होता अधवर्यु पुरोहित तथा ब्रह्मा ये चार संज्ञा है।

798. अग्निसूक्त।

799. गायत्री छन्द में।

वरुणस्वरूप

800. वृ धातू से

801. मित्र और वरुण।

802. वरुण द्वारा।

803. वह दिवस में धरा पर जहां कही भी होता है, सब कुछ देखता है, और भी रात में चौर्य-व्यभिचारादि पाप उसकी आखों से परोक्ष में नही होता है, इसलिए उसको सम्राट् या चर कहा जाता है।

इन्द्रस्वरूप

804. जन्म के बाद ये देव रोया था अतः वह रुद्र कहलाया।

805. तीन अम्बक होने से त्र्यम्बक कहलाता है।

806. जटावान होने से रुद्र का नाम कपर्दी है।

807. ''भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि'' इति श्रुति।

808. रुद्राध्याय यजुर्वेद में है।

अश्विन का स्वरूप

809. अश्विन द्युलोक के दो यमज युग्मक देव है।

810. मधु पीते है।

811. सूर्य की कन्या सूर्या है।

812. विपत्ति में प्राणियों की रक्षा उनका मुख्य कर्म है।

813. वृक-वर्तिका-संग्राम में अश्विनों ने वृक से वर्तिका की रक्षा की।

सातवां पाठ समाप्त

टिप्पणी

वैदिकसूक्त

भूमिका

इस जगत में कीट पतङ्ग से लेकर सभी प्राणियों की सुख प्राप्ति और दु:ख परिहार के लिए दो प्रवृत्तियां रात दिन देखी जाती हैं। सुप्रसिद्ध और सर्वविदित जो सुख अच्छे कर्मानुष्ठान से उत्पन्न होते हैं। दु:ख बुरे कर्मानुष्ठान से उत्पन्न होते हैं। और उसके अनुष्ठान के बिना कर्म स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है। अत: सुख की इच्छा दु:ख की अनिच्छा के लिए पुरुष को अवश्य ही पहले कर्मो के स्वरूप का शोभनीयत्व और अशोभनीयत्व जानना चाहिए। उस ज्ञान के बिना वेदार्थ ज्ञान दुष्कर है। अत: विद्वानों के द्वारा वेद के अर्थ अध्येय, और विचारणीय हैं। और वह वेद ऋक् यजु साम अथर्व भेद से चार प्रकार से विभक्त हैं। कहीं-कहीं पर तीन प्रकार भी दिखाए गये हैं। प्रत्येक वेद भी अनेक शाखाओं से युक्त हैं। उन शाखाओं में प्रत्येक मन्त्र ब्राह्मण भेद से विभिन्न हैं। वहाँ मन्त्र वैदिक तत्त्वों में प्रसिद्ध कर्म समवेतार्थ स्मारणैक फल हैं। और विधिबोधक वाक्य की ब्राह्मण संज्ञा है। विधि कर्मो के इष्ट साधनत्व बोधन मुख से इष्ट साधन में पुरुष को प्रवर्तित करता है। निषेध तो अनिष्ट साधन भत बोधन मुख के द्वारा अनिष्ट साधन से निवर्तित करता है। और ब्राह्मण भी कर्म ब्राह्मण, उपसना ब्राह्मण और ज्ञान ब्राह्मण तीन भागों में विभक्त है। कर्म काण्ड में भी नित्य नैमित्तिक काम्य के भेद से तीन कर्म विख्यात हैं। इन कर्मो से ज्ञान संपत्ति के लिए वेदार्थ ज्ञान की अपेक्षा है।

भारत वर्ष में वेद की संहिता ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषदों का महद् वैशिष्ट्य है। संस्कृत पाठशाला और महाविद्यालय वेद के अध्ययन और अध्यापन के ग्राहक हैं। इस पाठ्यांश में मन्त्रों और पदपाठ व्याख्या का सम्यक् समावेश है। ऋग्वेद के सारसंग्रहों का परिचय भी यहाँ प्राप्त करेंगे। इस सूक्ताध्ययन से अध्येताओं का महान् उपकार हो, बहुत प्रयत्न और उत्तमता से इसका अध्ययन छात्र करें, वेद का व्याकरण लौकिक व्याकरण से भिन्न है। शब्द भी बहुलता से भिन्न होते हैं। स्वर भेद में अर्थ भेद होता है। प्रकरण भेद में भी अर्थ भेद होता है। काव्यात्मक शैली बहुत जगह वेद में परिलक्षित है। अत: मन्त्रों का सामने से जो अर्थ दिखाई देता है उससे भिन्न ही अर्थ होता है। व्याख्या के भेद से भी अर्थ में भेद होते हैं। तात्पर्य भेद से भी अर्थ में भेद होता है। अत: मन्त्रों का यही अर्थ है यह निर्णय सुदुष्कर ही है। तथापि प्रमाण भूत आचार्य श्रीमान सायण का भाष्य ही कुछ सुबोध के लिए परिवर्तन से छात्रोपयोगित्व समास आदि यहाँ दीये जाते हैं। मन्त्रान्वय, मन्त्रव्याख्या, मन्त्र का सरलार्थ, कुछ शब्दों का व्याकरण इस रूप से यहाँ मन्त्र की व्याख्या की गयी है।

8

सूर्यसूक्त और सञ्ज्ञानसूक्त

प्रस्तावना

वेदो में ज्ञान राशि और शब्द राशि हैं। वेद अपौरुषेय है यह ही परम्परा है। जीव मात्र की इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहार के लिए अलौकिक उपायों को बताने वाला वेद है। वेद से ज्ञाप्यमान उपाय प्रत्यक्षत था अनुमान प्रमाण से अगम्य हैं। केवल वेद के शब्दों से ही वे उपाय जाने जा सकते हैं। ईश्वर ने भी सृष्टिकरण में वेद ज्ञान का आश्रय लेकर जगत् का सृजन किया। अत: यह वैदिक ज्ञान निर्भ्रान्त और प्रमाद रहित है। ऋक् यजु: साम तथा अथर्व भेद से चार प्रकार से वेद विभक्त है। स्तुत्यात्मक ऋग्वेद है। उस ऋग्वेद के मण्डल तथा अष्टक रूप से दो प्रकार से विभाजन किया गया है।

इस पाठ में सूर्यसूक्त तथा सञ्ज्ञानसूक्त दो सूक्त विद्यमान हैं। पहले सूर्यसूक्त उपस्थापित किया गया है।

मण्डल रूप से विभाग करने पर सूर्य सूक्त प्रथम मण्डल का एक सौ पन्द्रहवाँ सूक्त है (म 1, 1 15)

सूर्य सूक्त अतीव महत्त्वपूर्ण सूक्त है। द्युलोक में विद्यमान देवों में सर्वाधिक स्थूल देव सूर्य है जो भौतिक सूर्य के सदृश ही है। समग्र लोक का प्रकाशक सूर्य है। सूर्य देवता की स्तुति में भौतिक सूर्य से ही विशेष गुणों का वर्णन होता है। ऋग्वेद के दश सूक्तों में सूर्य की स्तुति का विधान है। यास्क के मतानुसार सूर्य शब्द धातू अथवा षु-धातू से निष्पन्न होता है। उनके मतानुसार सूर्य का इस प्रकार निर्वचन किया गया है – सरते: वा सुवतेर्वा इति अर्थात् जो अन्तरिक्ष में गतिप्रदान करता है, लोगों को अपने कार्य के प्रति प्रेरित करता है। वह सूर्य कहलाता है। बृहद्देवताकार शौनक के मतानुसार जो प्राणियों के मध्य विचरता है। इस प्रकार सूर्य शब्द की निरुक्ति की गई है। इस सूर्य सूक्त के कुत्स ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, और सूर्य देवता हैं।

टिप्पणी

उद्देश्य

यह पाठ पढकर आप सक्षम होंगे–

- सूक्तों का माहात्म्य जानने में;
- सूक्तोक्त देवता का स्वरूप जान पाने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का संहिता पाठ जानने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का पदपाठ रचने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का अन्वय करने में;
- सूक्तोक्त मन्त्रों की व्याख्या करने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- लौकिक और वैदिक शब्दों के भेदों के ज्ञानवान् होंगे;
- वैदिक व्याकरण के अंशो को जान पाने में।

॥ सूर्यसूक्त ॥

8.1 मूल पाठ

चि॒त्रं दे॒वाना॒मुद॑गा॒दनी॑कं॒ चक्षु॑र्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्या॒ग्नेः।
आप्रा॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरि॑क्षं॒ सूर्य॑ आत्मा
जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च ॥1॥

सूर्यो॑ दे॒वीमु॒षसं॒ रोच॑माना॒ं मर्यो॒ न योषा॑म॒भ्ये॑ति प॒श्चात्।
यत्रा॒ नरो॑ देव॒यन्तो॑ यु॒गानि॑ वित॒न्वते॒ प्रति॑ भ॒द्राय॑
भद्रम्॥2॥

भ॒द्रा अश्वा॑ ह॒रितः॒ सूर्य॑स्य चि॒त्रा एत॑ग्वा अनु॒माद्या॑सः।
न॒म॒स्यन्तो दि॒व आ पृ॒ष्ठम॑स्थु॒ः परि॒ द्यावा॑पृथि॒वी य॑न्ति
स॒द्यः॥3॥

तत्सूर्य॑स्य देव॒त्वं तन्म॑हि॒त्वं म॒ध्या कर्तो॒र्वित॑तं॒ सं ज॑भार।
य॒देदयु॑क्त ह॒रित॑ः स॒धस्था॒दाद्रात्री॒ वास॑स्तनुते
सि॒मस्मै॥4॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सुर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशंदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं
भरन्ति॥5॥

अद्या देंवा उदिंता सुर्यस्य निरंहसः पिपृता निरंवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिंतिः सिन्धुः पृथिवी उत
द्यौः॥6॥

8.1.1 मत्र व्याख्या (सूर्यसूक्त)

चित्रं देवानामुदंगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिंक्षं सूर्यः। आत्मा।
जगतस्तस्थुषश्च्ः॥1॥

पदपाठः - **चित्रम्। देवानाम्। उत्। अगात्। अनीकम्। चक्षुः। मित्रस्यं। वरुण्णस्य। अग्नेःआ। अप्राः। द्यावापृथिवी इति। अन्तरिंक्षम्। सूर्यः। आत्मा। जगतः। तस्थुषः। च॥1॥**

अन्वय- देवानां चित्रम् अनीकं मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षु उत् अगात्। द्यावापृथिवी अन्तरीक्षम् आ अप्राः, सूर्यः जगतः तस्थुषः च आत्मा॥

व्याख्या- देवों का। "दीव्यन्तीति देवा रश्मयः"। अथवा देवजनों का। अनीक अर्थात् समूह रूप विचित्र आश्चर्य कर सूर्य मण्डल उद् अगात् अर्थात् उदयान्चल को प्राप्त था। कैसा? वायु जल और अग्नि का यह उपलक्षण है। उस उपलक्षित जगत का चक्षु अर्थात् प्रकाशक है अथवा चक्षु इन्द्रिय स्थानीय है और द्युलोक पृथ्वी लोक तथा अन्तरिक्ष को धारण करता है। अपने तेज से परिपूर्ण करता है। ऐसे भूत मण्डल का अन्तर्वर्ती सूर्य अन्तर्यामिता से सभी का प्रेरक परमात्मा इस अचल जगत तथा स्थावर का आत्मा स्वरूप है। वही सब स्थावर जगङ्गमात्मक कार्य वर्ग का कारण है और कारण से कार्य पृथक नहीं होता। और भी पारमर्ष सूत्र में कहा गया है- 'तदनन्यत्व मारम्भण शब्दादिभ्यः' (ब्र0सू0 2.1.14)॥ जो स्थावर जङ्गमात्मक सभी प्राणियों का जीवात्मा है। सूर्य के उदित होने पर मृत प्राय सभी जगत् पुनः चेतन युक्त हो जाता है और भी - 'योसौ तवन्नुदेति स सर्वेषां भूतानां प्राणानादायोदेति' (तै0आ0 1.14.1)॥

सरलार्थ- देवों के उज्ज्वल मुख तुल्य वायु जल तथा अग्नि का चक्षुरिन्द्रय तुल्य सूर्य ऊर्ध्व लोक जाता है। आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी को अपने प्रकाश से प्रकाशित करता है। सूर्य स्थावर तथा जङ्गम प्राणियों की आत्मा है।

व्याकरण

- उदगात् - उत्पूर्वक गा धातू का लुङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप है।

टिप्पणी

- आप्राः – आ उपसर्ग पूर्वक प्र धातू के लुङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- जगतः – गम्–धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर जगत् रूप सिद्ध होता है। षष्ठी एकवचन में।
- तस्थुषः –स्था धातु से क्वसु प्रत्यय करने पर यह रूप सिद्ध होता है।

सूर्यो देवीमुषसं रोचमाना मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय
भद्रम्॥2॥

पदपाठः – **सूर्यः। देवीम्। उषसम्। रोचमानाम्। मर्यः।न। योषाम्।**
अभि। एति। पश्चात्॥ यत्र। नरः। देवऽयन्तः। युगानि।
विऽतन्वते। प्रति। भद्राय। भद्रम्॥2॥

अन्वय– सूर्यः रोचमानां देवीम् उषसं पश्चात् मर्यः योषां न अभि एति। यत्र देवयन्तः नरः प्रति भक्ताय भक्तं युगानि वितन्वते।

व्याख्या– सूर्या देवी दानादि गुण से युक्त रोचमान दीप्यमान उषा को भय मुक्त करता है और उषा के प्रादुर्भाव के बाद उसको अभिलक्ष्य करके चलता है। वहाँ एक दृष्टान्त है। 'मर्यो न योषाम्' अर्थात् जैसे कोई मनुष्य सुन्दर जाती हुई युवति स्त्री के पिछे चलने लगता है वैसे ही सूर्य गुणमयी एवं प्रकाशमान उषा देवी के पीछे–पीछे चलते हैं। जब सुन्दरी उषा प्रकट होती है, तब प्रकाश के देवता सूर्य की आराधना करने के लिए कर्म निष्ठ मनुष्य अपने कर्तव्य कर्म का सम्पादन करते है। सूर्य कल्याण रूप हैं और उनकी आराधाना से कर्तव्य कर्म के पालन से कल्याण की प्राप्ति होती है।

सरलार्थ– युवा पुरुष जैसे युवति के पीछे जाता है वैसे ही सूर्य दीप्तिमयी उषा देवी के पीछे चलते हैं। उस उषा के प्रकाश के समय यजमान कल्याण प्रददेवों के कल्याण फल के लाभ के लिए यज्ञ कर्म करते हैं।

व्याकरण –

- रोचमानाम् – रुच्–धातु से शानच् प्रत्यय और स्त्रीलिंग की विवक्षा में टाप् करने पर द्वितीया के एकवचन में यह रूप बनता है।
- मर्यः – मृङ्–धातु से यति प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवन में यह रूप है।
- युगानि – युज्–धातु से घञ् प्रत्यय करने पर द्वितीया बहुवचन का यह रूप बनता है।
- देवयन्तः – दिव्–धातु से क्यच् शतृ प्रत्यय करने पर प्रथमा बहुवचन में यह रूप बनता है।
- वितन्वते – विपूर्वक तनु के आत्मनेपद के लट् लकर के प्रथमपुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति
सद्यः॥3॥

पदपाठः – **भद्राः। अश्वाः। हरितः। सूर्यस्य। चित्राः। एतऽग्वाः।**
अनुऽमाद्यासः॥ नमस्यन्तः। दिवः। आ। पृष्ठम्। अस्थुः। परि।
द्यावापृथिवी इति। यन्ति। सद्यः॥3॥

अन्वय– सूर्यस्य भद्राः हरितः अश्वाः चित्राः एतग्वाः अनुमाद्यासः नमस्यन्तः दिवः पृष्ठम् आ अस्थुः। सद्यः द्यावापृथिवी परियन्ति॥3॥

व्याख्या– सूर्य का यह रश्मि मण्डल अश्व के समान उन्हें सर्वत्र पहुँचाने वाला चित्र विचित्र एवं कल्याण रूप है। यह प्रतिदिन तथा अपने पथ पर ही चलता है एवं अर्चनीय तथा वन्दनीय है। यह सब को नमन की प्रेरणा देता है और स्वयं द्युलोक के ऊपर निवास करता है। यह तत्काल द्युलोक और पृथ्वी लोक का परिमंत्रण कर लेता है॥

सरलार्थ– सूर्य के कल्याणकारी हरित वर्णीय विचित्र गन्तव्य मार्ग में स्वयं ही गमनशील आनन्दकारी सबके स्तुत्य अश्वों ने द्युलोक को आरूढ कर रखा है। वे शीघ्र ही आकाश और पृथ्वी को चारों ओर से व्याप्त करेंगे।

व्याकरण –

- अश्वाः – अश्-धातु से क्वन् प्रत्यय करने पर प्रथमा बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- एतग्वाः – इण् गतौ धातु से तन् प्रत्यय में एत् बनने पर उससे एत् पूर्वक गम्-धातु से ड्व प्रत्यय करने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- अनुमाद्यासः – अनुपूर्वक मद्-धातु से यति प्रत्यय करने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- अस्थुः – स्था धातु से लुङ् लकार में प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- यन्ति – इण् गतौ धातु से लट् लकार के प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न

815. सूर्यसूक्त के ऋषि, छन्द, और देवता कौन हैं?

816. चित्रम् का अर्थ बताओ?

टिप्पणी

817. आप्राः यह रूप कैसे सिद्ध होता है?

818. तस्थुषः रूप कैसे सिद्ध होता है?

819. भद्राः का क्या अर्थ है?

820. सूर्य के अश्व कैसे थे?

821. एतग्वारूप कैसे सिद्ध होता है?

822. अनुमाद्यासः रूप कैसे सिद्ध होता है?

823. देवयन्तः रूप कैसे सिद्ध होता है?

824. यन्ति यहाँ क्या धातु है?

8.1.2 मूलपाठ

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते
सिमस्मै ॥4॥

पदपाठः – **तत्। सूर्यस्य। देवऽत्वम्। तत्। महिऽत्वम्। मध्या। कर्तोः।**
विऽततम्। सम्। जभार। यदा। इत्। अयुक्त। हरितः।
सधऽस्थात्। आत्। रात्री। वासः। तनुते। सिमस्मै॥4॥

अन्वय– तत् सूर्यस्य देवत्वं तत् महित्वं कर्तोः मध्या विततं सं जभार। यदा इत् हरितः सधस्थात् अयुक्त आत् रात्री सिमस्मै वासः तनुते॥4॥

व्याख्या– सूर्य सर्व प्रेरक आदित्य का वह देवत्व सर्वान्तर्यामी प्रेरक सूर्य का यह ईश्वरत्व और महत्व है की वे प्रारम्भ किये हुए, किन्तु अपरि समाप्त कृत्यादि कर्मों को जैसे का तैसे छोड़कर अस्ताचल जाते समय अपनी किरणों को इस लोक से अपने आप में समेट लेते हैं। साथ ही उसी समय अपने किरणों और घोड़ों को एक स्थान से खींचकर दूसरे स्थान पर नियुक्त कर देते हैं। उसी समय रात्रि अंधकार के आवरण से सबको आवृत्त कर देती है। इस विषय में निरुक्त में भी कहा गया है कि – 'तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्ये यत्कर्मणां क्रियमाणानां विततं संह्रियते यदासौ अयुक्त हरणानादित्यरश्मीन् हरितोश्वानिति वाथ रात्री वासस्तनुते सिमस्मै वासरमहरवयुवती सर्वस्मात् (निरु – 4.11)।

सरलार्थ– वही सूर्य का देवत्व है, वहीं सूर्य की महिमा है जो लोगों के द्वारा अनुष्ठित कर्मों में अपने प्रसारित किरण जाल को पृथिवी पर बिछाते हैं। जिससे वह सरस हरणशील अश्वों को रथ अथवा पृथ्वी के किरण जाल को पृथक् करता है तब रात्रि सब के लिए कृष्ण वस्त्र धारण करती है।

टिप्पणी

व्याकरण -

- विततम् - विपूर्वक तन्-धातु से क्त प्रत्यय करने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- संजभार - सम्पूर्वक भृ धातू से लिट् लकार प्रथम पुरुषैकवचन में यह रूप बनता है।
- अयुक्त - युज्-धातु के आत्मनेपद लुङ् लकार के प्रथम पुरुषैकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- सधास्थात् - सहपूर्वक स्थधातू से कप्रत्यय करने पर पञ्चमी एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तनुते - आत्मनेपदि तन्-धातु से लटलकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- सिमस्मै - सर्वनाम पर्याय वाचक सिम शब्द के चतुर्थी एकवचन का यह रूप है।
- रात्री - रात्रिशब्द का स्त्रीलिंग की विवक्षा में ङीप् के प्रथमा एकवचन का यह रूप है।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सुर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं
भरन्ति ॥

पदपाठः - **तत्। मित्रस्य। वरुणस्य। अभिऽचक्षे। सूर्यः। रूपम्। कृणुते।**
द्योः। उपऽस्थे॥ अनन्तम्। अन्यत्। रुशत्। अस्य। पाजः।
कृष्णम। अन्यत्। हरितः। सम्। भरन्ति॥

अन्वय- तत् मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे सूर्यः द्योः उपस्थे रुपं कृणुते। अस्य हरितः अनन्तम् अन्यत् रुशत् पाजः सं भरन्ति, अन्यत् कृष्णम्॥

व्याख्या- प्रेरक सूर्यप्रातः काल मित्र वरुण और समग्र सृष्टि को सामने से प्रकाशित करने के लिए प्राची के आकाशीय क्षितिज में अपना प्रकाशक रूप प्रकट करते हैं और इनकी रसभोगी रश्मियाँ अथवा हरे घोड़े बलशाली रात्रि कालीन अंधकार के निवारण में समर्थ विलक्षण तेज धारण अन्धकार की सृष्टि होती है।

सरलार्थ- मित्र और वरुण के दर्शन के लिए सूर्य द्युलोक के मध्य भाग में प्रकाश मान रूप को प्रकट करता है। उसके हरित वर्णीय अथवा रसहरणशील अश्व एक समय में ही प्रकाश और अन्धकार को लाते हैं।

व्याकरण

- अभिचक्षे - अभिपूर्वक चक्ष्-धातु से क्विप् प्रत्यय के वैदिक तुमर्थकैकार में यह रूप बनता है।

टिप्पणी

- द्यो: – द्योशब्द का षष्ठी एकवचन में यह वैदिकरूप सिद्ध होता है।
- उपस्थे – उप पूर्वक् स्था धातू से क प्रत्यय के सप्तमी एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- कृणुते – कृ धातु से लट लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- पाज: – पा धातु से असुन्प्रत्यय करने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- भरन्ति – भृ धातु से लट् लकार प्रथमपुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

अद्या देवा:। उदिता सुर्यस्य निरंहस: पिपृध्ता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति: सिन्धु: पृथिवी उत
द्यौ:।।6।।

पदपाठ: – **अद्य। देवा:। उत्ऽईता। सूर्यस्य। नि:। अंहस:। पिपृत। नि:। अवद्यात्।। तत्। न:। मित्र:। वरुण:। ममहन्ताम्। अदिति:। सिन्धु:। पृथिवी। उत। द्यौ:।।6।।**

अन्वय– देवा: अद्य सूर्यस्य उदिता अंहस: निष्पिपृत नि: अवद्यात्। न: तत् मित्र: वरुण: अदिति: सिन्धु: पृथिवी उत द्यौ: ममहन्ताम्।।

व्याख्या– हे प्रकाशमान सुर्य रश्मियों आज सूर्योदय के समय इधर उधर बिखरकर तुम लोग हमे पापों से निकाल कर बचा लो। न केवल पाप से ही, प्रत्युत जो कुछ निन्दित है, ग्रहणीय है, दु:ख दारिद्रय है, सबसे हमारी रक्षा करो। जो कुछ हमने कहा है, मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक के अधिष्ठाता देवता उसका आदर करें, अनुमोदन करें, वे भी हमारी रक्षा करें।।

सरलार्थ– इस मन्त्र में देवों के प्रति कहा गया है कि हे देवों सूर्यरश्मियां आज सूर्य के उदित होने पर पापों से हमें मुक्ति दें, अपशब्द भाषण से भी मुक्ति दें। हमारी इस प्रार्थना का मित्रादि देवता अनुमोदन करे।

व्याकरण

- उदिता – उत्पूर्वक इण्-धातु से क्त प्रत्यय और डादेश करने पर वैदिक रूप उदिता बनता है।
- अद्या – 'निपातस्य च' इससे दीर्घ होता है।
- अवद्यात् – वद्-धातु से यति प्रत्यय करने पर वद्य रूप। तथा न वद्य अवद्य, पञ्चमी एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- पिपृत – पृ धातु से लट् मूलक लोट लकार के प्रथमपुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- ममहन्ताम् – मम्ह् अथवा मह् धातु से लिट् मूलक लोट् लकार के प्रथमपुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न

825. सूर्य का दूसरा क्या नाम था?

826. सिम शब्द का अर्थ क्या है?

827. सिमस्मै में किस अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है?

828. सधास्थात् यहाँ किस अर्थ में कौन सा प्रत्यय है।

829. रात्री में कौन सा प्रत्यय है?

830. अयुक्त रूप कैसे सिद्ध होता है?

831. हरित: का क्या अर्थ है?

832. पाज: रूप कैसे सिद्ध होता है?

833. अद्या में किस सूत्र से दीर्घ होता है?

834. ममहन्ताम् रूप कैसे सिद्ध होता है?

8.2 सूर्य का स्वरूप

वेद में अनेक देवों में सूर्यदेव का विशिष्ट स्थान है। ऋग्वेद में सुवर्ण कान्ति तेज: स्वरूप सूर्य चराचर विश्व के आत्मत्व पूजित है। कृष्ण यजुर्वेद में आदित्य विश्व का प्राण स्वरूप है ऐसी व्याख्या है। अत: सूर्य से सभी प्राणियों की उत्पत्ति हुई। जैसे कि ''असौ वा आदित्य: प्राण: प्राणमेवैनानुत्सृजति''। ऋग्वेद में सूर्य श्रेष्ठ ज्योति के स्वरूप में स्तुत है। जैसे कि ''इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम्'' (ऋग्वेद: 10/170/3)। निरुक्तकार के मत में सूर्य द्युलोकस्थ देवों का प्रतिनिधि है। ''सूर्यो द्युस्थान:'' (निरुक्त 7/5/2)। पुरुष सूक्त में सूर्य की उत्पत्ति विराट्-पुरुष की चक्षु से हुई ऐसा प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे की कहा गया है चक्षो: सूर्य: अजायत''। सूर्य देव अनीक अर्थात् देवों के मुख स्वरूप हैं। हमारा प्रत्यक्ष देव सूर्य है। उषा उसकी भार्या है। जैसे युवक युवती का अनुसरण करता है वैसे ही सूर्य दीप्तिमती उषा देवी के पीछे दोड़ता है। ऋग्वेद में बहुत सी जगह सूर्यदेव के रथ का वर्णन प्राप्त होता है। सूर्य के रथ में सात अश्व हैं। सूर्य की रश्मियाँ ही यहाँ अश्व हैं। सूर्य के उदित होने पर उसकी रश्मियाँ अश्व की तरह ही बहुत वेग से सभी दिशाओं में विस्तरित होती हैं। अत: रश्मियों को अश्व कहा जाता है और ये रश्मियाँ पृथिवी के पृष्ठ भाग से जलीयांश का हरण करती हैं। अत: रसहरण शीलत्व के कारण हरित कही जाती है। एक दिन में ही ये द्युलोक और पृथिवी लोक की प्रदक्षिणा करती हैं ''परि द्यावा पृथिवी यन्ति सद्य:'' यह श्रुति है। सूर्य की रश्मियाँ अन्धकार को

दूर करने में समर्थ हैं। सूर्य की रश्मियाँ जब पृथ्वी लोक में आ जाती हैं तब पृथ्वी पर दिन होता है। किन्तु जब सूर्य अपने रश्मि रूपी अश्वों को पृथ्वीलोक से हटाता है तब पृथ्वी पर अन्धकार विस्तृत हो जाता है। उससे रात्रि उत्पन्न होती है। इस प्रकार सूर्य ही रात और दिन का कारण है।

सूर्य सभी प्राणियों का प्रेरक भी है। सूर्य के उदित होते ही सभी प्राणी अपने अपने कर्म में संलग्न हो जाते हैं और भी सूर्य उरुचक्षा है। अर्थात् वह मनुष्यों के सभी पाप पुण्य के कर्मों का अवलोकन करता है। ऋग्वेद में कहीं-कहीं सूर्य और अग्नि अभिन्नत्व रूप से प्रतिपादित हैं। दिन में जो सूर्य होता है वह ही रात्री में अग्नि होता है।

सूर्यदेव का यही माहात्म्य है कि वह स्वतन्त्र है। मनुष्यके प्रारम्भ किये हुए कृषि कर्म समाप्त न होने पर भी प्रातः से विस्तृत अपना रश्मिजाल अस्त होते समय अपने में ही समेट लेता है। तब पृथ्वी लोक को अंधकार आच्छादित कर लेता है। जगत् के प्रकाश के लिए रश्मिजाल का क्षणमात्र से प्रसारण और पुनः संहरण यह अल्प महिमा वाले के लिए सम्भव नहीं है, अतः सूर्यदेव का यह अत्यधिक माहात्म्य है।

8.3 सूर्य सूक्त का सार

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के इस सूर्य सूक्त के सूर्य देवता, कुत्स ऋषि, और त्रिष्टुप् छन्द है। इस सूक्त में ऋषि भगवान् सूर्य की स्तुति करते हुए कहते हैं कि, जगत के चक्षुरिन्द्रिय स्थानीय सूर्य उदय को प्राप्त करके द्युलोक पृथ्वी और अन्तरिक्ष को अपने तेज से सम्पूर्ण पूरित कर दिया। ऐसा मण्डलान्तर्वर्ती सूर्य अन्तर्यामितया सबका प्रेरक परमात्मा ही है। वही स्थावर जंगमात्मक कार्य वर्ग का कारण है। सूर्य के उदित होने पर मृत प्राय सब जगत् पुनः चेतनयुक्त हो जाता है। सूर्य ही दानादि गुणों से युक्त दीप्यमान उषा को प्राप्त करता है। अर्थात् उषा प्रादुर्भावानान्तर उसको अभिलक्ष्य करके चलती है। जैसे कोई मनुष्य लावण्यमयी जाती हुई युवती के पीछे जाता है, उसी तरह इस प्रकार के सूर्य के प्रति भद्र कल्याण रूप और कर्मफलकी स्तुति करते हैं। इस प्रकार हमारे द्वारा नमस्यमान सूर्य अन्तरिक्ष के पृष्ठभाग ऊपरिप्रदेश पूर्वभाग लक्षण को प्राप्त करता है अथवा, दुःख हरणशील सूर्य की रश्मियाँ भद्रादि लक्षण विशिष्ट दिन के पृष्ठ भाग नभःस्थल में रहती हैं। उदय के समय मित्र और वरुण का लक्षित सब जगत का सविता रूप सबका निरूपक और प्रकाशक तेज कर्ता है। और भी इस सूर्य की रस हरणशील रश्मियाँ हरे रंग के अश्व अथवा अनन्तर अवसान रहित सब जगत में व्यापक दीप्यमान श्वेत वर्ण बलयुक्त निशा के अंधकार के निवारण में समर्थ और अंधकार का विलक्षण तेज अपने आगमन से निष्पादित करता है। यह सब सूर्य का माहात्म्य है। हे सूर्य रश्मियाँ आज इस समय सूर्य के उदय के होने पर इधर-उधर प्रसारित तुम हमें अहंस पापों को पालती हैं।

चित्रं देवानामुदगाननीकं, चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं, सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ 1 ॥

प्रकाशमान रश्मियों का समूह, अथवा राशि देवगण सूर्य मण्डल के रूप में उदित हो रहे हैं। ये मित्र वरुण अग्नि और सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक ज्योतिर्मय नेत्र है। इन्होंने उदित होकर द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष को अपने देदीप्यमान तेज से सर्वतः परिपूर्ण कर दिया है। इस मण्डल में जो सूर्य हैं, वे अन्तर्यामी होने के कारण सबके प्रेरक परमात्मा हैं तथा जंगम एवं स्थावर सृष्टि की आत्मा हैं।

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां, मयो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्ति युगानि, वितन्वते प्रति भद्राय भद्राम्॥ 2॥

इस मन्त्र में ऋषि कुत्स ने कहा कि, सूर्य दानादिगुणयुक्त एवं दीप्यमान उषा के पीछे पीछे चलते है, जैसे कोई मनुष्य सर्वांग सुन्दरी युवती का अनुगमन करे। जब सुन्दरी उषा प्रकट होती है, तब प्रकाश के देवता सूर्य की आराधना करने के लिए कर्मनिष्ठ मनुष्य अपने कर्तव्य कर्म का सम्पादन करते हैं। सूर्य कल्याण रूप हैं और उनकी आराधना से कर्तव्य कर्म के पालन से कल्याण की प्राप्ति होती हैं।

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य, चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः, परिद्यावापृथिवी यन्ति सद्यः॥3॥

सूर्य का यह रश्मि मण्डल अश्व के समान उन्हें सर्वत्र पहुँचाने वाला चित्र विचित्र एवं कल्याण रूप है। यह प्रतिदिन तथा अपने पथ पर ही चलता है एवं अर्चनीय तथा वन्दनीय है। यह सबको नमन की प्रेरणा देता है और स्वयं द्युलोक के ऊपर निास करता है। यह तत्काल द्युलोक और पृथ्वी लोक का परिमन्त्रण कर लेता है।

तत्सूर्यस्य देवस्य तन्माहित्वं, मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादात्त्रात्री वास्ततनुते सिमस्मै॥4॥

सूर्य सर्व प्रेरक आदित्य का वह देवत्व। सर्वान्तर्यामी प्रेरक सूर्य का यह ईश्वरत्व और महत्व है की वे प्रारम्भ किये हुए, किन्तु अपरिसमाप्त कृत्यादि कर्मो को ज्यों का त्यों छोड़कर अस्तांचल जाते समय अपनी किरणों को इस लोक से अपने आप में समेट लेते हैं। साथ ही उसी समय अपने किरणों और घोड़ों को एक स्थान से खींचकर दूसरे स्थान पर नियुक्त कर देते हैं। उसी समय रात्रि अंधकार के आवरण से सबको आवृत्त कर देती है।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे, सूर्योरूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यदुशदस्य पाजः, कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति॥5॥

प्रेरक सूर्यप्रातः काल मित्र-वरुण और समग्र सृष्टि को सामने से प्रकाशित करने के लिए प्राची के आकाशीय क्षितिज में अपना प्रकाशक रूप प्रकट करते हैं। और इनकी रस भोजी रश्मियाँ अथवा हरे घोड़े बलशाली रात्रिकालीन अंधकार के निवारण में समर्थ विलक्षण तेज धारण अन्धकार की सृष्टि होती है।

टिप्पणी

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य, निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौ॥ 6॥

हे प्रकाशमान सुर्य रश्मियों आज सूर्योदय के समय इधर उधर बिखरकर तुम लोग हमें पापों से निकालकर बचा लेना केवल पाप से ही, प्रत्युत जो कुछ निन्दित है, ग्रहणीय है, दुःख दारिद्रय है, सबसे हमारी रक्षा करो। जो कुछ हमने कहा है, मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक के अधिष्ठाता देवता उसका आदर करें, अनुमोदन करें, वे भी हमारी रक्षा करें॥

वरुण अनिष्ट निवारयिता रात्री का अभिमानी देव है, अदिति जल का अभिमानी देवता है, पृथ्वी भूलोक की अधिष्ठात्री देवता है, द्यौ द्युलोक का अभिमानी देव है।

पाठ का सार (सूर्यसूद्रांश में)

सूर्यसूक्त के आदि मन्त्र में सूर्य का स्वरूप वर्णित है। यह सूर्य कैसा है? यह प्रश्न मन में उदित होता है। उसका उत्तर प्रथम मन्त्र में ही दिया गया है। कहा जाता है कि सूर्य देवों के उज्ज्वल मुख के तुल्य है मित्र वरुण और अग्नि के चक्षु इन्द्रिय के तुल्य है। वह अपने आलोक समूह से समग्र जगत् में व्याप्त हो गया है। वह सभी स्थावर तथा जङ्गम की आत्मा है। द्वितीय मन्त्र में सूर्य का एक स्वभाव प्रकट किया गया है। वहाँ कहा गया है कि जैसे कोई युवा पुरुष युवती के पीछे चलता है वैसे ही सूर्य भी दीप्तिमयी उषादेवी के पीछे चलता है। तृतीय मन्त्र में सूर्य के अश्वों के विषय में कहा गया है। वहाँ कहा जाता है कि उसके अश्व हरितवर्णीय, कल्याणकारी, विचित्र, गन्तव्य मार्ग में स्वयं ही गमनशील, और सबके द्वारा प्रणम्य हैं। चतुर्थ मन्त्र में सूर्य का देवत्व वर्णित है। लोगों के द्वारा अनुष्ठित कर्मों में अपने प्रसारित किरण जाल से पृथ्वी की रक्षा करता है। वह जब रस हरणशील अश्वों को अपने रथ से पृथक् करता है तब रात्रि आ जाती है। पंचम मन्त्र में उसके अश्वों की महिमा का वर्णन है। वहाँ कहा गया है कि उसके रसहरण शील अश्व एक समय में ही प्रकाश और अन्धकार लाते हैं। तथा षष्ठ मन्त्र में सूर्य के प्रति प्रार्थना की गयी है कि हे देव! सूर्य उदित होने पर पापों का अपसारण करके हमारी रक्षा कर। अपशब्द युक्त वचनों से हमें पृथक् करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक ये प्रार्थना स्वीकार करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण सूर्य सूक्त में सूर्य के स्वरूप, सूर्य के अश्वों का स्वरूप, सूर्य का माहात्म्य ये विषय वर्णित हैं।

संज्ञान सूक्त

ऋग्वेद का संज्ञान सूक्त भी बहुत प्रसिद्ध है प्रकृत सूक्त के केवल इस प्रथम मन्त्र के अग्नि देवता हैं। और बचे हुये मन्त्रों के संज्ञान ही देवता हैं। इस सूक्त के संवनन अंङि्गरस

हैं। ये सभी मन्त्र अनुष्टुप और त्रिप्टुप छन्द से ही सुशोभित हो रहे हैं। प्रकृत पाठ के उत्तरार्ध में इस संज्ञान सूक्त का वर्णन प्राप्त होता है।

8.4 संज्ञान सूक्तस्य सामान्य-परिचयः

संज्ञान सूक्त ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल के अन्तर्गत आये सूक्तों में अन्यतम सूक्त है। इस संज्ञा नसूक्त में चार मन्त्र ही हैं। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में अग्नि देवता की स्तुति विहित है। यहाँ अग्निदेवता की स्तुति के अवसर पर अग्नि देवता को उद्देश्य करके यह कहा गया कि हे अग्निदेव! आप सभी उपासकों की यथेष्ट अभिलाषा को प्राप्त करवाते हैं। अतः हमारे लिए भी धनादि के रूप में अभिलषित पदार्थों को वैसे ही प्रदान करें।

इस सूक्त के अवशिष्ट तीन मन्त्रों में संज्ञान देवता की उपासना विहित हैं तथा सभी के साथ मिलकर संभाषण, विरोध को छोड़कर ऐक्य भाव से निवास, और परस्पर सौहार्द पूर्ण व्यवहार- इनके विधान की कामना की गयी है। जिस प्रकार प्राचीन काल में हमारे पूर्वज परस्पर सौहाद ॑और सांमन्जस्य से व्यवहार करते थे, उसी प्रकार से ही परस्पर क्रियाकलाप की प्रार्थना भी की गयी है। ऋत्विज तथा यजमान की भी ऐक्यमत की कामना भी इस सूक्त में विहित है।

8.5 मूल पाठ (संज्ञानसूक्त)

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥1॥

सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते॥2॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥3॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥4॥

8.5.1 अब मूलपाठ को जानेंगे (सञ्ज्ञानसूक्त)

इस सूक्त के आङ्गिरा ऋषि, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द, अग्नि और संज्ञान देवता हैं।

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर॥1॥

टिप्पणी

पदपाठः - **सम्ऽसम्। इत्। युवसे। वृषन्। अग्ने। विश्वानि। अर्यः।आ।।**
इळः। पदे। सम्। इध्यसे। सः। नः। वसूनि। आ। भर।।

अन्वय- वृषन् अग्ने, अर्यः विश्वानि आ संसम् इत् सम् युवसे इडस्पदे समिध्यसे सः नः वसूनि आ भर।

व्याख्या- हे वृषन् कामानाओं की वर्षित अग्नि ईश्वर समस्त सुखों को प्रदान करने वाले हे अग्नि। आप सब में व्यापक अन्तर्यामी ईश्वर हैं। आप यज्ञवेदी पर प्रदीप्त किये जाते हैं। हमें विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्य को प्रदान करें।

सरलार्थ- हे अभिष्ट फलदायक अग्नि तू प्रभु रूप से सब को सभी दिशाओं से योजित करके बैठ, यज्ञवेदि के मध्य में सम्यक् रुप से प्रज्वलित होकर बैठ। वहीं तू, हमारे लिए धन का आहरण कर।

व्याकरण -

- युवसे- यु-धातु से लट् लकार आत्मनेपद मध्यम पुरुष एकवचन में युवसे रूप बनता है।
- समिध्यसे- सम्पूर्वक इन्ध-धातु से लट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में समिध्य से यह रूप कर्म वाच्य का रूप है।
- भर- भृ-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में भर यह रूप सिद्ध होता है।

सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते।।2।।

पदपाठः - **सम्। गच्छध्वम्। सम्। वदध्वम्। सम्। वः। मनांसि।**
जानताम्। देवाः। भागम्। यथा। पूर्वे। सम्ऽजानाघ्नाः।
उपऽआसते।

अन्वय- सं गच्छधवं सं वदधवं वः मनांसि सं जानताम् यथा पूर्वे देवाः सञ्जानानाः भागम् उपासते।।

व्याख्या- हे स्तोताओं हे धर्म निरत विद्वानों आप परस्पर एक होकर रहें, एक होकर चलें। परस्पर मिलकर प्रेम से वार्तालाप करें। एकमत होकर ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार श्रेष्ठजन एकमत होकर ज्ञानार्जन करते हुए ईश्वर की उपासना करते हैं, उसी प्रकार आप भी एकमत होकर व विरोध त्यागकर अपना काम करें।

सरलार्थ- (हे स्तुतिकारी) (आप) साथ-साथ चले, साथ-साथ बोले, आपके मन समान हों। जैसे प्राचीनकाल के देवता साथ-साथ यज्ञभाग को ग्रहण करते थे उसी प्रकार तुम भी करो।

व्याकरण -

- गच्छध्वम्- गम्-धातु से लोट आत्मनेपद के मध्यम पुरुष बहुवचन में गच्छध्वम् रूप सिद्ध होता है।
- वदध्वम्- वद्-धातु से लोट् लकार आत्मनेपद मध्यमपुरुष बहुवचन में वदध्वम् रूप सिद्ध होता है।
- संजानताम्- सम्पूर्वक ज्ञा-धातु से लोट् लकार आत्मनेपद मध्यमपुरुष बहुवचन में संजानताम् रूप सिद्ध होता है।
- सञ्ज्ञानाना:- सम्पूर्वक ज्ञा-धातु से शानच्प्रत्यय के प्रथमा बहुवचन में सञ्ज्ञानाना: रूप सिद्ध होता है।
- उपासते- उपपूर्वक आस्-धातु से लट् लकार आत्मनेपद प्रथमपुरुष बहुवचन में उपासते रूप बनता है।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥3॥

पदपाठः - **समानः। मन्त्रः। सम्ऽइतिः। समानी। समानम्। मनः। सह। चित्तम्। एषाम्॥ समानम्। मन्त्रम्। अभि। मन्त्रये। वः। समानेन। वः। हविषा। जुहोमि॥**

अन्वय- एषां मन्त्र: समान:, समिति: समानी, मन: समानम्, चित्तं सह। व: समानं मन्त्रम् अभिमन्त्रये व: समानं हविषा जुहोमि॥3॥

व्याख्या- हम सबकी प्रार्थना एक समान हो, भेद भाव से रहित परस्पर मिलकर रहें, अंत:करण मन चित विचार समान हों। मैं सबके हित के लिए समान मन्त्रों को अभिमंत्रित करके हवी प्रदान करता हूँ।

सरलार्थ- (स्तोताओं का) यह मनन समान हो, इनका मेल समान हो, हृदय के साथ मन भी समान हो। तुम्हारे लिए एक ही स्तुति उच्चारित हो। मैं तुम्हारे लिए एक ही हवि की आहुति देता हूँ।

व्याकरण

- **समिति:**- सम्पूर्वक इ-धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में समिति: रूप बनता है।
- **अभिमन्त्रये**- अभिपूर्वक मन्त्र-धातु से लट् लकार के आत्मनेपद के उत्तमपुरुष एकवचन में अभिमन्त्रये रूप सिद्ध होता है।
- **जुहोमि**- हूँ-धातु से लट्लकार उत्तमपुरुष एकवचन में जुहोमि रूप बनता है।

टिप्पणी

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥4॥

पदपाठः - समानी। वः आऽकूतिः। समाना। हृदयानि। वः॥ समानम्।
अस्तु। वः। मनः। यथा। वः। सुऽसह। असति॥

अन्वय- वः आकूतिः समानी, वः हृदयानि समानाः, वः मनः समानम् अस्तु यथा वः सुसह असति।

व्याख्या- तुम सबके संकल्प एक समान हों, तुम्हारे हृदय एक समान हों, और मन एक समान हों, जिससे तुम्हारा कार्य परस्पर पूर्ण रूप से संगठित हों।

सरलार्थ- (हे ऋत्विक् यजमान) हमारा अभिप्राय समान हो, तुम्हारा अन्तःकरण समान हों, तुम्हारा मन समान हों। तुम्हारा मेल शोभनीय हों (यही प्रार्थना है)।

व्याकरण-

- आकूतिः- आपूर्वक कू-धातु से क्तिन् प्रत्यय होने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- समाना- समानानि इसका वैदिक रूप है।
- असति- अस्-धातु से लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न

835. सञ्ज्ञान सूक्त का ऋषि, छन्द, और देवता क्या है?
836. वृषन् का क्या अर्थ है?
837. युवसे यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
838. भर यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
839. वदध्वम् यह किस लकार का रूप है?
840. समानी में क्या प्रत्यय है?
841. वः का क्या अर्थ है?
842. आकूतिः का क्या अर्थ है?
843. असति यह रूप किस धातु का है?
844. असति का लौकिक रूप क्या है?

पाठ का सार

8.6 संज्ञानसूक्त का सार

सभी इच्छाओं के पूरयिता अग्नि देव को उद्देश्य करके इस प्रकृत संज्ञान सूक्त में प्रार्थना की गयी है कि- सबका अभीष्ट प्रदाता जो अग्निदेव सब प्राणी समूह का सम्यक मेल करवाता है। और पृथिवी में अर्थात् वेदी में जो अग्निदेव प्रज्वालित होते हैं। वैसे अग्निदेव हम सबके लिए धन प्रदान करें।

एक साथ स्तोतृगण के प्रति कहा जाता है कि - आप सब के साथ मिलकर चलें, मिलकर बोलें। आपके मनमें समान समय में ही ज्ञान प्राप्त हों। जैसे प्राचीन काल में ज्ञान में समान होकर देव यज्ञभाग को स्वीकार करते थे, वैसे ही आप सब भी एकमत होकर धन को स्वीकार करो।

और सभी स्तोताओं की स्तुति एक विधा ही हों। उनकी प्राप्ति भी एक ही हो। आपकी समान स्तुति मेरे द्वारा अभिमन्त्रित है। और आपकी समान हवि से मुझे आहूत किया जाए।

और अन्त में यजमानों को उद्देश्य करके कहा जाता है कि - आपका सङ्कल्प समान हों। आपका हृदय समान हों। तथा मन भी समान हो। और जिससे आपका सहभाव शोभनिय हो यह प्रार्थना है।

पाठान्त प्रश्न

(सूर्यसूक्त)

845. सं समिद्युवसे.. इस मन्त्र को पूरा करके इसकी व्याख्या करो?धातु।

846. सूर्य के अश्व स्वरूप की समन्त्र व्याख्या करो।

847. सूर्य स्वरूप की समन्त्र व्याख्या करो।

848. अद्या देवा उदिता... इस मन्त्र को पूरा करके इसकी व्याख्या करो।

849. तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे... इस मन्त्र को पूरा करके इसकी व्याख्या करो।

(संज्ञानसूक्त)

850. संज्ञान सूक्त का सार लिखो।

851. संगच्छध्वम्.. इस मन्त्र को पूरा करके व्याख्या करो।

टिप्पणी

852. समानो मन्त्रः समितिः... इस मन्त्र को पूरा करके इसकी व्याख्या लिखो।

853. समानी व आकूतिः... इस मन्त्र को पूरा करके इसकी व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तरभाग- (सूर्यसूक्त।)

854. कुत्स ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, सूर्य देवता।

855. आश्चर्यकर।

856. आ उपसर्ग पूर्वक प्रा धातु से लुङ् के प्रथमपुरुष एकवचन में।

857. स्था धातु से क्वसु प्रत्यय करने पर।

858. कल्याण।

859. भद्र हरित चित्र यह अनुमाद्यास नमन करेंगे।

860. इण्गतौ धातु से तन्प्रत्यय से एत सिद्ध होने पर एत पूर्वक गम्-धातु से ड्वप्रत्यय करने पर।

861. अनुपूर्वक मद्-धातु से यति प्रत्यय करने पर।

862. देव्यु-धातु से क्यच् और शतृ के प्रथमाबहुवचन में।

863. इण्धातुः।

उत्तरभाग- (सूर्यसूक्त॥)

864. आदित्य।

865. सर्व।

866. सप्तम्यर्थ में।

867. अधिकरणार्थ में।

868. ङीप्प्रत्यय।

869. युज्-धातु से आत्मनेपदी लुङ् लकार के प्रथमपुरुष एकवचन में।

870. रसहरणशील।

871. पाधातु से असुन्प्रत्यय करने पर।

872. निपातस्य च।

873. मम्ह् अथवा मह् धातु से लिट् मूलक लोट् लकार के प्रथमपुरुष बहुवचन में।

उत्तरभाग- (संज्ञानसूक्त॥)

874. ऋषि- आङि्गरा। छन्द- 1, 2, 4 अनुष्टुप, 3 त्रिष्टुप्। देवता- 1 अग्नि, 2, 3, 4 संज्ञान।

875. कामों का वर्षित।

876. यु-धातु से लट् लकार के आत्मनेपद के मध्यमपुरुष एकवचन में युवसे रूप सिद्ध होता है।

877. भृ-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन भर यह रूप बनता है।

878. लोट्लकार में।

879. ङीप्प्रत्यय।

880. तुम्हारा।

881. आपूर्वक कु-धातु से क्तिन्प्रत्यय करने पर।

882. अस्-धातु से।

883. अस्ति।

अठवाँ पाठ समाप्त

9

पूषन्सूक्त और उषस्सूक्त

प्रस्तावना

इस पाठ से दो सूक्तों को हम आत्मसात करेंगे।

वेद में पूसन्सूक्त (म-6.54) प्रसिद्ध सूक्त है। पूषा यह शब्द पोषण अर्थक पुष्-धातु से बना है। यास्क के मत के अनुसार से आदित्य का रूप किरणों के द्वारा पुष्ट होता है, इसलिए वह पूषा कहलाता है। बृहद्देवताकार शौनक के मतानुसार से पूषा पोषण करता हुआ पृथ्वी को पोषित करता है, तथा किरणों के द्वारा अन्धकार को हटाता है। पूषा वस्तुत सूर्य ही है। लोगो ने बाद में इसको भिन्न रूप देकर सूर्य से अलग विशिष्ट रूप का उसमें आरोप किया है। जो सभी लोगों के लिए आवश्यक है। इस पूषन्सूक्त के भारद्वाज ऋषि है, पूषन्देवता, गयत्री छन्द है। इस सूक्त को आधार करके सायणाचार्य ने भाष्य लिखा है। वह सायनभाष्य इस नाम से विख्यात है। उस भाष्य का भी कुछ अंश दिया है।

दूसरा सूक्त उषस्सूक्त (ऋ.वे.3.59)। और वह ऋग्वेदीय है। ऋग्वेद में उषस्सूक्त के 20सूक्त है। वहां उषादेवी की स्तुति की गई है। उषादेवी के नाम लगभग 200 सूक्तों में उल्लेखित है। उषा शब्द प्रकाश अर्थक वस्-धातु से बना है। इसी प्रकार उषा शब्द का अर्थ प्रकाशिका है। उषादेवी के वर्णन काल में वैदिक ऋषियों ने अपने काव्य की प्रतिभा को दिखाया है। ऋग्वेदीय उषस्सूक्त के वामदेव ऋषि है, त्रिष्टुप् छन्द है, उषा देवता है। तीसरे मण्डल में विद्यमान उन्सठवां सूक्त है (3.59)।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- पूषन्सूक्त को जान पाने में;

- पूषन्देवता के स्वरूप को जान पाने में;
- उषादेवी विषय में जान पाने में;
- उषादेवी के महत्व को समझने में;
- उषादेवी के विषय में विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- मन्त्रों का संहिता पाठ जान पाने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का पदपाठ जान पाने में;
- अपने आप मन्त्रों की व्याख्या करने में;
- अपने आप मन्त्रों का अन्वय आदि करने में;
- मन्त्र में स्थित शब्दों का व्याकरण जानने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- लौकिक वैदिक शब्दो का भेद जानने में।

।।पूषन्सूक्त।।

9.1 मूलपाठ

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये।
धिये पूषन्नयुज्महि।।1।।

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम्।
वामं गृहपतिं नय।।2।।

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय।
पणेश्चिद्वि म्रदा मनः।।3।।

वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि।
साधन्तामुग्र नो धियः।।4।।

परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे।
अथेमघ्मभ्य रन्धय।।5।।

वि पूषघ्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम्।
अथेमस्मभ्य रन्धय।।6।।

आ रिरव किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे।
अथेमस्मभ्य रन्धय।।7।।

यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां विभर्ष्याघृणे।
तया समस्य हृदयघ्मा रिरव किकिरा कृणु॥8॥

या ते अष्टा गोओपशाघृणे पशुघ्साधनी।
तस्यास्ते सुम्नमीमहे॥9॥

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत।
नृवत्कृणुहि वीतये॥10॥

9.1.1 मन्त्र व्याख्या (पूषन् सूक्त)

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये।
धिये पूषन्नयुज्महि॥1॥

पदपाठ- वयम्। ओं (ॐ) इति। त्वा। पथः। पते। रथम्। न।
वाजऽसातये। धिये। पूषन्। अयुज्महि॥1॥

अन्वय- पथस्पते पूषन्, वयम् उ वाजसातये धिये रथं न त्वा अयुज्महि।

व्याख्या- हे पुष्टि करने वाले, मार्ग के स्वामिन् हम लोग ही संग्राम का विभाग करने वाले प्रज्ञा के लिये आपको विमान आदि यान के समान प्रयुक्त करते है। उ यह पूरक है।

सरलार्थ- हे स्वामिन् हमारे द्वारा धनप्राप्ति के लिये तथा कार्य को पूर्ण करने के लिए आप हमारे सहायक है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- पथस्पते-पथ मार्ग का स्वामी सम्बोधन एकवचन में यह रूप बनता है।
- सातये-सन्-धातु से क्तिनप्रत्यय होने पर चतुर्थी एकवचन में यह रूप बनता है।
- अयुज्महि-युजिर् इस धातु से लुङ् लकार में उत्तम पुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।
- पूषन्-पुष्-धातु से कनिन्प्रत्यय करने पर सम्बोधन एकवचन में यह रूप बनता है।

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयंतदक्षिणम्।
वामं गृहपतिं नय॥2॥

पदपाठ- अभि। नः। नर्यम्। वसु। वीरम्। प्रयंतऽदक्षिणम्।
वामम्। गृहऽपतिम्। नय॥2॥

अन्वय- नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणं वामं गृहपतिं अभि नः नय।

व्याख्या- हे पुष्टि करने वाले! आप मनुष्यों में उत्तम मनुष्यों के लिए हितकारी धन को प्राप्त कराते हैं, हे स्वामी आप ही हम लोगों के लिए उत्तम पति, उत्तम भार्या, प्रशंसित धन की प्राप्ति करा के उत्तम शिक्षा से धर्म आचरण की प्राप्ति कराइये।

सरलार्थ- हे स्वामी मनुष्यों को धन के प्रति, शुभ लक्षण युक्त पुरुष के समान हमारे को भी प्रशंसनीय गृहस्थ की प्रति ले जाइये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- नर्यम्-नृशब्द से यत्प्रत्यय करने पर, नृभ्यः हितम् यह रूप बनता है।
- वामम्-वन्-धातु से मनिन् प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- प्रयत- प्रपूर्वक यत्-धातु से क्तप्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय।
पणेश्चिद्वि म्रदा मनः॥3॥

पदपाठ- अदित्सन्तम्। चित्। आघृणे। पूषन। दानाय। चोदय। पणेः। चित्। वि। म्रद। मनः॥3॥

अन्वय- आघृणे पूषन्, अदित्सन्तं दानाय चोदय, पणेः चित् मनः वि म्रद।

व्याख्या- हे सब ओर से प्रकाशमान स्वामी आप देने की अनिच्छा करते हुए भी देने वाले को देने के लिए प्रेरणा दीजिये, फिर भी देने वाले को और अपने मन को भी प्रेरणा दीजिये, और जुआ खेलने वाले के भी अन्त करण को विशेष रूप से दण्ड दीजिये।

सरलार्थ- हे प्रकाशयुक्त भगवन! अनिच्छुक व्यक्ति को देने के लिए प्रेरीत करें। व्यापारी के मन को भी विशेषरूप से सरल कीजिये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- अदित्सन्तम्- सन्नन्त दा-धातु से शतृ प्रत्यय करने पर दित्सत् इस रूप में नञ्समास करने पर द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है।
- चोदय-चुद्-धातु से यण लोट् लकार में करने पर मध्यमपुरुष एकवचन में चोदय यह रूप बना।
- विम्रद-विपूर्वक म्रद्-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में विम्रद यह रूप बना।

वि पथो वाजसातये चिनुहि। वि। मृधो जहि।
साधन्तामुग्र नो धियः॥4॥

पदपाठ- वि। पथः। वाजऽसातये। चिनुहि। वि। मृधः। जहि। साधन्ताम्। उग्र। नः। धियः॥

अन्वय- उग्र, वाजसातये पथः विचिनुहि, मृधाः वि जहि, नः धियः साधन्ताम्।

व्याख्या- हे तेजस्वी सेनापति आप विज्ञान अथवा धन की प्राप्ति, अथवा संग्राम के लिए मार्ग का संचय करो तथा सग्रामों में प्रवृत दुष्टों को विशेषता से मारो जिससे हमारी बुद्धियाँ कार्यो को सिद्ध करे।

सरलार्थ- हे पूषन् आप उत्तम निर्भय मार्गों को बनाओ, उनमे विपथगामियों को मारो जिससे सब की बुद्धियाँ उत्तम कर्मो की उन्नति करने के लिए प्रवृत हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- चिनुहि- चि-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बना।
- मृधा:-मृध-धातु से क्विप् करने पर द्वितीया बहुवचन में यह रूप बना।
- जहि-हन्-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध हुआ।
- साधन्ताम्-आत्मनेपदि साध्-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष बहुवचन में।

परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे।
अथेमस्मभ्य रन्धय॥5॥

पदपाठ- **परि। तृन्धि। पणीनाम्। आरया। हृदया। कवे। अथ। ईम्। अस्मभ्यम्। रन्धय॥**

अन्वय- कवि, आरया पणीनां हृदया परि तृन्धि, अथ ईन् अस्मभ्यं रन्धाय।

व्याख्या- हे कवि! आप उत्तम कोड़ा से द्युत आदि व्यवहार करने वाले पुरुषो के हृदयों को सब और से मारो इसके अनन्तर हमारे लिए सब ओर से दुष्टों को पीड़ित करो और हमारे लिये सुख दीजिये।

सरलार्थ- हे प्राज्ञ जो अपवित्र शिक्षा देने वाले और छली पुरुष अपने राज्य में हो उनको अच्छे से दंड दीजिये जिससे न्यायमार्ग के बीच हम लोग सुखी हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- तृन्धि-तृद्-धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बना।
- रन्धाय-रध्-धातु से लोट् लकर मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध हुआ।
- हृदया-हृदय शब्द का द्वितीया बहुवचन में वैदिक रूप है। लोक में तो हृदयानि है।
- आरया-ऋ-धातु से अण टाप करने पर तृतीया एकवचन में यह रूप बना।

पाठान्त प्रश्न

883. पूषन्सूक्त के कौन ऋषि हैं, क्या छन्द है, और देवता कौन है?

884. उ इसका क्या अर्थ है?

885. पथस्पते यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

टिप्पणी

886. सातये यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

887. अयुज्महि यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

888. पूषन् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

889. नर्यम् इसका क्या अर्थ है?

890. प्रयतदक्षिणम् इसका विग्रह क्या है?

891. नर्यम् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

892. आघृणे इसका क्या अर्थ है?

893. प्रयतम् इसका क्या अर्थ है?

894. तृन्धि यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

895. चिनुहि यह रूप कैसे सिद्ध हुआ है?

896. मृधः इसका क्या अर्थ है?

897. हृदया इसका लौकिक रूप क्या है?

9.1.2 मन्त्र व्याख्या

विपूषन्नारया तुद पणेरिंच्छ हृदि प्रियम्।
अथेमस्मभ्य रन्धय॥6॥

पदपाठ- **वि। पूषन्। आरंया। तुद। पणेः। इच्छ। हृदि। प्रियम्॥ अथ। ईम्। अस्मभ्यम्। रन्धय॥6॥**

अन्वय- पूषन्, आरया वितुद, पणेः (हृदि) प्रियम् इच्छ, अथ ईम् अस्मभ्यं रन्धय॥

व्याख्या- हे पूषन्, आप दुष्टों को सब ओर से अति पीड़ित करो तथा हमारे लिए हृदय में प्यार की इच्छा स्थापित करो इसके अनन्तर कोड़ों से बैलों के समान प्रशंसित व्यवहार करने वाले के असम्बन्धि जनों को विशेषता से पीड़ा दो॥

सरलार्थ- हे पूषन् आप दुष्टों को दण्ड देकर श्रेष्ठो का सत्कार कर सब को श्रेष्ठ कर्मो में प्रेरणा दो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- तुद-तुद्-धातु से लोट लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बना।
- इच्छ-इष्-धातु से लोट लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे।
अथेमस्मभ्य रन्धय॥7॥

पदपाठ- **आ। रिख। किकिरा। कृणु। पणीनाम्। हृदया। कवे॥ अथ। ईम्। अस्मभ्यम्। रन्धय॥7॥**

अन्वय- कवे, पणीनां हृदया आ रिख, किकिरा कृण उ, अथ ईम् अस्मभ्यं रन्धाय।

व्याख्या- हे कवि! आप व्यवहार करने वालों के व्यवस्था पत्रों को सब ओर से लिखो तथा दुष्टों के हृदय को अति पीड़ा दो, इसके बाद हम लोगों के लिए सुख करो।

सरलार्थ- हे प्राज्ञ पूषन् आप व्यापारी के हृदय को अनुकूल करो और कोमल भी करो। उसके बाद वह हमारे वश में रहें।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- रिख-रिख्-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- किकिरा-कृ-धातु से अच करने पर द्वितीया बहुवचन में नपुंसकलिङ्ग में वैदिक रूप है। लोक में तो किकिराणि यह रूप बनता है।
- कृणु-कृ-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में। (कुरु इसका वैदिकरूप है -कृणु) यह रूप बनता है।

यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु॥8॥

पदपाठ- **याम्। पूषन्। ब्रह्मऽचोदनीम्। आराम्। बिभर्षि। आघृणे॥ तया। समस्य। हृदयम्। आ। रिख। किकिरा। कृणु॥8॥**

अन्वय- आघृणे पूषन्, ब्रह्मचोदनीयम् आरां विभर्षि तया समस्य हृदयं आरिख, किकिरा कृणु।

व्याख्या- हे स्वामी सब ओर से न्याय के प्रकाश करने वाले आप जिस विद्या धन प्राप्ति के लिए प्रेरणा करने तथा काष्ठ के विभाग करने वाली आरी को धारण करते हो उससे तुल्य अर्थात जो सब में बुद्धिवाला है उसके हृदय को अच्छे प्रकार से लिखो और उत्तम गुणों को फैलाओ।

सरलार्थ- हे प्रकाशमान पूषन् आप विद्या और धन की प्राप्ति की प्रेरणा के समान राजनीति को धारण करो जिससे सब की न्याय व्यवस्था हो सके।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- ब्रह्मचोदनीम्-ब्रह्म उपपद से चुद्-धातु से ल्युट् लकार और ङीप करने पर यह रूप बनता है।
- विभर्षि-विपूर्वकभृ-धातु से लट लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी।
तस्यास्ते सुम्नमीमहे॥9॥

पदपाठ- **या। ते। अष्ट्रां। गोऽओपशा। आघृणे। पशुऽसाधनी॥**
तस्याः। ते। सुम्नम्। ईमहे॥9॥

अन्वय- आघृणे, ते या गोओपशा पशुसाधनी अष्ट्रा ते तस्याः सुम्नम् ईमहे।

व्याख्या- हे सब ओर से पशु विद्या का प्रकाश करने वाले जो आपकी व्याप्त होने वाली जिसमे गौयें परस्पर सोती हैं और जिसमें पशुओं को सिद्ध करते हैं वह क्रिया वर्तमान है उससे आपके सुख को हम लोग मागंते हैं।

सरलार्थ- हे प्रकाशमान जिस क्रिया से पशु बढ़े उस क्रिया को बढ़ाकर सुख को मांगो। हम तुम्हारे अस्त्रों के लिए सुख शान्ति चाहते है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- अष्ट्रा-अश्-धातु से ष्ट्रन और टाप् करने पर यह रूप बनता है।
- गोओपशा-गवाम् ओपशा यहाँ तत्पुरुष समास है।
- पशुसाधनी- पशु को साधना। साध्-धातु से ल्युट् ङीप् करने पर साधनी यह रूप बनता है।
- सुम्नम्-सुपूर्वक म्ना-धातु से कप्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है।
- ईमहे-आत्मनेपदि ईङ्-धातु से उत्तमपुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत।
नृवत्कृणुहि वीतये॥10॥

पदपाठ- **उत। नः। गोऽसनिम्। धियम्। अश्वऽसाम्। वाजऽसाम्। उत॥**
नृऽवत्। कृणुहि। वीतये॥10॥

अन्वय- नः गोषणिम् उत अश्वसां उत वाजसां धियं नृवत् वीतये कृणुहि।

व्याख्या- हे पूषन् आप हम लोगों के प्राप्ति के अर्थ गौओं को अलग-अलग करने वाली और घोड़ों का विभाग करने वाली और अन्नादि पदार्थों का विभाग करने वाली उत्तम बुद्धि को मनुष्यों के तुल्य करो।

सरलार्थ- हे पूषन् हमको गाये प्राप्त हों, घोड़े प्राप्त हों और अन्नादि की प्राप्ति की अभिलाषा को पूर्ण करके राजा के समान आनन्द को पूर्ण करो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- गोषणिम्-गोपूर्वक षणु-धातु से इप्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- अश्वसाम्, वाजसाम्-षष्ठी बहुवचन में वैदिक रूप है। लोक में तो अश्वानाम्, वाजानाम् यह बनता है।
- नृवत्-शब्द से मतुप्प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- वीतये-वी-धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर वीति, उसका चतुर्थी एकवचन में रूप बनता है।
- कृणुहि-कृ-धातु से लोट लकार मध्यमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप है। लोक में तो कुरु रूप बनता है।

पाठान्त प्रश्न

898. आरा इसका क्या अर्थ है?
899. पणि: इसका क्या अर्थ है?
900. वि तुद इसका क्या अर्थ है?
901. किकिरा इसका क्या अर्थ है?
902. किकिरा इसका लौकिक रूप क्या है?
903. किकिरा यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
904. कृणु इसका लौकिक रूप क्या है?
905. ब्रह्मचोदनीम् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
906. अष्ट्रा यह रूप कैसे सिद्ध होते?
907. गोओपशा यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
908. सुम्रम् यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
909. ईमहे यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
910. सुम्नम् इसका क्या अर्थ है?
911. वीतये इसका क्या अर्थ है?
912. कृणुहि इसका लौकिक रूप क्या है?

9.2 पूषन्देव का स्वरूप

ऋग्वेद में वर्णित सभी देवों की प्राकृतिक शक्ति भावना से कल्पना की है। परन्तु पूष देव के विषय में वैसा कुछ भी नहीं सुना जिससे उसकी प्राकृतिक शक्ति में कल्पना की जाये ऐसा नही कह सकते हैं। पूषा-यह शब्द पुष्-धातु से निष्पन्न हुआ है, पुष् धातु का अर्थ पोषण है। अत:जो शक्ति देने वाला है और जो पोषक है उसे ही पूषा-शब्द से कहा जाता है। हमारे जगत में अन्तरिक्ष स्थानीय सूर्यदेव ही सबसे उत्तम पोषक है। वह जैसे प्राणियों के जीवन शक्ति के पोषक हैं, वैसे ही भौतिक सम्पदा की वृद्धि में भी सहायक हैं, अथवा जड़ पदार्थों का पोषण करते हैं। सूर्य के उस प्रकार के स्वरूप को ही पूषरूप से वैदिक ऋषियों के द्वारा कल्पना की गई है। अत: पूषा द्युस्थानीय देव हैं।

प्राचीन आचार्यों को भी पूष देव के पोषण करने के विषय में ज्ञान था। निरुक्तकार यास्क महर्षि ने अपने निरुक्त ग्रन्थ में पूषा शब्द की व्युत्पत्ति दिखाते समय पूष देव के भरण-पोषण के रूप का ही वर्णन किया है। और भी यास्क के द्वारा कहा गया है- 'यद्रश्मिपोषं पुष्यति तत् पूषा भवति'। (12.7) अन्य जगह उस पूषदेव को आदित्य रूप से ही वर्णन किया गया है और उसके बारे में कहा गया है- 'सर्वेषां भूतानां गोपायितादित्य:' (7.9) इति। अन्य वैदिकग्रन्थ में शौनक के द्वारा कहा गया है-

'पूष्यन् क्षितिं पोषयति प्रणुदन् रश्मिभिस्तम:।
तेनैनमस्तौत् पूषेति भरद्वाजस्तु पञ्चभि:॥'(2.63)। इति।

मध्य काल में वेदव्याख्या कर्ता सायण ने पूषदेव को उदीष्ट कहा- 'जगत्पोषक: पृथिव्यभिमानिदेव:'। इति। ऋग्वेद में साकल्य के द्वारा आठ सूक्तमें पूषदेव की स्तुति की है। वह आघृणि: अर्थात प्रकाशमान हैं। वह कपर्दी अर्थात् किरणों से युक्त हैं। सफेद वर्ण के और तेज बाण उसके प्रधान शस्त्र हैं। उसका वाहन बकरा है। वैसे कहा भी है- 'अजा: पूष्णश्च वाजिन'(बृहद्देवता8.141)। घी से मिला हुआ जौ का सत्तु उसका प्रधान खाद्य है। ब्राह्मण साहित्य में कहा गया है की दांत नही होने से वह चूर्ण खाद्य द्रव्य को खाते थे। वैसे शुक्लयजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण में उसे स: अदन्तक: आसीद् ऐसा कहा गया है। उसके विषय में एक उपाख्यान भी प्राप्त होता है।

ऋग्वेद का समाज कृषि प्रधान था। और कृषिक्षेत्र में पशूओं का उपयोग अधिक था। उससे पशुपालन को भी जीविका रूप से उन्हें स्वीकार किया है। पूषा ऋग्वेद में पशुपालको का प्रधान देव थे। गायों की सम्पत्ति ही सबसे श्रेष्ठ सम्पदा थी ऐसा सुना जाता है। अत: उनकी रक्षा के लिए सभी जागरूक थे। अत: वे पूषदेव के मन्त्रों में प्रार्थना करते है की हे पूषन् हमारा गोधन हमेशा सुरक्षित हो, शेर आदि पशुओं के भय से मुक्त हो, कुए आदि में नहीं गिरें। नये घास के मैदान की खोज में वे दूर-दूर देशों में जाते थे। तब जाने के समय में वे इसी देव की स्तुति करते थे, क्योंकि पूषदेव ही उनको मार्ग दिखाने वाला और रक्षक था। वह पशुपाल कों को बाधाओं से रहित मार्गों में प्रवृत

करता, भयानक जन्तुओं से और दुष्ट मनुष्यों के हाथों से उनकी रक्षा करता है। वह देव घास से युक्त क्षेत्रों में उनको प्रवृत करता है। और जब पशु खो जाते तो वह ही उन पशुओं को प्राप्त कराता है। ऋग्वेद में विशिष्ट पथप्रदर्शक के रूप में उस देव का ही आगमन होता है। वैसे ही मृत पुरुषों के परलोक जाने के समये में वह ही पथप्रदर्शक के रूप में आते थे ऐसा ऋग्वेद के मन्त्रों में वर्णन देखा जाता है।

इस प्रकार अनेक कर्मो में उस देव की प्रधानता देखी जाती है, ऋषियों ने वेदमन्त्रों में उसकी स्तुति कि है।

9.3 पूषन्सूक्त का सार

ऋग्वेदसंहिता के छठे मण्डल का चौवनवां (54) सूक्त हि पूषन्सूक्त है। इस सूक्त के ऋषि भारद्वाज, छन्द गायत्री, और देवता पूषा है। यहाँ दश मन्त्र हैं। जो पुरुषनाश हुए धन को प्राप्त करना चाहता है, उसे इस सूक्त का जप करना चाहिए ऐसा आश्वलायन सूक्त में इस सूक्त का विनियोग प्राप्त होता है। वैसे भी वेद के आश्वलायन गृह्यसूत्र में – 'संपूषन् विदुषा इति अथवा नष्टमधिजिगमिषन् मूलहो वा' ऐसा कहा गया है।

हे मार्गरक्षक पूषन् हम धन प्राप्ति के लिए और कार्यो को पूर्ण करने के लिए आपको स्मरण करते है। तुम हमको समर्थ बनाओ। तुम उस पुरुष के रहस्य को हमे दो, उस सरल उपाय से नष्ट हुए धन की प्राप्ति के विषय में उपदेश देते हैं, और हमारे नष्ट धन कहाँ है यह दिखाता है। हे पुषन् देव हमारे ऊपर अनुग्रह करो जिससे हम उस मनुष्य के साथ को प्राप्त करें जो मनुष्य जानता है की हमारे नष्ट गायें और पशु कहाँ है। वह ही हमको उन घरों का बोध कराये जहाँ हमारी अपहरण की गई गायें हैं।

पूषन्-देव का शस्त्र चक्र है। वह चक्र अविनाशि है अर्थात् उस चक्र का विनाश कोई भी नहीं कर सकता है। इस चक्र का तोड़ भी नहीं है। इस चक्र की जो धार है वह व्यर्थ नहीं है, अर्थात् वह धार कभी कम नहीं होती उस चक्र से ही उन चोरों का विनाश करो जिन्होंने हमारे धन आदि को लुटा है। वैसे वेद के पूषन्सूक्त में कहा–

> **'पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते।**
> **नो अस्य व्यथते पविः'॥3। इति।**

जो पूषदेव के लिए हवि देता है, अर्थात् हवि द्रव्य के द्वारा जो इसकी पूजा करता है, उस यजमान को पूषा कभी भी नहीं भूलता है। और भी पूषदेव उसके लिए सबसे पहले सभी प्रकार के धन को देते हैं। वैसे पूषन् सूक्त में कहा–

> **'यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते।**
> **प्रथमो विन्दते वसु'।इति।4।**

हे पूषन्, हमारे पशुओं के रक्षा के लिए हमेशा उनके पीछे जाईये। हमारे घोड़ों को चोर के हाथों से छुड़ाओ, और हमें धन दीजिये। वैसे वेद में – 'पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः। पूषा वाजं सनोतु नः'।इति। जो सोमरस का पोषण करता है, उस यजमान के गायों के पीछे जाओ और उनकी रक्षा करो। और भी मेरे जैसे तुम्हारे स्तोता हैं, उनकी जो गायें हैं उनके पीछे जाओ। और उनकी रक्षा करो। वैसे वेद के पूषन्सूक्त में कहा–

'पूषन्नन्नु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः।
अस्माकं स्तुवतामुप'।इति।

हमारी जो गायें है उनको कोई भी कष्ट अथवा उनका नाश न हो, किसी को भी गाय को कोई पीड़ा न हो। कोई भी गाय कुएँ में गिरकर नहीं मरे। अतः तुम हमारी दोष से रहित गायों के साथ सायंकाल में आओ। और भी कहा गया है–

माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे।
अथारिष्टाभिरा गहि।। इति।

जो पूषा हमारी प्रार्थना को सुनाता है, और दरिद्रता को दूर करता है, जिसका धन कभी भी नष्ट नही होता है, उस प्रकार का जो पूषदेव है, और भी जो सबका स्वामी है, अर्थात् शासन कर्ता उस प्रकार के पूषदेव की हम प्रार्थना करते है। और भी कहा गया है–

'शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम्।
ईशानं राय ईमहे'।इति।

हे पोषक देव तेरे कार्यो से निरन्तर कभी भी हमको दुःख अथवा कष्ट की प्राप्ति नहीं होती है। हम हमेशा तेरे स्तोता थे। अपने दक्षिण हाथ को मेरी तरफ फैलाओ, मेरा जो धन नष्ट हो गया है, उस धन को मुझे लौटाओ अर्थात् नष्ट गाय-धन पुनः आयें यह यजमान की अन्तिम प्रार्थना है। और भी वेद में कहा–

'परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम्।
पुनर्नो नष्टमाजतु'।इति।

इस प्रकार ये पूषन्सूक्त में स्थित दश ऋग्वेद के मन्त्र हैं, उनका सार अतिसंक्षेप से यहाँ पर प्रस्तुत किया है।

पाठसार-1

इस पाठ में दो सूक्त विद्यमान है। उन दोनों में प्रथम पूषन् सूक्त है। इस पूषन् सूक्त में दश मन्त्र हैं। दश मन्त्रों के द्वारा सभी प्रकार की प्रार्थना की गई है। वहां आदि मन्त्र में धन प्राप्ति के लिए कार्यो को पूर्ण करने के लिए कहा गया है। दूसरे मन्त्र

में धनवान और बलवान गृहस्थ की प्रशंसा करते हुए हमे भी उसी प्रकार बनाने के लिए प्रार्थना की गई है। तीसरे मन्त्र में देने की इच्छा न रखने वालों मनुष्यों को देने के लिए प्रेरित करने की प्रार्थना की है। चौथे मन्त्र में धन प्राप्ति के मार्ग में विद्यमान शत्रु के नाश के लिए प्रार्थना की गई है। पाँचवें मन्त्र में व्यापारी के हृदय की चारों दिशाओं में कीर्ति के लिए प्रार्थना की गई है। छठें मन्त्र में पूर्वमन्त्र के समान ही कहा गया है। सातवें मन्त्र में व्यापारी के हृदय को कोमल करने के लिए प्रार्थना की गई है। आठवें मन्त्र में सभी मनुष्यों के हृदयों को कोमल करने के लिए प्रार्थना की गई है। नौवें मन्त्र में सुख प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गई है। दशवें मन्त्र में गायों की प्राप्ति के लिए, घोड़ों की प्राप्ति के लिए, और अन्न की प्राप्ति के लिए अभिलाषाओं को और राजा के समान आनन्द देने के लिए प्रार्थना की गई है। इस प्रकार पूरे पूषन् सूक्त में प्राय:व्यापारी के हृदय को कोमल करने के लिए और धन प्राप्ति के लिए अधिकांश प्रार्थना की है।

उषस्सूक्त

9.4 (ऋ.वे.3.59) मूलपाठ

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः
स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवतिः पुरन्धि-
रनुव्रतं चरसि विश्ववारे॥1॥

उषो देवमर्त्या वि भाहि
चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा
हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये॥2॥

उष! प्रतीची भुवनानि विश्वो
र्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः।
समानमर्थं चरणीयमाना
चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व॥3॥

अव स्यूमेव चिन्वती मघो
न्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्व100र्जनन्ती सुभगा सुदंसा
आन्तादिवः पप्रथ आ पृथिव्याः॥4॥

अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं
प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम्।
ऊर्ध्वं मधुध दिवि पाजो अश्रे
त्प्र रोचना रुरुचे रण्वसदृक्॥5॥

ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या
रेवती रोदसी चित्रमस्थात्।
आयतीमग्न उषसं विभातीं
वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः॥6॥

ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्
वृषा मही रोदसी आ विवेश।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया
चन्द्रेव भानुं वि-दधे पुरुत्रा॥7॥

9.4.1 मन्त्र व्याख्या

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः
स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवतिः पुरन्धि
रनुव्रतं चरसि विश्ववारे॥1॥

पदपाठ– उष!। वाजेन। वाजिनि। प्रऽचेताः। स्तोमम्। जुषस्व। गृणतः॥
मघोनि। पुराणी। देवि। युवतिः। पुरम्ऽधिः। अनु। व्रतम्।
चरसि। विश्ववारे॥

अन्वय– वाजेन वाजिनि मघोनि उषः प्रचेताः गृणतः स्तोमं जुषस्व। विश्ववारे देवि पुराणी युवतिः पुरंधिः व्रतम् अनुचरसि।

व्याख्या– अन्न से अन्नवति तथा धन से धनवति हे उषा देवी। तुम प्रकृष्ट ज्ञान वाली होती हुई स्तुति करने वाले स्तोता के स्तोत्रा को ग्रहण करो सम्पूर्ण विश्व के द्वारा वर्णनीय, दिव्य गुणों से सम्पन्न हे उषा देवी तुम पुरातन युवती के समान हो अथवा सनातन काल से युवती ही बनी हुई हो, बहुत अधिक बुद्धिशाली हो और तुम हमारे यज्ञ आदि नियम व्रत को लक्ष्य करके विचरण करती हो अर्थात उनका पालन करती हो।

सरलार्थ– अन्नवति और धनवति हे उषा! प्रकृष्टज्ञान से सम्पन्न होती हुई तुम स्तुति करने वाले मनुष्य की प्रार्थना को स्वीकार करो। हे सब कुछ चाहने वाली देवि उषा! पुरातन युवति के समान नाना प्रकार से प्रशंसनीय होती हुई इस यज्ञ को लक्ष्य करके विचरण करो।

टिप्पणी

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- प्रचेता:- प्रपूर्वक चित्-धातु से तृच् प्रत्यय करने पर प्रथमा बहुवचन में प्रचेता: यह रूप बनता है।
- गृणत:- गृ-धातु से श्ना प्रत्यय करने पर और शतृ प्रत्यय करने पर षष्ठी एकवचन में गृणत: यह रूप बनता है।
- जुषस्व- जुष्-धातु से लोट्लकार मध्यमपुरुष एकवचन में जुषस्व यह रूप बनता है।
- चरसि- चर्-धातु से लट्लकार मध्यमपुरुष एकवचन में चरसि यह रूप बनता है।

उषो देवमर्त्या वि भाहि
चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा
हिरण्यवर्णा पृथुपाजसो ये॥2॥

पदपाठ- **उष:। देवि। अमर्त्या। वि। भाहि। चन्द्रऽरथा। सूनृता। ईरयन्ती॥ आ। त्वा। वहन्तु। सुऽयमास:। अश्वा:। हिरण्यवर्णाम्। पृथुऽपाजस:। ये॥**

अन्वय- उष: देवि अमर्त्या चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती वि भाहि। पृथुपाजस: सुयमास: ये अश्वा: हिरणवर्णां त्वा आ वहन्तु।

व्याख्या- हे उषा देवि अमर्त्या अर्थात मरण धर्म से रहित तुम विशेष रूप से शुशोभित हो जाओ, तुम्हारी वाणी प्रिय हो तथा तुम सत्य वाणी का उच्चारण करो। उस प्रकार की तुम सूर्य किरण के साथ सम्बन्ध होने से विशेष रूप से प्रकाशमान हो, तुम्हारे ये अत्यधिक शक्तिशाली अरूण वर्ण के घोड़े हैं, वे सुंदर शोभायमान रथ में जोड़कर वे स्वर्ण के समान दीप्तिमान तुमको हमारे सम्मुख लायें।

सरलार्थ- हे देवि उषा! दिव्य गुणों वाली तुम मरण धर्म से रहित होती हुई, सत्य और प्रिय वाणी का उच्चारण करती हुई विशेष रूप से प्रकाशित हो। अत्यधिक बलशाली और अच्छी प्रकार से नियंत्रित जो तुन्हारे अरुण वर्ण के घोड़े है, वे स्वर्ण से युक्त आपको हमारे सम्मुख लायें।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- भाहि- भा-धातु से लोट् लकार में मध्यमपुरुष एकवचन में भाहि यह रूप बनता है।
- ईरयन्ती- ईर्-धातु से णिच् प्रत्यय करने पर शतृ प्रत्यय करने पर और ङी प्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में ईरयन्ती यह रूप बनता है।

- वहन्तु- वह्-धातु से लोट् लकार में प्रथमपुरुष एकवचन में वहन्तु यह रूप बनता है।
- सुयमासः- सुयम शब्द का प्रथमाबहुवचन में यह वैदिक रूप है। लौकिक में तो सुयमाः यह रूप बनता है।

उषः प्रतीची भुवनानि विश्वो
र्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः।
समानमर्थं चरणीयमाना
चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व॥3॥

पदपाठ- **उषः। प्रतीची। भुवनानि। विश्वा। ऊर्ध्वा। तिष्ठसि। अमृतस्य। केतुः॥ समानम्। अर्थम्। चरणीयमाना। चक्रम्ऽइव। नव्यसि। आ। ववृत्स्व॥**

अन्वय- उषः विश्वा भुवनानि प्रतीची अमृतस्य केतुः ऊर्ध्वा तिष्ठसि, नव्यसि समानं चरणीयमाना चक्रमिव आ ववृत्स्व।

व्याख्या- हे उषा देवि सम्पूर्ण या जितने भी लोक हैं इस सृष्टि में आप उन सभी के सम्मुख अर्थात् सामने जाती हैं। अमृत का मरण धर्म से रहित सूर्य की ध्वजा अर्थात् उनका बोध कराती हैं। आप कभी प्राचीन नही हो सकती हैं, आप हमेशा चिरस्थायी रहेगी। आप हमेशा एक ही मार्ग पर विचरण करती हुई सूर्य के चक्र के समान पुनः पुनः घूमती रहो। वहाँ दृष्टान्त चक्र के समान जैसे-आकाश में चलते हुए सूर्य का चक्र बार बार घुमता है वैसे ही तुम भी घुमती रहती हो।।

सरलार्थ- हे देवि उषा! समस्तलोक के आगे आती हुई मरण धर्म से रहित सूर्य के आगमन की सूचना देते हुई आकाश के मध्य में रहती हो। हे उषा देवी आप हमेशा नवीन रहने वाली हो, एक ही मार्ग में विचरण करती हुई चक्र के समान बार-बार आओ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- प्रतीची- प्रतिपूर्वक अञ्च्-धातु से क्विन्प्रत्यय करने पर प्रतीची यह रूप बनता है। प्रति आभिमुख्येन अञ्चति प्राप्नोति ऐसा सायणाचार्य ने कहा है।
- तिष्ठसि- स्था-धातु से लट्लकार मध्यमपुरुष एकवचन में तिष्ठसि यह रूप बनता है।
- नव्यसि- नव्-धातु से लट्-लकार मध्यमपुरुष एकवचन में नव्यसि यह रूप बनता है।
- चरणीयमाना- चरणीय शब्द से शानच्प्रत्यय और टाप्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में चरणीयमाना यह रूप बनता है।

- ववृत्स्व- वृत्-धातु से यङ्लुङन्त लोट्लकार में मध्यमपुरुष एकवचन में ववृत्स्व यह रूप बनता है।

अव स्यूमेव चिन्वती मघो
न्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्व100र्जनन्ती सुभगा सुदंसा
आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः॥4॥

पदपाठ- **अव। स्यूमऽइव। चिन्वती। मघोनी। उषा। याति। स्वसरस्य।**
पत्नी॥ स्वः। जनन्ती। सुऽभगा। सुऽदंसाः। आ। अन्ताम्। दिवः।
प्रपथे। आ। पृथिव्याः॥

अन्वय- स्वसरस्य पत्नी मघोनी उषा स्यूम इव अव चिन्वती याति, स्वः जनन्ती सुभगा सुदंसा दिवः आ अन्तात् पृथिव्याः पप्रथे।

व्याख्या- धनसम्पति से परिपूर्ण सूर्य की या दिन की पत्नी होती हुई यह उषा देवी वस्त्र के समान आच्छादित करने वाले अन्धकार का विनाश करती हुई अथवा अपने वस्त्र के अंहकार को फैलाती हुई चली जाती हैं। यह सूर्य की पत्नी होती हुई चलती है। वह अपने तेज को उत्पन्न करती हुई सुंदर सौभाग्य युक्त यज्ञरूप कर्म वाली यह उषा द्युलोक के अन्तिम किनारे से लेकर पृथ्वी के अन्तिम किनारे तक फैल जाती है।

सरलार्थ- सूर्य की पत्नी, धनयुक्त उषा देवी वस्त्र के समान विस्तृत अन्धकार का नाश करती हुई जाती है। अपने तेज को उत्पन्न करती हुई सुन्दरी धनयुक्त अग्निहोत्र, आदि यज्ञानुष्ठान को कराती हुई उषादेवी द्युलोक और पृथ्वी लोक के अन्त तक जितना अन्ध कार है उसे अपने प्रकाश से हटातीं हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- चिन्वती- चि-धातु से शतृ प्रत्यय करने पर और ङीप्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में चिन्वती यह रूप बनता है।
- जनन्ती- जन्-धातु से णिच प्रत्यय, शतृ प्रत्यय, और ङी प्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में यह वैदिक रूप है। लौकिक में जनयन्ती यह रूप बनता है।
- पप्रथे- प्रथ्-धातु से लिट् लकार आत्मनेपद में प्रथमपुरुष एकवचन में पप्रथे यह रूप बनता है।

अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं
प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम्।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रे
त्प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक्॥5॥

पदपाठ– **अच्छ। वः। देवीम्। उषसम्। विऽभातीम्। प्र। वः। भरध्वम्। नमसा। सुऽवृक्तिम्॥ ऊर्ध्वम्। मधुधा। दिवि। पाजः। अश्रेत्। प्र। रोचना। रुरुचे। रण्वसंदृक्॥**

अन्वय– वः अच्छ विभातीम् उषसं देवीं वः नमसा सुवृक्तिं प्रभरध्वम्। मधुधा दिवि ऊर्ध्वं पाजः अश्रेत्। रण्वसंदृक् रोचना प्ररुरुचे।

व्याख्या– हे स्तुति करने वालों आप अपने सामने स्वच्छ रूप से प्रकाशित होती हुई उषा के प्रति तुम सब नमस्कार के साथ उत्तम सुन्दर स्तुति करो। मधु अर्थात् स्तुतियों को अथवा आदित्य को धारण करने वाली यह उषा देवी द्युलोक में उर्ध्वाभिमुख होकर तेज या बल का आश्रय लेतीं हैं और रमणीय दर्शन वाली होती हुई प्रकाशित होने वाले लोकों को अपने तेज से अतिशय रूप से प्रकाशित करतीं हैं। मधु सोम को कहते है, अथवा उसको धारण करती है।

सरलार्थ– (हे स्तुति करने वालो) आप लक्ष्य करके प्रकाशसमान उषादेवी के प्रति तुम उसका नमस्कार सहित सुंदर स्तुति करो। मधु को धारण करने वाली उषा देवी द्युलोक में ऊपर की और अपने प्रकाश को फैलातीं हैं। रमणीय दर्शन युक्त उषा देवी मनुष्यों को अत्यधिक प्रकाशित करतीं हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–

- विभातीम्– विपूर्वक भा-धातु से शतृ प्रत्यय और ङीप् प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में विभातीम् यह रूप बनता है।
- भरध्वम्– भृ-धातु से लोट् लकार आत्मनेपद में मध्यमपुरुष बहुवचन में भरध्वम् यह रूप बनता है।
- रोचना– रुच्-धातु से ल्युट् प्रत्यय और टाप् प्रत्यय करने पर रोचना यह रूप बनता है।
- अश्रेत्– श्रि-धातु से लङ लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह वैदिक रूप है।
- रुरुचे– रुच्-धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में रुरुचे यह रूप बनता है।

ऋतावरी दिवो अर्कैरबो
ध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात्।
आयतीमग्न उषसं विभातीं
वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः॥6॥

पदपाठ– **ऋतऽवरी। दिवः। अर्कैः। अबोधि। आ। रेवती। रोदसी इति। चित्रम्। अस्थात्॥ आऽयतीम्। अग्ने। उषसम्। विऽभातीम्। वामम्। एषि। द्रविणम्। भिक्षमाणः॥**

टिप्पणी

अन्वय- ऋतावरी दिवः अर्कैः अबोधि। रेवती रोदसी। चित्रम् अस्थात्। अग्ने! आयतीं विभातीम् उषसं भिक्षमाणः वामं द्रविणम् एषि।

व्याख्या- सत्य से युक्त अथवा सत्य नियमों का पालन करनें वाली उषा देवी द्यु लोक से आने वाले अपने तेज पुंज से जानी जाती है। वह धान्य से युक्त होती हुई यह उषा द्युलोक और पृथ्वी लोक को नाना प्रकार के रूपों से युक्त व्याप्त करके स्थित होती है। हे अग्नि देवता अपनी और आती प्रकाशमान उषा देवी से याचना करते हुए तुम अभीष्ट या बाटने योग्य धान को प्राप्त करो।

सरलार्थ- सत्य से परिपूर्ण उषादेवी द्युलोक से फैले हुए तेज के रूप से जानी जाती है। धन से परिपूर्ण उषादेवी द्युलोक और पृथिवीलोक में अनेक प्रकार से व्याप्त होकर रहती है। हे अग्निदेव आपके सम्मुख आती हुई उषादेवी से बाँटने योग्य धन को प्राप्त करती हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- अस्थात्- स्था-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में अस्थात् यह रूप बनता है।
- अबोधि- बुध्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में अबोधि यह रूप बनता है।
- आयतीम्- आङ्पूर्वक इण्-धातु से शतृ प्रत्यय और ङीप प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में आयतीम् यह रूप बनता है।
- विभातीम्- विपूर्वक भा-धातु से शतृ प्रत्यय और ङीप् प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में विभातीम् यह रूप बनता है।
- भिक्षमाणः- भिक्ष्-धातु से शानप् प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में भिक्षमाणः यह रूप बनता है।
- एषि - इ-धातु से लट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में एषि यह रूप बनता है।

ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्
वृषा मही रोदसी आ विवेश।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया
चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा॥7॥

पदपाठ- **ऋतस्य। बुध्ने। उषसाम्। इषण्यन्। वृषा। मही इति। रोदसी इति। आ। विवेश॥ मही। मित्रस्य। वरुणस्य। माया। चन्द्राऽइव। भानुम्। विऽदधे। पुरुत्रा॥**

अन्वय- वृषा ऋतस्य बुध्ने उषसाम् इषण्यन् मही रोदसी आ विवेश। मित्रस्य वरुणस्य मही माया चन्द्रा इव भानुं पुरुत्रा विदधे।

व्याख्या- बृष्टि करने वाला सूर्य प्राकृतिक नियमों से अथवा अग्निहोत्र आदि नित्य नियमों के ज्ञापक सत्यभुत दिन के मूल में उषा को प्रेरित करता हुआ या उषा को चाहता हुआ महान द्युलोक और पृथ्वी लोक में सब ओर से प्रविष्ट हो गया। अथवा (वृत्ति) करने वाला सूर्य तथा प्राकृतिक नियमों के मूल में उषा को प्रेरित करता है यह विभिन्न शक्ति रूपा उषा देवी ही सुनहरी कान्ति वाले सूर्य को बहुत स्थानों पर प्रसारित करतीं है।

सरलार्थ- वर्षा द्वारा जल के प्रेरक सूर्य प्राकृतिक नियम अनुसार दिन के आदि में उषा को प्रेरित करके द्यु लोक में और पृथ्वीलोक में व्याप्त हो जाता है। मित्र देवता और वरुण देवता की विचित्र माया से उषा देवी सुनहरी कान्ति के समान सूर्य को बहुत स्थानो में फैलाती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- इषण्यन्- इष्-धातु से णिच्प्रत्यय और शतृप्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में इषण्यन् यह रूप बनता है।
- विवेश- विश्-धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में विवेश यह रूप बनता है।
- विदधे- विपूर्वक धा-धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में विदधे यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

913. उषस्सूक्त के ऋषि कौन है? छन्द क्या है? और देवता कौन है?
914. ईरयन्ती इस पद की उत्पति कैसे हुई?
915. इषण्यन् यह पद कैसे बना।?
916. यह सूक्त किस वेद के अन्तर्गत आता है?
917. विभातीम् यह पद कैसे बना?
918. इस सूक्त में किसकी प्रार्थना का विधान किया है?
919. पप्रथे इस रूप की सिद्धि कैसे हुई?

920. अस्थात् यह पद कैसे बना?

921. आदि मन्त्र में किसकी प्रार्थना का विधान किया गया है?

922. अश्रेत् यह पद कैसे बना?

9.5 उषा का स्वरूप

सम्पूर्ण ऋग्वेद में लगभग बीस सूक्त में उषस्-देवी की स्तुति की गई है। प्रकाश अर्थक वस्-धातु से उषस्-शब्द निष्पन्न होता है। उससे उषस्-शब्द का अर्थ होता है प्रकाशमान देवी। उषा देवी जरामरण से रहित हैं ऐसा ऋषियों के द्वारा वर्णन किया गया है। उसका स्वरूप अविनाशि है, परन्तु बहुत स्थानों में द्युलोक की दुहिता के रूप में इसका वर्णन प्राप्त होता है। उषा देवी हि सुजाता अर्थात् उसका जन्म उच्चवंश में हुआ। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में उषस्-देवी का जो मनोहर स्वरूप का वर्णन किया गया है, उस प्रकार के स्वरूप का अन्य किसी भी देवी के लिए नही किया गया है। प्रात:काल के अधिष्ठात्री देवी रूप से उषा का चित्रण किया गया है। सूर्योदय से कुछ समय पहले का जो समय है, वह ही उषस्-देवी के आने का समय कहलाता है। अग्नि का भी उषस्-देवी के प्रेमी होने का वर्णन प्राप्त होता है। अन्न के द्वारा अन्नवती तथा धन के द्वारा धनवती हि उषा देवी कहलाती है। सभी के द्वारा जानी जाती हुई यह पुरातन युवति के समान सुशोभित होती है, विविध उपाय से स्तूयमान यह यज्ञ को उदिष्ट करके विचरण करतीं हैं। सुवर्णमय रथ में सवार होकर के यह सदा प्रिय तथा सत्य ही बोलतीं हैं। अत्यधिक बल से युक्त अच्छी प्रकार से नियन्त्रितस्वर्णिम रथ से युक्त घोड़ों के द्वारा यज्ञस्थल के प्रति ले जाया जाता है।

सम्पूर्ण मनुष्यों के सम्मुख मरणधर्म से रहित सूर्य के आगमन विषय की सूचना देती हुई यह देवी आकाश में रहतीं हैं। प्रत्येक दिन में एक बार ही उदय होने से यह सदैव नवीन ही रहतीं हैं। समान मार्ग में ही विचरण करने से यह चक्र के समान बार-बार आती है। सूर्य की पत्नी अत्यधिक धन से युक्त उषा देवी अन्धकार का नाश करतीं हैं। अपने तेज को उत्पन्न करने वाली सुन्दर धन से युक्त यह अग्निहोत्र को आचरण करती है। उषा देवी प्रत्येक दिन द्युलोक के अन्त तक प्रकाशित होती है। यज्ञ में सोम का धारण करने वाली यह उषा देवी द्युलोक के ऊपर में अपने तेज को फैलातीं हैं। रमणीय दर्शन से युक्त यह उषा देवी सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करतीं हैं। सत्य से परिपूर्ण यह देवी अपने तेज:प्रभाव से इस जगत में इसकी ख्याति है। धन से युक्त यह विविध प्रकार से द्युलोक और पृथ्वी लोक में व्याप्त होकर स्थित हैं। उषा देवी इस जगत में वर्षा के माध्यम से जल को प्राप्त होती हैं। मित्र और वरुण के प्रभाव स्वरूप अथवा शक्ति स्वरूप उषा देवी सूर्य को अनेक स्थान में फैलाती है।

9.6 उषस्सूक्त का सार

ऋग्वेद का समाज पुरुष प्रधान था। वहाँ मन्त्रों के अधिष्ठाता रूप से पुरुष देवता की अधिक प्रधानता दिखाई देती है। कुछ सूक्तों में स्त्री देवता की भी स्तुति प्राप्त होती है, परन्तु उनकी स्तुति की संख्या पुरुषों की अपेक्षा से कम ही है। कर्म की विचित्रता के अनुसार हि स्त्री देवता पुरुष के बराबर भाग को प्राप्त नहीं होतीं हैं। वे अन्य देवों की कन्या, पत्नी, अथवा माता होतीं हैं। यद्यपि उनकी अपनी महिमा विद्यमान है, फिर भी पुरुष देवताओं के समीप में उनकी महिमा कम ही है जैसे चन्द्र के आगे अन्य नक्षत्रों की है। सम्पूर्ण रूप से कह सकते है की वैदिक पुरुष तान्त्रिक समाज का नारी पुरुष सम्बन्ध का चित्र देवसमाज के ऊपर अच्छी प्रकार से प्रकाश डालता है।

ऋग्वेद में जहाँ देवियों की स्तुति प्राप्त होती है, वहाँ एक विषय दृष्टि को आकर्षित करता है ऋषियों के कवित्व भावना की और सौन्दर्य चेतना की। प्राकृतिक रूप से माधुर्य को ही सौन्दर्य भावना से प्रधान रूप में व्यक्त किया है। प्रकृति में रुद्ररूप में नहीं परन्तु कोमल-मधुर-रसमय रूप में ही नारी का चिंतन ऋषियों द्वारा किया गया है। उनके लिए ही बहती हुई स्रोत वाली, हरी भरी पृथ्वी, आलोक से परिपूर्ण उषा, अन्धकार रूप में रात्री, और पवित्रता स्वरूप में सरस्वती ये सभी ऋषियों की कल्पना में ही देवी रूप से विख्यात हैं। उनके रूप वर्णन में ऋषियों की अलौकिक भावना का और सौन्दर्य भावना का परिचय सहृदय भावना को प्राप्त होता है।

इस प्रकार की एक देवी उषा हैं। ऋग्वेद की देवियों में उसके समान कोई दूसरी देवी नहीं है। ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल का अस्सीवें (80) सूक्त को उषस् सूक्त कहते हैं। यहाँ सत्यश्रवा ऋषि, उषा देवता, त्रिष्टुप् छन्द। अन्य देवियों की अपेक्षा से उसकी ही स्तुति अधिक संख्या के सूक्तों में की गई है। स्वर्ग की दुहिता उषा द्युलोक की अधिष्ठाता देवीं हैं। सुबह सूर्योदय के पहले मूहूर्त में अथवा पहले आकाश में जो मनोहर अरुण वर्ण की आलोक प्रभा दिशाओं में दिखाई देती है, वह ही हमारी उषादेवी हैं। उषा उदय होने पर रात्रि का अन्धकार धीरे धीरे हट जाता है, पक्षियों के कूजन रात्रि की नीरवता को दूर करता है। उषा की इस महिमा को लक्ष्य करके कवि इसकी वन्दना करता है। 'सा हि दिवो दुहिता' (5.80.5-6)। इति।

ऋग्वेद में स्तूयमान उषा ऋषि की कल्पना में रूप लावण्यवती कोई युवती है। वह प्रकाशवती है (भास्वती), सफेद वस्त्रों से युक्त युवती हैं (युवतिः शुक्रवासाः)। उसके वक्षस्थल खुले हुए है, दर्शन के लिए वह हमेशा अपने शरीर को दिखाती है (1.123.11)। सूर्यदेव उसके पति हैं। मृत्यु लोक में कोई युवक जैसे किसी भी कन्या का अनुसरण करता है, वैसे ही सूर्य भी उषा देवी के पीछे जाते हैं। और वेद में भी कहा है-

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् (1.125.2)। इति।

उसके बाद उषादेवी दोनों अश्विनी कुमारों की मित्र हैं। उषा के पश्चात् सूर्य के उत्पन्न होने से कुछ लोग कहते हैं की वह सूर्यदेव की माता हैं। उषादेवी की सत्ता का अच्छी

प्रकार से उल्लेख ऋग्वेद के मन्त्रो में प्राप्त होता है। वह नियमो का पालन करने वाली है, सत्य बोलने वालीं हैं, और हवी को ले जानी वाली वह ही हैं। वह रोग का नाश करने वाली हैं, संसार को सुख प्रदान करने वालीं हैं, और विचित्र गमन करने वालीं हैं। वह यजमानों के लिए धन को देती है। स्वर्णिम रथ में बैठकर वह विश्व में व्याप्त है। उसके आने से जीवजगत में प्राणों की स्फुरति होती है। नर्तकी जैसे रात्रि के अन्धकार को दूर करती हुई प्रकट होती है, वैसे ही आलोकमयी उषा रात्रि के अन्धकार का नाश करती हुई और दिशा को प्रकाशित करतीं हैं। वेद में भी कहा है– अधि पेशांसि वपते नृतुरिव। (1.92.4)।

वह निद्रा से जीवजगत् को जगातीं हैं। वह प्राण देने वाली और मुक्ति देने वाली हैं। सूर्य के आगमन की वाणी का उसके द्वारा उद्गोषणा की जाती है। वह ही पृथ्वी की पूर्ति को धारण करती है। उषा की गति ही काल की गति है, वह चिरकाल से युवती है और अमर है। अतः उसकी स्तुति सभी देव करतें हैं।

पाठसार-2

इस पाठ में दो सूक्त प्राप्त होते हैं। वहाँ पूषन्सूक्त पहले भाग में है। उसका सार वहीं दिया गया है। अब यहाँ उषस्सूक्त के अंश का सारांश सम्पूर्ण रूप से देतें हैं।

यह सूक्त ऋग्वेद के तीसरे मण्डल का इकसठवां (61) सूक्त है। इस सूक्त के वामदेव ऋषि उषा देवता और त्रिष्टुप् –छन्द है। यहाँ उषा देवी को लक्ष्य करके प्रार्थना का विधान किया गया है। वहां आदि मन्त्र में प्रार्थना की गई है की सभी चाहने वालों के द्वारा आपकी प्रार्थना करने पर देवी उषा यज्ञ को लक्ष्य करके विचरण करें। दूसरे मन्त्र में प्रार्थना की अनेक गुण से युक्त उषा देवी प्रकाशित होकर के अपने घोड़ों को रथ से जोतकर उस पर सवार होकर के यज्ञस्थल पर आयें। तीसरे मन्त्र में प्रार्थना की गई है की आकाश के मध्य में स्थित उषा देवी बार-बार चक्र के समान आयें। चौथे मन्त्र में कहा गया है की उषादेवी अपने प्रकाश से द्यु लोक का और पृथ्वी लोक के अन्धकार का नाश करतीं हैं। पांचवें मन्त्र में मनुष्यों के द्वारा स्तूय मान मधु को धारण करने वाली उषा देवी कैसे मनुष्यों को अत्यधिक विस्तृत करतीं हैं इसका वर्णन है। छठें मन्त्र में उषा देवी कैसे द्युलोक और पृथ्वी लोक में व्याप्त होकर रहतीं हैं इत्यादि का वर्णन है। सातवें मन्त्र में कैसे सूर्यदेव द्युलोक में और पृथ्वी लोक में व्याप्त होते हैं, और कैसे उषादेवी सूर्य को सभी जगह फैलातीं हैं इत्यादि का वर्णन है।

पाठान्त प्रश्न

पूषन्सूक्त में

923. पूषन्सूक्त का सार लिखो।

924. वणिज क्या क्या करने के लिए पूषदेवता के प्रति कहता है मन्त्र सहित व्याख्या करो।

925. वयमु त्वा पथस्पते... इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

926. परि तृन्धि पणीनामारया... इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

927. या ते अष्टा गोओपशाघृणे... इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

उषस्सूक्त में

928. उषस्सूक्त का सार लिखो।

929. उषो वाजेन... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

930. उषो देव्यमर्त्या... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

931. अव स्तूमेव... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

932. उषः प्रतीची... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

933. अच्छा वो... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

934. ऋतावरी... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

935. ऋतस्य बुधन... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

936. मही मित्रस्य... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1-पूषन्सूक्त में

937. भरद्वाज ऋषि, गायत्री छन्द, पूषन् देवता।

938. पूरक है।

939. पथ मार्ग का पथे सम्बोधन एकवचन में।

940. सन्-धातु से क्तिन् होने पर चतुर्थी एकवचन में।

941. युजिर् इस धातु से लुङ् लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में।

942. पुष्-धातु से कनिन्प्रत्यय करने पर सम्बोधन एकवचन में।

943. मनुष्यों के लिए हितकारी हो।

टिप्पणी

944. जिसे प्रयत्न पूर्वक दक्षिणा दी गई उसे।

945. नृशब्द से यत्प्रत्यय करने पर।

946. सब और से प्रकाशमान।

947. शुद्ध।

948. तृद्-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में।

949. चि-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में।

950. दुष्टों और चौर आदि को।

951. हृदयानि यह लौकिक रूप है।

2-पूषन्सूक्त में

952. कोड़ा।

953. व्यवहार करने वाला।

954. विशेष रूप से पीड़ित करो।

955. व्यवस्थापत्रों को।

956. किकिराणि यह लौकिक रूप है।

957. कृ-धातु से अच करने पर द्वितीयाबहुवचन में नपुंसकलिङ्ग का रुप है।

958. कुरु लौकिक रूप है।

959. ब्रह्म उपपद से चुद्-धातु से लुट् लकार में ङीप करने पर।

960. अश्-धातु से ष्ट्रन और टाप् करने पर।

961. गवाम् ओपशा यहाँ तत्पुरुष समास है।

962. सुपूर्वक म्ना-धातु से कप्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में।

963. आत्मनेपदि ईङ्-धातु से उत्तमपुरुष बहुवचन में।

964. सुख।

965. खाने के लिए।

966. कुरु लौकिक रूप है।

3-उषस्सूक्त में

967. वामदेव ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द और उषा देवता हैं।

968. ईर्-धातु से णिच् प्रत्यय, शतृ प्रत्यय, और ङीप् प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में ईरयन्ती यह रूप बनता है।

969. इष्-धातु से णिच् प्रत्यय और शतृ प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में इषण्यन् यह रूप बनता है।

970. ऋग्वेद में।

971. यहाँ पर भगवती उषादेवी को लक्ष्य करके प्रार्थना का विधान किया गया है।

972. विपूर्वक भा-धातु से शतृ प्रत्यय और ङीप् प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में विभातीम् यह रूप बनता है।

973. प्रथ्-धातु से लिट् लकार आत्मनेपद में प्रथमपुरुष एकवचन में पप्रथे यह रूप बनता है।

974. स्था-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में अस्थात् यह रूप बनता है।

975. आदि मन्त्र में प्रार्थना की गई है की सम्पूर्ण विश्व के द्वारा वरणीय उषा देवी तुम हमारे यज्ञ नियम व्रत आदि को लक्ष्य करके विचरण करती हो।

976. श्रि-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह वैदिक रूप है।

॥ नौवां पाठ समाप्त ॥

टिप्पणी

10

वरुणसूक्त

प्रस्तावना

ईश्वर द्वारा प्रदत्त नि:श्वरभूत वेद अपौरुषेय और अनादि है। यही वेद मानव का सनातन दिव्यचक्षु है। ईश्वर भी वेद के आधार पर ही जगत् की सृष्टि करता है। संस्कृतसाहित्य में वेद ही सर्वोच्च स्थित सूर्य के समान है। भारत में धर्म व्यवस्था वेद पर ही आधारित है। वेद धर्मनिरूपण में स्वतन्त्रभाव से प्रमाण, स्मृत्यादि वेदमूलक ही हैं। अत एव श्रुति और स्मृति के विरोध में श्रुति ही बलवान है। न केवल धर्ममूलकता से ही वेद आदरणीय है, अपितु विश्व के सर्वप्राचीनग्रन्थ होने से भी। प्राचीन धर्म, समाज, व्यवहार जैसी चीजों की जानकारी के लिए श्रुति ही सक्षम है। ''विद्यन्ते धर्मादय: पुरुषार्था: यै: ते वेदा:'' इति। सायण ने तो ''अपौरुषेयं वाक्यं वेद:'' ऐसा भी कहा है। इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार के लिए अलौकिक उपाय जो बताता है वह वेद है। तत्र कारिका–

''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।।'' इति।

वेद चार है। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। वहां ऋग्वेद के देवताओं में वरुण का स्थान अतीव महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि सम्पूर्ण ऋग्वेद में द्वादशसूक्तियों से वरुण की स्तुति की गई है, और यदि की भी है इन्द्र को छोड़कर अन्यकोई देव वरुण से बढ़कर नहीं है। वरुणशब्द आवरणार्थक वृ–धातु से निष्पन्न है। आवरकरूप से ही वैदिकदेवों में वह महत्त्वपूर्ण है। ऋग्वेदीय सूक्त का शुन:शेप ऋषि, वरुण देवता, गायत्री छन्द है। यह सूक्त प्रथममण्डल का पच्चीसवां (25वां) सूक्त है। (ऋ.वे. म–1.25)।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे –

वरुणसूक्त

- वरुणसूक्त को जान पाने में;
- वरुण के स्वरूप को जान पाने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- लौकिक शब्दों को जान पाने में;
- वैदिक और लौकिक को जान पाने में;
- स्वयं भी मन्त्र व्याख्या कर पाने में;
- स्वयं भी मन्त्र का अन्वयादि भी करने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण को जान पाने में।

टिप्पणी

11.1 मूलपाठ

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्। मिनीमसि द्यविद्यवि॥1॥

मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः। मा हृणानस्य मन्यवे॥2॥

वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम्। गीर्भिर्वरुण सीमहि॥3॥

परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये। वयो न वसतीरुप॥4॥

कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे। मृळीकायोरुचक्षसम्॥5॥

तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः। धृतव्रताय दाशुषे॥6॥

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। वेद नावः समुद्रियः॥7॥

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते॥8॥

वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते॥9॥

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या3स्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः॥10॥

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति। कृतानि या च कर्त्वा॥11॥

स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्। प्र ण आयूंषि तारिषत्॥12॥

बिभ्रद्द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्तनिर्णिजम्। परि स्पशो नि षेदिरे॥13॥

न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम्। न देवमभिमातयः॥14॥

उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या। अस्माकमुदरेष्वा॥15॥

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु। इच्छन्तीरुरुचक्षसम्॥16॥

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम्। होतेव क्षदसे प्रियम्॥17॥

दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि। एता जुषत मे गिरः॥18॥

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके॥19॥

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि। स यामनि प्रति श्रुधि॥20॥

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे॥21॥

1.1.1 व्याख्या

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्।
मिनीमसि द्यविद्यवि॥1॥

पदपाठः- यत्। चित्। हि। ते। विशः। यथा। प्र। देव। वरुण। व्रतम्॥
मिनीमसि। द्यविऽद्यवि॥

अन्वय- वरुण देव! यथा विशः ते व्रतं यत् चित् हि द्यविद्यवि प्रमिनीमसी।

व्याख्या- हे वरुण देव आप जैसे लोक में राजा या मनुष्य के प्रजा या सन्तान आदि प्रतिदिन अपराध करते हैं, किन्ही कामों को नष्ट कर देते हैं, वह उन पर न्याययुक्त करुणा करता है वैसे ही हम लोग आपका जो सत्य आचरण आदि नियम है उन को कदाचित अज्ञान से छोड़ देते है उसका यथायोग्य न्याय और हमारे लिए करुणा करते है।।

सरलार्थः- हे वरुणदेव! संसार में प्रजा जैसे प्रमाद करती है, वैसे ही हम भी आपके नियमों का जो कुछ भी उल्लंघन करते है, हमारे द्वारा उन किये गये प्रमादों का परिमार्जन करके आप नियम में नियोजित करो।

व्याकरणविमर्श-

- विश- विश्-शब्द का प्रथमाबहुवचन में विश रूप बनता है।
- मिनीमसि- मीञ्-धातु से लट्लकार में उत्तमपुरुषबहुवचन में यह वैदिक रूप है।
- द्यविद्यवि- द्योशब्द के सप्तम्येकवचन में द्यवि रूप। द्यवि का दो बार करने पर द्यविद्यवि रूप होता है।

मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः।
मा हृणानस्य मन्यवे॥2॥

पदपाठः- मा। नः। वधाय। हत्नवे। जिहीळानस्य। रीरधः॥
मा। हृणानस्य। मन्यवे॥

अन्वयः- जिहीळानस्य हत्नवे वधाय नः मा रीरधः। हृणानस्य मन्यवे मा (रीरधः)।

व्याख्या- हे वरुण अज्ञान से अनादर करने वाले पुरुष के लिए वध करने और किसी पर आघात पहुंचाने के लिये हमें मत प्रेरित करे। और इसी प्रकार क्रोध के निमित्त स्वय लज्जा अनुभव करने वाले को दंड देने की लिए मत उकसावे।

सरलार्थः- हे वरुणदेव! हिंसा करने वाले हिंसक शास्त्र के विषयों को हमे मत कहो, इसी प्रकार हमें पुनः क्रोध का पात्र मत बनाओ।

व्याकरणविमर्शः-

- राधा साधा संसिद्धौ।
- हृणानस - हृणीङ लज्जायाम् धातु से शानचपृषोदरादित्व से अभिमतरूपसिद्धि है।।
- हत्नवे- हत्नु का चतुर्थ्येकवचन में हत्नवे रूप होता है।
- जिहीळानस्य- हेडृ-धातु से कानच्प्रत्यय लिट् लकार द्वित्वादिकार्य करने पर जिहीडान ऐसा रूप होता है। जिहीडान इसका षष्ठी एकवचन में जिहीळानस्य वैदिक रूप है। लौकिक तो जिहीडानस्य ही रूप है।
- रीरधाः- राध-धातु से लङ् मूलक लेट्लकार मध्यमपुरुष एकवचन में रीरधा रूप है।
- हृणानस्य- हृ-धातु से शानच्प्रत्यय से निष्पन्न हृणान का षष्ठ्येकवचन में हृणानस्य रूप होता है।

वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम्।
गीर्भिर्वरुण सीमहि॥3॥

पदपाठः- **वि। मृळीकाय। ते। मनः। रथीः। अश्वम्। न। सम्ऽदितम्।**
गीःऽभिः। वरुण। सीमहि॥

अन्वयः- वरुण! रथीः अश्वं संदितं न ते मनः मृळीकाय गीर्भिः विसीमहि।

व्याख्या- हे वरुण परमेश्वर! राजन! (रथीः) रथ का स्वामी (संदीतम) बल से खंडित थके हुए हारे हुए (अश्वं नः) घोड़े को जिस प्रकार (गीर्भिः)नाना प्रकार की मन को बाधने वाली पुचकारने वाली वाणियों से उसे अपने वश में करता है उसी प्रकार हम भी (मृळइकाय) सुख प्राप्त करने के लिए (ते) तेरे (मनः) हृदय या ज्ञान को (गीर्भिः) स्तुति द्वारा बांधते है।।

सरलार्थः- हे वरुणदेव! जैसे रथस्वामी अथवा रथ का चालक, वह दूरगमन चाहता है इस प्रकार के तृणों को अश्व को देकर प्रसन्न करता है, वैसे ही हम भी आपका मन से सुखप्राप्त करने के लिए नाना प्रकार वाली स्तुति या वाणियों से प्रसन्न करते है।

व्याकरणविमर्श-

- दो अवखण्डने। निष्ठा इति क्त।
- सीमहि। षिवु तन्तुसंताने। आत्मनेपदम्। बहुलं छन्दसि से विकरण प्रत्यय का लुक्। षिञ् बन्धाने इससे भी विकरण का लुक्। दीर्घश्छान्दस:॥
- रथी:- रथशब्द से मतुप अर्थ में वैदिक में ई प्रत्यय करने पर रथी: रूप बनेगा।
- संदितम्- सम्पूर्वक दो-धातु से क्तप्रत्यय और इकारादेश होने पर संदितम् रूप होता है।
- विसीमहि- विपूर्वक षिञ्-धातु से या षिवु-धातु से लट्लकार उत्तमपुरुषबहुवचन में विसीमहि ये रूप बनता है।

परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये।
वयो न वसतीरुप॥4॥

पदपाठ:- **परा। हि। मे। विऽमन्यव:। पतन्ति। वस्य:ऽइष्टये।**
वय:। न। वसती:। उप॥

अन्वय:- (हे वरुण) मे विमन्यव: वस्य: इष्टये हि पराप तन्ति। वय: न वसती: उप।

व्याख्या- हे वरुण (मे) मेरे शुन:शेप (विमन्यव:) क्रोधरहित बुद्धि को (वस्यइष्टये) सबसे श्रेष्ठ वसु सबको वास देने वाले की शरण प्राप्त करने के लिए (परापतन्ति) तेरे समीप तक उड़ती-उड़ती तुझ तक पहुंचती है अथवा (वाय: वसती: न) पक्षी जिस प्रकार अपने स्थानों को छोड़कर अपने आहार को प्राप्त करने के लिए चले जाते है इसी प्रकार (विमन्यव:) विशेष ज्ञानवान पुरुष अत्यधिक धन प्राप्ति के लिए (परा एतन्ति हि) दूर देशों तक जावें॥

सरलार्थ:- हे वरुणदेव! मैं क्रोधसहित बुद्धिसमूह धनसमूह से युक्त जीवन को प्राप्त करने के लिए आपकी तरफ दोड़ता हुं, जिस प्रकार से पक्षी अपने निवासस्थान से दाना लेने के लिए दुसरी जगह जाते है।

व्याकरणविमर्श:-

- विमन्यव:- विगत: मन्यु: याभ्य: ता: विमन्यव: इति बहुव्रीहिसमास।
- इष्टये- इष्-धातो: क्तिन्प्रत्यय से निष्पन्नइष्टिशब्द चतुर्थ्येकवचन में इष्टये रूप।
- वसती:- वस्-धातु से अतिप्रत्यय से निष्पन्न वसति का द्वितीयाबहुवचन में वसती: इति रूप।

कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे।
मृळीकायोरुचक्षसम्॥5॥

पदपाठः- **कदा। क्षत्रऽश्रियम्। नरम्। आ। वरुणम्। करामहे॥**
मृळीकाय। उरुऽचक्षसम्॥

अन्वयः- क्षत्रश्रियम् उरुचक्षसं नरं वरुणं मृळीकाय कदा आ करामहे।

व्याख्या- अपने सच्चे सुख को प्राप्त करने के लिए हम कब अति बलवान समस्त प्राणियों के नेता एवं सर्वप्रष्टा वरूण का आराधन कर्म में साक्षात्कार कर सकेंगे?

सरलार्थः- शासकीय शक्ति से सुशोभित, विशाल दृष्टिवान त्रिकालदर्शी, सभी को ले जाने वाला वरुणदेव हमें कब अपने समीप लाएगा।

व्याकरणविमर्श-

- क्षत्रश्रियम्- क्षत्राणि श्रयति अथवा क्षत्रेण श्रीः यस्य तम् क्षत्रश्रियम्।
- नरम्- नृ-धातु, ऋदोरप् सूत्र से अप्प्रत्यय होने पर नरम् रूप।
- आ करामहे- आपूर्वकात् कृ-धातोः लुङमूलक लेट्लकार में उत्तमपुरुषबहुवचन में आकरामहे इति रूप।
- उरुचक्षसम्- उरु चक्षः यस्य तम् उरुचक्षसम् इति बहुव्रीहिसमासः।

तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः।
धृतव्रताय दाशुषे॥6॥

पदपाठः- **तत्। इत्। समानम्। आशाते इति। वेनन्ता। न। प्र। युच्छतः॥**
धृतऽव्रताय। दाशुषे॥

अन्वयः- वेनन्ता समानं तत् इत् आशाते। धृतव्रताय दाशुषे न प्रयुच्छतः।

व्याख्या- जिसने वरूणाराधन कर्म का सम्पादन किया है तथा हवि प्रदान की है ऐसे यजमान को चाहने वाले मित्रावरूण देव हम ऋत्विणों से दिये हुये साधारण हवि का भक्षण करते हैं।

सरलार्थः- शुभकामनां करते हुए और व्रतधारी भी हवि प्रदान करने वाले मित्रा और वरुण उसकी हवि समानतया स्वीकार करते है। वे यजमानों के कल्याण में कभी प्रमाद नहीं करते है।

व्याकरणविमर्शः-

- आत्मनेपदि अंश्-धातु लिट्लकार के प्रथमपुरुषद्विवचन में आशाते इति रूप।
- वेनन्ता- वेन्-धातु से शतृप्रत्यय प्रथमाद्विवचन में वेनन्तौ ये वैदिक रूप होता है।
- दाशुषे- दाशृ-धातु से क्वसुप्रत्यय चतुर्थ्येकवचन में दाशुषे रूप।
- धृतव्रताय- धृतं व्रतं येन तस्मै धृतव्रताय इति बहुव्रीहिसमास।

टिप्पणी

वेदा यो वीनां पदमन्तरिंक्षेण पतंताम्।
वेदं नावः संमुदियः॥7॥

पदपाठः- वेदं। यः। वीनाम्। पदम्। अन्तरिंक्षेण। पतंताम्॥
वेदं। नावः। समुद्रियः॥

अन्वयः- यः अन्तरिक्षेण पततं वीनां पदं वेद। समुद्रियः नावः वेद।

व्याख्या- अन्तरिक्ष से गिरते हुए, आकाशमार्ग से जाते हुए विमान और पक्षियों के मार्ग को जो जानता है वह वरुण है। तथा (समुद्रियः) समुद्र में अवस्थितवरुण(नावः) जल में चलने वाले नाव आदि के रास्ते जो जनता है वह हमारे बन्धन को छुड़ाए।। वेद। विद ज्ञाने।

सरलार्थः-जो वरुणदेव आकाशमार्ग से उड्डीयमान पक्षियों के मार्ग को जानता है तथा समुद्रमार्ग से गम्यमान नौकाओ का मार्ग जानता है, वह वरुणदेव हमें बन्धन से मुक्त करे।

व्याकरणविमर्शः-

- पतताम्- पत् धातु के शतृ प्रत्यय होने पर।
- समुद्रियः- समुद्र में भव इस अर्थ में हा प्रत्यय में इयंदिश होने पर समुद्रियः यह रूप होता है।
- वेद- विद्-ज्ञाने धातु लिट् लकार, प्रथमपुरुषैकवचन में वेद रूप।

पाठगत प्रश्न

977. वरुणसूक्त के कौन ऋषि? कौनसा छन्द? कौन देवता?
978. मिनीमसि इति पदस्य व्युत्पत्ति कैसे हुई?
979. हत्नवे इस पद की व्युत्पत्ति क्या है?
980. वेनन्तापद की व्युत्पत्ति बताएं?
981. कैसों को वरुणदेव अपने समीप ले जाते हैं?
982. हन्-धातु का क्या अर्थ होता है?
983. वसतीः इस पद की निष्पत्ति कहां से है?
984. समुद्रियः इस पद की निष्पत्ति कैसे हुई?
985. विद्धातु का क्या अर्थ है?
986. दाशुषे यहां षत्व किस सूत्र से हुआ?

1.1.2 व्याख्या

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः।
वेदा य उपजायते॥8॥

पदपाठः- **वेद। मासः। धृतऽव्रतः। द्वादश। प्रजाऽवतः॥**
वेद। यः। उपऽजायते॥

अन्वयः- धृतव्रतः प्रजावतः द्वादश मासः वेद। यः उपजायते वेद।

व्याख्या- (धृतव्रतः) स्वीकृत किया है कर्मविशेष को जिसने यथोक्तमहिमोपेतो वरुणः प्रजावतः तदा तदोत्पद्यमानप्रजायुक्तान् द्वादश मासः चौत्रादीन् फाल्गुनान्तान् वेद जानाति। यः त्रयोदशोऽधिकमासः उपजायते संवत्सरसमीपे स्वयमेवोत्पद्यते तमपि वेद। वाक्यशेषः पूर्ववत्॥ मासः। द्वादश। द्वौ च दश च इति द्वन्द्वः।

सरलार्थ- व्रतधरी वरुण प्रजायुक्त 12 माहों को जानता है और जो वर्ष से अधिक मास है उनको भी जानता है।

व्याकरणविमर्श-

- प्रजावतः- प्रजाशब्द का मतुप्रत्यय, षष्ठ्येकवचन में प्रजावतः ये रूप।
- उपजायते- उपपूर्वक जन्-धतु से लट्लकार प्रथमपुरुषैकवचन में उपजायते रूप।

वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः।
वेदा ये अध्यासते॥9॥

पदपाठः- **वेद। वातस्य। वर्तनिम्। उरोः। ऋष्वस्य। बृहतः॥**
वेद। ये। अधिऽआसते॥

अन्वयः- उरो ऋष्वस्य बृहतः वातस्य वर्तनिं वेद। ये अधि आसते वेद।

व्याख्या- उरोः विस्तीर्णस्य ऋष्वस्य दर्शनीयस्य बृहतः गुणैरधिकस्य वातस्य वायोः वर्तनि मार्गं वेद वरुणो जानाति। ये देवाः उपरि तिष्ठन्ति तानपि वेद जानाति॥

सरलार्थः- वरुणदेव विस्तृत, व्यापक और दर्शनीय तथा गुणयुक्त महान वायु के अर्थात् अन्तरिक्ष के मार्ग को जानता है और भे जो वहां निवास करता है, उसको भी जानता है।

व्याकरणविमर्श-

- बृहतः- बृहत्-शब्द का षष्ठयेकवचन में बृहतः रूप है।
- वर्तनिम्- वृत्-धातु से अनिप्रत्यय में वर्तनिम् रूप है।
- ऋष्वस्य- ऋषी-धातु से मतुपअर्थ में क्वन्प्रत्यय षष्ठ्येकवचन में ऋष्वस्य रूप है।

- अध्यासते– आत्मनेपदि आस्–धातु से लट्लकारप्रथमपुरुषबहुवचन में अध्यासते रूप है।

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या3स्वा।
साम्राज्याय सुक्रतुः॥10॥

पदपाठः– **नि। ससाद। धृतव्रतः। वरुणः। पस्त्यासु। आ॥**
साम्ऽराज्याय। सुऽक्रतुः॥

अन्वयः– धृतव्रतः सुक्रतुः वरुणः आ साम्राज्याय प्रत्स्यासु निषसाद।

व्याख्या– धृतव्रतः पूर्वोक्तः वरुणः पस्त्यासु देवीषु प्रजासु आ नि षसाद आगत्य निषण्णवान्। किमर्थम्। प्रजानां साम्राज्यसिद्ध्यर्थं सुक्रतुः शोभनकर्मा।नि षसाद। सदिरप्रतेः (पा. सू. 8.3.66) इति षत्वम्। साम्राज्याय। सम्राजो भावः साम्राज्यम्। गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः (पा. सू. 5.1.124) इति ष्यञ्।

सरलार्थः– व्रतधारी तथा शोभितकर्मकारी वरुण सब और से शासन के लिए अपने जलगृह में उपविष्ट है।

व्याकरणविमर्श–

- निषसाद– निपूर्वक सद्–धातु से लिट्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में निषसाद रूप।
- सुक्रतुः– शोभनः क्रतुः यस्य सः सुक्रतुः इति बहुव्रीहिसमासः। सुपूर्वकात् कृ–धातु से अतुप्रत्यय सुक्रतुः रूप।
- साम्राज्याय– सम्राजो भावः। सम्राज्शब्द के ष्यञ्प्रत्यय, चतुर्थ्येकवचन में साम्राज्याय रूप।

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पंश्यति।
कृतानि या च कर्त्वा॥11॥

पदपाठः– अतः। विश्वानि। अद्भुता। चिकित्वान्। अभि। पश्यति॥
कृतानि। या। च। कर्त्वा॥

अन्वयः– अतः चिकित्वान् विश्वानि या कृतानि च कर्त्वा अद्भुता अभिपश्यति।

व्याख्या– अतः अस्मात् वरुणात् विश्वानि अद्भुता सर्वाण्याश्चर्याणि चिकित्वान् प्रज्ञावान् अभि पश्यति सर्वतोऽवलयति या कृतानि यान्याश्चर्याणि पूर्वं वरुणेन सम्पादितानि। चकारात् अन्यानि यान्याश्चर्याणि कर्त्वा इतः परं कर्तव्यानि तानि सर्वाण्यभिपश्यतीति पूर्वत्रान्वयः।

सरलार्थ–उसी स्थान प्रज्ञावान् वरुणदेवसमस्त कर्म तथा किये जाने वाले कर्म को सब और से देखता है।

व्याकरणविमर्श–

- चिकित्वान्– चिकित्वस्शब्द के प्रथमैकवचन में चिकित्वान् रूप।

- विश्वानि- विश्वशब्द के नपुंसकलिङ्ग, द्वितीयाबहुवचन में विश्वानि रूप।
- कर्त्वा- कृ-धातु से त्वन्प्रत्ययकर्त्वा रूप।
- अभिपश्यति- अभिपूर्वक दृश्-धातु से लट्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में अभिपश्यति रूप।

स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्।
प्र ण आयूंषि तारिषत्॥12॥

पदपाठः- **सः। नः। विश्वाहा। सुऽक्रतुः। आदित्यः। सुऽपथा। करत्॥**
प्र। नः। आयूंषि। तारिषत्॥

अन्वयः- सुक्रतुः स आदित्यः नः विश्वाहा सुपथा करत्। नः आयूंषि प्रतारिषत्।

व्याख्या- सुक्रतुः शोभनप्रज्ञः सः आदित्यः वरुणः विश्वाहा सर्वेष्वहःसु नः अस्मान् सुपथा शोभनमार्गेण सहितान् करत् करोतु। किं च नः अस्माकम् आयूंषि प्र तारिषत् प्रवर्धायतु॥

सुपथा।

सरलार्थः- शोभितकर्मकारी वह अदितिपुत्र वरुण हमें सदा ही उत्तममार्ग में संयुक्त करते हुए हमारी आयु बढ़ाये।

व्याकरणविमर्श-

- आदित्यः- अदितिशब्द से ण्यप्रत्यय प्रथमैकवचन में आदित्यः रूप।
- सुपथा- शोभनश्चासौ पन्थाः सुपन्थाः तेन सुपथा।
- करत्- कृ-धातु से लुङमूलक लोट्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में करत् इति रूपम्।
- प्रतारिषत्- प्रपूर्वकतृ-धातु से णिच्प्रत्ययसे लुङमूलक लेट्लकार, प्रथमपुरुषैकवचन में प्रतारिषत् रूप।

बिभ्रद्द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्तनिर्णिजम्।
परि स्पशो नि षेदिरे॥13॥

पदपाठः- **बिभ्रत्। द्रापिम्। हिरण्ययम्। वरुणः। वस्त। निःऽनिजम्॥**
परि। स्पशः। नि। सेदिरे॥

अन्वय- हिरण्यं द्रापिं बिभ्रत् वरुणः निर्णिजम् वस्त। स्पशः परि निषेदिरे।

व्याख्या- हिरण्यं- सुवर्णमय, द्रापिं -कवच को, बिभ्रत् -धारण करने वाला वरुण, निर्णिजं पुष्ट स्वशरीर को – वस्त- आच्छादित करता है। स्पशः- हिरण्यस्पर्शी रश्मियों को चारों ओर फैलाता है।

टिप्पणी

सरलार्थः- स्वर्णकवचधारी वह वरुणदेव अपने पुष्ट शरीर को ढकता है। उसकी सुंदर स्पर्शी किरणसमूहको सर्वत्रा फैलता है।

व्याकरणविमर्शः-

- बिभ्रत्- भृ-धात से शतृप्रत्य से निष्पन्न बिभ्रत्-शब्द का प्रथमैकवचन में बिभ्रन् ये वैदिक रूप है।
- द्रापिम्- द्रापिशब्द का द्वितीयैकवचन में द्रापिम् रूप।
- निर्णिजम्- निर्पूर्वक णिर्जि-धातु से कप्रत्यय, निर्णिजशब्द का द्वितीयैकवचन में निर्णिजम् रूप।
- निषेदिरे- निपूर्वक सद्-धातु ससे लिट्लकार में आत्मनेपद प्रथमपुरुषबहुवचन में निषेदिरे रूप।

न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम्।
न देवमभिमातयः।।14।।

पदपाठः- **न। यम्। दिप्सन्ति। दिप्सवः। न। द्रुह्वाणः।**
जनानाम्। न। देवम्। अभिऽमातयः।।

अन्वयः- दिप्सवः यं देवं न दिप्सन्ति, जनानां द्रुहाणः न, अभिमातयः न।

व्याख्या-यम्- जिस, देवम्- दानवीर परमेश्वर और विजीगीशु राजा को, दिप्सवः- हिंसाशील पुरुष, न दिप्सन्ति – मारना भी नहीं चाहते है और, जनान द्रुह्वाणः- जंतु और सब मनुष्यों के द्रोह्कारी लोग भी जिसका द्रोह नहीं कर पाते और जिसको, अभिमातयः- अभिमानी शत्रु भी परास्त नहीं क्र सकते है वही परमेश्वर व राजा न्यायकारी पद पर स्थित वरुण है।।

सरलार्थ- हिंसक लोग भी वरुणदेव को नहीं मार सकते है। सामान्यमनुष्यों में द्रोहिव्यक्ति भी जिससे द्रोह नहीं क्र सकता है और पापी भी जिसकी हानि नहीं कर सकते है वह वरुण है।

व्याकरणविमर्श-

- दिप्सन्ति- दम्भ्-धातु से लट्लकार में प्रथमपुरुषबहुवचन में दिप्सन्ति रूप।
- द्रुह्वाणः- द्रुह्-धातु से क्वनिप्प्रत्यय से निष्पन्न द्रुह्नशब्द का प्रथमाबहुवचन में द्रुह्वाणः रूप।
- अभिमातयः- मीञ्-धातु से अभिभूय मिनाति हिनस्ति इस अर्थ में क्तिन्प्रत्यय से अभिमाति रूप होता है। अभिमातिशब्द का प्रथमाबहुवचन में अभिमातयः रूप है।

पाठगत प्रश्न

987. व्रतधारी वरुणकिसप्रकार के मासों को जानता है?

988. उपजायते इस पद के निष्पत्ति कहाँ से हुई?

989. वरुणदेवः किसके मार्ग को जानते है?

990. द्रुह्वाणः इस पद के निष्पत्ति कहाँ से है?

991. निषसाद यहाँ षत्व किस सूत्र से है?

992. निर्णिजम् इस पद की निष्पत्ति कैसे हुई?

993. द्राधातु का क्या अर्थ है?

994. करत् इस पद की निष्पत्ति कैसे हुई?।

995. कर्त्वा इति पद की निष्पत्ति कैसे हुई?

996. कितधातु का क्या अर्थ है?

10.1.3 व्याख्या

उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या।
अस्माकमुदरेष्वा॥15॥

पदपाठः- **उत। यः। मानुषेषु। आ। यशः। चक्रे। असामि।**
आ। अस्माकम्। उदरेषु। आ॥

अन्वयः- उत यः मानुषेषु यशः आचक्रे, असामि आ, अस्माकम् उदरेषु आ।

व्याख्या- उत-और, यः – जो परमेश्वर सूर्य और मेघ, मानुषेषु-समस्त मननशील पुरुषों के निमित्त, असामि-पूर्णरूप से, यज्ञः- यज्ञ और अन्न, आ चक्रे-प्रदान करता है और, अस्माकम् – हमारे, उदारेषु – पेटों को भरने के लिए, यशः- अन्न, आ चक्रे- सर्वत्र पैदा करता है वह वरुण है।

सरलार्थः- जो वरुणदेव ने मनुष्यों के लिए अन्न उत्पादित ही नहीं बल्कि अन्न को सम्पूर्णतया उत्पादित किया तथा हमारे उदर में अन्न को सभी प्रकार से पाचन के लिए शक्ति दे।

व्याकरणविमर्शः-

- मानुषेषु- मनोरपत्यम् इस अर्थ में मनोर्जातावञ्यतौ पुक् इस सूत्र से मनुशब्द से

टिप्पणी

अञ्प्रत्ययऔर षुगागम से मानुषशब्दनिष्पन्न है। मानुषशब्द के सप्तमीबहुवचन में मानुषेषु रूप।

- चक्रे- कृ-धातु से लिट्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में चक्रे रूप।

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु।
इच्छन्तीरुरुचक्षसम्॥16॥

पदपाठः- **परा। मे। यन्ति। धीतयः। गावः। न। गव्युतीः। अनु॥**
इच्छन्तीः। उरुऽचक्षसम्॥

अन्वयः- उरुचक्षसम् इच्छन्तीः मे धीतयः गव्यूतीः अनु गावः न परायन्ति।

व्याख्या- उरुचक्षसं बहुभिर्द्रष्टव्यं वरुणम् इच्छन्तीः मे धीतयः शुनःशेपस्य बुद्धयः परा यन्ति पराङ्मुखा निवृत्तिरहिता गच्छन्ति। तत्र दृष्टान्तः। गावो न। यथा गावः गव्यूतीरनु गोष्ठानि अनुलक्ष्य गच्छन्ति तद्वत्॥

सरलार्थः-सभी के द्वारा दर्शनयोग्यतथा व्यापकदृष्टि वाले वरुण के दर्शन के लिए कामना रखने वाला मेरा बुद्धिसमूह या चेष्टा आदि भावनासमूह उसकी ओर जाता है, जिस प्रकार सायंकाल में गाये उनके लक्ष्य स्थान गोशाला की और दोड़कर जाती है।

व्याकरणविमर्श-

- धीतयः- ध्या-धातु से क्तिन्प्रत्यय यकार को वैदिक सम्प्रसारण करने पर इकार आकार के पूर्वरूप में और इकार के दीर्घ होने पर निष्पन्न धीतिशब्द का प्रथमाबहुवचन में धीतयः रूप होता है।
- गव्यूतीः- गोपूर्वपदयू-धातु से क्तिन्प्रत्यय, गोर्यूतौ छन्दसि सूत्र से ओकार के स्थान में अवादेश निष्पन्नगव्युतिशब्द के प्रथमाबहुवचन में गव्यूतीः रूप बनता है।
- इच्छन्तीः- इष्-धातु में शतृप्रत्यय और ङीप्प्रत्यय होने पर प्रथमाबहुवचन में इच्छन्तीः रूप बनता है।
- उरुचक्षसम्- उरुभिः चक्षसं यस्य तम् उरुचक्षसम् इति बहुव्रीहिसमास।

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम्।
होतेव क्षदसे प्रियम्॥17॥

पदपाठः- **सम्। नु। वोचावहै। पुनः। यतः। मे। मधु। आऽभृतम्॥**
होताऽइव। क्षदसे। प्रियम्॥

अन्वयः- यतः मे मधु आभृतं पुनः नु संवोचावहै। होता इव प्रियं क्षदसे।

व्याख्या- यतः- क्योकि, मे- मुझे, मधु- अतिप्रिय ज्ञान रस विद्वानों से प्राप्त हुआ है और हे शिष्य! तू उस, प्रियम्- प्रिय त्रिप्तिकर ज्ञानराशि को, होता इव – यज्ञ कर्ता

विद्वान के समान ही, क्षदसे– अपने हृदय के अज्ञान के नाश के लिए करता है इसलिए हम दोनों, सं वोचावाहे – भली प्रकार परस्पर उस ज्ञान को वचन – प्रतिवचन से उपदेश दे और ग्रहण करे।।

सरलार्थः–क्योंकि इस यज्ञ में मेरे द्वारा मधुरहवि आपके लिए सम्पादित है। जिससे पुनः हम दोनों परस्पर प्रेमभावना से उपदेश करे। आप होता के सामान उस प्रियहवि का भक्षण करते है।

व्याकरणविमर्शः–

- आभृतम्– आपूर्वक भृ–धातु से क्तप्रत्यय में नपुंसकमें आभृतम् रूप।
- वोचावहै– ब्रू–धातु से लुङ्लकार उत्तमपुरुषद्विवचन में वोचावहै रूप।
- यतः– यच्छब्द का तसिल्प्रत्यय होने पर तकार को अकारादेश और पररूप होने पर यतःरूप बनता है।
- होता– हू–धातु से तृच्प्रत्यय से निष्पन्न होतृशब्द का प्रथमैकवचन में होता रूप है।
- प्रियम्– प्री–धातु से कप्रत्यय ईकार के स्थान पर इयङादेश, नपुंसक में प्रियम् रूप।
- क्षदसे– क्षद्–धातु से आत्मनेपद में लट्लकार में मध्यमपुरुषैकवचन क्षदसे रूप होता है।

दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि।
एता जुषत मे गिरः॥18॥

पदपाठः– **दर्शम्। नु। विश्वऽदर्शतम्। दर्शम्। रथम्। अधि।**
क्षमि। एताः। जुषत। मे। गिरः॥

अन्वयः– विश्वदर्शतं नु दर्शम् अधि क्षमि रथं दर्शम्। एताः मे गिरः जुषत।

व्याख्या– विश्वदर्शतं सर्वैर्दर्शनीयम् अस्मदनुग्रहार्थमत्राविर्भूतं वरुणं दर्शं नु अहं दृष्टवान् खलु। क्षमि क्षमायां भूमौ रथं वरुणसंबन्धिनम् अधि दर्शम् आधिक्येन दृष्टवान् अस्मि। एताः उच्यमानाः मे गिरः मदीयाः स्तुतीः जुषत वरुणः सेवितवान्।।

दर्शम्। दृशेः इरितो वा (पा. सू. 3.1.57) इति च्लेः अङादेशः। ऋदृशोऽङि गुणः (पा. सू. 7.4.16) इति गुणः। विश्वदर्शम्। दृशेः भृमृदृशि... (उ. सू. 3.390) इत्यादिना अवच्प्रत्ययान्तो दर्शतशब्दः। विश्वं दर्शनीयमस्येति बहुव्रीहिः। बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् इति पूर्वपदान्तोदात्तत्वम्। क्षमि।

सरलार्थः– सम्पूर्णविश्व द्वारा दर्शन के योग्य उस वरुण को निश्चय से मैने देखा है। भूमि पर उस वरुण का रथ मैंने देखा। उस वरुणदेव नेमेरी ये स्तुतिस्वीकार की।

टिप्पणी

व्याकरणविमर्श:-

- दर्शम्- दृश्-धातु से लुङ्मूलक लेट्लकार में उत्तमपुरुषैकवचन में दर्शम् रूप।
- विश्वदर्शतम्- विश्वपूर्वपद दृश्-धातु से अतच्प्रत्यय, नपुंसक में विश्वदर्शतम् रूप होता है।
- जुषत- जुष्-धातु से लङ्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में जुषत रूप है।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय।
त्वामवस्युरा चके॥19॥

पदपाठ:- **इमम्। मे। वरुण। श्रुधि। हवम्। अद्य। च। मृळय।**
त्वाम्। अवस्यु:। आ। चके॥

अन्वय:- वरुण! मे इमं हवं श्रुधि, अद्य च मृळय। अवस्यु: त्वाम् आचक्रे।

व्याख्या- वरुणप्रघासेषु इमं मे वरुण इति वारुणस्य हविष: अनुवाक्या। पञ्चम्यां पौर्णमास्याम् इति खण्डे सूत्रितम्- इमं मे वरुण श्रुधि तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमान: (आश्व. श्रौ. 2.17) इति॥

हे वरुण मे- मेरा, इमं-ये, हवम्- आह्वान को, श्रुधि-सुनो। च – और, अद्य- इस दिन में ही, मृळय-हमे सुख दे। अवस्यु:- रक्षण का इच्छुक, मै, त्वां-वरुण के सम्मुख, चक्रे-प्रार्थना करता हूँ या स्तुति करता हूँ॥

सरलार्थ- हे वरुणदेव! मेरा ये आह्वानसुनो और मुझे सुखी करो। मैं संरक्षण का अभिलाषी होकर आपका आह्वान करता हूँ।

व्याकरणविमर्श-

- श्रुधि- श्रु-धातु से लोट्लकार, मध्यमपुरुषैकवचन में वैदिकरूप है ये।
- हवम्- ह्वे-धातु से अप्प्रत्यय, वकार का सम्प्रसारण, सन्धिकार्य और अवादेश करने पर नपुंसक में हवम् रूप।
- मृळय- मृळ्-धातु से लोट्लकार मध्यमपुरुषैकवचन में मृळय रूप।
- अवस्यु:- अवस्-शब्द से क्यच्प्रत्यय और उप्रत्यय करने पर अवस्यु: रूप बनता है।
- चके- कै-धातु से लिट्लकार, उत्तमपुरुषैकवचन में चके रूप।

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि।
स यामनि प्रति श्रुधि॥20॥

पदपाठ:- त्वम्। विश्वस्य। मेधिर। दिव:। च। ग्म:। च। राजसि।
स:। यामनि। प्रति। श्रुधि॥

अन्वयः- मेधिर। त्वं दिवः च ग्मः च विश्वस्य राजसि। सः यामनि प्रतिश्रुधि।

व्याख्या- हे मेधिर-मेधावि वरुण, त्वं- आप दिवश्च- द्युलोक से, ग्मश्च- भूलोक के और सम्पूर्ण जगत के मध्य भाग में, राजसि- दीप्त होते है। सः तादृशः त्वं यामनि क्षेमप्रापणे अस्मदीये प्रति श्रुधि प्रतिश्रवणम् आज्ञापनं कुरु। रक्षिष्यामीति प्रत्युत्तरं देहीत्यर्थः।।

सरलार्थः- हे मेधावी वरुणदेव! आप द्युलोक से पृथिवीलोक तक सम्पूर्ण जगत् के मध्यभाग में प्रकाशित होते है। इसीप्रकार वरुणदेवता आप हमारे मार्ग अर्थात् जीवनरूपयात्रा के मार्ग में वचन दो कि आप मेरी रक्षा करेंगे।

व्याकरणविमर्श-

- मेधिर- मेधशब्द में इरच्प्रत्यय होने से मेधिर रूप।
- दिवः- दिव्-धातु से क्विप्प्रत्यय से निष्पन्न दिव्शब्द का षष्ठ्येकवचन में दिवः रूप।
- राजसि- राज्-धातु से लट्लकार, मध्यमपुरुषैकवचन में राजसि रूप।
- यामनि- या-धातु से मनिन्प्रत्यय, सप्तम्येकवचन में यामनि रूप.

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत।
अवाधमानि जीवसे।।21।।

पदपाठः- **उत्। उत्ऽतमम्। मुमुग्धिः। नः। वि। पाशम्। मध्यमम्। चृत।।**
अव। अधमानि। जीवसे।।

अन्वयः- नः उत्तमं पाशम् उत् मुमुग्धि, मध्यमं विचृत, जीवसे अधमानि अव।

व्याख्या- नः अस्माकम् उत्तमं शिरोगतं पाशम् उत् मुमुग्धि उत्कृष्य मोचय। मध्ययम् उदरगतं पाशं वि चृत वियुज्य नाशय। जीवसे जीवितुम् अधमानि मदीयान् पादगतान् पाशान् अव चृत अवकृष्य नाशय। उत्तमम्। मुमुग्धि। मुच्लृ मोक्षणे। बहुलं छन्दसि इति विकरणस्य श्लुः। द्विर्भावः। हलादिशेषः। हुझल्भ्यो हेर्धिः (पा. सू. 6.4.101) इति हेर्धिरादेशः। चृत। चृती हिंसाग्रन्थनयोः। लोटो हिः। तुदादिभ्यः शः, अतो हेः इति हेर्लुक्। जीवसे। जीव प्राणधारणे।

सरलार्थः- हे वरुणदेव! आप हमारे ऊपर जो बंधन है उनको हटाकर नाश कर दो। इन बीजों के बन्धन को पृथक्तया निकालकर नाश करो और हमारे जीवन के लिए निम्न बन्धन को भी हटाकर नाशकर दो।

व्याकरणविमर्श-

- उत्तमम्- उत्-धातु से तमप्रत्यय, द्वितीयैकवचन में उत्तमम् रूप।
- मुमुग्धि- मुच्-धातु से लिट्मूलक लोट्लकार, मध्यमपुरुषैकवचन में मुमुग्धि रूप।
- पाशम्- पश्-धातु से घञ्प्रत्ययसे निष्पन्नपाशशब्द का द्वितीयैकवचन में पाशम् रूप।

टिप्पणी

- चृत- चृत्-धातु से लोट्लकार मध्यमपुरुषैकवचन में चृत रूप।
- जीवसे- जीवं-धातु से तुमुन्प्रत्यय के अर्थ में वैदिक असेप्रत्यय से जीवसे रूप।

पाठगत प्रश्न

997. वरुण किसको शक्ति देता है?

998. मानुषशब्द कैसे बना?

999. इच्छती: यहां छत्व किस सूत्र से हुआ?

1000. होता पद की निष्पत्ति कैसे हुई?

1001. मुमुग्धि पद की निष्पत्ति किससे हुई?

1002. अवस्यु: पद की निष्पत्ति कहां से हुई?

1003. हि को धि आदेश किस सूत्र से हुआ?

1004. चृतीधातु का क्या अर्थ है?

1005. गव्यूती: पद की निष्पत्ति कहां से हुई?

1006. मेधिर पद की निष्पत्ति कहां से हुई?

10.2 वरुणसूक्तसार

ऋग्वेद के प्रथममण्डल के पञ्चविंशं (25वें) सूक्त को वरुणसूक्त कहते है। यहाँ कुल 11 मन्त्र हैं। शुन:शेप: ऋषि इस सूक्त के द्रष्टा है। वरुणही देवता है। छन्द गायत्री है। इस सूक्त में जल का देवता वरुण के प्रति मानवों की प्रार्थनाओ का वर्णन है, न केवल प्रार्थना अपितु यहाँ विविधप्रकार से वरुणदेवता के लिए प्रशंसा भी है। यथा- अपराध करने पर बुद्धि से क्षमा प्रार्थना करते है, उसके बाद स्वयं की इच्छाओं धनलोभादियों को अपराध स्वीकार किया गया है और फिर वरुणदेवता को शक्तिवर्णन से और स्तुतिमाध्यम से प्रसन्न करते है। इसप्रकार यहाँ क्रम से वरुणदेवता की सन्तोषपूर्वक प्रार्थना की जाती है।

प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि हे वरुणदेव! जैसे विविध यज्ञादि अनुष्ठान में मनुष्यों का प्रमाद होता है उसी प्रकार आपके पूजार्चनादि विधियों में हम शंकित होते है अत: हमें क्षमा करो। उसके बाद प्रार्थना की गई है की आप क्रोधवस्था में भी हमारे प्रति क्रोध मत करो। और भी -हे वरुणदेव! आपके शत्रुओ के प्रति प्रयोग किये गये अस्त्राहमे मत पदिखाओ और क्रोधवस्था में भी हमारे प्रति कृपा करो। उसके बाद कहते है कि

जिस प्रकार सारथि थके हुए अश्व की परिचर्या करता है उसी प्रकार हम भी आपके चित्त को प्रसन्न करने के लिए स्तुत्यादि करते है। और हमारी बुद्धि सदैव धनादिवस्तु के प्रति दोड़ती है अतः हमें क्षमा करो।

उसके बाद यहाँ प्रार्थना करते है कि कब सर्वद्रष्टा वरुणदेव कल्याण के लिए यज्ञस्थलादि पर आएगा। और व्रतधारणद्वारा आहुत हविर्द्रव्य वरुणदेव स्वीकार करके उसके बाद हम यजमानों रक्षा करेगा।

इसके बाद यहाँ वरुणदेवता का माहात्म्य का वर्णन करते है। वहां कहते है कि वरुणदेव आकाश में उड्डीयमान पक्षियों के मार्ग तथा समुद्र में नौकाओ के मार्ग को जानता है। प्रजा का धारक वरुणदेव द्वादशमास को जानाति और उसके साथ ही त्रयोदश(13वे) पुरुषोत्तममास को भी जानता है। वह स्वर्ग के सभी देवों को भी जानता है, और प्रजापालन के लिए स्राामाज्यस्थापना में सदैव तत्पर रहता है। वह अद्‌भुतकर्मादि विषयों को भी जानता है। भूलोक और द्युलोक के तथा समस्तविश्व के अधिकारी वरुण ने ही मनुष्यों के लिए शस्यभण्डार किये है और उसी ने ही मनुष्यों के उदर में पाचनसामर्थ्य स्थापित किया। वरुणदेव का इतना सामर्थ्य है कि भयङ्कर पापियों और द्वेष चाहने वाले शत्रुओ द्वारा भी अप्राप्य है।

वरुणदेव की स्तुति के बाद प्रार्थाना करते है। यथा- हमें पाश से मुक्तिप्रदान करो। हमारा आह्वान स्वीकार करो, यज्ञस्थलादि में अग्निदेव के समान हवि स्वीकार करो। हे अदितिपुत्र वरुणदेव! हमारी प्रार्थना सुनों और सुनकर हमे सुख प्रदान करो। हमे सदा श्रेष्ठमार्ग में ही प्रेरित करो और हमारी आयु को वर्धन करो।

10.3 वरुणदेवतास्वरूपम्

वरुणदेव ऋग्वैदिक आर्यों के अतीव प्रिय है। ऋग्वेद में वरुण का स्वरूप सम्पूर्णरूप से द्वादश12 सूक्त में प्रतिपादित है। और आंशिकरुप से चतुर्विंशति(24)सूक्त में स्तुति की गई है।

वरुणदेव की मानवाकृति अतीव सुन्दर तथा मोहनीय है। इसका मुखमण्डल अग्नि के तुल्य है और नेत्र सूर्यतुल्य है।

अग्नेरनीकं वरुणस्य। (7.88.2)
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। (1.155.1)

ये वरुणदेव अत्यन्तदूरस्थित होते हुए भी वस्तु में देखा जा सकता है। इसे सहस्रनेत्रवाला भी कहते है। इसका शरीर सुगठित और मांसल था। सुरक्षा और सौन्दर्य के लिए यह स्वशरीर पर स्वर्णिमकवच और स्वर्णिमवस्त्र को धारण करता है। इसका रथ सूर्य के सदृश द्युतिवान् देखने वालों में भी आश्चर्य उत्पन्न करता है। सुन्दर अश्व से युक्त अपने रथ पर बैठकर यह अपनी बाहू को हिलाते हुए और दृष्टि का सर्वत्र प्रसार करते हुए

टिप्पणी

भूलोक के सूक्ष्म व्यवहार को और प्रजा के अन्तस्स्थित भाव को भी जनता है। यह कभी स्वतन्त्ररूप से कभी मित्रदेव के साथ विश्व का राजा कहा जाता है।

त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा॥ (1.24.8)

सहस्रस्तम्भ से युक्तऔर सहस्रद्वार से युक्तस्वर्णिम महल में ये निवास करता है। यही स्थित होकर वह समग्र भुवन को निरीक्षण सम्पादित करता है। इसके प्रासाद के चारों और गुप्तचर सदैव विचरण करते है। वरुण को सम्राट्, स्वराट् इत्यादि उपाधि से भी विभूषित किया जाता है। शस्त्रों का अधिपति होने से ये क्षत्रिय भी कहाता है। इसकी अनिर्वचनीयशक्ति का नाम माया है, जिससे यह इस जगत का सचालन करता है। वर्षा से यह अन्नं उत्पन्न करता है तथा प्रकाश के निमित्त सूर्य को मध्यगगन में भेजता है इसी ने सूर्य के चलने के लिए अन्तरिक्षलोक में सुविस्तीर्ण मार्ग बनाया।

सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ॥ (ऋग्वेद1.28.8)

इसकी आज्ञा अतीव कठिन होती है फिर भी कोई इसकी आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करता है। यह वरुण कठिन नियमों का पालन करता है इसलिए इसे धृतव्रत भी कहा जाता है। इसप्रकार इस विश्व का अणु से भी अणु पदार्थ तथा महान् से भी महान पदार्थ सभी वरुणदेव की इच्छा से ही अपनी सत्ता और स्थिति को धारण करते है। इसी लिए ये वरुण कल्याणकारी है।

पाठसार

वरुणसूक्त ऋग्वेद के प्रथममण्डल का चतुर्विंशति24वां सूक्त है। इस सूक्त का शुनःशेपः ऋषि और वरुणदेव है। इस सूक्त में त्रिष्टुप् और गायत्री छन्द है। गायत्रीछन्द तृतीय-चतुर्थ-पञ्चममन्त्रों में है। यहाँ विशेषतया वरुणदेव का स्वरूप तथा उसके कार्य का वर्णन है। प्रमाद न करें मनुष्य, इसके लिए वरुणदेव से प्रार्थना करते है। उनके प्रमादों का परिमार्जन करके वरुणदेव नियम से उन्हें पूर्ण करे ये आशा करते है। सुखप्राप्त करने के लिए भी वरुणदेव से प्रार्थना करते है। यथा रथस्वामी अथवा रथ को जो चलाता है वह दूर जाकर तृण दिखाकर अश्व को प्रसन्न करता है, उसी प्रकार हम भी मानसिक सुख प्राप्त करने के लिए वरुणदेव की नाना प्रकार से स्तुति से प्रसन्न करते है। कदाचित् सुखप्राप्ति और कदाचित् शोभा प्रदान करने केलिए भी अपि वरुणदेव की स्तुति करते है। वरुणदेव आकाशमार्ग से उड्डीयमानपक्षियों के मार्ग को भी जानता है तथा समुद्रमार्ग से गम्यमान नौकाओ के मार्ग को भी जानता है, इससे वह वरुणदेव हमें बन्धन से मुक्त करे। वरुणदेव का स्थानजलगृह है। वो वहां बैठकर इस संसार के सभी कार्य देखता है और विचार करता है। आयु के वर्धन केलिए भी कभी कभी वरुणदेव की स्तुति यहाँ की जाती है। और कहीं-कहीं वरुणदेव चिकने और चमकीले विशिष्टशरीर का वर्णन भी करते है। इस सूक्त के प्रायः अन्तिमभाग में वरुणदेव की महिमा वर्णित है। उसकी

अन्नप्रदान के रूप की महिमा, सत्मार्ग में प्रेरित की महिमा और शरीर की पुष्टी के लिए महिमा यहाँ इस सूक्त में वर्णित है। अन्तिमभाग में वरुणदेव के रथ के वर्णन किया है। यजमान ने उसका दर्शन किया। सम्पूर्णविश्व के देखने के योग्य उस वरुणदेव के निश्चय ही दर्शन उचित है स्तुति द्वारा द्यउसके बाद सुखप्राप्ति और अपनी रक्षार्थ स्तुति की गई है। हमारे सभी विनाश से अपने जीवन की रक्षा के लिए यह वरुणसूक्त है। ये ही माहात्म्य है वरुणसूक्त का।

पाठान्त प्रश्न

1007. वरुणसूक्त का सार लिखो।

1008. यच्चिद्धि... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1009. मा नो... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1010. कदा क्षत्रश्रियम्... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1011. तदित्समान...... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1012. दर्शं नु..... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1013. इमं मे... ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1014. त्वं विश्वस्य... ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1015. उदुत्तमं मुमुग्धि... ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तरसंकेत -1

1016. शुन:शेप: ऋषि, वरुण देवता, गयत्री छन्द।

1017. मीञ्-धातु लट्लकार, उत्तमपुरुषबहुवचन में वैदिक रूप।

1018. हत्नु का चतुर्थ्येकवचन में हत्नवे रूप।

1019. वेन्-धातु से शतृप्रत्यय में प्रथमाद्विवचन का वेनन्तौ ये वैदिकरूप है।

1020. शासकीयशक्ति से सुशोभित, विशालदृष्टि वाला त्रिकालदर्शि, सभी का नेता वरुणदेव उसके समीप आएगा।

1021. हन्-धातु से हिंसा ओए गमन अर्थ है।

1022. वस्-धातु से अतिप्रत्यय से निष्पन्न वसति इसका द्वितीयाबहुवचन में वसती: रूप।

1023. समुद्रे भव इत्यर्थे घप्रत्यय, इयादेश से समुद्रिय: रूप बनता है।

1024. ज्ञान।

1025. शासिवसिघसीनां च।

उत्तर संकेत - 2

1026. व्रतधारी वरुण प्रजायुक्त द्वादश12 प्रकार के महीनों को जनता है।

1027. उपपूर्वक जन्-धातु से लट्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में उपजायते ये रूप बनता है।

1028. महत् वायु के अर्थात् अन्तरिक्ष के मार्गों को जानता है।

1029. द्रुह्-धातु से क्वनिप्प्रत्यय होने पर निष्पन्न द्रुह्शब्द का प्रथमाबहुवचन में द्रुह्णाण: रूप होता है।

1030. सदिरप्रते: इस सूत्र से षत्व।

1031. नि पूर्वक णिजिर्-धातु से कप्रत्यय होने पर निर्णिजशब्द का द्वितीयैकवचनमें निर्णिजम् रूप।

1032. कुत्सा और गति।

1033. कृ-धातु से लुङमूलक लोट्लकार के प्रथमपुरुषैकवचन में करत् रूप।

1034. कृ-धातु से त्वन्प्रत्यय करके कर्त्वा रूप बनता है।

1035. ज्ञान।

उत्तरसंकेत - 3

1036. अन्न के सभी प्रकार से पाचन के लिए शक्ति दी।

1037. मनोरपत्यम् इस अर्थ में मनोर्जातावञ्यतौ पुक् इस सूत्र से मनुशब्द से अञ्प्रत्यय और षुगागम होने पर मानुषशब्दनिष्पन्न हुआ ।

1038. इषुगमियमां छ:।

1039. हू-धातु से तृच्प्रत्यय होने पर निष्पन्न होतृशब्द के प्रथमैकवचन में होता रूप बनता है।

1040. मुच्-धातु से लिट्मूलक लोट्लकार के मध्यमपुरुषैकवचन में मुमुग्धि रूप।

1041. अवस्-शब्द में क्यच्प्रत्यय और उप्रत्यय करने पर अवस्यु रूप बनता है।

1042. हुझल्भ्यो हेर्धिः इस सूत्र से।

1043. हिंसा और ग्रन्थनम्।

1044. गोपूर्वपद यू-धातु से क्तिन्प्रत्यय होने पर गोर्यूतौ छन्दसि सूत्र से ओकार के स्थान पर अवादेश से निष्पन्न गव्युतिशब्द के प्रथमाबहुवचन में गव्यूतीः रूप बनता है।

1045. मेधाशब्द से इरच्प्रत्यय करने पर मेधिर रूप बनता है।

दसवां पाठ समाप्त

11

यमसूक्त

प्रस्तावना

शरीर में जैसे सर वैसे ही संस्कृत साहित्य में वेदों की प्रधानता है। भारत में धर्मव्यवस्था वेदों से ही ली गई है। वेदो का धर्मनिरूपण में स्वतन्त्रभाव से प्रमाण है, स्मृति आदि तो वेदमूलक ही है। इसलिए श्रुति और स्मृति के विरोध में श्रुति ही श्रेष्ठ है। वेद केवल धर्ममूलक ही नही है अपितु वेदो में अनेक समस्याओं का समाधान है, और सबसे प्राचीन ग्रन्थ भी है। प्राचीन धर्मसमाज-व्यवहार-आदि वस्तुजात का बोध कराने में केवल वेद ही सक्षम है। ''विद्यन्ते धर्मादय: पुरुषार्था: यै: ते वेदा:'' इति। सायण ने 'अपौरुषेयं वाक्यं वेद' कहा है। ''इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकम् उपायं यो वेदयति स वेद'' इति। और कारिका-

''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।।'' इति।

वेदा चार होते है। और वे हैं - ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। वहाँ ऋग्वेद के देवता में यम एक प्रसिद्ध देव हैं। ऋग्वेद में तीन सूक्तों में उसकी कथा प्राप्त होती है। ऋग्वेद में साधारण रूप से मृत्यु के देवतारूप में प्रसिद्ध है। मृत्यु के बाद सभी प्राणी यम के पास ही जाते है।

वह हमारे पूर्वज हैं, मृत्यु के बाद जो प्रथम प्रेतलोक के मार्ग को जानता था - ''यमो नो गातुं प्रथमो विवेद''। इस प्रकार का वह यम है। उसके विषय को आधारीत करके इस सूक्त की रचना की है। इस दशवें मण्डल के चौदहवें सूक्त का (ऋ.वे.10.14) यम वैवस्वत ऋषि, यम, आङ्गिर, पित्रखथवभृगुसोर्मा, लिङ्गोक्तदेवता अथवा पितर है, श्वानौ, त्रष्टुप्, अनुष्टुप् और बृहती छन्द है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे –

- यमसूक्त को जान पाने में;
- यम को जान पाने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- लौकिक शब्दों को जान पाने में;
- लौकिक वैदिक शब्दों के भेद को जान पाने में;
- अपने आप मन्त्र की व्याख्या कर पाने में;
- अपने आप अन्वय आदि कर पाने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण आदि को जानने में।

11.1 मूलपाठ

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य॥1॥
यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या३ऽ अनु स्वाः॥2॥
मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति॥3॥
इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।
आ त्वा मंत्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व॥4॥
अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य॥5॥
अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम॥6॥
प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्॥7॥

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः॥8॥
अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै॥9॥
अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अथा पितृन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति॥10॥
यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि॥11॥
उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम्॥12॥
यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः॥13॥
यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत।
स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे॥14॥
यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः॥15॥
त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद्बृहत्।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता॥16॥

11.1.1 व्याख्या

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य॥1॥

पदपाठ- परेयिऽवांसम्। प्रऽवतः। महीः। अनु। बहुऽभ्यः। पन्थाम्।
अनुऽपस्पशानम्। वैवस्वतम्। समऽगमनम्। जनानाम्। यमम्।
राजानम्। हविषा। दुवस्य॥1॥

अन्वय- पर्येयिवांसम् महीः बहुभ्यः अनुप्रवतः राजानम् यमम् हविषा दुवस्य अनुपस्पशानाम् पन्थानम् वैवस्वतम् जनानाम् सङ्गमनम्।

व्याख्या- पृथिवी लोक पर स्थित पुराने, उन्नत और थोड़े समय के या ताजे उत्पन्न एवं सभी पदार्थों को सभी ओर से अधिकार करके प्राप्त तथा बहुत प्रकार से जीवन मार्ग को पाशतुल्य स्वाधीन करते हुए और जायमान अर्थात उत्पन्नमात्र वस्तुओं के प्राप्ति स्थानरूप सूर्य के पुत्र

टिप्पणी

काल –समय प्रातः सांय –अमावस्या –पूर्णिमा –ऋतु संवत्सर विभाग युक्त राजा के समान वर्तमान विश्वकाल समय को आहुति क्रिया से हे जीव! तु दीर्घायुलाभ के लिए स्वानुकूल बना यह आन्तरिक विचार है। यमाय मधुमत्तमम् यहाँ पर बृहती है। आदितो द्वादश त्रिष्टुभ है। और भी 'चानुक्रान्तम्- यरेयिवांसं षोळश यमो यामं पष्ठी लिङ्गोक्तदेवता पराश्च तिस्रः पित्र्या वा तृचःश्वभ्यां परा अनुष्टुभो बृहत्युपान्त्या यह सूक्त में आया हुआ विनियोग है। महापुतृयज्ञे यमयाग आद्या याज्या। सूत्रितञ्च इमं यम प्रस्तरमा हि सीदेति द्वे परेयिवांसं प्रवतो महीरनु(आ. श्रौ. 2।19।22) इति। हे यजमान तुम राजा को पितरो के स्वामी यम को हवि पुरोडश आदि देकर प्रसन्न करते है।

सरलार्थ- (हे यजमान तुम) परलोकवासी के उत्पति स्थिति और नाश का निमित हो, उस आयुवर्धक सूर्य पुत्र को पदार्थो के होम द्वारा स्वानुकुल बनाना चाहिए। स विवस्वत का पुत्र मृत मनुष्यों को मिलाता है।

व्याकरण-

- परेयिवांसम्- परापूर्वक-इण्-धातु से क्वसु प्रत्यय करने पर द्वितीयाएकवचन में यह रूप है।
- प्रवतः- प्र उपसर्ग से 'उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे' इससे स्वार्थे में वतिप्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- महीः- महशब्द से ङीप् प्रत्यय करने पर द्वितीया बहुवचन में यह रूप है।
- पन्थाम्- पथिन्-शब्द का द्वितीया एकवचन में यह वैदिकरूप है।
- अनुस्पशानम्- अनुपूर्वकस्पश्-धातु से कानच् प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है।
- वैवस्वतम्- विवस्वतः अपत्यं पुमान् इस विग्रह में अण्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है।
- सङ्गमनम्- सम्पूर्वक-गम्-धातु से ल्युट-प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन का यह रूप है।

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या३ऽऽ अनु
स्वाः॥2॥

पदपाठ- **यमः। नः। गातुम्। प्रथमः। विवेद। न। एषा। गव्यूतिः।**
अपऽभर्तवै। ओम् (ॐ) इति। यत्र। नः। पूर्वे। पितरः।
पराऽईयुः। एना। जज्ञानाः। पथ्याः। अनु। स्वाः॥2॥

टिप्पणी

अन्वय– यमः प्रथमः नः गातुम् विवेद। एषा गव्यूतिः उ न अपभर्तवै यत्र नः पूर्वे पितरः परेयुः, एना जज्ञानाः स्वाः पथ्याः अनु।

व्याख्या– समय ने ही हमारी जीवन गति को प्रथम से ही प्राप्त किया हुआ है अत यह काल मार्ग किसी तरह त्यागा नही जा सकता जिस मार्ग में हमसे पूर्व उत्पन्न जनक आदि पालक जन भी कुल परंपरा से यात्रा करते चले आये हुए है, और इसी मार्ग से उत्पन्न हुए सभी प्राणी और वनस्पति आदि पदार्थ निज मार्ग सम्बन्धी धर्मो का अनुगमन करते है, अत उस समय को पूर्व मन्त्रानुसार होम द्वारा स्वानुकुल बनाना चाहिए।

सरलार्थ– यम ही प्रथम है, जो हमारे शुभ अशुभमार्ग को जानता है। अच्छे ज्ञान के विष में और बुरे ज्ञान के विषय में ज्ञान को कोई हर नही सकता है। हमारे पूर्वज जिस मार्ग से गये है, ज्ञानी लोग भी उसी पन्थ का अनुसरण करता है।

व्याकरण–

- गातुम्– गौ–धातु से तुमु प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- विवेद– विद्–धातु से परस्मैपद में लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- जज्ञानाः– जन्–धातु से कानच् प्रत्यय करने पर प्रथमा बहुवचन में यह रूप बनता है।

मातली कव्यैर्यमो
अङि्गरोभिर्बृहस्पतिर्क्वभिर्वावृधानः।
याँश्चं देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये
मंदन्ति॥3॥

पदपाठ– **मातली। कव्यैः। यमः। अङि्गरःऽभिः। बृहस्पतिः। ऋक्वऽभिः।**
ववृधानः। यान्। च। देवाः। ववृधुः। ये। च। देवान्। स्वाहा।
अन्ये। स्वधया। अन्ये। मदन्ति॥3॥

अन्वय– मातली कव्यैः यमः आङि्गरोभिः ऋक्कभिः बृहस्पतिः ववृधानः। देवाः यान् ववृधुः, ये च देवान् अन्ये स्वाहा अन्ये स्वधया मदन्ति।

व्याख्या–अग्निमारुते मातली कव्यै रित्येषा धाय्या। सूत्रितञ्च –इमं यम प्रस्तरमा हि सीद मतली कव्यैर्यमो अङि्गरोभिरुदीरतामवर उत्परासः (आ0श्रौ0 5.20.6) इति।

मातलि इन्द्र का सारथी है, उस प्रकार का इन्द्र वाला मातली है। वह काव्यो के द्वारा काव्य के भागो का पितर के साथ बढ़ती रहे है। यम अङि्गरा के साथ और पितरो के साथ विशेष रूप से आगे बढता है। (बृहस्पतिः ऋक्वभिः ऋक्प्रतिपाद्यैः पितृविशेषैः सह वर्धमानो भवति।) वहा देव इन्द्र आदि यान् को और काव्य भाग आदि को विशेष रूप से बढ़ाते रहते है और ये काव्य के भाग पितरो और इंद्र आदि देवो को बढ़ाता है। उनके मध्य में अग्नि इन्द्र आदि के लिए स्वाहा शब्दों का प्रयोग करके उन्हें प्रसन्न करने का प्रयास किया गया है। अन्य पितरों को स्वधा और स्वधाकार से उन्हें संतुष्ट करने का प्रयास किया गया है।

सरलार्थ- मातलि काव्यों के साथ, यम अङि्गरा आदि के साथ, बृहस्पति का ऋग्वेद के साथ वृद्धि को प्राप्त होता है। जिनका देवता संरक्षण करते है, और देवता में कुछ स्वाहा द्वारा और अन्य स्वधा द्वारा (हव्यदान से) आनन्दित होते है।

व्याकरण-

- कव्यैः-यहाँ साथ अर्थ में तृतीया है।
- वावृधुः-वृध्-धातु से लिट् प्रथम पुरुष बहुवचन का यह रूप है।
- स्वाहा-स्वाहा शब्द के तृतीया एकवचन में यह वैदिक रूप है।
- स्वधया- स्वधा शब्द के तृतीया एकवचन में यह रूप है।
- मदन्ति- मद्-धातु से लट् प्रथम पुरुष बहुवचन का यह रूप है।

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङि्गरोभिः पितृभिः संविदानः।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व॥4॥

पदपाठ- **इमम्। यम। प्रऽस्तरम्। आ। हि। सीद। अङिगरःऽभिः। पितृऽभिः। सम्ऽविदानः।**
आ। त्वा। मन्त्राः। कविऽशस्ताः। वहन्तु। एना। राजन्। हविषा। मादयस्व॥4॥

अन्वय- यम आङि्गरोभिः पितृभिः संविदानः इमं प्रस्तरम् आसीद। हि कविशस्ताः मन्त्राः त्वा आवहन्तु राजन् एना हविषा मादयस्व।

व्याख्या- महापितृयज्ञ इमं यमेत्यादिके द्वे अनुवाक्ये। इमं यम प्रस्तरमा हि सीदेति द्वे (आ0श्रौ0 2.19.22) इति हि सूत्रितम्। सैवाग्निमारुतेपि धाय्या। सूत्रं पूर्वमेवोदाहृतम्।

हे यम, अङि्गरा तु प्राणों के अनुकूल होता हुआ मेरे इस शरीर रूपी यज्ञ को जीवन वृद्धि के हेतु अवश्य भलीं प्रकार प्राप्त हो शरीर विद्यावेता विद्वानों के निर्दिष्ट मंतव्य तुझको मेरे शारीर में चिरकाल तक रखे, अतएव हे राजमान देव इस हविर्दान तथा खाने योग्य पदार्थ से मुझ को सन्तुष्ट, सजीवन कर।

सरलार्थ- हे यम अंगिरा नामक पितृगण के साथ एकत्रीत होकर घास से निर्मित यज्ञवेदि के मध्य में बैठों। क्योंकि मेधाविन शास्त्र पाठ को के मन्त्र तुम्हारा आह्वान करते है, अतः हे राजन् हवि के द्वारा प्रसन्न हो।

व्याकरण-

- प्रस्तरम्- प्रपूर्वक स्तृ-धातु से अप्प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- सीद- सद्-धातु से लोट् मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- पितृभिः- यहाँ साथ अर्थ में तृतीया है।

टिप्पणी

- संविदानः- सम्पूर्वक विद्-धातु से शानच् प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में यह रूप बनता है।
- मादयस्व- मद्-धातु से स्वार्थ में णिच् लोट् लकार के मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य॥5॥

पदपाठ- **अङ्गिरःऽभिः। आ। गहि। यज्ञियेभिः। यम। वैरूपैः। इह। मादयस्व। विवस्वन्तम्। हुवे। यः। पिता। ते। अस्मिन्। यज्ञे। बर्हिषि। आ। निऽसद्य॥5॥**

अन्वय- यम! वैरूपैः यज्ञियेभिः अङ्गिरोभिः गोत्रज यज्ञवित् इह आगाहि, मादयस्व। यः ते पिता विवस्वन्तं हुवे अस्मिन् यज्ञे वर्हिषि आ निषद्य।

व्याख्या- हे यम, विभिन्न रूपों में, विविध रूपों से युक्त साम प्रिय यज्ञ के द्वारा, यज्ञ के योग्य अङ्गिरा के साथ आओ। और आकर के इस यज्ञ के पावन पर्व पर प्रसन्न कीजिए।

सरलार्थ- हे यम विरूपर्ष के पुत्र यज्ञ के ज्ञाता अंगिरागण के साथ इस यज्ञस्थान में आकर के प्रसन्न करिये। जो विवस्वान् तेरा पिता है, उसका हम आह्वान करते है, वह यहाँ आकर के इस यज्ञ में कुश के उपर स्थान को प्राप्त करे।

व्याकरण-

- वैरूपैः- साथ अर्थ में तृतीया है।
- विवस्वन्तम्- विवस्वत् शब्द का द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है।
- हुवे- ह्वे-धातु से आत्मनेपदमें लट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप है।
- निषद्य- नि पूर्वक सद्-धातु से ल्यप् करने पर यह रूप बनता है।

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम॥6॥

पदपाठ- **अङ्गिरसः। नः। पितरः। नवऽग्वाः। अथर्वाणः। भृगवः। सोम्यासः। तेषाम्। वयम्। सुऽमतौ। यज्ञियानाम्। अपि। भद्रे। सौमनसे। स्याम॥6॥**

अन्वय- अङ्गिरसः अथर्वाणः भृगवः नवग्वाः नः पितरः सोम्यास्यः। तेषाम् यज्ञियानाम् सुमतौ अपि सौमनसे भद्रे वयं स्याम।

व्याख्या- अङ्गिरसः अङ्गिरनामका, अथर्वाणः अथर्वनामका, और भृगवः भृगुनामकाहमारे पितरदिवाकर किरणों से युक्त होते है, अथवा नयी किरणों के समान सुंदर लगते है। और वे सोम का सम्पादन करते है। सोम को चाहने वाले सोम्या कहलाते हैं। उन यज्ञिय योग्य सूर्य

किरणों के विचारणीय विज्ञान व्यवहार में हम कल्याण मन से सुख युक्त होकर रहे। और भी सूर्य की किरणें भद्र और कल्याणकारी फल दे।

सरलार्थ– अङ्गरस, अथर्वाण, भृगव आदि प्रत्येक ऋतु को अपने अनुकूल और सुखमय बनाने के लिए पुष्कल ऋतु याग करना चाहिए। हम जैसे यज्ञ के समय प्रसन्नचित्त और कल्याणकारी बने रहे वैसा आप प्रयत्न कीजिए।

व्याकरण–

- नवग्वा:– नवभि: गू: गमनं येषां ते नवग्वा:।
- भृगव:– भृगु शब्द का प्रथमा बहुवचन में यह रूप है।
- सुमतौ– सु सुंदर बुद्धि है जिसकी उसको।
- सौमनसे– सुमनस: भाव यहाँ पर तस्येदम् इससे अण् प्रत्यय करने पर सप्तमी एकवचन में यह रूप बनता है।

प्रेहि प्रेहि पथिभि! पूर्व्येभिर्यत्रा न: पूर्वे पितर: परेयु:।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्॥7॥

पदपाठ– **प्र। इहि। प्र। इहि। पथिऽभि:। पूर्व्येभि। यत्र। न:। पूर्वे। पितर:। पराऽईयु:। उभा। राजाना। स्वधया। मदन्ता। यमम्। पश्यासि। वरुणम्। च। देवम्॥7॥**

अन्वय– यत्र न: पूर्वे पितर: परेयु: पूर्व्येभि: पिथिभि: प्रेहि प्रेहि। स्वधया मदन्तौ उभा राजाना यमम् च देवम् वरुणम् पश्यसि।त्रिकंद्रुकेभि: पतति षळुवीरेकमिदुबृहत्। त्रिष्टुब्गायत्री छंदासि सर्वा ता यम आहिता॥16॥

व्याख्या– सत्रमधये दीक्षितस्य मरणे प्रेहीत्याद्या: पञ्चर्चैस्तृतीयावर्जता होत्रा शंसनीया:। सूत्रतञ्च प्रेहि प्रेहि पथिभि: पूर्व्येभिरिति पञ्चानां तृतीयामुद्धरेत् (आ0श्रौ0 6.10.19) इति।

जहाँ पर अथवा जिस स्थान पर हमारे बड़े लोगो के बनाए मर्यादित किये हुए जीवन यात्रा सम्बन्धी इच्छा पूर्ति मार्ग से हे जीव तू बार बार नित्य प्राप्त कर। अनादि काल से ही प्रवृति है यह अर्थ है। पथि के साथ जिन मार्गो में वर्त्तमान हुए हमारे पालक जन जीवनान्त आयु की पूर्णता को प्राप्त करे। और जाकर के स्वधा से अमृत से अन्न से प्रसन्न राजा के समान दोनों यम देव के प्रकाश को और वरुण को हमारे देखते हुए देखें।

सरलार्थ– (हे मृत) जहाँ हमारे पूर्वज पितर गए है, (तुम भी) पूर्व मार्ग का अनुसरण करते हुए शीघ्र जाओ, शीघ्र जाओ। (वहाँ जाकर के तुम) स्वधा द्वारा आनन्दित यम और देव वरुण दोनों का प्रत्यक्ष दर्शन करोगे।

व्याकरण–

- प्रेहि प्रेहि पथिभि: पूर्व्येभि:– मन्त्र के प्रथम पाद में पकार का अनुप्रास लक्षण है।

- पूर्व्येभि:- पूर्वै: कृतम् यहाँ पर पूर्व शब्द से य प्रत्यय करने पर अकार का लोप करने पर भिस् को ऐस् आदेश होने पर एत्व के अभाव में यह रूप है।
- उभा राजाना मदन्ता- उभौ राजानौ मदन्तौ, यहाँ पर सुपां सुलुक् इत्यादि से आकारा आदेश।
- पश्यासि- दृश्-धातु से आशी-अर्थ में लेट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन का यह रूप है।

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः॥8॥

पदपाठ- **सम्। गच्छस्व। पितृऽभिः। सम्। यमेन। इष्टापूर्तेन। परमे। विऽओमन्। हित्वाय। अवद्यम्। पुनः। अस्तम्। आ। इहि। सम्। गच्छस्व। तन्वा। सुवर्चाः॥8॥**

अन्वय- परमे व्योमन् पितृभि: संगच्छस्व, इष्टपुर्तेन सम् अवद्यम् हित्वाय अस्तम् पुन: एहि। सुवर्चा: तन्वा संगच्छस्व।

व्याख्या- हे हृदयाकाश में वर्त्तमान जीव, तू प्राण के साथ संगत हो जा और वही जीवन काल के साथ भी संगत हो जा। इष्टापूर्ति यज्ञादि रूप संचित किये धर्म धन के साथ संगती कर जो तेरा सच्चा मित्र है। मरण धर्मी शरीर को छोड़कर पुनर्जन्म को प्राप्त हो और उस पुनर्जन्म में सुंदर शरीर के साथ युक्त हो जा।

सरलार्थ- (हे पित, आप) श्रेष्ठ स्वर्ग में वेद कर्मफल से कुछ सुंदर कर्मफल की प्राप्ति से देव लोगो की प्राप्ति होती है। पाप को छोड़कर, पुन: अपने घर के प्रति जाओ। सुन्दर प्रकाशमान शरीर की प्राप्ति होती है।

व्याकरण-

- संगच्छस्व- सम् पूर्वक गम्-धातु से आत्मनेपद में यह रूप बनता है।
- इष्टापूर्तेन- यहाँ इष्ट शब्द का अर्थ श्रौतयाग यज्ञ आदि है, पूर्त शब्द का अर्थ सुन्दर लोगों के हितकारी और पुण्यकर्म है। इच्छा पूर्ति को इष्टापूर्त कहते है, अन्येषामपि दृश्यते इस सूत्र से दीर्घ होता है।
- हित्वाय- हा-धातु से क्त्वा अच् प्रत्यय करने पर क्त्वो यक् यहाँ पर क्त्वा यहाँ पर यक के आगम होने पर कित्त्व अदन्त अवयव में यह रूप है।
- अस्तम्-अस्-धातु से नपुंसके भावे क्तप्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- सुवर्चा:- सु शोभनं वर्च: तेज: यस्य स: सुवर्चा:। सुवर्चस्-शब्द का प्रथमा एकवचन में यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न

1. यम सूक्त के ऋषि कौन है। छन्द क्या है? और देवता कौन है?

2. प्रवत: इस रूप की उत्पति कैसे हुई?
3. वैवस्वतम् यहाँ पर विग्रह क्या है और प्रत्यय क्या होता है?
4. परेयिवांसम् यहाँ पर व्युत्पत्ति क्या है?
5. किसका शस्त्र अथवा चक्र का नाश नही होता है?
6. चौथे मन्त्र में अपि शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त होता है?
7. राय: इस पद का क्या अर्थ है?
8. जज्ञाना: इस पद की व्युत्पत्ति कहा है?
9. पूर्व्येभि: इस पद की व्युत्पत्ति कहा पर है?
10. वैरूपै: यहाँ पर किस अर्थ में तृतीया है?

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै॥9॥

पदपाठ– **अप। इत। वि। इत। वि। च। सर्पत। अत:। अस्मै। एतम्। पितर:। लोकम्। अक्रन्।**
अह:ऽभि:। अत्ऽभि:। अक्तुऽभि:। विऽअक्तम्। यम:। ददाति। अवऽ0सानम्। अस्मै॥9॥

अन्वय– अपेत वीत च अत: विसर्पत। पितर: अस्मै एतं लोकम् अक्रुन्। यम: अहोभि: अद्भि: अभुक्ति: अवासनम् व्यद्रम् अस्मै ददाति।

व्याख्या– पैतृमेधिके कर्मणि श्मशानायतनं प्रोक्षति अपेत वीत इति। सूत्रिताञ्च कर्तोदकेन शमीशाखया त्रि: प्रसव्यमायतनं परिव्रजन् प्रोक्षत्यपेत वीत वि च सर्पतात इति (आ0 गृ 4.2.8) इति।

शरीरपात हो जाने के पश्चात जीव सूर्य की पृथिवी सम्बन्धी रश्मियों को प्राप्त होता है पुन अन्तरिक्ष सम्बन्धि किरणों को और पश्चात द्युस्थान सम्बन्धी रश्मियों तक पहुचता है, एवं स्थूल शरीर के बिना ही कुछ दिन, उषा और रात्रियों तक विराम में रहकर पुनर्जन्म में आता है।

सरलार्थ– (इस स्थान से अशुभशक्तिसमूह) दूर हो हटे, सम्पूर्ण रूप से प्रस्थान करिये। पितर इस (मृतयजमान के) करने के लिए इस स्थान को स्थापित किया गया है। यम दिवस के द्वारा, रात्री के द्वारा, जल से इनको विश्राम भूमि शोभा को प्राप्ति होती है (मृत्यु के) लिए दी गई है।

व्याकरण–

- अस्मै– तादर्थ्ये निमित्त अर्थ में विकल्प से चतुर्थी होती है।
- अक्रन्– कृ-धातु से लुङ् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप है।

- अहोभिः- अहन् शब्द का तृतीया बहुवचन में यह रूप है।
- अद्भिः- अप् शब्द का तृतीय बहुवचन में यह रूप बनता है।
- अक्तुभिः- अक्तु शब्द का तृतीया बहुवचन में यह रूप बनता है।

अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अथा पितन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति॥10॥

पदपाठ- **अति। द्रव। सारमेयौ। श्वानौ। चतुःऽअक्षौ। शबलौ। साधुना। पथा। अथ। पितृन्। सुऽविदत्रान्। उप। इहि। यमेन। ये। सधऽमादम्। मदन्ति॥10॥**

अन्वय- सारमेयौ श्वाग्नौ साधुना पथा अतिद्रव्य, चातुरक्षौ शवलौ। ये यमेन सधमादम् मदन्ति अथ सुविदत्रन् पितृन् उपेहि।

व्याख्या- अनुस्तरण्या वृक्कौ पार्श्वयोराम्रलाकृती। तावुद्धत्य प्रेतस्य हस्तयोर्निदधाति अति द्रव सारमेयौ इति द्वाभ्याम्। सूत्रितञ्च- वक्कावुद्धस्य पाण्योरादध्याद् अति द्रव सारमेयौ श्वानाविति (आ0गृ0 4.3.19) इति।

हे जीव, तू उचित मार्ग से चार प्रहर रूप चार आखों वाले, सूर्य तथा चन्द्र प्रकाश से चित्र रंग युक्त उषा पुत्रों दिन और रातओं समीचीन रूप से प्राप्त हो इसके पश्चात कल्याण सम्पादक ऋतु सहचरित सूर्य की रश्मियों को प्राप्त कर जो समय के साथ सदा सहयोग रखती है।

सरलार्थ- (हे अग्ने) देहान्त के पश्चात जीव शीघ्र-शीघ्र दिन रातो को सूर्य रश्मियो द्वारा पुनर्जन्मार्थ प्राप्त होता है।

व्याकरण-

- द्रव- द्रु-धातु से मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- सारमेयौ- सरमायाः पुत्रौ इस अर्थ में सरमा शब्द को स्त्रीभ्यो ढक् इससे ढक् प्रत्यय करने पर तथा आदि वृद्धि, ढकार को एय आदेश होने पर द्वितीया द्विवचन में यह रूप बनता है।
- चतुरक्षौ-चत्वारि अक्षीणि ययोः तौ यहाँ पर बहुव्रीहि समास है।
- सधमादम्- सह पूर्वक मद्-धातु से णमुल् प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि॥11॥

पदपाठ- **यौ। ते। श्वानौ। यम। रक्षितारौ। चतुःऽअक्षौ। पथिऽरक्षी इति पथिरक्षी। नृऽचक्षसौ। ताभ्याम्। एनम्। परि। देहि। राजन्। स्वस्ति। च। अस्मै। अनमीवम्। च। धेहि॥11॥**

अन्वय- राजन् यम ते यौ श्वानौ ताभ्याम् एनम् परदेहि। रक्षितारौ चतुराक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ। अस्मै च अनमीवम् धेहि।

व्याख्या- हे राजन्, हे यम, तेरे जो रक्षक चारप्रहर रूप चार आखों वाले मार्गपाल प्राणियों के सदा दर्शक श्वान तुल्य प्रत्येक जीव के पीछे-पीछे चलने वाले दिन और रात है उन दिन रातों के साथ इस जीव को पुनर्जन्म के लिए छोड़, हे राजन ! इस जीव के लिए सत्तारूप स्वस्ति और नीरोगता का सम्पादन कर।

सरलार्थ- हे राजन् जो जीव का जीवन समय समाप्त हो जाने पर फिर से नया जीवन मिलता है जो की शुद्ध और स्वस्थ होकर दिनरात के साथ पुनर्वहन करता है। इसका मङ्गल हो, इनको रोग रहित करो।

व्याकरण-

- पथिरक्षी- मार्ग की रक्षा करता है वह पथिन् है, वहा पर रक्ष-धातु से इन् प्रत्यय करने पर प्रथमा द्विवचन में यह रूप बनता है।
- नृचक्षसौ- नृन् चक्षाते यहाँ पर नृ पूर्वक चक्ष्-धातु से असुन् प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- स्वस्ति- यहाँ पर अव्यय रूप से प्रयोग किया गया है।
- राजन्- राजन् शब्द का सम्बोधन प्रथमा एकवचन में यह रूप बनता है।
- धेहि- धा शब्द का लोट् मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम्॥12॥

पदपाठ- **उरुऽ0नसौ। असुऽ0तृपौ। उदुम्बलौ। यमस्य। दूतौ। चरतः। जनान्। अनु। तौ।**
अस्मभ्यम्। दृशयें। सूर्याय। पुनः। दाताम्। असुम्। अद्य। इह। भद्रम॥12॥

अन्वय- यमस्य दूतौ जनान् अनुतरतः उरुनसौ असुतृप्तौ उदुम्वलौ। तौ सूर्याय दृशये अद्य इह अस्मभ्यम् पुनः भद्रम् असुम् दाताम्।

व्याख्या- वे दिन और रात काल के दूत बने हुए बड़े कुटिल कठोर स्वभाव के, प्राणों से तृप्त होने वाले महाबली उत्पन्न हुए सभी जीवों में साथ साथ चलते हैं। वे दिन और रात बारम्बार सूर्य दर्शन के लिए आज इस लोक में हमारे लिए सुखदायक जीवन धारण करने को दूसरा जन्म फिर देवे।

सरलार्थ- यम के दो दूत है, दिन और रात आयु रूप जीवन काल के दूत बन कर बारम्बार सूर्यदर्शन कराते हुए जीव को अंतिम काल तक ले जाते है एवं पुनर्जन्म भी धारण कराते है। वे हमारे लिए कल्याणकारी प्राण देते है, जिससे हम पुनः सूर्य को देख सकते है।

व्याकरण-

- उरुणसौ- उरु नासिके ययोः तौ उरुणसौ।

- असुतृपौ- असुभिः तृप्यन्तौ यहाँ पर असु पूर्वक तृप्-धातु से क प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- उदुम्बलौ- उरु बलं ययोः तौ यहाँ पर बहुव्रीहि समास है।
- दाताम्- दा-धातु लुङ् लोट प्रथम पुरुष द्विवचन में यह रूप बनता है।

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंङ्कृतः॥13॥

पदपाठ- **यमाय। सोमम्। सुनुत। यमाय। जुहुत। हविः।**
यमम्। ह। यज्ञः। गच्छति। अग्निऽदूतः। अरम्ऽकृतः॥13॥

अन्वय- यमाय सोमं सुनुत, यमाय हविः जुहुतः अग्निदूतः यज्ञः अरङ्कृतः यमम् ह गच्छति।

व्याख्या- हे ऋत्विज, यम के लिए यम देवता के लिए समय को अनुकूल बनाने के लिए ओषधि रस की हवि - आहुति अग्नि में होम करो अग्निदूत के द्वारा यह संपादित यज्ञ काल को प्राप्त हो जाता है। अग्निर्देवानां दूतं आसीत् (तै.सं 2/5/8/5 इति। उस प्रकार का यज्ञयम के समीप जाता है।

सरलार्थ- (हे ऋत्विजो) यम को उद्दिश्य करके आयुर्वेदिक ढंग से ओषधि रस का होम जीवन को चिरकालीन बनाने का हेतु है। अग्नि दूत है जिसका वह यज्ञ को सज्जित करके यम के समीप ही जाता है।

व्याकरण-

- यमाय- तादर्थ्य में अथवा निमित्त अर्थ में चतुर्थी होती है।
- सुनुत- सु शब्द का परस्मैपद लोट् मध्यम पुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।
- जुहुता- हु-धातु से लोट् मध्यम पुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।
- अग्निदूतः- अग्निः दूतः यस्मिन् सः यहाँ पर बहुव्रीहि समास है।
- अरंकृतः- अलंकृतः, रकार लकार का भेद है, अभिषवादि संस्कार अलंकार है।

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत।
स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे॥14॥

पदपाठ- **यमाय। घृतऽवत्। हविः। जुहोत। प्र। च। तिष्ठत। सः। नः। देवेषु। आ। यमत्। दीर्घम्। आयुः। प्र। जीवसे॥14॥**

अन्वय- यमाय घृतवत् हविः जुहोतः प्र च तिष्ठत। देवेषु सः प्रजीवसे नः दीर्घम् आयुः आयमत्।

व्याख्या- हे ऋत्विज, पूर्वोक्त जीवनकाल और विश्व काल को अनुकूल बनाने के लिए घृत सहित ओषधि रस रूप हवि आदि का होम करो और जीवन की उच्चता को प्राप्त होओ एवं

वह काल हमारे अधिक और उत्तम जीवन के लिए हमारी इन्द्रियों में दीर्घ जीवन का विस्तार करो। देवो के मध्य यम देव हमको दीर्घ आयु प्रदान करे।

सरलार्थः- (हे ऋत्विजो) यम को उद्दिश्य करके घृत युक्त हवि को देते हुए उसके लिए उपस्थित हुआ। देवो में वह हमारे प्रकृष्ट दीर्घ जीवन के लाभ के लिए चिरस्थायी रहती है।

व्याकरण-

- घृतवत्- घृतमस्ति अस्य यहाँ पर घृतशब्द से मतुप् प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- जुहोत- हु-धातु से लोट् मध्यम पुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।
- आ यमत्- आ यम्-धातु लुङ् प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- आयुः- यहाँ पर आयु सम धातु ज कर्म है।
- जीवसे- जीव्-धातु से तुमर्थ में असे जीवसे इति, जीवितुम् यहाँ पर अर्थ में है।

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः॥15॥

पदपाठ- **यमाय। मधुमत्ऽतमम्। राज्ञे। हव्यम्। जुहोतन। इदम्। नमः। ऋषिऽभ्यः। पूर्वऽजेभ्यः। पूर्वेभ्यः। पथिकृत्ऽभ्यः॥15॥**

अन्वय- राज्ञे यमाय मधुमत्तमम् हव्यम् जुहोतन। पूर्वजेभ्यः ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः इदं नमः।

व्याख्या- हे ऋत्विजो, यम के लिए पूर्वोक्त सर्वत्र राजमान समय को अनुकूल बनाने के लिए मधु या मिष्ट से युक्त हवि का होम करना चाहिए धर्म - मार्ग सम्पादन करने वाले पूर्वजो की अपेक्षा भी जो पूर्व ऋषि हो चुके है उनके लिए यह तीन मंत्रे में कहा हुआ सोम घृत मधु सहित हवि का होम रूप कर्म नम्रता रूप या शिष्टाचार रूप हो।

सरलार्थ-राजा यम को उद्दिश्य करके अत्यधिक मधु से मिश्रित हवि द्रव्य की आहूति देते है। पूराने ऋषियों के लिए शिष्टाचार का अनुष्ठान भी समझना चाहिए।

व्याकरण-

- यमाय- तादर्थ्य में अथवा निमित्त अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है।
- मधुमत्तमम्- मधु अस्ति अस्मिन्निति मधुमत्, अतिशयेन मधुमत् यहाँ पर तमप् प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है।
- जुहोतन- हु-धातु से लोट् मध्यम पुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।
- पूर्वजेभ्यः- पूर्वे जातः इति पूर्वजः, तेभ्यः।

त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद्बृहत्।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता॥16॥

पदपाठ– **त्रिऽकद्रुकेभिः। पतति। षट्। उर्वीः। एकम्। इत्। बृहत्। त्रिऽस्तुप्। गायत्री। छन्दांसि। सर्वा। ता। यमे। आऽहिता॥16॥**

अन्वय– त्रिकद्रुकेषु पतति। षट् उर्वी, एकम् इत् वृहत्, ता सर्वा त्रिष्टुप् गायत्री छन्दांसि यमे आहितो।

व्याख्या– त्रिकुद्रुकेभिः। यहाँ पर द्वितीयार्थ में तृतीया है। स्वभाव तथा निज स्वतंत्रता में किसी की अपेक्षा न करने वाला एक अकेला काल भूत वर्त्तमान भविष्यत इन तीन कालचक्रो से ऋतु रूप छः भूमियो को प्राप्त होता है द्यावा पृथिवी और सारी दिशायें अर्थात अन्तरिक्ष काल के अन्दर ही रखे हुए है।

सरलार्थ– ज्योतिष्टोम आदि सोमयाग में यम के लिए हवि गिरते है। छः ऋतू, और बृहत याग गायत्री छन्द में यम को अर्पण करते है।

व्याकरण–

- उर्वीः– उर्वीशब्द का द्वितीया बहुवचन में यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न

11. इस सूक्त के आठवें मन्त्र में अस्मै यहाँ पर किस अर्थ में चतुर्थी है?
12. अक्तुभिः यह रूप कैसे बनता है?
13. द्रव यह रूप कैसे बनता है?
14. यमाय यहाँ पर किस अर्थ में चतुर्थी होती है?
15. जीवसे इसका क्या अर्थ है?
16. पूर्वजेभ्यः इसका विग्रह लिखो?

2.2 यम का स्वरूप

ऋग्वेद के देवता गोष्ठी में यम का महत्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वेद के तीन सूक्तों में उसके विषय में कथा प्राप्त होती है (10/135.154)। उनको छोड़कर भी यम का उसकी बहिन के साथ कथोपकथन युक्त एक अन्य भी सूक्त है। उस सूक्त का नाम 'यमयमीसंवादसूक्त' (10.10)। वरुण-बृहस्पति-अग्नि आदि देवो के साथ भी उसकी स्तुति अनेक मन्त्रो में प्राप्त होता है। निरुक्तकार यास्क ने उसके विषय में निरुक्त शास्त्र में यम शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहते

है – 'यमो गच्छतीति सत:' (10.19) इति। यहाँ यम शब्द उपरमार्थक यम् धातु से कर्ता में निष्पन्न होता है। उसका अर्थ है जो प्राणियों को उपरमण करता है अर्थात् प्राणियों के प्राण को छुडाकर ले जाता है। निरुक्त में यमशब्द से पुन: अग्निदेव कहलाता है। और भी निरुक्त में कहा गया है – 'अग्निरपि यम उच्यते' (10.12) इति। वहाँ पर यम् धातु प्रदान रूप अर्थ है। यच्छति प्रयच्छति कामान् स्तोतृभ्य: इति यम:। परलोकतत्त्व विषय में मृत्यु की अमरता विषय पर और मृत्यु से परे जीवन विषय में ज्ञान यम सूक्त से प्राप्त होता है। यम शब्द का यमज रूप अर्थ भी है। वहाँ पर यमयमी दोनों पद से दोनों के द्वारा विवस्वत्सरण्वो: संगमेन जातं यमजापत्यद्वयं का ग्रहण किया जाता है।

ऋग्वेद में यम मृत्यु इस नाम से मृत्यु के अधिष्ठाता देव रूप से स्तुति की जाती है। मृत आत्मा को वह शरीर देता है। मृत्यु के बाद सभी मनुष्य उसके समीप ही जाते है। वैसे वेद भी कहता है – 'सङ्गमनं जनानाम्' (10.14.9) इति। वह हमारा पूर्वपुरुष, मृत्यु के बाद परे जो अमृतलोक का मार्ग पहले से ही जाना जाता है – 'यमो नो गातुं प्रथमो विवेद' (10.14.2) इति। और वहाँ जाकर के वह प्रेत लोक के अधिपति के रूप में जाने जाते है। वह ही मृत्यु के परे लोगों के लिए आश्रय का निर्देश किया है। वैसे वेद में भी कहा गया – 'यमो ददात्यवसानम् अस्मै' (10.14.9) इति। मृत्यु के परे लोगो के लिए वे जो स्थान आश्रय रूप से निर्देश किया वहाँ पर पिशाच आदि अशुभशक्ति युक्त अनिष्टविधान के लिए असमर्थ होते हैं। उसका अपना निवास स्थान स्वर्ग लोक है।

वैदिक मन्त्रों में वह वैवस्वत कहलाता है। निरुक्त में और बृहद्देवता में वह विवस्वत्सरण्वो के पुत्र के रूप में इस प्रकार का उपाख्यान प्राप्त होता है। सरमा वंशीय श्वान उसके दूत हैं। और वेश्वानचार नेत्रों से युक्त है। उनकी नाक विशाल और उनका वर्ण विचित्र है। मृत लोग जिस मार्ग से जाते है उस मार्ग के वे रक्षक है। वेद में कहा – 'पथिरक्षी' (10.14.11) इति। ये श्वान जैसे मृत लोग के विनाश के लिए समर्थ नही होते हैं, उस प्रकार की वैदिक ऋषियो के द्वारा प्रार्थना की गई है। और वेद में भी कहा गया है – 'ताभ्याम् एनं परि देहि राजन् स्वस्ति चास्मै अननीतं धेहि' (10.14.12) इति। और अन्ये कौशिक कपोतादय: अपि तस्य दूता:। (10.165. 4) इति।

ऋग्वेद मन्त्रों में उसे सभी जगह राजन् इस रूप में सम्बोधन किया गया है। वह लोगो के प्रभु है। अत मन्त्रो में उसे 'विश्पति:' कहलाता है। मृत लोग स्वर्ग लोक प्राप्त वरुण के साथ यमराज को भी आनन्द उपभोगरत के रूप में देखते है। वैसे वेद में भी कहा गया – 'उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यसि वरुणं च देवम्' (10.14.9) इति। सोमपायी इस नाम का भी कुछ मन्त्रो में उसकी स्तुति की गई। हमारे पूर्व पुरुषों के साथ एक जगह बैठकर वह सोमपान करते है। वैसे वेद भी कहते है – 'यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे देवै: संपिबते यम:' (10.135.1) इति।

वह सभी अच्छे कर्मो का और बुरे कर्मो के साक्षी रहता है। देवता प्राप्ति पितृदेवो के साथ उसका घनिष्ठ सम्बद्ध है। अग्निदेव के साथ भी उसकी मित्रता है। अग्नि यम का पुरोहित है। यम को इन्दो–ईरानीदेव यह भी लोक में सुने जाते हैं, क्योंकि ईरानी धर्म ग्रन्थों में आवेस्ता का उसका यम नाम अलग से प्राप्त होता है।

ऋषियो के द्वारा प्राकृतिक शक्ति यम की सृष्टि है ऐसा कल्पना नही किया गया है, अपितु

मृतको के अधिष्ठाता देव रूप से यम की कल्पना की गई है। यम सूक्त में यम ही प्रथम मरणशील कहा गया है, वह ही मृत्यु के द्वार का सबसे पहले अतिक्रान्त किया गया है। और मृतको के लिए मार्ग का अन्वेषण उन्होंने किया है। और वेद में भी कहा गया – 'परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्य: पन्थामनुपश्पशानम्' (10.14.1) इति।

यम यमी ये यमज भ्राता के मेल से ही मनुष्यों की उत्पत्ति की जो कथा सुनाई जाती है, वह महत्वपूर्ण नहीं है। यम सूक्त में भी उसका समर्थन नही किया गया है। भारतीय कभी भी उस प्रकार का चिन्तन नही करते है। अपितु संयम धन यम अपनी बहन को इस निन्द्य कर्मपाश से छुड़ाकर आशीर्वाद देता है। और जिससे वह कामवेग से शान्ता मुक्त होती है। और अन्त में लज्जित यमी अपने भाई यम के पैर में गिरकर क्षमा मांगती है। जिसके द्वारा रक्षित संयम धन और यमके द्वारा रक्षित भारतीय संस्कृति है।

पाठसार

इस पाठ में विद्यमान यमसूक्त के सोलह मन्त्रो के मूल विषय में सार रूप से कहा गया है। राजा यम का हवि के द्वारा अर्चना करते हुए यजमान कहता है। वह विवस्वत पुत्र कुछ मृत लोगों के मिलाप का स्थान है। यम ही हमारे जाने वाले मार्ग का ज्ञाता है। जिसका देवता संरक्षण करते है, और कुछ देवता को ये स्वाहा द्वारा और अन्यों को स्वधा द्वारा (हव्यदान से) आनन्दित होते है। वहाँ पर यम को उद्दिश्य करके कुश आसन पर बैठकर कहते हैं। उस यम को, यज्ञ पूजा के लिए, विविध रूप से युक्त अङगरा नामक पितृगण को यज्ञ स्थान में आने के लिए कहते है। अङिगरा नामक का, अथर्वा नामक का, भृगुनामक का, हमारे पितृगण के आने के लिए कहा जाता है। उनके शुभचिन्तन में हम जैसे बैठ सकते हैं वैसे ही प्रार्थना करते हैं। वहाँ पर मृत यजमान के प्रति कहते है अनादि काल से प्रवृत्त जिस मार्ग से हमारे पूर्वज जिस स्थान को गए, तुम भी उसी मार्ग से जाओ। वहाँ पर उनके पितरों से पूर्वजों के साथ मिलाप के लिए प्रार्थना की गयी है। वहाँ पर अशुभ शक्ति समूह को हटाने के लिए कहते हैं। वहाँ पर चार आँख वाले विशिष्ट कुत्ते का वर्णन प्राप्त होता है।

पाठागत प्रश्न

17. यम सूक्त का सार लिखो।
18. यम का वर्णन मन्त्र सहित करो।
19. अङि्गरोभिरा... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
20. परेयिवांसम्... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
21. यौ तेश्वानौ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
22. त्रिकद्रुकेभि:... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
23. यमाय सोमम्... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर भाग - 1

24. यम वैवस्वत ऋषि है। देवता - यम, आङ्गिरस पित्रथर्वभृगुसोम, लिङ्गोक्त देवता अथवा पितर है। छन्द- त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, और बृहती छन्द है।

25. प्र उपसर्ग से 'उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे' इससे स्वार्थ में वति प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।

26. विवस्वतः अपत्यं पुमान् इस विग्रह में अण प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है

27. परा पूर्वक-इण्-धातु से क्वसु प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है।

28. पूष्णः पोषक देव का चक्र अथवा शस्त्र का नाश नही होता है।

29. न्यून अर्थ में।

30. धन।

31. जन्-धातु से कानच प्रत्यय करने पर प्रथमा बहुवचन में यह रूप बनता है।

32. पूर्वैः कृतम् यहाँ पर पूर्वशब्द से य प्रत्यय करने पर अकार लोप होने पर भिस् को ऐस आदेश होने पर यह एत्व का रूप है।

33. साथ अर्थ में तृतीया।

उत्तर भाग - 2

34. तादर्थ्य में अथवा निमित्त अर्थ में।

35. अक्तु शब्द का तृतीया बहुवचन में यह रूप बनता है।

36. द्रु-धातु से मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप है।

37. तादर्थ्य में अथवा निमित्त अर्थ में।

38. जीवितुम् इस अर्थ में।

39. पूर्वजेभ्यः- पूर्वे जातः इति पूर्वजः, तेभ्यः।

ग्यारहवां पाठ समाप्त

12

शुनःशेपोपाख्यान-1

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति का मूल वेद है। वेद चार हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अर्थववेद। उन चारों वेदों में भी ऋग्वेद अत्यन्त प्राचीन है। ये सम्पूर्ण ऋग्वेद गद्यमय है। तथा ऋग्वेद में विद्यमान उपाख्यान ऋग्वेद के माहात्म्य को और भी अधिक बढाता है।

शुनःशेपोपाख्यानम् ऋग्वेद का अत्यन्तप्रसिद्ध आख्यान है। शुनःशेपोपाख्यानम् ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में विद्यमान है (1/24-25)। इससे ये घटना सत्याश्रित प्रतीत होती है। ऐतरेयब्राह्मण में (7/3) ये आख्यान अतिविस्तार के साथ वर्णित है। इस उपाख्यान के आदि में हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र का सम्बन्ध कल्पना करके बढ़ाकर बताया है। वरुण की कृपा से इक्ष्वाकु-राजा हरिश्चन्द्र के गृह में पुत्रोत्पन्न हुआ। वरुण को समर्पण के समय में हरीशचन्द्र का वन में पलायन, हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग उत्पन्न होना, मार्ग में अजीगर्त के मध्यम पुत्र शुनःशेप का क्रय करना, देवताओं की कृपा से उसकी मृत्युपाश से मुक्ति और आगे चलकर विश्वामित्र द्वारा उसको दत्तकपुत्र स्वीकार करना आदि घटना का आख्यान अतिप्रसिद्ध है।

ये उपाख्यान बड़ा ही विस्तृत है। यद्यपि एक ही विषय से संबंधित होते हुए भी ये उपाख्यान तीन भागों की कल्पना करके तीन पाठों में वर्णित है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- शुनःशेपोपाख्यान को जान पाने में;
- शुनःशेपोपाख्यान के तात्पर्य को जान पाने में;
- वैदिक प्रयोग को जान पाने में;

- वैदिक और लौकिक प्रयोग में भेद कर पाने में;
- स्वयं ही मन्त्र की व्याख्या को कर पाने में;
- स्वयं ही श्लोकों का अन्वय करने में;
- सूक्त में स्थित व्याकरण को पाने में;
- मन्त्रों के सामान्य अर्थ को जान पाने में;

प्रथमखण्ड

12.1 मूलपाठ

हरिश्चन्द्रः ह वैधन ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस तस्य ह शतं जाया बभूवुः तासु पुत्रं न लेभे तस्य ह पर्वतनारदौ गृहे ऊषतुः स ह नारदं पप्रच्छ इति।

यं न्विमं पुत्रमिच्छन्ति ये विजानन्ति ये च न। किं स्वित् पुत्रेण विन्दते तन्म आचक्ष नारदेति।इति।

स एकया पृष्टो दशभिः प्रत्युवाच इति।

ऋणमस्मिन् संनयत्यमृतत्वं च गच्छति। पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेजीवतो मुखम्।। इति।

यावन्तः पृथिव्यां भोगा यावन्तो जातवेदसि। यावन्तो अप्सु प्राणिनां भूयान् पुत्रे पितुस्ततः।। इति।

शश्वत् पुत्रेण पितरोऽत्यायन् वहुलं तमः। आत्मा हि जज्ञे आत्मनः स इरावत्यतितारिणी।। इति।

किं नु मलं किमजिनं किमु श्मश्रुणि किं तपः। पुत्रं ब्रह्माण इच्छध्वं स वै लोकेऽवदावदः।। इति।

अन्नं ह प्राण शरणं ह वासो रूपं हिरण्यं पशवो विवाहाः। सखा ह जाया कृपणं ह दुहिता ज्योतिर्ह पुत्रः व्योमन्।। इति।

पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम्।

तस्यां पुनर्नवे भूत्वा दशमे मासि जायते।इति।

तज्ज्या जाया भवति यदस्यां जायते पुनः। आभूतिरेषा भूतिर्वीजमेतन्नधीयते।। इति।

देवाश्चैतामृषयश्च तेजः समभरन्महत्। देवा मनुष्यानब्रूवन्नेषा वो जननी पुनः।। इति।

नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति तत्सर्वे पशवो विदु:। तस्मात् पुत्रो मातरं स्वसारं चाधरोहति॥ इति।

एष पन्था उरुगाय: सुशेवो यं पुत्रिण आक्रमन्ते विशोका:। तं पश्यन्ति पशवो, वयांसि च तस्मात्ते मात्रऽपि मिथुनी भवन्ति। इति हास्मा आख्याय॥

द्वितीयखण्ड:

अथैनमुवाच वरुणं राचानमुपधाव पुत्रे मे जायतां तेन त्वा यजा इति।

तथेति स वरुणं राजानमुपससार पुत्रे मे जायतां तेन त्वा यजा इति तथेति तस्य पुत्रे जज्ञे रोहितो नाम इति।

तं होवाचाजनि वै ते पुत्रे यजस्व मानेनेति स होवाच यदा वै पशुर्निर्दशो भवत्यथ स मेध्यो भवति निर्दशो न्वस्त्वथ त्वा यजा इति तथेति इति।

स ह निर्दश आस तं होवाच निर्दशो न्वभूद्यजस्व माऽनेनेति स होवाच यदा वै पशोर्दन्ता जायन्तेऽथ स मेध्यो भवति दन्ता न्वस्य जायन्तामथ त्वा यजा इति तथेति इति।

तस्य ह दन्ता जज्ञिरे तं होवाचाज्ञत वा अस्य दन्ता यजस्व माऽनेनेति स होवाच या वै पशोर्दन्ता: पद्यन्तेऽथ स मेध्यो भवति दन्ता न्वस्य पद्यन्तामथ त्वा यजा इति तथेति।

तस्य ह दन्ता पेदिरे तं होवाचापत्सत वा अस्य दन्ता यजस्व माऽनेनेति स होवाच यदा वै पशोर्दन्ता: पुनर्जायन्ते

अथ न मेध्यो भवति दन्ता न्वस्य पुनर्जायन्तामथ त्वा यजा इति तथेति।

तस्य ह दन्ता: पुनर्जज्ञिरे तं होवाचाज्ञत वा अस्य पुनर्दन्ता यजस्व माऽनेनेति स होवाच यदा वै क्षत्रिय: सांनाहुको भवत्यथ मेध्यो भवति संनाहं नु प्राप्नोत्वथ त्वा यजा इति तथेति।

स ह संनाहं प्रापत्तं होवाच संनाहं नु प्राप्नोद्यजस्व माऽनेनेति स तथेत्युक्त्वा पुत्रमामन्त्रयामास ततायं वै मह्यं त्वामददाद्धन्त त्वयाऽहमिमं यजा इति।

स ह नेत्युक्त्वा धनुरायारण्यमुपातस्थौ स संवत्सरमरण्ये चचार।

प्रथमखण्ड

12.1.1 व्याख्या

हरिश्चन्द्रः ह वैधस ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस तस्य ह शतं जाया वभूवुः तासु पुत्रं न लेभे तस्य ह पर्वतनारदौ गृह ऊषतुः स ह नारदं पप्रच्छ इति।

व्याख्या- हरिश्चन्द्र यह नाम 'प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी' इस पाणिनीय सूत्र से राजर्षि है।और वे वेधस नृप के इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न पुत्रहीन राजा थे। उनके सौ पत्नियों में किसी से भी पुत्र प्राप्ति नहीं हुई। उस राजा के गृह में पर्वत और नारद नाम के दो ऋषि रहते थे। उनमें से राजा ने नारदऋषि को इस विषय में पूछा।

सरलार्थ- ईक्ष्वाकुवंशीय वेधस के पुत्र राजा हरिश्चन्द्र पुत्र विहीन थे। उनके सौ पत्नियाँ थी। परन्तु उनसे पुत्रलाभ नहीं हुआ। उनके गृह में पर्वत और नारद नाम के दो ऋषि थे। हरिश्चन्द्र ने उनमे से नारद को पूछा।

व्याकरण-

- आस- अस्-धातु लिट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।
- गाथया- गाथा सर्वैः गातुं योग्या गीतिः। तया इति।

यं न्विमं पुत्रमिच्छन्ति ये विजानन्ति ये च न। किं स्वित् पुत्रेण विन्दते तन्म आचक्ष नारदेति॥ इति।

व्याख्या- राजा नारद से प्रश्न करते है कि जो देव, मनुष्य आदि कुछ जानते हैं, वे विवेकज्ञानयुक्त है और जो पशु आदि कुछ नहीं जानते हैं, वे विवेकज्ञानरहित है। वे सब भी प्रिय पुत्र की कामना करते हैं। उस पुत्र से क्या चाहते है तथा उनका पिता कहलाने का प्रयोजन क्या है ? हे नारद मुझे उसका फल बताओ।

सरलार्थ-जो ज्ञानी और अज्ञानी है वे सब भी पुत्र की कामना करते हैं, उनको पुत्र से क्या लाभ है, मुझे बताओ।

व्याकरण-

- विजानन्ति -वि उपसर्गपूर्वक ज्ञा-धातु से लट्-लकार के प्रथमपुरुष बहुवचन का रूप।
- विदन्ते- विद्-धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुष के बहुवचन का रूप।

स एकया पृष्टो दशभिः प्रत्युवाच इति।

व्याख्या- नारद ने एक प्रश्न पूछने पर दश गाथा प्रत्युत्तर में कही।

सरलार्थः-नारद ने एक प्रश्न पूछने पर दश बातों से उत्तर समझाते है।

व्याकरण-

- पृष्टः - प्रच्छ-धातु से तप्रत्ययान्तरूप।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार के प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।

ऋणमस्मिन् संनयत्यमृतत्वं च गच्छति। पिता पुत्रस्य
जातस्य पश्येच्चेजीवतो मुखम्॥ इति।

व्याख्या- **पिता यदि** उत्पन्न हुए जीवित और सुखी पुत्र का मुख देखता है तो उसको ऐसे पुत्र में अपने लौकिक और वैदिक ऋण संकेतित होते हैं। लौकिक अवस्था मे पुत्र पौत्र दि को ऋण अर्पण कर देने चाहिए ,ऐसा स्मृतिकार कहते हैं। तीन वैदिक ऋण होते हैं, ऐसा विद्वान मानते हैं। पुत्रप्राप्ति से संपत्ति के नामकरण का कर्म सम्पादित होता है। और उस कर्म के विषय में वाणसनेय ने भी कहा है -'**अथातः संपत्तिर्यदा प्रैष्यन् मन्यते अथ पुत्रमाह त्वं ब्रह्म त्वं यज्ञस्त्वं लोक इति। स पुत्रः प्रत्याहाहं यज्ञोहं लोक इति।** ब्रह्म मेरा कर्तव्य है वेदाध्ययन मेरा अनुष्ठान है और पंचमहायज्ञ मेरे संपाद्य कर्म उत्तम लोक के लिए हैं। ये सब पुत्र तेरे द्वारा संपादनीय है। ये पिता के वाक्य का अर्थ है। ये सब मैं संपादित करूंगा, पुत्र वाक्य का अर्थ है ।। आरण्यक काण्ड में भी संक्षिप्त रूप से बताया गया है - **सोस्यायमात्मा पुणेभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयते इति।** इस प्रकार सभी ऋण पुत्र को समर्पित करता है तभी तत्वज्ञान सम्पादन से अमृतत्व और मरण रहित मुक्तिपद को प्राप्त करता है पुत्र को अर्पित लौकिक और वैदिक भार प्राप्त होता है, समस्त विघ्नों से छुटकर।

सरलार्थ- पिता यदि उत्पन्न और जीवित पुत्र का मुख दर्शन करे और पुत्र को समस्त वैदिक और लौकिक ऋण प्रदान करे तो अमृतत्व को प्राप्त होता है।

व्याकरण-

- गच्छति- गम् धातु से लट्-लकार, प्रथमपुरुष एकवचन में रूप।
- पश्येत्- दृश्-धातु से विधिलिङ्-लकार, प्रथमपुरुष एकवचन में रूप।

यावन्तः पृथिव्यां भोगा यावन्तो जातवेदसि। यावन्तो अप्सु प्राणिनां भूयान् पुत्रे पितुस्ततः॥ इति।

व्याख्या- पृथिवी से भोग के रूप में सस्य निवास आदि है। जातवेदस् अग्नि से भोग के रूप में दहन पाचन आदि है। जल से स्नान पान आदि का भोग। प्राणियों के ये जितने भी भोग हैं, उन सब से बढ़कर एक पिता के लिए भोग पुत्र में विद्यमान होते हैं, क्योंकि वो अत्यन्त सुख का हेतु है। और भी कहा है -पुत्रोत्पत्ति और विपत्ति से अतिरिक्त कोई और सुख-दुःख नहीं है।

सरलार्थ-जैसे पृथिवी पर प्राणीजन में जो भोग उपलब्ध है, अग्नि और जल में जो भोग उपलब्ध है, वैसे ही पिता के लिए सर्वाधिक भोगपुत्र में ही विराजमान है।

व्याकरण-

- भोगाः - भोग ये पुंलिङ्ग, अकारान्त प्रातिपदिक का प्रथमा बहुवचन का रूप है। भोगाः अर्थात भोग्य विषय समूह।
- अप्सु- अप् इति स्त्रीलिङ्ग में नित्य बहुवचनान्त प्रातिपदिक के सप्तमी बहुवचन का रूप है।

शश्वत् पुत्रेण पितरोऽत्यायन् वहुलं तमः। आत्मा हि जज्ञे आत्मनः स इरावत्यतितारिणी।इति।

व्याख्या- पिता उत्पन्न पुत्र के लिए सर्वदा दोनों लोक (इहलोक और परलोक) में बहुत अधिक दुःख सहन करता है। बौधायन ने कहा है - 'पुदिति नरकस्याख्या दुःखं च नरकं विदुः।' 'पुत्तस्तारणात्ततः पुत्रमिहेच्छन्ति परत्र च।' इति। और जिस कारण पिता से पुत्र उत्पन्न होने पर पिता स्वयमेव यज्ञ कहा जाता है फिर पिता जैसे स्वयं अपने दुःख विनाश करे वैसे ही पुत्र भी इन दुःख का विनाश करता है। वैसे ही वो पुत्र पृथ्वी पर अन्न के समान और नदी समुद्र आदि में नौका के समान है- जैसे नौका नद्यादि में दुर्घटना रहित यात्री को पार करवाती है, वैसे ही पुत्र भी इन लोकों के दुःखों से पार करवाता है।

सरलार्थः- पिता सर्वदा (इहलोक और परलोक में) पुत्र के लिए बहुत दुःख सहन करता है। जिससे आत्म रूप पितु के समीप पुत्र आत्मा की तरह जाता है। अतःएव पुत्र पिता के समीप दुःख, दुर्घटना आदि से बचने के लिए योग्य अन्न युक्त और उत्कृष्ट नौका तुल्य है।

व्याकरण-

- जज्ञे- जनी(प्रादुर्भावे) इस लिट्-लकार धातु से प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।
- आत्मा- आत्मन् नकारान्तप्रातिपदिक का प्रथमा एकवचन का रूप।

टिप्पणी

किं नु मलं किमजिनं किमु श्मश्रुणि किं तपः। पुत्रं ब्रह्माण इच्छध्वं स वै लोकेऽवदावदः।।इति।

व्याख्या- यहाँ मलाजिनश्मश्रुतपः शब्द से आश्रम चतुष्टय को कहा है। मलरूप शुक्ल और शोणित संयोग होने के कारण मलशब्द से गार्हस्थ्य को कहा है। कृष्ण अजिन संयोग से अजिन शब्द से ब्रह्मचर्य को कहा है।क्षौरकर्म से रहित होने से शाश्र शब्द से वानप्रस्थ को कहा है। मल को गार्हपत्य क्या नाम और क्या सुख नहीं करेगा।। हे ब्रह्माण! विद्वान विप्र क्षत्रिय आदि सभी तुम सब सुख के लिए पुत्र की कामना करो। ''स वै एव पुत्रोवदावदो लोकः। वदितुमयोग्यानि निन्दावाक्यान्यवदास्तैर्वाक्यैर्नोद्यन्ते न कथ्यन्ते इत्यवदावदः।'' अवदावदो दोष रहित अनिन्दा आदि को कहते हैं। ऐसे लोक का भोग हेतु पुत्र होता है। उन आश्रमों से अधिक पुत्र की इच्छा करनी चाहिए यद्यपि हरिश्चन्द्र ही यहाँ प्रष्टा है तथापि उनके साथ उनकी सभा में बहुत से ऋषि के होने से उनके लिए ब्रह्माण सम्बोधन है।

सरलार्थ- गार्हस्थ्य, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और पारिव्राज अर्थात सन्यास से क्या होगा ? इसलिए हे विप्रगणों, तुम पुत्र की कामना करो, पुत्र ही आनन्दनीय है।

व्याकरणम्

- इच्छध्वम्- इष्-धातु से मध्यमपुरुष के बहुवचन में वैदिक रूप।
- अवदावदः - वदितुम् अयोग्यानि निन्दावाक्यानि अवदाः। तैः वाक्यैः न उद्यते न कथ्यते इति अवदावदः।

अन्नं ह प्राण शरणं ह वासो रूपं हिरण्यं पशवो विवाहाः।
सखा ह जाया कृपणं ह दुहिता ज्योतिर्ह पुत्रः व्योमन्।।
इति।

व्याख्या- अन्नादि लोक में सुख के हेतु के रूप में प्रसिद्ध है। जैसे कि शरीर में प्राणों की अवस्थिति के कारण अन्न ही प्राण हैं। वस्त्र शीत आदि उपद्रव से रक्षक होने से गृह के समान है। सोने के कुंडल, कर्णाभरणादि दृष्टि को प्रिय होने से सौन्दर्य के संपादक हैं। विवाह होने से गो, अश्व आदि पशु हमारे निर्वाहक हैं (पत्नी भोग में सहकारी होने से सखा के समान या सखि स्वरूप हैं। इस प्रकार ये सुख के हेतु प्रसिद्ध होते हुए भी तात्कालिक और अल्प सुख को देने वाले हैं। दुहिता या पुत्र केवल दुःखकारी होने से दैन्य का हेतु है। और कहा भी है-

संभवे स्वजनदुःखकारिका संप्रदानसमयेऽऽर्थहारिका।
यौवनेऽपि बहुदोषकारिका दारिका हृदयदारिका पितुः। इति।

पुत्र तो ज्योति स्वरूप और तमो निवारक होने से वह ही पिता को परम व्योम उत्कृष्ट आकाश में परब्रह्म स्वरूप में विराजित करता है। 'आकाशस्तल्लिङ्गादित्यनेन पूर्वमेवामृतत्वं च गच्छतीत्यत्र प्रतिपादितम्।'

सरलार्थः- अन्न ही प्राण है (प्राणधारण का सहायक), वस्त्र ही शरण है (आश्रय), हिरण्य ही रूप है (रूपोत्पादक), विवाह ही पशु लाभ का उपाय है। पत्नी सखि स्वरूप है, दुहिता या पुत्री दुःख का हेतु है परन्तु पुत्र ही उत्कृष्ट ऊर्ध्वलोक में ज्योति स्वरूप है।

व्याकरणम्-

- सखा- सखिन् प्रातिपदिक का प्रथमा एकवचन का रूप।
- दुहिता- दुहितृ प्रातिपदिक का प्रथमा एकवचनका रूप।

पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम्।
तस्यां पुनर्नवे भूत्वा दशमे मासि जायते।। इति।

व्याख्या- पति के दो आकार है। प्रथम वर्तमान पुरूषाकार और दूसरा रेतो रूप गर्भ में। जाया के भी दो आकार है। पतिरूप आकार जाया के लिए होता है। गर्भरूप आकार माता के लिए होता है। अतः स तादृशः पतिः स्वयं रेतोरूपेण गर्भो भूत्वा पूर्वमवस्थितां जायां भविष्यदाकारेण मातरं सतीं प्रविशति। तस्यां मातरि पुनर्नवो भूत्वा पूर्वमन्यस्यां मातर्युत्पन्नो जरठः। इदानीं पुनर्नूतनवालो भूत्वा तस्यामिदानीन्तन्यामस्यां मातरि गर्भ पाके सति दशमे मास्युत्पद्यन्ते तस्मात् पुत्रः स्वस्मादन्यो न भवति।

सरलार्थः- पति(रेतोरूप में) जाया में प्रवेश करता है, गर्भरूप से वह ही (भविष्यत्काल में विद्यमान) माता में प्रवेश करता है। और वो ही पुनः दशमास के भीतर उत्पन्न होता है।

व्याकरणम्-

- प्रविशति- प्र उपसर्ग पूर्वक विश्(प्रवेशने) अर्थक धातु से प्रथमपुरुष एकवचन में रूप।
- भूत्वा- भू- (सत्तायाम्) इत्यर्थक धातु कत्वाप्रत्ययान्तरूप।
- जायते- जनी(प्रादुर्भावे) इस धातु से प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।

तज्ज्या जाया भवति यदस्यां जायते पुनः। आभूतिरेषा
भूतिर्वीजमेतन्नधीयते।। इति।

व्याख्या- यदि इस कारण गर्भ धारीणी से पिता का पुत्र रूप में पुनर्जन्म होता है। इसी लिये लोक प्रसिद्ध जो जाया है वो 'जायतेऽस्यामिति व्युत्पत्ति' से जाया शब्द का वाचक होता है। और ये भूति अभूति शब्दों से जाने जाते हैं। भवत्यस्यांपुत्ररूपेण पतिरित्येषा भूतशब्दवाच्या रेतोरूपेणऽऽगत्यास्यां पुत्ररूपेण भवतीत्याभूतिशब्दवाच्या। एतदेतस्यां स्त्रियां बीजं रेतोरूपं निधीयते प्रक्षिप्यत् तस्मादुक्ताः शब्दा उपपद्यन्ते।

सरलार्थः- पति पत्नी से (पुत्र रूप में) पुनः उत्पन्न होता है। इसलिए पत्नी जाया (जाया इति आख्यां लभते) होती है। वो ही भूति और अभूति इन दो शब्दों द्वारा जानी जाती है। इसी में बीज स्थापित होता है।

व्याकरण-

- जायते- जनी(प्रादुर्भावे) इस धातु से प्रथमपुरुष के एकवचन का रूप।
- भवति- भू(सत्तायाम्) धातु से प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

देवाश्चैतामृषयश्च तेजः समभरन्महत्। देवा
मनुष्यानब्रुवन्नेषा वो जननी पुनः॥ इति।

व्याख्या- एतामेतस्यां योषिति देवाश्च महर्षयश्च स्वकीयं महत्तेजो रेतोरूपं सारं समभरन् पुत्रोत्पादनाय संपादितवन्तः। स्वयमेव संपाद्य ततो मनुष्यानित्यब्रुवन्। हे मनुष्या जायारूपेण वर्तते सेयं युष्माकं पुत्ररूपे जन्मनि जननी भवति।

सरलार्थः- देव और मनुष्यों ने इसी (पत्नी गर्भ में) महातेज की स्थापना की, देवों ने मनुष्यों के लिए कहा - हे मनुष्यों ये पुनः तुम्हारी जननी होगी।

व्याकरण-

- अब्रुवन्- ब्रूञ्-धातु लङ्-लकार, प्रथमपुरुष बहुवचन का रूप।

नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति तत्सर्वे पशवो विदुः। तस्मात्
पुत्रो मातरं स्वसारं चाधरोहति॥ इति।

व्याख्या- लोको लोकजन्यं सुखपुत्रस्य नास्ति। नहि पुत्रदर्शनेन यत्सुखं तदन्यदर्शनेन क्वचिदपि दृश्यते इति यदस्ति तत्सर्वे गोमहिष्यादयो जानन्ति यस्मात्तस्मादेव कारणात् पशुजातौ जातः पुत्रो वत्सः स्वकीयां मातरं भगिनीं वा पुत्रोत्पादनार्थमधिरोहति।

सरलार्थ- अपुत्र का कोई भी लोक नहीं होता है- यह विषय सभी पशु जानते हैं। इस कारण (पशुओं में) पुत्र अपनी जननी या भगिनी (पुत्रोत्पादनाय) से मिलता है।

व्याकरण-

- अस्ति- अस्-धातु का लट्-लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन का रूप।
- अधिरोहति- अधि उपसर्ग पूर्वक रुह्-धातु से प्रथमपुरुष एकवचन में रूप।

एष पन्था उरुगायः सुशेवो यं पुत्रिण आक्रमन्ते
विशोकाः। तं पश्यन्ति पशवो, वयांसि च तस्मात्ते
मात्राऽपि मिथुनी भवन्ति॥ इति हास्मा आख्याय॥

व्याख्या- पुत्रिण पुत्रवन्तो देवमनुष्यादयो विशोकाः शोकरहिताः सन्तो यं पन्थानं सुखानुभवरूपं मार्गमाक्रमन्ते प्राप्नुवन्त्येष पन्थाः पुत्रसुखानुभवरूपो मार्ग उरुगाय उरुभिर्महद्भिः शास्त्रज्ञैः राजामात्यादिभिश्च गीयते। तथा सुशेव सुष्ठु सेवितुं योग्यः सुखाधिक्यस्य विद्यमानत्वात्। तं

पुत्रसुखानुभवरूपं पशवो गवादयो वयांसि पक्षिण: संपश्यन्ति जानन्ति। तस्मात्ते पशुपक्ष्यादय: पुत्रसुखार्थं मात्र सह मिथुनीभवन्ति किं किमुतान्यया स्त्रिया सहेत्यर्थ:।

इति (अनेन प्रकारेण) ह अस्मै (राज्ञे हरिश्चन्द्राय) आख्याय (अभिधाय) (स नारद: विरराम इति शेष:)।

सरलार्थ:- पुत्रवान् लोग शोक रहित होकर जिस मार्ग को स्वीकार करते है वो ही मार्ग सब लोगों द्वारा प्रशंसनीय है और अच्छी प्रकार सेवन करने योग्य है। पशु और पक्षि इस विषय में जानते है। इसीलिये वे अपनी माता से मिलते है। नारद ऋषि ने हरिश्चन्द्र को ये सब कहा।

व्याकरण-

- पश्यन्ति- दृश्-धातु से लट्-लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन का रूप।
- भवन्ति- भू-धातु से लट्-लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन का रूप।
- आक्रमते- आङ् उपसर्ग पूर्वक क्रमु-धातु से प्रथमपुरुष, एकवचन का रूप।

पाठगत प्रश्न

40. हरिश्चन्द्र किसके पुत्र थे ?
41. हरिश्चन्द्र का पुत्र था अथवा नहीं?
42. हरिश्चन्द्र की कितनी पत्नियां थी?
43. हरिश्चन्द्र के गृह में कौन ऋषि थे ?
44. उन ऋषियों में किस ऋषि से हरिश्चन्द्र ने पुछा ?
45. नारद ने कितनी गाथाओं में उत्तर दिया ?
46. पिता के पास किसमें सर्वाधिक भोग होता है ?
47. प्राणतुल्य कौन है ?
48. शरण क्या है ?
49. भूति और आभूति ये दो शब्द किसके वाचक है ?

द्वितीयखण्ड

12.1.2 इदानींमूलपाठम्अवगच्छाम

अथैनमुवाच वरुणं राचानमुपधाव पुत्रे मे जायतां तेन
त्वा यजा इति।

टिप्पणी

व्याख्या- पुत्र के लाभ का प्रतिपादन एवं नारद उपर्युक्त दश गाथा कहकर अब पुत्र जन्म के उपाय का उपदेश वाक्य यहाँ प्रस्तुत है -

अथ पुत्रेच्छानिमित्तकथनानन्तरमेनं पुत्रार्थिनं हरिशचन्द्रं नारद उवाच। हे हरिशचन्द्र वरुणं राजानमुपधार प्रार्थयस्व। येन प्रकारेण निश्चयः सोऽभिधीयते। हे वरुण त्वत्प्रसादान्मे पुत्रे जायतां ततस्तेन पुत्रेण त्वां यजै त्वामुद्दिश्य यज्ञं करवाणीति।

सरलार्थ-उसके बाद नारद ने हरिश्चन्द्र को कहा -आप वरुण राजा से प्रार्थना करो कि मुझे पुत्र प्राप्ति हो जाये। उससे (पुत्र से) मैं तुम्हारे लिए याग करूंगा।

व्याकरण-

- उवाच - वच्-धातु लिट्-लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन का रूप।
- जायताम्- जनी (प्रादुर्भावे) धातु से लोट्-लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन का रूप।

तथेति स वरुणं राजानमुपससार पुत्रे मे जायतां तेन
त्वा यजा इति तथेति तस्य पुत्रे जज्ञे रोहितो नाम इति।

व्याख्या- नारदोपदेश को स्वीकार किया हरिशचन्द्र वरुण को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना करता है। वरुण भी उसको पुत्र के लिए वर देते हैं- तथाऽस्तु। और उस वरुण के प्रसाद स्वरूप उत्पन्न पुत्र का नाम ही रोहित था।

सरलार्थ - वैसे ही करूंगा। ऐसा कहकर राजा हरिश्चन्द्र ने वरुण से प्रार्थना की कि- मेरे पुत्र हो जाए, उससे तेरा याग करूंगा। (वरुण ने कहा) तथैव भवतु। बाद में हरिश्चन्द्र के रोहित नामक एक पुत्र रत्न का जन्म हुआ।

व्याकरणम्-

- जायताम्- जनी (प्रादुर्भावे) धातु से लोट्-लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन का रूप।
- जज्ञे- जनी(प्रादुर्भावे) धातु से लिट्-लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन का रूप।

तं होवाचाजनि वै ते पुत्रे यजस्व मानेनेति स होवाच
यदा वै पशुर्निर्दशो भवत्यथ स मेध्यो भवति निर्दशो
न्वस्त्वथ त्वा यजा इति तथेति इति।

व्याख्या- इस प्रकार अनेक प्रकार से वरुण का कथन और हरिशचन्द्र का प्रतिकथन दोनों का प्रति पादन करते है। प्रथम रूप इसप्रकार है -

प्रकार हरिशचन्द्र ने उस वरुण को कहा। हे हरिशचन्द्र तेरे पुत्रउत्पन्न होने पर उस पुत्र से मेरे लिए याग करो। इसप्रकार वरुण के कहने पर हरिशचन्द्र ने पुनः कहा। याग के लिए जैसे पशु

निर्देश है वैसा ही वह पशुर्मेध याग के योग्य है। निर्गतान्यशौचदिनानि दशसंख्याकानि यस्मात् पशोः सोऽयं निर्देशः। तस्मादयं नु क्षिप्रं निर्देशोऽस्तु। अथानन्तरं त्वा प्रत्यहं यजा इत्यतद्वाक्यं वरुणस्तथाऽस्त्वित्यङ्गीचकार।

सरलार्थः- (बाद में) वरुण ने हरिश्चन्द्र को कहा -तेरे पुत्र हुआ है उससे मेरे लिए याग करो। हरिश्चन्द्र ने कहा - (जन्म के बाद) दशदिन बाद में ही पशुमेध्ययाग होता है। अतः शीघ्र दश दिन हो, उसके बाद तेरे लिए याग करूंगा। वरुण ने कहा - वैसा ही हो।

व्याकरण-

- उवाच- वच- धातु लिट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।
- भवति- भू (सत्तायाम्) धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।

स ह निर्दश आस तं होवाच निर्दशो न्वभूद्यजस्व
माऽनेनेति स होवाच यदा वै पशोर्दन्ता जायन्तेऽथ स
मेध्यो भवति दन्ता न्वस्य जायन्तामथ त्वा यजा इति
तथेति इति।

व्याख्या- दशदिनाशौचापगमे शुद्धत्वाद्यथा यागयोग्यत्वं तथा दन्तोत्पन्नत्वादयवसंपूर्त्या यागयोग्यत्वमित्यभिप्रायः। स्पष्टमन्यत्।

सरलार्थ-उस रोहित के दश दिन समाप्त हो जाने पर वरुण ने हरिश्चन्द्र को कहा - दश दिन हो चुके है, अब तुम याग करो। हरिश्चन्द्र ने कहा -जब पशुदन्त वाला होता है तब वह मेध्य होता है। इसके दांत आ जाए तब हम याग करेंगे। वरुण ने कहा -तथैवास्तु।

व्याकरण-

- जायन्ते- जनी(प्रादुर्भावे) धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में रूप।
- भवति- भू(सत्तायाम्) धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- जायन्ताम्- जनी(प्रादुर्भावे) धातु से लोट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।
- उवाच- वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

तस्य ह दन्ता जज्ञिरे तं होवाचाज्ञत वा अस्य दन्ता
यजस्व माऽनेनेति स होवाच या वै पशोर्दन्ताः पद्यन्तेऽथ
स मेध्यो भवति दन्ता न्वस्य पद्यन्तामथ त्वा यजा इति
तथेति।

व्याख्या-अज्ञत वै जाता एव। पद्यन्ते पतन्ति। प्रथमोत्पान्नानां दन्तानमस्थायित्वेन मुख्यप श्वयवत्वाभावात्तात्पाते सति पशोर्मेध्यत्वम्।

टिप्पणी

सरलार्थ:-उसके बाद उसके दांत आ गये। वरुण ने हरिश्चन्द्र को कहा -इसके दांत आ गये अब तो मेरे लिए इससे याग करो। हरिश्चन्द्र ने कहा -जब पशु के दन्त गिरते है तब वो मेध्य अर्थात यज्ञ में बलि के योग्य होता है, इसके दांत गिरने दो तब तुम्हारे लिए इससे याग करूंगा। (वरुण ने कहा -तथैवास्तु)।

व्याकरण-

- उवाच- वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- जज्ञिरे- जनी इस धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।
- पद्यन्ते - पद-गतौ धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।
- पद्यन्ताम्- पद-गतौधातु से लोट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।

तस्य ह दन्ता पेदिरे तं होवाचापत्सत वा अस्य दन्ता
यजस्व माऽनेनेति स होवाच यदा वै पशोर्दन्ता: पुनर्जायन्ते
पुद्यन्तेऽथ
अथ न मेध्यो भवति दन्ता न्वस्य पुनर्जायन्तामथ त्वा
यजा इति तथेति।

व्याख्या-अपत्सत वै पतिता:। पुनरुत्पन्नानां दन्तानां स्थिरत्वेन संपूर्णावयवत्वात् पशोर्मेध्यत्वम्।

सरलार्थ:-अब उस रोहित के दांत गिर चुके थे - वरुण ने हरिश्चन्द्र को कहा इसके दन्त गिर चुके है अब तो इससे मेरे लिए याग करो। तब हरिश्चन्द्र ने कहा जब पशु के दांत पुन: उत्पन्न हो जाए तब वो मेध्य होता है। अत: इसके दन्त पुन: उत्पन्न हो जाए तब तेरे लिए याग करूंगा। वरुण ने कहा -तथैवास्तु।

व्याकरण-

- जायन्ताम् -जनी प्रादुर्भावे धातु से लोट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।
- भवति- भू(सत्तायाम्) धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- जायन्ताम्- जनी(प्रादुर्भावे) धातु से लोट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।

तस्य ह दन्ता: पुनर्जज्ञिरे तं होवाचाज्ञत वा अस्य
पुनर्दन्ता यजस्व माऽनेनेति स होवाच यदा वै क्षत्रिय:
सांनाहुको भवत्यथ मेध्यो भवति संनाहं नु प्राप्नोत्वथ
त्वा यजा इति तथेति।

व्याख्या-अज्ञात वै जाता एव। पश्वन्तरस्य पुनर्दन्तोत्पत्तिक्रमेण मेध्यत्वेऽप्यस्य पशो: क्षत्रियत्वात् स्वजात्युचितधनुर्वाणकवचादिलसहनाहशीलित्वे सति जात्युचितव्यापारसंपूर्तौ मेधात्वम्। तस्मान्नु

क्षिप्रमेवासौ संनाहं प्राप्तोत्वन्तरमेव यजा इत्युत्तरं वरुणोऽङ्गीचकार।

सरलार्थः-उस रोहित के दन्त पुनः उत्पन्न हो गये। वरुण ने हरिश्चन्द्र को कहा -इसके दन्त पुनः उत्पन्न हो गये। अब इससे मेरे लिए याग करो। हरिश्चन्द्र ने कहा -क्षत्रिय जब सन्नाहुक अर्थात् धनुष बाण कवच आदि पर अधिकार कर ले तब वो मेध्य होता है। मेरा पुत्र सन्नाहुक हो जाए तब तेरे लिए याग करूंगा। वरुण ने कहा-तथैवास्तु।

व्याकरण-

- उवाच- वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- जज्ञिरे- जनी धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।
- प्राप्नोति- प्र उपसर्गपूर्वक आप्-धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

स ह संनाहं प्रापत्तं होवाच संनाहं नु प्राप्नोद्यजस्व
माऽनेनेति स तथेत्युक्त्वा पुत्रमामन्त्रयामास ततायं वै
मह्यं त्वामददाद्धन्त त्वयाऽहमिमं यजा इति।

व्याख्या- संनाहप्राप्तोरुर्द्धं स हरिशचन्द्रो वरुणोक्तिमङ्गीकृत्य पुत्रमामन्त्रयैवमुवाच। उपलालनार्थं पुत्रे पितृवाचितशब्दप्रयोगः। हे तात हे पुत्रय एव वरुणो मह्यं त्वां पुत्रवरेण दत्तवान्। हन्त दुष्टोऽहमिमं वरुणं यत्त्वया पुत्रेण यजै यागरूपां करवाणीति हरिशचन्द्रस्योक्तिः।

सरलार्थः-उसके बाद वह बालक सन्नाहुक हो गया। तब वरुण ने हरिश्चन्द्र को कहा - ये अब सन्नाहुक हो गया। अतः अब इससे मेरे लिए याग करो। राजा हरिश्चन्द्र ने कहा -तथैव भवतु अर्थात वैसा ही हो। ऐसा कहकर पुत्र को बुलाकर बोले -वत्स!ये वरुणदेव है जिन्होंने तुझे मुझको प्रदान किया है। अब तुझसे वरुण के लिए याग करना है।

व्याकरणम्-

- उवाच- वच्- धातु लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- प्राप्नोति- प्र उपसर्ग पूर्वक आप्-धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुषएकवचन का रूप।
- यजस्व - यज् इत्यर्थक लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन का रूप।

स ह नेत्युक्त्वा धनुरायारण्यमुपातस्थौ स संवत्सरमरण्ये चचार।

व्याख्या-स ह स खलु रोहिताख्यः पुत्रः पितृवाक्यं निषिध्य स्वरक्षणार्थं धनुः स्वीकृत्याहरणं प्रत्युपगतोऽभूत्। कलस्मश्चिदरण्यो नैरन्तर्येन स रोहितः संवत्सरं चचारेति।

सरलार्थः-ऐसा कभी नहीं होगा, ऐसा कहकर वो रोहित धनुष उठाकर वन को चला गया। और फिर एकवत्सर तक वह अरण्य में घूमता रहा।

टिप्पणी

व्याकरण-

- चचार - चर-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- उक्त्वा - वद्-धातु से क्त्वा प्रत्ययान्त रूप।

पाठगत प्रश्न

50. इस पाठ में किसकी कथा वर्णित है ?
51. हरिश्चन्द्र ने राजा वरुण से क्या प्रार्थना की ?
52. हरिश्चन्द्र ने किसके लिए याग किया ?
53. पशु मेध्य याग का कब अनुष्ठान किया जाता है ?
54. कैसे पशु पशु मेध्य याग के योग्य होता है ?
55. हरिश्चन्द्र को किसने कहा कि अब इसके दन्त आ गये।
56. कौन धनुष लेकर अरण्य में चला गया ?
57. सन्नाहुक: का क्या अर्थ है ?
58. हरिश्चन्द्र ने अपने गृह में ठहरे हुए नारदर्षि को क्या पूछते है ?
59. हरिश्चन्द्र किसको प्रत्युत्तर देते है ?

पाठसार

इस पाठ में एक उपाख्यान है।जिसमे शुन:शेपोपाख्यान में हरिश्चन्द्र कथा वर्णित है। हरिश्चन्द्र की यद्यपि सौ पत्नियां थी फिर भी किसी के भी पुत्र नहीं था। तब वो अपने घर में रहने वाले नारदर्षि को पूछा। उन्होंने दश गाथा में प्रत्युत्तर दिया। उन्होंने विविध प्रकार से पुत्र का माहात्म्य बताते है। इस प्रकार सभी मन्त्रो से स्पष्ट है कि पुत्र सर्वाधिकभाग्य का विषय है पिता के लिए निकट होने से।

पाठांत प्रश्न

60. शुन: शेपोपाख्यान का सार लिखो ?

61. हरिश्चन्द्रो ह वैधस... इस शुन:शेपोपाख्यान अंश का सायणभाष्य के अनुसार व्याख्या करो।
62. अन्नं ह प्राण:... इस शुन:शेपोपाख्यान अंश सायणभाष्य के अनुसार व्याख्या करो।
63. पतिर्जायां प्रविशति... इस शुन:शेपोपाख्यान अंश सायणभाष्य अनुसार व्याख्याकरो।
64. नापुत्रस्य... इस शुन:शेपोपाख्यान अंश सायणभाष्य अनुसार व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तरकूट-1

65. वेधस।
66. आम्।
67. सौ।
68. पर्वत और नारद।
69. नारद।
70. दश से।
71. पुत्र में।
72. अन्न।
73. वस्त्र।
74. पत्नी।

उत्तरकूट-2

75. हरिश्चन्द्र के।
76. मेरे पुत्र हो जाए।
77. वरुण को।
78. जन्म के बाद दशदिन व्यतीत हो जाने पर।
79. याग के लिए पशु का जैसा निर्देश होता है तब वह पशुर्मेध्य याग योग्य होता है।

80. वरुण।

81. रोहित।

82. कवच परिधान अर्थात धारण करने योग्य पुरुष।

83. सौ पत्नियां होने पर भी उसके कोई पुत्र नहीं था।

84. दश से।

बारहवां पाठ समाप्त

13

शुन:शेपोपाख्यान-2

प्रस्तावना

वेद में जैसे सूक्तो का वर्णन है, वैसे ही आख्यान का भी वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार का एक उपाख्यान है। वह शुन:शेप उपाख्यान इस नाम से प्रसिद्ध है। ऋग्वेद के ऐतरेयब्राह्मण का तैतीसवें अध्याय में इस उपाख्यान का वर्णन है। यह उपाख्यान अत्यधिक विशाल है। अत: यद्यपि एक ही विषय का वर्णन है, फिर भी उपाख्यान का तीन भागों की कल्पना करके तीन पाठों की रचना की है। तीनों पाठों में सम्पूर्ण उपाख्यान है ऐसा जानना चाहिए। पूर्वपाठ में शुन:शेप उपाख्यान पढ़ा है। वहाँ शुन:शेप उपाख्यान के पांच खण्डो में प्रथम खण्ड और दूसरे खण्ड का वर्णन किया गया है। इस पाठ में आप शुन:शेप उपाख्यान के तीसरे खण्ड और चौथे खण्ड को पढेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- शुन:शेप उपाख्यान को जान पाने में;
- शुन:शेप उपाख्यान पढ़ने से नीतिशिक्षा को प्राप्त कर पाने में;
- तीसरे खण्ड के विषय को जान पाने में;
- चौथे खण्ड के विषय को जान पाने में;
- अपने आप ही मन्त्रों की व्याख्या करने में समर्थ बन पाने में;
- अपने आप ही मन्त्रों का अन्वय आदि विषय को जान पाने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण को जान पाने में।

टिप्पणी

तीसराखण्ड

13.1 अब मूलपाठ को पढेंगे

अथ हैक्ष्वाकं वरुणो जग्राह तस्य होदरं जज्ञे तदु ह रोहितः शुश्राव सोऽरण्याद्ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-
नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम। पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा चरैवेति॥

पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः। शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताश्चरैवेति।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह तृतीयं संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद्ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-
आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।

शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति॥ इति। चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह चतुर्थं संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-
कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।

उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरंश्चरैवेति इति। चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह पञ्चमं संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्वरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति। इति। चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह षष्ठं संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

तस्य ह त्रयः पुत्रः आसुः शुनःशेपः शुनोलाङ्गुल इति तं होवाच ऋषेऽहं ते शतं ददाम्यहमेषामेषामेकेनात्मानं निष्क्रीणा इति स ज्येष्ठं पुत्रं निगृह्णणान् उवाच न न्विममिति ने एवेममिति कनिष्ठं माता तौ ह मध्यमे

संपादयां चक्रतुः शुनःशेपे तस्य ह शतं दत्त्वा स तमादाय सोऽरण्याद् ग्राममेयाय इति।

स पितरमेत्योवाच तत हन्ताहमनेनात्मानं निष्क्रीणा इति स वरुणं राजानमुपससारानेन त्वा यजा इति तथेति भूयान् वै ब्राह्मणः क्षत्रियादिति वरुण उवाच तस्मा एतं राजसूयं यज्ञक्रतुं प्रोवाच तमेतमभिषेचनीये पुरुषं पशुमालेभे इति।

चौथाखण्ड

तस्य ह विश्वामित्रो होताऽहसीज्जदग्निरध्वर्युर्वसिष्ठो ब्रह्माऽयास्य उद्गाता तस्मा उपकृताय नियोक्तारं न विविदुः स होवाचाजीगर्तः सौयवसिर्मह्यमपरं शतं दत्ताहमेनं नियोक्ष्यामीति तस्मा अपरं शतं ददुस्तं स निनियोज इति।

तस्मा उपाकृताय नियुक्तायाऽऽप्रीताय पर्यग्निकृताय विशसितारं न विविदुः स होवाचाजीगर्तः सौयव-सिर्मह्यमपरं शतं दत्ताहमेनं विशसिष्यामीति तस्मा अपरं शतं ददुः सोऽसिं निःशान एयाय इति।

अथ ह शुनःशेप ईक्षांचक्रेऽमानुषामिव वै मा विशसिष्यन्ति हन्ताहं देवता उपधावामीति स प्रजापतिमेव प्रथमं देवतानामुपससार कस्य नूनं कतमस्यामृतानामित्येतयर्चा इति।

तं प्रजापतिरुवाचाग्निर्वै देवानां नेदिष्ठस्तमेवोपधावेति सोऽग्निमुपससाराग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानामित्येतयर्चा इति।

तमग्निरुवाच सविता वै प्रसवानामीशे तमेवोपधा-वेति स सवितारमुपससाराभि त्वा देव सवितरित्ये-तेन तृचेन इति।

तं सवितोवाच वरुणाय वै राज्ञे नियुक्तोऽसि तमे-वोपधावेति स वरुणं राजानमुपससारात उत्तराभिरेकत्रिंशता इति।

**तं वरुण उवाचग्निर्वै देवानां मुखं सुहृ-
दयतमस्तं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति
सोऽग्नि तुष्टावात उत्तराभिर्द्वाविमशत्या इति।**

**तमग्निरुवाच विश्वान्नु देवान्त्स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम
इति स विश्वान्देवांस्तुष्टाव नमो महद्भ्यो नमो
अर्भकेभ्यो इत्येतयर्चा इति।**

**तं विश्वे देवा ऊचुरिन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो
वलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतमस्तं
नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति स इन्द्रं तुष्टाव
यच्चिद्धि सत्य सोमपा इति
चैत्येन सूक्तेनोत्तरस्य च पञ्च दशभिः इति।**

**तस्मा इन्द्र स्तूयमानः प्रीतो मनसा हिरण्यरथं
ददौ तमेतया प्रतीयाय शश्वदिन्द्र इति इति।**

**तमिन्द्र उवाचाश्विनौ नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति
सोऽश्विनौ तुष्टावात उत्तरेण तृचेन इति।**

**तमश्विना उचतुरुषसं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति
स उषसं तुष्टावात उत्तरेण तृचेन। इति**

**तस्य ह स्मर्च्यृच्युक्तायां वि पाशो मुमुचे कनीय
ऐक्ष्वाकस्योदरं भवत्युत्तमस्यामेवर्च्युक्तायां वि पाशो
मुमुचेऽगद ऐक्ष्वाक आस॥ इति।**

13.1.1 व्याख्या

**अथ हैक्ष्वाकं वरुणो जग्राह तस्य होदरं जज्ञे तदु ह
रोहितः शुश्राव सोऽरण्याद्ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण
पर्येत्योवाच-**

व्याख्या- वचन भंग करने के कारण वरुण का कोप इक्ष्वाकु-वंशोत्पन्न हरिश्चन्द्र पर 'जलोदर' रोग बन कर टुटा।रोहित ने सुना तो पिता के मोह में उनसे मिलने अरण्य से ग्राम की ओर चला। वह वन से लौट ही रहा था कि मार्ग में उसे पुरुष वेशधारी इन्द्र ने उसे चरैवेति की सूक्ति के साथ अविश्रान्त रहते हुए शाश्वत विचरण का उपदेश दिया॥

सरलार्थ-उसके बाद वरुण ने इक्ष्वाकु वंशीय राजा को अधिकृत किया, उसको उदर रोग हो गया। रोहित ने यह समाचार सुना तो, वह अरण्य से ग्राम को आने लगा। (तब) इन्द्र पुरुष रूप में उसके समीप आकर बोले-

टिप्पणी

व्याकरण-

- उवाच- ब्रू- धातु से लिट्-लकार के प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- जज्ञे - जनी(प्रादुर्भावे) धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम। पापो नृषद्वरो
जन इन्द्र इच्चरतः सखा चरैवेति॥ इति।

व्याख्या- हे रोहित! परिश्रम से थके व्यक्ति को ही विभिन्न प्रकार की श्री प्राप्त हो जाती है ऐसा हमने ज्ञानी जनों से सुना है। एक स्थान पर निष्क्रिय बैठे रहने वाले विद्वान् व्यक्ति तक को लोग तुच्छ मानते हैं। और विचरण में लगे जन का साथी तो इन्द्र होता है। अतः तुम चलते ही रहो ! चर एव ! चरैवेति !।।

अब इन्द्र और रोहित के संवाद में प्रथम पर्याय को दिखाकर द्वितीय पर्याय दिखाता है-

सरलार्थ- हे रोहित, हम सुनते हैं कि जो (भ्रमण से) श्रान्त नहीं होता है उसको बहुविध सम्पत्ति का लाभ नहीं होता है। और श्रेष्ठ जन भी मानव समाज में (एक स्थान में) स्थित होकर सब से अवज्ञात होकर क्लेश प्राप्त करते हैं।

व्याकरण-

- चर- चर (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- शुश्रुम- श्रु (श्रवणे) धातु से लिट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह द्वितीयं
संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद्ग्राममेयाय तमिन्द्रः
पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

व्याख्या- ब्राह्मण रूपी इन्द्र के इस वाक्य को सुनकर इस ब्राह्मण ने मेरे लिए कहा ऐसा सोचकर अरण्य में जाकर चरैवेति ऐसा करने लगा मन में ब्राह्म णवाक्य में महान् आदर करके पुनः एक संवत्सर अरण्य में विचरण करके फिर पिता को देखने के लिए ग्राम को आते हुए उसे देखकर पुनः इन्द्र ब्राह्मण के रूप में आकर उसे कहने लगा।

सरलार्थ- ब्राह्मण ने मुझे विचरण के लिए कहा ऐसा चिन्तन करके उस (रोहित ने) द्वितीय वर्ष भी अरण्य में ही विचरण किया। उसके बाद अरण्य से ग्राम की और आते समय पुरुष रूपी इन्द्र उसके समीप आकर बोला-

व्याकरण-

- चर - च्र् (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एक वचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- चचार - चर-धातू से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अवोचत्- वच(परिभाषणे) धातू के लुङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहि:। शेरेऽस्य
सर्वे पाप्मान: श्रमेण प्रपथे हताश्चरैवेति।

व्याख्या- निरंतर चलने वाले की जंघाए पुष्पित होती हैं, (अर्थात उस वृक्ष की शाखाओं-उपशाखाओं की भांति होती है जिन पर सुगन्धित एवं फलीभूत होने वाले फूल लगते हैं) और उसका शरीर (बढ़ते हुए वृक्ष की भांति फलों से पूरित होता है, अर्थात वह भी) फल ग्रहण करता है। प्रकृष्ट मार्गो पर श्रम के साथ चलते हुए उसके समस्त पाप नष्ट होकर सो जाते हैं (अर्थात निष्प्रभावी हो जाते हैं)। अत: तुम चलते ही रहो, विचरण करते ही रहो! चर एव ! चरैवेति !!।

तृतीय पर्याय को दर्शाता है-

सरलार्थ-जो जन पर्यटन करता है उसकी जाँघ सुनिर्मित होती हैं। एवं वह शोभन सम्पन्न होता है। उसका शरीर बढ़ता है। एवं वह आरोग्य आदि को प्राप्त करता है। उत्कृष्ट मार्ग में पर्यटन जनित श्रम से समस्त पाप विनष्ट होने पर वह शायित होता है। अत: तू विचरण कर।

व्याकरण-

- चर - चर् (गतौ) धातु के लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन यह रूप सिद्ध होता है।
- हता: - हन्-धातु का क्त प्रत्ययान्त रूप है

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह तृतीयं
संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद्ग्राममेयाय तमिन्द्र:
पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

व्याख्या- ब्राह्मण रूपी इन्द्र के इस वाक्य को सुनकर इस ब्राह्मण ने मेरे लिए कहा ऐसा सोचकर अरण्य में जाकर चरैवेति ऐसा करने लगा मन में ब्राह्मण वाक्य में महान् आदर करके पुन: एक संवत्सर अरण्य में विचरण करके फिर पिता को देखने के लिए ग्राम को आते हुए उसे देखकर पुन: इन्द्र ब्राह्मण के रूप में आकर उसे कहने लगा।

सरलार्थ- ब्राह्मण ने मुझे विचरण के लिए कहा ऐसा चिन्तन करके उस (रोहित ने) तृतीय वर्ष भी अरण्य में ही विचरण किया। उसके बाद अरण्य से ग्राम की और आते समय पुरुष रूपी इन्द्र उसके समीप आकर बोला-

व्याकरण-

- चर – चूर (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- चचार – चूर-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अवोचत्- वच्(परिभाषणे) धातु के लुङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठत:।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति इति।

व्याख्या- जो मनुष्य बैठा रहता है, उसका भग(भाग्य या सौभाग्य) भी रुका रहता है। जो उठ खड़ा होता है उसका सौभाग्य भी उसी प्रकार उठता है। जो पड़ा या लेटा रहता है उसका सौभाग्य भी सो जाता है। और जो विचरण में लगता है उसका सौभाग्य भी चलने लगता है। इसलिए तुम विचरण करते ही रहो! चर एव! चरैवेति!।।

सरलार्थ-जो जन आसनस्थ होता है उसका भाग्य भी आसनस्थ हो जाता है, जो उत्थित होता है उसका भाग्य भी उत्थित हो जाता है। जो सोता है उसका भाग्य भी सो जाता है। जो पर्यटन करता है उसका भाग्य भी सर्वदा विचरण करता रहता है। अत: तू सदा विचर।

व्याकरण-

- चर – चर् (गतौ) धातु के लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- तिष्ठत: – स्था- धातु के लट्-लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- शेते- शीङ्-धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह चतुर्थं
संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः
पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

व्याख्या- पूर्ववत्।(ब्राह्मण रूपी इन्द्र के इस वाक्य को सुनकर इस ब्राह्मण ने मेरे लिए कहा ऐसा सोचकर अरण्य में जाकर चरैवेति ऐसा करने लगा मन में ब्राह्मण वाक्य में महान् आदर करके पुन: एक संवत्सर अरण्य में विचरण करके फिर पिता को देखने के लिए ग्राम को आते हुए उसे देखकर पुन: इन्द्र ब्राह्मण के रूप में आकर उसे कहने लगा।)

सरलार्थ- ब्राह्मण ने मुझे विचरण के लिए कहा ऐसा चिन्तन करके उस (रोहित ने) चतुर्थ वर्ष भी अरण्य में ही विचरण किया। उसके बाद अरण्य से ग्राम की और आते समय पुरुष रूपी इन्द्र उसके समीप आकर बोला-

टिप्पणी

व्याकरण-

- चर - चर (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- चचार - चर-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अवोचत्- वच(परिभाषणे) धातु के लुङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरंश्चरैवेति इति।

व्याख्या- शयन की अवस्था कलियुग के समान है, जगकर सचेत होना द्वापर के समान है, उठ खड़ा होना त्रेता के सदृश है, और उद्यम में संलग्न एवं चलन शील होना कृतयुग (सतयुग) के समान है। अतः तुम चलते ही रहो। चर एव! चरैवेति!।

पञ्चम पर्याय को दिखाता है-

सरलार्थ-शयन की अवस्था कलियुग, जगकर सचेत होना द्वापर, उठ खड़ा होना त्रेता, कृत में विचरण से सम्पदा का लाभ होता है। अतः विचर।

(कलि, द्वापर, त्रेता, और कृत ये चार पौराणिक युग विभाग के नाम हैं। इनके उत्तरोत्तर श्रेष्ठ प्रतिपादन के लिए पुरुष की चार अवस्था प्रतिपादित हैं- निद्रा, जागरण, उत्थान, और विचरण। ये क्रम से पुरुष की ऊर्ध्वगति की सूचना देते हैं।)

व्याकरण-

- संपद्यते- सम् उपसर्ग पूर्वक पद् (गतौ) धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचनमें यह रूप सिद्ध होता है।
- चर - चर (गतौ) धातु के लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह चतुर्थं
संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः
पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

व्याख्या- पूर्ववत्।(ब्राह्मण रूपी इन्द्र के इस वाक्य को सुनकर इस ब्राह्मण ने मेरे लिए कहा ऐसा सोचकर अरण्य में जाकर चरैवेति ऐसा करने लगा मन में ब्राह्मण वाक्य में महान् आदर करके पुनः एक संवत्सर अरण्य में विचरण करके फिर पिता को देखने के लिए ग्राम को आते हुए उसे देखकर पुनः इन्द्र ब्राह्मण के रूप में आकर उसे कहने लगा।)

सरलार्थ- ब्राह्मण ने मुझे विचरण के लिए कहा ऐसा चिन्तन करके उस (रोहित ने) पञ्चम वर्ष भी अरण्य में ही विचरण किया। उसके बाद अरण्य से ग्राम की ओर आते समय पुरुषरूपी इन्द्र उसके समीप आकर बोला-

व्याकरण-

- चर - चर (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- चचार - चर-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अवोचत्- वच(परिभाषणे) धातु के लुङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्वरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति। इति।

व्याख्या- इधर उधर करते हुए मनुष्य को मधु प्राप्त होता है, उसे उदुम्बर सरीखे सुस्वादु फल मिलते हैं। सूर्य की श्रेष्ठता को तो देखो जो विचरण करते हुए जरा भी आलस्य नहीं करता है। उसी प्रकार तुम भी चलते रहो! चर एव! चरैवेति!

इस प्रकार इन्द्रके उपदेश से आचरण करते हुए रोहित के अपने जीवन और पिता के आरोग्यका कारण भूत श्रेय लाभ को दिखाया गया है-

सरलार्थ-जो जन विचरण करता है वह मधु (श्रेयवस्तु) प्राप्त करता है, वह मधु से स्वादु उदुम्वर नामक फल को प्राप्त करता है। जो सूर्य सतत विचरण करता हुआ भी आलस्य ग्रस्त नहीं होता है, उस सूर्य के महात्म्य का अवलोकन कर। अतः तू विचरण कर।

व्याकरण-

- चर - चर (गतौ) धातु के लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- चरन्- चर (गतौ) धातू का शतृ प्रत्ययान्त रूप है।
- विन्दति - विद् धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- पश्य - दृश् (दर्शने) धातु के लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह षष्ठं संवत्सरमरण्ये
चचार सोऽजीगर्तं सौयवसिमृषिमशनया परीतमरण्य
उपेयाय इति।

व्याख्या- छठे संवत्सर में पूर्ववत् अरण्य सञ्चारी उस रोहित ने किसी ऋषि को उस अरण्य में प्राप्त किया। उसकी भेंट अजीगर्त नामक सूर्यवस के पुत्र से हुए क्षुत्पीडित थे।

अजीगर्त और रोहित के मध्य संवाद दर्शाया गया है-

सरलार्थ- ब्राह्मण ने मुझे विचरण के लिए कहा ऐसा चिन्तन करके उस (रोहित ने) छठे वर्ष भी अरण्य में ही विचरण किया। उसके बाद अरण्य से ग्राम की और आते समय पुरुष रूपी इन्द्र उसके समीप आकर बोला-

व्याकरण-

- चर - चर (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- चचार - चर-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अवोचत्- वच(परिभाषणे) धातु के लुङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तस्य ह त्रयः पुत्राः आसुः शुनःपुच्छः शुनःशेपः
शुनोलाङ्गुल इति तं होवाच ऋषेऽहं ते शतं
ददाम्यहमेषामेषामेकेनात्मानं निष्क्रीणा इति

स ज्येष्ठं पुत्रं निगृह्णान् उवाच न त्विममिति ने
एवेममिति कनिष्ठं माता तौ ह मध्यमे संपादयां चक्रतुः
शुनःशेपे तस्य ह शतं दत्त्वा स तमादाय सोऽरण्याद्
ग्राममेयाय इति।

व्याख्या-उस अजीगर्त के शुन:पुच्छादि नामक तीन पुत्र थे। पुत्रवान् ऋषि को रोहित ने कहा। हे ऋषि, तुझे मैं सौ गाय देता हूँ। और देकर मैं इसके बदले में पुत्रों में से किसी एक पुत्र को अपने देह से वरुण को निकालने में मूल्य देकर अपने आप को छुडाऊंगा। ऐसा कहने पर अजीगर्त ने अपने ज्येष्ठ पुत्र शुन:पुच्छ नामक को हाथ से पकड़कर अपने समीप खींचते हुए रोहित को कहा। तुझे एक पुत्र देता हूँ परन्तु यह शुन:पुच्छ तो नहीं देता हूँ। मेरे प्रियत्व के कारण। उसके बाद माता कनिष्ठ पुत्र को हाथ में पकड़ कर बोली। इस शुनो लाङ्गूल मेरे प्रिय को तो हम किसी भी प्रकार न देंगे। उसके बाद उन दोनों माता पिता ने मध्यम पुत्र शुन:शेप को देकर दान को सम्पादित किया तथा अङ्गीकार भी किया। उसके बाद अजीगर्त को रोहित सौ गायें देकर तथा शुन:शेप को लेकर च पड़ा। तब रोहित शुन:शेप के साथ आरण्य से अपने ग्रामको आया।

उसके आगमन से पूर्व का वृत्तान्त दिखाया-

सरलार्थ-उसके (ऋषि अजीगर्त के) शुन:पुच्छ, शुन:शेप, तथा शुनोलाङ्गुल तीन पुत्र थे। उसने अजीर्गत को कहा- हे ऋषि मैं आपको एक सौ गायें देता हूँ, इसके बदले में इन पुत्रों में से एक निष्क्रिय को देकर मैं मुक्त हो जाऊंगा। (तब) अजीगर्त ज्येष्ठ पुत्र के समीप जाकर बोले इसको नहीं दूंगा। कनिष्ठ के समीप जाकर माता ने कहा कि इसको नहीं दूंगी। उन दोनों ने शुन:शेप को देने की स्वीकृति दे दी। तब उस ऋषि को एक सौ गायें देकर शुन:शेप को लेकर रोहित अरण्य से ग्राम को आगया।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- दत्त्वा - दा- धातु का क्त्वा प्रत्ययान्त रूप है।
- चक्रतु: - कृ-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

स पितरमेत्योवाच तत हन्ताहमनेनात्मानं निष्क्रीणा
इति स वरुणं राजानमुपससारानेन त्वा यजा इति तथेति
भूयान् वै ब्राह्मण: क्षत्रियादिति वरुण उवाच तस्मा एतं
राजसूयं यज्ञक्रतुं प्रोवाच तमेतमभिषेचनीये पुरुषं
पशुमालेभे।। इति।

व्याख्या- वह रोहित पिता के समीप जाकर इस प्रकार बोला। हे तात पितर्हन्तावयोर्हर्ष सम्पन्न। मैं शुन:शेप के रूप में मूल्य देकर देकर अपने आप को छुड़ा रहा हूँ। ऐसा कहने पर हरिश्चन्द्र ने वरुण को कहा शुन:शेप ब्राह्मण से आपका याग करूँगा। वह वरुण भी उसको अङ्गीकार करके इस प्रकार बोला। तुझ क्षत्रिय के पुत्र से अद्रोहित होता हुआ भी यह ब्राह्मण मुझे अधिक प्रिय है। यह कहकर हरिश्चन्द्र को कर्त्तव्यत्वसे राजसूय का उपदेश दिया। हरिश्चन्द्र ने राजसूय के मध्य में अभिषेचनीय सोमयाग में शुन:शेपन पुरुष को पशु बनाने के लिए सवनीय पशुत्व से प्राप्त करवाने का निश्चय किया।

सरलार्थ- रोहित पिता के निकट जाकर बोला हे पिता मैं इस पुरुष को देकर अपनी मुक्ति चहाता हूँ। उसके बाद हरिश्चन्द्र ने राजा वरुण के समीप जाकर कहा कि मैं इस पुरुष से आपका याग करूँगा। वरुणबोला ठीक है। क्षत्रिय से ब्राह्मण अवश्य ही श्रेष्ठ है। ऐसा कहकर हरिश्चन्द्र को उसने राजसूय नामक यज्ञ के अनुष्ठान का उपदेश दिया। हरिश्चन्द्र ने भी अभिषेचनीय यज्ञ में शुन:शेप मनुष्य को पशु के रूप में आदिष्ट किया।

व्याकरण

- हन्ता - हन्-धातु के लुट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन यह रूप बनता है।
- उवाच - वच्- धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

- प्रोवाच - प्र उपसर्ग पूर्वक वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- आलेभे- आङ् उपसर्ग पूर्वक लभ्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न

85. उदर रोग किसको हुआ?
86. इन्द्र पुरुष के रूप में किसके समीप आये?
87. वरुणने किसको कहा कि मुझे उदर रोग हो गया?
88. कौन अरण्य से ग्राम के प्रति आया?
89. किसका भाग्य आसनस्थ होता है?
90. किसका भाग्य उत्थित होता है?
91. किसका भाग्य शयित होता है?
92. किसका भाग्य सर्वदा विचरण करता है?
93. रोहित कितने वर्ष अरण्य में विचरण करता है?
94. जो जन विचरण करता है वह किस वस्तु को प्राप्त करता है?

13.1.2 व्याख्या

तस्य ह वि श्वामित्रो होताहहसीज्जदग्निरध्वर्युर्वसिष्ठो ब्रह्माहयास्य उद्गाता तस्मा उपकृताय नियोक्तारं न विविदुः स होवाचाजीगर्तः सौयवसिर्मह्यमपरं शतं दत्ताहमेनं नियोक्ष्यामीति तस्मा अपरं शतं ददुस्तं स निनियोज इति।

व्याख्या- विश्वामित्र आदि हरिश्चन्द्र के याग राजसूय में होता आदि चार ऋत्विज थे। जमदग्नि अधवर्यु ने अभिशेचनीय सोमयाग में शुनःशेप को सवनीय पशुत्व से उपकृत किया। बहिर्युक्त प्लक्ष शाखा से मन्त्र पुरःसर समुपस्पृश्य उपाकरण को स्वीकार करा। उसके ऊपर युपबन्धन का नियोजन किया गया। उस क्रूरकर्म के नियोजन के लिए अध्वर्यु प्रवृत्त नहीं हुआ। तब उपाकृत हुए उपाकरण से संस्कृत शुनःशेप को यूप पर बांधने का क्रूर कार्य किसी ने स्वीकार नहीं किया। तभी सुर्यवस के पुत्र शुनःशेप के पिता अजीगर्त ने (कहा) पहले मुझे पूर्व कथित सौ गायें दे दो तो हे यजमान उसके बाद मैं शुनःशेप को खूंटे के बाँध दूंगा, मैं रशना कटी शिर

पैर रशनाग्र को यूप के बन्धन में नियोजन करूँगा। अत: अजीगर्त को सौ गायें दी। तथा शुन:शेप को अजीगर्त ने बाँधा।

सरलार्थ-उस हरिश्चन्द्र के विश्वामित्र होता, जमदग्नि अध्वर्यु, वशिष्ठ ब्रह्मा और उदगाता रहते हुए। उपाकरण के पश्चात् पशु का नियोक्ता अप्राप्त था। तब सूर्यवस के पुत्र अजीगर्त बोले, मुझे एक सौ गायें दो, मैं उसे खूंटे पर बांधता हूँ। हरिश्चन्द्र ने उसको एक सौ गायें दी। और उसने उसको वहाँ बाधाँ।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- दत्ता- दा-धातु का क्त प्रत्ययान्त रूप है।
- विविदु: - विद्-धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन यह रूप सिद्ध होता है।
- ददु: - दा-धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तस्मा उपाकृताय नियुक्तायाऽऽप्रीताय पर्यग्निकृताय
विशसितारं न विविदु: स होवाचाजीगर्त: सौयव-
सिर्मह्यमपरं शतं दत्ताहमेनं विशसिष्यामीति तस्मा
अपरं शतं ददु: सोऽसिं नि:शान एयाय इति।

व्याख्या- उस शुन:शेप के उपाकरण कर्म और नियोजन कर्म की समाप्ति के बाद आप्रीमन्त्र पाठ और पर्यग्निकरण अनुष्ठान की समाप्ति के बाद उसके हनन के लिए कोई भी प्राप्त नहीं हुआ। तब सूर्यवस का पुत्र अजीगर्त बोला मुझे एक सौ गायें और दे दो, तो मैं इसका वध कर दूँगा। हरिश्चन्द्र ने पुन: एक सौ गायें दी। वह भी गायों को लेकर तलवार को तीक्ष्ण करके वहाँ आगया।

पिता अजीगर्त (शुन:शेप) का वृत्तान्त दिखाता है --

सरलार्थ-उस शुन:शेप के उपाकरण कर्म और नियोजन कर्म की समाप्ति के बाद आप्री मन्त्रपाठ और पर्यग्नि करण अनुष्ठान की समाप्ति के बाद उसके हनन के लिए कोई भी प्राप्त नहीं हुआ। तब सूर्यवस का पुत्र अजीगर्त बोला मुझे एक सौ गायें और दे दो, तो मैं इसका वध कर दूँगा। हरिश्चन्द्र ने पुन: एक सौ गायें दी। वह भी तलवार को तीक्ष्ण करके गया।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन यह रूप सिद्ध होता है।
- दत्ता- दा-धातु का क्त प्रत्ययान्त रूप है।
- विविदु: - विद्-धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

टिप्पणी

- ददुः - दा-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।
- एयाय- इन्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- विशसिष्यामि - वि उपसर्ग पूर्वक णिजन्त शस्-धातु से लृट्-लकार उत्तम पुरुष के एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

अथ ह शुनःशेप ईक्षांचक्रेऽमानुषामिव वै मा
विशसिष्यन्ति हन्ताहं देवता उपधावामीति
स प्रजापतिमेव प्रथमं देवतानामुपससार कस्य नूनं
कतमस्यामृतानामित्येतयर्चा इति।

व्याख्या- अब पिता के अरण्य उद्योग के बाद शुनःशेप पुत्र मन में समीक्षा करते हुए विचार किया। ''अन्यत्र पर्यग्निकृतं पुरुषमारण्यांश्चोत्सृजन्ति''। अहिंसा की इस श्रुतिमें पर्यग्नि करणादूर्ध्व मनुष्य को छोड़ देता है। ये मेरा अमानव की तरह ही वध करेंगे। अहो मैं देवताओं की शरण में जाता हूँ। ऐसा चिन्तन करके वह देवों में मुख्य प्रजापति की 'कस्य नूनं कतमस्यामृतानाम्' इस ऋचा से उपासना की।

उस प्रजापति के सबकारित्व से अग्नि की सेवा को दिखाया है--

सरलार्थः- तब शुनःशेप चिन्तन करता है कि ये मेरा अमानव की तरह ही वध करेंगे। अहो मैं देवताओं की शरण में जाता हूँ। ऐसा चिन्तन करके वह देवों में मुख्य प्रजापति की 'कस्य नूनं कतमस्यामृतानाम्' इस ऋचा से उपासना की।

व्याकरण-

- ईक्षांचक्रे - अक्ष्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- विशसिष्यन्ति - वि उपसर्ग पूर्वक णिजन्त शस्-धातु से लृट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तं प्रजापतिरुवाचाग्निर्वै देवानां नेदिष्ठस्तमेवोपधावेति
सोऽग्निमुपससासाग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानामित्येतयर्चा
इति।

व्याख्या- उस सेवक शुनःशेप को प्रजापति इस प्रकार बोले। अग्नि सभी देवताओं के नेदिष्ट हविर्वहन से अतिसमीपवर्ती है अतः उसका आश्रय लो। उसने (शुनःशेप ने) 'अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानाम्' इस ऋचा से अग्नि की उपासना की।

और उस अग्नि के सहकारित्व से सविता की उपासना दिखाई है--

सरलार्थ- प्रजापति ने उसको कहा- अग्नि ही देवों में निकटतम है। अतः उसका आश्रय लो। उसने (शुनःशेप ने) 'अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानाम्' इस ऋचा से अग्नि की उपासना की।

तमग्निरुवाच सविता वै प्रसवानामीशे तमेवोपधा-
वेति स सवितारमुपससाराभि त्वा देव सवितरित्येतेन
तृचेन इति।

व्याख्या- प्रसवों के सभी कार्यों में प्रेरणा रूप के अनुज्ञान से सविता ईश स्वामी हैं। अत: तू सविता की उपासना कर। उसने भी 'अभि त्वा देव सवित:' इस ऋचा से सविता की उपासना की।

और उस सविता के सहकारित्व से वरुण की उपासना दिखायी गयी है-

सरलार्थ- अग्नि ने (शुन:शेप को) उसको कहा कि सविता ही प्रेरणा दान में समर्थ है, अत: तू सविता की उपासना कर। उसने भी 'अभि त्वा देव सवित:' इस ऋचा से सविता की उपासना की।

तं सवितोवाच वरुणाय वै राज्ञे नियुक्तोऽसि तमे-
वोपधावेति स वरुणं राजानमुपससारात
उत्तराभिरेकत्रिंशता इति।

व्याख्या- हे शुन:शेप तू वरुणार्थ यूप पर बंधा हुआ है सविता ने उसको कहा, तू राजा वरुण के लिए यूप में बन्ध जा। तू उसी की उपासना कर। वह (शुन:शेप) भी पूर्वोक्त तीनों मन्त्रों के स्थान पर इकत्तीस ऋचाओं से वरुण देवता की उपासना की। न हि ते क्षत्रम् (1-24-6) इत्यादि सूक्त शेषभूत दशर्चो यच्चिद्धि ते विश: (1-29-1) इत्यादि इक्कीस ऋचा सूक्त इक्कतीस संख्या देखनी चाहिए।

उस वरुण के सहकारित्व से फिर भी अग्नि की उपासना दिखाता है-

सरलार्थ- सविता ने उसको कहा, तू राजा वरुण के लिए यूपमें बन्ध जा। तू उसी की उपासना कर। वह (शुन:शेप) भी पूर्वोक्त तीनों मन्त्रों के स्थान पर इकत्तीस ऋचाओं से वरुण देवता की उपासना की।

तं वरुण उवाचग्निर्वै देवानां मुखं सुहृ-
दयतमस्तं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति
सोऽलग्न तुष्टावात उत्तराभिर्द्वाविमशत्या इति।

व्याख्या- यह अग्नि सभी देवताओं का मुख और मुख स्थानीय है। अग्नि के द्वारा ही सभी देव आहुति स्वीकार करते हैं। अत: प्रीति के हविर्वहन से अतिशय से सुहृदय है। सुहृदय उस अग्नि की तू शीघ्र ही स्तुति कर ऐसा वरुण ने कहा। उसके बाद ही तुझे मैं मोक्ष दूंगा। तब उसने वायस ऋचाओं से अग्नि की स्तुति की कृतवान्।वसिष्वाहीत्यादिकं (6-26-5) दशर्चं सूक्तम्। अश्वं नत्वा (1-27-1) इत्यादि तेरह ऋचा सूक्त है। अग्नि के सहकारित्व से विश्व के सभी देवताओं की उपासना दिखाई गई है --

सरलार्थ:- वरुण ने उस (शुन:शेप को) कहा- अग्नि ही देवों में मुख्य है, वही श्रेष्ठ सुहृत्

टिप्पणी

है, अतः शीघ्र ही उसको उद्देश्य करके स्तुति कर। उसके बाद ही तुझे मैं मोक्ष दूंगा। तब उसने वापस ऋचाओं से अग्नि की स्तुति की कृतवान्।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- उत्स्रक्ष्यामः - उत् पूर्वक सृज्(विसर्गे) धातू से लृट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तुष्टाव - ष्टुञ् (स्तुतौ) धातू के लिट्-लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तमग्निरुवाच विश्वान्नु देवान्स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम
इति स विश्वान्देवांस्तुष्टाव नमो महद्भ्यो नमो
अर्भकेभ्यो इत्येतयर्चा इति।

व्याख्या- यद्यपि वरुण के पाश से बन्धे हुए शुनःशेप को वरुण ही छुड़ा सकता था तथापि अग्नि आदि का सहकारित्व वचन दृढ़ता के लिए द्रष्टव्य है। विश्वेदेव गणरूप नहीं होते हैं उसके बाद 'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यः' इत्यादि ऋचाओं से विश्वेदेवताओं की स्तुति की।

और उन विश्वे देवताओं के सहकारित्व से इन्द्र की उपासना दिखायी गई है-

सरलार्थ- (तब) अग्नि ने उसको कहा, तू विश्वेदेवताओं की स्तुति कर, तो मैं तुम्हे मोक्ष दूंगा। उसके बाद 'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यः' इत्यादि ऋचाओं से विश्वेदेवताओं की स्तुति की।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- उत्स्रक्ष्यामः - उत् पूर्वक सृज्(विसर्गे) धातु से लृट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तुष्टाव - ष्टुञ् (स्तुतौ) धातु के लिट्-लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तं विश्वे देवा ऊचुरिन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो
वलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतमस्तं
नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति स इन्द्रं तुष्टाव
यच्चिद्धि सत्य सोमपा इति
चैत्येन सूक्तेनोत्तरस्य च पञ्च दशभिः इति।

व्याख्या- ओडोवल आदिशव्द पूर्वाचार्यो के द्वारा ही व्याख्यात है--

ओजो दीप्तिर्वलं दाक्ष्यं प्रसह्यकरणं सह:।
सुजन: सन्पारयिष्णुरुपक्रान्तसमाप्तिकृत।।इति

इष्ट प्रत्ययतमप्प्रत्ययों से वहाँ अतिशय कहते हैं। वैसे इन्द्र की सत्य सोमपा ने सप्तर्च सूक्त से इन्द्र इत्यादि बाईस ऋचाओं के सूक्त में पन्द्रह ऋचाओं से की। इन्द्र ही देवताओं में सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न है, दैहिक बल युक्त है, और सहायक श्रेष्ठ कर्म कारक है। तू उसी की स्तुति कर। तो तुझे हम मोक्ष देंगे। उस शुन:शेप ने 'यच्चिद्धि सत्य सोमपा:' इत्यादि सूक्तों से और उसके बाद विद्यमान पचास मन्त्रों से इन्द्र की स्तुति की।उस उपदेश के फलपर्यवसायित्व का अनुस्मरण करते हुए इन्द्र से शुन:शेप की प्रीत्यतिशय दिखाई गई है--

सरलार्थ:-इसके बाद विश्वे देवों ने उसे कहा कि इन्द्र ही देवताओं में सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न है, दैहिक बल युक्त है, और सहायक श्रेष्ठ कर्म कारक है। तू उसी की स्तुति कर। तो तुझे हम मोक्ष देंगे। उस शुन:शेप ने 'यच्चिद्धि सत्य सोमपा:' इत्यादि सूक्तों से और उसके बाद विद्यमान पचास मन्त्रों से इन्द्र की स्तुति की।

व्याकरणम्-

- ऊचु: - वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उत्स्रक्ष्याम: - उत् पूर्वक सृज्(विसर्गे) धातु से लृट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तुष्टाव - ष्टुञ् (स्तुतौ) धातु के लिट्-लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तस्मा इन्द्र: स्तूयमान: प्रीतो मनसा हिरण्यरथं
ददौ तमेतया प्रतीयाय शश्वदिन्द्र इति इति।

व्याख्या- शुन:शेप से स्तूयमान इंद्र ने प्रसन्न होकर शुनशेप को सुवर्णमय दिव्य रथ आरोहण के लिए अपने मन से ही दिया। शुन:शेप ने भी उसका अनुग्रह जानकर पूर्वोक्त पन्द्रह सूक्तियों से इन्द्र की अर्चना की रथ को मन से ग्रहण किया।

सरलार्थ:- इन्द्र स्तुत होकर प्रसन्न हुआ और मन से उसको हिरण्यमय रथ दिया। वह भी 'शश्वदिन्द्र' मन्त्र से इन्द्रकी स्तुति करने लगा।

व्याकरण-

- स्तूयमान: - ष्टुञ्-धातु शानच्-प्रत्ययान्त रूप है।
- ददौ- दा-धातू से लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रुप सिद्ध होता है।

तमिन्द्र उवाचाश्विनौ नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति
सोऽश्विनौ तुष्टावात उत्तरेण तृचेन इति।

व्याख्या- पूर्वोक्त शश्वदिन्द्रो इसके उत्तरेणाश्विनावश्वावत्या (1-30-27) इस ऋचा से अश्विन की स्तुति की।

अश्विन के सहकारित्व से उषा की स्तुति दिखाता है--

सरलार्थ- इन्द्र ने उसे कहा दोनों अश्विन का स्तवन कर, तो तुझे मोक्ष दूंगा। उसने भी उसके बाद तीन ऋचाओं से दोनों अश्विन का स्तवन किया।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- उत्स्रक्ष्याम: - उत् पूर्वक सृज(विसर्गे) धातु से लृट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तुष्टाव - ष्टुञ् (स्तुतौ) धातु के लिट्-लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तमश्विना उचतुरुषसं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम
इति स उषसं तुष्टावात उत्तरेण तृचेन इति।

व्याख्या- कस्त उष: (1-30-20) इत्यादि उत्तरस्तृच है। अथ उक्त सभी देवताओं के अनुग्रह से शुन:शेप का बन्ध मोक्ष और हरिश्चन्द्र का आरोग्य दिखाता है--

सरलार्थ-दोनों अश्विन ने उसे कहा- तू उषादेवी का स्तवन कर। तो मैं तुझे मोक्ष दूंगा। उसके बाद उसने तीन ऋचाओं से उषादेवी का स्तवन किया।

व्याकरण-

- उत्स्रक्ष्याम: - उत् पूर्वक सृज्(विसर्गे) धातु से लृट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तुष्टाव - ष्टुञ् (स्तुतौ) धातु के लिट्-लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तस्य ह स्मर्च्यृच्युक्तायां वि पाशो मुमुचे कनीय
ऐक्ष्वाकस्योदरं भवत्युत्तमस्यामेवर्च्युक्तायां वि पाशो
मुमुचेऽगद ऐक्ष्वाक आस॥ इति।

व्याख्या- उस पूर्वक्त ऋचा के संबन्धिनी एक एक ऋचा कहने से क्रम से शुन:शेप का पाश विमुक्त होता गया विशेष मुक्त हो गया, ऐक्ष्वाक हरिश्चन्द्र का जो महोदर था वह भी क्रम से अल्प होता गया। अन्तिम ऋचा का उच्चारण होने पर समस्त बन्धन की मुक्ति हो गयी। इक्ष्वाकुवंशधर हरिश्चन्द्र भी रोग मुक्त हो गया।

सरलार्थ- ऋचाओं के उच्चारित होने पर पर शुन:शेप का बन्धन मुक्त हो जाता है। इक्ष्वाकुवंशधर का महोदर भी क्षुद्र हो गया। अन्तिम ऋचा का उच्चारण होने पर समस्त बन्धन की मुक्ति होगयी। इक्ष्वाकुवंशधर हरिश्चन्द्र भी रोग मुक्त हो गया।

व्याकरण-

- मुमुचे- मुच -धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न

95. मुझे एक सौ गायें दो यह वाक्य किसने बोला?
96. किसने उसे एक सौ गायें दी?
97. सूयवस पुत्र अजीगर्त ने पुन: किस लिए गायें माँगी?
98. देवों में कौन निकटतम है?
99. अग्नि ही देवों में सबसे निकटतम इस उक्ति को किसने प्रत्युक्त किया?
100. अग्नि ने शुन:शेप को क्या कहा?
101. सविता ने शुन:शेप को क्या कहा?
102. वरुण ने शुन:शेप को क्या कहा ?
103. विश्वेदेव शुन:शेप के किस मन्त्र से स्तुत हुआ?
104. किसकी स्तुति के बाद शुन:शेप पाश से उन्मुक्त हुआ?

पाठ का सार

इस पाठ में शुन:शेप उपाख्यान दो खण्डो में वर्णित है। दोनों खण्डों में जो कहा गया है वह सार रूप से कहते हैं। तृतीय खण्ड में जब रोहित अरण्य से अपने पिता के उदररोग के कारण गाँव आ रहा था तब इन्द्र ब्राह्मण के रूप में उसके समीप आया। उस ब्राह्मण ने उसे पर्यटन का माहात्म्य बताया। उस माहात्म्य को समझ कर रोहित छह वर्ष तक अरण्य में घूमता रहा। छठे वर्ष उसे अजीगर्त का साक्षात्कार हुआ। वहाँ उसने अजीगर्त के एक पुत्र को सौ गायों के बदले माँगा। अजीगर्त ने मध्यमपुत्र शुन:शेप उसको दे दिया। रोहित उसको लेकर घर आगया।

इसी प्रकार चतुर्थ खण्ड में हरिश्चन्द्र के घर पर यज्ञ आयोजित किया गया। वहाँ अजीगर्त एक सौ गायों के बदले अपने पुत्र शुन:शेप के वध के लिए प्रवृत्त हुआ। यह सब देख कर उसने प्रजापति को आहूत किया। प्रजापति ने अग्नि की स्तुति के लिए कहा। अग्नि ने सविता की

स्तुति के लिए कहा। सविता ने वरुण की स्तुति के लिए कहा। वरुण ने अग्नि की स्तुति के लिए कहा। अग्नि ने विश्वदेवों की स्तुति के लिए कहा। विश्वेदेवों ने इन्द्र की स्तुति के लिए कहा। इन्द्र ने दो अश्विनी कुमारों की स्तुति के लिए कहा। दोनों अश्विनि कुमारों ने उषा देवी की स्तुति के लिए कहा। इस प्रकार उषा देवी की स्तुति के बाद वह पाशमुक्त हो गया।

पाठांत प्रश्न

105. रोहित और इन्द्र के वार्तालाप का वर्णन करो?

106. अजीगर्त और शुन:शेप के मध्य वार्तालाप का वर्णन करो?

107. शुन:शेप की देवों के प्रति प्रार्थना का वर्णन करो?

108. चतुर्थ खण्ड का सार लिखो?

109. तृतीय खण्ड का सार लिखो?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तरकूट-1

110. वरुण का

111. रोहित का

112. राजा को

113. रोहित

114. जो जन आसनस्थ होता है।

115. जो उत्थित होता है।

116. जो शयित होता है।

117. जो पर्यटन करता है।

118. छह वर्ष।

119. श्रेय वस्तु।

उत्तरकूट-2

120. सूयवस पुत्र अजीगर्त।

121. हरिश्चन्द्र।

122. यज्ञ के बाद वध करूँगा ऐसा सोच कर।

123. अग्नि ही।

124. प्रजापति शुनशेप के प्रति।

125. सविता ही प्रेरणा दान में समर्थ है।

126. तू राजा वरुण के लिए यूप में बंधा हुआ है। तू उसी की उपासना कर।

127. अग्नि ही देवों में मुख्य है, वह ही श्रेष्ठ सुहृत् है, अत: शीघ्र ही उसको उद्देश्य करके स्तुति कर।

128. नमो महद्भ्यो नमोऽकर्मकेभ्य:।

129. उषा देवी से।

तेरहवाँ पाठ समाप्त

14

शुनःशेपोपाख्यान-3

प्रस्तावना

पूर्व पठित पाठ से जैसा कि स्पष्ट है कि ऋग्वेद का शुनःशेपोपाख्यान अत्यन्त प्रसिद्ध है। आपने पूर्व के दो पाठ में शुनःशेपोपाख्यान के चार खंडो को पढ़ा। अत एव खण्ड चतुष्टय के अध्ययन से शुनःशेपोपाख्यान का साधारण ज्ञान तो आपको हो ही गया है। अब इस पाठ का अवशिष्ट भाग इस पाठ में मिलेगा। मन्त्र, कथा माध्यम द्वारा एक वृत्तान्त को पादित किया है। ऋग्वेद का यह मूल आख्यान अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस पाठ में शुनःशेपोपाख्यान का पञ्चम खण्ड वर्णित है। इस पाठ में सायण भाष्य के आधार पर व्याख्या है। क्योकि सायण भाष्य के विना मन्त्र का अर्थ समझना बहुत कठिन है। इस पाठ में विश्वामित्र और शुनःशेप के मध्य में प्रवृत्त वार्तालाप का वृत्तान्त है और शुनःशेप को विश्वामित्र द्वारा पुत्र रूप में स्वीकारना ये भी वृत्तान्त है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- शुनःशेपोपाख्यान के पञ्चम खण्ड को जान पाने में;
- शुनःशेप और विश्‍वामित्र के वार्तालाप को जान पाने में;
- शुनःशेप को विश्वामित्र द्वारा क्यों पुत्र रूप में स्वीकार किया गया ये जान पाने में;
- स्वयमेव मन्त्र की व्याख्या सम्पादित करने में;
- स्वयमेव अन्वय कर पाने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण को भी जान पाने में;
- मन्त्र का सामान्यार्थ जान पाने में।

14.1 मूलपाठ

पञ्चम खण्ड

तमृत्विज ऊचुस्त्वमेव नोऽस्यानह्नः संस्थामधिगच्छे-
त्यथ हैतं शुनःशेपोऽञ्ःसवं ददर्श तमेताभिश्चतसृ-
भिरभिसुषाव यच्चिद्धि त्वं गृहे गृह इत्यथैनं द्रोण-
कलशमभ्यवनिनायोच्छिष्टं चम्वोर्भरेत्येतयर्चाऽथ
हास्मिन्नन्वारब्धे पूर्वाभिश्चतसृभिः स स्वाहाकारा-
भिर्जुहवांचकाराथैनमवभृथमभ्यवनिनाय त्वं नो
अग्ने वरुणस्य विद्वानित्येताभ्यामथैनमत ऊर्ध्वम-
ग्निमाहवनीयमुपस्थापयांचकार शुनश्चिच्छेपं निदितं
सहस्रादिति इति।

अथ ह शुनःशेपो विश्वामित्रस्याङ्कमाससाद स
होवाचाजीगर्तः सौयवसिर्ऋषे पुनर्मे पुत्रं देहीति
नेति होवाच वि श्वामित्रो देवा वा इमं मह्यमरास-
तेति स ह देवरातो वैश्वामित्र आस तस्यैते कापि-
लेयबाभ्रवाःइति।

स होवाचाजीगर्तः सौयवसिस्त्वं वेहि विह्वयावहा
इति स होवाचाजीगर्तः सौयवसिराङ्गिरसो जन्म-
नाऽस्याजीगर्तिः श्रुतः कविः। ऋषे पैतामहात्तन्तो-
र्माऽपगाः पुनरेहिमामिति स होवाच शुनःशेपोऽ-
दर्शुस्त्वा शासहस्तं न यच्छूद्रेष्वलप्सत। गवां
त्रीणि शतानि त्वमवृणीथा मदङ्गिरः इति।

स होवाचाजीगर्तः सौयवसिस्तुद्वै मा तात तपति
पापं कर्म मया कृतम्। तदहं निह्नुवे तुभ्यं
प्रतियन्तु शता गवामिति स होवाच शुनःशेपो यः
सकृत्पापकं कुर्यात्कुर्यादेनत्ततोऽपरम्। नापागाः
शौद्रान्न्यायादसंधेयं त्वया कृतमिति इति।

असंधेयमिति ह वि श्वामित्र उपपपाद स होवाच
वि श्वामित्रे भीम एव सौयवसिः शासेन विशिशा-



सिषुः अस्थान्मैतस्य पुत्रो भूर्ममैवोपेहि पुत्रता-
मिति, इति।

स होवाच शुनःशेपः स वै यथा नो ज्ञपयाऽऽ
राजपुत्रे तथा वद। यथैवाऽऽङ्गिरसः सन्नुपेयां
तव पुत्रतामिति स होवाच वि श्वामित्रो ज्येष्ठो मे
त्वं पुत्रणां स्यास्तव श्रेष्ठा प्रजा स्यात्। उपेया-
दैवं मे दायं तेन वै त्वोपमन्त्रय इति इति।

स होवाच शुनःशेपः संज्ञानानेषु वै ब्रूयात् सौहार्द्याय
मे श्रियै। यथाऽहं भरतऋषभोपेयां तव पुत्रतामि-
त्यथ ह विश्वामित्रः पुत्रनमन्त्रयामास मधुच्छन्दाः
शृणोतन ऋषभो रेणुरष्टकः। ये के च भ्रातरः
स्थ नास्मै ज्यैष्ठ्याय कल्पध्वमिति।। इति।

तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः पञ्चाश-
देव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः पञ्चाशत्कनीयांसः इति।

तद्ये ज्यायांसो न ते कुशलं मेनिरेताननु व्याज-
हारान्तन्वः प्रजा भक्षीष्टेति त एतेऽन्ध्रा पुण्ड्राः
शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो वैश्वा-
मित्र दस्यूनां भूयिष्ठाः इति।

14.1.1 इदानींमूलापाठम्अवगच्छाम

तमृत्विज ऊचुस्त्वमेव नोऽस्याह्नः संस्थामधिगच्छे-
त्यथ हैतं शुनःशेपोऽञ्जःसवं ददर्श तमेताभिश्चतसृ-
भिरभिसुषाव यच्चिद्धि त्वं गृहे गृह इत्यथैनं द्रोण-
कलशमभ्यवनिनायोच्छिष्टं चम्वोर्भरेत्येतयर्चाऽथ
हास्मिन्नन्वारब्धे पूर्वाभिश्चतसृभिः स स्वाहाकारा-
भिर्जुहवांचकाराथैनमवभृथमभ्यवनिनाय त्वं नो
अग्ने वरुणस्य विद्वानित्येताभ्यामथैनमत ऊर्ध्वम-
ग्निमाहवनीयमुपस्थापयांचकार शुनश्चिच्छेपं निदितं
सहस्रादिति इति।

व्याख्या- देवतानुग्रहयुक्तं तं शुनःशेपं विश्वामित्रदयः सर्व ऋत्विज एवमूचुः। हे शुनःशेप त्वमेव नोऽस्मारकमस्याह्नोऽभिषचनीयाख्यसंस्थां समप्तिमधिगच्छ प्राप्नुहि। अनुष्ठापत्येर्थः। तैरेवमुक्ते सत्यनन्तरं शुनःशेप एवमभिषेचनीयाख्यां सोमयागमञ्जःसवं ददर्श। अञ्जसर्जुमार्गेन सवः सोमाभिषवो यस्मिन्यागो सोऽञ्जसवस्तादृशं प्रयोगप्रकारं निश्चितवान्। निश्चित्य च तं सोमं यच्चिद्धीत्यादिभिश्चतसृभिऋग्भिरभिषुतं कृतवान्। अथैनमभिषुतं सोममेतयोच्छिष्टं चम्वोरित्यृचा द्रोणकलशममिक्ष्यावनिनाय द्रोणकलश प्रक्षिप्तवान्। अथानन्तरमस्मिन्हरिशचन्द्रोणाण्वारद्धे शुनःशेलदेहमुपस्पृष्टवति सत्युक्ताभ्य ऋग्भ्यः पूर्वाभिर्यत्र ग्रावेत्यादिभिश्चतसृर्भिऋग्भिः स्वाहाकारसहिताभिः सोमं जुहुवांचकार। यत्र ग्रावेत्यादिकं सूक्तं नर्वचं तत्र यच्चिद्धीति पञ्चमी तामारभ्य चतसृर्ग्भिऋग्भिरभिषवः। उच्छिष्टमित्यादिका नवमी तया द्रोणकलशे प्रक्षेपः। यत्र ग्रावेत्यादिभिश्चतसृग्भिर्होम इत्येवं कृत्स्नस्य सूक्तस्य विनियोगः। अथः होमानन्तरमेव कर्तव्यमवभृथमभिलक्ष्यावनिनाय सर्वमवभृथसाधनं तद्देश नीत्वा त्वं नो अग्न इत्यादिकाभ्यामृग्भ्यामवभृथयागं कृतवान्। अथ तथा कृत्वा तत ऊर्ध्वमेनमाहवनीयमग्नि शुनश्चिदित्यनेनोपस्थापयांचकार हरिश्चन्द्रमुपस्थाने प्रेरयामास। सोऽयमञ्जःसवः। इष्टिपशुसांकर्यम् अन्तरेणाञ्जसर्जमार्गेणानुष्ठितत्वात्।

विश्वमित्र और अजीगर्त का संवाद प्रस्तुत है -

सरलार्थ- (उसके बाद) ऋत्विज ने शुनःशेप को कहा -हमारे इस अनुष्ठान की तुम ही समाप्ति करो। (ऐसा सुनकर) शुनःशेप ने सरल उपाय से सोमाभिषवपूर्वकयागानुष्ठान की व्यवस्था की। स 'यच्चद्धि त्वं गृहे गृहे' इत्यादि ऋचाओं से सोम का अभिषव किया। उसके बाद 'उच्छिष्टं चम्भोर्भव' इत्यादि ऋचाओं से सोम को द्रोण कलश में डाला। उसके बाद अनुष्ठान के आरम्भ से समाप्ति तक स्वाहाकार समेत पूर्व में कही गई 'यत्र गावा' इत्यादि चार ऋचाओ से होम किया। फिर 'त्वा नो अग्ने वरुणस्य विद्वान' इत्यादि दो ऋचाओं से अवभृथयाग का अनुष्ठान किया और फिर उसके बाद 'शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्रम' इत्यादि ऋचाओं से हरिश्चन्द्र को बुलाने के लिए अग्नि में उपस्थान किया।

व्याकरण-

- ऊचुः - वच्-धातु से लिट्-लकार का प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।
- आह- ब्रू-धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- ददर्श- दृश्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- उपस्थापयाञ्चकार - उप उपसर्गपूर्वक णिजन्त स्था-धातु से लिट्-लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन का रूप।

अथ ह शुनःशेपो विश्वमित्रस्याङ्कमाससाद स
होवाचाजीगर्तः सौयवसिर्ऋषे पुनर्मे पुत्रं देहीति
नेति होवाच विश्वामित्रे देवा वा इमं मह्यमरास-
तेति स ह देवरातो वैश्वामित्र आस तस्यैवे कापि-
लेयबाभ्रवाःइति।

व्याख्या- अथ अभिषेचनीय कार्य के समापन के बाद हरिश्चन्द्र सहित सभी प्रसन्नचित ऋत्विजों में वो शुन:शेप किसका पुत्र है? ऐसा विचारने पर महर्षियों के वचन सुनकर शुन:शेप: स्वेच्छा से विश्वामित्र को पिता स्वीकार कर उनकी गोद में बैठ गया। पुत्र सर्वत्र और सदा पिता की गोद ही बैठता है। फिर सूयवस पुत्र अजीर्गत द्वारा विश्वामित्र से पुत्र मागने पर उसने मना करके कहा। प्रजापति आदि देवों ने इस शुन:शेप को मुझे दिया इसलिए तुझे नहीं दे सकता। और फिर वो शुन:शेप देवों द्वारा दिए जाने के कारण देवरात नाम से विश्वामित्र का पुत्र कहलाया। उस देवरात के कपिल गोत्र में उत्पन्न और वभ्रुगोत्रउत्पन्न बन्धु हो गये।

शुन:शेप और अजीर्गत में बीच संवाद प्रस्तुत है -

सरलार्थ-फिर शुन:शेप विश्वामित्र के गोद में बैठ गये। उस सूयवस पुत्र अजीगर्त ने कहा - तू मेरा पुत्र दे। विश्वामित्र ने कहा -कभी नही,देवों ने इसे मुझे दिया। फिर उसके बाद शुन:शेप विश्वामित्र के पुत्र देवरात के नाम से विख्यात हुआ। कपिलगोत्र में उत्पन्न बभ्रुगोत्रीय उसके बान्धव हो गये।

व्याकरण-

- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- देहि- दा-धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन का रूप।

स होवाचाजीगर्त: सौयवसिस्त्वं वेहि विह्वयावहा
स होवाचाजीगर्त: सौयवसिराङ्गरसो
जन्मनाऽस्याजीगर्ति: श्रुत: कवि:। ऋषे
पैतामहात्तन्तोर्माऽपगा: पुनरेहिमामिति स होवाच
शुन:शेपोऽदर्शुस्त्वा शासहस्तं न यच्छूद्रेष्वलप्सत। गवां
त्रीणि शतानि त्वमवृणीथा मदङिगर: इति।

व्याख्या-विशामित्र द्वारा मना करने पर वो अजीर्गत शुन:शेप को फिर कहता है। हे पुत्र तू विश्वामित्र को छोड़कर मेरे पास आ जा। तेरी माता और मैं दोनों विशिष्ट रूप से तेरा आह्वान करते है। ऐसा कहकर चुप रहे उस शुन:शेप के लिए पुन: एक और बात कही। हे शुन:शेप तुम जन्म सही अंङिगरा गोत्र उत्पन्न अजीगत के पुत्र होकर विद्वान रूप में सर्वत्र प्रसिद्ध हो। अत: हे महर्षि! शुन:शेप प्रजापति द्वारा दादा-परदादा की परम्परा के रूप में संपादितसंतान से अंङिगरस वंश को मत छोड़। इसलिए पुन: मेरे घर में आजा शुन:शेप ने प्रत्युत्तर में देते हुए कहता है कि ''शासो विशसनहेतु: खड्ग:।'' हे अजीर्गत मेरे वध के लिए आप सभी को हाथ में तलवार लिए देखता हुँ। ये जो तुम क्रूर कर्म, जो अत्यंत नीच शूद्रों में भी नहीं देखने को मिलता है और न ही इस संसार में तुम जैसा क्रूर कर्म करने वाला हुआ भी नहीं है। हे अङिगरस गोत्र में उत्पन्न अजीर्गत के पुत्र तू मेरे भाग की सौ गायों को चुनकर वरण कर ले। ऐसा उसने बार बार कहा।

पुन: अजीर्गत और शुन:शेप का संवाद होता है -

सरलार्थ- सूयवस के पुत्रअजीगर्त ने शुनःशेप को कहा - (हे पुत्र) तू ही (मेरे समीप) आ जा हम दोनों तेरे पिता तुझे बुलाते है। सूयवस पुत्र अजीगर्त ने (पुनः शुनःशेप को) कहा - (हे पुत्र) तू तेरे जन्म से ही अङ्गिरस अजीगर्त का पुत्र है और एक विद्वान के रूप में प्रसिद्ध है। अतः हे ऋषि! शुनःशेप, तू तेरी पितामह वंश परम्परा से दूर मत जा। पुनः तु मेरे समीप आ जा। (ये सुनकर) शुनःशेप ने कहा - (मारने के लिए) तलवार धारी तुम लोगो को देखा है, ऐसी क्रूरता तो राक्षसों में भी नहीं दिखाई देती है। हे अङ्गिरस वंश में उत्पन्न (अजीगर्त) मेरी जगह तू तीन सौ 300 गायें ले ले।

व्याकरण-

- उवाच- वच्-धातु लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- श्रुतः -श्रु-धातु क्त प्रत्ययान्त रूप।

स होवाचाजीगर्तः सौयवसिस्तुद्वै मा तात तपति
पापं कर्म मया कृतम्। तदहं निह्नुवे तुभ्यं
प्रतियन्तु शता गवामिति स होवाच शुनःशेपो यः
सकृत्पापकं कुर्यात्कुर्यादेनत्ततोऽपरम्। नापागाः
शौद्रान्न्यायादसंधेयं त्वया कृतमिति इति।

व्याख्या-शुनःशेप को चाहने वाला अजीर्गत अब अपने पश्चाताप को दिखाने के लिए कुछ कहता है। हे तात पिता के समान पालनीय शुनःशेप मैंने जो पाप किया उससे मेरे मन को उद्वेलित कर दिया है। मैं उस पाप से निवृत होना चाहता हूँ। वो 300 गायें जो पहले मेरे द्वारा अपनाई गई थी वो प्रत्येक गाय तेरे लिए देता हूँ। उसके बाद उस शुनःशेप ने अपनी गाथा से प्रत्युत्तर देता है।जो व्यक्ति धर्मशास्त्र के भय से रहित होकर पाप किया है वो पुरुष उन पापों को प्रवृत्ति के कारण पुनः कर सकता है। तुने जो शुद्र से भी नीच जाति से सम्बंधित क्रुर आचरण किया है उससे मुक्त नहीं हो पायेगा। शूनःशेप ने कहा संधान रहित पाप तेरे द्वारा किया गया है।

अब विश्वामित्र के कृत्य को दर्शाते है -

सरलार्थः- सूयवस पुत्र अजीगर्त ने कहा - वत्स, मैने जो पापकर्म किया है उससे मैं सन्तप्त हुँ। उस पापकर्म को मैं त्यागता हूँ। 30 गायें तुझको देता हूँ। शुनःशेप ने (तब) कहा - जिसने एकवार पापकर्म को किया है वह उस पाप को पुनः कर सकता है। तूने शूद्र तुल्य जो पापाचरण किया है उससे तू मुक्त नहीं होगा। तुमने जो किया है उसके बाद कभी समझौता नहीं हो सकता है।

व्याकरण-

- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।



टिप्पणी

- कृतम्- कृ धातु से क्त प्रत्ययान्त रूप।
- कुर्यात् - कृ-धातु से विधिलिङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

असंधेयमिति ह विश्वामित्र उपपपाद स होवाच
विश्वामित्रो भीम एव सौयवसिः शासेन विशिशा-
सिषुः अस्थान्मैतस्य पुत्रे भूर्ममैवोपेहि पुत्रतामिति,
इति।

व्याख्या-''असंधेयप्रतिसमाधेयं पापमितिद्य'' शुनःशेप द्वारा जो कहा गया है वो विश्वामित्र युक्ति द्वारा कहते है।उसकी बात को पुष्ट करने के लिए ही विश्वमित्र ने इस गाथा को कहा। सूयवस का पुत्र अजीर्गत भीम या भयंकर हस्त गत खडग लिए हुए वह अपने पुत्र को मारने वाला लग रहा था। अतः हे शुनःशेप इस पापी का पुत्र मत होना किन्तु मेरे पुत्रत्व को प्राप्त कर।

शुनःशेप और विश्वामित्र के मध्य सम्वाद होता है -

सरलार्थः- विश्वामित्र ने भी कहा, (उस कर्म के बाद) सन्धि नही हो सकती है। उसने (विश्वामित्र ने) उससे कहा तलवार को हाथ में लिए, पुत्र को मारने की इच्छा से, सूयवस का पुत्र अति भयङ्कर लग रहा था। (शुनःशेप) तू उसका पुत्र मत हो, तू मेरा ही पुत्र रह।

व्याकरण-

- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।

स होवाच शुनःशेपः स वै यथा नो ज्ञपयाऽऽ
राजपुत्रे तथा वद। यथैवाऽऽङिगरसः सन्नुपेयां
तव पुत्रतामिति स होवाच विश्वामित्रे ज्येष्ठो मे
त्वं पुत्रणां स्यास्तव श्रेष्ठा प्रजा स्यात्। उपेया-
दैवं मे दायं तेन वै त्वोपमन्त्रय इति।

व्याख्या-विश्वमित्र द्वारा संबोधित शुनःशेप पुनः गाथा से विश्वमित्र को कहता है। ये विश्वमित्र जो जन्म से क्षत्रिय होते हुए भी अपने तपो महिमा से ब्रह्मत्व को प्राप्त हुआ। ऐसा कहते हुए उसे हे! राजपुत्र इस प्रकार से संबोधित किया। वो जिस प्रकार राज जातीय होते हुए जिस प्रकार से हम सब के सामने ब्राह्मण के रूप में जाने जाते है। उसी प्रकार मैं कैसे होऊ, इस विषय में भी आप कुछ कहो। उसने कहा कैसे बताऊ? मैं अब कैसे अंङिगरस गोत्र का परित्याग करके तेरे पुत्रत्व को स्वीकार करू जिस प्रकार तुमने प्राप्त किया है, आप ही कहो। इस वाक्य का अभिप्रायः पूर्व में संक्षिप्त दर्शित है।

व्याकरण-

- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

- वद- वद्-धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन का रूप।

'पुराऽऽत्मानं नृपं विप्र (प्रं) तपसा कृतवानसि।
एवमङिगरसं मा त्वं वैश्वामित्रमृषे कुरु' इति।

उसके बाद विश्वामित्र ने प्रत्युत्तर में कहा। हे शुन:शेप तू सभी पुत्रों में ज्येष्ठ है ज्येष्ठ हो। तेरी पुत्रदि रूप प्रजा भी और श्रेष्ठ होवे। मुझ विश्वामित्र को देवों ने प्रसन्न होकर देने योग्य पुत्र लाभ दिया तू उसी स्वीकार कर। उसी प्रकार में तुझे पुत्र के समान मानता हूँ।

पुन: शुन:शेप और विश्वामित्र के मध्य वृत्तांत दर्शाते है -

सरलार्थ:- तब शुन:शेप ने कहा, हे राजपुत्र, आप जैसे (राजवंशीय होते हुए भी) मेरे पास (ब्राह्मणरूप में) है उसी प्रकार मैं भी अङिरस: होते हुए भी कैसे आपके पुत्रत्व को प्राप्त कर पाऊंगा, आप ही बताओ। तब विश्वामित्र ने कहा - (हे शुन:शेप) मेरे सभी पुत्रों में तुम ही ज्येष्ठ होओ, तेरे पुत्र भी श्रेष्ठत्व को प्राप्त करे। देवों ने जो मुझे पुत्र भार समर्पित किया है वो तू लेवे। इसीलिए मैं तुझे पुत्र रूप में स्वीकार करता हूँ।

व्याकरण-

- कृतवान्- कृ-धातु से वतु-प्रत्ययान्त रूप।
- कुरु- कृ-धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन का रुप।

स होवाच शुन:शेप: संज्ञानानेषु वै ब्रूयात् सौहार्द्याय
मे श्रियै। यथाऽहं भरतऋषभोपेयां तव पुत्रतामि-
त्यथ ह विश्वामित्र: पुत्रनमन्त्रयामास मधुच्छन्दा:
शृणोतन ऋषभो रेणुरष्टक:। ये के च भ्रातर:
स्थ नास्मै ज्यैष्ठ्याय कल्पध्वमिति इति।

व्याख्या-विश्वामित्र द्वारा प्रलोभित शुन:शेप अपने कार्य की दृढ़ता के लिए कहते है। आपके पुत्रों में मेरे विषय में एकमत जानने के लिए सभी को बुलाओ। जो ज्येष्ठ भातृत्व का व्यवहार करे। और फिर मैं भाइयों के अतिस्नेह से सौहार्द्य और धनलाभ को प्राप्त कर सकूं। हे भरतवंश श्रेष्ठ विश्वामित्र आपके पुत्रत्व को प्राप्त करूँ जिसके लिए उन पुत्रों के अग्रज रूप में स्वीकार किया जाऊ। फिर विश्वामित्र ने सभी पुत्रों को बुलाकर कहा। जो मधुच्छन्दा, ऋषभ, रेणु, अष्टक नाम के है। हे पुत्रों मेरी आज्ञा सुनों। तुम सभी भ्राता इस शुन:शेप को ज्यैष्ठ मानो और अपने में ज्येष्ठत्व का अभिमान मत करो। जिससे कि तुम सभी में ये ज्येष्ठ होकर रह सके

अब विश्वामित्र के पुत्रों का वृत्तान्त कहते है -

सरलार्थ-उस शुन:शेप ने कहा - हे भरतर्षभ, आपके पुत्रों को एक साथ में बुलाओ , जिससे कि मैं आपके पुत्रत्व को प्राप्त करू। जिससे मेरा सौहार्द लाभ और श्रीलाभ होवे। इसके बाद विश्वामित्र ने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा- हे मधुच्छन्द, ऋषभ, रेणो, अष्टक, सुनों। तुम्हारे ये जो भ्राता है उनमें शुन:शेप ज्येष्ठ रूप में माने जाए।

टिप्पणी

व्याकरण-

- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- ब्रूयात्- ब्रू- धातु से विधिलङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- कल्पध्वम् - कल्प-धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष बहुवचन का रूप।

तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्र आसुः पञ्चाश-
देव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः पञ्चाशत्कनीयांसः इति।

व्याख्या- मधुच्छन्द नामक कोई पुत्र मध्यम है, उससे ज्योष्ठ और कणिष्ठ, जो 50-50 है इस प्रकार उसके सौ पुत्र है।

उनमें ज्येष्ठों का वृत्तान्त कहा है -

सरलार्थः-उस विश्वामित्र के सौ पुत्र थे, (उनमें) 50 मधुच्छन्द से ज्येष्ठ और 50 मधुच्छन्द से कनिष्ठ थे।

व्याकरणम्-

- ज्यायांसः - अयम् अनयोः अतिशयेन वृद्धः प्रशस्यः वा। ज्यादेशः। ज्या+ईयसुन्। ईयसुन् प्रत्ययान्तं पुंलींग प्रथमा बहुवचन का रूप।
- कनीयांसः - अयम् अनयोः अतिशयेन युवा अल्पो वा। कनादेशः। कन्+ईयसुन्। ईयसुन् प्रत्ययान्त पुल्लिंग प्रथमा बहुवचन का रूप।

तद्ये ज्यायांसो न ते कुशलं मेनिरे ताननु व्याज-
हारान्तन्वः प्रजा भक्षीष्टेति त एतेऽन्ध्रा पुण्ड्राः
शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो वैश्वा-
मित्र-दस्यूनां भूयिष्ठाः इति।

व्याख्या- उन सौ पुत्रें में जो 50 मधुच्छन्द से ज्येष्ठ है वे शुनःशेप को विश्वामित्र के पुत्रत्व रूप में कुशलरूप से नही मानते है अर्थात भली प्रकार से स्वीकार नहीं करते है। उन 50 ज्येष्ठों को लक्ष्य करके विश्वमित्र ने व्याहरण शापरूप वाक्य कहा। हे ज्येष्ठ पुत्रों तुमने मेरी आज्ञा का उलंघन किया अतः प्रजा पुत्रादि चण्डालादि रूप नीच जाति-विशेष को प्राप्त हो जावे। वे सात इसप्रकार है अन्ध्रत्वादि पांच प्रकार की नीचजाति विशेष होते है। इति शब्द से और भी नीच जाति विशेष सभी का ग्रहण होता है। उद्गातोऽन्त उदोन्तोऽन्यन्तनीचजातिस्त्र भवा ऊदन्त्याः। वे बहुत है अनेक विध है वैश्वामित्र अर्थात विश्वमित्र संतति सभी दस्युओं की जातियों में प्रधान है।

सरलार्थ-और जो उनमें ज्येष्ठ है उन्होनें इससे पूर्णरूप से नहीं स्वीकार किया। उनके लिए विश्वामित्र ने अभिशाप वाक्य कहा -तुम्हारे पुत्र शूद्रत्व को प्राप्त करे। उनमें अन्ध्र, पुण्ड्र,

शवर, पुलिन्द्, मूतिव इत्यादि ने शूद्रत्व को प्राप्त किया। विश्वामित्र के वंश ने उत्पन्न हुए ये सभी विविध जातियों के दानवों में प्रधान है।

व्याकरण-

- भूयिष्ठाः –अतिशय रूप से। बहु+इष्ठन्। भ्वादेशे युक् च। प्रथमा बहुवचन का रूप है।

स होवाच मधुच्छन्दाः पञ्चाशता सार्धं यन्नः
पिता संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम्। पुरस्त्वा
सर्वे कुर्महे त्वामन्वञ्चो वयं स्मसीति इति।

व्याख्या–कनिष्ठपुत्रणां पञ्चशाता सह मधुच्छन्दोनामकः स मध्यमः पुत्रः शुनःशेपं प्रत्येवमुवाच। हे शुनःशेप नोऽस्माकं पिता विश्वामित्रे यत्कार्यं त्वदीयज्येष्ठपुत्रत्वरूपं संजानीते सम्यग्जानात्यङ्गीकरोति तस्मिन् कार्ये वयं तिष्ठामहे तत्कार्यमङ्गीकुर्मः। सर्वे वयं त्वा शुनःशेपनामानं त्वां पुरस्कुर्महे पुरस्कृत्य ज्येष्ठं कृत्वा वर्तामहे। त्वामन्वञ्चः शुनःशेपमनुगच्छतः स्मसि भवाम इत्युक्तवान्।

ज्येष्ठो का वृत्तान्त कहकर मधुच्छन्द से कनिष्ठों का वृत्तान्त कहा गया–

सरलार्थः–उस मधुच्छन्द ने पचास के साथ कहा –हमारे पिता ने जो आदेश दिया है हम उसका पालन करेंगे। हम आप ही को अग्रज रूप तथा ज्येष्ठ भ्रातृ रूप में मानकर आचरण करेंगे।

व्याकरण-

- संजानीते– सम् उपसर्ग पूर्वक ज्ञा– धातु से लट्–लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- तिष्ठामहे– स्था– धातु से उत्तम पुरुष बहुवचन में वैदिक रूप।
- कुर्महे– आत्मनेपद पक्ष में कृ– धातु से लट्–लकार उत्तम पुरुष बहुवचन का रूप।

अथ ह विश्वामित्रः प्रतीतः पुत्रंस्तुष्टाव इति।

व्याख्या– अब मधुच्छन्द सहित 50 कनिष्ठ पुत्र को शुनःशेप के ज्येष्ठ पुत्रत्व अङ्गीकरण के बाद उस विश्वामित्र ने इनके दृष्टिकोण को या इनकी बात को अपने अनुकूल है, ऐसा मानकर प्रीतिपूर्वक पुत्रें को गाथाओं द्वारा कहा।

यहाँ विश्वामित्र का वृत्तान्तबताया गया है –

सरलार्थः– इसके बाद में विश्वामित्र (पुत्र वाक्य में) विश्वास करके उनको सांत्वना प्रदान करने के लिए ऐसे बोले –

व्याकरण-

- स्तुष्टाव- ष्टुञ्-धातु से लिट्-लकार उत्तम पुरुष द्विवचन का रूप।

ते वै पुत्रः पशुमन्तो वीरवन्तो भविष्यथ।
ये मानं मेऽनुगृहूणन्तो वीरवन्तमकर्त मा इति।

व्याख्या-हे मधुच्छन्द प्रमुख कनिष्ठ पुत्र तुमने मुझे मेरे मत को अनुगृहित और अनुकूलता से स्वीकार करके इस विश्वामित्र को वीरवान अर्थात स्वधर्म(शूरपुत्र) से युक्त किया वे ही इसी प्रकार बहुविध पुत्र युक्त और बहुविध अनुकूल पुत्र युक्त होंगे।

प्रथम गाथा कहते है -

सरलार्थ-मेरे जिन पुत्रों मेरे वाक्य को अङगीकार करके मुझे वीर पुत्रवान किया है। वे ही अनुकूल पुत्र युक्त और बहुविध पुत्र युक्त होंगे।

व्याकरण-

- वीरवन्तः - वीर प्रातिपदिक से मतुब प्रत्यय होने पर प्रथमा बहुवचन का रूप।
- पशुमन्तः - वीर प्रातिपदिक से मतुब प्रत्यय होने पर प्रथमा बहुवचन का रूप।
- भविष्यथ - भू (सत्तायाम्) धातु से लट्-लकार मध्यम पुरुष बहुवचन का रूप।

पुर एत्रा वीरवन्तो देवरातेन गाथिनाः।
सर्वे राध्याः स्थ पुत्र एष वः सद्विवाचनम्। इति।

व्याख्या- गाथिन शब्द से विश्वामित्र के पिता को कहा गया है। हे गाथि पौत्र तुम सबके पूर्व में होने वाला मुख्य देवरात के साथ तुम सब भी वीरवान श्रेष्ठ पुत्रयुक्त हो। सभी पुरुषो द्वारा तुम आराध्य हों। हे पुत्रों! मधुच्छन्द आदि अनेक को ये देवरात सुवाचन से सन्मार्ग का विशेष अध्यापन कराएगा।

दुसरी गाथा कहते है -

सरलार्थ- हे गाथिवंशीय! तुम्हारे से पूर्व विद्यमान देवरात के साथ तुम भी वीरपुत्र विशिष्ट होवों, आप सभी पूज्य हों। हे पुत्रों! ये देवरात ही तुमको सदुपदेश देगा।

व्याकरण-

- वीरवन्तः - वीर प्रातिपदिक से मतुब प्रत्यय होने पर प्रथमा बहुवचन का रूप।
- स्थ - अस्-धातु से लट्-लकार मध्यम पुरुष बहुवचन का रूप।

एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित। युष्मांश्च
दायं म उपेता विद्यां यामु च विद्मसि। इति।

व्याख्या- हे कुशिका- कुशिकन नाम के मेरे पितामह के सम्बन्धित मधुच्छन्द आदि सुनो -ये देवरात तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता है। उस देवरात का तुम सभी अनुगमन करो। मेरा देने योग्य धन तुमको और देवरात को प्राप्त होवे। और जो कोई भी वेदशास्त्रादि रूप विद्या में जानता हूँ वो भी तुम सभी को प्राप्त होवे।

तृतीय गाथा कहते है -

सरलार्थ- हे कुशक गोत्र में उत्पन्न पुत्रों, यह वीर देवरात है, तुम सब उसका अनुगमन करो। मेरा जो धन और शास्त्रदि ज्ञान है वो तुम सभी प्राप्त करो।

व्याकरण-

- विद्मसि- विद्-धातु से लट्-लकार उत्तमपुरुष बहुवचन का रूप। वैदिक में मसि प्रयोग होता है।

ते सम्यञ्चो वैश्वामित्रः सर्वे साकं सरातयः।
देवराताय तस्थिरे धृत्यै श्रैष्ठ्याय गाथिनाःइति।

व्याख्या- हे विश्वामित्र-विश्वामित्र के अर्थात मेरे पुत्र, ये गाथिना -गाथिपौत्र तुम सभी सम्यक बुद्धि से युक्त, देवरात के साथ धनसंपत्ति से युक्त हो, देवराताय-मेरे श्रेष्ठपुत्र देवरात को धारण करने से, युष्मत्पोषणं श्रैष्ठ्याय-तुम्हारे मध्य में और श्रेष्ठत्व के रूप में स्वीकृत किया।

चौथी गाथा कहते है -

सरलार्थः- हे विश्वामित्र पुत्रों, हे गाथि पौत्रें, तूम सभी भली-भांति बुद्धिसम्पन्न हो, तुम सभी देवरात के साथ धन सम्पदा के भोक्ता होवें, क्योंकि तुमने देवरात को श्रेष्ठ रूप में स्वीकृत किया।

अधीयत देवरातो रिक्थयोरुभयोर्ऋषिः।
जह्नुनां चाऽऽधिपत्ये दैवे वेदे च गाथिनाम्। इति।

व्याख्या-इक् स्मरण इति धातुः। अधीयत स्मृतिकारैर्महर्षीभिः स्मर्यते। कथमिति तदुच्यते। अयं देवरातो द्वामुष्यायणत्वादुभयोरजीर्गताविश्वमित्र्योः संवन्धिनि ये रिकथे धने तर्योऋषिद्रष्ट्रा। तदुभयमर्हतीत्यर्थः। अजीगर्तस्य कूटस्य ऋषिर्जह्संज्ञकस्तस्य वंशे जाताः सर्वे जहरुवस्तेषां चाऽऽधिपत्ये स्वामित्ये देवरातो योग्यः। तथा दैवे देवसंवन्धिनी यागादिकर्माणि वेदे च मन्त्ररूपे समर्थः। गाथिनामस्मत्पितृसंशोत्पन्नानां च सर्वेषामधिपत्ये योग्यः।

पांचवी गाथा को कहा-

सरलार्थ- देवरात और ऋषि दोनों सम्पदा के अधिकारी होकर जह्णु वंशीयों के आधिपत्य की शक्ति से, गाथि वंशीयों के दैवकर्म से, वेदज्ञान के योग्य इत्यादि द्वारा ख्याति प्राप्त करेंगे।

टिप्पणी

व्याकरण-

- अधीयते - अधि उपसर्ग से अध्ययनार्थक इङ्-धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

तदेतत्परऋक्शतगाथां शौनःशेपमाख्यानम्।इति।

व्याख्या- कस्य नूनं निधारयेत्यान्ताः सप्ताधिकनवतिसंख्यका ऋचस्त्वं नः स त्वमित्यादिकास्तिस्र ऋच एवमृचां शतम्। परःशब्दोऽधिकवाची। पूर्वोक्तदृक्शतात्-परोऽधिका एकत्रिंशत्संख्यका यं न्विममित्याद्या गाथा यस्मन्नाख्याने तदेतत्परऋक्शतगाथम्। शुनःशेपेन दृष्टाः सप्ताधिकनवतिसंख्यायुक्ता ऋचो याः सन्त्यन्येन दृष्टास्तश्र ऋचो याः सन्ति ब्राह्मणे प्रोक्ता एकत्रिशदगाथाविशेषा ये सन्ति तैः सर्वैरुपेतं हरिश्चन्द्रो ह वैधस इत्यादिकं सर्वं शुनःशेपविषयमाख्यानम्।

उनके आख्यान में राजसूय यज्ञ का विनियोग दर्शाया गया है -

सरलार्थ- सौ ऋचाओं से और कुछ गाथाओ से युक्त ये शुनःशेप का उपाख्यान है।

व्याकरण-

- आख्यानम्- आङ्- उपसर्ग पूर्वक अदादिगणीय ख्या धातु से ल्युट का रूप है।

तद्धोता राज्ञेऽभिषक्ताऽचष्टे। इति।

व्याख्या-राजसूय यज्ञ में अभिर्षेचनीय कर्म में जब राजा अभिषिक्त होता है तब उस राजा के लिए यह आख्यान होता कहे।

अब यहां होता के कर्तव्य का वर्णन किया जा रहा है -

सरलार्थ-अभिषेक हुए राजा को होता ये उपाख्यान कहें।

व्याकरण-

- आचष्टे- आङ्- उपसर्ग पूर्वक चक्षिङ्- धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।

हिरण्यकशिपावासीन आचष्टे हिरण्यकशिपावा-
सीनः प्रतिगृणाति यशो वै हिरण्यं यशसैवैनं
तत्समर्धयति। इति।

व्याख्या-होता जब-जब उपाख्यान कहता है तब, हिरण्यकशिपौ- सुवर्णनिर्मीत धागों से र्निष्पादित कशिप(आसन पर) वो होता बैठता है।और उस आख्यान में बीच बीच में अध्वर्यु हिरण्य आसन पर विराजित होकर संबोधित करता है। हिरण्य यश का हेतु है अतः उसको यश भी कहते है। तथा इसीलिए राजा को यशस्वी और समृद्ध करता है।

शुन:शेपोपाख्यान-3

अधवर्यु द्वारा बोले गए संबोधनों की विशेषता दिखाते है -

सरलार्थ- होता स्वर्ण निर्मित आसन पर बैठते हुए ये आख्यान कहता है। अध्वर्यु भी स्वर्ण निर्मित आसन पर बैठते हुए पुन: उच्चारित करते है। हिरण्य अर्थात सोना यश का हेतु है और यश से ही राजा समृद्ध होता है।

व्याकरण-

- आचष्टे- आङ्-उपसर्ग पूर्वक चक्षिङ्- धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- प्रतिगृणाति- प्रति उपसर्ग से क्र्यादिगणीय गृ धातु से लट में तिप होकर रूप बना।
- समर्धयति- सम उपसर्ग पूर्वक णिजन्त ऋधु (वृद्धौ) अर्थक धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।

ओमित्यृच: प्रतिगर एवं तथेनि गाथाया ओमिति
वै दैवं तथेति मानुषं दैवेन चैवैनं तन्मानुषेण च
पापादेनस: प्रमुञ्चति। इति।

व्याख्या-होत्रा प्रयुक्ताया एकैकस्या ऋचोऽन्तेऽधवर्योरोमित्येतादृश: प्रतिगरो भवति। ओमित्येतच्छन्दोरूपं दैवं देवैवङ्गीकारार्थे प्रयुज्यते। तत्तथेत्यन्तं (तथेति) मानुषं मनुष्या अङ्गीकारे तथेतिशब्दं प्रयुञ्जते। तत्तेन प्रतिगरेण दैवेम मानुषेण चाधर्वयुरेनं राजानं पापादैहिकादकपकीर्तिरूपादेनसो मरकहेतोश्च प्रमुञ्चति प्रमुक्तं करोति।

यज्ञ के विषय में उपाख्यान करके यज्ञीय निरपेक्ष पुरुषार्थ का विधान करते है -

सरलार्थ- होता द्वारा प्रत्येक ऋचा के बाद ओम् और प्रत्येक गाथा के बाद उसका पुन: कथन करे। ओम् शब्द दैव है, तथा शब्द मानव है, दैव और मानव कहने से राजा को पार लौकिक और ऐहिक समस्त पापों से अध्वर्यु मुक्त करवाता है।

व्याकरण-

- प्रमुञ्चति- प्र उपसर्ग पूर्वक मुच् धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

तस्माद्यो राजा विजिती स्यादप्ययजमान आख्या-
पयेतैवैतच्छौन:शेपमाख्यानं न हास्मिन्नल्पं चनैन:
परिशिष्यते। इति।

व्याख्या- जिसके उपाख्यान को पाप प्रशमन का हेतु कहा है उसको यजमान भी, राजा विजिती- विजय प्राप्त राजा हो, यदि वो भी इस शून:शेपख्यान को कहे।उस राजा को कोई ब्राह्मण उपाख्यान कहे। तथा सति - इससे उस राज्य में थोड़ा भी पाप नही परिशिष्ट रहता है अर्थात सम्पूर्ण पापों का नाश हो जाता है।

टिप्पणी

अख्यान के बाद अब दक्षिणा को बताते है -

सरलार्थ-इसके बाद उस राजा ने विजय प्राप्त की, वो यजमान होकर भी यदि शुन:शेप के आख्यान को बोलता है तो उसके पापों का कण भी अवशिष्ट नहीं रहता है।

व्याकरण-

- स्यात् - अस्-धातु से विधिलिङ-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- परिशिष्यते - परि उपसर्ग पूर्वक शास्(अनुशिष्टौ) अर्थ वाली धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

सहस्रमाख्यात्रे दद्याच्छतं प्रतिगरित्र एते चैवाऽऽ-
सने श्वेतश्चाश्वतरीरथो होतु:। इति।

व्याख्या-योऽमाख्यात होता तस्मै क्रत्वर्थदक्षिणामन्तरेणोपाख्यान-प्रयुक्तां दक्षिणां गोसहस्ररूपां दद्यात्। प्रतिगरित्रेऽधवर्यवे गोशतं दद्यात्। ये हिरण्यकशिपुरूपे द्वे स्त एते अपि ताभ्यामेव दद्यात्। अश्वतरीभ्यां संकीर्णज्ञातियुक्ताभ्यामधिकशक्तिभ्यां युक्तो रथोऽश्वतरीरथ:। स च रजतेनालं -कृतत्वाच्छ्वेत:। सोऽपि तादृशो होतुर्देय:।

पूर्वमयज्ञसंयुक्तं कल्पो विजयिनो राज्ञोऽभिहित:। इदानीं पुत्र्कामानामपि (सर्वेषामपि) विधत्ते-

सरलार्थ-जो आख्यान को कहते है उसको 1000 गायें देनी चाहिए और जो संबोधन करे उसे 100 गायें देनी चाहिए। वे दोनों हिरण्य से युक्त होते है अत: उनको सुवर्ण भी देना चाहिए। श्वेत अश्वों से युक्त रथ होता को देना चाहिए।

व्याकरण-

- दद्यात्- दा-धातु से विधिलिङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- होतु:- होतृ प्रातिपदिक षष्ठ्यन्त का रूप है।

पुत्रकामा हाप्याख्यापयेरल्लँभन्ते ह पुत्राँल्लभन्ते ह
पुत्रान्॥18॥इति।

व्याख्या- ये पुत्र कामना वाले हैं, वे इस प्रसिद्ध उपाख्यान को ब्राह्मण मुख से सुने। वे पुत्र से लाभान्वित होते है। (अभ्यासोऽभ्यायसमाप्त्यर्थ:)।

सरलार्थ- पुत्र की कामना वाले लोग भी आख्यान को पढ़ते है। इससे उनको पुत्रलाभ होता है।

व्याकरण-

- लभन्ते- लभ्-धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।

पाठगत प्रश्न

130. ऋत्विज ने किसको अनुष्ठान समाप्त करने के लिए कहा?

131. शुन:शेप किसकी गोद में बैठा ?

132. उसके बान्धव कौन हो गये ?

133. कितनी गायें उसको दी ?

134. विश्वामित्र के कितने पुत्र थे ?

135. किससे 50 ज्येष्ठ और कनिष्ठ थे ?

136. विश्वामित्र में किसके लिए अभिशाप वाक्य कहे ?

137. विश्वामित्र ने कनिष्ठ पुत्रों के लिए क्या कहा ?

138. गाथिन: शब्द किसकी और संकेत करता है?

139. कौन गाथि वंशीयों के लिए सदुपदेश देगा ?

पाठसार

इस पाठ में शुन:शेप उपाख्यान का पांचवे खण्ड का वर्णन किया गया है। इस खण्ड में जो कहा गया है उसको सार रूप से कहते है। इस खण्ड में शुन:शेप को विश्वामित्र पुत्र के रूप में स्वीकार किया। वस्तुत शुन:शेप अजीगर्त का पुत्र था, उसके अपने पिता की क्रूरता को देखकर विश्वामित्र का पुत्र रूप को स्वीकार किया है। विश्वामित्र में भी उसको पुत्ररूप से स्वीकार किया है। विश्वामित्र के सौ पुत्र था। उनमे पचास पुत्रो ने शुन:शेप को भाई के रूप में स्वीकार नही किया। उससे विश्वामित्र ने उनको अभिशाप दिया। पुन पचास पुत्रो ने उसे भाई के रूप में स्वीकार किया है।

पाठान्त प्रश्न

140. शुन:शेप उपाख्यान के तीसरे पाठ का सार संक्षेप से लिखो।

141. ''तमृत्विज उचुस्त्वमेव......सहस्रादिति'' मन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

142. ''अथ ह शुन:शेपो..... कापि लेयवाभ्रवा:'' इस मन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

143. ''स होवाचाजीगर्त:....शतानि त्वमवृणीथा मदङ्गिर'' इस मन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

144. ''स होवाचाजीगर्त:.... त्वया कृतमिति'' मन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

145. ''असंधेयमिति ह विश्वामित्र......पुत्रतामिति'' मन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

146. ''स होवाच शुन:शेप: .....त्वोपमन्त्रय'' इस मन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

147. ''स होवाच शुन:शेप:....ज्यैष्ठ्याय कल्पध्वमिति'' इस मन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

148. ''तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं...'' इत्यादिमन्त्रों का सरलार्थ और प्रसङ्ग का वर्णन करो।

149. ''स होवाच मधुच्छन्दा:.....वयं स्मसीति'' इस मन्त्र की सरलार्थ और प्रसङ्गका वर्णन करो।

150. ''ते वै पुत्रा: पशुमन्तो ...'' इत्यादिमन्त्र की सरलार्थ और प्रसङ्गका वर्णन करो।

151. ''एष व: कुशिका वीरो...यामु च विद्मसि'' इस मन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

152. अजीगर्त को अवलम्ब करके एक लघु कथा लिखो।

153. शुन:शेप को अवलम्बन करके एक लघुप्रबन्ध लिखो।

154. विश्वामित्र को आश्रित करके लघुप्रबन्ध लिखो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

155. ऋत्विज ने शुन:शेप को अनुष्ठान की समाप्ति के लिए कहा।

156. विश्वामित्र के गोद में बैठा।

157. कपिल गोत्र में उत्पन्न वभ्रुगोत्रीय उसके बान्धव हुए।

158. उसको 300 गायें दी।

159. 100 पुत्र थे।

160. मधुच्छन्दस:।

161. जिन्होंने अपने पिता के वाक्य असमीचीन रूप में समझे थे।

162. तुम सभी बहुविध पुत्र युक्त और बहुविध अनुकूल पुत्र युक्त होवों।

163. विश्वामित्र के पिता को कहता है।

164. देवरात ने।

14.2 शुनःशेप उपाख्यान का सार

शुनःशेप उपाख्यान अत्यन्त विशाल तीन पाठो में लिखा गया है। प्रसङ्ग से उसको एक जगह एकत्रित करके नीचे दिया गया है वैदिक साहित्य का मण्डन करने वाले ब्राह्मणों में श्रेष्ठ अनेक आख्यान से समृद्ध ऐतरेय ब्राह्मण है। इस ब्राह्मण के तैतीसवें अध्याय में राजसूय यज्ञ के वर्णन अवसर पर शुनःशेप का जो आख्यान उपलब्ध होता है, वह आधुनिक काल में भी प्रसङ्गिक है। इस आख्यान के तीन अंश है। प्रथम भाग में हरिश्चन्द्र नारद संवाद, दूसरे भाग में हरिश्चन्द्र वरुण संवाद, तीसरे भाग में हरिश्चन्द्र पुत्र रोहित अजीगर्त का पुत्र शुनःशेप ऋषि विश्वामित्र संवाद है। सम्पूर्ण आख्यान में तीस गाथा है।

इक्ष्वाकुवंश में हरिश्चन्द्र नाम का राजा था। उसकी सौ पत्नियों के होने पर भी वह सन्तान रहित था। एक बार उसके महल की तरु पर्वत नारद नाम के दो ऋषि आये। राजा अपनी दुर्दशा प्रकट करते हुए ऋषि नारद से कहा - विवेकि मनुष्य आदि प्राणि विवेकहीन पशु पक्षी आदि सम्पूर्ण जीवकुल भी सन्तान की कामना करते है -इसका क्या कारण है। तब नारद दशगाथा के द्वारा इस प्रश्न का सुंदर उत्तर देते है - ''वह एक ही प्रश्न को दश प्रकार से कहते है। नारद कहते है की यदि पिता जीव दशा में पुत्र के मुख का दर्शन करता है, तो वह वैदिक और लौकिक ऋण से मुक्त होता है। और ऋण मुक्त होने पर उसको अमृत की प्राप्ति होती है। वह अपने ऋणसमूह को पुत्र में आदान कर सकता है। पुत्र के जन्म से पितर कुल प्रसन्न होता है, क्योकि सम्पूर्ण पार्थिव सुख से पुत्रलाभ अधिक सुखप्रद है। ये बहुत प्राचीनकाल से ही प्रसिद्ध सभी के द्वारा और अनुभव सिद्ध मत है। उससे वैयाकरण भी अर्द्ध मात्र कम होने पर पुत्र के उत्पन्न होने के समान उत्सव मनाते है - ''अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सव इव मन्यन्ते वैयाकरणाः''। पुत्र रहित पिता बहुत सम्पन्न होने पर भी दुःख विघ्न रहते है। मनु संहिता आदि धर्म शास्त्रों में कहा गया है - पुत् नाम का एक भंयकर घनघोर अन्धकार से आच्छादित नरक है। पुत्र उस नरक से पितर को पार कर सकता है। अत वह पुत्र है। ''पुंनाम नरकात् त्रायते स पुत्रः'' यह पुत्रशब्द की व्युत्पत्ति है। वहाँ पर मल-अजिन-श्मश्रु-तपः -इन चार प्रतीक के द्वारा नारद ने भारतीय चार आश्रम व्यवस्था का निर्देश किया। ये चार आश्रम निष्फल होते है, यदि संसार में सन्तान नही हो तो। पुत्रहीन समाज में निन्दा को प्राप्त होता है, पुत्र के होने पर हर जगह प्रशंसा को प्राप्त होता है। अतः पुत्र लाभ अत्यन्त आवश्यक है। कन्या सन्तान भी प्रशंसा के योग्य है (कृपणं ह दुहिता, 33।1)। केवल पुत्र ही नही कन्या भी पिता के सम्मान को आगे बढ़ाती है। क्योकि वः स्वयं ही परमलोक के अमृत स्वरूप और ज्योति स्वरूप है। पति की आत्मा ही पुत्ररूप से जन्मलाभ प्राप्त होता है। पुत्रहीन के लिए सभी अच्छे लोक के द्वारा बांध रहते है। अविवेकि पशु भी इस संस्कार को जानते है। अतः वे प्रयोजन के होने पर सन्तान लाभ में लिए अपनी बहन आदि के साथ सङ्गम आदि करते है। इए दृष्टान्त से नारद ये बोध कराना चाहते हैं की पुत्र केवल इच्छा विषय नहीं है, अपितु ऋणमुक्त करने में यहाँ और परलोक दोनों में सुख दुःख से विमुक्त करने का श्रेष्ठ मार्ग है। इसलिए ही पुत्रहीन राजा हरिश्चन्द्र को पुत्रसन्तान की अत्यन्त आवश्यकता थी। अतः नारद पुत्र लाभ के उपायों को भी महाराज हरिश्चन्द्र को बताये। नारद ने कहा -राजा यदि वरुणदेव से प्रार्थना करके सन्तोष करने में समर्थ हो तो आपका अभीष्ट सिद्ध होगा। नारद के उपदेशानुसार से राजा हरिश्चन्द्र ने वरुण से प्रार्थना की।

टिप्पणी

वर के साथ वरुण ने राजा को एक स्वर्ण मुद्रा भी दी, जो नवजात पुत्र से उसके याग अनुष्ठान को पूर्ण करेगा। पुत्र विरह से पीडित राजा उसके द्वारा सहमत हुए। समय के अनुसार राजा हरिश्चन्द्र ने पुत्र सन्तान को प्राप्त किया। उसका नाम रोहित था। उसके अनुसार राजा हरिश्चन्द्र पुत्र वियोग की इच्छा के भय से अनेक याग देर से करते थे। कभी पुत्र के दश दिन होने दो, कभी पुत्र के दांत उत्पन्न हो जाए, कभी वे दांत गिर जाये, पुन दांत उत्पन्न हो जाए, कभी यह क्षत्रिय की सन्तान है, अत: कुछ धनुर्विद्या आदि की शिक्षा हो ऐसा कहकर प्रत्येक बार वह वरुण का निराकरण करता था। वरुण भी प्रत्येक बार 'यजस्व मानेन' ऐसा कहकर उसकी प्रार्थना को सुनकर दयावश पुन: चले जाते थे। इसी प्रकार सोलह वर्ष बीत गये। एकबार जब कोई उपाय नही शेष रहा तो राजा ने पुत्र को बुलाकर के उसका सम्पूर्णजन्मवृत्तान्त का वर्णन किया। किन्तु तब पुत्र रोहित स्वाधीनचिन्तन आदि करने में समर्थ था। अत: वह वरुण की मुद्रा लेकर के धनुष बाण आदि से सज्जित होकर जंगल में घुमने के लिए निकल गया। राजा मुद्रा से रहित हो गए थे। क्रुद्ध वरुण राजा हरिश्चन्द्र को श्राप दिया की राजा को कठिन उदररोग होगा। यहाँ हमारे द्वारा यह स्मरण करना चाहिए की वेद में वरुणदेव के श्राप की अत्यधिक प्रार्थना की। ये रोग भी उनके पाशों में से एक अकाट्य है। वह जिस किसी को भी रोग ग्रस्त अथवा पाशग्रस्त करने में समर्थ है। वन में परिभ्रमण शील रोहित को पिता की कठिन रोग की बात को राज्य की तरफ से आ रहे आगन्तुक के वेश में स्वयं देवराज इन्द्र ने ब्राह्मण वेश में मार्ग को रोककर कहा। वह किसी गाथा के द्वारा रोहित को चरैवेतितत्व को समझाया। वह बोला की जो हमेशा विचरणशील घुमने की प्रकृति उस प्रकार का परिश्रमी मनुष्य धन-धान्य से युक्त होता है। उसके दोनों पैर अनेक तीर्थ के पर्यटन करने से लक्ष्मी से मण्डित होते है। वह फलयुक्तवृक्ष के समान धन से युक्त है। आलस्य कर्महीन मनुष्यों के एक जगह स्थित होने पर पापा बढ़ते है। सोने वालो के भाग्य भी सो जाते है। बैठे हुए निष्काम वाले मनुष्य के भाग्य भी स्थाणु के समान एक ही स्थान पर रहते है, कही पर भी जाने में समर्थ नही है। इस प्रकार के मनुष्यों का आलस्य तामसिक प्रवृति का ही है। चलने वाला और परिश्रमी मनुष्य सत्यगुण को धारण करने वाला है। आलसी मनुष्य के मन अनेक प्रकार के बुरे आचरण करने में चालाक है। जिस पत्थर पर से मनुष्य चलते है, उस पर घास उत्पन्न नही होता है। इसी प्रकार कर्मरत मनुष्य कभी भी बुरे आचरण में प्रवृत नहीं होगा। 'चरन् वै मधु विन्दति' यह ब्राह्मण का कथन है। वह दृष्टान्त के द्वारा दिखाता है की सूर्य का श्रेष्ठ होना (सूर्यस्य पश्य श्रेमाणम्) उसका आलस्य से रहित परिक्रम करना ही उसका श्रेष्ठ होने को प्रकट करता है। इस प्रकार इन्द्र के उपदेश को सुनकर छ: वर्ष तक वही पर रोहित स्थित रहा।

एक बार वन में वह किसी दरिद्र भूख से पीडित ब्राह्मण परिवार को प्राप्त हुआ। परिवार के मुखिया का नाम अजीगर्त है। उसके तीन पुत्र है शुन:पुच्छ, शुन:शेप,और शुनोलाङ्गूल। लोभी दरिद्र ब्राह्मण रोहित से सौ गायो को स्वीकार करके मध्यमपुत्र शुन:शेप को रोहित के लिए देता है। वरुणदेव ने भी क्षत्रिय सन्तान के स्थान पर ब्राह्मण सन्तान से विहित याग का समर्थन किया। उसके अनुसार ही सवनीय से पुरुष पशु के द्वारा शुन:शेप ने याग प्रारम्भ किया। पुरुषमेध याग में पुरुष का लकड़ी के खम्भे से बन्धन किया जाता है। किन्तु यहाँ पर शुन:शेप के बन्धन करने में कोई भी आगे नहीं बढ़ा क्योंकि यह कर्म बहुत ही अमानवीय है। किन्तु यहाँ पर भी शुन:शेप के पिता अजीगर्त सौ गायों के बदले अपने पुत्र को लकड़ी के खम्भे से बंधन किया। परन्तु मारने में भी कोई आगे नही बढ़ा। क्योकि मनुष्य का वध करने में कोई भी उद्यत नहीं

था। वहाँ पर भी आङ्गिगर ने धन के लोभ में अजीगर्त को पुत्र के वध करने के लिए उद्यत किया। देश के राजा श्रद्धेय ऋषियों के और अपने पिता के कठोर आचरण से भयभीत शुनःशेप ने देवो को स्मरण किया। यहाँ पर शुनःशेप ने अपने असीमधैर्य को स्थिर किया और मानसिक शूक्ति विद्या इत्यादि को अच्छी प्रकार से प्रकट किया। क्रम से प्रजापति ने वह्नि सविता वरुण विश्वदेव दोनों अश्विनि कुमारों की और इन्द्र इत्यादि देवों की अनेक प्रकार के मन्त्र से स्तुति और वन्दना की। और बलि के लिए मुक्ति की याचना की। किन्तु किसी ने भी उसकी सहायता नहीं की। अन्त में देवी उषा ममता क्रान्त शुनःशेप को छोड़ दिया। केवल इतना ही नहीं राजा का भंयकर उदररोग भी चला गया। बन्धन से शुनःशेप मुक्त हुआ। इस प्रकार रोहित शुनःशेप संवाद समाप्त हुआ।

उसके चित्त आकर्षक को तीसरे पर्व में आरम्भ करते हैं। शुनःशेप का विशिष्ट सामर्थ्य को देखकर अनुष्ठान कारि ऋत्विज आश्चर्य में पड़ गए। इन ऋत्विजो में प्रधान विश्वामित्र थे। वे शेष सभी याग के अवशेष भाग समाप्ति का भार शुनःशेप के लिए दिया। विश्वामित्र ने अत्यधिक स्नेह से उसे अपनी गोद में ग्रहण किया। और अपने पुत्ररूप से ग्रहण किया। उसका नाम देवरात वैश्वामित्र हुआ। इन सब को देखकर अजीगर्त ने पुन अपने पुत्रको वापस लौटाने के लिए विश्वामित्र को कहा – ''ऋषे पुनर्मे पुत्रं देहि'' इति। पुत्र जैसे वंश त्याग करके नही जाते वैसे ही प्रयत्न किये। किये कर्मो के करने पर वह आत्मा से रोष को प्रकट किया। और प्रयोजन होने पर तीस गाये और सौ पुत्रो को देने के लिए तैयार है। किन्तु तब शुनःशेप को मेरी बुद्धि स्वीकार नहीं करेगी। वह निर्दय पिता की कठोर भाषा से निन्दा की। उस प्रकार से आङ्गिगरस शुनःशेप देवरात वैश्वामित्र हुआ।

यहाँ पर भी आख्यान समाप्त नहीं हुआ। महर्षि विश्वामित्र केवल शुनःशेप को पुत्ररूप से ग्रहण ही नहीं किया अपितु अपने सौ पुत्रों के मध्य में शुनःशेप को पचास पुत्रो से बड़े भाई के रूप में स्वीकार किया। ये पचास मधुच्छन्दा इसकी अपेक्षा से बड़े थे और अन्य पचास उसकी अपेक्षा से छोटे थे। देवरात वैश्वामित्र के शुनःशेप का स्थान मध्यवलत था, मधुच्छन्दा के उपर। यहाँ पर ही समस्या का आरम्भ हुआ। जो मधुच्छन्दा इसकी अपेक्षा से बड़े थे, वे शुनःशेप को पुत्र के रूप में स्वीकार नहीं किया (न ते कुशलं मेनिरे)। इसलिए उन्होंने विद्रोह किया। उनके द्वारा उन सभी विद्रोहियों का विश्वामित्र ने अपने पुत्र के अधिकार से उन्हें वचित कर दिया। केवल इतना ही नहीं, कुलीनता के रहित होने से और विद्या के अभाव से वे क्रम से अधोगति को प्राप्त हुए। उनका वंश दस्यु कहलाया। ब्राह्मण ने उनका कुछ वंशपरिचय दिया –जैसे अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, मुतिब इत्यादि। अब ये कुछ इनमे से प्रदेश के नाम से अथवा कुछ जातिरूप से प्रसिद्ध है। अन्य पुत्रों के लिए विश्वामित्र के द्वारा आशीर्वाद की वर्षा हुई। वह उनके लिए धनवान वीरवान हो –इत्यादि अनेक प्रकार के आशीर्वाद दिया और वे ही विश्वामित्र के सम्पत्ती के उत्तराधिकारी होगे ये भी जान लिया गया। शुनःशेप द्वैत उत्तराधिकार को प्राप्त किया। उसने आङ्गिगरस गाथी ये दोनों प्राप्त की। उसके दरिद्रता अध्यवसायनिष्ठाविद्याधैर्यसहिष्णुता इत्यादि गुण सार्थकमण्डित हुए।

चौदहवां पाठ समाप्त

टिप्पणी

15

विश्वामित्र-नदी संवाद

प्रस्तावना

जैसे किसी भवन की भित्ति होती है वैसे ही भारतीय संस्कृति की भित्ति वेद हैं। अतः संस्कृत साहित्य में वेदों का स्थान सबसे श्रेष्ठ है। भारत में धर्म व्यवस्था वेदाधारित ही है। वेद धर्म के निरूपण में स्वतन्त्र भाव से प्रमाण है, स्मृति आदि तो वेद मूलक ही हैं। अतः श्रुति और स्मृति के विरोध में श्रुति ही मान्य है। न केवल धर्म की मूलकता से ही वेद समादृत है, अपितु इस विश्व में सर्वप्राचीन ग्रन्थ भी ये ही हैं। प्राचीन धर्म समाज-व्यवहार-आदि के वस्तु ज्ञान के लिए श्रुति ही सक्षम है। ''विद्यन्ते धर्मादयः पुरुषार्थाः यैः ते वेदाः''। सायण ने तो अपौरुषेय वाक्य को वेद कहा है। इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार के लिए जो अलौकिक उपाय बताता है वह वेद होता है। कारिका –

''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।।''

वेद चार होते हैं। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद। वहाँ ऋग्वेद में अनेक रसपूर्ण संवाद सूक्तहैं। वैदिक कथा सहित्य में विश्वामित्र-नदी कथा एक अन्यतम कथा है। इस प्रकार ऋग्वेद में अनेक सूक्त कथोपकथन की प्रधानता वाले दिखते हैं। अतः यह कथोपकथन संवाद नाम से प्रसिद्ध है। कथोपकथन में विश्वामित्र-नदी कथा अतीव मनोरम है। यहाँ शुतुद्रु और विपाशा नदी की कथा है। उनकी सृष्टी की कारण क्या है। उनका सृष्टि कर्ता कौन है? विश्वमित्र के साथ नदीयों की क्या वार्ता हुई इत्यादि इस पाठ में प्रस्तुत है।

उद्देश्य

इस पाठको पढ़कर आप सक्षम होंगे–

- वैदिक साहित्य का इतिहास जान पाने में;

- मुनि-ऋषीयों का चारित्रिक वर्णन जान पाने में;
- वैदिक युग में जो नदियाँ थी उनके विषय में जान पाने में;
- किस लिए नदीयों का सृजन किया उनका क्या कारण था जान पाने में;
- मन्त्र का संहिता पाठ जान पाने में;
- मन्त्र का पदपाठ जान पाने में;
- स्वयं ही मन्त्रों की व्याख्या कर जान पाने में;
- स्वयं ही मन्त्रों का अन्वय कर पाने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण को जान पाने में;

15.1 मूलपाठ

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वेइव विषिते हासमाने।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते॥1॥

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे॥2॥

अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु संचरन्ती॥3॥

एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति॥4॥

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः॥5॥

इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम्।
देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः॥6॥

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं 100 तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत्।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः॥7॥

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते॥8॥

टिप्पणी

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः॥9॥

आ ते कारा शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते॥10॥

यदङ्ग त्वा भरता संतरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम्॥11॥

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।
प्र पिन्वमाध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम्॥12॥

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत।
मादुष्कृतौ व्येनसान्यौ शूनमारताम्॥13॥

15.1.1 व्याख्या

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वेइव विषिते हासमाने।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते॥1॥

पदपाठ– प्र। पर्वतानाम्। उशती इति। उपस्थात्। अश्वे इवेत्यश्वेऽइव।
विसिते इति विऽसिते। हासमाने इति॥ ग्रावाऽइव। शुभ्रे इति।
मातरा। रिहाणे इति। विऽपाट् शुतुद्री। पयसा। जवेते इति॥1॥

अन्वय– पर्वतानाम् उपस्थात् विपाट्शुतुद्री उशती, विषिते अश्वेइव, हासमाने शुभ्रे मातरा रिहाणे पयसा प्र जवेते।

व्याख्या –कुशिक पुत्र विश्वामित्र घूमते घामते विपाट और शुतुद्री नदियों के किनारे पहुंचे। उन नदियों में अगाध जल था। अतः नदियों को पार करने की इच्छा करने वाले विश्वामित्र ने नदियों से प्रार्थना की। प्रथम के तीन मन्त्रों द्वारा विश्वामित्र नदियों की स्तुति करते हैं। विपाट् (आधुनिक व्यास) और शुतुद्री (आधुनिक सतलज) ये दोनों नदियाँ पहाड़ से निकल कर पानी से भरपूर होकर वेग से समुद्र की तरु उसी प्रकार दौड़ी जा रही हैं, जिस प्रकार दो घोड़ियाँ बन्धन से मुक्त होने पर प्रसन्नता के कारण हिनहिनाती हुई इधर-उधर वेग से भागती हैं, अथवा दो गायें अपने बछड़ों की तरफ वेग से दौड़ती हैं॥

सरलार्थ–

(विश्वामित्र नदी के प्रति कहते हैं कि) पर्वत की गोद से निकल कर (समुद्र को उद्देश्य करके) गमन लिप्सा से (परस्पर) स्पर्धिनी के रूप में दोड़ती हुई, दो घोड़ियाँ बन्धन से मुक्त होने पर प्रसन्नता के कारण हिनहिनाती हुई इधर-उधर वेग से भागती हैं, अथवा दो गायें अपने बछड़ों की तरफ वेग से दोड़ती हैं ऐसा प्रतीत होता है।

व्याकरण -

- शती-वश्-धातु से शतरि ङीप्। ग्रहिज्या इत्यादि सूत्र से संप्रसारण से उशती बनता है।
- उपस्थात्- उप पूर्वक स्था-धातु से क प्रत्यय में उपस्थ बनता है। उसके पञ्चमी एकवचन में।
- विषिते-वि पूर्वक षिञ्-धातु से क्त प्रत्यय में विषित। तथा उसका स्त्री लिङ्ग प्रथमा द्विवचन में यह रूप बनता है।
- हा समाने-हस्-धातु से शानच में हसमान। तथा उसके स्त्री लिङ्ग प्रथमा द्विवचन में यह रूप बनता है।
- शुभ्रे- शुभ्-धातु से र प्रत्यय करने पर स्त्रीलिङ्ग प्रथमाद्विवचन में यह रूप बनता है।
- रिहाणे- लिह धातू से शानच में लस्य छन्दसि आदेशे से न को ण आदेश से स्त्री लिङ्ग प्रथमा द्विवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- जवेते-जङ् धातु से लट् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रेछ्व

पदपाठ- **इन्द्रेषिते इतीन्द्रऽइषइवे। प्रऽसवम्। भिक्षमाणे इति। अच्छ। समुद्रम्। रथ्याऽइव। याथः समाराणे इति सम्ऽआराणे। ऊर्मिऽभिः। पिन्वमाने इति। अन्या। वाम्। अन्याम्। अपि। एति। शुभ्रे इति**

अन्वय- इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाने समुद्रम् अच्छा रथ्येव याथः। (हे) शुभ्रे! समारणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने वाम् अन्या अन्याम् अति एति।

व्याख्या- हे नदीयों! 'इन्द्रेषिते' इन्द्र के द्वारा प्रेरित होकर 'सं आराणे' एक दूसरे के अनुकूल चलती हुई तथा 'उर्मिभिः पिन्वमाने' अपनी लहरों से आसपास के प्रदेशों को तृप्त करती हुई तथा 'प्रसवंभिक्षमाणे' उन उपजाऊ प्रदेशों में धान्य की उत्पत्ति को उत्तम बनाती हुई 'शुभ्रे' तेजस्वी तुम दोनों 'रथ्या इव' रथ से जाने वाले रथियों के समान 'समुद्रं अच्छा याथः' समुद्र की तरफ सीधी जाती हो। 'वां' तुम में से 'अन्या' एक'अन्यां अप्येति' दूसरी से मिलती है।

सरलार्थ-इन्द्र से प्रेषित, प्रवाह की भिक्षयित्री, और दो सारथियों की तरह समुद्र को उद्देश्य करके (तुम दोनों) दोड़ती है। हे शुभ्रजले, (तुम दोनों) यौग पद्य से जाती हो, ऊर्मियों के द्वारा दौड़ते हुए परस्पर परस्पर एक दुसरे के प्रति जाती हैं।2

व्याकरण -

- इन्द्रेषिते- इन्द्रेण इषिते, इष्-धातु से क्त प्रत्यय इडागम करने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- भिक्षमाणे- भिक्ष-धातु से शानच करने पर यह रूप सिद्ध होता है।

- प्रसवम्- प्रपूर्वक सू-धातु से अप्प्रत्यय करने पर प्रसव सिद्ध होता है।
- रथ्या- रथ्यास्य इदम् तस्येदम् इस अर्थ में रथाधत् इस सूत्र से यत् प्रत्यय करने पर रथ्य सिद्ध होता है।
- याथः-या-धातु से लट् लकार मध्यम पुरुष द्विवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- समाराणे-सम्पूर्वक आपूर्वक ऋ गतौ धातु से कानच में गुण में यह रूप सिद्ध होता है।
- पिन्वमाने-पिवि धातु से शानच् नमागम मुकागम में यह रूप बनता है।

अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु संचरन्ती॥3॥

पदपाठ- **अच्छ। सिन्धुम्। मातृऽतमाम्। अयासम्। विऽपाशम्। उर्वीम्। सुऽभगाम्। अगन्म वत्सम्ऽइव। मातरा। संरिहाणे इति सम्ऽरिहाणे। समानम्। योनिम्। अनु। संचरन्ती इति सम्ऽचरन्ती॥3॥**

अन्वय- मातृतमां सिन्धुम् अच्छ अयासम्, उर्वीं सुभगां विपाशाम् अगन्म। मातरा वत्समिव संरिहाणे समानं योनिम् अनु सञ्चरन्ती (अगन्म)।

व्याख्या-जिस प्रकार दो गाये बछड़े को चाटती है उसी प्रकार एक ही उदिष्ट स्थान समुद्र की तरफ दौड़ती आती जाती है इनमे अत्यंत प्यार से युक्त तथा समुद्र की तरु बहने वाली शतुद्री के पास गया और अति विशाल और उत्तम ऐश्वर्यवाली विपाशा के पास भी गए।

सरलार्थ - जिस प्रकार दो गाये अपने बछड़े को चाटने के लिए उसकी तरफ भागती है उसी प्रकार ये दोनों नदिया अपने एक ही उदिष्ट स्थान समुद्र की तरु भागती है ये दोनों ही माता के समान लोगों का पालन करती है विशाल और ऐश्वर्यशाली हैं।

व्याकरण

- मातृतमाम्-अतिशयेन मातरम्। अतिशय अर्थ में तमप् प्रत्यय है।
- अयासम्- या-धातु से लुङ् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में।
- सुभगाम्- शोभनः भगः यस्याः ताम्।
- संरिहाणे- सम्पूर्वक लिह्-धातु से शानच करने पर लकार के स्थान में रकार आदेश और नकार के स्थान में णकार करने पर।
- अगन्म- गम्-धातु से लुङ् उत्तम पुरुष द्विवचन में यह रूप बनता है।
- सञ्चरन्ती- सम्पूर्वक चर्-धातु से शतरि ङीप् करने पर प्रथमा द्विवचन में यह रूप बनता है। पदान्त ईकार प्रगृह्य है।

पाठगत प्रश्न

165. पर्वत की गोद से कौन सी नदी प्रवाहित होती है?

166. कौन इस प्रकार की नदी प्रवाहित किया गया है?

167. पिन्वमाने इसकी व्युत्पत्ति लिखो।

168. इन्देषिते इसका क्या अर्थ है?

169. विपाशा नदी के तट पर कौन आये?

170. संरिहाणे इसकी व्यत्पत्ति लिखो।

एना वयं पयंसा पिन्वंमाना अनु योनिं देवकृंतं चरंन्तीः।
न वर्तंवे प्रसवः सर्गंतक्तः कियुविप्रों नद्यों जोहवीति॥4॥

पदपाठ- **एना। वयम्। पयंसा। पिन्वंमानाः। अनु। योनिम्। देवऽकृंतम्। चरंन्तीः न। वर्तंवे। प्रऽसवः। सर्गऽतक्तः। किम्ऽयुः। विप्रः। नद्यः। जोहवीति॥4॥**

अन्वय- एना वयं पयसा पिन्वमाना देवकृतं योनिम् अनु चरन्तीः। सर्गतक्तः प्रसवः न वर्तवे। किंयुः विप्रः नद्यो जोहवीति।

व्याख्या-इसी प्रकार स्तुति में नदी विश्वामित्र के प्रति कहता है। हम नदियाँ इस पानी से प्रदेशों को तृप्त करती हुई देव के बताए गए स्थान की तरफ चली जा रही है बहने के काम में रत रहने वालो हम अपने उद्योग से कभी विराम नहीं लेती हैं फिर यह ब्राह्मण नदियों की क्यों स्तुति कर रहा है।

सरलार्थ- (इस प्रकार की स्तुति करते हुए विश्वामित्र के प्रति नदिया कहती हैं की) इस प्रकार की हम (नदियां) अपनी जलधारा से इन्द्र के द्वारा निर्मित समुद्र की तरफ जाती हैं। स्वभाव से प्रवाहित होने से हमारी गति रोकी नही जा सकती है हमारी गति बिना रुकावट के है। कैसे यह ऋषि नदी की बार-बार स्तुति करता है।

व्याकरण -

- एना- इदम् शब्द का तृतीया एकवचन में, विभक्ति इसको आदेश होने पर।
- देवकृतम्- देव के द्वारा किया गया। कृ-धातु से क्त प्रत्यय करने पर।
- वर्तवे- वृ-धातु से तवेन प्रत्यय करने पर। (वैदिक रूप है)।
- प्रसवः -प्रपूर्वक षू-धातु से अप् प्रत्यय करने पर।
- सर्गतक्तः - सर्गे तक्तः। सृज्-धातु से घञ प्रत्यय करने पर सर्ग। तक् +क्त।

- कियु:- किम् इच्छन् इस अर्थ में क्यच् प्रत्यय करने पर। क्य छन्दसि इससे उ प्रत्यय करने पर।
- जोहविति- पुनः पुनः ह्वयति। यङ् प्रत्यय करने पर द्वित्व होने पर अभ्यास में ज आदेश गुण करने पर संप्रसारण में इडागम गुण और अव आदेश करने पर।

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः॥5॥

पदपाठ- **रमध्वम्। मे। वचसे। सोम्याय। ऋतऽवरीः। उप। मुहूर्तम्। एवैः प्र। सिन्धुम्। अच्छ। बृहती। मनीषा। अवस्युः। अह्वे। कुशिकस्य। सूनुः॥**

अन्वय- (हे) ऋतावरीः मे सोम्याम् वचसे मूहर्तम् एवैः उप रमध्वम्। कुशिकस्य सूनुः (अहम्) अवस्युः बृहती मनीषा सिन्धुम् अच्छा प्र अह्वे।

व्याख्या-विश्वामित्र नदी के प्रति कहते है। 'ऋतावरी'। ऋत-जल को कहते है। उस प्रकार की हे नदियों आप 'मे' विश्वामित्र के सोम का सम्पादन के लिए आप प्रयत्न कीजिए। पञ्चमी अर्थ में तृतीया है। शीघ्र जाने के लिए 'मुहूर्तं' मुहूर्तमात्र की आवश्यकता है। उपपूर्वक रमिरुप संहार अर्थ में है। क्षणमात्र शीघ्र जाना। सामान्य रूप से नदियों को समाहित करने वाली प्रयोजन करने वाली पुरोवति शुतुद्री के प्रति कहते है। 'कुशिक' राजर्षि का पुत्र मैं विश्वामित्र'बृहती' महान 'मनीषा' मन से युक्त स्तुति 'अवस्युः' आत्मा की रक्षा करने के लिए 'सिन्धु' शुतुद्री आपकी विशेष रूप से पूजा करता हूँ। यहाँ निरुक्त में कहा गया है -जल से परिपूर्ण नदियां 'थोड़ी देर के लिए सोम के लिए अथवा सोम संपादन के लिए रोक दीजिये। बहती हुई महान सिन्धु आपको मैं मन से प्रार्थना करता हुआ कुशिक का पुत्र आप को कुछ समय के लिए रुकने के लिए प्रार्थना करता हूँ। कुशिक नाम का राजा हुआ (निरु. 2/25) इति॥

सरलार्थ-(विश्वामित्र नदी के प्रति कहते है) हे नदियों मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ मैं आदर भावना से आपके रुकने के लिए प्रार्थना करता हूँ। आप हमारी हितैशी हो (मैं) कुशिक पुत्र (विश्वामित्र) उच्चै प्रकार से नदी (शुतुद्री का) आह्वान करता हूँ।

व्याकरण -

- ऋतावरीः -ऋतम् यस्याः सा इस अर्थ में मतुप् करने पर छन्दससीवनिपौ इससे वनिप करने पर, वनो र च इससे ङीप् करने पर वन के नकर को रादेश होने पर वा छन्दसि इससे दीर्घ होने पर। उसका सम्बोधन बहुवचन में यह रूप बनता है।
- एवैः- इण्-धातु से इणशीङ्भ्यां वन् इससे वन् प्रत्यय करने पर और गुण करने पर तृतीया बहुवचन में यह रूप बनता है।
- मनीषा-मन का स्वामी मनीषा।

टिप्पणी

- अवस्यु:-अव: आत्मन इच्छति इस अर्थ में सुप् आत्मन क्यच् इससे क्यच् करने पर उसके बाद क्याच् छन्दसि इससे उ प्रत्यय करने पर अवस्यु: यह रूप बनता है।

> **इन्द्रो॑ अ॒स्माँ अ॑रदद्वज्रबाहु॒रपा॑हन्वृ॒त्रं प॑रि॒धिं न॒दीना॑म्।**
> **दे॒वोऽनयत्सवि॒ता सु॑पा॒णिस्तस्य॑ व॒यं प्र॑स॒वे या॑म उ॒र्वीः॥6॥**

पदपाठ- **इन्द्रः॑। अ॒स्मान्। अ॒र॒द॒त्। वज्र॑ऽबाहुः। अप॑। अ॒ह॒न्। वृ॒त्रम्। प॒रि॒ऽधिम्। न॒दीना॑म्॥**
दे॒वः। अ॒न॒य॒त्। स॒वि॒ता। सु॒ऽपा॒णिः। तस्य॑। व॒यम्। प्र॒ऽस॒वे। या॒मः॒। उ॒र्वीः॥6॥

अन्वय- वज्रबाहु: इन्द्र: अस्मान् अरदत्, नदीनां परिधि वृत्तम् अप अहन्। सुपाणि: सविता देव: (अस्मान्) अनयत्। वयं उर्वी: तस्य प्रसवे याम:।

व्याख्या-नदी प्रत्युत्तर में कहती है। हे विश्वमित्र, 'वज्रबाहु:' वज्र से युक्त जिसकी भुजा है वह वज्र बाहु। उस प्रकार का बलवान् 'इन्द्र' ने हम नदीयों का निर्माण किया है। रदति खनति कर्मा। इंद्र ने हमे खोदा। कैसे खोदा इस विषय में कहते है। नदियों को सिमित करने वाले वृत्र को मारो। वरण करने वाले आकाश को वृत्र मेघ कहते हैं। उस प्रकार के मेघ को मारो। उसके मरने पर जल गिरता है। उस प्रकार के मेघ से हमारा निर्माण होता है। इस प्रकार से मेघ के मारने पर हम नदियों का निर्माण किया है। केवल उसने हमारा निर्माण ही नहीं किया, अपितु 'सविता' सभी जगत के प्रेरक'सुपाणि:' शोभन हाथ से हमारी उत्पत्ति की गई है, प्रकाशमान देव इन्द्र हमको लेकर जाते हैं। बादलों को भेद करके उसने हम को जल से परिपूर्ण समुद्र को पूर्ण करो। 'उस प्रकार के सामर्थ्य वाले इन्द्र हम को जल से परिपूर्ण करके ले जाता है। उक्त अर्थ में यास्क कहते है – 'इन्द्र ने हाथ में वज्र धारण किया हुआ है। रदति खनति कर्म। उसने वृत्र को मारकर जल का निर्माण किया है। देवो को ले जाने वाले सुंदर हाथ वाले कल्याण कारी इन्द्र है। 'पाणि: पणायते: पूजाकर्मण: प्रगृह्य पाणी' देवो की पूजा करता है। उसकी आज्ञा से हम प्रवाहित होती है' (निरु. 2/26) इति।

सरलार्थ- हाथो में वज्र को धारण करने वाले इन्द्र ने हम (नदी) को बहाया है। वह (इन्द्र) नदियों के गति में बाधा डालने पर वृत्र(मेघ) को मारा है। सुन्दर हाथों से युक्त इन्द्र हम नदियों को ले जाता है। हम (नदि) उस(इन्द्र की) आज्ञा से ही बहते है।

व्याकरण –

- अरदत्- रद्-धातु से लङ् प्रथम पुरुष एकवचन में।
- अनयत्-नी-धातु से लङ् प्रथम पुरुष एकवचन में।
- याम:-या-धातु लट् प्रथम पुरुष एकवचन में।

पाठगत प्रश्न

171. नदियाँ कहाँ पर जाती है?

172. ऋषि नदी की स्तुति क्यों करता है?

173. भरताः इसका क्या अर्थ है?

174. शीभम् इसका क्या अर्थ है?

175. वज्रबाहु कौन है?

176. वृत्र कौन है?

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं 1०ं तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत्।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः॥7॥

पदपाठ– **प्रऽवाच्यम्। शश्वधा। वीर्यम्। तत्। इन्द्रस्य। कर्म। यत्। अहिम्। विऽवृश्चत्॥ वि। वज्रेण। परिऽसदः। जघान। आयन्। आपः। अयनम्। इच्छमानाः**

अन्वय– इन्द्रस्य तत् वीर्यं कर्म यदलह विवश्चत् शश्वधा प्रवाच्यम्। वज्रेण परिषदः वि जघानः (तदनन्तरम्) आपः अयनम् इच्छमानाः आयन्।

व्याख्या–जो यह इन्द्र है इसने 'अहि राक्षस को मारा, इन्द्र का वह कर्म और बल अनेक तरह से वर्णन करने योग्य है। जब इन्द्र ने अपने वज्र से चारो स्थित असुरों को मारा, तब जल प्रवाह अपने स्थान से समुद्र की इच्छा करता हुआ बहने लगा।।

सरलार्थ–इन्द्र के वे पराक्रमशालि कार्य है जो उसने अहि(वृत्र को) मारा, वह (प्रशंसनीय) ही है। वह वज्र से (जल का प्रतिबन्धक) मेघ को काट डाला। जल अपने मार्ग का अन्वेषण करता हुआ बहाने लगा।

व्याकरण –

- प्रवाच्यम्– प्र पूर्वक वच्-धातु से ण्यत् प्रत्यय करने पर।
- वीर्यम् – वीर्-धातु से यत् प्रत्यय करने पर।
- विवृश्चत् – व्रश्च्-धातु लङ प्रथम पुरुष एकवचन में।
- परिषदः – परि पूर्वक सद्-धातु से क्विप करने पर।
- जघान– हन्-धातु से लिट् प्रथम पुरुष एकवचन में।
- आयन्–इ-धातु से लङ् प्रथम पुरुष बहुवचन में।
- इच्छमानाः –इष्-धातु से शनच् प्रथमा बहुवचन में।

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्र नमस्ते॥8॥

पदपाठः– **एतत्। वचः। जरितः। मा। अपि। मृष्ठाः। आ। यत्। ते घोषान्। उत्ऽतरा। युगानि उक्थेषु। कारो इति। प्रति। नः जुषस्व। मा। नः। नि। करिति कः। पुरुषऽत्रा। नमः। ते॥8॥**

अन्वयः- (हे) जरितः एतद् वचः मा अपि मृष्ठाः यत्ते आ घोषान् उत्तरा युगानि। हे कारो उक्थेषु नः प्रति जुषस्व। मा नः पुरुणत्र नि कः, ते नमः।

व्याख्या-हे(जरितः)स्तोता ! (तेएतत् वचः)अपनी यह स्तुति (मा अपि मृष्ठाः) कभी भूलना मत। (यत्) क्योंकि (उत्तरा युगानि)आगे आने वाले समय में (घोषान्) यह स्तुति प्रसिद्ध होगी हे (कारो) स्तुति करने वाले (उक्थेषु नःप्रति जुषस्व)यज्ञों में हमारी प्रशंसा कर, (पुरुषत्र) पुरुषों के द्वारा प्रवतित कर्मों में (नःमा नि कः)हमारा अनादर मत कर, (तेनमः) तुझे नमस्कार है।।

सरलार्थ-हे स्तुति गायक, इस वाणी का तू कदापि विस्मरण मत कर जो भावी युग के मानव हैं वे इस वचन को सुन सके। हे कवि, स्तुति से मेरा आदर कर। (उक्ति-प्रत्युक्ति से) मनुष्यकोटी में हमें नीचे (नदीः) मत ले जा।8।

व्याकरण -

- जरितः-जृ-धातु से तृच् के सम्बोधन में।
- मृष्ठाः-मृष्-धातु से लुङ् मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- घोषान्- घुष्श्रवणे धातु से लट् लकार प्रथमपुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- कारो- कृ-धातु से उणादी से सम्बोधन में यह रूप सिद्ध होता है।
- जुषस्व- आत्मनेपदी जुष्-धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- कः -कृ-धातु से लुङ् में मध्यम पुरुष एकवचन में यह वैदिक रूप बनता है।
- पुरुषत्र- सप्तम्यर्थ देवमनुष्य पुरुमतर्येभ्यो द्वितीयसप्तम्योर्बहुलम् त्रा प्रत्यय से सिद्ध होता है।

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः॥9॥

पदपाठः- **ओ इति। सु। स्वसारः। कारवे। शृणोत। ययौ। वः। दूरात्। अनसा। रथेन नि। सु। नमध्वम्। भवत। सुऽपाराः। अधःऽअक्षाः। सिन्धवः। स्रोत्याभिः॥9॥**

अन्वयः- ओ स्वसारः कारवे सु शृणोत, दूरात् अनसा रथेन वः ययौ। हे सिन्धवः स्रोत्याभिः निनमध्वम्, अधोअक्षाः सुपाराः भवतः।

व्याख्या-हे (स्वसारः सिन्धवः)भगिनी रूपी नदियों तुम (सु शृणोतु) मेरी बात अच्छी तरह सुनो, मैं (वः) तुम्हारे पास (दूरात् अनसा रथेन ययौ) बहुत दूर से वाहन और रथ से आया हूँ, अतः तुम (कारवे) स्तुति करने वाले मेरे लिए (स्रोत्याभिः नि सु नमध्वं) अपने प्रवाहों के साथ अच्छी तरह झुक जाओ, (सुपाराः)आसानी से पार करने योग्य हो जाओ, (अधोअक्षाः) रथ की धुरा से भी नीचे हो जाओ।।

सरलार्थ- (उसके बाद विश्वामित्र ने नदीयों को कहा) हे नदियों, (मेरी) कवि की वाणी ध्यान से सुनो (क्योंकि) वह तेरे समक्ष बहुत दूरसे रथ के द्वारा आया हुआ है। अपनी जलधारा को हे प्रवहमान नदियों रथ की धुरी से नीचे ले लो, जिससे रथ तरण योग्य हो।9।

व्याकरण-

- ओ- सम्बोधन वाचक निपात।
- शृणोत- श्रु-धातू के लोट् लकार मध्यमपुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।
- ययौ- या-धातु से लिट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- नमध्वम्- नम्-धातु के लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- भवत- भू-धातू के लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न

177. इन्द्र ने किससे वृत्र को मारा?
178. शश्वधा का क्या अर्थ है ?
179. नदी से क्या प्रार्थाना की?
180. मापि मृष्ठाः का क्या अर्थ है?
181. विश्वामित्र किससे आये?
182. नदियों के प्रति विश्वामित्र ने क्या प्रार्थाना की।

15.1.2 मूलपाठ

आ तें कारा शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनंसा रथेंन।
नि तें नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्यां शश्वचै तें॥10॥

पदपाठः- **आ। ते। कारो इति। शृणवाम। वचांसी। ययाथं। दूरात्। अनंसा। रथेंन नि। ते। नंसै। पीप्यमाऽइंव। योषा। मर्यायऽइव। कन्यां। शश्वचै। त इति ते॥10॥**

अन्वयः- (हे कारो) ते वचांसि शृणवाम (यत् त्वं) दूराद् अनसा रथेन ययाथ। पीप्याना इव योषा ते नंसै, मर्याय इव कन्या ते शश्वचैः।

व्याख्या-हे (कारो)स्तोता ! (तेवचांसि शृणवाम) हम तेरी प्रार्थनाओं को सुनती हैं, कि तुम (दूरात् अनसारथेनआ ययाथ) दूर से वाहन और रथ से आए हो। इसलिए जिस प्रकार

(पीप्याना योषा इव) बच्चे को दूध पिलाने वाली माता नम्र हो जाती है, अथवा (कन्यामर्यायशश्वचैः)कोई कन्या पुरुष को आलिंगन देने के लिए नम्र हो जाती है, उसी प्रकार हम (तेनि नंसै) तेरे लिए झुक जाती है।

सरलार्थ- हे कवे, हमने आपकी अनुज्ञा सुनी (क्योंकि) आप दूर से रथ के द्वारा आये हैं। जैसे स्तनवती माता (अपने पुत्र के लिए) और जैसे कोई बालक अपने पिता का आलिङ्गन करता है (वैसे ही) तेरे लिए मैं मेरे नीचे जा रही हूं (जल स्तर स्वल्प करती हूँ)।

व्याकरण -

- श्रृणवाम-शृ-धातु के लट् लकार उत्तम पुरुष बहुवचन का वैदिक रूप है।
- ययाथ- या-धातु से लिट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।
- नंसौ- नम्-धातु से लुङ लकार उत्तम पुरुष बहुवचन यह रूप सिद्ध होता है।
- श्नवचैः -श्वच्-धातु से क्विप् में यह रूप सिद्ध होता है।

यदङ्ग त्वां भरता संतरेयुर्गव्यन्ग्रामं इषित इन्द्रंजूतः।
अर्षादहं प्रसवः सर्गतक्त आ वों वृणे सुमतिं यज्ञियानाम्॥11॥

पदपाठः- **यत्। अङ्ग। त्वा। भरताः। सम्ऽतरेंयुः। गव्यन्। ग्रामः। इषितः। इन्द्रंजूतः अर्षात्। अहं। प्रऽसवः। सर्गतक्तः। आ। वः। वृणे। सुऽमतिम्। यज्ञियानाम॥11।**

अन्वयः- अङ्ग यद् गव्यन् इन्द्रजूतः इषितः भरताः ग्रामः त्वा संतरेयुः सर्गतक्तः प्रसवः अर्षाद् अह। यज्ञियानाम् व सुमतिम् आ वृणे।

व्याख्या- विश्वामित्र ने नदी को उत्तर दिया। हे (अङ्ग)प्रिय नदियों !(यत्)जब (भरताः) भरण पोषण करने वाले मनुष्य (त्वा संतरेयुः)तुम्हें पार करना चाहें, तब (गव्यन् इषितः)तुम्हें पार करने की इच्छा से प्रेरित होकर अथवा (इन्द्रजूतः)इंद्र से प्रेरित होकर (ग्रामः) उन मनुष्यों का समूह (अहः) प्रतिदिन (सर्गतक्तः प्रसवः) बहने वाले प्रवाह को (अर्षात्) पार कर जाए। मैं (यज्ञियानां वः सुमलत आ वृणे)पूजा के योग्य तुम्हारी उत्तम बुद्धियों को मांगता हूँ।

सरलार्थः -हे (नदियों), (तुम्हारी अनुमति प्राप्त हो गयी, अतः) भरत वंशीय(हम) तुम्हें (नदी) पार करेंगे। (तुझसे) अनुज्ञा प्राप्त इन्द्र से प्रेषित समूह को पार करायेंगे। तुम्हारी गति स्वाभाविक रूप से चले। पूत सलिल का मैं समर्थन चहाता हूँ।11।

व्याकरण -

- सन्तरेयुः-सम् पूर्वक तृ-धातु से विधिलिङ् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- इन्द्रजूतः-इन्द्र से जूत।

टिप्पणी

- गव्यन्- गोः से क्यच् करने पर।
- अर्षात्- ऋष्-धातु से लेट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- वृणे- वृ-धातु के लट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।
प्र पिन्वमाध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम्॥12॥

पदपाठः- **अतारिषुः। भरताः। गव्यवः। सम्। अभक्त। विप्रः। सुऽमतिम्। नदीनाम् प्र। पिन्वध्वम्। इषयन्ती। सुऽराधाः। आ वक्षणाः। यात। शीभम्॥12॥**

अन्वयः- गव्यवः भरताः अतारिषुः। विप्रः नदीनाम् सुमतिम् सम् अभक्त। सुराधाः (यूयं) इषयन्तीः प्र पिन्वध्वम्, वक्षणाः आ पृणध्वम्, शीभं यात।

व्याख्या-(गव्यव:भरता:अतारिषु:) पार जाने वाले तथा भरण पोषण करने वाले मनुष्य नदियों के पार उतर गये,(विप्र:नदीनां सुमतिसमभक्त) ज्ञानी विश्वामित्र ने नदियों की उत्तम बुद्धि को भी प्राप्त कर लिया। अब, हे नदियों !(इषयन्ती:सुराधा:)उत्तम अन्नों को पैदा करके उत्तम ऐश्वर्य बढ़ाने वाली तुम (वक्षणा:प्र पिन्वध्वं)नहरों को पानी से भरपूर भर दो, (आ पृणध्वं)अच्छी तरह पूर्ण कर दो, और (शीभंयात) वेग से बहो।

सरलार्थः – पार जाने की इच्छा वाले भरत वंशीय पार उतर गये। ब्राह्मण ने नदियों का समर्थन अच्छी प्रकार से प्राप्त किया। शोभन धनवती (तुम) धन उत्पादन करती हुई अपने स्थान पर ही अच्छी प्रकार से बहो, प्लावित हों, वेग से बहो॥12॥

व्याकरण –

- आतारिषु:-तृ-धातु से लुङ् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- भक्त-भज्-धातु से लुङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- इषयन्ती:- इष्-धातु से णिच् में यह रूप सिद्ध होता है।
- पिन्वध्वम्- पिन्व-धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- पृणध्वम् -पृञ्-धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- यात- या-धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत।
मादुष्कृतौ व्येनसान्यौ शूनमारताम्॥13॥

पदपाठः- **उत्। वः। ऊर्मिः। शम्याः। हन्तु। आपः। योक्त्राणि। मुञ्चत। मा। अदुःऽकृतौ। विऽएनसा। अघ्न्यौ। शूनम्। आ। अरताम्॥13॥**

अन्वयः- आपः ऊर्मिः वः शम्या उद् हन्तु, आपः योक्त्राणि मुञ्चत। अदुष्कृतौ व्येनसौ अघ्न्यौ शूनताम् मा अरताम्।

व्याख्या-विश्वामित्र नदी से पुनः कहते हैं। हे नदियों (वःऊर्मिःशम्याःहन्तु)तुम्हारी लहर यज्ञ स्तम्भ से टकराती रहें, (आपःयोक्त्राणिमुञ्चत) तुम्हारे जल बैलों के जुक्षों को मुक्त करते रहें और इस प्रकार हे (अदुष्कृतौ वि एनसा अघ्न्यौ)कभी दुष्ट कर्म न करने वाली, पाप रहित और हिंसा के अयोग्य नदियों ! तुमसे (शूनंआरताम्)समृद्धि दूर न जाए।

सरलार्थ-हे नदियों प्रग्रह को छोड़ दो। दुष्कृति रहित पापर हित तिरस्कार के अयोग्य ये नदियाँ वृद्धि को प्राप्त न हो॥13।

व्याकरण -

- हन्तु- हन् धातु से लोट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- मुञ्चत- मुञ्च्-धातू से लोट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अरताम्- ऋ-धातु से लुङ लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न

183. प्र पिन्वध्वम् का क्या अर्थ है?
184. समभक्त का क्या अर्थ है?
185. उर्मिका अर्थ क्या है?
186. शून का क्या अर्थ है?
187. विश्वामित्र किसके राज पुरोहित थे?
188. विश्वमित्र किसके पुत्र थे?
189. विश्वामित्रने पौरहित्य से क्या प्राप्त किया?
190. विश्वामित्र किस नदी तट को प्राप्त हुए।
191. विश्वामित्र ने किस नदी तीर को प्राप्त किया।
192. विश्वामित्र नदी के समीप में क्या प्रार्थना की।
193. नदी का निर्माण किसने किया।
194. वृत्रासुर को किसने मारा।

7.2 विश्वामित्र-नदीसंवाद (संक्षेप से)

ऋग्वेद में अनेक रस पूर्ण संवाद सूक्त है। वैदिक कथा सहित्य में विश्वामित्र-नदी कथा एक

महत्वपूर्ण कथा है। इसी प्रकार ऋग्वेद में अनेक सूक्तो में कथनोपकथन की प्रधानता दिखाई देता है। कथनोपकथन को ही संवादनाम से प्रसिद्ध है। संवादविषय में पाश्चात्य पण्डितों के मत में भिन्नता दिखाई देती है। ड ओल्डेन वर्ग के मतानुसार से संवाद प्राचीन उपाख्यान का शेष भाग है। उसके मत के अनुसार से ऋग्वेद के उपाख्यान गद्यात्मक है। ड ज्रोदर आदि पण्डितों के मतानुसार से संवाद वैदिक नाटक का स्वरूप है। 'ड विन्टरनित्स' के मतानुसार से लोकगीत काव्य का यह स्वरूप है। काल में काव्य की उत्पत्ति और नवीन नाटकों की उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार भारतीय साहित्य इतिहास में संवादों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इन संवादों में विश्वामित्र-नदी संवाद अन्यतम महत्वपूर्ण संवाद है। प्राचीनकाल में विश्वामित्र राजा सुदास के पुरोहित थे। विश्वामित्र पौरहित्य से प्राप्त धन को लेकर बैलगाड़ी से विपाशा नदी और शुतुद्री नदी के तट के समीप गए। और उसके बाद नदीपार जाने के लिए जैसे नदि का जलस्तर नीचे होता है, उसके लिए महर्षि विश्वामित्र नदि की स्तुति करते हुए कहते है - बंधन से मुक्त घोड़े जैसे दौड़ते है उसी प्रकार सागर के साथ संगम के लिए पर्वत की गोद से बहती हुई श्रेष्ठ नदी मात्र शुतुद्री विपाशा के समीप आया। तथा विशाल सुन्दर नदियो के तट को प्राप्त किया है। जैसे दो गायें एक ही बछड़े को चाटने के लिए उसकी तरफ दौड़ती हैं उसी प्रकार ये नदियाँ भी सागर संगम के लिए एक ही लक्ष्य में बहती रहती है इस प्रकार की नदियों के तट पर आये। इस प्रकार विश्वामित्र ने नदियो की स्तुति की है। तब विश्वामित्र को उदिष्ट करके नदियाँ कहती है -

नदी-

हम इन्द्रदेव के द्वारा निर्माण करने पर अपनी गति से बहते है। हमारी गति को मत रोकिये। इसका अर्थ है जब वृत्रासुर पृथ्वीनाश के लिए नदियों की प्रवाह धारा को रोक दिया है। तब इन्द्रदेव ने वृत्रासुर को मारकर पर्वत की गोद से इन नदियों का निर्माण किया है। तो फिर किसलिए ऋषि बार-बार नदी की स्तुति करता है। ऋषि पुत्र कुशिक अपनी रक्षा के लिए सोमयुक्त वाणी से नदी को कुछ क्षण के लिए रुकने के लिए प्रार्थना करते है। वज्र हाथों वाले इन्द्र ने नदियों को रोकने वाले वृत्तासुर को मारकर हमें बहने के लिए बाहर लेकर के आये है। इन्द्र ने अहि को मारा यह इन्द्र का पराक्रम युक्त कार्य अवश्य कथन योग्य है। यह ही विश्वामित्र ने नदियों के प्रति कहते है। नदी प्रत्युत्तर में कहते है - हे स्तोता इस स्तुति वचन को कभी भी मत भूलों क्योंकि भावि पुरुष आपके इस स्तुति वचन को सुन सकते है। हे ऋषि स्तुति से केवल मुझ को आदर मत दो अपितु मेरी स्तुति से अलौकिक शोभा भी दीजिये। मैं तुमको नमन करता हूँ। उस विश्वामित्र नदी को बहने के रूप में सम्बोधन करते हुए कहते है -हे सुन्दर बहनों अब मेरे वचन को सुनो, क्योंकि बहुत दूर से यान के द्वारा अथवा रथ के द्वारा अतिक्रमण करके मै तुम्हारे समीप आया हूँ। हे नदियों कुछ नीचे जाओ। अपनी जलधारा को अन्त अथवा कम करके तैरने योग्या होकर बहो -विश्वामित्र के वचन को सुनकर नदी वैसे हुई है। तब विश्वामित्र नदी को धन्यवाद देते हुए अपने परिवार सहित नदी को पार किया है, पार करने के बाद पुनः पूर्व के समान बहने के लिए नदी से प्रार्थना की।

इस प्रकार संवादसूक्त को नाटकीय ओजस्विता के साथ सम्पूर्ण परिपूर्ण तथा कलनात्मक दृष्टि से सुन्दर और सरल है।

पाठसार

प्राचीनकाल में विश्वामित्र राजा सुदास के पुरोहित थे। विश्वामित्र पौरहित्य से प्राप्त धन को लेकर बैलगाड़ी से विपाशा नदी के और शुतुद्री नदी के तट को प्राप्त किया है। अतः नदी पार जाने के लिए जिससे जाने के लिए नदी का जलस्तर नीच होता है उसके लिए महर्षि विश्वामित्र नदियों की स्तुति करते हुए कहते है - प्रबंधन से मुक्त घोड़े जिस प्रकार दौड़ते है उसी प्रकार आप भी सागर संगम के लिए पर्वत की गोद से निकलकर बहती हैं श्रेष्ठ नदी मात्र शुतुद्री विपाशा के तट पर गए। तथा विस्तृत सुन्दर नदी के तट को प्राप्त किया है। जैसे दो गाये एक ही बछड़े को चाटने के लिए उसकी और भागती हैं उसी प्रकार आप सागर संगम के लिए उसकी और दौड़ती है इस प्रकार नदि के तीर पर आये। इस प्रकार विश्वामित्र नदियों की स्तुति की गई है। तब विश्वामित्र को उदिष्ट करके नदिया कहती है -जब वृत्रा सुर पृथ्वीनाश के लिए नदियों की प्रवाह धारा को रोक दिया है। तब इन्द्र देव ने वृत्रासुर को मारकर पर्वत के अङ्क से इस नदी का निर्माण किया है। ऋषि पुत्र कुशिक अपनी रक्षा के लिए सोम युक्त वाणी नदी को क्षण के लिए रुकने के लिए प्रार्थना करता है। वज्र हाथ वाले इन्द्र नदी को रोकने वाले वृत्रासुर को मारकर नदियों को निर्विघ्न बहाता है। इन्द्र ने अहि को मारा यह इन्द्र के पराक्रमयुक्त कार्य को अवश्य कथन योग्य है। यह ही विश्वामित्र नदी के प्रति कहते हैं। नदी प्रत्युत्तर में कहती है हे स्तोता इस स्तुति वचन को कभी मत भूलना क्योकि भावि पुरुष आपकी इस स्तुति वचन को सुन सकते है। हे ऋषि आप केवल हमारी स्तुति से आदर मत करो और स्तुत्ति से अलौकिक शोभा प्रदान कीजिए। मैं तुमको नमन करता हूँ। उसके बाद विश्वामित्र नदी को बहन के रूप में सम्बोधन करते हुए कहते है -हे सुन्दर बहनों अब मेरे वचन को सुनो, क्योंकि बहुत दूर से यान अथवा रथ से अतिक्रमण करके मै तुम्हारे समीप आया हूँ। हे नदियों कुछ नीचे जाओ। अपनी जलधारा को अन्त में सङ्कुचित करके तैरने योग्य होकर बहो - विश्वामित्र के वचन को सुनकर नदी वैसे हुई। तब विश्वामित्र नदी को धन्यावाद देते हुए अपने परिजनो सहित नदी को पार करके और उसके बाद पार करने के बाद पुन पूर्ववत् बहने के लिए नदी से प्रार्थना की।

पाठान्त प्रश्न

195. अपनी भाषा से विश्वामित्र- नदी कथा को लिखो।
196. विश्वामित्र-नदी संवाद का सार संक्षेप से लिखो।
197. प्र पर्वतानामुशती....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।
198. इन्द्रषिते प्रसवं भिक्षमाणे....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

199. अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

200. एना वयं पयसा....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

201. रमध्वं मे वचसे....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

202. इन्द्रो अस्माँ ....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

203. प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

204. ओ षु स्वसारः ....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

205. यदङ्ग त्वा भरताः....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

206. अतारिषुर्भरता....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

207. उद्वः ऊर्मिः शम्या....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर भाग-1

208. विपाशा।

209. शुतुद्रु।

210. पिवि धातु से शानच् नमागम मुकागम करने पर

211. इन्द्र के द्वारा भेजे गये।

212. विश्वामित्र।

213. सम् पूर्वक लिह्-धातु से शानच लकार को रकार आदेश करने पर और नकार को णकार होने पर ये रूप बनता है

उत्तर भाग -2

214. समुद्र की तरफ।

215. पार जाने के लिए।

216. भरत कुल में।

217. शीघ्र।

218. इन्द्र।

219. मेघ।

उत्तर भाग -3

220. वज्र से।

221. सर्वदा।

222. यह स्तुति विलुप्त न हो जिससे भावी काल में भी लोग स्मरण करेंगे।

223. मा विस्मार्षीः।

224. रथ से।

225. जैसे नदी पारंगमन के लिए अधोगामी होती है।

उत्तरकूट-4

226. प्रकर्ष से तर्पण किया।

227. अच्छी प्रकार से प्रार्थना की।

228. तरङ्ग।

229. समृद्धि।

230. सुदास का।

231. कुशिक का।

232. धन।

233. रथ से।

234. शुतुद्रु और विपाशा का।

235. जैसे नदियों का प्रवाह स्तब्ध हो गया हो।

236. इन्द्र के द्वारा।

237. इन्द्र।

पन्द्रहवां पाठ समाप्त

गुरुकुल-शोध-भारती मार्च 2014 अंक 21 (पृ011-19) ISSN 0974 – 8830

वेदार्थ में स्वरशास्त्र की उपादेयता

डॉ.रामप्रकाश वर्णी[१]

स्वर' शब्द को वैयाकरण **'स्वृ-शब्दोपतापयोः'**[२] धातु से 'करण' अर्थ में **'संज्ञा प्रायेण घः**[३] सूत्र से 'घ' प्रत्ययान्त या **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'**[४] सूत्र से 'अच्' प्रत्ययान्त मानकर व्युत्पादित करते हैं। इसे सूपपदक अर्चत्यर्थक एवं गत्यर्थक 'ऋति' धातु से भी निष्पन्न किया जा सकता है। कुछ विचारक स्व-शब्दोपपदक 'राजृ-दीप्तौ' धातु से **'अन्येष्वपि दृश्यते'**[५] के नियम से 'ड' प्रत्यय करके भी इस पद को सिद्ध करते हैं।[६] इसके अनुसार जिससे पदों का अर्थ अवगत होता है उसे 'स्वर' करते हैं। जैसा कि भानु दीक्षित की इस व्युत्पत्ति से स्पष्ट है-**'स्वर्यन्तेऽर्था एभिः स्वराः'**[७]। वैदिकस्वरोच्चारण की दृष्टि से 'स्वर' शब्द की एक और व्युत्पत्ति की जाती है-**स्वर्यत उच्चाधस्तिर्यङ्गभागैरुच्चार्यत इति स्वरः'**।[८] इस प्रकार यह स्वरशब्द अनेक धातुज और अनेकार्थक है। यहाँ जो 'स्वर' शब्द केवल अचों के 'उदात्त' आदि धर्मों का बोधक है उसी के सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है। वैदिक वाङ्मय में 'उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रचय' और 'निघात' भेद से पञ्चविधा स्वरों का व्यवहार दृष्ट होता है। जैसा कि नारदीयशिक्षा के इस वचन से स्पष्ट है-

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितप्रचिते तथा।
निघातश्चेति विज्ञेयः स्वरभेदस्तु पञ्चधा।।[९]

पतञ्जलि ने 'उदात्त, उदात्तर, अनुदात्त, अनुदात्ततर, स्वरित, स्वरितगत-उदात्त' और 'एकश्रुति' ये सात स्वर प्रदर्शित किये हैं।[१०] इस प्रकार स्वरगणना में भेद होने पर भी 'उदात्त, अनुदात्त' और 'स्वरित' ये तीन स्वर ही मुख्य हैं। इन तीनों में भी 'जात्यस्वरित'के क्वाचित्क होने से 'उदात्त, अनुदात्त' रूप केवल दो ही स्वर रहते हैं और इन दोनों में भी शब्दार्थ में भेद उत्पन्न करने वाला एक ही 'उदात्त' स्वर रहता है। अस्तु इनके लक्षण क्रमशः 'उच्चैरुदात्तः,[११] नीचैरनुदात्तः'[१२] और समाहारः स्वरितः[१३] के रूप में सुविदित ही हैं। यास्क ने 'उदात्त'

---

१ एसोशियेट प्रोफेसर, एल.आर.कॉलिज, जसराना जनपद फिरोजाबाद (उ.प्र.)

२. धातुपाठ १/६

३. अष्टाध्यायी ३/३/११८

४. तत्रैव ३/१/१३४

५. तत्रैव ३/१/१०१

६. द्र.-फिट्सूत्राष्टाध्याय्योः स्वरशास्त्राणां तुलनात्मक अध्यनम्-डॉ. धर्मवीरः अध्याय ३ पृ. ४२

७. द्र.-अमरकोषटीका १/६/४

८. द्र.-वैदिकस्वर समीक्षा, पृ. ८

९. नारदीयशिक्षा १/७/१९

१०. द्र.-महाभाष्यम् १/२/३३

११. अष्टाध्यायी १/२/२९

१२. तत्रैव १/२/३०

१३. द्र.-तत्रैव १/२/३१

को 'तीव्रार्थतरमुदात्तः' और 'अनुदात्त' को **'अल्पीयोऽर्थतरमनुदात्तम्'** कहा है।[१४] उदात्तानुदात्त रूप उभयधर्मविशिष्ट 'स्वरित' स्वर को याज्ञवल्क्य ने अधोलिखित सात प्रकार का माना है-

स्वरितश्च जात्याभिनिहितक्षैप्रप्रश्लिष्टतैरो व्यञ्जनम्।
तैरो विरामपादवृत्त इति प्रातिहतस्तथाभाव्य इति नवभेदाः॥[१५]

इन नवभेदों में भी 'जात्यस्वरित' और 'उदात्तवर्णाश्रितस्वरित' ये दो स्वरितभेद ही प्रमुख हैं। शेष भेद उदात्तवर्ण के आश्रय से ही प्रतिपन्न होते हैं। अर्थ की दृष्टि से देखें तो केवल 'जात्य' स्वरित ही प्रधान सिद्ध होता है।

ये सभी स्वर लौकिक संस्कृतभाषा और वैदिकभाषा के अन्तर्गत 'पद' और 'वाक्य' के विशिष्ट अर्थ के अवबोध में बहुत बड़ी सहायता करते हैं। वैदिक संहिताओं में तो ये पदों के स्वरूपनिर्द्धारण में भी अत्यन्त उपकारक सिद्ध होते हैं। इत्थं वैदिक और लौकिक साहित्य में स्वर अधोलिखित तीन रूपों में दृष्ट होते हैं-१. पदस्वर २. समस्तपदस्वर ३. वाक्यस्वर।

१. पदस्वर-'पदस्वर' में 'उदात्तस्वर' की ही प्रधानता होती है शेष अनुदात्तादि स्वर 'उपसर्जन' माने जाते हैं। जैसाकि माघ ने कहा है-

अनल्पत्वात् प्रधानत्वादंशस्येवेतरे स्वराः।
विजिगीषोर्नृपतयः प्रयान्ति परिवारताम्॥[१६]

वेद में स्वर की उपेक्षा से किया गया 'पदपाठ' दूषित माना जाता है। जैसाकि 'शाकल्य' के 'वने न वा यो न्यधायि चाकन्'[१७] इस दूषित 'पदपाठ' से स्पष्ट है। इसी पदपाठ पर आक्षेप करते हुए यास्क ने लिखा है-**'वा इति च य इति च चकार शाकल्यः उदात्तं त्वेवमाख्यातमभविष्यदसुसमाप्तश्चार्थः।'**[१८] आशय यह है कि यदि शाकल्य प्रोक्त उक्त 'पदपाठ' को मान लिया जाये तो उक्त मन्त्रगत 'अधायि' यह क्रियापद **'यद्वृत्तान्नित्यम्'**[१९] के नियम से 'उदात्त' हो जायेगा, जबकि ऋग्वेद संहिता में यह 'अनुदात्त' रूप में उपलब्ध होता है। इसलिए 'वा यः' यह पदविभागरूप 'पदपाठ' अयुक्त है। किंच यहाँ 'यत्तदोर्नित्यसम्बन्धः' के अनुसार 'तत्' शब्द का उल्लेख न होने से वाक्यार्थ भी अपूर्ण ही रहता है।

२. समस्तपदस्वर-जिस प्रकार एकपद में 'प्रकृति' और 'प्रत्ययों' में 'प्रकृति' के ही या 'प्रत्यय' के ही 'उदात्त' की प्रधानता होती है, उसी प्रकार 'समस्तपद' में भी पूर्वपदार्थ या उत्तरपदार्थ की प्रधानता को 'उदात्तस्वर' से ही जाना जाता है। जैसा कि 'वेंकटमाधव' ने लिखा है-

तत्रोत्तरपदार्थस्य प्राधान्यं यत्र वर्त्तते।
उदात्तस्तत्र भवति..............................॥

---

१४. द्र.-निरुक्तम् ४/२५
१५. याज्ञवल्क्यशिक्षा १/७६॥
१६. शिशुपालवधम्-२/९०
१७. द्र.-ऋग्वेदसंहिता१०/२९/१
१८. द्र.-निरुक्तम ६/२८
१९. द्र.-अष्टाध्यायी ८/१/६६

यदि स्वर: पूर्वपदे तदर्थ: स्फुटो भेवत्।
सर्वेष्वेव समासेषु यत्र-यत्र स्वरो भवेत्॥
काशं कुशं वावलम्ब्य स्वरं तत्र स्थापयेत्॥[२०]

अभिप्राय यह है कि यदि 'समस्तपद' के 'उत्तरपद' में 'उदात्तस्वर' हो तो 'उत्तरपदार्थ' की तथा यदि 'पूर्वपद' में 'उदात्तस्वर' हो तो 'पूर्वपदार्थ' की प्रधानता होती है। इस प्रकार समस्तपदों में जहाँ-जहाँ उदात्तस्वर होता है उसी-उसी पदार्थ की प्रधानता जानी जाती है।

३.वाक्यस्वर-वाक्यस्वर के सम्बन्ध में वेंकटमाधव ने लिखा है-

एवं पदे समासे च यत्रोदात्तो व्यवस्थित:।
वर्णे पदे वा तत्रापि काकुरस्तीति निश्चय:।[२१]

अर्थात् 'वाक्यस्वर' में 'क्रिया' आदि पदों में उदात्तादि स्वर देखे जाते हैं। वहाँ जिन वर्णों में उदात्तत्व होता है उनकी ही अर्थावबोधन में प्रधानता होती है। यहाँ पातञ्जलमहाभाष्य का यह स्थल विशेष रूप से द्रष्टव्य है-**'स्थूलपृषतीमाग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेतेति तस्यां सन्देह: 'स्थूला चासौ पृषती च स्थूलपृषती, स्थूलानि पृषन्ति यस्या: सा स्थूलपृषती।' तां नाऽवैयाकरण: स्वरतोऽध्यवस्यतीति यदि पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं ततो बहुव्रीहि: अथ समासान्तोदात्तत्वं ततस्तत्पुरुष इति।'**[२२] अर्थात् **'स्थूलपृषतीमाग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत'** वाक्य में बहुव्रीहि और तत्पुरुष समासों का निश्चय स्वर के आधार पर ही होता है। यदि यहाँ 'पूर्वपद-प्रकृतिस्वर' है तो बहुव्रीहिसमास और यदि 'समासान्तोदात्तस्वर' स्वर है तो 'तत्पुरुषसमास' होगा।[२३] अभिप्राय यह है कि यदि यहाँ समानाधिकरणरूप-कर्मधारय समास मानते हैं तब उसके उत्तरपदार्थप्रधान होने से उक्त वाक्य में 'पृषती' पद की प्रधानता होगी और वह 'अनड्वाहीं' को सम्बोधित करेगा। यदि यहाँ बहुव्रीहिसमास मानते हैं तब उसके अन्य पदार्थप्रधान होने से 'अनड्वाही' कृशा हो या 'स्थूला' कोई भी गौ आलम्भनीय होगी।

वाक्य और समास में स्वरज्ञान के लिए यहाँ कुछ और भी उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

१. **'ब्राह्मण! ग्रामं गच्छ। ब्राह्मणग्रामं गच्छ। ब्राह्मणग्रामं गच्छ'** यहाँ प्रथम वाक्य में 'ब्राह्मण' और 'ग्राम' इन दोनों पदों के उदात्त होने के कारण इन्हें स्वतन्त्र पदरूप में निर्दिष्ट किया गया है। 'सामन्त्रितम्'[२४] के अनुसार ब्राह्मणपद के 'आमन्त्रित' होने से 'आमन्त्रितस्य च[२५] इस सूत्र के द्वारा उसमें आद्युदात्तत्व के होने से सम्बोध्यमान ब्राह्मण का ग्राम के प्रति प्रेषण विवक्षित होता है।

द्वितीय और तृतीय वाक्यों में 'ब्राह्मण' और 'ग्राम' पदों के समस्तपद बन जाने पर 'ग्राम' के 'उत्तरपद' हो जोने से षष्ठीतत्पुरुष समास होता है, यह निश्चित है। अत: 'ब्राह्मणों का जो ग्राम वहाँ जाना चाहिए' यह

---

२०. द्र.-वैदिकस्वरमीमांसा, ले.पं.युधिष्ठिर मीमांसक, पृ. ६४
२१. स्वरानुक्रमणीवेंकटमाधव- १/१/२
२२. द्र.-महाभाष्यम-पस्पशाह्निकम्
२३. द्र.-तत्रैव ६/१/२१७
२४. अष्टाध्यायी २/३/४८
२५. द्र.-तत्रैव ६/१/१९

अर्थबोध होता है।

इस प्रकार तृतीय वाक्य में पूर्वपदरूप 'ब्राह्मण' शब्द के आद्युदात्त होने पर 'ब्राह्मणग्रामः' इस पद से 'ब्राह्मण हैं स्वामी जिसके' यह अर्थ जाना जाता है।[२६] अतः ऐसे ग्राम में जाना यहाँ अभीष्ट है जहाँ का स्वामी ब्राह्मण हो।

२.पाणिनीय व्याकरण के अनुसार 'गन्ता, पक्ता' इत्यादि पदों में प्रकृति और प्रत्ययों के विभाग की कल्पना से क्रमशः गम्'[२७] और 'पच्'[२८] धातुओं से 'तृच्'[२९] धातुओं से प्रत्यय होने पर उसके चित् होने से इन दोनों पदों में 'चितः'[३०] सूत्र से 'अन्तोदात्त स्वर' होता है, किन्तु यदि इन्हीं धातुओं से 'तृन्' प्रत्यय होकर इन्हीं पदों को सिद्ध किया जाये तो प्रत्यय के 'नित्' होने से **'ञिनित्यादिर्नित्यम्**[३१] के नियम से प्रकृति को आद्युदात्तस्वर होता है। उस समय धात्वर्थ की प्रधानता से क्रिया का विशिष्ट अर्थ जाना जाता है।[३२] इसी तथ्य को लेकर माधवाचार्य ने ठीक ही लिखा है-

तृन्तृचोश्चार्थभेदोऽयं प्रकृत्यर्थः स्फुटस्तृनि।
तृचि स्फुटः प्रत्ययार्थः प्रकृत्यर्थोपसर्जनः॥

इस प्रकार वाक्यस्वर में 'गन्ता गच्छति, पक्ता गच्छति' इन दोनों उदाहरणों में तृजन्तपदों के अन्तोदात्त होने से प्रत्ययार्थ की प्रधानाता जानी जाती है। दोनों वाक्यों में 'गच्छति पक्ता, पक्ता गच्छति' इस विपर्यय के होने पर उदात्तस्वरों के आधार पर क्रिया का अर्थ ही मुख्य होता है।

३.'हन्तारौ हतः सर्पम्' इस वाक्य में हन्तृपद के उदात्त होने से हनन-कर्तृत्व का प्राधान्य स्वीकार किया जाता है। भले ही यहाँ सर्प का हनन हो पाये या न हो पाये। इसी वाक्य के वैपरीत्य से 'हतो हन्तारौ सर्पम्' इस रूप में उच्चार्यमाण होने पर 'तिङतिङः'[३३] इस नियम के निरवकाश होने से 'हतः' इस क्रियापद की उदात्तस्वर के कारण प्रधानता स्वीकार की जाती है। जिससे हन्तृकर्तृक सर्प का विहनन अनिवार्यतः सुनिश्चित होता है।

४. **'कृष्णकम्बलमानय'**, **'कृष्णकम्बलमानय'** इन दोनों उदाहरणों में प्रथम वाक्य में 'कृष्णकम्बलः' पद में बहुव्रीहिसमास मानकर **'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्'**[३४] इस सूत्र से 'कृष्ण' इस पूर्वपद में प्रकृतिस्वर के रूप में 'अन्तोदात्तस्वर' दृष्ट होता है। जिससे यहाँ कृष्णकम्बल युक्त किसी व्यक्ति विशेष का आनयन अभीष्ट है, यह अर्थ जाना जाता है, किन्तु **'कृष्णः कम्बलो यस्यासौ कृष्णकम्बलः'** इस बहुव्रीहिसमासात्मक विग्रह के कारण 'कृष्ण' और 'कम्बल' इन दोनों ही पदों की बहुव्रीहिसमास के अन्यपदार्थ-प्रधान होने से प्रधानता लभ्य

२६. द्र.-वैदिकस्वरमीमांसा, पृ. ६५
२७. गम्लृ-गतौ, धातुपाठ १/७०९, डुपचष-पाके १/७२२
२८. अष्टाध्यायी ३/१/१३३
२९. द्र.-वैदिक स्वरमीमांसा, पृ. ६६॥, ६/१/१६३
३०. द्र.-अष्टा० ६/१/९७
३१. वैदिक स्वरमीमांसा, पृ. ६६
३२. ऋग्वेदानुक्रमणी,१/८/८
३३. द्र.-अष्टा० ८/१/२८
३४. द्र.-अनेकमन्यपदार्थेअष-टा. २/२/२४॥, ६/२/१

नहीं हैं। अपितु इससे अतिरिक्त 'कृष्ण: कम्बलो यस्य पुरुषस्य' उसी पुरुष की ही प्रधानता सिद्ध होती है। अत: उक्त स्वर लभ्य नहीं है। सूक्ष्मदृष्टि से विचार करें तो 'कृष्ण' और 'कम्बल' इन दोनों पदों के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा पूर्वपद रूप 'कृष्ण' पद को उत्तरपद का विशेषण मानकर उसकी प्रधानता प्रतिपन्न हो सकती है। इसलिए 'कृष्ण' पद में 'उदात्तस्वर' की मुख्यार्थता का प्रदर्शन करने के लिए उक्त स्वर उच्चारित होता है।

द्वितीय सदृश वाक्य 'कृष्णकम्बलमानय' में 'कृष्णकम्बल:' पद में 'समासान्तोदात्त' स्वर होने से 'कम्बल' पद की प्रधानता होती है 'कृष्ण' पद की नहीं।[३५] इस प्रकार निष्कर्षतया यह कहा जा सकता है कि पद-समास-वाक्यस्वरों में पद का स्वर सुसूक्ष्म होता है।[३६] जैसा कि वेंकटमाधव के इस लेख से स्पष्ट है-

तत्रैकस्मिन् पदे काकुर्देवैरेवावगम्यते।
सूक्ष्मविद्भिः समासस्थः प्राकृतैरपि तिङ्स्वरः॥[३७]

जहाँ लौकिक भाषा में वाक्य आख्यातपद से आरम्भ किया जाता है वहाँ पर आख्यातपद 'उदात्त' होता है और जब वाक्य के मध्य या अन्त में आख्यातपद उच्चारित होता है तब 'तिङतिङ:'[३८] इस नियम से क्रियापद की प्रधानता होती है तथा सुबन्तपद प्रधान माना जाता है।

वेदों में स्वरों की उपादेयता के सम्बन्ध में वेंकटमाधव ने अपनी 'ऋग्वेदानुक्रमणी'के अन्तर्गत 'स्वरानुक्रमणी' में लिखा है-

अन्धकारे दीपिकाभिर्गच्छन्न स्खलति क्वचित्।
एवं स्वरैः प्रणीतानां भवन्त्यर्थाः स्फुटा इति॥[३९]

अर्थात् कोई भी व्यक्ति अन्धेरे मार्ग में दीपक की सहायता से चलते हुए जैसे कोई आघात प्राप्त नहीं है करता इसी प्रकार विद्वज्जजनभी वेदार्थ स्वरों के सहयोग से सन्देहशून्य हो जाते हैं। जैसा कि स्पष्ट है वेदार्थ के अवबोधन के लिए शिक्षा आदि षडङ्ग प्रकृष्टसाधन रूप हैं। उन षड्विध वेदाङ्गों में व्याकरण अर्थविशेष का समाश्रयण करके पदों का अन्व्याख्यान करते हुए पद-पदार्थ का सम्यक् प्रतिपादन करने से वेदार्थ का साक्षात् उपकारक है। इसी व्याकरणशास्त्र का एकदेशभूत 'स्वरशास्त्र' है। व्याकरण तो पदनिष्ठ 'प्रकृति-प्रत्यय' आदि विभाग की कल्पना से कदाचित् अपिहित भी होता है, परन्तु 'स्वर' शब्दों का 'उच्चारणधर्म' होने से सदैव अनपिहित ही रहता है। 'शब्द' और 'स्वर' के तादात्म्य-सम्बन्ध से ही स्वरकार्य प्रचलित होता है। इसी कारण समुच्चार्यमाण पद में 'स्वर' कभी भी अन्तर्हित नहीं होता और इस 'स्वर' के उच्चारण-समकाल में ही उद्भावित हो जाने के कारण अर्थावबोधन में विशेष सुविधा हो जाती है। वेंकटमाधव ने स्वरों के प्रयोजन को बताते हुए लिखा है-

१.मन्यन्ते पण्डितास्त्वन्ये यथाव्याकरणं स्वरम्।

---

३५. द्र.-फिट्सूत्राष्टाध्याय्यो: स्वरशास्त्राणाम्. पृ. ४८
३६. द्र.-वैदिकस्वरमीमांसा, पृ. ६८-६९
३७. ऋग्वेदानुक्रमणी१/२३
३८. अष्टाध्यायी ८/१/२८
३९. ऋग्वेदानुक्रमणी१/८/१२

व्यवस्थितो व्यवस्थायां हेतुः कश्चिन्न विद्यते॥
माधावस्त्वयं पक्षः स्वरेणैव व्यवस्थितः।
अर्थमभीप्सत्..॥[४०]

इसके अनुसार जो कोई व्यक्ति पदों और वाक्यों के वास्तविक अर्थ को जानना चाहता है उसकी जिज्ञासा का सन्तोषजनक समाधान 'स्वर' से ही हो सकता है न कि पद-विभागादिरूप व्याकरण की रीति से। अतः वेंकटमाधव के अनुसार 'स्वर' से ही अर्थ का निश्चय होता है। यह स्वरशास्त्र का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन है। स्वरों की उपेक्षा करके निष्कृष्ट वेदार्थ के विज्ञान हेतु कोई और व्यवस्था नहीं है। इसीलिए माधवाचार्य को भी कहना पड़ा है-

स्वरः प्रसिद्धो बहवस्तन्न चार्थाः प्रकल्पिताः।'
नामाख्यातविभागश्च स्वरादेवावगम्यते॥[४१]

२.'स्वरशास्त्र' का दूसरा प्रयोजन यह है कि नाम और 'आख्यात' रूप पदविभाग भी स्वरों के द्वारा आसानी से प्रतिपन्न हो जाता है। जैसे-किसी स्थल पर 'स कर्त्ता, स कर्त्ता' ये दो समान आकृति वाले' पद होने पर यह सन्देह होता है कि 'कर्त्ता' पद 'नामपद' है या आख्यातपद? यहाँ व्याकरणशास्त्र के अनुसार तो यह 'पद' उभयात्मक है, किन्तु कहाँ इसे नामपद समझा जाये और कहाँ 'आख्यातपद'? इस विचिकित्सा के निवारणार्थ स्वरशास्त्र को छोड़कर व्याकरण के पास और कोई उपाय नहीं है। तदनुसार कर्त्तापद यदि अन्तोदात्त स्वरवाला है तो[४२] 'तृच्' प्रत्ययान्त होने से[४३] वह 'करोतीति कर्त्ता' इस व्युत्पत्ति के अनुसार निश्चित ही 'नामपद' माना जायेगा' आख्यातपद नहीं। यदि यही कर्त्तापद 'तिङतिङः'[४४] इस नियम के अनुसार सर्वानुदात्त है तो वह निश्चित ही 'आख्यातपद' होगा। भले ही इसकी वर्णानुपूर्वी पूर्वोक्त नामपद के समान ही क्यों न हो।[४५] इसलिए 'नाम' और 'आख्यात' पदों के सन्देहस्थलों में उचित समाधान स्वर के द्वारा ही होता है। तद्यथा-ऋग्वेदका यह मन्त्र द्रष्टव्य है-

क्वे दानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान।'[४६]

इस मन्त्र में यह सन्देह होता है कि 'कः' यह सुबन्त है या 'तिङन्त'? इस सन्देह की निवृत्ति केवल स्वर के ही द्वारा होती है। तदनुसार यदि किसी पाद के आदि अथवा मध्य में प्रातिपदिक स्वर 'अन्तोदात्त' हो तो वह पद निश्चित ही सुबन्त माना जायेगा। प्रकृत में 'कः' यह पद 'पाद' के मध्य में वर्तमान 'अन्तोदात्त' पद है। इससे यह निश्चित ही सुबन्त पद है तिङन्त नहीं, यह इस स्वरशास्त्र से स्पष्ट है। इसी रहस्य को और अधिक स्पष्ट करने के लिए एक अन्य मन्त्र भी यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

---

४०. द्र.-तत्रैव १/१/२५
४१. द्र.-माधवानुक्रमणी-उपोद्घात, परिशिष्ट, पृ. ८४
४२. ३/१/१३४
४३. ६/१/१५७
४४. अष्टाध्यायी ८/१/२८
४५. द्र.-वैदिकस्वरमीमांसा, पृ. ९२
४६. ऋग्वेदसंहिता१/३५/७

ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणि कः।'[४७]

इस मन्त्र में प्रयुक्त 'कः' इस पद के सुबन्तत्व और तिङन्तत्व के सम्बन्ध में सन्देह के होने पर 'स्वरशास्त्र' के द्वारा ही निर्णीत होता है कि 'अनुदात्त' होने से यह पद 'आख्यातपद' ही है 'नामपद' नहीं। 'डुकृञ् करणे' धातु से 'लुङ्' लकार मध्यमपुरुष के एकवचन में 'मन्त्रे घस०'[४८] इस सूत्र के द्वारा 'च्लि' का 'लुक्' होकर छान्दस अडाआगम का अभाव होकर 'कः' यह रूप सिद्ध होता है, जो कि 'अकार्षीः' इस लौकिक प्रयोग के स्थान पर वेद में व्यवहृत होता है। इस प्रकार वेद में यह सुबन्तता और तिङन्तता का बोध स्वरों के द्वारा ही सम्भव हो पाता है।

३. विभक्तियों के स्वरों का भी निर्णायक 'उदात्त' आदिस्वर ही होता है, क्योंकि एक अच् वाले व्यञ्जनान्तप्रातिपदिक द्वितीयाविभक्ति के बहुवचन में तथा पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में एक जैसे ही होते हैं। वेद में यह जानना अत्यन्त कठिन होता है कि ये रूप किस विभक्ति और वचन के हैं। इस कठिनाई का निवारण केवल 'स्वर' के द्वारा ही सम्भव है। यह स्वरशास्त्र की एक और महत्त्वपूर्ण उपादेयता है।

अवधेय है कि यदि उपर्युक्त पद 'आद्युदात्तस्वर' वाला हो तो वह निश्चित ही द्वितीयाविभक्ति के बहुवचन का रूप माना जायेगा और यदि उदात्तस्वर प्रत्ययांश में निर्दिष्ट हो तो उक्त रूप 'पञ्चमी' और 'षष्ठी' विभक्तियों के एकवचन का माना जायेगा। जैसे–'वाचः, वाचः, आदि। इसी प्रकारप्रथमा विभक्ति और सम्बोधन में शब्दों की समानता देखी जाती है वहाँ भी इन दोनों विभक्तियों की स्पष्ट प्रतिपत्ति स्वर से ही होती है। तदनुसार यदि पद 'आद्युदात्त' है तो वह निश्चित ही **'आमन्त्रितस्य च'**[४९] इस नियम से सम्बोधनपद माना जायेगा और यदि 'अन्तोदात्त' है तो **'फिषोऽन्त उदात्तः'**[५०] के अनुसार प्रथमा विभक्ति का रूप माना जायेगा। जैसे–

जनासः=मनुष्याः, जनासः=हे मनुष्याः।

देवाः=देवाः, देवाः=हे देवाः॥[५१]

४. शब्द के 'लिंग–निर्धारण' में भी 'स्वर' सहायक होता है, क्योंकि वैदिक वाङ्मय में बहुत से शब्द ऐसे हैं जो पुल्लिंग और नपुंसकलिंग में एक जैसे दिखायी देते हैं। जिन्हें देखकर इन्हें अलग–अलग पहचानना अति कठिन होता है। ऐसे स्थलों में स्वरों की सहायता से ही पुल्लिंग व नपुंसकलिंग का बोध होता है। तदनुसार यदि पद 'आद्युदात्तस्वर' वाला है तो वह निश्चित ही 'नुपंसकलिंग' होगा और यदि वह 'अन्तोदात्त पद' है तो 'पुल्लिंगक' ही होगा। जैसे–रक्षः (नपुंसकल्लिंग) रक्षः (पुल्लिंग)। इसके अतिरिक्त नपुसकलिंगक भावपद में और पुल्लिंग 'कर्तृपद' में जो भेद है। वह भी 'स्वर' से ही जाना जाता है। जैसे–

ब्रह्मन् (न०पु०) प्रार्थनायामर्थे, ब्रह्मन् (पु०लिं०) प्रार्थनाकर्त्ता।

यशंस् (न०पु०) कीर्तिः, यशस् (पु०लिं०) यशस्वी।

---

४७. तत्रैव १/६१/११

४८. अष्टाध्यायी २/४/८०

४९. तत्रैव ६/१/९८

५०. फिट्सूत्र १/१

५१. द्र.–वैदिकस्वरबोधः पृ. १३६

अपस् (नपुं०) कार्यम्, अपस् (पु०लिं०) कार्यकर्त्ता।[५२]

५.वैदिक भाषा में 'स्वरभेद' के कारण अनेकत्र 'अर्थान्तर' का होना भी स्वरशास्त्र की उपादेयता है। जैसे-

हनो वृत्रं जया अप:।[५३]

इस मन्त्रांश में 'जया' यह पद 'आद्युदात्त' है और अथर्ववेद में 'जयो मे सव्य आहित:'[५४] में 'जय:' पद 'अच्प्रत्ययान्त होने से अन्तोदात्त है। यहाँ ऋग्वेदीय प्रथम मन्त्रस्थ 'जया' यह पद लेट्लकार मध्यमपुरुष एकवचन में अवग्रहीत है, क्योंकि 'जय: करणम्' यह नियम यहाँ करण के न होने से प्रवृत्त नहीं होता। इसीलिए इस पद का अर्थ 'अपां जयं प्राप्नुयात्' यह आज्ञात्मक होता है। अथर्ववेदीय द्वितीय 'जय:' पद भावार्थक अच् प्रत्यान्त है, इसलिए इसका अर्थ 'मम वामहस्ते जयो निश्चित:' यह होता है। वेद में यत्र-तत्र समानानुपूर्वीक पदों में स्वरसादृश्य भी देखने को मिलता है वहाँ अर्थ के अभेद में यह सादृश्य ही कारण होता है। जैसा कि माधवाचार्य के इस कथन से स्पष्ट है-

अर्थभेदे शब्दस्य सर्वत्र सदृश: स्वर:।
यदा न तं स्वरं पश्येदन्यथार्थं तदा नयेत्॥[५५]

यह 'स्वरशास्त्र' निश्चय ही शब्द के 'अर्थ' की सन्दिग्धता में अपनी निर्णायक भूमिका निभाता है। इसी कारण 'भ्रातृव्यस्यवधाय' इत्यादि में भूतार्थ का बोध होपाता है। तदनुसार यह 'भ्रातृव्य' पद दो प्रकार का है। एक 'व्यत्' प्रत्ययान्त और दूसरा 'व्यन्' प्रत्ययान्त। 'व्यत्' प्रत्ययान्तशब्द 'मध्यस्वरित' और 'भाई के पुत्र' रूप अर्थ का वाचक है और 'व्यन्' प्रत्ययान्त भ्रातृव्य पद 'आद्युदात्त' होने से 'शत्रु' रूप अर्थ का वाचक है। समानानुपूर्वी वाले इन दोनों पदों का यह अर्थान्तर केवल स्वर के द्वारा ही बोध्य है, अन्य कोई उपाय नहीं है। 'स्वरसिद्धान्तचन्द्रिका' की भूमिका में शिव भट्ट ने स्वरों के प्रयोजन बताते हुए लिखा है कि एक भाषा में उपलब्ध होने वाली विशेषताएँ दूसरी अन्य भाषाओं में नहीं पायी जाती हैं। जैसे संस्कृतभाषा में उपलब्ध होने वाले द्विवचन, स्वर, विभक्ति और लकारादि, द्राविडभाषा में प्राप्त होने वाला णकार। इस प्रकार पूर्वोक्त प्रयोजनों के कारण उन-उन भाषाओं के वर्ण-पद और वाक्यों में निविष्ट होने वाले स्वरों से उक्त विषमताओं की पूर्ति करली जाती है। जैसे-क्रोध, हर्ष, भय, निन्दा आदि को भिन्न-भिन्न ध्वनिओं अर्थात् स्वरों के द्वारा ही जाना जाता है। इसके लिए पाणिनि ने निम्नलिखित सूत्रों का प्रवचन किया है-**'एहि मन्ये प्रहासे लृट्**'[५६] **नन्वित्यनुज्ञैषणायाम्,**[५७] **आङ्प्रातिलोम्ये**'[५८], **आक्रोशे चेलखेट-कटुककाण्डं गर्हायाम्, राजा च प्रशंसायाम्**'[५९]।

---

५२. तत्रैव, पृ. १३८
५३. ऋग्वेद१/८०/३
५४. अथर्ववेदसंहिता १/५०/८
५५. अष्टाध्यायी ६/१/१९६
५६. ऋग्वेदानुक्रमणी१/८/२
५७. अष्टाध्यायी ८/१/४६
५८. तत्रैव ८/१/४३
५९. तत्रैव ८/१/३३

ये सूत्र स्वाभाविक रूप से चित्तविकारों को निमित्त बनाकर स्वरभेदों को बतलाते हैं। इसीलिए शब्दविशेषों में चित्तविकारों के अनुसार ही ध्वनियाँ निश्चित की गयीं हैं-जो कि 'स्वर' के रूप में प्रयुक्त होती हैं।

६.मीमांसक लोगों ने स्वर-विशिष्ट शब्दों के उच्चारण में 'अदृष्ट' रूप विशेष फल की प्राप्ति को भी स्वरशास्त्र का प्रयोजन माना है।[६०]

७.वेद में वाक्य भेद का ज्ञान भी स्वरों के द्वारा ही होता है। जैसे **'पत्नीवन्तं गृहं गृह्णाम्यग्ने पत्नीवरः**'[६१] इस वाक्य में यह स्पष्ट नहीं होता कि अन्तिम दो पद पूर्ववाक्य से सम्बद्ध हैं या उत्तरवाक्य से सम्बद्ध? यहाँ स्वरों को देखकर ही यह निश्चय होता है कि यदि यहाँ 'आमन्त्रित' अनुदात्त्व है तो ये दोनों पद पूर्ववाक्य से सम्बद्ध हैं और 'उदात्तस्वर' है तो ये 'उत्तरवाक्य' से जुड़ते हैं।[६२] इस प्रकार वाक्यभेद-ज्ञान भी स्वरशास्त्र का महत्त्वपूर्ण प्रयोजन है।[६३]

इसलिए प्रत्येक वैदिक और वेदार्थविज्ञानरसिक अध्येता को 'स्वरशास्त्र' का अवगमन करना अत्यन्त आवश्यक है। तभी वे नित्य नूतन वेदार्थमुक्ताओं को अधिगत कर सकेंगे।

---

६०. तत्रैव ६/२/१२५

६१. द्र.-तत्रैव ६/२/६३

६२. द्र.-फिटसूत्रष्टाध्याय्योः, पृ. ५४, ले. डॉ. धर्मवीरः

६३. द्र.-तत्रैव

द्वितीय अध्याय

वैदिक छन्दो मीमांसा

(क) यदक्षरं तत् छन्दः -

शोध ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में पाणिनी के अनुसार चदि आहलादने दीपतओ च धातु से असुन प्रत्यय करने पर छन्दयति आह्लादित करे या ज्ञान का प्रकाश करे उसे छन्दस कहा गया है ऐसी चर्चा की गयी है किन्तु छन्दस का एक अन्य अर्थ भी यास्क ने किया है छादनात छन्दः वैदिक ताहमय में छादयन्ति हवा एवम् छन्दांसि पापात्कर्मणः छादकत्व ही छन्द का सामान्य लक्षण है मन्त्रतेज छन्दः स्वरूप कवच से आच्छादित होता है।

यह वैदिक छन्दो का छादकत्व अत्यन्त गम्भीर विषय है इसी की ओर ऋक्प्रातिशाख्य की यह उक्ति संकेतिक करती है की यदक्षरं तत् छन्दः संक्षेप में इसका अभिप्राय यही है कि प्रत्येक अच्छर छन्दो गुण विशिष्ट है क्योंकि वह ज्ञान राशि का अच्छादन करता है या संगोपन करता है वेद में इसीलिये इस बात पर आग्रह किया गया है कि विना छन्दो ज्ञान के वेद मंत्र का स्वाध्याय न करना चाहिए क्योंकि छन्दो विहीन वेद का स्वाध्याय निष्फल तो होता है साथ ही पुण्य की अपेक्षा पाप का कारण होता है।

श्रुति ने तो छन्द ज्ञान के बिना वेदाध्ययन भी पाप बतलाया है जैसे योध्वा अविदितार्षेसछन्दो दैबलविनियोगेन ब्राह्मणेन मन्त्रेणयाज यति वाऽध्यापयति वास स्थाण्श्रुं वर्च्छति गर्त्त वा पघते प्रमोयते वा पापीयाप भवति यातवामान्यस्यच्च्छदांसि भवति" महर्षि कात्यायन ने भी कहा है - छन्दासि गायत्यादीन एतान्यविदित्वा योऽधीतेऽनुक्नूते जपति जुहांति यजते तस्य निर्वोर्य यातयाम भवति। अथान्तसुश्रगर्त वा पद्य ते स्थाधुंवर्च्छति प्रमीयते वा पापीयान भवति। (पिडल सूत्र मे भूमिका से उद्घृत)

डा० रन्जना मिश्र इस संदर्भ में रंजना मिश्र के ब्राह्मण एक शास्त्रीय अध्ययन के ग्रन्थों का यह अंश उद्धरणीय है जिसमें यह अक्षरं तदः छन्दः इस उक्ति का सुस्पष्टीकरण हो जाता है वह लिखती है-

वैदिक वाग्ङ्मय में भाषा व शैली कि दृष्टि छन्द का महत्वपूर्ण स्थान है। वैदिक साहित्य का सूत्रपात ही छन्दों में हुआ है छन्द के बारे में कुछ गया है कि छन्द के बिना 'वाक्' उच्चरित ही नहीं होती। वैदिक काल से लेकर अबतक छन्दों का महत्व अक्षुण्ण बना रहा है। जमकीर्ति ने वैदिक व लौकिक संस्कृत दोनों के संदर्भ में लिखा है कि सम्पूर्ण वाङ्मय छन्दोयुक्त है। छन्द के बिना कुछ भी नहीं है। अक्षरों के द्वारा वाणी का नियमन ही छन्द है। यह तथ्य ऋषियों ने भी कहा है(अक्षरेण मिमते सप्तवाणी अक्षरेणैव सप्तवाणीः वागाधिष्ठितानि सप्त छन्दांसि मिमते निर्माणं कुर्वन्ति सामन) सतपथ ब्राह्मण के अनुसार वाक् से छन्दो की उत्पत्ति हुई।

ऋग्वैदिक मतो कि रचना मूलतः तीन प्रमुख छन्दो द्वरा की गयी है- गायत्री, त्रिष्टुप एवं जगती। ब्राह्मणों में अनेक सः छन्द सन्दर्भित है। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप बृहती, पंक्ति तिष्टुप शक्वरी तथा अतिछन्दस। छन्द के प्रत्येक श्लोक में अक्षरों की संख्या गिनार्या गयी है। सत् ब्राह्मण का कथन है कि गायत्री के एक पद में अष्टाक्षर हैं। गायत्री त्रिपदा, अनुष्टुप चार पदो से मुक्त तथा पंकि में पांच पद होते हैं अति छन्दस में अन्य सभी छन्दों की विशेषतायें विद्यमान रहती हैं अनुष्टुप को अन्य सभी छन्दों कि प्रतिष्ठा (आधार) बताया गया है।

गायत्री- गायत्री छन्द में मुख्यतः तीन पाद होते हैं प्रत्येक में आठ-आठ अक्षर होते हैं इस प्रकार इसमें कुछ चौबीस अक्षर होते हैं। यदा-कदा इसमें एक से लेकर पांच पाद तक होते हैं। इसीलिये इसके एकपदा, द्विपदा, त्रिपदा, चतुष्पदा और पंचपदा भी नाम है।

उष्णिक्- गायत्री छन्द के प्रथम मध्य या अन्तिम पाद में चार अक्षर अधिक हो जाने से उष्णिक छन्द होता है। अर्थात इसमें तीन पाद और २८ अक्षर होते हैं।

अनुष्टुप- इसमें ३२ अक्षर होते हैं इसमें स्पष्ट है कि उष्णिक (२८ अक्षर) में ४ अक्षर अधिक कर देने से यह छन्द निर्मित हुआ। इसमें तीन या चार पाद होते हैं। इन्ही पादों एवं अक्षरों की न्यूनाधिकता के कारण इसके अनेक भेद-प्रभेद होते है।

बृहती- अनुष्टुप छन्द में चार अक्षर बढ़ा देने से बृहती बनता है अर्थात ३६ अक्षरों से यह अनेक भेद-प्रभेद होते हैं। इस प्रकार इसके चार पाद और प्रकोष्ठ पाद में ६-६ अक्षर होते हैं। यह छन्द मात्रा कि दृष्टि से विवादास्पद है।

पंक्ति- बृहती में चार अक्षर बढ़ा देने से यह बनता है, अर्थात ४० अक्षरों का पंक्ति छंद होता है। इसमें भी चार पाद होते है। कभी-कभी पांच न्यूनता व आधिक्य से इसके भी अनेक भेद-प्रभेद होते है।

त्रिष्टुप- पंक्ति (४० अक्षर) के पादों में चार अक्षर से आधिक्य से आश्रेत ४४ अक्षरो से त्रिष्टुप छन्द निर्मित होता है। इसमें चार पाद और प्रत्येक पाद में ११-११ अक्षर होते हैं। इसके भी भेद-प्रभेद होते हैं यह ऋग्वेद का अति प्रचलित छन्द है।

जगती- त्रिष्टुप में चार अक्षरो की वृद्धि से जगती छन्द निर्मित होता है। इसमें चार पाद और प्रत्येक पाद में १२-१२ अक्षर होते हैं। पादों और अक्षरों की न्यूनाधिकता से इसके अनेक भेद प्रभेद होते हैं।

शक्वरी- इस छन्द में सात पाद होते है तथा प्रत्येक पाद में ८-८ अक्षर (७ग८ त्र५६ अक्षर) होते हैं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि प्रजापति ने षड्-होता बनकर मानस् सृष्टि के बाद गायत्री आदि छन्दों का सृजन किया। जैमिनीय ब्राह्मण का मत है कि प्रजाओं की कामना करने वाले प्रजापति ने अठारह अक्षरों का सृजन किया। छःछः की संख्या में यह त्रिवर्ण हुआ जो कि 'ऊँ' रूप गायत्री छन्द हुआ।

सतपथ ब्राह्मण के एक आख्यान में बतलाया गया है कि पूर्व में छन्दों के मात्र चार पाद होते थें। इन छन्दों में जगती सोम को लाने के लिये उड़कर गयी। वह अपने तीन पदों को छोड़ आयी। त्रिष्टुप सोम को लाने के लिये निमित्व उड़ा तो अपना एक पद छोड़ आया। इसी क्रम में गायत्री भी सोम को लेने हेतु उड़ी जो अपने पदों के अतिरिक्त जगती एवं त्रिष्टुप के पदों को भी सोम के साथ लाने में

सफल रही। इसीलिये गायत्री में आठ पद होते हैं। गायत्री में तीन चरण होते है इसीलिये इसें त्रिपदा भी कहा गया है। इस त्रिपद में भूः भुवः तथा स्वः त्रिलोक ऋक् जयुः वर्ण में साम की त्रयी त्रिदेवगण तथा यज्ञ की पूर्वोक्त त्रिरग्निियां अन्तर्भूत है। ऋग्वेद के अनुसार शैशव, यौवन तथा जरारूप मानव जीवन की तीन अवस्थायें ही जीवन रूपी यज्ञ कि तीन समाधियां हैं। इन्ही की आहुतियां जीवन यज्ञ में समर्पित होती हैं। इस प्रकार गायत्री मनुष्य जीवन का यज्ञगर्भित दिव्याति दिव्य रूप है।

ब्राह्मण साहित्य में गायत्री गेय छन्द है जो व्यक्ति गायत्री छन्द (साम) का गान करता है वह गायत्री द्वारा संरक्षित होता है गायत्री छन्द में अनेक गूढ़ रहस्य निहित बताये गये हैं। गायत्री को प्राण कि संज्ञा दी गयी है। ज्योति रूपा (अथर्ववेदीय उपचार) विद्या के समविष्ट होने के कारण इसे (पृथ्वी को) भी गायत्री कहा गया है। इसी अथर्ववेदीय निदान विद्या के ही आधार पर अग्नि को भी गायत्री कहा गया है। गायत्री स्वयं ब्रह्म है। मन स्तत्व में जीवन-छन्द निवास करता है, ब्राह्मणों में प्रयुक्त छन्दस तत्व जीवन की समज्यसता (जय) का प्रतीक है। छन्द ऐसी प्रतीकात्मक लय हैं जिनमें पदार्थो की शाश्वत गतियां सन्निहित हैं।

छन्दों का नामकरण भी प्रतीकात्मक हैं। कभी-कभी ये संख्या का बोध कराते हैं। छन्दों के द्वारा ही कपालों की गणना की जाती है। प्रत्येक छन्द किसी न किसी देवता तथा वर्ण से सम्बद्ध करता हुआ करता है। उदाहरणार्थः गायत्री छन्द अग्नि देव तथा ब्राह्मण वर्ण से सम्बद्ध है। त्रिष्टुप इन्द्रदेव तथा क्षत्रिय वर्ग जगती विश्वदेवों तथा कैश्यवर्ण एवं अनुष्टुप छन्द वरुण अथवा प्रजापति देव एवं शुद्ध वर्ण से सम्बद्ध बतलायें गये हैं। इसी प्रकार देवों तथा वर्णो को विशिष्टतायें छन्दों मे भी परिलक्षित बतायी गयी है।

त्रिष्टुप को इन्द्रियं 'वीर्यम्' गायत्री, त्रिष्टुप तथा जगती को सत्य एवं अनुष्टुप को संध्यानृत कहा गया है। गायत्री एवं त्रिष्टुप जगती में अन्तर्निविष्ट होते हैं। जिसका तात्पर्य यह है कि इनका ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य से भी सम्बन्ध रहता है।

ब्राह्मणों में अनेक स्थलो पर यह कहा गया है कि वाक् एवं अनुष्टुप एक ही हैं। इस कथन का

यही अभिप्राय प्रतीत होता है कि अनुष्टुप सर्वाधिक विख्यात छन्द है, क्योंकि वाक् (वाणी) के प्रसार में यह नैसर्गिक रूप से स्वतः सम्मुख आ जाता है।

रिक एवं साम में प्रयुक्त छन्दो का आकलन एवम उनका क्रमिक विकास-

यह निर्विवाद है कि संसार की समस्त भाषाओं में परम् प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद है इस सम्वन्ध में प्राच्य एवम पाश्चात्य मनीषियों में कोई मत वैषम्य नहीं है यह भी ज्ञातव्य है कि ऋग्वेद के ही अधिकांश मत सामवेद में परिगृहीत है ऋग्वेद की जो ऋचाऐ गेय है वहीं सामवेद के रूप में संकलित कर ली गयी है गीतिस्तु सामाख्या का यही तात्पर्य है कहने का अभिप्राय यह है कि वैदिक छन्दों के विवेचन में ऋग्वेद के छन्दों का ही अध्ययन वैदिक छन्दों का विवेचन यत्र तत्र प्रातिसाख्यो में या ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त होता है किन्तु वैदिक छन्दों का सागोपॉग लक्षण विवेचन पिंगलाचार्य के पिंगल सूत्र में उपनिवद्व है आचार्य पिंडल ने वडी ही सर्तकता के साथ छन्दो के लक्षण एवम उनके विकास को अपने ग्रन्थ में एकल किया है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है की आचार्य पिडंल वैदिक छन्दों के अनुशीलन परिशीलन के प्रथम आचार्य है उन्होंने अपने पिंडल सूत्र में अपने पूर्ववर्ती अन्य आचार्यो का नामोल्लेख किया है इससे यह पुष्थि होती है की आचार्यो पिंडल के पहले भी वैदिक मंत्रों के उपजीवि हो चुके है पांडित नरायण शास्त्री खिस्त्रे ने इसकी पुष्टि भी की है यह तो निर्विवाद सिद्व है कि सारे जगत में सबसे पहले छन्द शास्त्र का उदय भारतवर्ष में ही मानना चाहिए।

कवि शब्द से काव्य शब्द कि उत्पत्ति होती है कवेरर्भाव कर्म व काव्य अर्थात कवि का भाव या कृतित्व ही काव्य है वेदो में कविर्मनीजी परिभूः स्वमभूः आदि उक्तिया काव्य का स्त्रोत कही जा सकती हैं अनेक पुराणो एवं ज्योतिष ग्रन्थो में कवि से तात्पर्य शुक्राचार्य से है श्रीमद् भगवतगीता में योगिराज श्री कृष्ण ने आचार्य शुक्ल[1] को कवि के रूप स्मरण किया है और अपना स्वरूप समर्थित किया है किन्तु उनकी गणना देवकवियों में की जाती है मानव कवियों में आदि गणना कवि वाल्मीकि सुप्रसिद्ध हैं क्रौन्च मिथुन के जोड़े में क्रौन्च के व्याध द्वारा वध किये जाने से अचानक महर्षि वाल्मीकि

के मुख से जो करुण वाणी निकली वहीं संसार कि पहली कविता प्रसिद्ध हुयी और महर्षि वाल्मीकि मानव जगत के सर्वप्रथम आदि कवि[2] है।

अब यह विचार करना है कि इस छन्दः शास्त्र का अच्छा प्रणेता कौन है। वेद के षड्ंगो में जो छन्द भी एक अंग कहा गया है उसके प्रणेता पिंगल है, किन्तु ये ही सबसे प्रथम आचार्य है यह कहना भी कठिन है क्योंकि पिंङ्गल ने अपने सूत्रों में कैटव, काश्यप आदि अनेक छन्द शास्त्र ऋषियों का उल्लेख किया है अर्थात पिंङ्ल के पूर्व उक्त ऋषियों का छन्द सम्प्रदाय प्रचलित था इतना ही नहीं श्री खिस्ते[3] ने छन्दःशास्त्र के प्रणेताओं के सम्प्रदाय क्रम को भी निदेर्शित किया है वे लिखते है कि छन्द शास्त्र के सबसे प्रथम आचार्य देवादि देव महादेव है, उनसे देवो के राजा को यह शास्त्र मिला उससे दुश्च्यवनओं दुश्च्यवन से सुरगुरू को सुरगुरू से माण्डव्य ऋषि को माण्डव से सैतव को, सैतव से यास्को, यास्क से पिंग्डल को और पिंग्डल से सारे जगत को यह शास्त्र मिला वेदांग छन्दस के लक्षण वेद स्वाध्याय में छन्दस का योगदान छन्दःशास्त्र की आचार्य परम्परा तथा वेद के प्रमुख छन्दों लक्षण निरूपण आदि के संदर्भ में डा० कृष्ण कुमार[4] ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की है, वे लिखते है कि छन्द भी वेदांग है, वेदमंत्रों के उच्चारण के लिये छन्दों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है कारण वैदिक संहिताओं का अधिकांश भाग छन्दोबद्ध है, वेद मंत्रों का लय बद्ध गति का ज्ञान विशुद्ध रूप से हो सके इसी के लिये छन्द शास्त्र की आवश्यकता हुई।

इस ज्ञान का त्रिविध महत्व था, छन्दों ने वेद मंत्रों के शब्दार्थ के संरक्षण के लिये 'कवच' का सावार्य किया था। वे इनसे 'छादित' या 'आवतरित थे, यास्क ने अपने 'निरूक्त' में इसी अर्थ को ध्यान में रखकर छन्द पद की व्युत्पत्ति दी है- मंत्राः मननात्। छन्दासि छादनात। छन्दों के महत्व का यह पहला पक्ष था।

उनके महत्व का दूसरा पक्ष था उनके लयात्मक संगीत में र६जन वृत्ति का होना (कारक रूचिकर और कर्ण मधुर वाणी ही छन्दयति कृणाति सेचतेइति छन्दः प्रकारान्तर से जिस वाणी को सुनते ही मन आह्लादित हो जाता हो, वह छन्द है।

छन्दों को महत्व का तीसरा पक्ष था स्तुल्य देवताओं के प्रसादन में उनका सहायक होना ऐसी स्थिति में छन्द का वेदांग रूप में क्या स्थान है कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती। यही कारण है कि स्वम् वेदों में छन्दों के महत्व पर विशेष बल दिया गया है।

छन्दः शास्त्र का प्रवर्तन किसने किया कहना मुश्किल है पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार इस छन्दः शास्त्र के रचयिता भगवान शिव ही थे। अपने भाष्यग्रन्थ की एक पुष्पिका में यादव प्रकाश ने एक श्लोक उद्धत करते हुए यह बतलाया कि देवगुरू बृहस्पति ने भगवान शिव से सर्वप्रथम छन्दोज्ञान प्राप्त किया था बृहस्पति से यह ज्ञान दुश्च्यवन इंदु और इंदु से माण्डव्य नामक सुरगुरू ने प्राप्त किया था ऋषिपुत्र सनत्कुमार भी इस शास्त्र का अच्छा ज्ञाता था एक दूसरी अनुश्रुति के अनुसार छन्दःशास्त्र के आदि रचयिता पिंगलाचार्य या पिंगल थे।

छन्दों के विवेचन का जहाँ तक विवेचन का प्रश्न है, उसके दो वर्ग सीधे किये जा सकते है वैदिक छन्द तथा लौकिक छन्द। जहाँ तक वैदिक छन्दों का प्रश्न है वे वर्ण गणना पर आश्रित है, वर्णों के न्यूनाधिक्य से वैदिक छन्दों के अनेक भेद-प्रभेद निर्मित होते है प्रमुख वैदिक छन्द निम्नांकित है जो वर्णों के आधार पर भिन्न-भिन्न नाम रूप धारण करते हैं।

१-	गायत्री	२४ वर्ण
२-	उष्णिक	२८ वर्ण
३-	अनुष्टुप	३२ वर्ण
४-	बृहती	३६ वर्ण
५-	पंक्ति	४० वर्ण
६-	त्रिष्टुप	४४ वर्ण
७-	जगती	४८ वर्ण
८-	अतिजगती	५२ वर्ण
६-	शक्वरी	५६ वर्ण

१०–	अतिशक्वरी	७६ वर्ण
११–	कृति	८० वर्ण
१२–	प्रकृति	८४ वर्ण
१३–	आकृति	८८ वर्ण
१४–	विकृति	९२ वर्ण
१५–	संस्कृति	९६ वर्ण
१६–	अभिकृति	१०० वर्ण
१७–	उत्कृति	१०४ वर्ण

यह जानकर आश्चर्य होगा कि ऋषियों के विशुद्ध निर्मल अन्तःकरण में समय-समय पर जो छन्द उद्भूत हुए उनका ध्वनि तथा वर्ण विन्यास अत्यन्त अद्भुत तथा रहस्यपूर्ण तथा प्रभावकारी है गायांते त्रायाते इति गायत्री इस व्युत्पत्ति के अनुसार गायत्री छन्द वेद का सार तत्व समझा जाता है यह छन्दपरम तपस्वी विश्वामित्र का आविष्कार है जो ज्ञान विज्ञान का श्रोत है द्विजाति मात्र का यह कंठद्वार है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि शेष छन्दों की उपादेयता नगण्य है वे भी अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है।

अमंत्र मच्छरम नास्ति[5] के अनुसार प्रत्येक अक्षर किसी न किसी देवता का मंत्र है, किन्तु कठिनाई तो यह कि कौन सा अक्षर किस देवता के मंत्र में विनियुक्त होता है यह परिज्ञान सर्व सुलभ नहीं है यह निश्चय है कि मंत्र ही नहीं प्रत्येक शब्द या वर्ण का अपना अद्भुत प्रभाव होता है साधु प्रयोग से वह सदा फल दायी होता है। किन्तु उसका प्रतिकूल यह व्युत्क्रम विनियोग अनर्थकारी भी कम नहीं होता श्रुति में कहा गया है–

मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतोआ

मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थ माह

स: वाग्वज्जरों यंजमानं हिनस्ति

यथेन्द्र शत्रुः स्वरतोपराधात्[6]

महाभाष्यकार ने मंत्रोहीना के स्थान पर दुष्टः शव्दः का प्रयोग किया है जो अपने आप में यर्थाथ ही है क्योंकि शब्द ही तो मंत्र का रूप धारण करता है स्वर या वर्ण के त्रुटिपूर्ण उच्चारण से जो दोषजात उत्पन्न होते है वह किसी से छिपा नहीं है भाषा विज्ञान में स्वराघात् एवं बलाघात् का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है जो अर्थ की संगति में अपनी विशिष्ट भूमिका प्रस्तुत करता है।

वैदिक छन्दों की विकास परम्परा से औपनिषद छन्दों का परिशीलन –

वैदिक भाषा के समान वैदिक छन्दों का विकसित रूप भी इतना परिवर्तित होता गया की उपनिषदों में प्रयुक्त वैदिक भाषा जैसे लौकिक संस्कृत का रूप धारण करने लगी उसी तरह उपनिषदो में प्रयुक्त छन्द लौकिक संस्कृत छन्दों के साथ इतना सादृश्य रखते है की आश्चर्य होता है कठोपनिषद का प्रस्तुत छन्द देखिये जो किसी भी लौकिक संस्कृत छन्द की कितनी समानता रखता है।

प्र ते ब्रवीममि तदु में निबोध[7]

स्वर्ग्यमग्नि नचिकेतः प्रजानन्।

अनन्तलोकाप्तिमापो प्रतिष्ठां

विद्धि त्वमेव निहितं गुहायाम्।।

उपर्युक्त छन्द को गीता के प्रस्तुत से तुलना कैसे कर यह बात स्पष्ट हो जायेगी। कि उत्तरोत्तर वैदिक भाषा लौकिक संस्कृत में कैसे परिवर्तित हुयी।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं

समुप्रमावःप्रविशन्ति यद्वत्

तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे

स शान्तिमाप्रोति न कामकामी ।।

यद्यपि श्री मदभगवत गीता भी उपनिषदो कि गणना में परिगृहीत है जैसा कि हम देखते है कि गीतो के प्रत्येक अध्याय कि पुस्तिका में इति श्री मदभगवत'गीता सू पनिसश्सू पठित है किन्तु उपनिषदो कि भाषा वैदिक संस्कृत मानी जाती है परन्तु गीता कि भाषा लौकिक संस्कृत ही है यह निर्विवाद है कहने का तात्पर्य यह है कि ऋगवेद लेकर उपनिषदो तक जिस तरह भाषिक विकास देखा जाता है उसी भाँति छन्दों का विकास भी उत्तरोत्तर दृष्टव्य हैं।

ख- वैदिक छन्दों की उपयोगिता पर प्राच्य एवं पाश्चात्य मतों का विश्लेषण :

कहना नहीं होगा कि वैदिक छन्दों की प्रभु विष्णुता के सम्बन्ध में प्राच्य मनीषियों ने जो समय-समय पर चमत्कार प्रस्तुत किये है क्योंकि वैदिक मंत्रों के द्वारा पुत्रेष्टि याग करीरीयाग आदि के विनियोग से विस्मयकारी परिणाम प्रकट होते रहे है वैदिक छन्द अपने आप में कितने ऊर्जस्वल तथा प्रभु विष्णु है प्राच्य विद्वान इसमें र्निभ्रान्त है। इतना ही नहीं संगीत में अनेक राग दीपक आदि अपनी ध्वनियात्मक ऊर्जा से जनमानस को चमत्कृत करते हैं।

वैदिक छन्द का उपहास परिहास करते रहे है किन्तु शैनेः-शैनेः अनुशीलन परिशीलन के पश्चात वे लोग भी प्राच्य विद्वानों के साथ एक मत है।

आरम्भ में पाश्चात विद्वानों ने वैदिक छन्दों के हास परिहास में समय नष्ट करते रहे किन्तु मैक्समूलर प्रसिद्ध विद्वानों ने जब ऋग्वेद का गम्भीर अध्ययन किया और उनके मंत्रों कि ऊर्जास्विता के दर्शन किये तो इसका प्रभाव अन्य विदेशी विद्वानों पर भी पड़ा और अब तो वेद मंत्रों कि शक्ति को पहचानकर वैज्ञानिक जगत में भी अनेक चमत्कार प्रस्तुत किये हैं। जबकि भारतीय आधुनिक विद्वान अपने प्राचीन विद्वान सायण प्रभृति का ही राग अलाप रहे यह बात अवश्य है कि इस क्षेत्र में वेदों के विशिष्ट व्याख्याता श्री सातवलेकर, स्वामी दयानन्द, योगिराज अरविन्द तथा वेदार्थ पारिजात के लेखक ब्रह्मलीन श्री कल्पात्रि जी कि सेवाये भुलायी नहीं जा सकती इन विद्वानों ने वेद मंत्रों कि प्रभु विश्वसनियता आधुनिकता जगत के सामने रक्खा एवं छन्दों के चमत्कारिक प्रमाण को भी प्रस्तुत किया है।

उद्‌घत तालिका

(1) कवीना मुसना कविः

(भगवत गीता अ0 10 श्लोक सं. 37)

(2) मा निशाद प्रतिष्ठां त्व—मागमः सास्वतीः सभाः यत् क्रौअ्च मिथुना देक, मौधिः काम मोहितान्

(व0र0आ0का0अ0 3 श्लो0 सं. 13)

(3) श्री खिस्ते नारायण शास्त्री रचित छन्दः कौमुदी कि भूमिका से उद्धित

(4) डा0 कृष्ण कुमार विरिचित संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ सं. 132

(5) अमंत्र मच्छरं नास्ति, नास्ति मूल मनौषधम् आयोग्यः पुरुषो नास्ति, योजक स्तत्र दुर्लभः

(संस्कृत सुधा से उद्धृत)

(6) पाणिनी शिक्षा श्लोक सं. 52

मंत्र जो छन्दोवद्ध होते हैं उसके त्रुटि पूर्ण उच्चारण भयानक परिणाम देखे गये है इस विषय में प्रस्तुत टिप्पणी अवबोधनीय है इसलिये कहा गया है कि चाहे भाष शब्द के स्थान पर मष शब्द का उच्चारण करना पड़े किन्तु छन्दोभंग न करना चाहिये। अन्यथा उसके भीषण दुष्परिणाम होते हैं।

टिप्पणी इस प्रकार हैं

पुरा किल विश्वरूप नामके त्वष्टुः पुत्रे इन्द्रेण निहिते, रुष्टस्त्वष्टा इन्द्रस्य हन्तारं पुत्रान्तरमुत्पिपादयिषुराभिचारिकं यागं कृतवान्। तत्रेन्द्रश त्रुर्वर्धस्वेति मन्त्र ऊहितः। तत्र तत्पुरुष युक्तान्तोदान्ततत्वे कर्तव्ये वहुब्रीहि प्रयुक्त आधुदात्त ऋत्विजा प्रयुक्त इत्यर्थान्तराभिं धानादिन्द्रेण सोअपि हत इति। अत्र शत्रुशब्दः क्रियाशब्दोंनतु अमित्रपर्यायो रुढ़ः। तदाश्रयणे हि बहुब्रीहि तत्पुरुषोरर्थभेदो न स्यात्। क्रियाशब्दत्वे इन्द्रस्य शातयिता भवेत्यर्थ बोधनाय प्रयोगे तत्पुरुष एव उचितः, बहुब्रीहो इन्द्रः शातयिता यस्ये त्यर्थः स्यादिति। तस्माद् शत्रुशब्दः क्रियाशब्दोअत्रेति। अत्र मन्त्रशब्दः शब्दमात्रपरः अन्यथा हितस्य मन्त्र भावेन तदसंगतिः स्पष्टैव।

7 कठोपनिषद्— 1/14

South Asia Subcommittee

Encoding of Vedic

1 Introduction

The purpose of this page is to record the current state of proposals, discussions, and consensus on the encoding of Vedic. The discussions take place on the southasia@unicode.org mailing list.

2 Documents

The Everson, Scharf et al. proposals:

- 2008-01-28: L2/08-050
- 2007-10-18: L2/07-343; differences with L2/07-230 in L2/07-394; additional evidence in L2/08-035
- 2007-07-26: L2/07-230; history of that document in L2/07-262
- 2007-04-26: L2/07-095R
    - Comments in L2/07-388
        - Comments in L2/07-400

The Government of India proposals:

- 2008-01-28: L2/08-042, L2/08-043
- 2007-10-10: L2/07-395, L2/07-396, L2/07-397
- 2006-05-10 L2/06-185

Comparasions:

- 2007-10-18: L2/07-401: L2/07-343 vs. L2/07-39{5,6,7}
- 2007-08-08: L2/07-271: L2/07-230 vs. L2/06-185
  - Response in L2/07-386
    - Comments in L2/07-400

3 Areas of work

The reminder of this page lists the various areas that need work. It follows the organization of L2/07-343, so as to able to work on manageable chunks.

Each area starts with the relevant characters proposed in L2/07-343, L2/08-050, L2/07-39x and L2/08-042. Those that have been accepted during the October 2007 UTC meeting #113 are preceded with a green "y".

This is followed by a summary of the discussion on the list. When a discussion item has been resolved by latest iterations of the proposal, that discussion has been omitted. In other words, only the discussion relevant to the current disagreements is included.

3.1 Prishthamatra

In the Prishthamatra orthography, a number of vowels sounds are written using different forms than the modern orthography, in dependent form:

sound	Prishthamatra	modern
ke		के
kai		कै
ko		को
kau		कौ

Three approaches have been considered:

1. encoding of a combining character for the left side part, and use of the existing vowel signs U+0947 DEVANAGARI VOWEL SIGN E, U+093E DEVANAGARI VOWEL SIGN AA and U+094B DEVANAGARI VOWEL SIGN O.
2. encoding of four combining characters for the four vowel signs
3. use of the same sequences as for the modern representation and and higher-protocol to trigger a rendering in one or the other orthography.

L2/08-050 (and earlier L2/07-230) and Peter Constable favor 1:

accepted	Everson/Scharf				Govt. India		name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
	◌ॎ		94e				devanagari vowel sign prishthamatra e

The Government of India favors 3. Sobi, on the southasia list, 2008-01-03:

> [...] we have already shown serious concern about the code point in our comments document L2/07-388, observation No 3. We still retain our same stands that Prishthamatra is not advisable to be separately encoded.
>
> In reference to the comment made in 2.1 in document no L2/07-343 we are of the opinion that font may handle such situation however it may need rendering engine reordering support as it is now present for Devanagari short i matra.

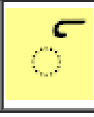
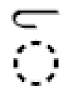
Eric Muller favors 2. On the southasia list, 2008-11-13:

> The model that has been followed so far in Devanagari is to encode each vowel sign separately, even if they can be analyzed graphically as composites. For example, we have U+094B DEVANAGARI VOWEL SIGN O, and we don't use the sequence <U+093E DEVANAGARI VOWEL SIGN AA, U+0947 DEVANAGARI VOWEL SIGN E> to represent a vowel sign o.
>
> The current encoding proposal would break that model, by introducing a single new coded character, which could be used in combination with other coded characters for vowel signs. The question is whether we want to go down that path or whether we want to stick to the current model.
>
> Keeping the current model would suggest four coded characters
>
> > devanagari vowel sign prishthamatra e
> > devanagari vowel sign prishthamatra ai
> > devanagari vowel sign prishthamatra o
> > devanagari vowel sign prishthamatra au
>
> The last three coded characters would be "two part" vowels, which have received two treatments in Unicode: with a canonical decomposition (scripts of India) or without (Khmer). If I understand correctly, the canonical decomposition was primarily a concession to implementations and was not primarily intended to depart from the model of atomic vowel signs.

As Peter Constable pointed out, all three approaches suffer from confusables: काक would is either kaaka in modern orthography (<915, 93E, 915>) or kake in Prishthamatra orthography (<915, 915, 94e> under 1 and 2, and <915, 915, 947> under 3).

3.2 Rigvedic

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)

		07-343	**08-050**		**07-39x**	**08-042**	
		1cdc	1ce0			1ce7	vedic tone rigvedic kashmiri independent svarita vaidika uurdhva vakra rekhaa

Peter Scharf, on the southasia list, 2007-11-07:

> Although Scharf and Everson provide ample evidence in European and Indian printed editions to justify the encoding of 1cdc (see n3366 figure 3, p. 14), manuscript evidence of the historical indigenous Indian use of the character is sought to allay Joshi's reservations that it may be a modern editorial invention.

Sobi, on the southasia list, 2008-01-03

> In the Indian editions of Rigveda Khilani 1.11.4 and 1.12.7 (Poona edition), the sign is clearly depicting numeral '8' in Devanagari (southern-marathi numeral style) as an accent mark. This has been further commented and confirmed by Dr. B.B.Choubey in his 'Vedic Svarita Mimansa' (Hoshiyarpur Edition,1972 pg:107), unlike what is indicated in the documentary support under 3c and 3d in document L2/07-343.
>
> There could be a possibility that 1CDC is based on North Indian-Hindi numeral '8', where the upper stroke of numeral '8' is horizontal as compared to the upper stroke of southern variety of numeral '8' which shows the same stroke angularly.
>
> Therefore we propose the following:
>
> Instead of giving separate code as suggested in L2/07-343 , the code point A8E8 can be modified to look like more or less horizontal '8', which could double up for 1CDC VEDIC TONE RIGVEDIC KASHMIRI INDEPENDENT SVARITA
>
> Further, it must be noted that neither of the two proposals provide documentary support for this code A8E8. So now we are left with two alternatives:
>
> 1.To delete A8E8 (L2/07-343), although it may cause an inelegant gap; and to have a separate code for 1CDC
>
> 2.Or to keep A8E8 with slight change in the form which can be effectively used as VEDIC TONE RIGVEDIC KASHMIRI INDEPENDENT SVARITA and also as combining Devanagari Digit Eight in Samaveda if need arises(since it is not yet found).
>
> We would prefer the second alternative to encode 1CDC under Samaveda and this will be effected in our Revised Combined Proposal

Peter Scharf, on the southasia list, 2008-01-15

> The 8 was a typographic substitute for what is shown in the mss. I have now provided the mss evidence in [L2/08-035].

3.3 Samavedic, letters and digits

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
	०◌	a8e0	a8e0	०◌	8b4	a8e0	combining devanagari digit zero vaidika saamasvara anka shuunya
	१◌	a8e1	a8e1	१◌	8b5	a8e1	combining devanagari digit one vaidika saamasvara anka eka udatta
	२◌	a8e2	a8e2	२◌	8b6	a8e2	combining devanagari digit two vaidika saamasvara anka dvi svarita
	३◌	a8e3	a8e3	३◌	8b7	a8e3	combining devanagari digit three vaidika saamasvara anka tri anudatta
	४◌	a8e4	a8e4	४◌	8b8	a8e4	combining devanagari digit four vaidika saamasvara anka chatur
	५◌	a8e5	a8e5	५◌	8b9	a8e5	combining devanagari digit five vaidika saamasvara anka pancha
	६◌	a8e6	a8e6	६◌	8ba	a8e6	combining devanagari digit six vaidika saamasvara anka shatt
	७◌	a8e7	a8e7	७◌	8bb	a8e7	combining devanagari digit seven vaidika saamasvara anka sapta
	८◌	a8e8	a8e8	८◌		a8e8	combining devanagari digit eight vaidika saamasvara anka ashtta
	९◌	a8e9	a8e9	९◌		a8e9	combining devanagari digit nine vaidika saamasvara anka nava
	अ◌	a8ea	a8ea	अ◌	8bc	a8ea	combining devanagari letter a vaidika saamasvara abhinihita
	उ◌	a8eb	a8eb	उ◌		a8ee	combining devanagari letter u vaidika saamasvara u
		<a8e3, a8eb>	<a8e3, a8eb>	२उ◌	8c5	a8f0	vaidika saamasvara svarita dviu
							combining devanagari letter ka

	क ◌	a8ec	a8ec	क ◌		a8ed	vaidika saamasvara ka
		<a8e3, a8ec>	<a8e3, a8ec>	३क ◌	8c6	a8f1	vaidika saamasvara svarita trika
	न ◌	a8ed	a8ed	न ◌	8bd	a8eb	combining devanagari letter na vaidika saamasvara namana
	प ◌	a8ee	a8ee	प ◌	8cb	a8f2	combining devanagari letter pa vaidika saamasvara prannatam
	र ◌	a8ef	a8ef	र ◌	8bf	a8ec	combining devanagari letter ra vaidika saamasvara ra
		<a8e1, a8ef>	<a8e1, a8ef>	१र ◌	8c0	a8ef	vaidika saamasvara svarita ekara
		<a8e2, a8ef>	<a8e2, a8ef>	२र ◌	8c1	removed	vaidika saamasvara dvi ra
		<a8e3, a8ef>	<a8e3, a8ef>	३र ◌	8c2	removed	vaidika saamasvara tri ra
		<a8e4, a8ef>	<a8e4, a8ef>	४र ◌	8c3	removed	vaidika saamasvara chatur ra
		<a8e5, a8ef>	<a8e5, a8ef>	५र ◌	8c4	removed	vaidika saamasvara pancha ra
	वि ◌	a8f0	a8f0	वि ◌	8ca	a8f3	combining devanagari letter vi vaidika saamasvara vinata
	ऽ ◌	a8f1	a8f1	ऽ ◌	8c8	a8f4	combining devanagari sign avagraha vaidika saamasvara dirgibava

Even though the two proposals have the same approach and have considerable overlap, no characters in this group were accepted by the UTC at its October 2007 meeting, because there was no consensus on whether combining characters or ruby annotations are the best approach.

Note also that L2/07-343 proposes to use sequences where L2/07-39x proposes atomic characters.

Eric Muller and Peter Scharf, on the southasia list, 2007-11-08:

> [Eric] I read the note http://sanskritlibrary.org/VedicUnicode/SLTN1.pdf which discusses ruby. As far as I can tell, the arguments are:

- unlike the general case of ruby in Japanese where the ruby base can be multiple characters/syllables, here the ruby base is always an akshara, so there is no scoping issue (and that scope is similar to that of other combining marks such as the vowel signs)

- the set of strings which appear as ruby text is a small, fixed repertoire

Here are a few counter arguments:

- looking the examples, I can't help but see the very mechanism of ruby at work, i.e. a mechanism of inter linear annotations rather than modifications of letters (which is what combining marks are generally used for)

- since the Jaiminiya tradition clearly requires a ruby implementation, an argument for combining marks based on availability of implementations is also one that suggests that the Jaiminiya tradition is a second class citizen

> [Peter]: No. The Jaiminiya notation has scoping issues that warrant Ruby just as Japanese does. These issues do not apply to the Kauthuma and Ranayaniya annotation methods.
>
> > [Eric]: My point is that if you go for combining marks because you expect implementations to be more readily available for combining marks than for ruby, and since Jaiminiya requires ruby, then you are willing to leave Jaiminiya behind, i.e. treat it as a second class system.

- the fact that there is no scoping issue and that combining characters would "work" is *not* an argument *against* ruby; it's only a necessary condition for combining marks

> [Peter]: Macrons, circumflexes, and accent marks in Roman could be handled by Ruby too, but they aren't.
>
> > [Eric]: But the accents in Latin do not write annotations, they are used to form new letters. One test is whether the text is still meaningful after you drop annotation/accents. If it is (as I suspect it is for the Vedic case), you have annotations; if it isn't (e.g., French), you have accents.
>
> [Peter] Nor are accent marks for Rgveda, Yajurveda, and Atharvaveda. For the same reasons that they aren't, such marks in Samaveda shouldn't be either.
>
> > [Eric] Which brings us to the distinction between interlinear annotations and non-interlinear annotations. I think it would be hard to argue that the neat arrangement we see in the examples is not interlinear.

- I suppose that one of the (unstated) arguments for combining marks is that implementations which can deal with, say, modern Hindi will just work with combining marks. Looking at an example like 4.1Qa in L2/07-343, I see that the placement of the 2nd and 3rd annotations, <digit 2> and <digit 1, vi>, is not strictly above their aksharas but spread to avoid collisions. This is a typical problem that ruby implementations have to deal with. I think that combining mark implementations will have

a hard time dealing with this correctly; stated another way, I am not convinced at all that an implementation for modern Hindi will work adequately. I fear that the attempt at getting something (Vedic support) for nothing is going to backfire.

- I suppose that the interest in the representation of Vedic text goes beyond the ability to display those texts, and includes the ability to manipulate them. It seems necessary for those manipulations to be able to reliably separate the annotated text from the annotations. In a combining mark representation, a candrabindu belonging to the annotated text and a digit one belonging the annotation have the same status (both are combining marks), which means that the characteristic of being an annotation is an integral part of the identity of the proposed characters. That seems a bit too much to me.

- the example to support a8e0/8b4 in L2/07-39x actually shows a latin 1 and a latin 2, if I am not mistaken. What would be used for those?

> [Peter] The Latin characters were employed in this example precisely because of the unavailability of Devanagari superscript characters such as those proposed. To meet such a need is the motivation for the current proposal.
>
> > [Eric] So either the example given in L2/07-39x as evidence for a superscript 0 is
> >
> > - not something anybody wants to be able to do with Unicode, and that proposal does not have evidence for a superscript 0 (no big deal at the end of the day, we have evidence from L2/07-343)
> >
> > - something that is wanted, but is not achieved by a superscript *devanagari* 0 (and the example says we would need combining *latin* 0, 1 and 2)

[Eric] My main observation so far is that the arguments for one way or the other are not that clear cut, at least not at much as L2/07-343 pretends they are. With the arguments advanced so far, my opinion is in favor of ruby, but I would like to make sure that the best arguments are brought forward.

Following a question on the list, Eric Muller speculates that a ruby implementation is very likely to provide quite a bit of control over the styling of the ruby (e.g. font choice, point size, distance to the base character, top vs. above) and that a combining character implementation is unlikely to provide that control.

L2/08-050 reaffirms that ruby is entirely inappropriate and the combining characters are the best solution.

3.4 Samavedic, others

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
							vedic tone karshana

		1cd1	1cd0		8c7	a8f5	vaidika saamasvara karshanna
		1cd2	1cd1		8a3	a8f6	vedic tone shara vaidika svarita uurdhva shara
		1cd3	1cd2		8c9	a8f7	vedic tone prenkha vaidika saamasvara prenkha
		1cd4	1cd3		8cc	a8f8	vedic sign nishshvasa vaidika saamagaan yogakaala
			1cd4		8be	removed	vedic sign kampa vaidika saamsavara kampa

See the comment for the previous section.

3.5 Yajurvedic, general

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
y		1cd6	1cd6		8a8	1ceb	vedic tone yajurvedic independent svarita vaidika svarita adhah konna
y		1cd8	1cd7		8a9	1ce8	vedic tone yajurvedic kathaka independent svarita vaidika svarita adho vakra rekhaa
y		1cd7	1cd5		8a7	1cea	vedic tone yajurvedic aggravated independent svarita vaidika svarita adho nyubja
y		1cda	1cd8		8a6	1ce9	vedic tone candra below vaidika svarita adhah ardha vakra
		<U+0951>			8a0	removed	vaidika svarita uurdhva rekha
		<U+0952, U+0952> ?			8a1	removed	vaidika svarita adho dvi rekha
y		1cd4	1cda		8a4	1ce5	vedic tone double svarita vaidika svarita uurdhva dvi rekhaa
y		1cd5	1cdb		8a5	1ce6	vedic tone triple svarita vaidika svarita uurdhva tri rekhaa
							vedic tone dot below

y		1cdf	1cdd		8ac	1ced	vaidika svarita adho bindu
y		1ce0	1cdc		8ab	1cec	vedic tone kathaka anudatta vaidika svarita adho rekhaa
		1cd9	1cd9			1cee	vedic tone yajurvedic kathaka independent svarita schroeder vaidika svarita adho samyukt rekhaa

Note that U+0951 DEVANAGARI STRESS SIGN UDATTA and U+0952 DEVANAGARI STRESS SIGN ANUDATTA are already encoded, and that 0951 has the annoation "mostly used for Rigvedic svarita, with rare use for Yajurvedic udatta".

Sobi, on southasia list, 2007-12-31:

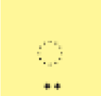
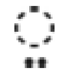
> 1. 08A1 Vaidika Svarita adho dvi rekha may not be addressed as two Anudatta as it has been identified as Svarita. Generally Shatapatabrahmana does not include svarita and has no sign for the same. However Weber in his edition of Shatapatabrahmana has a way to show independent Svarita by adding two horizontal lines to the prior Varna of the svarita Varna. e.g. Viryam
>
> To retain the authentic approach of Weber we have identified it as a Vaidika svarita Adho dvi Rekha and not as a two Anudatta, one below another.
>
> 2. In case of 1CD9 we are awaiting for the source material from which this sign has been identified. We are in process to examine parallel Indian Editions for the same.

Peter Scharf, on southasia list, 2008-01-15.

> George Cardona in his Bhasika System of Accentuation has demonstrated that the Satapathabrahmana marking indicates a two-tone system marking only anudatta. Although this two-tone sytem derives from the triple-tone system; it is not identical with it. The system designed by Weber needs to be reproduced but it is incorrect to identify double line below with a svarita mark. It marks an anudatta that precedes a svarita. Hence this should be produced by a sequence just as you agree the six dots should be produced by a sequence of two triple dot characters.

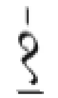
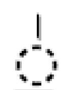
3.6 Yajurvedic, Satapathabrahmana

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
y		1cdd	1cdf		8ae	removed	vedic tone three dots below vaidika svarita adhas tri bindu
		<1cdd, 1cdd>	<1cdf, 1cdf>		8af	removed	vaidika svarita adhas shatt bindu
							vedic tone two dots below

y		1cde	1cde		8ad	removed	vaidika svarita adho dvi bindu

Sobi, on southasia list, 2007-12-31:

> In case of 08AF Vaidika Svarita Adhas Shatt Bindu in L2/07-396, We agree to combine <08AE, 08AE> (with positioning underneath)> as recommended in the document L2/07-271. This will reflect in our revised combined proposal.

accepted	Everson/Scharf		Govt. India			name(s)
	07-343	08-050		07-39x	08-042	
	<0967, 0951, 0952>			8b0	removed	vaidika svarita hrasva kampa
	<0969, 0951, 0952>			8b1	removed	vaidika svarita deergha kampa
	<0967, 0951>			8b2	removed	vaidika svarita hrasva kampa adhorekha
	<0969, 0951>			8b3	removed	vaidika svarita hrasva deergha kampa adhorekha
		<0951, 0952>			1cef	vaidika kampa
					1cf0	vaidika svarita urasi rekhaa

Sobi, on southasia list, 2007-12-31:

> 1. 08B0 Vaidika Svarita Hrasva Kampa and 08B1 Vaidika Svarita Deergha Kampa have been recommended as an integrated sign in L2/07-396.
>
> The Hrasva Kampa is of one maatra duration in which first half maatra duration can be attributed to, as part of Udatta(Uddatansh)and the second half maatra duration belongs to part of Anudatta(Annudattansh). Whereas Deergha Kampa has two maatra time duration in which the first half maatra duration belongs to Udatta(Udattansh) and remaining 3 half maatra duration as part of Anudatta (Anudattansh).
>
> 1A. Thus the svarita kampa is a concept of integrated sound pattern of svarita/Udattaunsh and Anudattansh. Hence their dual identity has to be acknowledged by the integrated relevant accent mark as observed in Rigveda (Shaakal) kampa swara.
>
> 2. As special cases of Hrasva and Deergha Kampa, are observed as follows:
>
> 2A. In Atharveda Shaunaka the Hrasva kampa is shown with small numeral one and the horizontal

line Anudattansh below it. However, the vertical line as a svarita/udattansh is kerned backward and appears on the immediate previous independent svarita. Similar situation is also observed in Taitriya samhita.

In case of Deergha kampa a different variation is also observed where the small numeral 3 gets the vertical line (svarita/udattansh) on the top and the horizontal line (Anudattansh) is kerned backward and appears on the immediate previous independent svarita.

2B. In Rigveda Kashmir part, Kampa; Hrasva or Deergha is indicated by small numeral 3 with horizontal line (Annudattansh) and no vertical line (svarita/udattansh) appears on the top.

2C. In Maitrayini samhita the Kampa is shown by small numeral 3. However, the lower horizontal line (Anudattansh) is kerned forward on the next immediate independent svarita varna which could be either short or long.

2D. In the edition of Maitrayini samhita by Schroeder only small numeral 3 is indicated and no horizontal line (Anudattansh) is kerned forward on the next immediate independent svarita varna.

From the above now we suggest the following: (These action points would be reflected in our Revised Combined Proposal for Feb 2008 UTC meeting.)

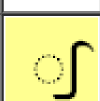
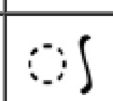
A. In case of 1, only one code with vertical line above and horizontal line below could be considered in place of 08B0 and O8B1 and small numerals 1 and 3 can be attached to it as separate codes. This will reflect in our revised combined proposal.

B. In case of 2, considering all variations, it may be better to compose them with respective codes at respective places. Therefore the two codes 08B2 and 08B3 as suggested in L2/07-396 will be dropped out in our revised combined proposal.

Peter Scharf, on southasia list, 2008-01-15:

The variety you describe in points 2A-2D can all be accounted for by using the existing numeral, udatta, and anudatta marks. Font makers can design precomposed glyphs that compose the items with smaller numerals.

3.7 Atharvavedic

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
y		1cdb	1ce1		8a2	1ce4	vedic tone atharvavedic independent svarita vaidika svarita dvi vakra khanda

3.8 Ardhavisarga

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
					07-		

		07-343	08-050		39x	08-042	
		1ce1	1ce2		8aa	1cde	vedic sign visarga svarita vaidika madhyerekhaa
		<0903, 1ce1>	<0903, 1ce2>		898	removed	vaidika visarga madhyerekha
		1ce2	1ce3			1cdf	vedic sign visarga udatta vaidika dakshinnatah uurdhvaga
		<0903, 1ce2>	<0903, 1ce3>		89b	removed	vaidika visarga dakshinnatah uurdhvaga
			1ce4			1ce1	vedic sign reversed visarga udatta vaidika vaamatah uurdhvaga
			<0903, 1ce4>		899	removed	vaidika visarga vaamatah adhoga
		1ce3	1ce5			1ce0	vedic sign visarga anudatta vaidika vaamatah adhoga
		<0903, 1ce3>	<0903, 1ce5>		89a	removed	vaidika visarga vaamatah adhoga
			1ce6			1ce2	vedic sign reversed visarga anudatta vaidika dakshinatah adhoga
			1ce7				vedic sign visarga udatta with tail
			<0903, 1ce7>		89c	removed	vaidika visarga dakshinnatah uurdhva vakra
			1ce8				vedic sign visarga anudatta with tail
			<0903, 1ce8>		89d	removed	vaidika visarga vaamatak adho vakra

L2/07-343 proposes the encoding of pieces while L2/07-39x proposes the encoding of combinations of pieces.

Peter Scharf, on southasia list, 2007-11-07:

> In their meeting on 1 November in Paris, Joshi concurred that encoding the accent marks separately from the visarga which they accent would provide these advantages and agreed with the proposal to encode them thus in spite of reservations regarding the difficulties font designers would encounter in positioning the 1ce3 to the left of the visarga.

> Conversely, Scharf accepted the possibility that the flourishes that appear on Joshi and Irani's 089c and 089d may be contours that depict tonal melodic flourishes. Further evidence of this from Vedic recitation or texts describing it would strengthen the case for a character encoding of the more elaborate udatta and anudatta visarga accents separate from that of the simpler udatta and anudatta accents. Scharf and Everson figure 7Bb, in n3366 p. 24 shows the simple and the flourished udatta accents in red marking the underlying visarga in black in a manuscript. The fact that both occur in the same passage probably indicates that they are intended to mark a significant difference, and the fact that they are written in a different ink indicates that they are independent characters from the visarga that they embellish.

Ganti Shantosh, on the southasia list, 2007-12-12:

> 1) 08AA : It may be discussed under 3.5, being Svarita sign and semantically it is not associated with Ardhavisarga.
>
> 2) 0898,0899,089B,089A are semantically well associated with the visuals of two vertical dots (as Visarga) and hence we have recommended the separate codes for all of the above , integrated with the other curvilinear elements in 0899,089B & 089A.This will help to create the plain-text of Vedic Sanskrit without much complexity.
>
> 3) Further, it may be agreed that the composed versions for 0898, 0899, 089B, 089A with two codes might help in adding an extra colour(deep red),but it is not observed in any printed source material as revealed in the support documents provided.
>
> 4) This approach will add more complexities in terms of positioning these curves(0899,089A,089B) with no economical gains and further, in the font area default Visarga(0903) may have to be substituted with another Visarga of broader width to accommodate 0898,0899,089A,089B characters with a post context reference.
>
> 5) The case of 089C,0890: The supporting documents reflect the need for these two cases. However, if 089C & 089D is treated as a variant of 089B & 089A respectively (and endorsed by scholars) then we could reconsider the above two codes.
>
> This may raise another issue of provision codes for variant-one and variant-two(at least),as suggested by Miachel Everson in the document Encoding vedic Accents dated 2000-04-22
>
> This is for further discussion.

Peter Scharf, on the southasia list, 2008-01-15:

> I feel very strongly that the svarita markings on visarga be kept as separate characters to enable character level color coding of accents, as is evidenced in manuscripts. The fact that printed texts did not capture this feature of free-hand writing does not justify continuing the inability to capture Vedic writing systems properly in the digital medium.
>
> If evidence does show that 089C & 089D had a different significance, for instance that the tonal pattern is more complex, I would favor encoding the svarita elements separately from the visarga here as well.

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
		1ce4	1cf1				vedic sign ardhavisarga
					89e	removed	vaidika jihvaamuliya vajra
					89f	1ce3	vaidika jihvaamuliya upadhamaaniya

The UTC earlier approved *U+0C71 TELUGU SIGN ARDHAVISARGA (proposed in L2/06-250, same shape as 1ce4, but combining), but it was pulled from the ballot by WG2 when it was realized that it was probably better treated as a general Vedic sign, rather than as a specifically Telugu sign.

Peter Scharf, on southasia list, 2007-11-07:

> In their meeting in Paris 1 Nov., Joshi argued that a sharp-cornered wedge shaped half-visarga is distinct in shape from the rounded shape so that two characters 089e and 089f are justified. Since the Kannada signs are already encoded, Joshi proposes a new character with common properties rather than changing the Kannada sign's properties and the insertion of remarks concerning equivalence of 089e with Kannada 0cf1 and of 089f with 0cf2. Remarks of equivalence should be added under the Kannada characters as well. Scharf concurs that 1ce4 can be merged with 089f and that 089e is the proper shape for the jihvaamuliya, i.e. not an x but wedges approaching each other. He maintains no objection to Joshi's proposal for encoding the vajra and gajakumbha but notes that the latter shape is commonly used both for jihvamuliya and upadhmaniya, which perhaps should be indicated in a remark.

Ganti Shantosh, on the southasia list, 2007-12-12:

> The case of 089E & 089F: The two separate signs are semantically and visually two different signs which are proposed for one in the shape of Vajra(089E,angular weapon) and the other one as a Gajakumba(089F,variety of pot).Since, these two signs are associated grammatically with two different situations to grant them two separate codes is in order.

Peter Scharf, on the southasia list, 2008-01-15:

> I don't see evidence of the semantic distinction between vajra and gajakumbha on pp. 52-53 of L2/07-395,396,397.

3.9 Nasals

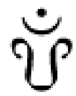
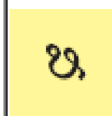
accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	

		900	a8f2			900	devanagari sign inverted candrabindu vaidika adhomukha candrabindu
		a8f2	a8f3			1cd0	devanagari sign spacing candrabindu vaidika candrabindu
y		a8f3	a8f4		889	1cd1	devanagari sign candrabindu virama vaidika anusvaara candrabindu tiryak
y		a8f4	a8f5		88d	1cd5	devanagari sign double candrabindu virama vaidika anusvaara dvi candrabindu tiryak
			a8f6				devanagari sign candrabindu one
y		a8f5	a8f7		88a	1cd2	devanagari sign candrabindu two vaidika anusvaara candrabindu sadvi
y		a8f6	a8f8		88b	1cd3	devanagari sign candrabindu three vaidika anusvaara candrabindu satri
y		a8f7	a8f9		88c	1cd4	devanagari sign candrabindu avagraha vaidika anusvaara candrabindu saavagraha

Peter Scharf, on the southasia list, 2007-11-07:

> Joshi [...] wished to see evidence that 0900 inverted chandrabindu occurs in mss. and is not an editorial invention. Rosenfield has confirmed that it does occur in Kathaka mss. and is obtaining the evidence.

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
		1ce5	1ce9				vedic sign anusvara antargomukha
		<1ce5, 0902>	<1ce9, 0902>		88e	1cd6	vaidika anusvaara antarmukha
			1ceb				vedic sign anusvara vamagomukha
			<1ceb, 0902>		88f	1cd7	vaidika anusvaara vaamamukha
			<1ceb,		890	1cda	vaidika anusvaara vaamamukha sacandra

			0901>				
		1ce6	1cea				vedic sign anusvaara bahirgomukha
		<1ce6, 0902>	<1cea, 0902>		893	1cd9	vaidika anusvaara bahirmukha
		<1ce6, 0901>	<1cea, 0901>		894	1cdb	vaidika anusvaara bahirmukha sacandra
		1ce7	1cec				vedic sign vamargomukha with tail [EM: I suspect the "r" should be removed; see 1ceb]
		<1ce7, 0902>	<1cec, 0902>		891	1cd8	vaidika anusvaara vaamamukha savakra

In all but one example, there is an anusvara or candrabindu component (there may be other signs as well). The only exception is example 8Ja of L2/07-343 which shows 1ce7 alone.

The approach proposed by L2/07-343 is to encode the unardorned signs, with the understanding that U+0902 DEVANAGARI SIGN ANUSVARA or U+0901 DEVANAGARI SIGN CANDRABINDU would be used as necessary. The basis is essentially to cut down on the number of characters to be encoded.

The approach proposed by L2/07-39x is to encode the combinations. The basis is that only the combinations are meaningful. The exception of example 8Ja is explained by:

> The Sign 1CE7 by itself is observed in some places but this could be because of composing errors as observed in "Maadyandina Asskhiyaama Satapathabraahmanam, Bharatiya Vidya Prakashan, Varanasi,1986,Page:7"where the same word repeated twice on the same page in lines 11 & 13. The word "havishi" is having 1CE7 with anudatta and 0891.
>
> To avoid such errors 0891 is needed or needed to be encoded.

Peter Scharf, on southasia list, 2007-11-07:

> In their meeting in Paris 1 Nov. Joshi argued that the difficulties of positioning multiple diacritics on 1ce5, 1ce6, and 1ce7, which never appear alone as such, justifies the encoding the greater number of characters with diacritics included. Scharf maintains no objection to Joshi's handling of these signs.

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	

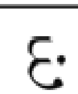
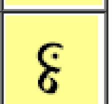
		<0903, 1ce2, 1ce3>	<0903, 1ce4, 1ce6>		897	removed	vaidika anusvaara dvi bindu avagraha

Ganti Shantosh, on the southasia list, 2007-12-12:

> Comment about 0897 : In L2/07-343 under figure 8Kb only the code 1CE8 & 0895 has been coded. However , the observation "The latter also shows VEDIC TONE VISARGA UDATTA and VEDIC TONE VISARGA ANUDATTA combined on a visarga in final position." has not been identified as a candidate for a code point. However the same sign has been found in "Sukla Yajurveda Samhitaa, Vasudev Laksmana Panasikara,Hindi vyakhyakar:Dr.Raamakrishna Saastri,Choukhamba VidyaBhavan,Varanasi,Page:102,Line:2"in a Padapaatha corresponding to Sahityapaatha on the same page(left column bottom) as an interpretation of Anusvaara sign 0893 and / or (1CE6,0902). Therefore the sign 0897 is presumed to be another type of Anusvaara appearing in Padapaatha. Hence, it is treated as vedic Anusvaara Dvi Bindu Avagraha and not Udatta Anudatta Visarga.

Peter Scharf, on the southasia list, 2008-01-15:

> the shape occurs with moderate frequency to represent visarga with tonal mark. A single instance in which a presumption is made that it corresponds to nasalization is not sufficient evidence to override the frequent use it has as toned visarga. Scharf and Everson prefer not to encode the sign but to produce it with the combination of visarga + udatta + anudatta.

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
		1ce8	1cee		892	1cdc	vedic sign hexiform long anusvara vaidika anusvaara anugami
			1cef		895	removed	vedic sign long anusvara
			1cf0		896	1cdd	vedic sign rthang long anusvara vaidika anusvaara tthasadrisha

Peter Scharf, on the southasia list, 2007-11-07:

> On the http://sanskritlibrary.org/ site under Vedic Unicode proposal The document VedicMarks2007Mar10V.pdf Section C. Conclusions regarding Nasals, 1. Six dot is synonymous with rthang, presents evidence to show the synonymity of these characters. Six-dot (DAKSHINNAMUKHA) and Rthang (TTHASADRISHA) are typographic imitations of the VEDIC SIGN LONG ANUSVARA (CANCUMUKHA); all indicate the same phonetics in the same contexts.
>
> Although Joshi concurs that the six dot and rthang (see L2/07-397, p. 44) are developments of 1ce8=0895, he argues that they deserve separate character status because their distinctive shapes are now commonly found, recognized, and referred to. In their meeting 1 November in Paris,

Scharf accepted Joshi's proposal to encode 0892 and 0896 as separate characters from 0895 cancumukha which is identical to Scharf and Everson's n3366: 1ce8.

Ganti Shantosh, on the southasia list, 2007-12-12:

The code point 0895 is observed in manuscript (Refer L2/07-397 document, Page no:44 Source Point No:4) and printed books as per document L2/07-397. In the same document L2/07-397 Page-43, the Source Point 1 and 2 shows the evidence for the code point 0895 itself.

Whereas, 0896 is the evolved form of 0895 for the print purpose in Northern editions. The horizontal line in this character has been Stressfully introduced to match with the top line of Devanagari script. As in the L2/07-397 document, Page no:44 Source Point No:4, one can observe the earlier handwritten version of this character.

It is also noted that such version was adopted in a typeface as seen in L2/07-397 document, Page no:44 Source Point No: 2 & 5. This version in our opinion is leading to the character code suggested under 0985 and 1CE8 in L2/07-343. This also establishes the fact that 0895 or 1CE8 is not the source of 0892.

In fact,"Maadyandina Asskhiyaama Satapathabraahmanam, Bharatiya Vidya Prakashan, Varanasi,1986,Page:7" clearly shows the separate and distinct usage of 0892,0895 and 0896.

Hence , the three separate codes as 0892,0895 & 0896 have been recommended in L2/07-397.

Peter Scharf, on the southasia list, 2008-01-15:

Scharf and Everson agree that 0896 developed as described from 0895 but disagree with the statement, "This also establishes the fact that 0895 or 1CE8 is not the source of 0892." On the contrary, 0892 is similarly a typographic imitation of 0895. We would have no objection to separately encoding these if some justification could be provided for distinguishing them as separate characters rather than as glyph variants. However, the three shapes occur without apparent difference. The synonymy of the boomerang and the six-dot is evident from the evidence in sections D2-3 of the document: http://www.brown.edu/Departments/Classics/archive/Scharf/VajasaneyiAdditionalMarksV.pdf (DRGG refers to Daulata Rama Gauda Gupta's edition of Vajasaneyisamhita) I am unable obtain the reference in order to verify the statement: "In fact,"Maadyandina Asskhiyaama Satapathabraahmanam, Bharatiya Vidya Prakashan, Varanasi,1986,Page:7" clearly shows the separate and distinct usage of 0892,0895 and 0896."

3.10 Additions for Devanagari

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
		<0905, 0881>			880	removed	indo iranian avesta letter sarekah candra long a

y	◌ॕ	955	955	◌ॕ	881	removed	devanagari vowel sign candra long e indo iranian avesta vowel sign sarekha candra long a
		<0906, 094B>		आो	882	removed	indo iranian avesta letter long aaoo
				◌ो	883	removed	indo iranian avesta vowel sign long aaoo
y	ॹ	979	979	ॹ	884	removed	devanagari letter zha indo iranian avesta letter zh
y	ॺ	97a	97a	ॺ	885	979	devanagari letter heavy ya vaidika letter jjya
				ळ्ह	886	97a	vaidika letter llha
	꣸	973	973	꣸		1cf1	devanagari sign pushpika
	[illegible]	974	974	[illegible]		1cf5	devanagari sign divider vaidika trutikaa

Peter Scharf, on the southasia list, 2007-11-07:

> Joshi accepts 973 and 974.

Ganti Santosh, on the southasia list, 2007-12-10:

> In Proposal submitted by Michael Everson and Peter Schraf et al. L2/07-095,-095R,-230,343 only one Avestan dependent vowel sign 0955 Devanagari Vowel sign Candra Long E was included. We had put forward our views of inclusion of the Independent Vowel Letters and other Letters in our Observation 4 (first point) in the document L2/07-388.
>
> It is observed that so far 15 vowels and 34 consonants have been identified for Avesta pronunciation and transcription in Devanagari Script. (source: Avesta Part I by Kanga and Sontakke, Vaidika Sanshodhan Mandal, Pune) In addition to Short E and Short O there is a vowel pronunciation ARRA as in 'arrackal' which needs attention. As well as there are some peculiar consonant sounds of KH, for which reserved points were kept in 0887 and 0888 in L2/07-395,-396,-397.
>
> Obviously this needs more detailed probe. Therefore we tend to agree with the remarks made by Dr Michael Witzel (in his mail dated 19th October 2007 to Peter Scharf further forwarded to Prof R K Joshi) and with Peter Scharf's opinion (as expressed in his mail dated 8th November 2007 to Prof R K Joshi) that it may be advantageous for us to move all these into another area by themselves or into a separate proposal.

> Therefore we may not consider Avestan characters into our Revised proposal due for the upcoming UTC meeting in Feb 2008. This may cause repercussion in the accepted list of characters accepted during the October 2007 UTC meeting #113.

Peter Scharf, on the southasia list, 2008-01-14

> Scharf and Everson concur that 0881 (= n3366 0955) and 0884 (= n3366 0979) require encoding, but not with the encoding of characters 0880, 0882, 0883 for the following reasons.
>
> 0880 can be produced by the sequence 0905 + 0881; 0881 is identical to n3366 0955.
>
> 0882 can be produced by the sequence 0905 + 0883; it would also be able to be produce by the sequence 0906 + 094B. It is undesireable to have the same glyph producible by more than one sequence. Therefore it is preferable not to encode 0883 but to produce 0882 just by the sequence 0906 + 094B.
>
> Apparently the CDAC proposal wishes to apply the principles of ISCII that underly the initial encoding of Indic scripts to Devanagari transcription of Avestan and to encode Avestan characters under analogous duplicate forms, i.e. both stand alone vowel forms and combining vowel forms. It is questionable whether this line of encoding should be pursued.
>
> There is no doubt about the necessity of the Avestan characters for which the CDAC proposal and Scharf and Everson n3366 are in agreement. It is therefore undersireable to withdraw them, although Scharf and Everson have no objection to them being moved into a separate area for the transcription of Avestan and other scripts into Devanagari.

3.11 Miscellaneous

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
				卐	8cd	1cf4	vaidika swastika

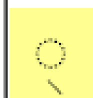
The UTC already approved four related characters, in particular 0FD5 TIBETAN SYMBOL GYUNG DRUNG NANG -KHOR, as documented in L2/07-148.

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
				◌।	8ce	1cf2	vaidikka maatraakaal
				◌॥	8cf	removed	vaidika apurrnnaanka ardha

Sobi, on southasia list, 2008-01-03:

08CE Vaidikka Apuurnnaanka Paada is graphically shorter as compared to danda and semantically is indicative of duration of certain time ie 1/4th of Maatraa Kaal

08CF Vaidika Apurrnnaanka Ardha is again graphically shorter as compared to double danda and semantically is indicative of duration of certain time ie 1/2 of Maatraa Kaal

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
			1ced		8d0	1cf3	vedic sign tiryak vaidika tiryak

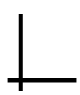
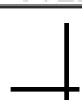
Peter Scharf, on the southasia list, 2007-11-07:

> Joshi argues that the diagonal stroke beneath gomukhas (see sec. 3.9 nasals esp. chars n3366 1ce5-1ce7 or Joshi 088e-0894, 0891) has a different history from the virama which is used only under consonant signs. The combining sign tiryak would allow for the composition of several glyph variants of nasal marks common in mss. and printed texts.

Sobi, on southasia list, 2008-01-03:

> 08D0 Vaidika Tiryak is not same as Viraama Virama (Halant) is used to suppress inherent vowel of a consonant where as Tiryak doesnt do so. Tiryak is used to indicate the qualitative aspect of svara of anusvara/anunasika. The word Tiryak is been used by Pandit. Satyavrath Shastri (Pg: xxi) in the introductory note in his book "Vaidika Vyakran -Translation of Vedic Grammar by Arthur A McDonald" (Motilal Banarasidas, 1971)

3.12 Jaiminiya

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
						a8fe	vaidika prarambha chihna
						a8ff	vaidika antha chihna

4 Document history

- Wednesday January 30, 2008: folded L2/08-050 and L2/08-042/043 in.
- Saturday January 19, 2008: folded in the discussions on the southasia list up to now; made 3.1 more complete
- Monday November 19, 2007: pointing to local copies of the docs
- Monday November 5, 2007: typos fixed
- Monday October 29, 2007: first version

L2/08-042

Proposal for Encoding of Vaidika Characters & Symbols in Unicode

Doc Type:	**Working Group Document**
Title:	**Proposal to encode 68 characters for Encoding of Vaidika Sanskrit Characters & Symbols in the BMP of UCS**
Source:	**Ministry of Communications and Information Technology Government of India**
Status:	**Institutional Member's Contribution**
Action:	**For consideration by UTC**
Replaces:	**L2/07-395, L2/07-396, L2/07-397**
Date:	**23 January 2008**

This Draft proposal dated 23 January 2008 is prepared by Prof. R. K. Joshi and Dr. Alka S. Irani and her team of LCG, C-DAC Mumbai in collaboration with Micheal Everson and Peter Scharf and their team and is a consolidation of their earlier proposals L2/07-39{5,6,7} dated 2007-10-18 and L2/07-343 dated 2007-10-18 respectively.

This proposal was advised by Shri. Bharat Bhushan, JS&FA, GC, LCG, Ministry of Communications and Information Technology (MC&IT), Govt. of India, guided and supervised by Smt. Swaran Lata, Director & HOD (HCC DIV), MC&IT, Govt. of India and co-ordinated by Shri. Manoj Jain, Joint Director, HCC, MC&IT, Govt. of India.

This proposal was drawn in consultation with various scholars, technologists and representatives of Institutes from India and abroad. Their contribution at various stages is greatly appreciated and hereby acknowledged.

The following documents (duly put up on the South Asian Sub-committee as per Unicode UTC# 113, Oct 2007 *http://www.unicode.org/~emuller/southasia/vedic/*) were duly considered in this revised combined single proposal.

Documents

The Everson, Scharf et al. proposals:

- 2007-10-18: L2/07-343; differences with L2/07-230 in L2/07-394
- 2007-07-26: L2/07-230; history of that document in L2/07-262
- 2007-04-26: L2/07-095R
    - Comments in L2/07-388
        - Comments in L2/07-400

The Government of India proposals:

- 2007-10-10: L2/07-395, L2/07-396, L2/07-397
- 2006-05-10 L2/06-185

Comparisons:

- 2007-10-18: L2/07-401: L2/07-343 vs. L2/07-39{5,6,7}
- 2007-08-08: L2/07-271: L2/07-230 vs. L2/06-185
    - Response in L2/07-386
        - Comments in L2/07-400

Opening Remarks

In the earlier proposal document L2/07-39{5, 6, 7} 79 character codes were identified under the block entitled Vaidika Extensions and requested for its inclusion in the suitable slot in the BMP of UCS.

And, in the earlier document No.L2/07-343 dated 2007-10-18, 53 characters were identified under Devanagari extended (23) and Vedic extensions (24) and Devanagari (6).

The comparative summary and comments on the above proposals in the South Asia sub-committee *http://www.unicode.org/~emuller/southasia/vedic/* under 3.1 to 3.11, has been taken into account in preparing of this Combined Revised Single Proposal (as per UTC# 113 advise). We have made our observations for Samavedic letters and digits (3.3) and Samavedic, others (3.4) and have presented our recommendations for encoding the same in Vaidika extensions B.

In this Revised Combined Single Proposal, the 68 characters for encoding purpose are as follows:
In the Vaidika Extensions A (1CD0 – 1CFF), 38 characters have been recommended for codes, and in Vaidika extensions B (A8E0 – A8FF), 27 characters have been recommended for codes which are for Samaveda. The two codes A8FE and A8FF namely Vaidika prarambha Chihna and Vaidika Antha Chihna have been provided for addressing syllabic tonal/accent marks in Jaiminiya branch. Three characters has been recommended to be added in Devanagari 09 block. The Samavedic syllabic marks as found in Jaiminiya branch have been kept open for the want of adequate document evidences.

This draft proposal have been discussed and consolidated with the help of many Vaidika Sanskrit scholars, Sanskrit academicians, linguists, technologists from various academic research institutions in India and abroad and Government of India officials. Their valuable contributions are duly acknowledged.

Introduction

The ancient holy text in India is known by the name of the *Veda*. The word *Veda* is derived from the root verb *"vid"- to know, to attain the knowledge*. There are 4 *Vedas* namely *RigVeda, YajurVeda, SaamaVeda* and *AtharvaVeda*. Composed in verse format using Sanskrit language, the contents of these *Vedas* are of spiritual, philosophical and practical nature and are to be vocalized in terms of recitation, chanting, singing, etc. The collections of the *Mantras* (the compositions in poetry and prose form) of the four *Vedas* were further divided into *Shaakhaas* (branches). The classes of reciters known as Vaidikas belonging to individual branches have retained their chanting characteristics while vocalizing the *Mantras*. This oral mode acquired a great significance in ancient India in terms of Teacher-students tradition *(guru-shishya paramparaa)*. At later stage such oral recitations had to be written down by *Pandits* in order to retain the knowledge in the written mode. To write such Vaidika text with vocal nuances, various signs (*svaraankana-paddhati*) were devised and placed around syllables. These are called Vaidika accent and tonal signs. It is interesting to note that a single chant if vocalised by the *Vaidikas* of different branches, would have slight variation in terms of nasalization, intonation, continuum, stress etc. And to indicate these differences, many variants of a single sign have been developed. For example, there are 15 variations of *Anusvaara* indicated by 15 graphic signs with slight variations in their visual forms. The selective usage of these signs indicates that the particular text is from a particular branch of *Veda*.

It is observed that there is a *Vaidika* tradition of hand movements *(Hasta-Mudraas)* to suggest the proper way of intonation while chanting the *Mantras*.

Sanskrit is one of the most ancient languages of the world, which has moulded the culture and the thought systems not only of India but also of many other countries in Asia. Sanskrit is not a dead language. Sanskrit was for over a millennium, a living spoken language with a considerable literature of its own. Besides works of literary value, there was a long philosophical and grammatical tradition.

Many Universities in India and abroad are involved in the Vaidika studies as a specialized subject. Traditional *Vaidika Paathashaalaas* in various parts of India are involved in imparting the practice and knowledge of *Vaidika* oral tradition. Temples and *Mathas* are providing support for learning and teaching Vaidika texts. Various research institutes are actively involved in bringing out critical editions of the Vaidika texts and various research activities in this field.

1. The range of Vaidika texts

The Vaidika texts refer to the four groups of *Vedas* namely *RigVeda, YajurVeda (Shukla and Krishna), SaamaVeda* and *AtharvaVeda*. The range of Vaidika texts extend to their respective *Shaakhaas, Upashaakhaas* (branches-subbranches), *Samhitaas, Braahmannas, Aarannyakas, Upanishads, Shrautasuutras, Praatishaakhyas* and *Shikshaas*. Originally, the Vaidika text (mostly in verse form)

–*Samhitaas* along with their respective *Padapaathas* exist in the oral mode and were passed on from *Guru* to *Shishya* through various processes such as *Shravanna* (listening), *Anuchchaaranna* (repetition), *Arthabodha* (understanding of the meaning), *Kannthasthiikaranna* (memorisation), *Charchaa-Samvaada* (discussion) and *Prashnottara* (Questions &Answers).
Later on when these texts were written (with appropriate methodologies and materials, the need was felt to introduce *Vaidika Svaraankana Chihnas* (accent/tonal marks, signs and symbols) as a guide for proper pronunciation (and hence proper reading) of such texts.

The *Shikshaas* cover the study of the terms such as *Varna* (letters of alphabet), *Svara* - (accents like *Udaatta, Anudaatta* and *Svarita*), *Maatraa* (the time measurement required for the pronunciation), *Bala* (stress - in context to *sthaana* and *prayatna*) etc.

The *Praatishaakhyas* constitute studies on phonetics, which prevailed in ancient India in different schools of the *Vedas*. Each *Praatishaakhya* with the ancient phonetic system was applicable to a particular school of each *Veda*. Some of the *Praatishaakhyas* such as *Taittiriiya* covered subjects like *Uchchaaranna-kalpa* - formation of articulate sounds and more of their production.

2. Vaidika texts with Svaraankana Chihnas

One of the most significant characteristics of Vaidika language is its proper accentuation system in utterances of its words, sentences as well as prose and versified compositions.
Vaidika text with *Svaraankana Chihnas* is available in various groups of Vaidika literature such as *Samhitaas*, *Braahmannas*, *Aarannyakas* and *Upanishads*. Besides, various *Pratishaakhyas* and *Shikshaagranthas* have discussed the theoretical as well as grammatical and practical aspects of `*Uchchaaranna'* (accentology) supported by examples of *Svaraankana Chihnas* (accentography) as well as their contextual rules.

Various branches of *RigVeda, YajurVeda, SaamaVeda* and *AtharvaVeda* are marked with `*Svaras'.* It is observed that the Vaidika text and its accent marks vary in their application and presentation as per its branch, sub-branch, tradition and location.

For example:
In *RigVeda*, the *Udaatta Svara* is left unmarked. In *Rigveda* and *YajurVeda* the *Svarita Svara* is marked with short vertical line on the top of a syllable. The same sign appears as *Anudaatta* mark below a syllable in *AtharvaVeda* (*Paippalaada Shaakhaa*).

3. The importance of Svaraankana Chihnas

Svaraankana Chihnas are very useful devices in more than one way. On one hand these marks represent nuances of pronunciation and on the other hand these marks are used for semantic differentiation as well.

3a. *Svaraankana Chihnas* are used in each *Pada* (word) as to help to understand the proper meaning (*Arthabodha*) of a *Mantra*.

3a.1 The knowledge of the kind of *Samaasapada*

इ॒न्द्र॒श॒त्रुः

- The killer of *Indra*

Tatpurusha samaas

इन्द्र॑शत्रुः

- The one for whom *Indra* is an enemy
Bahuvriihi samaas

3a.2 For Gender classification

मिह॑ः

- Adjective, Feminine Gender

मि॒हः

- Adjective, Masculine Gender

3b *Svaraankana Chihnas* are useful in context of deciding the grammatical status of a *pada*.

अप॑स्

- Noun

अ॒पस्

- Adjective

3c Svaraankana Chihnas are used in context to sentence classification. Some words in a sentence are accented and some are not, creating the correct meaning.

3c1. The verb in the principle clause is unaccented whereas in the subordinate clause it is accented.

3c2. In a given sentence, if a speaker does not give any stress on the *pada*, then it is marked as a *Sarvaanudaatta*. Whereas, if a speaker wants to give a stress in the beginning of the word then that is accented.

3c.3 If there is a concept of addressing someone (vocative) in the beginning of a sentence then the first syllable of the *pada* will be accented.

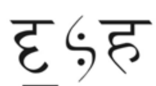
4. The Contextual aspect of Svaraankana Chihnas

The *Svaraankana Chihnas* of Vaidika Sanskrit are not independent signs. They do not behave as punctuation marks. The *Svaraankana Chihnas* are positioned all around the syllable. Some of them are of zero width and some have positive widths. However these marks with positive widths cannot be termed as letters. Most of these marks are dependent on the context i.e. preceding syllable and or following syllable. Further these positive width marks can take zero width marks above or below of them and are governed by linguistic rules as per grammar.

4.1 In *Samhitaa* text and in the *Padapaatha*, different signs are noticed in case of the same *pada*. (*Vaajasaneyi Maadhyandina Shukla YajurVeda Samhitaa* pg102/5.27).

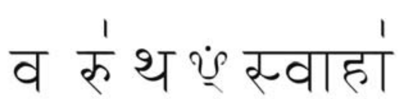


- *Samhitaa*



- *Padapaatha*

4.2 Vaidika *Anusvaara*, when it occurs in the *Samhitaa* is affected by the pronunciation of the subsequent sound. When *Samhitaa* is split into *padapaatha*, due to the pause that follows after the *Anusvaara*, the *Anusvaara* sounds differently so it is shown with two different signs in the *Samhitaa* and *Padapaatha*.



- *Samhitaa*

। वरु॑थम्॒ । स्वाहा॑ ।

- *Padapaatha*

Here the *Anusvaara* is changed to `M' in the *Padapaatha*.
Vaajasaneyi Maadhyandina Shukla YajurVeda Samhitaa (pg106/5.35).

4.3 The *Anusvaara*, which is inside the *pada* remains as it is.
This *Anusvaara* is not caused by any factor outside of that word itself, but is there in the process of the formation of the *pada.*
Vaajasaneyi Maadhyandina Shukla YajurVeda Samhitaa (pg129).

प्रशा॑ꣳसिषो

- *Samhitaa*

प्र । श॒ꣳसि॒ष॒ः

- *Padapaatha*

All these and similar cases of an *Svaraankana Chihna* are appropriately reflected in the property data provided in this draft proposal.

5. The identified range, positioning and compositions of *Svaraankana Chihnas*

5a. The total number of 32 Vedic Sanskrit signs were identified in the `Extended character set for Vedic' in the ISCII document Annex-G (IS13194: 1991). The extension character (EXT), defined in ISCII, was to be followed by another character in the range of A1 Hex to EE Hex, to yield additional 32 characters needed for Vedic Sanskrit text with such accent marks.

5b. Further, the additional Vaidika accent signs (*Svaraankana Chihnas*) were observed from various sources- manuscripts/printed texts.

These signs were discussed and debated regarding their multiple usages, redundancies, earlier technology restrains, multiple shapes and usability factors.

5c. From the total of identified 102 Vaidika signs, the codes for 68 Vaidika characters have been chosen and recommended as candidates for Unicode in this draft proposal.

The 68 Vaidika signs can be classified as follows:

• VAIDIKA ANUSVAARA	14
• VAIDIKA VISARGA	6
• VAIDIKA SVARITA	13
• VAIDIKA SAAMASVARA	25
• VAIDIKA SYMBOLS	5
• VAIDIKA JAIMINIYA SPEACIAL SIGNS	2
• DEVANAGARI	3

Through this range of codes, following texts can be addressed:

1. **Rigvedic Text :** for example 1CE7,1CEF from Vaidika Extensions 0951,0952 from Devanagari etc
2. **Yajurvedic Text:** for example 1CEB,1CEA,1CE9,1CE5,1CE8 etc
3. **Samavedic Text:** for example A8E0, A8E1, A8E2, A8E3, A8E4, A8E5 etc.
4. **Atharvavedic Text:** for example 1CE4,1CEC,1CED etc
5. **Nasal/Tonal narks:** for example 1CD1,1CD8,1CDC,1CE3 etc
6. **Vaidika Symbols:** for example 1CF1, 1CF2, 1CF3 etc
7. **Samavedic Text:**

Jamaniya Shaakha:
In case of *Samavedic text* of *Jaiminiiya Shaakha*, it is observed that they have different system of syllables to be used as accent marks. These marks need to be handled through a separate soft tool or can be addressed by introducing two new codes namely A8FE & A8FF.

6. The compositional rules

The *Vaidika Swaraadi Chihnas, Vaidika Svaraankana Chihnas, Vaidika Saamasvara Chihnas* are to be rendered above, below and/or right side of the syllable.

The types of *Svaraankana Chihnas* and their compositional rules are given separately

VAIDIKA EXTENTIONS A

	1CD	1CE	1CF
0	1CD0	1CE0	1CF0
1	1CD1	1CE1	1CF1
2	1CD2	1CE2	1CF2
3	1CD3	1CE3	1CF3
4	1CD4	1CE4	1CF4
5	1CD5	1CE5	1CF5
6	1CD6	1CE6	1CF6
7	1CD7	1CE7	1CF7
8	1CD8	1CE8	1CF8
9	1CD9	1CE9	1CF9
A	1CDA	1CEA	1CFA
B	1CDB	1CEB	1CFB
C	1CDC	1CEC	1CFC
D	1CDD	1CED	1CFD
E	1CDE	1CEE	1CFE
F	1CDF	1CEF	1CFF

VAIDIKA EXTENTIONS B

	A8E	A8F
0	A8E0	A8F0
1	A8E1	A8F1
2	A8E2	A8F2
3	A8E3	A8F3
4	A8E4	A8F4
5	A8E5	A8F5
6	A8E6	A8F6
7	A8E7	A8F7
8	A8E8	A8F8
9	A8E9	A8F9
A	A8EA	A8FA
B	A8EB	A8FB
C	A8EC	A8FC
D	A8ED	A8FD
E	A8EE	A8FE
F	A8EF	A8FF

DEVANAGARI

0900	0979
097A	

Summary:
VAIDIKA EXTENTIONS A = 38 signs
VAIDIKA EXTENTIONS B = 27 signs
DEVANAGARI = 3 sign

TOTAL = 68 signs

VAIDIKA ANUSVAARA		
1CD0		VAIDIKA CANDRABINDU
1CD1		VAIDIKA ANUSVAARA CANDRABINDU TIRYAK
1CD2		VAIDIKA ANUSVAARA CANDRABINDU SADVI
1CD3		VAIDIKA ANUSVAARA CANDRABINDU SATRI
1CD4		VAIDIKA ANUSVAARA CANDRABINDU SAAVAGRAHA
1CD5		VAIDIKA ANUSVAARA DVI CANDRABINDU TIRYAK
1CD6		VAIDIKA ANUSVAARA ANTARMUKHA
1CD7		VAIDIKA ANUSVAARA VAAMAMUKHA
1CD8		VAIDIKA ANUSVAARA VAAMAMUKHA SAVAKRA
1CD9		VAIDIKA ANUSVAARA BAHIRMUKHA
1CDA		VAIDIKA ANUSVAARA VAAMAMUKHA SACANDRA
1CDB		VAIDIKA ANUSVAARA BAHIRMUKHA SACANDRA
1CDC		VAIDIKA ANUSVAARA ANUGAMI
1CDD		VAIDIKA ANUSVAARA TTHASADRISHA

VAIDIKA VISARGA		
1CDE		VAIDIKA MADHYEREKHAA
1CDF		VAIDIKA DAKSHINNATAH UURDHVAGA
1CE0		VAIDIKA VAAMATAH ADHOGA
1CE1		VAIDIKA VAAMATAH UURDHVAGA
1CE2		VAIDIKA DAKSHINATAH ADHOGA
1CE3		VAIDIKA JIHVAAMULIYA UPADHAMAANIYA

VAIDIKA SVARITA		
1CE4		VAIDIKA SVARITA DVI VAKRA KHANDA
1CE5		VAIDIKA SVARITA UURDHVA DVI REKHAA
1CE6		VAIDIKA SVARITA UURDHVA TRI REKHAA
1CE7		VAIDIKA UURDHVA VAKRA REKHAA
1CE8		VAIDIKA SVARITA ADHO VAKRA REKHAA
1CE9		VAIDIKA SVARITA ADHAH ARDHA VAKRA
1CEA		VAIDIKA SVARITA ADHO NYUBJA
1CEB		VAIDIKA SVARITA ADHAH KONNA
1CEC		VAIDIKA SVARITA ADHO REKHAA
1CED		VAIDIKA SVARITA ADHO BINDU
1CEE		VAIDIKA SVARITA ADHO SAMYUKT REKHAA
1CEF		VAIDIKA KAMPA
1CF0		VAIDIKA SVARITA URASI REKHAA

VAIDIKA SYMBOLS		
1CF1		VAIDIKA PUSHPIKA
1CF2		VAIDIKA MAATRAAKAAL
1CF3		VAIDIKA TIRYAK
1CF4		VAIDIKA SWASTIKA
1CF5		VAIDIKA TRUTIKAA

VAIDIKA SAAMASVARA		
A8E0	०◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA SHUUNYA
A8E1	१◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA EKA UDATTA
A8E2	२◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA DVI SVARITA
A8E3	३◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA TRI ANUDATTA
A8E4	४◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA CHATUR
A8E5	५◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA PANCHA
A8E6	६◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA SHATT
A8E7	७◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA SAPTA
A8E8	८◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA ASHTTA
A8E9	९◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA NAVA
A8EA	अ◌	VAIDIKA SAAMASVARA ABHINIHITA
A8EB	न◌	VAIDIKA SAAMASVARA NAMANA
A8EC	र◌	VAIDIKA SAAMASVARA RA
A8ED	क◌	VAIDIKA SAAMASVARA KA
A8EE	उ◌	VAIDIKA SAAMASVARA U
A8EF	१र◌	VAIDIKA SAAMASVARA SVARITA EKARA
A8F0	२उ◌	VAIDIKA SAAMASVARA SVARITA DVIU
A8F1	३क◌	VAIDIKA SAAMASVARA SVARITA TRIKA
A8F2	प◌	VAIDIKA SAAMASVARA PRANNATAM
A8F3	वि◌	VAIDIKA SAAMASVARA VINATA
A8F4	ऽ◌	VAIDIKA SAAMASVARA DIRGIBAVA
A8F5	^◌	VAIDIKA SAAMASVARA KARSHANNA
A8F6	↑◌	VAIDIKA SVARITA UURDHVA SHARA
A8F7	¯◌	VAIDIKA SAAMASVARA PRENKHA
A8F8	◌״	VAIDIKA SAAMAGAAN YOGAKAALA

VAIDIKA JAIMINIYA SPEACIAL SIGNS		
A8FE		VAIDIKA PRARAMBHA CHIHNA
A8FF		VAIDIKA ANTHA CHIHNA

DEVANAGARI (23 JANUARY 2008)

0900	◌ऀ	VAIDIKA ADHOMUKHA CANDRABINDU
0979	ॹ	VAIDIKA LETTER JJYA
097A	ळ्ह	VAIDIKA LETTER LLHA

Unicode Data Properties

```
1CD0;VAIDIKA CANDRABINDU;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD1;VAIDIKA ANUSVAARA CANDRABINDU TIRYAK ;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD2;VAIDIKA ANUSVAARA CANDRABINDU SADVI ;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD3;VAIDIKA ANUSVAARA CANDRABINDU SATRI;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD4;VAIDIKA ANUSVAARA CANDRABINDU SAAVAGRAHA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD5;VAIDIKA ANUSVAARA DVI CANDRABINDU TIRYAK;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD6;VAIDIKA ANUSVAARA ANTARMUKHA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD7;VAIDIKA ANUSVAARA VAAMAMUKHA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD8;VAIDIKA ANUSVAARA VAAMAMUKHA SAVAKRA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD9;VAIDIKA BAHIRMUKHA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CDA;VAIDIKA ANUSVAARA VAAMAMUKHA SACANDRA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CDB;VAIDIKA ANUSVAARA  BAHIRMUKHA SACANDRA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CDC;VAIDIKA ANUSVAARA ANUGAMI;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CDD;VAIDIKA ANUSVAARA TTHASADRISHA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CDE;VAIDIKA MADHYEREKHAA;Mn;1;NSM;;;;;N;;;;;
1CDF;VAIDIKA DAKSHINNATAH UURDHVAGA  ;Mn;1;NSM;;;;;N;;;;;
1CE0;VAIDIKA VAAMATAH ADHOGA  ;Mn;1;NSM;;;;;N;;;;;
1CE1;VAIDIKA VAAMATAH UURDHVAGA;Mn;1;NSM;;;;;N;;;;;
1CE2;VAIDIKA DAKSHINATAH ADHOGA;Mn;1;NSM;;;;;N;;;;;
1CE3;VAIDIKA JIHVAAMULIYA UPADHAMAANIYA ;Mc;0;L;;;;;N;;;;;
1CE4;VAIDIKA SVARITA DVI VAKRA KHANDA;Mc;0;L;;;;;N;;;;;
1CE5;VAIDIKA SVARITA UURDHVA DVI REKHAA;Mn;230;NSM;;;;;N;;;;;
1CE6;VAIDIKA SVARITA UURDHVA TRI REKHAA;Mn;230;NSM;;;;;N;;;;;
1CE7;VAIDIKA UURDHVA VAKRA REKHAA;Mn;230;NSM;;;;;N;;;;;
1CE8;VAIDIKA SVARITA ADHO VAKRA REKHAA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
1CE9;VAIDIKA SVARITA ADHAH ARDHA VAKRA ;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
1CEA;VAIDIKA SVARITA ADHO NYUBJA ;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
1CEB;VAIDIKA SVARITA ADHAH KONNA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
1CEC;VAIDIKA SVARITA ADHO REKHAA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
1CED;VAIDIKA SVARITA ADHO BINDU;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
1CEE;VAIDIKA SVARITA ADHO SAMYUKT REKHAA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
1CEF;VAIDIKA KAMPA;Mn;0;NSM;;;;;N;;;;;
1CF0;VAIDIKA SVARITA URASI REKHAA;Mn;1;NSM;;;;;N;;;;;
1CF1;VAIDIKA PUSHPIKA;Po;0;L;;;;;N;;;;;
1CF2;VAIDIKA MAATRAAKAAL ;Mc;0;L;;;;;N;;;;;
1CF3;VAIDIKA TIRYAK;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
1CF4;VAIDIKA SWASTIKA;So;0;L;;;;;N;;;;;
1CF5;VAIDIKA TRUTIKAA;Po;0;L;;;;;;;;;;
A8E0;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA SHUUNYA;Mn;220;NSM;;;;;;;;;;
A8E1;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA EKA UDATTA;Mn;220;NSM;;;;;;;;;;
A8E2;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA DVI SVARITA;Mn;220;NSM;;;;;;;;;;
A8E3;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA TRI ANUDATTA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8E4;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA CHATUR;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8E5;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA PANCHA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8E6;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA SHATT;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8E7;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA SAPTA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8E8;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA ASHTTA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8E9;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA NAVA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8EA;VAIDIKA SAAMASVARA ABHINIHITA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8EB;VAIDIKA SAAMASVARA NAMANA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
```

```
A8EC;VAIDIKA SAAMASVARA RA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8ED;VAIDIKA SAAMASVARA KA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8EE;VAIDIKA SAAMASVARA U;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8EF;VAIDIKA SAAMASVARA SVARITA EKARA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F0;VAIDIKA SAAMASVARA SVARITA DVIU;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F1;VAIDIKA SAAMASVARA SVARITA TRIKA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F2;VAIDIKA SAAMASVARA PRANNATAM;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F3;VAIDIKA SAAMASVARA VINATA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F4;VAIDIKA SAAMASVARA DIRGIBAVA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F5;VAIDIKA SAAMASVARA KARSHANNA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F6;VAIDIKA SVARITA UURDHVA SHARA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F7;VAIDIKA SAAMASVARA PRENKHA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F8;VAIDIKA SAAMAGAAN YOGAKAAL;Mc;0;L;;;;;N;;;;;
A8FE;VAIDIKA PRARAMBHA CHIHNA;Cf;0;ON;;;;;N;;;;;
A8FF;VAIDIKA ANTHA CHIHNA;Cf;0;ON;;;;;N;;;;;
0900;VAIDIKA ADHOMUKHA CANDRABINDU;Mn;0;NSM;;;;;N;;;;;
0979;VAIDIKA LETTER JJYA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
097A;VAIDIKA LETTER LLHA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
```

Proposal for Encoding Of Vaidika Characters & Symbols in Unicode

Vaidika Marks Rendering Rules:

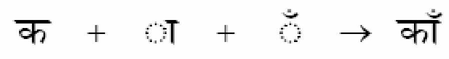
23 January 2008

Proposed revised text for R10

R 10: Other modifying marks, in particular bindus and svaras, apply to the orthographic syllable as a whole and should follow (in the memory representation) all other characters that constitute the syllable. The bindus should follow any vowel signs, and the svaras should come last. The relative placement of these marks is horizontal rather than vertical; the horizontal rendering order may vary according to typographic concerns.***The Vaidika Swaraadi Chihnas, Vaidika Svaraankan Chihnas, Vaidika Saamasvara Chihnas are to be rendered above, below and/or right side of the syllable.***

Existing Examples:

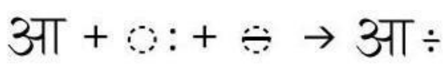
KA_n + AA_{vs} + $CANDRABINDU_n$



Additional Examples of Vaidika Swaraadi Chihna:

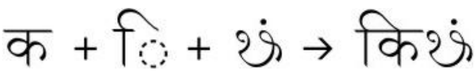
Class A: Single vowel syllable:

AA_n + VAIDIKA $VISARGA_n$

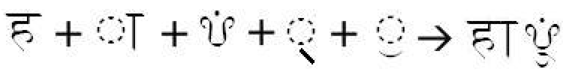


Class B: *Single consonant syllable:*

KA_n + I_{vs} + VAIDIKA $ANUSVAARA_n$

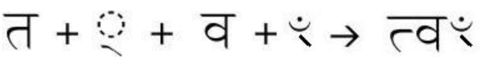


HA_n + AA_{vs} + VAIDIKA $ANUSVAARA_n$ + VAIDIKA TIRYAK + *VAIDIKA* $SVARITA_n$

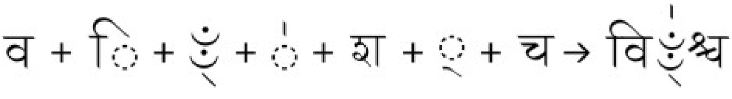


Class C: *Multiple consonant syllable:*

TA_n + $VIRAMA_n$ + VA_n + VAIDIKA $ANUSVAARA_n$



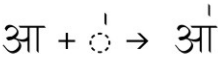
VA_n + II_{vs} + VAIDIKA $ANUSVAARA_n$ + VAIDIKA $SVARITA_n$ + SHA_n + $VIRAMA_n$ + CA_n



Examples of Vaidika Svaraankan Chihna:

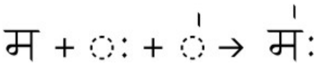
Class A: Single vowel syllable:

AA_n + VAIDIKA $SVARITA_n$



Class B: *Single consonant syllable:*

MA_n + $VISARGA_n$ + VAIDIKA $SVARITA_n$



Class C: *Multiple consonant syllable:*

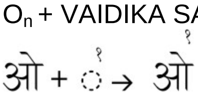
SA_n + $VIRAMA_n$ + TA_n + U_{vs} + VAIDIKA $SVARITA_n$



Examples of Vaidika Saamasvara Chihna:

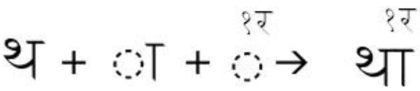
Class A: *Single vowel syllable:*

O_n + VAIDIKA $SAAMASVARA_n$



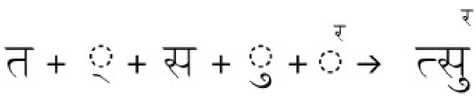
Class B: *Single consonant syllable:*

THA_n + AA_{vs} + VAIDIKA $SAAMASVARA_n$



Class C: *Multiple consonant syllable:*

TA_n + $VIRAMA_n$ + SA_n + U_{vs} + VAIDIKA $SAAMASVARA_n$



Acknowledgements: for references and source material

1. *Yajurveda- Sāmaveda-Atharvaveda*
   (Bhāṣā Bhaśya Saṁpurṇa)
   Pub. by: Dayananda Sarasvati, New, Delhi – 5

2. *The Vājasaneyi Saṁhitā*
   Edited by: Albrecht Weber
   Pub. by: Chaukhamba Sanskrit Series Office, Varanasi (Vikram Saṁvat 2029)
   1972

3. *The Śatapatha Brāhmaṇa*
   Edited by: Albrecht Weber
   Pub. by: Chawkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi
   1964.

4. *Vājasaneyī ŚrīŚuklaYajurveda Saṁhitā*
   (Mādhyandinīyaśakhāpāṭhasameta)
   Pub. by: Shri Venkateshvar Mudran Mantralaya,
   1912

5. *Vājasaneyi-Mādhyandina – Śukla Yajurveda Saṁhitā*
   Tr in Eng with Notes and
   By: R.T.H. Griffith
   Pub. by: Nag publishers,
   1990.

7. *Mādhyandina-Saṁhitā*
   Edited by Yudhiṣṭhira Mīmāṁsakā
   Ramlala Kapur Trust, Sonpat
   1971

8 *Śukalayajuravedīya Mādhyandinīya Saṁhitā*
   Printed by Nag publishers
   2000

9 *Vājasaneyī Mādhyandina Śuklayajurveda Saṁhitā*
   With commentary by Panḍita Īśavaracandra,
   Parimala publications, New Delhi
   2004.

10. *Śrīmadvājasaneyī- Mādhyandina-*
    Śukla yajurveda- saṁhitā
    English translation by R.T.H.Griffith,
    Edited By Ravi Prakāśa Ārya
    Pub. by Parimala Publications, Delhi
    1997

11. *Ṛgveda saṁhitā*
    vol I,II,III,IV
    Pub. by Vaidika Samshodhan Mandal, Pune

12. *Taitiarīya Saṁhitā*
    Vol I, II, III
    With Sayana Bhaṭṭbhāskara Bhāṣya
    Edited by T. N. Dharmādhikāri
    Pub. by Vaidika Samshodhan Mandal, Pune

13. *Atharvaveda Śaunakiyaḥ*
    Edited by Viśvabaṁdhu
    Pub by VVRI Hoshiyarpur
    1960

14. *Atharvaveda Saṁhitā*
    Edited by S.D. Sātavaḷekara
    Pub by svādhyāya maṁdala, Pardi
    4th Edition

15. *Atharvaveda saṁhitā and sāmavedasaṁhitā*
    Pub by Ajamera Vaidikāyaṁtrālayā
    Saṁ.1957

16. *Śuklayajurveda Mādhyandina Saṁhitā*
    Edited by S.P. Sātavaḷekara
    Pub. by Svādhyāya Mandala, Pardi

17. *Ṛgveda Saṁhitā*
    Edited by S.D. Sātavaḷekara
    Pub. by Svādhyāya Mandala, Pardi

18. *The sāmaveda*
    Text with Eng translation by
    Devi Canda, Muṁśīrāma Manoharalāl
    Publishers Pvt Ltd, New Delhi
    2000

19. *Ūhagānam and Uhyaganam*
    Edited by Pt. A.M. Rāmanāth Dikśita
    Pub by Vedic Research Committee
    B.H.U.Vārāṇasī
    1967

20. *Sāmvedasaṁhitā*
    Edited by S.D. Sātavaḷekara
    Pub. by Svādhyāya Mandala, Pardi

21. *Mahārāṣtrīya Jnanakosha Part II Vedavidya*
    Edited. by S. V. Ketkara
    Pub by Maharashtriya Jnanakosha Mandala
    Pune
    1921

22. *Avesta In Devanāgarī Parts I, II, III*
    Edited. by the late Prof. Kanga Ema. Eph. and Sonatakke
    Pub. by Vaidika Samshodhan Mandala, Pune
    Sake 1884

23. *Kāṇva Saṁhitā with the commentaries*
    Of Ānandabodha and Anantacarya
    Vol. I – IV
    Edited by B . R. Śarma
    Pub by Vaidika Samshodhan Mandala Pune
    1988 – 1999

24. *Sāmavedasṁhitā Pūrvarcika*
    Sāmavedasaṁita Uttarārcika
    Edited by Board of Editors
    Pub by Sadguru Gangesvara International Veda Mission
    1979, 1981

25. *Prāchīna Bhāratiya Bhāṣāśāstra (Marathi)*
Author: Manchara Devakriṣṇa Paṁḍita
Pub by Shubhada Sarasvata Prakashana Pune
2000 AD

26. *R.K. Tantra : Eka Parishilana*
by Dr. Sureśa Prakāśa Pāndeya
Pub by Parimal Publications, Delhi
1992

27 *Yajurvedoccāraṇavidhivimarśah*
By Dr. Ciranji Śarmā
Pub by Srngerimatha AIlahabad
2001

28. *Taitariya Pratiśākhya : Eka Parihilana*
Dr. Ānandkumāra Śrivastav
Pub by Vani Mandir, Varanasi
1st Edition 1996

29. *The Tattiriya - Pratisakhya*
With Introduction by William D. Whitney
Pub by Motilāla Banārasidāsa, Delhi
Reprint 1973

30 *Atharva - Prātiśākhya*
By Surya Kānta
Delhi ,
1968

31. *Ṛgveda Prātiśākhya*
By Maṁgala Deva Śāstri
Benaras
1934

32. *Ṛgveda Prātiśākhya*
Patala 1.14
By Dr. Vrajabihārī Caube
Pub. By Bhartiya Vidya Prakashan Delhi
1992

33. *Sartha Ṛgveda - Pratiśākhya Parts I and II*
by Paṁḍita Śivarāmaśāstrī Śintre
Bombay
1939

34. *Vajāsaneyī Prātiśākhyam*
by Dr. Vīrendra Kumāra Varmā
Pub by Choukhamba Sanskrit Pratisthana
Delhi - Reprint
2001

35. *Śaunakiya Caturadhyāyikā*
By Mādhava M. Deśpānde
Pub. by Dept of Sanskrit and Indian Studies
Harvard University
1997

36. *Vaidika Vyākaraṇa*
By Dr. Rāmagopāla
Pub. By National Publishing House, Delhi
1965

37. *Kriṣṇa Yajuravediyam*
Taittirīya Brāhmanam
Part I - II
Pub. by Anandaśrama, Pune , 1901

38 *TaittiriyaBrāhmanam Vol. I – IV*
Edited. by E. Mahādevaśāstri
Pub. by Motīlāla Benārsīdāsa
(1st edition - by Govt. of Mysore State)
1911

39. *The Śrauta Sūtra of Āśvalāyana*
with commentary of Gargya Nārāyana
Pub by Asiatic Society of Bengal, Calcutta
1874

40. *The Baudhayana Śrauta Sūtra*
Vol. I & II
Edited by Caland W. Pub
by Munshiram Manoharlal
2nd Edition 1982

41. *Kriṣṇa Yajurvediyam*
Vādhūlaśrautasūtrama
By Dr. B. B. Caube
Pub. By Katyayana Vaidik Sahitya Prakashan,
Hoshiarpur
1993.

42. *The Śrauta Sūtra of Āpastamba,* Vol. I - III
With commentary of Rudra datta
Edited. By Dr. Ricarda Garbe
Pub. By Munśīrāma Mancharlala

43. *Vaidika Bapat Dundirājaśāstri Saṁhītā*
Pub. By Bharat Gayana Samaja
Pune

44. *Sānvayārthvivaraṇā śrīvedāṇṣiksā (in Marathi)*
By Kāvyāḷṇkārabhuṣaṇa
Paṁḍita Śivarāmaśāstrī Śintre
Shastri, Elphinstan college, Mumbai
1993

45. *Yājñavaḷkya śikṣā*
Śikṣāvaḷī'- Vivṛtisanalṇkṛtā
Edited by: Śrī AmaranāthŚāstrī Dīkṣita
Corrected by
Śrī lalitāprasāda ḍbrāla,Vyākaraṇācārya
Pub. by: Śrī Padmanābhśarmā dīkśita
Pashupateeshwar, Kashi
1994.

46. *Vead Mimamsa Research Centre*
Service no 1
Vyāsaśikṣā along with the commentaries
Vedataijasa of Śrī Sūryanārāyaṇa Sūrāvadhānī
and Sarvalakṣaṇamañjrīsaṇagraha of
Śrī Rājā Dhanapāṇī
Edited by
Acarya Śhri P. N. Pattabhirāma Śāstri
Pub. By Veda Mimamasa research centre
4/7 Hanuman Ghat Varanasi
1976

47. *Vaidika-Svarita-Mīmāṁsā*
By Dr. B. B. Caube
Pub. By Vaidik Sahitya Sadan, Hoshiarpur
1972

48. *Śikṣāmahābhāṣyam*
By Citrarṣi Citrācāyorpanāmā Jagadīśācāryaḥ

49. *Śikṣāśāstram (laghupāṭhaḥ)*
By Citrarṣi Citrācāyorpanāmā Jagadīśācāryḥ

50. *Vṛhatśikṣāśāstram (Vṛhatpāṭhaḥ)*
By Citrarṣi Citrācāyorpanāmā Jagadīśācāryḥ
Pub. by
Śrī Rāmlāl Kapūr Trust
Po Balagarh, Sonpat (Haryana)

51. *Vedavikrtilakṣaṇasmgraha*
(a collection of twelve tracks on
Vedavikṛtis and allied topics)
[research unit publication no 5]
Compiled and critically edited with
introduction and variant readings by
Prof K.V. Abhyankar and Śrī J.V. Devasthali
Pub. by Bhandarkar OrientalResearch Institute,
Pune 411004
1978.

52. *Bhāradvājaśikṣā*
with Nāgeśvara's commentary
[Government oriental Series –class a, no.6]
Edited by
Śrī V. R. Rāmacandra Dikṣita and
Śrī P.S. Sundrama Ayyar
Pub. by Bhandarkar Institute Pune 411004
1938.

53. *Nāradīyaśikṣā with the commentary of Bhaṭṭa bhāskara*
[research unit series no 8]
Critically edited with translation and
explanatory notes in English
By Dr. Uṣā R. Bise
Pub. by Bhandarkar Oriental Research Institute
Pune 411004.

54. *Svaramañjarī of Śrīnarasiṁhasūrī*
[research unit service no 6]
Edited by
Śiva J.V.Devasthali
Bhandarkar Oriented Research Institute,
Pune 411004
1986.

55. *Svaramañjarī of Śrīnarasiṁhasūrī*
with Parīmala of Girināth
[Mss R.5655 in the government
Oriental Mss.library, Madras 5]
A transcript of the said Mss was received at
B.O.R.I on 12-3-75
Source : introduction to svaramajarī of
Śrīnarasiṁhasūrī ed G.V. Devasthali p.no 11].

56. *Ṛgvedaprātiśākhya*
Editor Max Muller.

57. *Taittirīya Prātiśākhya*
Edited by Whiteny.

58. *Atharva prātiśākhya*
Edited by whiteny.

59. *Vājasaneyi- Prātiśākhya of Kātyāyana*
with the commentaries of
Uvaṭa and Anantabhaṭṭa
Edited by
Śrī V. D.Venkataramana Śarma
University of Madras
1934.

60. *Śikṣāsaṇgrahaḥ*
Pub. by: Ramamurti Chaturvedi,
Sampunand Sanskrit Vishwa Vidyalay,
Varanasi.

61. *Śvaṛa Prakriyā* Of Rāmacandra
Anandashram series no 138, Pune.

62. *Svarasiddhāntacandrikā Of Śrīnivāsadikṣita*
Edited by
Shri K. E. Śivarāmaikriṣna Śāstri
Annamalai University
Sanskrit series no.4.

63. *Svarakaumudī of Bhagavadbhakta*.
Edited by: Devastali
Svaramanjari

64. *Ṛgveda Prātiśākhya*
(Bhāga Philā aṇi Dusarā)
By Kāvyālaṇkārabhūṣṇa
Paṁḍita Śivarāmaśāstrī Śintre
Shastri Elphinstan college, Mumbai
Part -1 1993
Part 2-1994.

65. *Śikṣādivedaṣaḍaṅga*
Publisher: Śri Tukārama
Nirnaya sagar press, Mumbai
1915.

66. *Sāmaveda Saśvra Bhāṣābhāṣya Ane*
Sāmagānaprakriyā
Edited and authored by
Vedācārya Viṣṇudeva Sākaleśvara Paṁḍita
Pub. by: Amṛta ṭrasṭa ane Vedaprakāśana samiti
21 ḍalabhai Park Geeta Mandir Road,
Ahemdabad 320022
1978.

67. *The Unicode Standard Version 3.0*
0900 Devanagari 097F

68. Indian Standard
Indian Script Code for Information Interchange – ISCII
Bureau of Indian Standards,
New Delhi 110 002, India.
December 1991

69. *Sūrya Namaskāra Mantra Prasannaḥ*
Taitiriya Araṇyaka - Prathama Praśnaḥ
(saswarah) Vedic text (in Malayalam script)
Editor: G. E. Rāmanathana
The educational suppliers dept.
Palakkad – 678 001.
First Pub. in 1992

70. *Mantrapuṣpam (sasvara)*
Swāmī Devarupānanda
Ramakrishna Math,
Khar, Mumbai 400 052
1989 – 1998
Pages: 345 – 347.

71. *Nityakarma Prayogamālā (Śukla Yajurveda)*
Paṁḍita Chaturthīlāla Śarmā.
Printer & Publisher: Kṣemarāja ŚrīKṛṣṇadāsa,
Shri Venkateshwar Steam Press, Mumbai
Samvat 2046, Shake 1911

72. *Nāradiya śikṣā*
With the commentary of
Bhaṭṭa Bhaskara
Uṣā bhise
Bhandarkar Oriental Research Institute,
Pune 411004, India.
1986 (PP 15 -16 -17)

73. *The World of Music*
(Sacred Music)
Vol. XXIV NO. 3 1982
Article : Music and Accentuation in
Vedic literature.
Wayne Howard
Page: 23 -34.

74. *The Saman Chants*
(A review of Research)
G. H. Tarlekar
Pub. by :
Secretary, Indian Musicological Society
Baroda 390 001
1985
Pages: 24 – 25, 26 – 31.

75. *Veda Recitation in Vārāṇsī*
Wayne Howard
Motīlāla Banārsīdās
(Narendra Prakāś Jaina)
Bungalow Road, Delhi 1986
ISBN 81-208-0071-0
Pages: 214 – 221, 225 – 230.

76. *Sāma Veda*
S. V. Gaṇapatī
143, kalākṣetra Colonī
Madras 600 090
Printed by Motīlāla Banārsīdās
At Śrī Jainendra Press
A-45, Phase I, Industrial Area,
Naraina, New Delhi 110 028
First Edition, 1982

77. *Matra Lakṣaṇām*
IGNCA – Guest Editor Dr. Kapilā Vātsyāyana
By Wayne Howard
Pub. by IGNCA in Association with
Motīlāla Banārsīdās Publishers P.Ltd.
Bungalow Road, Delhi 110 007
ISBN 81-208-0585-2

78. BIBLIOTHECA INDICA :
VOL I : CALCUTTA
Sāma Vedā Saṁhitā
With the commentary of sāyaṇa Ācārya
Edited by
Editor of the Hindu commentator.
Collection of oriental works
Pub. under the Superintendence of
the Asiatic Society of Bengal
Printed at the Ganesh Press
1874

79. Vaidika Vyākaraṇa
Arthur Anthony Mcdonell (Author)
Satyavrata śāstrī (Translator)
Motīlāla Banārsīdās
New Delhi. India
1987
Pages: 18 and 37.

Following scholars, technologists and representatives were consulted at various stages in preparation of the Vaidika Sanskrit encoding proposal.

Dr.Amba Kulkarni, Head, Department of Sanskrit Studies, University of Hyderabad, Hyderabad, Email: ambapradeep@gmail.com
Dr. Vineet Chaitanya, Professor, Department of Sanskrit Studies, University of Hyderabad, Hyderabad
Dr.R.V.S.Avadhanulu, Director, Vedic Bharati Language Institute
Prof.K.Subramaniyan, Centre for Applied Linguistics and Translation Studies, University of Hyderabad, Email:ksmshouh@yahoo.com
Shri K.S.S. Avadhani, Principal SVVS Patashala, Hyderabad, Email: avadhanulu-ramella@rediffmail.com
Dr.S. Sudarshan Sharma, Vice chancellor of S.V.Vedic University,Tirupati, vcvedicuniversity@yahoo.com
Dr.R.J.Rama Sree, Head of Department, Computer Science, Rashtriya Sanakrit Vidyapeetha, Tirupati, Email:shrivara@gmail.com
Dr. Hare Krishna Satapathy, Vice chancellor of Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha
Prof V. Venkata Ramana, Director, S.V. Oriental Research Institute, Tirupati
Dr.E.Chandramouli, Asst Professor Telugu, S.V.University, Tirupati
T. Anantanarayan, Research Assistant, S.V.University, Tirupati
Dr. M Prabhakar Rao, Assistant Professor, S.V.University, Tirupati
Dr. L. Dyana Prakasham Naidu, Curator cum Librarian, S.V.University, Tirupati
Sri Vasudevan Namboodiri, Samaveda Vedapathi,Nellikkattil Mana, Samaveda Gurukulam, Panjal, (Ph)04884274843
Sri Vasudevan Namboodiri, Samaveda Vedapathi, Perumangattu Mana, Samaveda Gurukulam,(M)04884274156
Sri Kunju Vasudevan, Director, Samaveda Gurukulam, Panjal 67953, kunjupad@gmail.com,(Ph) 04884252292
Dr. CM. Neelakandhan, Sree Sankaracharya University of Sanskrit, Kalady, Kerala
Dr. K.A. Ravindran. Senior Lecturer, Dept of Sahitya, S.S.U.S. Kalady, Kerala, Email: karavindran@sify.com. (Ph)04885263642
Dr. R Saxena, Visiting Faculty- Dept of Vedic Studies, S.S.U.S. Kalady, (M)09845218372
Dr. V. Ramakrishna Bhat, Reader, Vedic Studies, S.S.U.S. Kalady, Kerala
Dr. A.R. Anil Kumar, Lecturer, Vedic Studies, S.S.U.S. Kalady, Kerala
Dr. N. Parameswar Unni, Ex. V.C., S.S.U.S. Kalady, Kerala, ph- 0491-2474442
Dr. K. Maheswaran Nair, Prof & HoD, University of Kerala, Trivendrum
Dr. N. Vasudevan, Sr. Lecturer, Regional Centre Sankaracharya Sanskrit University
Dr. S. A. Shanvas, Dir of TRCML, Dept of Linguistics, University of Kerala, Trivendrum
Dr. Sulochona, Language Technologist, C-DAC Trivendrum
K.G. Shreelekha, Oriental Research Institute, Manuscript Library, University of Kerala Meera Subhash, University of Kerala, Trivendrum
Dr. Gopal Krishna Dash, Professor, P.G. Department of Sanskrit, Utkal University, Vanivihar, Bhubaneswar-751001, Orissa, E-mail: gopalkrishna.dash@gmail.com, (R)- 0674 2580862
Dr. (Mrs) P. M. Rath, Reader, P.G. Department of Sanskrit, Utkal University, Vanivihar, Bhubaneswar-751001, Orissa
E-mail: prativam_rath@yahoo.co.in, (M)-9437281871
Dr. Prafulla Ku. Mishra, Professor, P.G. Department of Sanskrit, Utkal University, Vanivihar, Bhubaneswar-751001, Orissa
E-mail: prafulla11@rediffmail.com / mprafullak@yahoo.com, (M)- 9437229658
Dr. (Mrs) Sanghamitra Mohanty, Professor, RC-ILTS-ORIYA, Department of Computer Science and Application, Vanivihar, Bhubaneswar-751001, Orissa E-mail: sangham1@rediffmail.com, (O) 0674 2588216
Dr. Satrughna Panigrahi, Veda adhyapaka, Shri Jagannath Sanskrit Vishvavidyalaya, Shrivihar, Puri – 752003, Orissa M-9861274569
Dr. Ramachandra Hota, Veda adhyapaka, Shri Jagannath Sanskrit Vishvavidyalaya,Shrivihar, Puri – 752003, Orissa
Dr. Bijay Ku. Rath, Ex Director, Archives State Museum Orissa, C/O: Dr. (Mrs) Sanghamitra Mohanty, HIG 33, 7th Acre, Chandrashekharpur,House board Colony, Phase-1, Bhubaneswar, Phone (R) 0674 2740614, drbkrath@yahoo.com
Mr. Hariram Pansari, Assistant Manager (Rajbhasha), NALCO, P/1, Nayapalli, Bhubaneswar-751013, Phone (O): 0674-2301988 PBX . Ext.2537, E-mail: hariraama@gmail.com
Jaga Mohan Acharya, research scholar, P.G. Department of Sanskrit, Utkal University, Vanivihar, Bhubaneswar-751001, Orissa, M- 09861463441
P. S. Yogamaya, research scholar, P.G. Department of Sanskrit, Utkal University, Vanivihar, Bhubaneswar-751001, Orissa, M-09438133376, E-mail: sansyogamaya@yahoo.com
Dr. Divakar Mohapatra, Professor, Vedic studies, Shri Jagannath Sanskrit Vishvavidyalaya, Veda Niketanam, Luhagarh jaga Lane, Tiadi Sahi, Bali Sahi, Puri- 752001, R- 06752-225265
Er. Priyabrata Dash, Vedic Expert, Vaidik Anusandhan Pratisthan, 139, Shahid Nagar, Bhubaneswar- 751007, Phone: 0674 2544410
Dr. T. N. Dharmadhikari,Ex. Director, vaidika Samshodhan Mandal, Pune
Dr. Nirmala Kulkarni, Dept of Sanskrit, Pune University, Pune
Dr. Bhagyalata Pataskar, Director, vaidika Samsodhan Mandal, Pune
Dr. Bhagyasree Bhagvat, Editor, vaidika Samsodhan Mandal, Pune
Dr. S.D. Joshi, Ex Prof. Deccan College, Pune
Dr. M. V. Dhadaphale, Bhandarkar Oriental Research Institute, Pune
Dr. S.D. Laddu, Ex Curator, Bhandarkar Oriental Research Institute, Pune
Dr. Saroja Bhate, Bhandarkar Oriental Research Institute, Pune
Sri Nana Kale, Vaidika Pathashala, Barsi, Maharastra
Prof. Lakshmishwar Jha, Lalbahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, New Delhi
Prof. Bhavendra Jha, Head, vyakarana Vibhag, Lalbahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, New Delhi
Dr. Gopal Prasad Sharma, Veda Vibhag, Lalbahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, New Delhi
Prof. Harihar Trivedi, Lalbahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, New Delhi
Dr. Devendra Prasad Mishra, Lalbahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, New Delhi
Dr. Sunder Narayan Jha, vyakhyata, Veda Vibhag, Lalbahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, New Delhi
Prof. Sashiprabha Kumar, Special Centre for Sanskrit, JNU, New Delhi-67
Prof. Brij Bihari Chaubey, Vishweshvaranand Vedic Shodh Samsthan, Hoshiarpur
Dr. Keerthikant Sharma, Research Officer, Manuscript Unit,IGNCA, New Delhi

Dr.Santosh Kumar Shukla, Asst Professor, Centre for Sanskrit Studies, JNU, New Delhi-110067 (M)9810317119
Dr.Satyavratha Shastri Pandit Santhakari Mukopadhya
Prof. Deepak Bhattacharya, Ex Professor of Vedic Sanskrit, Vishwabharati, Atharban, Gurupalli West, Santiniketan, Bholpur, West Bengal, Pin 731235, R- 03463-262039, E-mail:dbhattacharya2004@yahoo.co.in
Prof. Sri Kishore Mishra, Head, Dept. of Sanskrit Vedic Studies, Faculty of Arts, BHU, Varanasi, Phone: 0542-2204403,
Prof. Yugal Kishore Mishra, Dept of Vedic Studies, Sampurnananda Sanskrit University, Varanasi
Prof. Probal Dasgupta, Linguistic Research Unit, Indian Statistical Institute, 203 B.T. Road, Kolkata 700108, India
tel. 033 25753282, E-mail: probal53@yahoo.com
Prof. Pabitra Sarkar, Linguist & Ex V.C. of HSE West Bengal, 21, Kendua Main Road, Post: Garia, Kolkata-700084,
Phone: 033-4303577, E-mail: pabitra123@vsnl.net
Prof. Sri Kishore Mishra, Head, Dept. of Sanskrit, Banaras Hindu University, Varanasi-221 005 Phone: 0542-2204403
Dr. Abhijit Ghosha, Dept of Sanskrit, PG Arts Bldg 3rd floor, Jadavpur University, Jadavpur Campus, Kolkata 700 032
Phone: 033-24169027
Dr. Tapan Sankar Bhattacharya, PG Arts Bldg 3rd floor, Jadavpur University, Jadavpur Campus, Kolkata 700 032
Dr. Bhaskarnath Bhattacharya, Reader, School of Vaidic Studies, Ravindra Bharati University, 56 A, BT Road, Kolkata- 700050
Prof. Navanarayan Bandopadhyaya,Director, School of Vaidic Studies, Ravindra Bharati University, 56 A, BT Road, Kolkata-700050, Phone: 033-25571028/ 3028/ 4028/ 7161
Dr. Ratna Vasu, HoD Dept. of Sanskrit, Manuscript Dept, Kolkata University Campus, College Street, Kolkata-700 073, West Bengal, Phone: 033-24148840
Dr. Shyamal Das Mandal, Computer scientist, C-DAC Kolkata
Mr. Subash Chandra, Sanskrit linguist, C-DAC Kolkata
Dr. A. Sandandan, Bharatiya Samskrit Vidya Niketanam, Lonavala, Mumbai
Prof. S.A. Upadhaya, HoD Dept of Sanskrit, Bharatiya Vidya Bhavan, Mumbai
Sri Lakshminarsimhan, Anantacharya Indological Research Institute, Mumbai
Dr. R. Devnathan, Principal, Rashtriya Sanskrit Sansthan, Sringeri, Karnataka
Dr. Uma Raman Jha, Ex Director, Vrindavan Shodh Samsthan, Mathura, U.P.
Prof. V. V. P. Ramanujan, Vedic Sanskrit Scholar, C-DAC Bangalore
Mr. Naankar and Mr. Satpute of GIST group C-DAC, Pune
Sri Bharadwaj of Anantacharya Indological Researach Institute, Mumbai
Sri Kaustubh Kale, Vidya Prachara Mandal, Naupada, Thane, Mumbai
Sri Rajgopal Iyer, Dr.V. N. Bedekar Institute of Management Studies, Mumbai
G.B. Jani, Reasearch Associate, Dept of Sanskrit, Bharatiya Vidya Bhavan, Mumbai
Dr. Malhar Kulkarni, Reader, HSS, IIT Bombay, Mumbai
Dr. Usha Bhise, Sanskrit Scholar, Ex- Bharatiya Samskrit Vidya Niketanam, Lonavala, Mumbai
Dr. M.D. Paradakar, Sanskrit Scholar & Vice Chancelar, Bombay Hindi Vidyapitha

Acknowledgements:

We are thankful to Michael Everson and Peter Scharf (editors), Michel Angot, R. Chandrashekar, Malcolm Hyman, Susan Rosenfield, B. V. Venkatkrishna Sastry, Michael Witzel for their contribution for Vaidika Sanskrit Encoding and further interaction in preparation of this Combined Common Revised Single Proposal.

The role played by Ms. Swaran Lata is appreciated. We are thankful to her and her team at the Ministry of Communications and Information Technology. We acknowledge the help extended by Dr. Pataskar and Dr. Bhagwat of Vaidika Sanshodhan Mandal, Pune and Dr. S. Upadhyay and Mr. A. Jani of Bhartiya Vidya Bhavan, Mumbai in preparing the draft proposal.We are thankful to officers in CDAC and members of Language Computing Group of C-DAC Mumbai namely Sobi, Santosh, Kousik , Jui, Supriya and Gracy and others for their support.

This proposal is an outcome of financial support by the Ministry of Communications and Information Technology, Govt. of India to C-DAC Mumbai. We acknowledge their help and encouragement.

Prof. R. K. Joshi
23 January 2008

ISO/IEC JTC 1/SC 2/WG 2
PROPOSAL SUMMARY FORM TO ACCOMPANY SUBMISSIONS
FOR ADDITIONS TO THE REPERTOIRE OF ISO/IEC 10646[1]

A. Administrative

1. **Title:** ***Proposal for Encoding Of Vaidika Characters & Symbols in Unicode***
2. Requester's name: ***Department of Information technology, Ministry of Communications & IT, Government Of India***
3. Requester type (Member body/Liaison/Individual contribution): ***Member Body***
4. Submission date:
5. Requester's reference (if applicable):
6. Choose one of the following:
   This is a complete proposal: ***Yes***
   (or) More information will be provided later: ***No***

B. Technical – General

1. Choose one of the following:
   a. This proposal is for a new script (set of characters): ***Yes***
      Proposed name of script: ***Vaidika Extensions***
   b. The proposal is for addition of character(s) to an existing block: ***No***
      Name of the existing block: ***Not Applicable***
2. Number of characters in proposal: ***68***
3. Proposed category (select one from below - see section 2.2 of P&P document): ***B.1***
   A-Contemporary B.1-Specialized (small collection) B.2-Specialized (large collection)
   C-Major extinct D-Attested extinct E-Minor extinct
   F-Archaic Hieroglyphic or Ideographic G-Obscure or questionable usage symbols
4. Is a repertoire including character names provided? ***Yes***
   a. If YES, are the names in accordance with the “character naming guidelines” in Annex L of P&P document? ***Yes***
   b. Are the character shapes attached in a legible form suitable for review? ***Yes***
5. Who will provide the appropriate computerized font (ordered preference: True Type, or PostScript format) for Publishing the standard? ***CDAC Mumbai***
   If available now, identify source(s) for the font (include address, e-mail, ftp-site, etc.) and indicate the tools used: ***Fontographer V 4.1***
6. References:
   a. Are references (to other character sets, dictionaries, descriptive texts etc.) provided? ***Yes***
   b. Are published examples of use (such as samples from newspapers, magazines, or other sources) of proposed characters attached? ***Yes***
7. Special encoding issues:
   Does the proposal address other aspects of character data processing (if applicable) such as input, presentation, sorting, searching, indexing, transliteration etc. (if yes please enclose information)? ***Yes***

8. Additional Information:

Submitters are invited to provide any additional information about Properties of the proposed Character(s) or Script that will assist in correct understanding of and correct linguistic processing of the proposed character(s) or script. Examples of such properties are: Casing information, Numeric information, Currency information, Display behaviour information such as line breaks, widths etc., Combining behaviour, Spacing behaviour, Directional behaviour, Default Collation behaviour, relevance in Mark Up contexts, Compatibility equivalence and other Unicode normalization related information. See the Unicode standard at http://www.unicode.org for such information on other scripts. Also see http://www.unicode.org/Public/UNIDATA/UCD.html and associated Unicode Technical Reports for information needed for consideration by the Unicode Technical Committee for inclusion in the Unicode Standard.

[1] Form number: N3102-F (Original 1994-10-14; Revised 1995-01, 1995-04, 1996-04, 1996-08, 1999-03, 2001-05, 2001-09, 2003-11, 2005-01, 2005-09, 2005-10, 2007-03)

C. Technical - Justification

1. Has this proposal for addition of character(s) been submitted before? ***Yes***

   If YES explain ***The Proposal was submitted to UTC in 2003 (L2/03-066 and L2 /03-067) and it were also discussed in UTC#101.***
   The proposal was resubmitted to UTC in 2006 (L2/06-185).
   A further revised proposal was submitted to UTC in October 2007 (L2/07-395,396,397)

2. Has contact been made to members of the user community (for example: National Body, user groups of the script or characters, other experts, etc.)? ***Yes***

   If YES, with whom? ***Vaidika Sanskrit Scholars, Linguists, IT experts working in language technology, Industry Representatives, Sanskrit Scholars etc.***

   If YES, available relevant documents:

3. Information on the user community for the proposed characters (for example: size, demographics, information technology use, or publishing use) is included? ***Yes***

   Reference:

4. The context of use for the proposed characters (type of use; common or rare) ***The type of usage can be very from common to rare***

   Reference:

5. Are the proposed characters in current use by the user community? ***Yes***

   If YES, where? Reference: ***Critically edited versions of Scholarly Publications***

6. After giving due considerations to the principles in the P&P document must the proposed characters be entirely in the BMP? ***Yes***

   If YES, is a rationale provided? ***Yes***

   If YES, reference: ***The proposed characters are used in Indian Scripts***

7. Should the proposed characters be kept together in a contiguous range (rather than being scattered)? ***Yes***

8. Can any of the proposed characters be considered a presentation form of an existing character or character sequence? ***No***

   If YES, is a rationale for its inclusion provided?

   If YES, reference:

9. Can any of the proposed characters be encoded using a composed character sequence of either existing characters or other proposed characters? ***No***

   If YES, is a rationale for its inclusion provided?

   If YES, reference:

10. Can any of the proposed character(s) be considered to be similar (in appearance or function) to an existing character? ***Yes***

    If YES, is a rationale for its inclusion provided? ***Yes***

    If YES, reference:

11. Does the proposal include use of combining characters and/or use of composite sequences? ***Yes***

    If YES, is a rationale for such use provided? ***No***

    If YES, reference:

    Is a list of composite sequences and their corresponding glyph images (graphic symbols) provided? ***No***

    If YES, reference:

12. Does the proposal contain characters with any special properties such as control function or similar semantics? ***No***

    If YES, describe in detail (include attachment if necessary)

13. Does the proposal contain any Ideographic compatibility character(s)? ***No***

    If YES, is the equivalent corresponding unified ideographic character(s) identified?

    If YES, reference:

(i) correct production of letters (word) अक्षरशुद्धि

(ii) correct duration of utterance of letters (मात्राशुद्धि)

(iii) correct intonation of letters (स्वरशुद्धि)

So, in the vedic period correct pronunciation of the vedic mantras was meticulously observed at the time of their utterance in the performance of sacrifices (yajna) and studing the vedas. A mantra wrongly pronounced in the matter of accent or a syllable and wrongly used in sacrifice could bring disaster to the sacrificer and the officiating priests.[1] Our Rishis prescribed several fool-proof methods to correctly recite the veda mantras. Several works dealing with the phonetic peculiarities of respective sakhas were composed under the class of technical literature known as vedanga. Vedangas are six in number viz (1) Shiksha and Pratishakhya, (2) Vyakaran, (3) Nirukta, (4) Chhandas, (5) Kalpa and (6) Jyolish.

In oral tradition vedic seers devised many ways to prevent even a small error to creep to the recitation of the veda mantra for which various patterns and combinations were practiced. All the mantras are recited in three notes i.e. Udatta, Anudatta and Svarita is set principles.[2] There were eleven types of Pathas known as vakya, Pada, Krama, Jata, Mala, Shikha, Rekha, Dhvaja, Danda, Rath and Ghana.

Among these, vakya, pada, krama, jata and ghana methods of chanting are more popular and let usanalyze those patterns.

1. Vakya or Samhita path- vakyapath is to recite a mantra in a sentence straight with appropriate intonations.
2. Padapath is word by word recitation in which compounds are dissolved.
3. Krampath – In Krampath words are arranged in the pattern of 12,23,34.

Here the first word of the sentence is added to the second and second to the third. The third to the fourth and so on, untill the whole sentence is completed. The reciter, who known this pattern is known as kramvit.

Jatapath – In the Jata method the first word and the second word are recited together and then the words are recited in the reverse order and then again in the original order. They are recited as 1-2-2-1-1-2; 2-3-3-2-2-3, 3-4-4-3-3-4 and so on. Scholarly priest capable of reciting in the Jatapath pattern are entitled 'Jataballabha'.

Ghanapath – The Ghana method is more difficult than the above where the combination of words will be 1-2-2-1-1-2-3-3-2-1-1-2-3; 2-3-3-2-2-3-4-4-3-2-3-4 and so on, the words are repeated back and forth in a bell shape.

---

[1] मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।

स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् पाणिनीय शिक्षा 52

[2] Vedic Svaro Bodh, Chaubey B.B. Vedic Sahitya Sadan, Hosharpur, 1972, p. 22 onwards.

This pattern is known as the Bell mode of chanting because in this pattern the words are repeated back and forth in a ball shape.

At first stage students are taught to memorize using simple patterns i.e. Prakriti path (Samhita, Pada and Krama) and then eight complex patterns i.e. vikriti paths.[3] It is to be pointed out that reversing the word order or back word chanting does not alter the meaning of the vedic language.

Samaveda is veda of chanting. This chanting is doen in seven svaras i.e. Krushta, Pratham, Dvitiya, Tritya, Chaturth, Mandra and Atisvarya. For chanting of samagana definite techniques seem to have been introduced and developed by the samasingers. From the study of Brahmana and vedanga literature, we come accross various techniques and patterns of saman chanting. When a saman is sung on a particular Rik mantra then it undergoes some modifications, altrations and additions to suit the chanting. This feature is technically known as vikriti. The samhitopanishad Brahmana gives the number of such vikritis as eighteen, the pushpasutra as twenty and the samtantra as thirty four.

These vikaras can be classified into two groups viz. internal and external. Internal vikaras are those which are based on the padas and the varnas of the rik on which the saman is chanted. Following are based on padas.

अंभाव, अतिहार भाव, अभ्यास, अवृद्ध, आइभाव, एभाव, ऐभाव, ओभाव, औभाव, यभाव, रेफत्वलोप, लोपभाव, वन्तविधि, विकर्ष, वृद्ध, ह्रस्वभाव।

These are the different patterns for changing the word for malody. For example in Am-bhava (अंभाव) a, i, u, r are changed into 'a' e.g. पावका to पवाका Following vikaras are based on melody or chanting. अतिक्रम, कर्षण, धार्य, नुभाव, प्रत्युत्क्रम, परिस्वार, प्रणीत, प्रेंङ्.रव etc.

अतिक्रम – When a svara cross the next and goes to the other svara. This skip is known as Atikrama. There are four types of Atikrama[4] In first kind krushta omits the first in crossing to the second. In the second type first svara goes to the third by skipping second. Then third goes to the fifth note and in fourth type First crosses second, third and fourth and goes to fifth.

कर्षण&(Karshan)-Karshan is lenghtening. When a word is chanted by extending to its next note, it is known as Karshan. Karshan again is of five types.[5]

---

[3] जटा, माला शिखा रेखा ध्वज दण्डो रथो घन:

इत्यष्ट विकृत्याह प्रयुक्त: क्रमपूर्वमहिर्षिभि:।।

[4] चतुर्विधो अतिक्रम: । मात्रालक्षण 1.27

[5] पञ्चविधं कर्षणम्। आद्वितीयकर्षणमातृतीयकर्षणमाचतुर्थ कर्षणम।

मन्द्रश्चतिस्वार्यात् कृष्यते। मा० ल० 1.32

प्रत्युत्क्रम (Pratiyutkrama) – When a chanter while singing sings a note then goes to the higher note and then comes back to the same note. This process of ascending and descending back to the same note is known as प्रत्युत्क्रम. We find eight types of this pattern.[6] These are some examples mentioned above.

Under the external vikaras, come the stobha (स्तोभ) which are also of various kinds and patterns. Sometimes a syllable, sometimes a pada (word) or a paada (sentence) are included at the time of chanting but these syllable, pada and paada have no relation with the Rik. These are called varna slobha (वर्णस्तोभ)] Pada stobha (पदस्तोभ) and Paada Stobha (पाद स्तोभ) respectively. Akshartantra and stobhausamhar illustrate all the stobhas.

There are many more patterns in chanting the saman. We have just given a glimps of this rich and highly technical tradition. These patterns have great impact on the later developed classical music of India.

In conclusion we can say that there are various pattern of reciting the Rk, yajush and Sama mantras. Pada, Rhythm and svara patterns in samagana chanting. But today in the absence of performance of rituals these techniques are gradually declining. Moreover in the absence of proper study and practice of samaveda and its literature the terms and patterns use therein are becoming obsolete. So efforts be made to study and preserve, because they are relevant in our modern classical music also.

[6] प्रत्युत्क्रमोऽष्टविधः। मा० ल० 1.18

INTRODUCTION

1 The *Sāmaveda* and its Schools

The collection of texts known as the *Veda*-s are revealed to the world through a divine process. (यस्य निश्वसितं वेदः ||). The word '*veda*' is derived from the root √विद् - vid - to know, to exist, to obtain, to think, etc. There are four *Veda*-s: *Ṛgveda, Yajurveda, Sāmaveda*, and the *Atharvaveda*. Each *Veda* has four divisions: *Samhita, Brahmaṇa, Āraṇyaka*, and the *Upaniṣad*. The *Samhita* part of each *Veda* is as follows: *Ṛgveda*, as we have it today, has two schools: *Śākala*, and *Bhāṣkala*. The *Yajurveda* has two branches: *Śukla* (white) *Yajurveda* and the *Kṛṣṇa* (black) *Yajurveda*. The *Śukla Yajurveda* has *Mādhyandina*, and *Kaṇva* as two recensions, and the *Kṛṣṇa Yajurveda* has four recensions: *Taittarīya, Maitrāyaṇi, Kāṭaka*, and *Kaṭha-kapisthala*. Even though *Sāmaveda* was originally supposed to have 1000 recensions (Patanjali: सहस्रवर्त्म सामवेदः (*"sahasravartma sāmvedaḥ"*), only three recensions have now survived. They are: *Kauthuma, Rāṇāyanīya*, and *Jaiminīya*. Finally, the *Atharvaveda* is available in two recensions: *Śaunaka*, and *Pillalāda*.

The *Samhita*-s consist of *Mantra* portions only. These are known as *Ṛk* (in *Ṛgveda*), *Yajus* (in *Yajurveda*), *Sāman* (in *Sāmaveda*), and *Mantra* in *Atharvavedava*. Each *Veda* has its own way of rendering the *Samhita pātha* into *Pada pātha*, and vice versa, with some minor, but several essential differences.

The present work here is on the **Kauthuma Samhita** that belongs to the *Sāmaveda*.

2 *Sāmaveda Kauthuma Samhita*

"वेदानां सामवेदोस्मि" declated Lord Kṛṣṇa to Arjuna in the *Bhagavadgīta* (10-22). This speaks volumes about the glory and magnanimity of the sacred literature of the *Sāmaveda*. The *Kauthuma Samhita* of *Sāmaveda* consists of 1875 *mantra*-s arranged in two primary divisions, namely, the *Pūrvārcikā*, and the *Uttarārcikā*. The *Pūrvārcikā* has 650 *mantra*-s and the remaining 1225 belong to the *Uttarārcikā*. Further, the *Pūrvārcikā* has additional subdivisions: *Āraṇya Kāṇḍa, Aindra Kāṇḍa, Pavamāna Kāṇḍa*

and, then follow the *Āraṇya Arcikā*, and the *Mahānāmnya Ārcikā*. The last two are considered as separate units. Thus, the contents can be summarized as follows:

	Mantra sequence
Pūrvārcikā	
Āgnēya Kāṇḍa	1- 114
Aindra Kāṇḍa	115-466
Pavamāna Kāṇḍa	467-585
Āraṇya Ārcikā	586-640
Mahānāmnya Ārcikā	641-650
Uttarārcikā	651-1875

3 The Organization in *Kauthuma Samhita*

A group of *Ṛk*-s is called *Ārcikam*. Each of them has a *Ṛṣi, Devatā* and *Chandas*, associated with it. These verses (*ṙcā*-s) are arranged in decades (*daśati*-s). The fundamental unit of division in the *Pūrvārcikā* is what is called a *Prapāṭhaka*. Each *Prapāṭhaka* is further divided into two *ardha*-s (halves). In *Pūrvārcikā*, there are six *Prapāṭhakā*-s. A group of ten *mantra*-s is a *Daśati*. Though a *Daśati* should normally be a collection of 10 *mantra*-s, many of them have anywhere from 6 to 14 *mantra*-s. The first five *Prapāṭhaka*-s have 10 *Daśati*-s each, the fifth one has only 9 and the sixth *Prapāṭhaka*, that is associated with the *Āraṇya Kāṇḍa* has only 5 *Daśati*-s. Thus, (leaving out the *Mahānm̄nyārcikā*), there are six *Prapāṭhaka*-s, with a total of 64 *Daśati*-s in the *Pūrvārcikā*. The *Mahānāmnyārcikā*, which exists prior to the *Uttarārcikā*, sits as a separate single unit, and has got ten *mantra*-s. Unlike other *mantra*-s, these do not have *Ṛṣi* or *Chandas*. Also no division is made here. In general, *the Pavamāna Kāṇḍa, Āraṇya Kāṇḍa* and the *Mahānm̄nyārcikā* are considered as separate units outside the *Pūrvārcikā*. and so lack some of the divisions.

The structure of various *Daśati*-s in the entire *Pūrvārcikā* can be classifiecd as follows

No.of verses in each Daśati	No. of Daśati-s	Total number Mantra-s
6	1	6
7	1	7
8	7	56
9	5	45
10	41*	400
11	1	11
12	5	60
13	1	13
14	3	42
Total	65*	650

(* - including the 10 *mantra*-s in the *Mahānāmnyarcikā*)

The arrangement of material in the *Uttarārcikā* is slightly different. The *Uttarārcikā* consists of nine *Prapāṭhaka*-s (with 22 *ardha*-s) (since four of them have three *ardha* s each.). Instead of *Daśati*-s, there are *Sūkta*-s. These *Sūkta*-s in the *Uttarārcikā* usually contain 3 *mantra*-s each, but some have anywhere from 1 to 14 mantras. There are in all a total of 400 Sūkta-s that are distributed as follows:

No.of verses in each Sūka	No. of Sūkta-s	Total no. of Sūkta-s	Total mantra-s
ekartca (1)	एकर्च	11	11
dvyarca (2)	द्व्यृच	66	132
tryṛca (3)	तृच	287	861
catur-ṛca (4)	चतुर्ऋच	9	36
pañcarca (5)	पञ्चर्च	4	20
ṣaḍ-ṛca (6)	षड्-ऋच	10	60
saptarca (7)	सप्तर्च	2	14
aṣṭarca (8)	अष्टर्च	1	8
navarca (9)	नवर्च	3	27
daśarca (10)	दशर्च	3	30
dvādaśārca(12)	द्वादशर्च	2	24
Total Sūkta-s	सूक्त	400	1225

The above organization is the older one, but there is also a second tradition in vogue (assigned by some commentators). Here, the primary division is an *Adhyāya*, which has *Khaṇḍa*-s as subdivision (anywhere from 3 to 12), and these *Khaṇḍa*, in turn have the usual *Daśast*-s containg the group of *ṛca*-s.. There are six *Adhyāya*-s, covering a total of 120 *Khaṇḍa*-s in the *Pūrvārcikā*. The *Uttarārcikā* is arranged in 21 *adhyāya*-s and has 125 *Khaṇḍa*-s.

The modern trend (which is the simplest) is to assign a serial number (from 1 to 1875) to each *mantra*, which makes it easy to locate a particulart mantra.

We have provided both classifications in this work, and the exact arrangement of the various segments and categories are furnished in a table (both Roman and Devanāgari) at the end of this introduction.

4 From *Rgveda*

Of the 1875 *Ṛca*-s found in *Kauthuma Samhita*, 1776 are reproductions of *Ṛgvedic mantra*-s with some minor verbal differences. Among the remaining 99 *mantra*-s, 11 appear only in *Atharvaveda*, and 4 only in *Yajurveda*, and two are present in both *Atharvaveda* and *Yajurveda*

The following *mantra*-s (not appearing in other *veda*-s) occur twice in *Sāmaveda*, namely, 438=1768, 444=1115. 445=1114, 446-1114, 453=1770. The verses 444, 445, 446 are repetitively abbreviated into a single composite verse 1113-1115.

Among repetitions in *Kauthuma Samhita*, there are two types:

1. *Pūrvarcikā* verses repeatd in the *Pūrvarcikā* itself: there are 262 in number.
2. *Pūrvarcikā* verses repeatd in *Uttarārcikā*: only seven.

5 Sage, Deity amd Metric information

Each of these *mantra*-s is revealed to certain *Ṛṣi* (sage) and is composed in a particular *Chandas* (poetical metre). This information is provided throught the *Samhita*, at the beginning of each *Daśati* in the *Pūrvārcikā*, and at the commencement of each *adhyāya* in the *Uttarārcikā* (in some books, under each *mantra* separately). Each

mantra in the entire *Kauthuma Samhita* is in praise of a *Devata* (supreme person or a certain illuminated being like *Indra, Agni, Soma Pavanama*, etc).

A variety of *Vedic* metres are employed in these *mantra* verses, and all these are mentioned at the beginning of each *Adhyāya*. The standard *Vedic* metres *Gāyatri, Uṣṇik, Anuṣṭup, Bṛhati, Paṅkti, Triṣṭup, Jagati*, and several of their variants are available. Long metres like *Atijagati, Sakvari, Atyaṣti*, etc., also show up. In *vedic* terminology, when two verses occurring together as a pair are recited together, the pair is known as a *pragatha*. Every *Sūkta* (particularly in the *Uttarācika*) which contain only two *mantra*-s is a *pragatha*. The pairing of two *Bṛhati* or one *Bṛhati* followed by another metre is known as *Bārhata pragatha*. There are plenty of them in the second half. Other varieties are *Uṣṇik pragatha, Kakup pragatha, Anuṣṭup pragatha*.

6 Accent Notation

Ṛgveda utilizes three kinds of *svara* notations: *udātta, anudātta*, and *svarita*. The *anudātta* is indicated by a horizontal bar below the syllable, the *svarita* by a vertical bar above, and *udātta* has no symbol. However, in *Sāmaveda*, the *udātta* is indicated by the Devanāgari numeral (१) placed on top of the syllable, the *svarita* by the numeral (२), and the *anudātta* by the numeral (३). If a syllable is not indicated by any three of these, then it is a *pracaya*. Certain syllables in the *mantra* are indicated with the letter combinations: २र, ३क, or २उ placed above them. A brief explanation for the usage of these accent marks above a syllable is as follows:

२र - If two *udātta*-s occur in sequence, then the first *udātta* is indicated by the numeral १, and the second is not accented, but the *svarita* which follows this second *udātta* gets the accent mark २र (for example, as १ – none – २र).

३क - If an *anudātta* is followed by a *svarita*, then the *svarita* is accented as २र, and the *anudātta* is accented as ३क (for example, as ३क – २र).

२उ - If an *anudātta* occurs after two *udātta*-s in sequence, the first *udātta* is indicated by २उ, and the second *udātta* is not indicated (as in २उ – none – none).

7 Parity check for Accuracy

Our Vedic sages were very practical in developing devises to make the chanting very accurately, so that the correct version is passed on to the next generation.. To make the pronunciation and recitation error-free, our ancestors have cleverly devised some parity checks (similar to the ones we see these days in ISBN numbers in published books or the numbers attached to bar codes in products). We find some count calculation entry (telling how many occurrances), appearing after each *daśaka* in *Pūrvārcikā* and after each *Sūkta* in *Uttarārcikā*. They are written as follows:

For example: [स्वरिताः ९ | उ॰ ना॰ | धा॰ | वे ॥], [स्व॰ ३९ | उ॰ २ | धा॰ ५२ | खा ॥], [स्व॰ ९ | उ॰ २ | धा॰ ५७ | थे ॥], [स्व॰ ९ | उ॰ ३ | धा॰ ८३ | दी ॥], and so on.

In this procedure, an entire group (*Daśati* or *Sūkta*) is regarded as a single unit. At the end of each, a syllable is given. The syllables for the first five *daśati*-s in *Pūrvārcikā* are: वे, खा, टे, धी, षा. From the syllable खा , we can infer the following numbers tor the entire group.

a) the number of unmarked syllables (धारी) not at end of a verse in the entire group, modulo 5.

b) the number of syllables marked २उ .

c) the number of *svarita* symbols marked २र.

All these numbers are given in their (modulo 5) versions.

For instance, consider the second *daśati* of the *Uttarārcikā*. The letter at the end is खा . From this letter, we can infer the following.

(i) Number of *dhārī* symbols (not at the end): 2 (modulo 5)

(ii) Number of syllables marked २उ is: 2

(iii) Number of syllables marked २र is: 6

To illustrate this error detection procedure, consider the group of 3 mantras, (1084-1086) from *Uttarārcikā*.

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम ।।7.5.1 ।।

आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः। ऋणोउक्षं न चक्रयोः ।।7.5.2||

१ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र
आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम्। ऋणोउक्षं न शचीभिः ।।7.5.3 ।। (ठी)

[धा. 18 । उ 2 । स्व. 4।]

Note that उ = *udatta*; स्व = *svarita*; धा = *dhārī* (Number of syllables (*dhārī*) without any accent). The mysiric syllable associated with this *Sūkta* is ठी. From this syllable, we can derive the following:

ppn

1. Number of syllable (*dhārī*) without any accent; call it धा
2. Number with mark २उ; call it उ
3. Number with mark २र; call it स्व

We can obtain the three numbers from the text:

There are धा: 18, उ:2, and स्व: 4

Note in counting धा, we exclude syllables at the end. These 18 are displayed below.

In the first *mantra* -> र्नः स स न्तु = 4 letters In the second *mantra* धृ ष्णा वि र = 4 letters In the third *mantra* य दु श त क्र का = 10 letters

Accent mark 2उ : mantra 2 -> णो : 3 णो

Hence number उ is 2.

Accent mark २र: mantra 2-> क्रयो , *mantra* 3-> वः मै जी Number स्व equals 4.

The question is "how can we derive these numbers from the single syllable ठी only without looking at the text of the mantra?"

Note: ठी = ठ् + ई (consonant) + (vowel)

1) The number for स्व : it is given by the order of vowel in the vowel in ठी . namely ई has order 4 (remember the order अ (1), आ (2), इ (3), ई (4), उ (5), ऊ (6)-...)

Hence स्व -> 4

Arrange the first 25 consonants in groups of 5 as follows and read off the 3 number from the line in which the consonant occurs.

उ.१ -- क च ट त प

उ.२ -- ख छ ठ थ फ

उ.३ -- ग ज ड द ब

उ.४ -- घ झ ढ ध भ

उ.५ -- ङ ञ ण न म

Hence the consonant is ठ् , it is in line 2 indicating उ is 2.

the *dhārī* count is determined by the *varga* to which the consonant belongs:

Varga 1 क च ट त प

Varga 2 ख छ ठ थ फ

Varga 3 ग ज ड द ब

Varga 5 ङ ञ ण न म

Here the consonant ठ् belongs to *varga* 3. Hence That it can be 3, 8, 13 or 18. Here it is 18.

All this look complicated, but our *vedic* sages had the correct vision.

The material for this section is borrowed from the books: of Dr Śrīpāda Dāmodara Sātvalekar, and the English book by R.L. Kashyap, (bith mentioned in the Bibliograpgy). Our sincere thanks to these great authors.

8 The *Sāma Gāna* Texts

The entire chant literature (*Mantra*-s in musical setting) of the *Kauthuma Samhita* falls under four heads:

1. *Veya* (or *Grāmageya*) - chanted in public, before an audience
2. *Āraṇya* - chanted in forests in contemplation,
3. *Ūhā* - sung during the Soma yajna. The singing here followed a rather complicated pattern
4. *Ūhya* (mystic) singing within oneself

The *Sāma Gāna*-s belonging to *Kauthuma* Branch are distributed as follws:

Gāyati chant	1
Grāmageya gāna	1197
Āranya gāna	296
Ūhā gāna	936
Ūhya gāna	209
Total number of *gāna*-s	2639

According to some authorities, the total number is reckoned as 2723, with 297 in *Āranya*, 1026 in *Ūha*, and 205 in *Ūhya*.

ppn

There are eight modifications of a *Sāma mantra* to generate a *Gāna*.

No.	Modificatiion	Type	Illustration
1	*vikāra*	one letter in place of another	अग्ने -> ओग्नायि
2	*viśleṣa*	breaking up a sandhi	वीतये -> वोइतोयारयि
3	*vikarṣaṇa*	prolongation	ये -> याश्यि
4.	*abhyāsa*	repeatedly pronouncing	तोयारयि -तोयारयि
5	*virāma*	pause even in the middle	ग्रणानो हव्यदातये -> गृणनोह | व्यदातये |
		of a syllable	ग्रणानो हव्यदातये -> गृणनोह | व्यदातये |
6.	*stobha*	meaningless letter	ओ, होवा, हाउ, हावु
7.	*Āgama*	more letter than in a mantra	वरेण्यम् -> वरेणियम्
			प्रचोदयात् -> प्रचो५९२५९२
8.	lopa	letter left unpronounced	हुम् १, आ २१ दांयो आ ३ ४ ५

We illustrate how a *Gāna* takes shape from a *Samhitā mantra*, with two examples below. The first one is the very first mantra in *Pūrvārcikā*:

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥ 1.1.1.1

According to what is known as *Parka* of *Gotama* (गोतमस्य पर्कम्) the *Sāman* chant corresponding to the above *mantra* is given below:

आ ग्नाई । आ या हि ऽ३ वो इते या ऽ२ इ ।
तो या ऽ२ इ । गृणानो ह । व्य दा तो या ऽ२ह ।
तोय ऽ२ इ । ना ही ता सा ऽ२३ ।त्सा ऽ२ इ ।
वा २३४ ओहोवा । हो३ ऽ२ ३४ वी५ ॥

There is yet another version of the *Gāna* attributed to *Kāśyapa*, known as काश्यपस्य बर्हिषम् , which is slightly different from the above.

As a second example, the following *mantra* (number 598) appears in *Pūrvārcikā*.

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥ ५९४ ॥ 1.6.1.9

When rendered as a *Gāna* in the *Āraṇya gāna* book, this gets transformed into the following *Sāma gāna*:

॥ स्वर्ग्यम्, सेतुषाम, पुरुषगतिर्वा | प्रजापति ऋषिः | त्रिष्टुप् छन्दः | आत्मा देवता ॥
हा उहा उहा उ । सेतूं॰ स्तर । (३) दुस्त । रान् (२-३) दानेना दानम् । (३)
हा उहा उहा उ । अहमस्मिप्रथमजाऋताऽ२३ स्याऽ३४५ ।
हा उहा उहा उ । सेतूं॰ स्तर । (३) दुस्त । रान् (२-३) अक्रोधेन क्रोधम् । (२) अक्रोधेन क्रोधम् ।
हा उहा उहा उ । पूर्वन्देवेभ्यो अमृतस्यनाऽ२३ माऽ३४५ ॥
हा उहा उहा उ । सेतूं॰ स्तर । (३) दुस्त । रान् (२-३) । श्रद्धया श्रद्धाम् । (३)
हाउहा उहा उ । योमा ददाति सइदेव माऽ२३वाऽ३४५त् ॥
हा उहा उहा उ । सेतूं॰ स्तर । (३) दुस्त । रान् (२-३) । सत्येना नृतम् । (३)
हा उहा उहा उ । अहमन्नमन्नमदन्तमाऽ२३ द्मीऽ३४५ ।
हा उहा उहा उ ॥ एषा गतिः (३) । एतदमृतम् । (३) स्वर्गच्छ । (३)
ज्योतिर्गच्च (३) सेतूं॰ स्तीर्त्वा चतुराऽ३४५ः ॥

The *Gāna* texts of *Kauthuma Samhita* are very vast. These are the ones we often hear in regular *Sāmaveda* chanting sessions.Some of the *Gāna*-s have popular names: *Gāyati Sāma, Rathanthara Sāma, Bṙhat Sāma, Vāmadevya Sāma*, and so on.

9 A Short Bibliography

1. Benfey, Theodor, *Hymnen des Sama-veda, Die*, [herausgegeben übersetzt, und mit Glossar versehen von], Leipzig, F A Brockhaus, 1848

2. Devi Chand [translated by], *Sama Veda*, 1st edition, Hoshiarpur, 1963

3. Ganapati, S.V., [translated by] *Sama veda*. 1st edition, Shri Jainendra Press, Motilal Banarassidas, New Delhi, 1982

4. Griffith, Ralph, T.H., [translated by], Singh, Nag Sharan & Pratap, Surendra [enlarged by] *Samaveda Samhitā, The* Revised and Enlarged Edition, Nag Publishers, Delhi, 1991

5. Kashyap, R.L., *Essentials of Sama Veda and Its Music*, Sri Aurobindo Kapāli Sāstry Institute of Vedic Culture, Bangalore (second edition) 2008.

6. Sarasvati, Swami Satya Prakash [translated by], assisted by Satyakam, Vidyalankar, सामवेद संहिता *Sāmaveda Saṁhitā*. two Volumes, Veda Pratisthana,Arya Samaj, Mandir Marg, New Delhi, 1991-1992

7. Sātvalekar, Padmabhushan DrŚrīpāda Dāmodara [sampādaka], सामवेद का सुबोध अनुवाद (Hindi) - सामवेद संहिता, 4th saṁskraraṇam, pāraḍi Ji, Balasāda, svādhyāya Manḍala, 1985 (also available in 10 volumes)

8. Stevenson, The Rev. J, (DD), *Translation of The Samhitā of The Sāma Veda*, (London), Calcutta, 1906

9. Tulsi Ram (Dr), सामवेद संहिता, text with English Translation, Paropakarini sabha, Ajmer.

10 Colophon

This work was typeset, and the PDF file generated using the **XƎLaTeX** typesetting program (a sibilant of the popular TeX/LaTeX system. The graphics (page borders and the cover page designs) were created using **Ti*k*Z**. The Unicode Devanagari Vedic Font used was **Siddhanta** designed by Mihail Bayaryn. The Keyman Map for typing Sāmevedic accents were kindly created by Shree Devi Kumar. The Operating system was Ubuntu 18.04 Linux system. We offer our sincere thanks to the creaters of all these FREE software packages.

NOTE: In addition to numbering each *mantra* sequentially from 1 to 1875, we have also inserted a four number ordering (such as 1.4.3.9, 2.8.3.7, etc.,) that appears at the end of each *mantra* at the far right. These four entries refer to the number of the *arcika, adhyāya, khaṇḍa* and *Ṛk* (*pūrvārcika* =1, *uttarācika* = 2) respectively.

P P N

अ꣢ग्न꣣ आ꣡ या꣢हि वी꣣त꣡ये꣢ गृणा꣣नो꣢ ह꣣व्य꣡दा꣢तये । नि꣡ होता꣢꣯ सत्सि ब꣣र्हि꣡षि꣢ ॥

pūrvārcikā

adhyāya	khaṇḍa	prapāṭhaka	ardha	daśati	ṛk
āgneya kāṇḍam					
1	1	1	1	1	1-10
	2			2	11-20
	3			3	21-34
	4			4	35-54
	5			5	45-54
	6		2	6	55-62
	7			7	63-72
	8			8	73-80
	9			9	81-90
	10			10	91-96
	11	2	1	1	97-106
	12			2	107-114
aindra kāṇḍam					
2	1			3	115-124
	2			4	125-134
	3			5	135-144
	4		2	6	145-155
	5			7	156-164
	6			8	165-174
	7			9	175-184
	8			10	185-193
	9	3	1	1	194-203
	10			2	204-213
	11			3	214-222
	12			4	223-232

3	1	3	1	5	233-242
	2		2	6	243-252
	3			7	253-262
	4			8	263-272
	5			9	273-282
	6			10	283-292
	7	4	1	1	293-302
	8			2	303-312
	9			3	313-322
	10			4	323-331
	11			5	332-341
	12		2	6	342-351
4	1			7	352-359
	2			8	360-369
	3			9	370-380
	4			10	381-390
	5	5	1	1	391-398
	6			2	399-408
	7			3	409-418
	8			4	419-426
	9			5	427-436
	10		2	6	437-446
	11			7	447-456
	12			8	457-466
pāvamāna kāṇḍam					
5	1			9	467-476
	2			10	477-486

	3	6	1	1	487-496
	4			2	497-510
	5			3	511-522
	6			4	523-532
	7			5	533-544
	8		2	6	545-553
	9			7	554-565
	10			8	566-577
	11			9	578-585
āraṇya kāṇḍam					
6	1	-	-	1	586-594
	2			2	596-601
	3			3	602-614
	4			4	615-626
	5			5	627-640
mahānāmnyārcikā					
-	-	-	-	-	641-650

uttarārcikā

adhyāya	prapāṭhaka	ardha	khaṇḍa	sūkta	ṛk
1	1	1	1-6	1-23	651-712
2		2	1-6	1-22	713-774
3	2	1	1-6	1-19	775-829
4		2	1-6	1-19	830-885
5	3	1	1-7	1-22	886-954
6		2	1-7	1-23	955-1030
7	4	1	1-7	1-24	1031-1115
8		2	1-6	1-14	1116-1174
9	5	1	1-9	1-20	1175-1252
10		2	1-12	1-23	1253-1346
11	6	1	1-3	1-11	1347-1378
12		2	1-6	1-20	1379-1434
13		3	1-6	1-18	1435-1488
14	7	1	1-4	1-16	1489-1534
15		2	1-4	1-14	1535-1572
16		3	1-4	1-21	1573-1616
17	8	1	1-4	1-17	1617-1656
18		2	1-4	1-19	1657-1710
19		3	1-5	1-18	1711-1764
20	9	1	1-5	1-18	1765-1815
		2	1-2	1-13	1816-1848
21		3	1-7	1-9	1845-1875

पूर्वार्चिका

अध्याय	खण्ड	प्रपाठक	अर्ध	दशति	ऋक्
आग्नेय काण्डम्					
१	१	१	१	१	१-१०
	२			२	११-२०
	३			३	२१-३४
	४			४	३५-५४
	५			५	४५-५४
	६		२	६	५५-६२
	७			७	६३-७२
	८			८	७३-८०
	९			९	८१-९०
	१०			१०	९१-९६
	११	२	१	१	९७-१०६
	१२			२	१०७-११४
ऐन्द्र काण्डम्					
२	१			३	११५-१२४
	२			४	१२५-१३४
	३			५	१३५-१४४
	४		२	६	१४५-१५५
	५			७	१५६-१६४
	६			८	१६५-१७४
	७			९	१७५-१८४
	८			१०	१८५-१९३
	९	३	१	१	१९४-२०३
	१०			२	२०४-२१३
	११			३	२१४-२२२
	१२			४	२२३-२३२

ppn

३	१	३	१	५	२३३-२४२
	२		२	६	२४३-२५२
	३			७	२५३-२६२
	४			८	२६३-२७२
	५			९	२७३-२८२
	६			१०	२८३-२९२
	७	४	१	१	२९३-३०२
	८			२	३०३-३१२
	९			३	३१३-३२२
	१०			४	३२३-३३१
	११			५	३३२-३४१
	१२		२	६	३४२-३५१
४	१			७	३५२-३५९
	२			८	३६०-३६९
	३			९	३७०-३८०
	४			१०	३८१-३९०
	५	५	१	१	३९१-३९८
	६			२	३९९-४०८
	७			३	४०९-४१८
	८			४	४१९-४२६
	९			५	४२७-४३६
	१०		२	६	४३७-४४६
	११			७	४४७-४५६
	१२			८	४५७-४६६
पावमान काण्डम्					
५	१			९	४६७-४७६
	२			१०	४७७-४८६

	३	६	१	१	४८७-४९६
	४			२	४९७-५१०
	५			३	५११-५२२
	६			४	५२३-५३२
	७			५	५३३-५४४
	८		२	६	५४५-५५३
	९			७	५५४-५६५
	१०			८	५६६-५७७
	११			९	५७८-५८५
आरण्य काण्डम्					
६	१	-	-	१	५८६-५९४
	२			२	५९६-६०१
	३			३	६०२-६१४
	४			४	६१५-६२६
	५			५	६२७-६४०
महानाम्न्यार्चिका					
-	-	-	-	-	६४१-६५०

उत्तरार्चिका

अध्याय	प्रपाठक	अर्ध	खण्ड	सूक्त	ऋक्
१	१	१	१-६	१-२३	६५१-७१२
२		२	१-६	१-२२	७१३-७७४
३	२	१	१-६	१-१९	७७५-८२९
४		२	१-६	१-१९	८३०-८८५
५	३	१	१-७	१-२२	८८६-९५४
६		२	१-७	१-२३	९५५-१०३०
७	४	१	१-७	१-२४	१०३१-१११५
८		२	१-६	१-१४	१११६-११७४
९	५	१	१-९	१-२०	११७५-१२५२
१०		२	१-१२	१-२३	१२५३-१३४६
११	६	१	१-३	१-११	१३४७-१३७८
१२		२	१-६	१-२०	१३७९-१४३४
१३		३	१-६	१-१८	१४३५-१४८८
१४	७	१	१-४	१-१६	१४८९-१५३४
१५		२	१-४	१-१४	१५३५-१५७२
१६		३	१-४	१-२१	१५७३-१६१६
१७	८	१	१-४	१-१७	१६१७-१६५६
१८		२	१-४	१-१९	१६५७-१७१०
१९		३	१-५	१-१८	१७११-१७६४
२०	९	१	१-५	१-१८	१७६५-१८१५
		२	१-२	१-१३	१८१६-१८४८
२१		३	१-७	१-९	१८४५-१८७५

Some usages I have seen

References	Jīhvāmūlīya	Upadhmānīya
F. Max Müller, *A Sanskrit Grammar for beginners*, 1870, p.5; F. Kittel, *A Kannada-English Dictionary*, 1894, p.xii (for Skr.)	X	ꣳ
F. Kittel, *op. cit.*, p.xii & s.v. (for Kannada)	⧗ or X	oo
Journal of the Bihar and Orissa Research Society, transliteration table	X	)(
Anshuman Pandey, devchars.pdf	⌢⌣	)(
ALA-LC Romanization Tables, 1997, 'Sanskrit and Prakrit'	)(	⌢⌣
ISCII - 1991, pp.23, 24	×	×
G. Bühler, *Leitfaden für den Elementarcursus des Sanskrit*, 1883, Schrifttafel	X	≍
H. T. Colebrooke, *A Grammar of the Sanskrit Language*, 1805, p.2	≍	≍
A. A. Macdonell, *A Sanskrit Grammar for Students*[3], 1927, p.4	⌢⌣	⌢⌣

Note: ≍ is Ardhavisarga, and ⌢⌣ is presumably a variant form.

A.P.Stone April 28, 2000

The Various Methods of Marking Accent Employed in Vedic Literature

9/15/07

Notes translated and adapted from Yudhiṣṭhira Mīmāṁsaka's Hindi-language work.

Mīmāṁsaka, Yudhiṣṭhira. Vikrama 2021 [1964]. *Vaidika-vāṅmaya meṁ prayukta vividha svarāṅkana prakāra.* Ajmer: Bhāratīya Prācyavidyā Pratiṣṭhāna.

| svarita (RV, AV), udātta (MS)

_ anudātta (RV), udātta (ŚB)

Ācārya, Padmanārāyaṇa. "Vaidika svara kā eka paricaya." *Nāgarī Pracāriṇī Patrikā*, bhāga 14, pp. 283-322.

[YM: Follows european rules which are deficient.]

Śāstrī, Dhāreśvarī (a?). YM: "Dhāreśvara Śāstrī ne Sāma saṁbandhī svarāṅkana kā nirdeśa 8 sūtroṁ se darśāyā hai." But he can't remember the name of the book because he copied it as a student long ago.

Sātavalekara. Intro to Sāmaveda, *Maitrāyaṇī Saṁhitā*, etc.

Viśvabandhu Śāstrī. *Vaidikapadānukramakoṣa.* Saṁhitā bhāga, part 1, intro.

[YM: Follows european rules which are deficient.]

Scan Abbreviations:

DRGG = Daulata Rāma Gauḍa editor for Gupta publication of Mādhyandina Śukla Yajurveda
DRGC = Daulata Rāma Gauḍa editor for Caukhamba publication of Mādhyandina Saṃhitā
RVKhS = Ṛgveda, editors Sontakke and Kashikar
VSKS = Vājasaneyi Saṃhitā, Kāṇva recension, editor Sātavalekar
KāSS = Kāṭhaka Saṃhitā, editor Sātavalekar
KāSSch = Kāṭhaka Saṃhitā, editor Schröder
MSS = Maitrāyaṇīya Saṃhitā, editor Sātavalekara
MSSch= Maitrāyaṇīya Saṃhitā, editor Schröder
SVKŚ = Sāmaveda, Kauthuma recension, editor B.R. Śarma
AVŚW= Atharvaveda, Śaunaka recension, editor Whitney
AVPR = Atharvaveda, Paippalāda recension, editor Raghuvīra
ŚBMA = Śatapatha Brāhmaṇa, Mādhyandina recension, published by Acyuta Granthamāla
KāBS = Kāṭhaka Brāhmaṇa, editor Sūryakānt

Svarita

jātya svarita: lexicalized kṣaipra, e.g. *kva*
kṣaipra svarita: udātta *ik* > *yaṇ*, subsequent anudātta > svarita *iko yaṇ aci*
praśleṣa svarita: udātta ac + anudātta ac > svarita, e.g. *ā*, *ī*, etc. *akaḥ savarṇe dīrgha*, *ād guṇaḥ*, *vṛddhir eci*
abhinihita: [*eo*] + *a* > [*eo*] ′ *eṅaḥ padāntād aci*

Pāṭha

nirbhuja = saṁhitā   mantra-saṁhitā = *ārṣī*-saṁhitā
pratṛṇa = analyzed (*padapāṭha*)   pada-saṁhitā = ācārya-saṁhitā
prakṛti = saṁhitā, pada-pāṭha, > krama-pāṭha >
vikṛti = (8) jaṭa, mālā, śikhā, rekhā, dhvaja, daṇḍa, ratha, ghana
principal among the vikṛtis are jaṭa and daṇḍa
jaṭa > śikhā
daṇḍa > mālā, rekhā, dhvaja, ratha
both > ghana
krama-saṁhitā = another name for krama-pāṭha = rūḍhā (2 words at a time: ab | bc | cd | ...)
saṁhitā = yogā (abcd...)

Accentuation according to Vedic recensions

[Underlying accents are marked with a mark preceding the accented vowel as follows: Mark only udātta (with forward slash), and independent svarita (with caret) [pracaya is unmarked]
Surface graphic accents are marked as follows:
backslash = horizontal line below the preceding akṣara
caret = vertical line above the preceding akṣara]
(Page) Sūtra.
ekaśruti: the same pitch as a preceding raised pitch
(p. 7)

7. Ṛgveda (Śākala)

8. _ anudātta
9. | svarita
10. unmarked after a svarita is ekaśruti = pracaya
(p. 8)
YM thinks pracaya is similar to anudātta, but in RV _ marks sannatara which is lower than anudātta and svarita begins higher than udātta so udātta ends up between the beginning of svarita and the sannatara.
In

अग्निमीळे पुरोहितम् (*Ṛgveda* 1.1.1) p. 7 (1)

Deep accent: *agnímīḷe puróhitam*

अ and पु are anudātta

मी and हि are svarita

In

होतारं रत्नधातमम् (*Ṛgveda* 1.1.1) p. 8 (2)

Deep accent: *hótāraṁ ratnadhā́tamam*

रं, र, and म are ekaśruti.

11. Initial or preceded by an anudātta, an unmarked syllable is udātta.
In

अग्ने यं यज्ञमध्वरम् (*Ṛgveda* 1.1.4) p. 8 (3)

Deep accent: *ágne yáṁ yajñámadhvarám*

12. Preceded by an independent (jātya, kṣaipra, praśleṣa, or abhinihita) svarita that is uttered with kampa, an unmarked syllable is udātta. (If the preceding doesn't have kampa then

it'll be ekaśruti=pracaya.)
(p. 9)

13. An independent (jātya, kṣaipra, praśleṣa, or abhinihita) svarita has kampa if followed by an udātta or svarita. (*R̥kprātiśākhya* 3.34) Other svaritas result from anudātta which remains anudātta before udātta or svarita.
(p. 10)

14. १॑ after a short independent (jātya, kṣaipra, praśleṣa, or abhinihita) svarita with kampa.

jātya: क्थ्यं in: उ॒क्थ्यं१॑ वचो॑ य॒तस्रु॑चा (*R̥gveda* 1.83.3) p. 10 (4)

Deep accent: *ukthyàṁ váco yatásrucā*

kṣaipra: ध्र्य in: स॒ध्र्य१॑ङ्नाम॑ भ॒द्रम् (*R̥gveda* 1.108.3) p. 10 (5)

Deep accent: *sadhryàṅnā́ma bhadrám*

[praśliṣṭa and abhinihita svaritas are never short]

The first half mātra of a svarita vowel is udātta; the remainder, i.e. half a mātra of a short vowel, 1.5 mātra of a long vowel and 2.5 mātras of a pluta vowel, is anudātta.
(p. 11)

[pluta svarita with kampa is never found]

In श॒तच॑क्रं यो॒३॑ ऽह्यो॑ व॒र्तनिः॑ (*R̥gveda* 10.144.4) यो is a long [YM: abhinihita < यो। अ॒ह्यः॑] svarita with kampa followed by a svarita. p. 11 (6)

Deep accent: *śatácakraṁ yò 'hyò vartaníḥ*

15. Long svarita with kampa is marked with horizontal line below plus the numeral 3 with vertical line above and horizontal line below.

jātya: र॒थ्यो॒३॑ वय॑स्वतः (*R̥gveda* 2.24.15)

kṣaipra: वि॒क्ष्वा॒३॑योः (*R̥gveda* 2.4.2)

Deep accent: *vikṣvā̀yóḥ*

praśliṣṭa: अ॒भी॒३॑दम् (*R̥gveda* 10.48.7

Deep accent: *abhī̀dám*

abhinihita: प्र॒थमं॑ वां॑ वृ॒णा॒नो॒३॑ऽयं सोमो॑ (*R̥gveda* 1.108.6)

Deep accent: *prathamáṁ vāṁ vr̥ṇānò 'yáṁ sómo*

Here, on p. 11 (7), व, यो, द, and य are udātta; थ्यो, क्ष्वा, भी, and नो are svarita with kampa.
(p. 12)

The 3 does not indicate pluta; a 3 without other marks (such as vertical line above and horizontal line below) does. A pluta is shown in

ओ३ङ्क्रतो॑ स्मर (*Mādhyandinasaṁhitā* 40.15) p. 12 (8)

Deep accent: *ó3ṅkráto smara*

DRGG40.15
[View Scan [.png]](#) [High Res [.tif]](#)

16. Kashmiri Ṛgveda

End of the khilas in vol. 4 of the Pune edition: khila according to the Kashmiri recension.

17. In mss of the *Ṛgveda* in Kashmir, the high pitch (udātta) is marked by a vertical line above.

अहं यशस्विनां यशो विश्वा रूपाण्या ददे । (*Ṛgveda* Khila 1.1.1) p. 12 (9)

Deep accent: *ahám̐ yáśasvínām̐ yáśo víśvā rūpā́ṇyā́ dade .*

RVKhS1.1.1
[View Scan [.png]](#) [High Res [.tif]](#)

[Khilas Sontakke and Kashikar 1983: 889-1001. Pp. includes the Khilas according to the Kashmiri recension.]

[Peterson. Catalogue of mss. in the Alwar State Library. includes Khilas with accent found in certain saṁhitā and pada mss. of *Ṛgveda* found in that library. "The most extensive collection of Khilas is preserved in a ms. of *Ṛgveda* saṁhitā discovered in Kashmir by Prof. G. Bühler and described for the first time in his "Detailed report of a tour in search of Sanskrit mss.", Bombay 1877, pp. 35-36. The ms. was procured for the library of the Deccan College, Poona, which is now transferred to the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, where it is deposited at present." p. 892. "The text is accented throughout. ... only the Udātta and primary Svarita are marked. The Udātta is marked by a small vertical stroke. This kind of marking Udātta is also found in the *Maitrāyaṇī Saṁhitā* (Cf. Schröder, Preface p. xxx). The primary Svarita is denoted by the sign "T" [that is just the curly hook at the beginning of a scripted *T*]. This sign occurs twice in the Khila portion (I.11.4; 12.7). In *Kāṭhaka Saṁhitā* a strong curve above the line comes as a sign of the primary Svarita, while in *Maitrāyaṇī Saṁhitā* the curve lies below the line (Cf. Schröder, ibid.). If the next syllable is accented, the primary svarita is denoted by '3' (Trikampa) even though the preceding syllable is short. This '3' which stands after the Svarita syllable has either a horizontal stroke below the line or a perpendicular stroke above the line. Scheftelowitz has retained this method of accentuation in his edition; the same has been followed here too. p. 894

p. 895 "In the Junagadh ms. however, the Svarita is marked by a horizontal line through the body of the letter and the Anudātta is marked as usual. This method is exactly the same as that in part of one of the alwar mss. of *Ṛgveda Saṁhitā* which are described in the Catalogue as belonging to the Śāṅkhāyana śākhā (See 'A Second Report of operations in search of Sanskrit mss. in the Bombay Circle', 1883-84 by Peter Peterson; Extra No. JBBRAS 1884). p. 895.]

Sontakke, N. S. and C. G. Kashikar, eds. 1983. *Ṛgveda-saṁhitā with the commentary of Sāyaṇācārya.* Vol. 4, Maṇḍalas 9-10. 2d. Pune: Tilak Maharashtra Vidyapith, Vaidika Saṁśodhana Maṇḍala.

(The corresponding *Atharvaveda* has य anudātta 6.39.1, 19.56.6 and only *vin*-pratyaya should be high-pitched: *yaśasvín*, not both the 1st *a* and *i*.

(p. 13)

18. An independent (jātya, kṣaipra, praśleṣa, or abhinihita) svarita is marked with a crooked line above. It is indicated in this file by the numeral 8 which as a superscript approximates the beginning of a scripted capital T used in Sontakke and Kashikar's

edition.

Jātya: हवन्तं मेषान् वृक्येऽ (Khila 1.12.7) p. 13 (10) (Sontakke and Kashikar 1983: 923)

Deep accent: *hávantaṁ meṣā́n vṛkyè*

RVKhS1.12.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

Kṣaipra समधान्वारुहन् स्वऽः (Khila 1.11.4) p. 13 (10) (Sontakke and Kashikar 1983: 922) [YM erroneously has आरुन्नहन्]

Deep accent: *sámadhā́nvāruhan svàḥ*

RVKhS1.11.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

(In YM, a Devanāgarī 8 appears small and raised over the last consonantal character of the akṣara. In Sontakke and Kashikar, it looks like the loop at the beginning of the fancy scripted T at the top and to the right of the horizontal bar at the top of the character.)

19. Followed by an udātta, an independent (jātya, kṣaipra, praśleṣa, or abhinihita) svarita has kampa.

20. It itself, unmarked, is followed by a 3 with a horizontal line below (regardless of whether it is short or long).

(p. 14)

jātya आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं३ सरः । (Khila 3.1.3) p. 14 (11) (Sontakke and Kashikar 1983: 940)

Deep accent: *ā́po ná vajrinnánvokyàṁ3 sáraḥ .*

kṣaipra सन्ति ह्य३र्य आशिष (Khila 3.6.7) p. 14 (11) (Sontakke and Kashikar 1983: 944)

Deep accent: *sánti hyàryá āśíṣa*

RVKhS3.6.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

यो जाम्या३ः प्रत्यमदद्यः (Khila 5.12.2) p. 14 (11)

Deep accent: *yó jāmyā̀ḥ prátyamadadyáḥ*

RVKhS5.12.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita परे हीऽतो३घ्न्यास्ये (Khila 4.5.32) p. 14 (11)

Deep accent: *paré hī'tòghnyā́sye*

RVKhS4.5.32
View Scan [.png] High Res [.tif]

(Av 10.1.20 verifies the last example which is incorrect in the Pune edition and the German edition.)

21. The rest (anudātta, ekaśruti, and svarita following an udātta) is unmarked.

p.15

[Kāṭhaka and *Maitrāyaṇī Saṁhitā* use the above methods with some modification.]

22. Yajurveda

23. Śukla versus Kr̥ṣṇa
24. Śukla: Mādhyandina, Kāṇva
25. Kr̥ṣṇa: Taittirīya, Maitrāyaṇī, Kāṭhaka, Kapiṣṭhala Kaṭha
26. In the *Mādhyandina Saṁhitā*, the udātta, anudātta, ekaśruti, and dependent svarita is marked as in *R̥gveda* (*Śākala*).

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ । (*Mādhyandina* 1.1.) p. 15 (12)

Deep accent: *iṣé tvorjé tvā vāyáva stha .*

DRGG1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

इ, त्वो, वा marked with horizontal line are anudātta (sū. 8)

त्वा, व marked with vertical line are svarita (sū. 9)

स्थ unmarked is ekaśruti (sū. 10)

षे, र्जे, य unmarked are udātta after anudātta (sū. 11)

27. Following an anudātta, an independent (jātya, kṣaipra, praśleṣa, or abhinihita) svarita is marked with a crooked line below: (क꣭) indicated in this file by <ISM> for "Independent Svarita (not followed by udātta or svarita) YV *Mādhyandina Saṁhitā*" = Vedic Symbol 149.
(p. 16)

jātya वीर्या<ISM>णि प्र वोचं यः (*Mādhyandina* 5.18) p. 16 (13)

Deep accent: *vīryā̀ṇi prá vocaṁ yáḥ*

DRGG5.18
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC5.18
View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra द्यौरसि पृथिव्य<ISM>सि (*Mādhyandina* 1.2) p. 16 (13)

Deep accent: *dyaúrasi pr̥thivyàsi*

DRGG1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa अभी<ISM>न्धतामुखे वरूत्रीष्ट्वा (*Mādhyandina* 11.61) p. 16 (13)
Deep accent: *abhī̀ndhatāmukhe várūtrīṣṭvā*

DRGG11.61
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC11.61
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita घर्मो<ISM> ऽसि (*Mādhyandina* 1.2) p. 16 (13)
Deep accent: *gharmò 'si*

DRGG1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita वधो<ISM> ऽसि (*Mādhyandina* 1.2) p. 16 (13)
Deep accent: *vadhò ’si*

DRGG1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

When kṣaipra does not follow a low pitch, then it's marked like a dependent svarita with a vertical line above.

त्र्यम्बकं यजामहे (*Mādhyandina* 3.60) p. 16 (14)
Deep accent: *tryàmbakaṁ yajāmahe*

DRGG3.60
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC3.60
View Scan [.png] High Res [.tif]

अव देवं त्र्यम्बकम् (*Mādhyandina* 3.58) p. 16 (14)
Deep accent: *áva deváṁ tryàmbakam*

DRGG3.58
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC3.58
View Scan [.png] High Res [.tif]

उर्व्या व्यद्यौत् (*Mādhyandina* 12.1) p. 16 (14)
Deep accent: *urvyā́ vyàdyaut*

DRGG12.1
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC12.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

28. If an independent (jātya, kṣaipra, praśleṣa, or abhinihita) svarita is followed by an udātta then it is marked with a three-pronged mark (क) below indicated in this file by <ISKM> for "Independent Svarita followed by udātta or svarita YV *Mādhyandina Saṁhitā*" = Vedic Symbol 135.

jātya वेर्दूत्य<ISKM>मवतां त्वा (*Mādhyandina* 2.9) p. 16 (15)
Deep accent: *verdūtyàmávatāṁ tvā*

DRGG2.9
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC2.9
View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra उर्व<ISKM>न्तरिक्षमन्वेमि (*Mādhyandina* 1.7, 1.11) p. 16 (15)
Deep accent: *urvàntárikṣamánvemi*

DRGG1.7
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC1.7
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGG1.11
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC1.11

View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa अभी<ISKM>मं महिमा (*Mādhyandina* 38.17) p. 16 (15)
Deep accent: *abhī̀mám̐ mahimā́*

DRGG38.17
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC38.17
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita पाशैर्यो<ISKM> ऽस्मान् द्वेष्टि यं च (*Mādhyandina* 1.25) p. 16 (15)
Deep accent: *pā́śairyò 'smā́n dvéṣṭi yám̐ ca*

DRGG1.25
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC1.25
View Scan [.png] High Res [.tif]

लोके<ISKM> ऽस्मिन् (*Mādhyandina* 3.21) p. 16 (15)
Deep accent: *lokè 'smín*

DRGG3.21
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC3.21
View Scan [.png] High Res [.tif]

[The crooked line (कङ्ग) occurs beneath the independent svarita if it is followed by anudātta, ekaśruti, or no sound; the three-pronged mark (कं) if followed by udātta.]
[YM raises the following problem: But in the following passage, in the first स्वर्ण, the kṣaipra or jātya svarita is marked with a horizontal line below (क) instead of with the three pronged mark (कं) as in the non-initial. Dayānanda Sarasvati's commentary has the three-pronged mark.
स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्व<ISKM>र्णार्कः स्वाहा स्व<ISKM>र्ण शुक्रः स्वाहा स्व<ISKM>र्ण ज्योतिः स्वाहा स्व<ISKM>र्ण सूर्यः स्वाहा ।। (*Mādhyandina* 18.50) p. 16 (16) [YM missing accent marks on *gharmaḥ*, *arkaḥ*, and *sūryaḥ*]
Deep accent: *svàrṇá gharmáḥ svā́hā svàrṇā̀rkáḥ svā́hā svàrṇá śukráḥ svā́hā svàrṇá jyótiḥ svā́hā svàrṇá sū́ryaḥ svā́hā ..*
Deep accent: *gharmáḥ . arkáḥ . ná . svā́hā . śukráḥ . sū́ryaḥ . jyótiḥ*
[MW has *gharmá*.]

DRGG18.50
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC18.50
View Scan [.png] High Res [.tif]

(p. 17)

29. In all saṁhitās of the YV except *Maitrāyaṇīsaṁhitā*, an independent svarita before an udātta does not have kampa as it does in the RV. [See sū. 47 for *Maitrāyaṇī*'s kampa.]

30. Kāṇvasaṁhitā

An independent svarita not followed by an udātta, i.e. followed by anudātta, ekaśruti, or virāma, is marked by a vertical line above as in RV.

(p. 18)

jātya वीर्याणि प्र वोचं यः (*Kāṇvasaṁhitā* 5.5.6) p. 18 (17)
Deep accent: *vīryā̀ṇi prá vocaṁ yáḥ*

VSKS5.5.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra द्यौरसि पृथिव्यसि (*Kāṇvasaṁhitā* 1.2.1) p. 18 (17)
Deep accent: *dyaúrasi pṛthivyàsi*

VSKS1.2.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa अभीन्धतामुखे (*Kāṇvasaṁhitā* 12.6.2) p. 18 (17)
Deep accent: *abhī̀ndhatāmukhe*

VSKS12.6.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita घर्मो ऽसि (*Kāṇvasaṁhitā* 1.2.1) p. 18 (17)
Deep accent: *gharmò 'si*

VSKS1.2.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

वधो ऽसि (*Kāṇvasaṁhitā* 1.9.6) p. 18 (17)
Deep accent: *vadhò 'si*

VSKS1.9.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

31. An independent svarita followed by an udātta or svarita is marked just by a horizontal line below.

jātya वीर्यं मयि धेहि (*Kāṇvasaṁhitā* 21.1.8) p. 18 (18)
Deep accent: *vīryàṁ máyi dhehi*

VSKS21.1.8
View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra उर्वन्तरिक्षमन्वेमि (*Kāṇvasaṁhitā* 1.3.3) p. 18 (18)
Deep accent: *urvàntárikṣamánvemi*

VSKS1.3.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa अभीमं महिमा (*Kāṇvasaṁhitā* 38.4.1) p. 18 (18)
Deep accent: *abhī̀mám mahimā́*

VSKS38.4.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च (*Kāṇvasaṁhitā* 1.9.4) p. 18 (18)
Deep accent: *yò 'smā́n dveṣṭi yáṁ ca*

VSKS1.9.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

र्य, र्व, ब्ही, and यो are marked below with a horizontal line.
Just as by *Aṣṭādhyāyī* 8.4.66 After an udātta an anudātta is replaced by a svarita, and by *Aṣṭādhyāyī* 8.4.67 not before an udātta or svarita, similarly in the *Kāṇvasaṁhitā* (not only

a svarita after an udātta but) even an independent svarita before an udātta or svarita is replaced by an anudātta.

Vājasaneyi Prātiśākhya 4.138 निहितमुदात्तस्वरितपरम्

<rule source = "^" target = "\" rcontext = "[/^]" c = " *VPr.* 4.138"/>

In *Kāṇvasaṁhitā*, an independent svarita becomes anudātta before an udātta or svarita. [In Śākalya and Śaunaka's śākhās the 2nd part of a svarita becomes low-pitched and has kampa but in *Taittirīyasaṁhitā* it doesn't (in opposition to Ananta's commentary on *VPr.* sūtra 4.141.]

Cf *Mādhyandina* on p. 16 sūtra 28) Kāṇva on 22.2.13 [YM error; located at 20.2.13 in Satavalekar's edition of the Kāṇva recension of the *Vājasaneyisaṁhitā*]:

स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः स्वाहा ।। (*Kāṇvasaṁhitā* 22.2.13) p. 19 (19)

Deep accent: *svàrṇá gharmáḥ svā́hā svàrṇā̀rkáḥ svā́hā svàrṇá śukráḥ svā́hā svàrṇá jyótiḥ svā́hā svàrṇá sū́ryaḥ svā́hā ..*

VSKS20.2.13
View Scan [.png] High Res [.tif]

स्व is anudātta before udātta.

हा in स्वाहा becomes anudātta before स्वर्णार्कः even though its svarita becomes anudātta. So it still retains some influence of being svarita.
(p. 20)

32. Kapiṣṭhala-kaṭha Saṁhitā

In *Kapiṣṭhala-kaṭha Saṁhitā* everything is as in *Kāṇvasaṁhitā.*

33. A short independent (jātya or kṣaipra) svarita followed by an udātta becomes long. [praśleṣa and abhinihita svaritas are always long.]
(p. 21)

उर्वान्तरिक्षम् (*KKS.* 1.2) p. 21 (20)

Deep accent: *urvàntárikṣam*

अप्स्वान्तः (*KKS.* 48.4) p. 21 (20)

Deep accent: *apsvàntáḥ*

[Intro to Vishvabandhu's *Vaidika Koṣa*, 1st part of saṁhitā vol. intro. p. 119.]

34. Taittirīya Saṁhitā

In *Taittirīya Saṁhitā* recitation the marking of accents is the same as in *Kāṇva* recitation except an independent svarita followed by an udātta.

35. An independent svarita followed by an udātta too is marked by a vertical line above. [All svaritas in TS are marked with a vertical line above.]

36. Kāṭhaka Saṁhitā

In *Kāṭhaka Saṁhitā* the udātta is marked by a vertical line above.

देवस्य त्वा सवितुः (*KāS.* 1.2) p. 21 (21)

Deep accent: *devásya tvā savitúḥ*

KāSS1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

37. An independent svarita not followed by an udātta or svarita (i.e. followed by an anudātta, ekaśruti, or virāma) is marked with a half moon (ardha candra) below (का). It is indicated in this file by <ISK> for "Independent Svarita (not followed by udātta or svarita) YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" = Vedic Symbol 59. [p. 22 note 1: Schröder's edition uses a backwards cedille (ḥ = Times 254) instead of a half moon.

jātya निष्टर्क्यं<ISK> बध्नाति (*KāS.* 24.5) p. 22 (22)
Deep accent: *niṣṭarkyàṁ badhnāti*

KāSS24.5
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch24.5
View Scan [.png] High Res [.tif]

वीर्य<ISK>मभिसमियात् (*KāS.* 24.5) p. 22 (22) [???Missing acute on sam? YM might have had one on mi]
Deep accent: *vīryàmabhisamiyāt*

KāSS24.5
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch24.5
View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra व्यृ<ISK>द्धा वा (*KāS.* 24.4) p. 22 (22)
Deep accent: *vyr̥̀ddhā vā́*

KāSS24.4
View Scan [.png] High Res [.tif]
KaSSch24.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa उर्व<ISKK>न्तरिक्षं वी<ISK>हि (*KāS.* 1.4) p. 22 (22)
Deep accent: *urvàntárikṣaṁ vìhi*

KāSS1.4
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch1.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita प्राणो व्यानो<ISK> ऽतिष्ठिता (*KāS.* 38.5) p. 22 (22) [Not found in Schroeder's or Satavalekar's eds. of the *Kāṭhaka Saṁhitā*]
Deep accent: *prāṇó vyānò 'tiṣṭhitā*
In pause:
jātya प्र वीर्य<ISK>म् । श्नथद्० (*KāS.* 4.15) p. 22 (22)
Deep accent: *prá vīryàm . śnáthad...*

KāSS4.15
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch4.15
View Scan [.png] High Res [.tif]

मन्त्रं वदत्युक्थ्य<ISK>म् । यस्मिन्० (*KāS.* 7.14) p. 22 (22) [???Missing udātta on yasmin?]
Deep accent: *mántraṁ vadatyukthyàm . yasmin...*

KāSS7.14
View Scan [.png] High Res [.tif]

KāSSch7.14
View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa सुगं मेषाय मेष्यै<ISK> । अथो० (*KāS.* 9.7) p. 22 (22)
Deep accent: *sugáṁ meṣā́ya meṣyaì . atho...* [???Missing udātta on *atho*?]

KāSS9.7
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch9.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

38. Followed by an udātta or svarita, an independent svarita is marked by a three-pronged mark below. It is indicated in this file by <ISKK> (= <ISKM> क) for "Independent Svarita followed by udātta or svarita (with kampa note shape!) YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" = Vedic Symbol 135. [p. 22 note 2: Schröder's edition uses a hollow triangle below (closest but too big and in line instead of below is (= Wingdings 3 char 114) instead of a three-pronged mark.]
Followed by udātta:

jātya उक्थाव्यं<ISKK> यत्त इन्द्र (*KāS.* 4.5) p. 23 (23)
Deep accent: *ukthāvyàṁ yátta indra*

KāSS4.5
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch4.5
View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra उर्व<ISKK>न्तरिक्षम् (*KāS.* 1.2, 1.4) p. 23 (23)
Deep accent: *urvàntárikṣam*

KāSS1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSS1.4
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch1.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa वी<ISKK>हीन्द्रस्य (*KāS.* 1.2) p. 23 (23)
Deep accent: *vı̄̀hı̄́ndrasya*

KāSS1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

ही<ISKK>माः (*KāS.* 24.4) p. 23 (23)
Deep accent: *hı̄̀mā́ḥ*

KāSS24.4
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch24.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita प्रसवे<ISKK> ऽश्विनोर्बाहुभ्याम् (*KāS.* 1.2) p. 23 (23)
Deep accent: *prasavè 'śvínorbāhúbhyām*

KāSS1.2

View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

आस्माको<ISKK> ऽसीति (*KāS.* 24.5) p. 23 (23)
Deep accent: *āsmākò 'sī́ti*

KāSS24.5
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch24.5
View Scan [.png] High Res [.tif]

Followed by svarita:

सो<ISKK> ऽर्को ऽभवत् (*KāS.* 21.6) p. 23 (23)
Deep accent: *sò 'rkò 'bhava*

KāSS21.6
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch21.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

Exceptions:

1. विशो वै वीर्यमपाक्रमत् (*KāS.* 11.6) p. 23 (24)
Deep accent: *viśó vaí vīryàmápākramat*

KāSS11.6
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch11.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

2. देवाः पितरौ मनुष्यास्ते<ISKK> ऽन्यतः आसन् (*KāS.* 10.7) p. 23 (24)
Deep accent: *devā́ḥ pitárau manuṣyā̀stè 'nyátaḥ ā́san*

KāSS10.7
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch10.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

Even though an udātta follows in 1, र्य in वीर्य is marked with an *u* instead of the three-pronged mark क्<ISKK>.

Even though a svarita follows in 2, ष्या is marked with an *u* instead of the three-pronged mark क्<ISKK>.

[??? Is this a restriction or a copying error? YM actually marks them with a horizontal line below instead of the half moon below.]

[In Vishvabandhu's system, svarita followed by udātta is marked with a horizontal line below:

प्रसवे ऽश्विनोः (*KāS.* 2.9) p. 23 (25)]
Deep accent: *prasavè 'śvínoḥ*

KāSS2.9
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch2.9
View Scan [.png] High Res [.tif]

39. After an udātta, a [dependent] svarita (YM: replacing an anudātta) is marked with a dot

below (कॖ). It is indicated in this file by <DSK> for "Dependent Svarita YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" = Vedic Symbol 190.
(p. 24)

इषे त्वो<DSK>र्जे त्वा<DSK> (*KāS.* 1.1) p. 24 (26)

Deep accent: *iṣé tvorjé tvā*

KāSS1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

[Schröder doesn't mark it at all. Neither does Sātavalekara who follows him. Kaṭha should be added to the list of exceptions in *Aṣṭādhyāyī* 6.4.67 नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् since svarita occurs in the *Kāṭhaka Saṁhitā* even when an udātta follows.]
[Satvalekar Intro. p. 14 describes and has example]

40. An anudātta followed by an udātta is marked below by a vertical line below. It is indicated in this file by <AFUK> for "Anudātta Followed by Udātta YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" No precise equivalent but closest = (कै) Vedic Symbol 175, except that it doesn't occur beneath. [It is not clear whether this occurs under an anudātta followed by a svarita as well; I have so marked such anudāttas examples in columns G, H, and I in the excel table but note that dependent svarita takes precedence even if followed by udātta or svarita as in the example in column E. It is also not clear whether this occurs beneath initial anudātta followed by anudāttas.???]

अ<AFUK>ग्नि

Deep accent: *agní*

[Sātavalekara uses the crooked line <ISK> (क꣩) for the independent svarita and the three-pronged mark <ISKM> (क) below for the independent svarita followed by udātta or svarita (with kampa note shape!) as in ŚYV. Schröder uses a wavy long comma-like symbol and an up-angle lower and more centered than the post-round-bottom r (कॖ) which is Vedic symbol 123 respectively, see p. 25 line 2.]
(p. 25)

41. Maitrāyaṇīya Saṁhitā

"The accent marking used in the mss. of the *Maitrāyaṇīya Saṁhitā* cannot be properly represented in print until special accented type is created." YM shows it as in Sātavalekara's edition in the Svādhyāya Maṇḍala publications with some modifications.

42. A vertical stroke above marks an udātta.
43. A horizontal stroke below marks an anudātta.
44. After an udātta, a svarita that is either final or followed by ekaśruti is marked by a horizontal line through the character at mid-height in mss. It is indicated in this document by <DSEMai> for "Dependent Svarita before final or Ekaśruti *Maitrāyaṇīya Saṁhitā*." By YM it is marked by a crooked line below (क꣩).

Final:

यं एवंविद्वान<DSEMai>ग्निहोत्रं जुहोति<DSEMai> (*MaiS.* 1.8.6) p. 26 (27a)

Deep accent: *yá evámvidvā́nagnihotrám juhóti*

MSS1.8.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

MSSch1.8.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

दोषा वस्तोर्नमः स्वाहा<DSEMai> (*MaiS.* 1.8.7) p. 26 (27a)
Deep accent: *doṣā́ vástornámaḥ svā́hā*

MSS1.8.7
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.8.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

Here the ति in जुहोति and the हा in स्वाहा are final svarita.
Followed by ekaśruti:

इषे त्वा<DSEMai> सुभूताय<DSAMai> वायव<DSEMai> स्थ (*MaiS.* 1.1.1) p. 26 (27a)
Deep accent: *iṣé tvā subhūtā́ya vāyáva stha*

MSS1.1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

य एवं विद्वान<DSEMai>ग्निहोत्रं जुहोति<DSEMai> (*MaiS.* 1.8.6) p. 26 (27a)
Deep accent: *yá evám̐ vidvā́nagnihotrám̐ juhóti*

MSS1.8.6
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.8.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

In 1.1.1 after the udātta षे the त्वा is svarita before ekaśruti सु, and व is svarita before ekaśruti स्थ. In 1.8.6 after the udātta द्वा न is svarita before ekaśruti ग्नि.

45. Followed by an anudātta, a svarita following an udātta is marked by three vertical lines above in mss. It is indicated in this document by <DSAMai> for "Dependent Svarita before Anudātta *Maitrāyaṇīya Saṁhitā*." [By YM it is marked below by a three-pronged mark (क).]

इषे त्वा<DSEMai>सुभूताय<DSAMai>वायव<DSEMai>स्थ (*MaiS.* 1.1.1) p. 26 (27b)
Deep accent: *iṣé tvā subhūtā́ya vāyáva stha*

MSS1.1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

ता अ<DSAMai>तिमन्य<DSEMai>माना (*MaiS.* 2.5.6) p. 26 (27b)
Deep accent: *tā́ atimányamānāḥ* [varuṇa... Sātavalekara's ed.]

MSS2.5.6
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch2.5.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

(p. 27)
In some places, the crooked line below appears (in Sātavalekara's edition) instead of the three-pronged mark perhaps by mistake in printing or erroneous mss. reading.
For example:

महह<DSAMai>ः स्थ महो<DSEMai> वा (*MaiS. ??.??.??*) p. 27 (27c)
Deep accent: *máhaḥ stha máho vā* [???Should *vā* be accented?]
Sātavalekara has a crooked line under the हः, where he should have put the three-pronged mark which he uses instead of the triple vertical bars above, as well as under the हो, which he marked appropriately substituting crooked line for horizontal bar through the character at mid-height.
YM marks the following with triple bar:
इध्मः प्र<DSAMai>थमः (*MaiS.* 1.4.11) p. 27 (27)
Deep accent: *idhmáḥ prathamáḥ*

MSS1.4.11
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.4.11
View Scan [.png] High Res [.tif]

सवितुः प्र<DSAMai>स३वे ऽश्विनोः (*MaiS.* 1.2.15) p. 27 (27)
Deep accent: *savitúḥ prasavè 'śvínoḥ*

MSS1.2.15
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.2.15
View Scan [.png] High Res [.tif]

46. Followed by an anudātta or ekaśruti, an independent svarita is marked below by a half-moon (ardha candra) (का). It is indicated in this file by <ISMai> for "Independent Svarita (without kampa) YV *Maitrāyaṇīya Saṁhitā*" = Vedic Symbol 59.
Followed by anudātta:
jātya वीर्या<ISMai>णि प्रवो<DSAMai>चं यः (*MaiS.* 1.2.9) p. 27 (28)
Deep accent: *vīryā̀ṇi právocaṁ yáḥ*

MSS1.2.9
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.2.9
View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra चरुः सि<DSEMai>नीवाल्यै<ISMai> चरुः (*MaiS.* 2.6.4) p. 27 (28)
Deep accent: *carúḥ sinīvālyaì carúḥ*

MSS2.6.4
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch2.6.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita मित्रो<ISMai> ऽसि० (*MaiS.* 2.6.9) p. 27 (28)
Deep accent: *mitrò 'si...*

MSS2.6.9
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch2.6.9
View Scan [.png] High Res [.tif]

Followed by ekaśruti:

jātya in शिक्यं<ISMai> षडुद्या<ISMai>वं शिक्यं<ISMai> भवति षड्
(*MaiS.* ??.??.??) p. 27 (28)
Deep accent: *ṣáḍudyā̀vaṁ śikyàṁ bhavati ṣáḍ*

kṣaipra स्व<ISMai>रिति ३स्वर्मह्यं (*MaiS.* ??.??.??) p. 27 (28)
Deep accent: *svàrihi svàrmáhyaṁ*

(p. 28)

abhinihita श्वोभूते<ISMai> ऽग्नीषोमीया० (*MaiS.* 2.6.1) p. 28 (28)
Deep accent: *śvóbhūtè 'gnīṣomī́yā...*

MSS2.6.1
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch2.6.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

सो<ISMai> ऽकामयत (*MaiS.* 2.5.11) p. 28 (28)
Deep accent: *sò 'kāmayata*

MSS2.5.11
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch2.5.11
View Scan [.png] High Res [.tif]

[YM does not distinguish anusvāra from anunāsika properly here marking before spirants and semivowels with candrabindu in line with virama and before stops with bindu above.]

47. Followed by an udātta, an independent svarita has kampa.

48. A svarita accompanied by kampa is marked below by a straight horizontal line and by a preceding 3.

jātya नैक<DSEMai>मेकं पितृदेव३त्यं तद् (*MaiS.* 1.4.10) p. 28 (29)
Deep accent: *naíkamekaṁ pitr̥devàtyaṁ tád*

MSS1.4.10
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.4.10
View Scan [.png] High Res [.tif]

स्रुक् का३र्यानेन वा (*MaiS.* 1.8.1) p. 28 (29)
Deep accent: *srúk kāryā̀néna vā́*

MSS1.8.1
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.8.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra मूर्ध्ना ह<DSEMai>राम्यु३र्वन्तरि<DSAMai>क्षं ३वीह्या
द<DSEMai>त्यास्त्वा(*MaiS.* 1.1.2) p. 28 (29)
Deep accent: *mūrdhnā́ harāmyurvàntárikṣaṁ vī̀hyádityāstvā*

MSS1.1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa उ३र्वन्तरि<DSAMai>क्ष ३वीहीत्य<DSEMai>न्तरिक्ष० (*MaiS.*

3.10.1) p. 28 (29)
Deep accent: *urvàntárikṣa vīhī̃tyantarikṣa...* [???Any further accents on antarikṣa?]
MSS3.10.1
[View Scan [.png]] [High Res [.tif]]
MSSch3.10.1
[View Scan [.png]] [High Res [.tif]]

abhinihita अ॒३जो॒ ऽस्यैक<DSEMai>पार्दहि<DSEMai>रसि (*MaiS.* 1.2.12) p. 28 (29)
Deep accent: *ajò 'syékapādáhirasi*
MSS1.2.12
[View Scan [.png]] [High Res [.tif]]
MSSch1.2.12
[View Scan [.png]] [High Res [.tif]]

०सवि॒तुः प्र<DSAMai>स॒३वे॒ ऽश्विनोः (*MaiS.* 1.2.15) p. 28 (29)
Deep accent: *...savitúḥ prasavè 'śvínoḥ*
MSS1.2.15
[View Scan [.png]] [High Res [.tif]]
MSSch1.2.15
[View Scan [.png]] [High Res [.tif]]

[Schröder put 3 before but not the horizontal line below.]
(p. 29)
[In स्व॒र्विद<DSAMai>सि॒ (*MaiS.* 1.2.15) p. 29 (30) स्वर्-विद् is a compound with उत्तरपदप्रकृतिस्वर so स्व is anudātta, not svarita. स्व- or स्वर्-?]
Deep accent: *svarvídasi*
MSS1.2.15
[View Scan [.png]] [High Res [.tif]]
MSSch1.2.15
[View Scan [.png]] [High Res [.tif]]

[YM: नमो<DSEMai> ऽस्यद्भ्यो॒० (*MaiS.* 2.9.4) p. 29 note 1 is incorrect in Sātavalekara's edition but correct in Schröder's edition. मो should be udātta (not svarita) as a result of the sandhi of anudātta म and following udātta अ according to A. 8.2.5.]
Deep accent: *námo 'syadbhyo...*
MSS2.9.4
[View Scan [.png]] [High Res [.tif]]
MSSch2.9.4
[View Scan [.png]] [High Res [.tif]]

Aṣṭādhyāyī 8.2.5 एकादेश उदात्तेनोदात्तः The single replacement of an udātta and a following anudātta is an udātta.
\ + / > / (in praśliṣṭa or abhinihita sandhi)
By determinate option (*vyavasthitavibhāṣā*) the following holds:
1. /a + \a > /A
2. /i + \i > ^I
3. /u + \u > ^U
4. / + \ > ^ in abhinihita sandhi

Examples of 1:

पृष्ठान्येवाचीकॢपत् (*MaiS.* 1.5.6) p. 29 (31) ev\a + /acI > ev/AcI
Deep accent: *pṛṣṭhā́nyevā́cīkḷpat*

MSS1.5.6
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.5.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

आप्त्वाव<DSEMai>रुन्धे (*MaiS.* 1.5.6) p. 29 (31) Aptv/A + \ava > Aptv/Ava
Deep accent: *āptvā́varundhe*

MSS1.5.6
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.5.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

Examples of 2:
In MaiS.1.1.2 in (29), ०३वीह्य० v/i + \ihi > v^Ihi
Deep accent: *...vı̄̀hya...*

MSS1.1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

(p. 30)
Example of 4:
गो३ष्ठे ऽयं० (*MaiS.* 1.5.2) p. 30 (32).
Deep accent: *goṣṭhè 'yáṁ...*
In g\oṣṭh/e \ay/am, /e + \a > ^e.

MSS1.5.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.5.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

[RV Kaśmīrī recension, Kapiṣṭhalakaṭha, and Maitrāyaṇī YV recensions are closely related. All use the vertical line above for udātta. The second lengthens (per sūtra 33) the short svarita where Kaśmīrī puts 3 after both short and long kampita svarita and Maitrāyaṇī puts 3 before.]

49. Sāmaveda

a. Jaiminīya (published without accents).
b. Kauthuma published with accents, which YM follows.

Udātta

50. udātta is marked with the numeral १ above.

51. But only the first of a series of udāttas is marked (with १ or २, etc. as in 50, 52-54).
(p. 31)

52. If a svarita follows (one or more udāttas) the first has after the १ an र.
(p. 32)
[Here and there in the published editions the र is missing even though a svarita follows.]

53. In pause an udātta is marked with the numeral २ (instead of १), also on the first of a series of udāttas followed by pause.

54. Also, followed by an anudātta, an udātta has the numeral २ above [???or independent svarita?].
55. The first of a series of udāttas followed by anudātta has its २ followed by an उ.

Svarita

56. A svarita is marked with a २ above, (i.e. dependent svarita, and independent svarita followed by udātta but not preceded by udātta).
(p. 33)
57. If it follows a series of udāttas, its २ is accompanied by र.
(p. 34)
58. An independent svarita followed by anudātta, ekaśruti, or pause, if not following an udātta, is also marked with २र.
(p. 35)
59. Followed by an udātta, an independent svarita is prolated and is so indicated in the usual way by writing ३ after it.
(p. 37)
60. But preceded by an udātta, an independent svarita is not marked by २ above.

Anudātta

61. An anudātta is marked by a ३ above.
62. But only the first of a series of anudāttas is so marked.
(p. 38)
63. The ३ is accompanied by क, if the anudātta is followed by an independent svarita marked with र (accompanying its २ per sū. 58).

Ekaśruti

64. Ekaśruti (following svarita) is unmarked.

Examples

अग्न आ याहि (SV Pū. 1.1.1) p. 30 (33)

Deep accent: *ágna ā́ yāhi*

1. The initial udātta अ followed by anudātta gna is marked with २ per sū. 54.
2. The anudātta ग्न is marked with ३ per sū. 61.
3. The high-pitched आ is marked with the numeral १ per sū. 50.
4. The dependent svarita या is marked with 2 per sū. 56.
5. The ekaśruti हि is unmarked per sū. 64.

SVKŚ1.1.2
[View Scan [.png]](#) [High Res [.tif]](#)

पाहि विश्वस्या अरातेः (SV pū. 1.1.6) p. 31 (34)

Deep accent: *pāhí víśvasyā árāteḥ*

1. Only the first of two udāttas हि-वि is marked per sū. 51.
2. Because followed by svarita श्व, the first udātta हि's १ is followed by र per sū. 52.

3. Dependent svarita श्व is marked with 2 per sū. 56 and with र because preceded by a series of udāttas हे-वि per sū. 57.

4. Anudātta पा, followed by the first of a sequence of udāttas हि which is followed by dependent svarita श्व (so marked with १र per sū. 52), does not have its ३ accompanied by क.

SVKŚ1.1.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

ब्रह्मा कस्तं सपर्यति (SV pū. 2.5.8) p. 31 (35)

Deep accent: *brahmā́ kástáṁ saparyati*

1. Only the first of three udāttas ह्मा-कस्-तं is marked per sū. 51.
2. Because followed by svarita स, the first udātta ह्मा's १ is followed by र per sū. 52.
3. Dependent svarita स is marked with 2 per sū. 56 and with र because preceded by a series of udāttas ह्मा-क-स्तं per sū. 57.

SVKŚ2.5.8
View Scan [.png] High Res [.tif]

चिता गोः । (SV pū. 5.8.2) p. 31 (36)

Deep accent: *citā́ góḥ .*

1. Only the first of two udāttas ता-गोः is marked per sū. 51.
2. Because the series of udāttas ता-गोः is followed by pause, the first is marked with a २ (instead of १) per sū. 53.
3. Because not followed by an anudātta, the 2 above the first of the udāttas ता-गोः is not marked with u (as it would be by sū. 55).

SVKŚ5.8.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

महाँ हि षः । (SV pū. 4.10.1) p. 31 (37)

Deep accent: *mah/ā hí ṣáḥ .*

1. Only the first of three udāttas हां-हि-षः is marked per sū. 51.
2. Because the series of udāttas हां-हि-षः is followed by pause, the first is marked with a २ (instead of १) per sū. 53.

SVKŚ4.10.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

विश्वेषां हितः । (SV pū. 1.1.2) p. 32 (38)

Deep accent: *víśveṣāṁ hitáḥ .*

1. Because the udātta तः is followed by pause, it is marked with a २ (instead of १) per sū. 53.

SVKŚ1.1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

इन्दो समुद्रमा विश (SV pū. 5[1].15.2) p. 32 (39)

Deep accent: *índo samudrámā́ viśa*

1. The initial udātta इ is marked with 1 per sū. 50.

2. Dependent svarita न्दो is marked with २ per sū. 56.

SVKŚ5[1].15.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

आदित् प्रत्नस्य० (SV pū. 1.2.10) p. 32 (40)

Deep accent: *ā́dít pratnásya...*

1. The first of the two udāttas आ-दित् is marked with २ because followed by anudātta प्र per sū. 54 and the २ is accompanied by उ because it is the first of a series of udāttas so followed per sū. 55.

SVKŚ1.2.10
View Scan [.png] High Res [.tif]

गिरा ममा जाता० (SV pū. 1.5.8) p. 33 (41)

Deep accent: *girā́ mámā́ jātā́...*

1. The first of the three udāttas रा-म-मा is marked with २ because followed by anudātta जा per sū. 54 and the २ is accompanied by उ because it is the first of a series of udāttas so followed per sū. 55.

SVKŚ1.5.8
View Scan [.png] High Res [.tif]

तन्वा गिरा । (SV pū. 1.5.8) p. 34 (42)

Deep accent: *tanvà girā́ .*

1. Independent (kṣaipra) svarita न्वा, not preceded by udātta and followed by anudātta गि is marked with २र per sū. 58.

2. Anudātta त, followed by independent svarita न्वा which is followed by anudātta गि (so that the svarita is marked with २र per sū. 58), has its ३ accompanied by क.

SVKŚ1.5.8
View Scan [.png] High Res [.tif]

न्यस्मिन् दध्र० (SV pū. 1[2].5.8) p. 34 (43)

Deep accent: *nyàsmin dadhra...*

1. Independent (kṣaipra) svarita न्य, not preceded by udātta (i.e. initial) and followed by ekaśruti स्मिन् is marked with २र per sū. 58.

SVKŚ1[2].5.8
View Scan [.png] High Res [.tif]

०दुराध्यम् । (SV pū. 2.1.9) p. 34 (44)

Deep accent: *...durādhyàm .*

1. Independent (kṣaipra) svarita न्य, not preceded by udātta and followed by pause is marked with २र per sū. 58.

SVKŚ2.1.9
View Scan [.png] High Res [.tif]

दूढ्यम् । (SV pū. 2.2.7) p. 34 (45)

Deep accent: *dūḍhyàm .*

1. Independent (kṣaipra) svarita ढ्य, not preceded by udātta and followed by pause is marked with २र per sū. 58.

SVKŚ2.2.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

०मनुष्येभिः (SV pū. 1.8.7) p. 34 (46)

Deep accent: *...manuṣyèbhiḥ*

1. Independent (jātya) svarita ष्ये, not preceded by udātta and followed by ekaśruti भिः is marked with २र per sū. 58.
2. Anudātta नु, followed by independent svarita ष्ये which is followed by ekaśruti भिः (so that the svarita is marked with २र per sū. 58), has its ३ accompanied by क.

SVKŚ1.8.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

तं गूर्धया स्वर्णरम् (SV pū. 2.2.3) p. 34 (47)

Deep accent: *táṁ gūrdhayā svàrṇaram* [???why क after 1?]

1. Independent (jātya) svarita स्व, not preceded by udātta and followed by ekaśruti र्ण is marked with २र per sū. 58.

SVKŚ2.2.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

अधा हीन्द्र० (SV pū. 5.2.8) p. 34 (48)

Deep accent: *ádhā hìndra...*

1. Independent (praśleṣa) svarita ही, not preceded by udātta and followed by ekaśruti न्द्र is marked with २र per sū. 58.
2. Anudātta धा, followed by independent svarita ही which is followed by ekaśruti न्द्र (so that the svarita is marked with २र per sū. 58), has its ३ accompanied by क.

SVKŚ5.2.8
View Scan [.png] High Res [.tif]

तृम्पा व्यश्नुही० (SV pū. 2.7.7.) p. 35 (49)

Deep accent: *tṛmpā́ vyàśnuhī...*

1. Independent (kṣaipra) svarita व्य, preceded by udātta म्पा, and followed by ekaśruti श्नु is marked with २ per sū. 56 but not with र, as it would be per sū. 58 if not preceded by udātta.

SVKŚ2.7.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

क्वेयथ० (SV pū. 3.8.9) p. 35 (50)

Deep accent: *kvèyatha...*

1. Independent svarita क्वे, not preceded by udātta (i.e. initial) and followed by ekaśruti य is marked with २र per sū. 58. [???YM marks it २ए??? What does the ए signify?]

SVKŚ3.8.9

View Scan [.png] High Res [.tif]

पाह्यू३त (SV pū. 1.4.2) p. 35 (51)

Deep accent: *pāhyù3tá*

1. After anudātta पा, independent (kṣaipra) svarita ह्यू followed by udātta त is not marked with र as it would be per sū. 58 if not so followed. Instead it is prolated per sū. 59 and marked with just २ per sū. 56.

2. Anudātta पा, followed by independent svarita ह्यू which is followed by udātta त (so that the svarita is prolated per sū. 59 and not marked with र per sū. 58), does not have its ३ accompanied by क.

3. Final udātta त is marked with २ per sū. 53]

SVKŚ1.4.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

दूत्यां३चरन् (SV pū. 1.7.2) p. 35 (52)

Deep accent: *dūtyàṁ3cáran*

1. After anudātta दू, independent (jātya) svarita त्या followed by udātta च is not marked with र as it would be per sū. 58 if not so followed. Instead it is prolated per sū. 59 and marked with just २ per sū. 56.

SVKŚ1.7.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

वृधे३ ऽस्माँ अवन्तु (SV pū. 3.5.7) p. 35 (53)

Deep accent: *vṛdhè3 'sm/ā avantu*

1. After anudātta वृ, independent (abhinihita) svarita धे followed by udātta स्मा is not marked with र as it would be per sū. 58 if not so followed. Instead it is prolated per sū. 59 and marked with just २ per sū. 56.

SVKŚ3.5.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

त्वं ह्या३ङ्गे (SV pū. 6.9.6) p. 37 (54)

Deep accent: *tváṁ hyà3ṅgé*

1. Independent (kṣaipra) svarita ह्या preceded by udātta त्व is unmarked per sū. 60.

2. Independent svarita ह्या followed by udātta ङ्गे is prolated per sū. 59.

[Why is the udātta त्व marked with २ rather than with १ as it would be per sū. 50.]

[Udātta ङ्गे should be marked with 2 per sū. 53 but YM marks it with 3 which indicates anudātta by sū. 61.]

SVKŚ6.9.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

ऊर्जे व्या३व्ययं॰ (SV pū. 6[3].1.4) p. 37 (55)

Deep accent: *ūrjé vyà3vyáyaṁ...*

1. Independent (kṣaipra) svarita व्या preceded by udātta र्जे is unmarked per sū. 60.

[???Why is the udātta र्जे marked with २ rather than with १ as it would be per sū. 50.]

2. Udātta व्य is marked with 1 per sū. 50.

SVKŚ6[3].1.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

विद्धी त्वा३स्य(SV pū. 2.4.8) p. 37 (56)
Deep accent: *viddhī́ tvā̀3syá*

1. Independent (jātya or kṣaipra) svarita त्वा preceded by udātta द्धी is unmarked per sū. 60. [???Why is the udātta द्धी marked with २ rather than with १ as it would be per sū. 50.]

2. Udātta स्य is marked with 1 per sū. 50.

SVKŚ2.4.8
View Scan [.png] High Res [.tif]

दूरेदृशं गृहपतिम्(SV pū. 1.7.10) p. 37 (57)
Deep accent: *dūredṛ́śaṁ gṛhápatim*

1. Only the first of the two anudāttas दू-रे is marked with ३ per sū. 62.

SVKŚ1.7.10
View Scan [.png] High Res [.tif]

अग्निं दूतं वृणीमहे (SV pū. 1.1.3) p. 38 (58)
Deep accent: *agníṁ dūtáṁ vṛṇīmahe*

1. Ekaśruti हि is unmarked per sū. 64.

2. Udātta ग्नि followed by anudātta is marked with 2 per sū. 54.

(p. 39)

SVKŚ1.1.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

65. Atharvaveda

a. Śaunakīya
b. Paippalāda

66. Śaunakīya Saṁhitā

67. Udātta, anudātta, and dependent svarita are marked as in RV.
68. An independent svarita is marked by a hangar after it (कण). It is indicated in this file by <ISS> for "Independent Svarita Atharva Veda Śaunakīya" = Vedic Symbol 60.

jātya दर्शय यातुधान्य<ISS>ः (AVŚ 4.20.6) p. 39 (59)
Deep accent: *darśáya yātudhānyàḥ*

AVŚW4.20.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

वज्रं स्वर्य<ISS> ततक्ष (AVŚ 2.5.6) p. 39 (59)
Deep accent: *vájraṁ svaryàṁ tatakṣa*

AVŚW2.5.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra तन्वो<ISS> अद्य (AVŚ 1.1.1) p. 39 (59)
Deep accent: *tanvò adyá*

AVŚW1.1.1

View Scan [.png] High Res [.tif]

स्वस्त्ये<ISS>नं ज॒रसे (AVŚ 1.30.2) p. 39 (59)
Deep accent: *svastyènaṁ jaráse*

AVŚW1.30.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa नी<ISS>त ए॒व (AVŚ 3.11.2) p. 39 (59)
Deep accent: *nī̀ta evá*

AVŚW3.11.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita ये<ISS> ऽस्या॒ दोहमुपासते (AVŚ 5.17.17) p. 39 (59)
Deep accent: *yè 'syā dóhamupā́sate*

AVŚW5.17.17
View Scan [.png] High Res [.tif]

दि॒शो<ISS> ऽभि॒दासन्त्यस्मान्(AVŚ 4.40.1) p. 39 (59)
Deep accent: *diśò 'bhidā́santyasmān*

AVŚW4.40.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

[Roth and Whitney's edition and its re-editing by Linden (spelling? लिंडन) mark the independent svarita by just a vertical line above as in RV. Indian editions follow suit until YM's 6th edition. Ajmer: Vaidika Yantrālaya. Saṁvat 2001. (YM p. 40 note 2.)]
(p. 41)
Examples of independent svarita after udātta marked with the hangar (<ISS>) as it should be; not with a vertical line above (^):

अ॒ग्निर्ह्ये<ISS>षां दू॒तः (AVŚ 3.1.2) p. 41 (60)
Deep accent: *agnírhyèṣāṁ dūtáḥ*

AVŚW3.1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

०आर॒ण्यैर्व्या<ISS>प॒० (AVŚ 3.31.3) p. 41 (60)
Deep accent: *...āraṇyaírvyā̀pa...*

AVŚW3.31.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

दि॒वस्पृ॒ष्ठं स्व<ISS>र्ग॒त्वा (AVŚ 4.14.2) p. 41 (60)
Deep accent: *divásprṣṭháṁ svàrgatvā́*

AVŚW4.14.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

लो॒कं स्व<ISS>रा॒रोहन्तो० (AVŚ 4.14.6) p. 41 (60)
Deep accent: *lokáṁ svàrāróhanto...*

AVŚW4.14.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

[Śaṅkara Pāṇḍuraṅga's edition sometimes puts the hanger (<ISS>) for the vertical line above (^) on the dependent svarita and vice versa. YM fixed in his edition where mss. confused it.]
(p. 42)

69. An independent svarita followed by an udātta obtains kampa and is marked as in RV

(short independent svarita with kampa is followed by the numeral 1 with a vertical line above and a horizontal line below [क१]; long is marked by a horizontal line below followed by a 3 with a vertical line above and a horizontal line below [का३]).

kṣaipra तन्वं१ पादौ (AVŚ 6.9.1) p. 42 (61)
Deep accent: *tanvàṁ pā́dau*

AVŚW6.9.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

तन्वा३ सं बलेन (AVŚ 5.30.14) p. 42 (61)
Deep accent: *tanvā̀ sáṁ bálena*

AVŚW5.30.14
View Scan [.png] High Res [.tif]

jātya यदाद्यं१ यदंनाद्यम् (AVŚ 8.2.19) p. 42 (61)
Deep accent: *yádādyàṁ yádánnādyám*

AVŚW8.2.19
View Scan [.png] High Res [.tif]

या रोहिणीर्देवत्या३ गावो वा (AVŚ 1.22.3) p. 42 (61)
Deep accent: *yā́ róhiṇīrdevatyā̀ gā́vo vā́*

AVŚW1.22.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita न ब्राह्मणो हिंसितव्यो३ ऽग्निः (AVŚ 5.18.6) p. 42 (61)
Deep accent: *ná brāhmaṇó hisitavyò 'gníḥ*

AVŚW5.18.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

70. Paippalāda Saṁhitā

71. Udātta is marked by a vertical line above.
72. Anudātta is marked by a vertical line below. It is indicated in this file by <AP> for "Anudātta AV *Paippalāda Saṁhitā*" = <AFUK> for "Anudātta Followed by Udātta YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" No precise equivalent but closest = (कै) Vedic Symbol 175, except that it doesn't occur beneath.
73. Dependent svarita is marked by a dot below (i.e. when /[\ > ^]). It is indicated in this file by <DSP> (कि) for "Dependent Svarita AV *Paippalāda Saṁhitā*" = Vedic Symbol 190 [= <DSK> "Dependent Svarita YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" (p. 23 sū. 39).]
74. Independent svarita is marked by a crooked line below: (कङ्क) indicated in this file by <ISP> for "Independent Svarita AV *Paippalāda Saṁhitā*" = Vedic Symbol 149 (= <ISM> for "Independent Svarita (without kampa) YV *Mādhyandina Saṁhitā*".)
75. The first ekaśruti after an independent svarita is marked by a dot below. It is indicated in this file by <FEP> [= <DSP> (कि) for "Dependent Svarita AV *Paippalāda Saṁhitā*" = Vedic Symbol 190 = <DSK> "Dependent Svarita YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" (p. 23 sū. 39).]
Examples:

शि<AP>वा श<DSP>र<AP>व्या<ISP> या (AVP 14.2.7) p. 42 (62), p. 43 (64)
Deep accent: *śivā́ śaravyā̀ yā́*

1. या is udātta

2. श is dependent svarita
3. व्या is independent svarita (jātya)
4. शि and र are anudātta

AVPR14.2.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

त<AP>न्व॒<ISP>आ श॑न्त<DSP>मया (AVP 14.2.8) p. 42 (62), p. 43 (63), (64)
Deep accent: *tanvà śántamayā*
1. श is udātta
2. न्त is dependent svarita
3. न्वा is independent svarita (kṣaipra)
4. त is anudātta

AVPR14.2.8
View Scan [.png] High Res [.tif]

का॑मो<DSP>दा<AP>ता॑ (AVP 1.30.6) p. 43 (63)
Deep accent: *kā́mo dātā́*
1. का and ता are udātta
2. मो is dependent svarita
3. दा is anudātta

AVPR1.30.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

जि<AP>ह्वा॑या<DSP> आ<AP>स्या<ISP>य<FEP> च (AVP 16.104.6) p. 43 (64), (65)
Deep accent: *jihvā́yā āsyà̄ya ca*
1. ह्वा is udātta
2. या is dependent svarita
3. स्या is independent svarita (jātya)
4. य is the first ekaśruti following independent svarita
5. जि and the initial आ in आस्याय are anudātta

AVPR16.104.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

(p. 43)
The Paippalāda Saṁhitā marks udātta, anudātta, and svarita exactly as the *Kāṭhaka Saṁhitā* does except that the *Kāṭhaka Saṁhitā* uses a half moon (ardha candra) below (का) [for <ISK> "Independent Svarita (without kampa) YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" = Vedic Symbol 59] and a three-pronged mark below [for <ISKK> (= <ISKM> क॑) "Independent Svarita with kampa YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" = Vedic Symbol 135]. Both are from Kashmir.

76. Brāhmaṇas

77. *Mādhyandina Śatapatha.*
[YM primarily follows the accentuation in the edition Ajmer: Vaidika Yantrālaya which has a few small differences from Weber and Kāśī: Acyuta Granthamālā.]

(p. 44)

Udātta

78. Udātta is marked by a horizontal line below.

अथ संस्थिते विसृजते (*ŚBM.* 1.1.1.3) p. 44 (66)

Deep accent: *átha sáṁsthite vísṛjate*

1. अ-सं-वि are udātta

[*Bhāṣika sūtra* is a pariśiṣṭa of *Śuklayajurveda Prātiśākhya* of Kātyāyana with the Ṭīkā of Anantabhaṭṭa. Kāśī ed. pp. 432-470.]

[p. 44 note 1: YM does not accept the following explanation given in the Bh. Sū.:
BhSū. 13-14 Independent svarita is replaced by udātta and is unmarked.
BhSū. 15 Udātta is replaced by anudātta and marked.]

ŚBMA1.1.1.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

79. Only the last of a series of udāttas is marked.

व्रतमुपायानीति (*ŚBM.* 1.1.1.1) p. 44 (67)

Deep accent: *vratámúpāyānī́ti*

1. त-मु are udātta but only the second is marked

ŚBMA1.1.1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

त उत्तरस्य (*ŚBM.* 4.6.9.11) p. 44 (67)

Deep accent: *tá úttarasya*

1. त-उ are udātta but only the second is marked

ŚBMA4.6.9.11
View Scan [.png] High Res [.tif]

अग्निर्ह वै धूरथ (*ŚBM.* 1.1.2.9) p. 44 (68)

Deep accent: *agnírhá vaí dhū́rátha*

1. All five ग्नि-ह-वै-धू-र are udātta but only the last र is marked

(p. 45)

ŚBMA1.1.2.9
View Scan [.png] High Res [.tif]

80. After an udātta, anusvāra (before a spirant or r) is marked by a half moon with dot (candra bindu) and virāma [Vedic Symbol 58 (꣩), Vedic Symbol 228, Vedic 177 (य़्), Vedic Symbol 124, Vedic 40 (ँ्)] and with a horizontal line below. [All other m/n become savarṇa with the next in Śuklayajurveda per Śuklayajurveda Śikṣā. Both marks occur after short and long vowels in the saṁhitā.]

यत्पञ्चमं स्रुचा (*ŚBM.* 3.1.4.2) p. 45 (69)

Deep accent: *yátpañcamáṁ srucā́*

ŚBMA3.1.4.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

यदमेध्यं रिप्रं॰ (*ŚBM.* 3.1.2.11) p. 45 (69) [???Since the final of रिप्रम् is udātta; it should have a horizontal line below if it's the last in a series.]

Deep accent: *yádamedhyáṁ ripráṁ...*

(p. 46)

ŚBMA3.1.2.11
View Scan [.png] High Res [.tif]

81. A pre-pause udātta, i.e. one that occurs immediately before a pause or mediated by a single syllable before a pause, followed by an udātta after the pause, is marked by two dots below (in the Vedic Yantrālaya edition and by three dots below in Weber's edition [by no mark in Kāśī: Acyuta Granthamālā edition]). [If an anudātta follows the pause, the preceding udātta is marked by a horizontal line per sū. 78.]
[Indicated in this document by <UFPUŚBM> for "Udātta Followed by Pause and Udātta in *Śatapatha Brāhmaṇa. Mādhyandina Saṁhitā*", it is approximated by Vedic Symbol 190-space-190.]
Immediately before pause:

द्वित एकत<UFPUŚBM>ः ।।१।। त इन्द्रेण० ।।२।। (*ŚBM.* 1.2.3.1-2) p. 46 (70)

Deep accent: *dvitá ekatáḥ ..1.. tá índreṇa... ..2..*

Udātta त followed by pause and two udāttas त-इ is marked per sū. 81; only the second of the latter udāttas इ is marked, per sū. 79, and is marked per sū. 78.

ŚBMA1.2.3.1-2
View Scan [.png] High Res [.tif]

मनुऽषेथैवं देवत्रा<UFPUŚBM> ।।७।। स युनक्ति० ।।८।। (*ŚBM.* 5.1.4.7-8) p. 46 (70)

Deep accent: *manuṣéthaivám̐ devatrā́ ..7.. sá yunakti... ..8..*

Pre-pause udātta त्रा followed by udātta स is marked per sū. 81; the latter स is marked per sū. 78.

ŚBMA5.1.4.7-8
View Scan [.png] High Res [.tif]

Mediated by a single syllable before a pause:

पृदाकुरि<UFPUŚBM>ति ।।३।। अ्रथ० ।।४।। (*ŚBM.* 4.4.5.3-4) p. 47 (71)

Deep accent: *pṛ́dākuríti ..3.. átha... ..4..*

Udātta रि followed by anudātta ति, pause, and udātta अ्र is marked per sū. 81; the post-pause udātta अ्र is marked per sū. 78.

ŚBMA4.4.5.3-4
View Scan [.png] High Res [.tif]

यदपक्षीय<UFPUŚBM>ते ।।१५।। अ्रथ यत्० ।।१६।। (*ŚBM.* 1.4.4.15-16) p. 47 (71)

Deep accent: *yádapakṣīyáte ..15.. átha yát... ..16..*

Udātta य followed by anudātta ते, pause, and udātta अ्र is marked per sū. 81; the post-pause udātta अ्र is marked per sū. 78.

ŚBMA1.4.4.15-16
View Scan [.png] High Res [.tif]

In the middle of a Kaṇḍikā, immediately before pause:

यदग्नि<UFPUŚBM>ः । तस्मात्० (*ŚBM.* 6.2.1.12) p. 48 (72)

Deep accent: *yádagníḥ . tásmāt...*

Pre-pause udātta ग्नि followed by udātta त is marked per sū. 81; the latter स is marked per

sū. 78.

ŚBMA6.2.1.12
View Scan [.png] High Res [.tif]

वा एता<UFPUŚBM>ः । षडाहुतयः० (*ŚBM.* 4.4.5.18) p. 48 (72)
Deep accent: *vā́ etā́ḥ . ṣáḍā́hutayaḥ...*
Pre-pause udātta ता followed by two udāttas ष-डा is marked per sū. 81; the latter of the two udāttas डा is marked per sū. 78. [but YM apparently leaves it off by mistake].

ŚBMA4.4.5.18
View Scan [.png] High Res [.tif]

Mediated by more than one syllable:
व्रतमुपैष्यन् । अन्तरेणा० (*ŚBM.* 1.1.1.1) p. 48 (73)
Deep accent: *vratámupaiṣyan . ántareṇā...*
Pre-pause udātta त followed by three anudāttas उ-पै-ष्य is not marked per sū. 81 but per sū. 78.

ŚBMA1.1.1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

[There are exceptions to 81. YM posits that there may be further restrictions.
The Ajmer edition has two dots where a horizontal line is expected:
तद्विश्वैर्दैवै<UFPUŚBM>ः सह यजमानं० (*ŚBM.* 9.2.3.25) p. 48 (74)
Deep accent: *tádvíśvairdaivaíḥ sahá yájamānam...* [???*daivai*?]
Udātta वै followed without pause by anudātta स and udātta ह is marked per sū. 81.
Veṅkaṭeśvara, Weber, and Acyuta Granthamālā editions all read वै marked per sū. 78.]

ŚBMA9.2.3.25
View Scan [.png] High Res [.tif]

(p. 49)
The Ajmer edition has a horizontal line where two dots are expected:
पुमांसमुपशेते ।।२०।। ता नान्तरेण० ।।२१।। (*ŚBM.* 1.1.1.20-21) p. 49 (75)
Deep accent: *púmāṁsamupaśéte ..20.. tā́ nā́ntareṇa... ..21..*
Udātta शे followed anudātta ते, pause, and two udāttas ता-ना is not marked per sū. 81 but per sū. 78; only the second of the latter udāttas ना is marked, per sū. 79, and is marked per sū. 78.

ŚBMA1.1.1.20-21
View Scan [.png] High Res [.tif]

तस्माद् वृत्रो नाम ।।४।। तमिन्द्रो० ।।५।। (*ŚBM.* 1.1.3.4-5) p. 49 (75)
Deep accent: *tásmād vṛtró nā́ma ..4.. támíndro... ..5..*
Udātta ना followed anudātta म, pause, and two udāttas त-मि is not marked per sū. 81 but per sū. 78; only the second of the latter udāttas मि is marked, per sū. 79, and is marked per sū. 78.

ŚBMA1.1.3.4-5
View Scan [.png] High Res [.tif]

भवितोरिति ।।९।। तदु वै यजेतैव<UFPUŚBM>० ।।१०।। (*ŚBM.* 5.1.1.9-10) p. 49 (75)

Deep accent: *bhávitoríti ..9.. tádu vai yájetaivá... ..10..*
Udātta रि followed anudātta ति, pause, and udātta त is not marked per sū. 81 but per sū. 78; the latter udātta त is marked per sū. 78.

ŚBMA5.1.1.9-10
View Scan [.png] High Res [.tif]

लोकेषु दिशः ।।१३।। बाह्येनाग्नि० ।।१४।। (*ŚBM.* 7.3.1.13-14) p. 49 (75)
Deep accent: *lokéṣu díśaḥ ..13.. bā́hyenāgní... ..14..* [agni is antodātta so should be marked unless an udātta follows.]
Udātta दि followed anudātta श, pause, and udātta बा is not marked per sū. 81 but per sū. 78; the latter udātta बा is marked per sū. 78.]

ŚBMA7.3.1.13-14
View Scan [.png] High Res [.tif]

82. A pre-pause udātta, i.e. one that occurs immediately before a pause or mediated by a single syllable before a pause, followed by an independent (jātya or abhinihita since the kṣaipra and praśleṣa are impossible immediately after a pause) svarita after the pause, is also marked by two dots below (in the Vedic Yantrālaya edition and by two sets of three dots below in Weber's edition [by no mark in Kāśī: Acyuta Granthamālā edition]). [Indicated in this document by <UFPISŚBM> for "Udātta Followed by Pause and Independent Svarita in *Śatapatha Brāhmaṇa. Mādhyandina Saṁhitā*", it is approximated by Vedic Symbol 190-space-190.]

०मित्येतत्<UFPISŚBM> ।।२६।। स्वर्यन्तो० ।।२७।। (*ŚBM.* 9.2.3.26-27) p. 49 (76)
Deep accent: *...mítyetát ..26.. svàryánto... ..27..*
Udātta त followed by pause and independent (jātya or kṣaipra [see YM p. 13 note 2) svarita स्व is marked per sū. 82; the svarita स्व is unmarked; the following udātta र्य is marked per sū. 78.

ŚBMA9.2.3.26-27
View Scan [.png] High Res [.tif]

प्रतिप्रस्थाता<UFPISŚBM> ।।१३।। सो ऽध्वर्यु<UFPUŚBM>ः० ।।१४।।
(*ŚBM.* 4.2.1.13-14) p. 49 (76)
Deep accent: *pratiprasthā́tā ..13.. sò 'dhvaryúḥ... ..14..*
Udātta ता followed by pause and independent (abhinihita) svarita सो is marked per sū. 82; the svarita सो is unmarked; र्यु is marked per sū. 81-82, ???depending upon whether udātta or svarita follows the pause (if the latter, Weber will have two sets of three dots?). (p. 50)

ŚBMA4.2.1.13-14
View Scan [.png] High Res [.tif]

Anudātta

83. An (immediately) pre-pause anudātta, followed by an independent (jātya or abhinihita since the kṣaipra and praśleṣa are impossible immediately after a pause) svarita after the pause, is also marked by two dots below (in the Vedic Yantrālaya edition and by two sets of three dots below in Weber's edition [by no mark in Kāśī: Acyuta Granthamālā edition]).
[Indicated in this document by <AFPISŚBM> for "Anudātta Followed by Pause and

Independent Svarita in *Śatapatha Brāhmaṇa. Mādhyandina Saṁhitā*", it is approximated by Vedic Symbol 190-space-190.]

न मामन्य इति<AFPISŚBM> ।। ते ऽविदुः । ० (*ŚBM.* 3.4.3.7-8) p. 50 (77)

Deep accent: *ná mā́manya íti .. tè 'viduḥ . ...*

Anudātta ति followed by pause and independent (abhinihita) svarita ते is marked per sū. 83.

ŚBMA3.4.3.7-8
View Scan [.png] High Res [.tif]

84. An anudātta, after which an immediately pre-pause udātta in sandhi combination with the post-pause anudātta would result in a svarita if the pause did not intervene, is also marked by two dots below (in the Vedic Yantrālaya edition and by two sets of three dots below in Weber's edition [by no mark in Kāśī: Acyuta Granthamālā edition]).
[Indicated in this document by <AFUPAŚBM> for "Anudātta Followed by Pause and Independent Svarita in *Śatapatha Brāhmaṇa. Mādhyandina Saṁhitā*", it is approximated by Vedic Symbol 190-space-190.]

समवमृशन्त्ये<AFUPAŚBM>व । एतद्ध० (*ŚBM.* 3.4.2.13) p. 50 (78)

Deep accent: *samávamr̥śantyevá . etáddha...*

Since the udātta अ of एव and the anudātta ए of एतद् would combine by sandhi in (praśleṣa) svarita वै if the virāma were removed, the anudātta न्त्ये preceding the udātta व before the pause is marked per sū. 84.

ŚBMA3.4.2.13
View Scan [.png] High Res [.tif]

85. An anusvāra following a syllable marked with dots is marked by a horizontal line below. (p. 51)

पौष्णं ।।१९।। सैषा० ।।२०।। (*ŚBM.* 3.1.4.19-20) p. 51 (79)

Deep accent: *pauṣṇáṁ ..19.. saiṣā́... ..20..* [???Isn't सै svarita rather than udātta as YM says?]

Anusvāra is marked per sū. 85 after udātta ष्णं followed by pause and udātta सै marked with two dots per sū. 80.

ŚBMA3.1.4.19-20
View Scan [.png] High Res [.tif]

Unmarked

86. An independent svarita is unmarked; the preceding anudātta is marked by a horizontal line below (by two horizontal lines in Weber's edition (81)). [An independent svarita preceded by an udātta is unmarked.]

धान्यमसि (*ŚBM.* 1.2.1.18) p. 51 (80)

Deep accent: *dhānyàmasi*

Anudātta धा before (jātya) svarita न्य is marked per sū. 86.

ŚBMA1.2.1.18
View Scan [.png] High Res [.tif]

भूर्भुवः स्वः (*ŚBM.* 2.4.1.1) p. 51 (80)

Deep accent: *bhū́rbhúvaḥ svàḥ*

Anudātta व before (jātya) svarita स्व is marked per sū. 86. The second of two udāttas भू-र्भु is marked per sū. 78-79.

ŚBMA2.4.1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

उर्वन्तरिक्षम् (*ŚBM.* 1.1.2.4) p. 51 (80)

Deep accent: *urvàntárikṣam*

Anudātta उ before (kṣaipra) svarita र्व is marked per sū. 86. Udātta न्त is marked per sū. 78.

ŚBMA1.1.2.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

दिवीव चक्षुराततम् (*ŚBM.* 3.7.1.18) p. 51 (80)

Deep accent: *divī̀va cákṣurā́tatam*

Anudātta दि before (praśleṣa) svarita वी is marked per sū. 86. Udāttas च-क्षा are marked per sū. 78.

ŚBMA3.7.1.18
View Scan [.png] High Res [.tif]

प्रसवे ऽश्विनोः (*ŚBM.* 1.1.2.17) p. 51 (80)

Deep accent: *prasavè 'śvínoḥ*

Anudātta स before (abhinihita) svarita वे is marked per sū. 86. Udātta श्वि is marked per sū. 78.

ŚBMA1.1.2.17
View Scan [.png] High Res [.tif]

वेदो ऽसि येन (*ŚBM.* 1.9.2.23) p. 51 (80)

Deep accent: *vedò 'si yéna*

Anudātta वे before (abhinihita) svarita दो is marked per sū. 86. Udātta ये is marked per sū. 78.

ŚBMA1.9.2.23
View Scan [.png] High Res [.tif]

(p. 52)
[YM: The horizontal line beneath marks anudātta. It is not the case that the mark beneath indicates a subsequent high pitch in either an udātta or svarita. Therefore it is erroneous to distinguish the low pitch before udātta from the low pitch before svarita as Weber has done.]

Missing sū. 87? A praśleṣa svarita followed by another praśleṣa svarita is also marked by a horizontal line below.s

यविष्ठ्येति सैषैतमेव (*ŚBM.* 1.4.1.26) p. 52 (82)

Deep accent: *yaviṣṭhyéti saìṣaìtámevá*

Udātta ष्ठ्ये (< udāttas ष्ठ्य-इ) is marked by sū. 78. Anudātta ति, followed by independent (praśleṣa) svarita सै (< सा-ए), is marked per sū. 86. Independent (praśleṣa) svarita षै (< षा-ए) is unmarked per sū. 86. Udāttas त-व are marked per sū. 78. [Weber marks both ति and सै with two horizontal lines below to indicate following independent svarita.]

ŚBMA1.4.1.26

View Scan [.png] High Res [.tif]

88. The final udātta of a pāda in a mantra is unmarked, even though a pause intervenes between it and the following vowel. [Weber marks with three dots before anudātta per sū. 83 and by two sets of three dots before svarita per sū. 82.]

०अवयाः । महः० (*ŚBM.* 2.5.2.28) p. 53 (83)

Deep accent: *...avayā́ḥ . maháḥ...*

ŚBMA2.5.2.28
View Scan [.png] High Res [.tif]

०प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वं० (*ŚBM.* 1.4.1.39) p. 53 (83)

Deep accent: *...prayátyadhvaré . vṛṇīdhvaṁ...*

ŚBMA1.4.1.39
View Scan [.png] High Res [.tif]

०मतिं कविम् । ऊर्ध्वाय० (*ŚBM.* 3.3.2.12) p. 53 (83)

Deep accent: *...matiṁ kavím . ūrdhvāya...* [???Missing accent on मतिम् । ऊर्ध्वाय?]

ŚBMA3.3.2.12
View Scan [.png] High Res [.tif]

०दशस्या । व्यस्कन्ना रोदसी० (*ŚBM.* 3.5.3.14) p. 53 (83)

Deep accent: *...daśasyā́ . vyàskannā ródasī...*

ŚBMA3.5.3.14
View Scan [.png] High Res [.tif]

Pāda-final udāttas याः, रे, and वि, before pāda-initial anudāttas म, वृ, and ऊ respectively, are unmarked per sū. 88 instead of by a line below per sū. 78. Pāda-final udātta स्या, before pāda-initial independent (kṣaipra) svarita व्य, is unmarked per sū. 88 instead of by two dots per sū. 82.

[Weber marks the pāda-final udāttas याः, रे, and वि with three dots below in the manner of (but not exactly in accordance with) sū. 81 and marks pāda-final udātta स्या with two sets of three dots per sū. 82. The Ajmer edition marks them with a horizontal line below.

89. The final udātta in a Brāhmaṇa also is unmarked. [Weber marks it.]
(*ŚBM.* 4.5.1.16) [YM provides references only on p. 53]
(*ŚBM.* 4.1.1.28)

90. Dependent svarita, ekaśruti, and the rest of anudāttas are unmarked.
(p. 54)

91. Kāṇva

In the Kāṇva recension of the *Śatapathabrāhmaṇa* accents are marked mostly as in the Mādhyandina recension. The exception is that at the end of a Kaṇḍikā, an udātta, followed by an udātta (in the next kaṇḍikā) is unmarked. In the Mādhyandina recension, it is marked by two dots below in the Vaidikayantrālaya edition and by three dots below in Weber's edition. It is unmarked in the Acyuta Granthamālā edition.

ऐवैन्द्री वाक् ।। स जुहोति (ŚBK 1.5.2.17-18) p. 54 (84)

Deep accent: *evaìndrī́ vā́k .. sá juhoti*

स्वाहेति ।। अथ (ŚBK 1.5.2.18-19) p. 54 (84)

Deep accent: *svā́héti .. átha* [/iti is ādyudātta]

92. Taittirīya

In the *Taittirīyabrāhmaṇa*, accent is marked as in the *Taittirīyasaṁhitā*.

93. In *Tāṇḍya*, *Bhāllavi* and RV Brāhmaṇas, accent was as in *Śatapathabrāhmaṇa*. The *Tāṇḍyabrāhmaṇa* and the RV brāhmaṇas (*Aitareya*, *Kauṣītaki*, and *Śāṅkhāyana*) are extant only unaccented. *Bhāllavibrāhmaṇa* is not extant.

(p. 55)

94. In *Bṛhadāraṇyaka* (Mādhyandina and Kāṇva) and *Taittirīya* āraṇyakas, accents are marked as in their brāhmaṇas.

95. In *Maitrāyaṇīyāraṇyaka*, accent is marked as in RV.

96. A svarita with kampa is marked by a horizontal line below and a 3 before.

भूर्भुवः ३स्वरित्युपासीतानेन (MaiĀ 6.6) p. 55 (85)

Deep accent: *bhū́rbhúvaḥ svàrítyupā́sītā́nena*

ब्रह्मचारिणो ३यो ऽयं विष्णुः (MaiĀ 5.2) p. 55 (85)

Deep accent: *brahmácāriṇo yò 'yáṁ víṣṇuḥ* [???Since विष्णु is ādyudātta the horizontal line beneath वि in YM must be in error and should be removed?]

[Sātavalekara's edition is based on a single manuscript and therefore accent marking is full of errors. YM gives (or claims to) correct accent on p. 55 (86) of the following:

भूर्भुवः ३स्वरोमित्यष्टपादं० । नमो ऽग्निये पृथिवी ३क्षिते ६।३५।।

Deep accent: *bhū́rbhúvaḥ svàrómítyaṣṭapādáṁ... . námo 'gnáye pṛthivī́ kṣité 6.35..*

ओम् is udātta; इति is ādyudātta]

97. In *Kāṭhakabrāhmaṇa*, accent is marked as in *Kāṭhakasaṁhitā*.

[Sūryakānt, ed. Lahore shows accents here and there]

[Apparently only udātta (by vertical line above), independent svarita (<ISK>) (by a half moon below), and independent svarita with kampa (<ISKK>) (by a upward-pointing wedge below) are marked in most of the following examples. In the last two, independent svarita (<ISK>) is marked by an avagraha-like figure स् below. References are to page and line in Sūryakānt's edition]

भद्रो ऽहिर्बुध्न्यो<ISKK> भुवनस्य रक्षिता (*KāṭhBr.* 60.7)

Deep accent: *bhadró 'hirbudhnyò bhúvanasya rakṣitā́*

KāBS60.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

अन्तर्हिता ह्य<ISKK>मुष्मादादित्यात् पितरः (*KāṭhBr.* 59.1)

Deep accent: *antárhitā hyàmúṣmādādityā́t pitáraḥ*

KāBS59.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

देवेभ्यश्च मनुष्ये<ISKK>भ्यश्च पितरः(*KāṭhBr.* 59.1)

Deep accent: *devébhyaśca manuṣyèbhyaśca pitáraḥ*

KāBS59.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

सा वा एषा सावित्र्ये<ISKK>षां लोकानां प्रतिपत (*KāṭhBr.* 51.3)
Deep accent: *sā́ vā́ eṣā́ sāvitryèṣā́ṁ lokā́nāṁ pratipáta*
KāBS51.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

वीर्यं<ISKK> वै कर्म वीर्ये<ISK>ण वा अन्नमद्यते (*KāṭhBr.* 50.2)
Deep accent: *vīryàṁ vaí kárma vīryèṇa vā́ ánnamadyate*
KBS50.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

ते<ISK> ऽब्रुवन् (*KāṭhBr.* 57.1)
Deep accent: *tè 'bruvan*
KāBS57.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

एवमिव हि ते<ISK> ऽन्तर्हिता भवन्ति (*KāṭhBr.* 59.3)
Deep accent: *evámiva hí tè 'ntárhitā bhavanti*
KāBS59.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

उभये ही<ISK>ज्यन्ते (*KāṭhBr.* 59.2)
Deep accent: *ubháye hı̀jyánte*
KāBS59.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

प्राणो व्यानो<ISK> ऽपानः (*KāṭhBr.* 52.3)
Deep accent: *prāṇó vyānò 'pānáḥ*
KāBS52.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

सो<ISK> ऽब्रवीत् (*KāṭhBr.* 55.1)
Deep accent: *sò 'bravīt*
KāBS55.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

हस्ती वै भूत्वा स्व<ISK>र्भानुरमुमादित्यं छाययाऽभ्य<ISK>भवत् (*KāṭhBr.* 56.1)
Deep accent: *hastī́ vaí bhūtvā́ svàrbhānuramúmādityáṁ chāyáyābhyàbhavat*
KāBS56.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

तस्मादुभौ यष्टव्यौ<ISK> (*KāṭhBr.* 56.7)
(p. 57)
Deep accent: *tásmādubhaú yaṣṭavyaù*
4.KāBS56.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

98. The remaining literature is unmarked.

Chandas

Encoding Table

◌ँ	anunāsikaḥ	0901
◌ं	anusvāraḥ	0902
◌ः	visarjanīyaḥ	0903
ऄ	ă	0904
अ	a	0905
आ	ā	0906
इ	i	0907
ई	ī	0908
उ	u	0909
ऊ	ū	090A
ऋ	ṛ	090B
ऌ	ḷ	090C
ऍ	ê	090D
ऎ	ĕ	090E
ए	e	090F
ऐ	ai	0910
ऑ	ô	0911
ऒ	ŏ	0912
ओ	o	0913
औ	au	0914

क	ka	0915
ख	kha	0916
ग	ga	0917
घ	gha	0918
ङ	ṅa	0919
च	ca	091A
छ	cha	091B
ज	ja	091C
झ	jha	091D
ञ	ña	091E
ट	ṭa	091F
ठ	ṭha	0920
ड	ḍa	0921
ढ	ḍha	0922
ण	ṇa	0923
त	ta	0924
थ	tha	0925
द	da	0926
ध	dha	0927
न	na	0928
ऩ	ṉa	0929
प	pa	092A
फ	pha	092B

ब	ba	092C
भ	bha	092D
म	ma	092E
य	ya	092F
र	ra	0930
ऱ	ṟa	0931
ल	la	0932
ळ	ḷa	0933
ऴ	ḻa	0934
व	va	0935
श	śa	0936
ष	ṣa	0937
स	sa	0938
ह	ha	0939
़	nuktaḥ	093C
ऽ	avagrahaḥ	093D
ा	āmātrā	093E
ि	imātrā	093F
ी	īmātrā	0940
ु	umātrā	0941
ू	ūmātrā	0942
ृ	ṛmātrā	0943
ॄ	ṝmātrā	0944

◌ॅ	êmātrā	0945
◌ॆ	ĕmātrā	0946
◌े	emātrā	0947
◌ै	aimātrā	0948
◌ॉ	ômātrā	0949
◌ॊ	ŏmātrā	094A
◌ो	omātrā	094B
◌ौ	aumātrā	094C
◌्	virāmaḥ	094D
ॐ	Oṃ	0950
◌॑	svaritaḥ	0951
◌॒	anudāttaḥ	0952
◌॓	gravis	0953
◌॔	acutus	0954
क़	qa	0958
ख़	k̲h̲a	0959
ग़	ġa	095A
ज़	za	095B
ड़	ṛa	095C
ढ़	ṛha	095D
फ़	fa	095E
य़	ỵa	095F
ॠ	ṝ	0960

ॡ	ḹ	0961
◌ॢ	ḷmātrā	0962
◌ॣ	ḹmātrā	0963
।	daṇḍaḥ	0964
॥	daṇḍadvayam	0965
०	śūnyam	0966
१	ekam	0967
२	dve	0968
३	trīṇi	0969
४	catvāri	096A
५	pañca	096B
६	ṣaṭ	096C
७	sapta	096D
८	aṣṭau	096E
९	nava	096F
॰	saṅkṣepaḥ	0970
	zero width space	200B
	zero width non-joiner	200C
	zero width joiner	200D
◌	dotted circle	25CC
अ	a variant 1	F100
अ	a variant 2	F101
अ	a variant 3	F102
ऋ	ṛ variant 1	F103

ऋ	ṛ variant 2	F104
ॠ	ṝ variant 1	F105
क्ष	kṣa variant	F106
झ	jha variant 1	F107
झ	jha variant 2	F108
झ	jha variant 3	F109
ण	ṇa variant	F10A
ध	dha variant	F10B
भ	bha variant 1	F10C
भ	bha variant 2	F10D
ल	la variant 1	F10E
ल	la variant 2	F10F
श	śa variant 1	F110
श	śa variant 2	F111
१	ekam variant	F112
४	catvāri variant	F113
५	pañca variant 1	F114
५	pañca variant 2	F115
६	ṣaṭ variant	F116
८	aṣṭau variant	F117
९	nava variant 1	F118
९	nava variant 2	F119
९	nava variant 3	F11A

	avestic sign 1	F11B
	avestic sign 2	F11C
	avagrahadvayam	F11D
	atharvavedic svaritaḥ 1	F11E
	atharvavedic svaritaḥ 2	F11F
	svastikaḥ 1	F120
	svastikaḥ 2	F121
	svastikaḥ 3	F122
	svastikaḥ 4	F123
	svastikaḥ 5	F124
	svastikaḥ 6	F125
	puṣpikaḥ	F126
	cakram	F127
	space variant 1	F128
	space modifier 2	F129
	space modifier 3	F12A
	space modifier 4	F12B
	space modifier 5	F12C
	space modifier 6	F12D
	space modifier 7	F12F
	additional visarjanīyaḥ	F130
	jihvāmūlīyaḥ	F131
	ardhavisargaḥ 1	F133

	ardhavisargaḥ 2	F134
	upadhmānīyaḥ	F136
	ardhavisargaḥ 3	F137
	ardhavisargaḥ 4	F138
	ardhavisargaḥ 5	F139
	visarjanīyaḥ variant 1	F13A
	ardhavisargaḥ 6	F13B
	visarjanīyaḥ variant 2	F13C
	ardhavisargaḥ 7	F13D
	ardhavisargaḥ 8	F13E
	ardhavisargaḥ 9	F13F
	ardhavisargaḥ 10	F140
	ardhavisargaḥ 11	F141
	ardhavisargaḥ 12	F142
	ardhavisargaḥ 13	F143
	ardhavisargaḥ 14	F144
	ardhavisargaḥ 15	F145
	ardhavisargaḥ 16	F146
	ardhavisargaḥ 17	F147
	ardhavisargaḥ 18	F148
	ardhavisargaḥ 19	F149
	ardhavisargaḥ 20	F14A
	ardhavisargaḥ 21	F14B

	ardhavisargaḥ 22	F14C
	ardhavisargaḥ 23	F14D
	ardhavisargaḥ 24	F14E
	ardhavisargaḥ 25	F14F
	additional anusvāraḥ	F150
	additional anunāsikaḥ	F151
	Vedic anusvāraḥ 1	F153
	Vedic anusvāraḥ 2	F154
	Vedic anusvāraḥ 3	F155
	Vedic anusvāraḥ 4	F156
	Vedic anusvāraḥ 5	F157
	Vedic anusvāraḥ 6	F158
	Vedic anusvāraḥ 7	F159
	Vedic anusvāraḥ 8	F15A
	Vedic anusvāraḥ 9	F15B
	Vedic anusvāraḥ 10	F15C
	Vedic anusvāraḥ 11	F15D
	Vedic anusvāraḥ 12	F15E
	Vedic anusvāraḥ 13	F15F
	Vedic anusvāraḥ 14	F160
	Vedic anusvāraḥ 15	F161
	Vedic anusvāraḥ 16	F162
	Vedic anusvāraḥ 17	F163

	Vedic anusvāraḥ 18	F164
	Vedic anusvāraḥ 19	F165
	Vedic anusvāraḥ 20	F166
	Vedic anusvāraḥ 21	F167
	Vedic anusvāraḥ 22	F168
	Vedic anusvāraḥ 23	F169
	Vedic anusvāraḥ 24	F16A
	Vedic anusvāraḥ 25	F16B
	Vedic anusvāraḥ 26	F16C
	Vedic anusvāraḥ 27	F16D
	Vedic anusvāraḥ 28	F16E
	Vedic anusvāraḥ 29	F16F
	Vedic anusvāraḥ 30	F170
	Vedic anusvāraḥ 31	F171
	Vedic anusvāraḥ 32	F172
	Vedic anusvāraḥ 33	F173
	Vedic anusvāraḥ 34	F174
	additional svaritaḥ	F175
	Vedic svaritaḥ 1	F176
	Vedic svaritaḥ 2	F177
	guru	F178
	laghu	F179
	Vedic accent	F17A

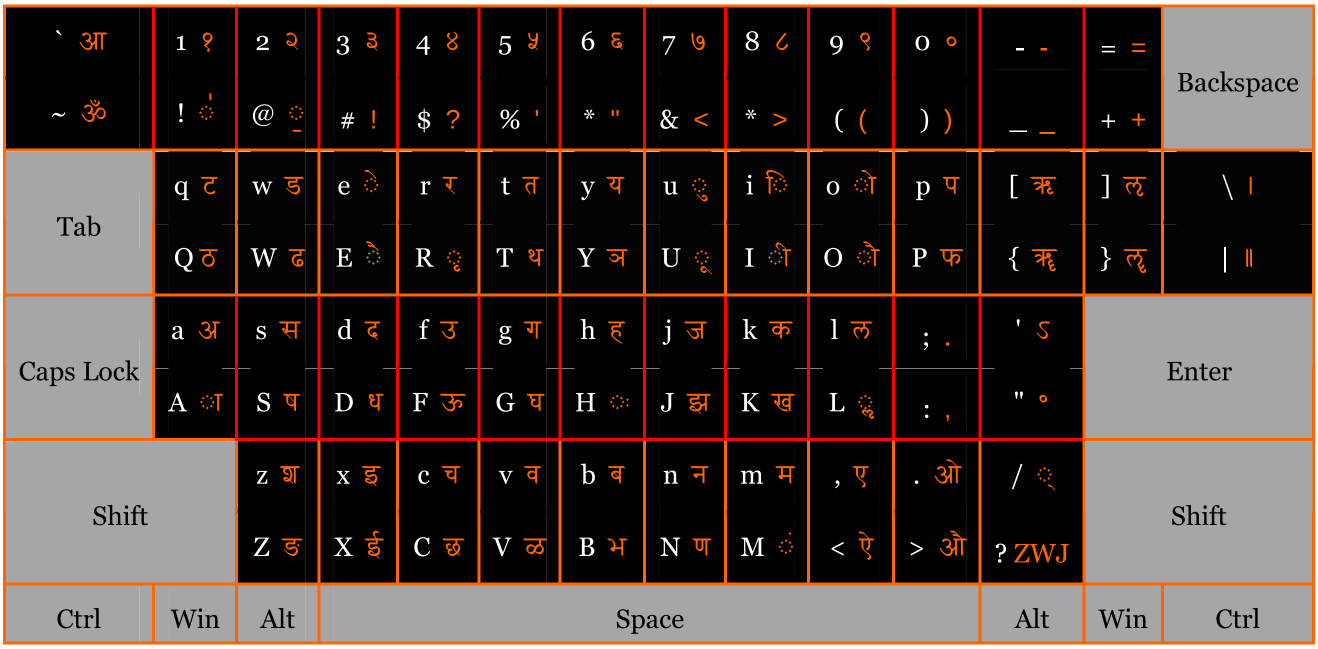
ˆ	Vedic accent	F17B
ˇ	Vedic accent	F17C
⌒	Vedic accent	F17D
ω	Vedic accent	F17E
m	Vedic accent	F17F
ĸ	Vedic accent	F180
˔	Vedic accent	F181
‶	Vedic accent	F182
〃	Vedic accent	F183
१	kampaḥ 1	F184
३	kampaḥ 2	F185
२	Sāmavedic accent 1	F187
३	Sāmavedic accent 2	F188
४	Sāmavedic accent 3	F189
५	Sāmavedic accent 4	F18A
६	Sāmavedic accent 5	F18B
७	Sāmavedic accent 6	F18C
८	Sāmavedic accent 7	F18D
९	Sāmavedic accent 8	F18E
०	Sāmavedic accent 9	F18F
·	Sāmavedic accent 10	F190
र	Sāmavedic accent 11	F191
क	Sāmavedic accent 12	F192

उ	udāttaḥ	F193
ऽ	Sāmavedic accent 13	F194
१र	Sāmavedic accent 14	F195
२र	Sāmavedic accent 15	F196
३र	Sāmavedic accent 16	F197
४र	Sāmavedic accent 17	F198
५र	Sāmavedic accent 18	F199
र॰	Sāmavedic accent 19	F19A
१र॰	Sāmavedic accent 20	F19B
२र॰	Sāmavedic accent 21	F19C
३र॰	Sāmavedic accent 22	F19D
४र॰	Sāmavedic accent 23	F19E
५र॰	Sāmavedic accent 24	F19F
२उ	Sāmavedic accent 25	F1A0
३क	Sāmavedic accent 26	F1A1
_	additional anudāttaḥ	F1A2
⌞	Vedic accent	F1A3
¬	Vedic accent	F1A4
◡	Vedic accent	F1A5
⌒	Vedic accent	F1A6
ω	Vedic accent	F1A7
m	Vedic accent	F1A8
ɼ	Vedic accent	F1A9

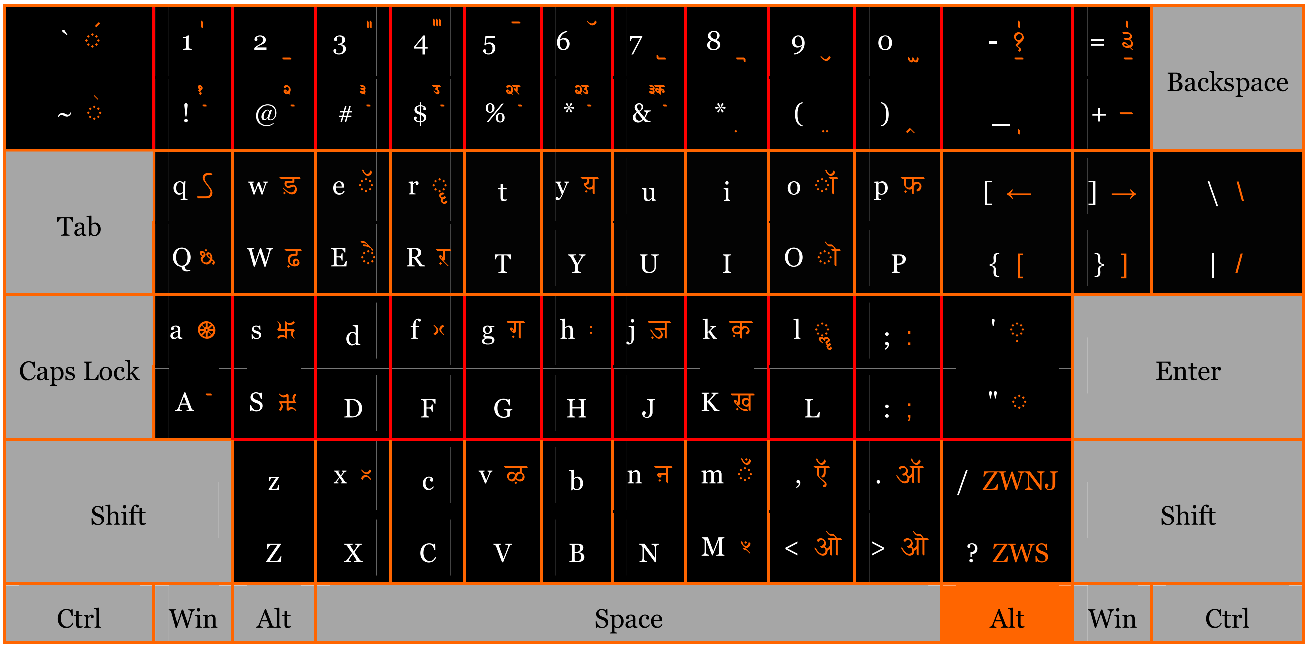
	Vedic accent	F1AA
	Vedic accent	F1AB
	Vedic accent	F1AC
	Vedic accent	F1AD
	Vedic accent	F1AE
	Vedic accent	F1AF
	Vedic accent	F1B0
	Vedic accent	F1B1
	Vedic accent	F1B2
	Vedic accent	F1B3
	Vedic accent	F1B4
	Vedic accent	F1B5
	Vedic accent	F1B6
	Vedic accent	F1B7
	Vedic accent	F1B8
	Vedic accent	F1B9
–	Vedic udāttaḥ 1	F1BA
—	Vedic udāttaḥ 2	F1BB
—	Vedic udāttaḥ 3	F1BC

Chandas Devanāgarī IME Help

१ ॥ Keyboard Layout



Right Alt +



२ ॥ Installing

1) First make sure that support of Devanāgarī Script is enabled in Your System (this can be done only in Windows 2000, Windows XP and Windows 2003). To do this go to Control Panel > Language Settings > Languages > and click "Enable support of complex and left to right scripts"

2) Unpack chandas-ime.zip file and click on Chandas.msi.

3) Then go to Control Panel > Language Settings > Languages > Languages and Text Input Services > Add > and select as language Sanskrit and Chandas Devanāgarī as IME.

३ ॥ Typing

Devanāgarī is syllabic script. There are 4 main rules of typing:

1 Consonant-signs include vowel अ (a). To type a consonant without next vowel (*halanta*) use sign *virāma* -

क ka । ग ga । च ca ॥

क + ् → क् k । ग + ् → ग् g । च + ् → च् c ॥

2 Vowels in the beginning of a word and vowels after consonants have separate signs. Vowels after consonants (*mātrā*s) must be typed after consonant-signs.

आ ā । उ u । इ i ॥

क + ा → का kā ॥ क + ु → कु ku ॥ क + ि → कि ki ॥

3 Consonants before consonants must be typed with *virāma*. Ligature-signs (*saṃyoga*) are "constructed" automatically by Operational System.

क + ◌् + ष → क्ष kṣa। क + ◌् + त → क्त kta। ङ + ◌् + क + ◌् + त + ◌् + य → ङ्क्त्य ṅktya ॥

4 To type consonant half-form sign use Zero-Width-Joiner sign (ZWJ). This can be used also to type horizontal ligature-variations and *anunāsika* after *halanta antasstha*-consonant. To prevent ligature-construction use Zero-Width-Non-Joiner sign.

क + ◌् + ZWJ → क्‍ । च + ◌् + ZWJ → च्‍ । क + ◌् + ZWJ + त → क्‍त ॥ ळ + ◌् + ZWJ + ◌ँ + ळ → ळ्‍ँळ ।
क + ◌् + ZWNJ + त → क्‌त ॥

Devanāgarī Unicode Fonts

This IME can be used with all Unicode Devanāgarī fonts. But Vedic accents are not yet supported by Unicode Standard and can not be found in other fonts. Other Unicode Devanāgarī fonts can be found here -

www.devanagari.net

www.alanwood.net/unicode/fonts.html#devanagari

www.travelphrases.info/gallery/Fonts_Devanagari.html

अचः । Vowels

Devanāgarī character	*Roman keyboard key*
◌ा	A
◌ि	i
◌ी	I
◌ु	u
◌ू	U
◌ृ	R
◌ॄ	Alt+r
◌ॢ	L
◌ॣ	Alt+l
◌े	e
◌ै	E
◌ो	o
◌ौ	O
◌ं	M
◌ः	H
◌ँ	Alt+m

Devanāgarī character	*Roman keyboard key*
अ	a
आ	`
इ	x
ई	X
उ	f
ऊ	F
ऋ	[
ॠ	{
ऌ	]
ॡ	}
ए	,
ऐ	<
ओ	.
औ	>

हलः । Consonants

Devanāgarī character	*Roman keyboard key*
क	k
ख	K
ग	g

घ	G
ङ	Z
च	c
छ	C
ज	j
झ	J
ञ	Y
ट	q
ठ	Q
ड	w
ढ	W
ण	N
त	t
थ	T
द	d
ध	D
न	n
प	p
फ	P
ब	b
भ	B

म	m
य	y
र	r
ल	l
व	v
श	z
ष	S
स	s
ह	h
ळ	V

Special signs

Devanāgarī character	*Roman keyboard key*
◌् (विरामः)	/
ऽ (अवग्रहः)	'
॰ (निर्ह्लासः)	"
◌॑ (स्वरितः)	!
◌॒ (अनुदात्तः)	@
◌॔	Alt+`
◌॓	Alt+Shift+`
ॐ (ॐकारः)	~

। (दण्डः)	\
॥ (द्विदण्डौ)	|
़ (नुक्तः)	Alt+'

Other Devanāgarī signs

Devanāgarī character	*Roman keyboard key*
ऍ	Alt+,
ऎ	Alt+ Shift+,
ऑ	Alt+.
ऒ	Alt+ Shift+.
ऩ	Alt+n
ऱ	Alt+Shift+r
ऴ	Alt+v
ॅ	Alt+e
ॆ	Alt+Shift+e
ॉ	Alt+o
ॊ	Alt+Shift+o
क़	Alt+k
ख़	Alt+Shift+k
ग़	Alt+g
ज़	Alt+j

ड़	Alt+w
ढ़	Alt+Shift+w
फ़	Alt+p
य़	Alt+y

संख्याः / Numerals

Devanāgarī character	*Roman keyboard key*
१	1
२	2
३	3
४	4
५	5
६	6
७	7
८	8
९	9
०	0

Additional Vedic signs (supported only in Chandas font)

Devanāgarī character	*Roman keyboard key*
ꣳ (Vedic अनुस्वारः)	Alt+Shift+m
ᳵ (जिह्वामूलीयः)	Alt+x
ᳶ (उपध्मामीयः)	Alt+f
: (Additional विसर्गः)	Alt+h
॑ (Additional स्वरितः)	Alt+1
॒ (Additional अनुदात्तः)	Alt+2
᳚ (Vedic स्वरितः)	Alt+3
᳛ (Vedic स्वरितः)	Alt+4
¯ (गुरु)	Alt+5
˘ (लघु)	Alt+6
᳕ (Vedic स्वरितः)	Alt+7
᳖ (Vedic स्वरितः)	Alt+8
᳗ (Vedic स्वरितः)	Alt+9
᳘ (Vedic स्वरितः)	Alt+0
१॒॑ (ह्रस्वकम्पः)	Alt+-
३॒॑ (दीर्घकम्पः)	Alt+=
ʃ (Vedic स्वरितः)	Alt+q
⊛ (चक्रम्)	Alt+a
卐 (स्वस्तिकः)	Alt+s

卐 (स्वस्तिकः)	Alt+Shift+s
ˉ (Devanagari space variant)	Alt+Shift+a
ꣳ (Vedic अनुस्वारः)	Alt+Shift+q
१ˋ (Sāmavedic accent)	Alt+Shift+1
२ˋ (Sāmavedic accent)	Alt+Shift+2
३ˋ (Sāmavedic accent)	Alt+Shift+3
उˋ (उदात्तः)	Alt+Shift+4
२रˋ (Sāmavedic accent)	Alt+Shift+5
२उˋ (Sāmavedic accent)	Alt+Shift+6
३कˋ (Sāmavedic accent)	Alt+Shift+7
. (Vedic accent)	Alt+Shift+8
.. (Vedic accent)	Alt+Shift+9
^ (Vedic accent)	Alt+Shift+0
ˌ (Vedic accent)	Alt+Shift+-
− (Vedic उदात्तः)	Alt+Shift+=

All other Vedic symbols in Chandas font are encoded in Unicode Private Area and can be found there.

Special Unicode Signs

Unicode sign	*Roman keyboard key*
(U25CC) ◌ Dotted Circle	Alt+Shift+'
Punctuation Space	Alt+Space

(U200D) Zero Width Joiner	Shift+/
(U200C) Zero Width Non-Joiner	Alt+/
(U200B) Zero Width Space	Alt+Shift+/

Additional Roman Signs

Additional character	*Roman keyboard key*
.	;
,	Shift+;
:	Alt+;
;	Alt+Shift+;
-	-
_	_
=	=
+	+
!	Shift+3
?	Shift+4
'	Shift+5
"	Shift+6
<	Shift+7
>	Shift+8
(	Shift+9
)	Shift+0
[	Alt+Shift-[
]	Alt+Shift-]

\	Alt+\
/	Alt+Shift+\
←	Alt+[
→	Alt+]

॥ संयोगपत्त्रम् ॥

Ligature examples

क्क क्त क्क्ण क्क्न क्क्म क्क्य क्क्र क्क्ष क्ख क्ग क्घ क्ङ क्च क्च्क क्च्ङ क्च्च क्च्छ क्च्ड क्च्न क्च्ब क्च्म क्च्य क्च्र क्च्ल क्च्व क्छ क्ज क्ज्ञ

क्झ क्ञ क्ञ्न क्ञ्ब क्ञ्म क्ञ्य क्ञ्र क्ञ्ल क्ञ्व क्ट क्ठ क्ड क्ढ क्ण क्त क्त्क क्त्क्म क्त्क्य क्त्ज क्त्ज्ञ क्त्ज क्त्ज्म क्त्ज्य क्त्त क्त्त्म

क्त्त्य क्त्न क्त्न्म क्त्न्य क्त्ब क्त्ब्म क्त्ब्य क्त्म क्त्य क्त्र क्त्र्म क्त्र्य क्त्ल क्त्ल्म क्त्ल्य क्त्व क्त्व्म क्त्व्य क्थ क्द क्ध क्न क्न्म क्न्य क्न्र

क्प क्फ क्ब क्ब्न क्ब्म क्ब्य क्ब्र क्भ क्म क्म्च क्म्ज क्म्ज्ञ क्म्ञ क्म्न क्म्ब क्म्र क्म्ल क्म्व क्य क्य्न क्य्र क्र क्र्क क्र्ङ क्र्च क्र्ज क्र्ज्ञ क्र्ञ

क्र्ड क्र्न क्र्ब क्र्म क्र्य क्ल क्ल्व क्ल्ल क्ल्म क्ल्य क्ळ क्व क्व्न क्व्म क्व्य क्व्र क्श क्ष क्ष्क क्ष्क्ष क्ष्ख क्ष्ग क्ष्घ क्ष्ङ क्ष्च क्ष्छ क्ष्ज क्ष्ज्ञ

क्ष्झ क्ष्ञ क्ष्ञ्न क्ष्ञ्र क्ष्ट क्ष्ठ क्ष्ड क्ष्ढ क्ष्ण क्ष्त क्ष्थ क्ष्द क्ष्ध क्ष्न क्ष्प क्ष्फ क्ष्ब क्ष्भ क्ष्म क्ष्य क्ष्र क्ष्ल क्ष्ळ क्ष्व क्ष्श क्ष्ष क्ष्स क्ष्ह

क्स क्ह

ख्क ख्क्ष ख्ख्व ख्ग ख्घ ख्ङ ख्च ख्छ ख्ज ख्ज्ञ ख्झ ख्ञ ख्ञ्न ख्ञ्र ख्ट ख्ठ ख्ड ख्ढ ख्ण ख्त ख्थ ख्द ख्ध ख्न ख्प ख्फ ख्ब ख्ब्न

ख्ब्र ख्भ ख्म ख्य ख्र ख्ल ख्ळ ख्व ख्व्न ख्व्र ख्श ख्ष ख्स ख्ह

ग्क ग्क्ष ग्ख ग्ग ग्घ ग्ङ ग्च ग्छ ग्ज ग्ज्ञ ग्झ ग्ञ ग्ट ग्ठ ग्ड ग्ढ ग्ण ग्त ग्थ ग्द ग्ध ग्न ग्प ग्फ ग्ब ग्भ ग्म ग्य

ग्र ग्ल ग्ळ ग्व ग्श ग्ष ग्स ग्ह

घ्क घ्क्ष घ्ख घ्ग घ्घ घ्ङ घ्च घ्छ घ्ज घ्ज्ञ घ्झ घ्ञ घ्ञ्न घ्ञ्ब घ्ञ्र घ्ञ्ल घ्ञ्व घ्ट घ्ठ घ्ड घ्ढ घ्ण घ्त घ्थ घ्द घ्ध घ्न घ्प घ्फ घ्ब

घ्भ घ्म घ्य घ्र घ्ल घ्ळ घ्व घ्श घ्ष घ्स घ्ह

ङ्क ङ्क्क ङ्क्ख ङ्क्च ङ्क्छ ङ्क्ज ङ्क्ट ङ्क्ठ ङ्क्ण ङ्क्त ङ्क्त्य ङ्क्त्र ङ्क्त्र्य ङ्क्त्व ङ्क्त्व्य ङ्क्थ ङ्क्न ङ्क्प ङ्क्फ ङ्क्ब ङ्क्म ङ्क्य ङ्क्र ङ्क्र्य ङ्क्ल ङ्क्व ङ्क्व्य ङ्क्श ङ्क्ष ङ्क्ष्ण ङ्क्ष्क

ङ्क्ष्ट ङ्क्ष्ठ ङ्क्ष्ण ङ्क्ष्त ङ्क्ष्थ ङ्क्ष्न ङ्क्ष्प ङ्क्ष्फ ङ्क्ष्म ङ्क्ष्य ङ्क्ष्र ङ्क्ष्र्य ङ्क्ष्ल ङ्क्ष्व ङ्क्ष्व्य ङ्क्ष्ष ङ्क्स ङ्ख ङ्ख्ण ङ्ख्न ङ्ख्म ङ्ख्य ङ्ख्र ङ्ख्र्य ङ्ख्ल ङ्ख्व ङ्ग ङ्ग्ग ङ्घ ङ्घ्य

ङ्घ्र ङ्ङ ङ्ज ङ्ज्ञ ङ्ञ ङ्ड ङ्ढ ङ्ण ङ्द ङ्ध ङ्न ङ्ब ङ्भ ङ्म ङ्य ङ्र ङ्र्य ङ्ल ङ्व ङ्व्य ङ्ह ड्घ ड्घ्न ड्ड ड्घ्र ड्ब ड्म ड्य ड्र ड्र्य ड्ल ड्व

ङ्ङ ङ्ङ्य ङ्ङ्र ङ्ङ्र्य ङ्ङ्व ङ्व ङ्ङ्क ङ्ङ्ख ङ्ङ्च ङ्ङ्छ ङ्ङ्ज ङ्ङ्ट ङ्ङ्ठ ङ्ङ्ण ङ्ङ्त ङ्ङ्थ ङ्ङ्न ङ्ङ्प ङ्ङ्फ ङ्ङ्ब ङ्ङ्म ङ्ङ्य ङ्ङ्र ङ्ङ्र्य ङ्ङ्ल ङ्ङ्व ङ्ङ्व्य ङ्ङ्श ङ्ङ्ष ङ्ङ्स ङ्ङ्ह ङ्ङ्ह्म

ङ्क्ष ङ्क्ष्य ङ्क्ष्व ङ्ग ङ्ज ङ्ज्य ङ्ड ङ्ज्ञ ङ्ग्न ङ्ज्ञ ङ्ग ङ्ग ङ्ग्य ङ्ग्र ङ्ग्व ङ्ड ङ्ढ ङ्ण ङ्द ङ्ध्य ङ्न ङ्ब ङ्भ ङ्म ङ्य ङ्र ङ्र्य ङ्ल ङ्व ङ्श ङ्ष

ङ्स ङ्ह ङ्घ ङ्घ्य ङ्घ्र ङ्घ्र्य ङ्ञ ङ्क्क ङ्ख्व ङ्ग ङ्घ ङ्ङ ङ्च ङ्छ ङ्ज ङ्झ ङ्ञ ङ्ट ङ्ठ ङ्ड ङ्ढ ङ्ण ङ्त ङ्थ ङ्द ङ्ध ङ्न ङ्प ङ्फ ङ्ब

ङ्भ ङ्म ङ्य ङ्र ङ्र्य ङ्ल ङ्व ङ्श ङ्ष ङ्स ङ्ह ङ्ट ङ्ट्य ङ्ट्र ङ्ट्र्य ङ्ट्व ङ्ठ ङ्ठ्य ङ्ठ्र ङ्ठ्र्य ङ्ठ्व ङ्ड ङ्ड्य ङ्ड्र ङ्ड्र्य ङ्ड्व ङ्ढ ङ्ढ्य ङ्ढ्र ङ्ढ्र्य ङ्ढ्व ङ्ण

ङ्ण्क्ष ङ्ण्ज ङ्ण्ट ङ्ण्ठ ङ्ण्ड ङ्ण्ढ ङ्ण्ण ङ्ण्न ङ्ण्म ङ्ण्य ङ्ण्र ङ्ण्र्य ङ्ण्ल ङ्ण्व ङ्ण्ष ङ्त ङ्त्क ङ्त्क्ष ङ्त्ख ङ्त्ड ङ्त्च ङ्त्छ ङ्त्ट ङ्त्ठ ङ्त्ण ङ्त्त ङ्त्थ ङ्त्न ङ्त्प ङ्त्फ ङ्त्म ङ्त्य ङ्त्र

ङ्त्र्य ङ्त्ल ङ्त्व ङ्त्व्य ङ्त्श ङ्त्ष ङ्त्स ङ्थ ङ्थ्न ङ्थ्ब ङ्थ्य ङ्थ्र ङ्थ्र्य ङ्थ्व ङ्द ङ्द्ग ङ्द्घ ङ्द्द ङ्द्ध ङ्द्न ङ्द्ब ङ्द्भ ङ्द्म ङ्द्य ङ्द्र ङ्द्र्य ङ्द्व ङ्द्व्य ङ्ध ङ्ध्न ङ्ध्ब ङ्ध्म ङ्ध्य

ङ्ध्र ङ्ध्र्य ङ्ध्ल ङ्ध्व ङ्न ङ्न्क ङ्न्क्ष ङ्न्ख ङ्न्ग ङ्न्घ ङ्न्ङ ङ्न्च ङ्न्छ ङ्न्ज ङ्न्ज्ञ ङ्न्झ ङ्न्ञ ङ्न्ट ङ्न्ठ ङ्न्ड ङ्न्ढ ङ्न्ण ङ्न्त ङ्न्थ ङ्न्द ङ्न्ध ङ्न्न ङ्न्प ङ्न्फ ङ्न्ब ङ्न्भ ङ्न्म ङ्न्य

ङ्न्र ङ्न्र्य ङ्न्ल ङ्न्व ङ्न्व्य ङ्न्श ङ्न्ष ङ्न्स ङ्न्ह ङ्प ङ्प्क ङ्प्ड ङ्प्च ङ्प्ट ङ्प्ठ ङ्प्त ङ्प्न ङ्प्म ङ्प्य ङ्प्र ङ्प्र्य ङ्प्ल ङ्प्व ङ्प्व्य ङ्फ ङ्फ्क ङ्फ्म ङ्फ्य ङ्फ्र ङ्फ्र्य ङ्फ्क ङ्फ्ल्य ङ्ब

ङ्ब्ज ङ्ब्ज्य ङ्ब्ड ङ्ब्ज ङ्ब्ज्ञ ङ्ब्ज्ञ ङ्ब्झ ङ्ब्ड ङ्ब्ढ ङ्ब्ण ङ्ब्द ङ्ब्ध ङ्ब्न ङ्ब्ब ङ्ब्भ ङ्ब्म ङ्ब्य ङ्ब्र ङ्ब्र्य ङ्ब्ल ङ्ब्व ङ्ब्श ङ्ब्ष ङ्ब्स ङ्ब्ह ङ्भ ङ्भ्ण ङ्भ्ण ङ्भ्न ङ्भ्ब ङ्भ्म ङ्भ्य ङ्भ्र

ङ्भ्र्य ङ्भ्ल ङ्भ्व ङ्भ्व्य ङ्म ङ्म्च ङ्म्ज ङ्म्ज्ञ ङ्म्ञ ङ्म्न ङ्म्ब ङ्म्म ङ्म्य ङ्म्र ङ्म्र्य ङ्म्ल ङ्म्व ङ्य ङ्य्न ङ्य्य ङ्य्व ङ्र्व ङ्र ङ्र्म ङ्र्य ङ्र्व ङ्ल ङ्ल्म

ङ्ल्य ङ्ल्र ङ्ल्र्य ङ्ल्व ङ्ळ ङ्व ङ्व्ण ङ्व्ज ङ्व्ड ङ्व्ज ङ्व्ज्ञ ङ्व्ज्ञ ङ्व्झ ङ्व्ड ङ्व्ढ ङ्व्ण ङ्व्द ङ्व्ध ङ्व्न ङ्व्ब ङ्व्भ ङ्व्म ङ्व्य ङ्व्र ङ्व्र्य ङ्व्ल ङ्व्व ङ्व्श ङ्व्ष ङ्व्स ङ्व्ह ङ्श ङ्श्क

ङ्श्क्ष ङ्श्छ ङ्श्ज ङ्श्छ ङ्श्ज्ञ ङ्श्ट ङ्श्ठ ङ्श्ण ङ्श्त ङ्श्थ ङ्श्न ङ्श्प ङ्श्फ ङ्श्म ङ्श्य ङ्श्र ङ्श्र्य ङ्श्ल ङ्श्व ङ्श्व्य ङ्श्श ङ्श्ष ङ्ष ङ्ष्क ङ्ष्ट ङ्ष्ट्र ङ्ष्ट ङ्ष्ठ ङ्ष्ण ङ्ष्न ङ्ष्म ङ्ष्य

ङ्ष्र ङ्ष्र्य ङ्ष्ल ङ्ष्व ङ्ष्व्य ङ्स ङ्स्क ङ्स्क्ष ङ्स्ख ङ्स्छ ङ्स्ट ङ्स्ठ ङ्स्ण ङ्स्त ङ्स्थ ङ्स्न ङ्स्प ङ्स्फ ङ्स्ब ङ्स्म ङ्स्य ङ्स्र ङ्स्र्य ङ्स्ल ङ्स्व ङ्स्स ङ्ह ङ्ह्ण ङ्ह्न ङ्ह्ब ङ्ह्म ङ्ह्य

ङ्ह्र ङ्ह्र्य ङ्ह्ल ङ्ह्व

च्क च्क्क च्कु च्क्क च्क्त च्क्न च्क्म च्क्य च्क्र च्क्ल च्क्ष च्ख च्ग च्घ च्ङ च्च च्च्क च्च्छ च्च्ञ च्च्ञ च्च्न च्च्ब च्च्म च्च्य च्च्र च्च्ल च्च्व च्छ च्छ

च्ज च्ज्ञ च्झ च्ञ च्ञ्च च्ञ्छ च्ञ्ज च्ञ्झ च्ञ्ञ च्ट च्ठ च्ड च्ढ च्ण च्त च्थ च्द च्ध च्न च्प च्फ च्ब च्ब्न च्ब्र च्भ च्म च्य च्र च्रृ च्रु च्रू

च्लृ च्लॄ च्ल्र च्लु च्लूू च्ल्व च्लु च्लृ च्लू च्ळ च्व च्व्न च्व्र च्श च्ष च्स च्ह

छ्क छ्क्ष छ्ख छ्ग छ्घ छ्ङ छ्ङ्म छ्ङ्र छ्ङ्व छ्च छ्च्छ छ्च्म छ्च्र छ्च्व छ्ज छ्ज्ञ छ्ज्ञ छ्ञ छ्ञ्न छ्ञ्र छ्ट छ्ट्म छ्ट्र छ्ट्व छ्ठ छ्ठ्य छ्ठ्म छ्ठ्र छ्ठ्व छ्ड छ्ड्म छ्ड्र छ्ड्व छ्ढ छ्ण छ्ण्म

छ्प्र छ्प्व छ्त छ्त्म छ्त्र छ्त्व छ्थ छ्द छ्ध छ्न छ्न्म छ्न्र छ्प छ्प्म छ्प्र छ्फ छ्ब छ्ब्न छ्ब्म छ्ब्र छ्ब्ल छ्भ छ्म छ्म्च छ्म्ज छ्म्ज्ञ छ्म्ञ छ्म्न छ्म्ब छ्म्म छ्म्र

छ्म्ल छ्म्व छ्य छ्य्म छ्य्य छ्र छ्र्म छ्र्य छ्र्व छ्ल छ्ल्ग छ्ल्म छ्ल्व छ्ळ छ्व छ्व्न छ्व्म छ्व्र छ्व्ल छ्श छ्श्च छ्श्छ छ्श्न छ्श्म छ्श्र छ्श्ल छ्श्व छ्श्श छ्ष छ्ष्म छ्ष्र

छ्स छ्स्म छ्स्र छ्ह

ज्क ज्क्ष ज्ख ज्ग ज्घ ज्ङ ज्च ज्छ ज्ज ज्ज्ञ ज्ज्र ज्ञ्ब ज्ञ्भ ज्ञ्म ज्ञ्र ज्ञ्ल ज्ञ्व ज्ञ्श ज्झ ज्ञ ज्ञ्क ज्ञ्क्ष ज्ञ्ख ज्ञ्ग ज्ञ्घ ज्ञ्ङ ज्ञ्च

ज्ञ्छ ज्ञ्ज ज्ञ्ज्ञ ज्ञ्झ ज्ञ्ञ ज्ञ्ञ्र ज्ञ्ञ्ब ज्ञ्ञ्र ज्ञ्ञ्ल ज्ञ्ञ्व ज्ञ्ट ज्ञ्ठ ज्ञ्ड ज्ञ्ढ ज्ञ्ण ज्ञ्त ज्ञ्थ ज्ञ्द ज्ञ्ध ज्ञ्न ज्ञ्प ज्ञ्फ ज्ञ्ब ज्ञ्भ ज्ञ्म ज्ञ्य ज्ञ्र ज्ञ्र्च ज्ञ्र्ज

ज्ञ्र्ज्ञ ज्ञ्र्ञ ज्ञ्र्न ज्ञ्ल ज्ञ्ळ ज्ञ्व ज्ञ्श ज्ञ्ष ज्ञ्स ज्ञ्ह ज्ट ज्ठ ज्ड ज्ढ ज्ण ज्त ज्थ ज्द ज्ध ज्न ज्प ज्फ ज्ब ज्ब्न ज्ब्र ज्भ ज्म ज्य

ज्र ज्र्ज ज्र्ज्ञ ज्र्ञ ज्र्न ज्र्ल ज्ल ज्ळ ज्व ज्व्न ज्व्र ज्श ज्ष ज्स ज्ह

झ्क झ्क्ष झ्ख झ्ग झ्घ झ्ङ झ्च झ्छ झ्ज झ्ज्ञ झ्झ झ्ञ झ्ञ्न झ्ञ्र झ्ट झ्ठ झ्ड झ्ढ झ्ण झ्त झ्थ झ्द झ्ध झ्न झ्प झ्फ

झ्ब झ्भ झ्म झ्य झ्र झ्ल झ्ळ झ्व झ्श झ्ष झ्स झ्ह

ञ्क ञ्क्त ञ्क्र ञ्क्ष ञ्ख ञ्ग ञ्घ ञ्ङ ञ्च ञ्च्क ञ्च्ङ ञ्च्घ ञ्च्ञ ञ्च्न ञ्च्ब ञ्च्ब ञ्च्भ ञ्च्म ञ्च्य ञ्च्र ञ्च्ल ञ्च्व ञ्च्श ञ्छ ञ्ज ञ्ज्ञ ञ्ज्र ञ्ज्ञ्ब

ञ्ज्ञ्भ ञ्ज्ञ्म ञ्ज्ञ्र ञ्ज्ञ्ल ञ्ज्ञ्व ञ्ज्ञ्श ञ्झ ञ्ञ ञ्ञ्र ञ्ञ्ब ञ्ञ्र ञ्ञ्ल ञ्ञ्व ञ्ट ञ्ठ ञ्ड ञ्ढ ञ्ण ञ्त ञ्थ ञ्द ञ्ध ञ्न ञ्प ञ्फ ञ्ब ञ्भ ञ्म

ञ्य ञ्र ञ्र्च ञ्र्ज ञ्र्ज्ञ ञ्र्ञ ञ्र्न ञ्ल ञ्ळ ञ्व ञ्श ञ्ष ञ्स ञ्ह

ङ्क ङ्क्क ङ्क्ख ङ्क्छ ङ्क्ज ङ्क्ट ङ्क्ठ ङ्क्ण ङ्क्त ङ्क्थ ङ्क्न ङ्क्प ङ्क्फ ङ्क्ब ङ्क्म ङ्क्य ङ्क्र ङ्क्र्य ङ्क्ल ङ्क्व ङ्क्व्य ङ्क्श ङ्क्ष ङ्क्ष ङ्क्ष्क ङ्क्ष्ट ङ्क्ष्ठ ङ्क्ष्ण ङ्क्ष्त ङ्क्ष्थ ङ्क्ष्न

ङ्क्ष्प ङ्क्ष्फ ङ्क्ष्म ङ्क्ष्य ङ्क्ष्र ङ्क्ष्ल ङ्क्ष्व ङ्क्ष्ष ङ्क्स ङ्ख ङ्ग ङ्घ ङ्ङ ङ्ङ्य ङ्ङ्र ङ्ङ्व ङ्च ङ्च्क ङ्च्ङ ङ्च्च ङ्च्छ ङ्च्ज ङ्च्ट ङ्च्ठ ङ्च्ण ङ्च्त ङ्च्थ ङ्च्न ङ्च्प ङ्च्फ ङ्च्ब ङ्च्म

ङ्च्य ङ्च्र ङ्च्र्य ङ्च्ल ङ्च्व ङ्च्श ङ्च्ष ङ्च्स ङ्छ ङ्छ्य ङ्छ्र ङ्छ्व ङ्ज ङ्ज्ञ ङ्झ ङ्ञ ङ्ञ्क ङ्ञ्ख ङ्ञ्ङ ङ्ञ्च ङ्ञ्छ ङ्ञ्ज ङ्ञ्ट ङ्ञ्ठ ङ्ञ्ण ङ्ञ्त ङ्ञ्थ ङ्ञ्न ङ्ञ्प ङ्ञ्फ ङ्ञ्ब ङ्ञ्म

ङ्ञ्य ङ्ञ्र ङ्ञ्र्य ङ्ञ्ल ङ्ञ्व ङ्ञ्श ङ्ञ्ष ङ्ञ्स ङ्ट ङ्ट्य ङ्ट्र ङ्ट्व ङ्ठ ङ्ठ्य ङ्ठ्र ङ्ठ्व ङ्ड ङ्ड्य ङ्ड्र ङ्ड्व ङ्ढ ङ्ढ्य ङ्ढ्र ङ्ढ्व ङ्ण ङ्ण्ज ङ्ण्ट ङ्ण्ठ ङ्ण्ण ङ्ण्न ङ्ण्म ङ्ण्य ङ्ण्र ङ्ण्र्य

ङ्ण्ल ङ्ण्व ङ्त ङ्त्क ङ्त्ख ङ्त्ङ ङ्त्च ङ्त्छ ङ्त्ट ङ्त्ठ ङ्त्ण ङ्त्त ङ्त्थ ङ्त्न ङ्त्प ङ्त्फ ङ्त्ब ङ्त्म ङ्त्य ङ्त्र ङ्त्र्य ङ्त्ल ङ्त्व ङ्त्व्य ङ्त्श ङ्त्ष ङ्त्स ङ्थ ङ्थ्न ङ्थ्ब ङ्थ्य ङ्थ्र ङ्थ्र्य

ङ्थ्व ङ्द ङ्ध ङ्न ङ्न्क ङ्न्ख ङ्न्ङ ङ्न्च ङ्न्छ ङ्न्ज ङ्न्ट ङ्न्ठ ङ्न्ण ङ्न्त ङ्न्थ ङ्न्न ङ्न्प ङ्न्फ ङ्न्म ङ्न्य ङ्न्र ङ्न्र्य ङ्न्ल ङ्न्व ङ्न्व्य ङ्न्श ङ्न्ष ङ्न्स ङ्प ङ्प्क ङ्प्ङ ङ्प्ट ङ्प्ठ ङ्प्त

ङ्प्न ङ्प्म ङ्प्य ङ्प्र ङ्प्र्य ङ्प्व ङ्फ ङ्फ्र ङ्फ्म ङ्फ्य ङ्फ्र ङ्फ्र्य ङ्फ्क ङ्फ्क्य ङ्ब ङ्ब्न ङ्ब्य ङ्ब्र ङ्ब्ल ङ्भ ङ्भ ङ्म्च ङ्म्ज ङ्म्ज्ञ ङ्म्ञ ङ्म्न ङ्म्ब ङ्म्म ङ्म्य ङ्म्र ङ्म्र्य

ङ्म्ल ङ्म्व ङ्य ङ्य्न ङ्य्र ङ्र्य ङ्र ङ्र्म ङ्र्य्र ङ्व ङ्ल ङ्ल्म ङ्ल्य ङ्ल्र ङ्ल्र्य ङ्ळ ङ्व ङ्व्न ङ्व्य ङ्व्र ङ्व्र्य ङ्व्ल ङ्श ङ्ष्क ङ्ष्ङ ङ्ष्च ङ्ष्छ ङ्ष्ज ङ्ष्ट ङ्ष्ठ ङ्ष्ण ङ्ष्त

ङ्ष्थ ङ्ष्न ङ्ष्प ङ्ष्फ ङ्ष्म ङ्ष्य ङ्ष्र ङ्ष्र्य ङ्ष्ल ङ्ष्व ङ्ष्व्य ङ्ष्श ङ्ष्ष ङ्ष ङ्स्क ङ्स्ङ ङ्स्ट ङ्स्ठ ङ्स्त ङ्स्न ङ्स्म ङ्स्य ङ्स्र ङ्स्र्य ङ्स्व ङ्स ङ्स्क ङ्स्क्ष ङ्स्च ङ्स्छ ङ्स्ट ङ्स्ठ

ङ्स्ण ङ्स्त ङ्स्थ ङ्स्न ङ्स्प ङ्स्फ ङ्स्ब ङ्स्म ङ्स्य ङ्स्र ङ्स्र्य ङ्स्ल ङ्स्व ङ्स्स ङ्ह ङ्ह्य ङ्ह्र ड्क ड्क्ष ड्ख ड्ग ड्घ ड्ङ ड्ङ्य ड्ङ्र ड्ङ्व ड्च ड्छ ड्ज ड्ज्ञ ड्झ ड्ञ ड्ञ्न ड्ञ्र ड्ट

ड्ट्य ड्ट्र ड्ट्व ड्ठ ड्ठ्य ड्ठ्र ड्ठ्व ड्ड ड्ड्य ड्ड्र ड्ड्व ड्ढ ड्ढ्य ड्ढ्र ड्ढ्व ड्ण ड्ण्य ड्ण्र ड्ण्व ड्त ड्थ ड्द ड्ध ड्न ड्न्न ड्न्य ड्न्र ड्न्व ड्प ड्प्य ड्प्र ड्फ ड्ब ड्ब्न ड्ब्म ड्ब्र

ठ्ल ठ्व ठ्श ठ्य्च ठ्य्ज ठ्य्ज्ञ ठ्य्झ ठ्श्न ठ्य्ब ठ्म्म ठ्म्य ठ्श्र ठ्य्ल ठ्य्व ठ्य ठ्य्न ठ्य्र ठ्र ठ्श्म ठ्र्य ठ्र्व ठ्ल ठ्ल्म ठ्ल्य ठ्ल्र ठ्ळ ठ्व ठ्व्न ठ्व्य ठ्व्र

ठ्ल्ल ठ्श ठ्श्य ठ्श्र ठ्ष ठ्ष्य ठ्ष्र ठ्स ठ्स्य ठ्स्र ठ्ह ठ्ह्य ठ्ह्र

ड्क ड्क्ष ड्ख ड्ग ड्घ ड्ङ ड्ङ्य ड्ङ्र ड्ङ्व ड्च ड्छ ड्ज ड्ज्ञ ड्झ ड्ञ ड्ञ्ज ड्ञ्र ड्ट ड्ट्य ड्ट्र ड्ट्व ड्ठ ड्ठ्य ड्ठ्र ड्ठ्व ड्ड ड्ड्य ड्ड्र ड्ड्व ड्ढ ड्ढ्य ड्ढ्र ड्ढ्व ड्ण ड्ण्य

ड्ण्र ड्ण्य ड्त ड्थ ड्द ड्ध ड्न ड्न्न ड्न्य ड्न्र ड्न्व ड्प ड्प्य ड्प्र ड्फ ड्ब ड्ब्न ड्ब्य ड्ब्र ड्ब्ल ड्भ ड्म ड्म्य ड्य ड्य्य ड्र ड्र्य ड्ल ड्ल्म ड्ल्य ड्ल्र ड्ळ ड्व ड्व्न

ड्व्य ड्व्र ड्व्ल ड्श ड्श्य ड्श्र ड्ष ड्ष्य ड्स ड्स्य ड्स्र ड्ह ड्ह्य ड्ह्र ड्ड्क ड्ड्क्ष ड्ड्ख ड्ड्ग ड्ड्घ ड्ड्ङ ड्ड्ङ्य ड्ड्ङ्र ड्ड्ङ्व ड्ड्च ड्ड्छ ड्ड्ज ड्ड्ज्ञ ड्ड्झ ड्ड्ञ

ड्ड्ट ड्ड्ठ ड्ड्ड ड्ड्ढ ड्ड्ण ड्ड्त ड्ड्थ ड्ड्द ड्ड्ध ड्ड्न ड्ड्प ड्ड्फ ड्ड्ब ड्ड्भ ड्ड्म ड्ड्य ड्ड्र ड्ड्ल ड्ड्व ड्ड्श ड्ड्ष ड्ड्स ड्ड्ह ड्ट ड्ट्य ड्ट्र ड्ट्व ड्ठ ड्ठ्य ड्ठ्र ड्ठ्व ड्ड ड्ड्य ड्ड्र ड्ड्व ड्ढ ड्ढ्य ड्ढ्र ड्ढ्व

ड्ढ्य ड्ढ्र ड्ग ड्घ ड्ङ ड्ङ्य ड्ङ्र ड्ङ्व ड्च ड्छ ड्ज ड्ज्ञ ड्झ ड्ञ ड्ञ्ज ड्ञ्र ड्ट ड्ठ ड्ड ड्ढ ड्ण ड्त ड्थ ड्द ड्ध ड्न ड्प ड्फ ड्ब ड्भ ड्म ड्य ड्र ड्ल

ड्ल्य ड्ल्र ड्व ड्व्य ड्व्र ड्ल ड्ल्व ड्ड्क ड्ड्क्ष ड्ड्ख ड्ड्ग ड्ड्घ ड्ड्ङ ड्ड्ङ्य ड्ड्ङ्र ड्ड्ङ्व ड्ड्च ड्ड्छ ड्ड्ज ड्ड्ज्ञ ड्ड्झ ड्ड्ञ ड्ड्ञ्ज ड्ड्ञ्र ड्ड्ट ड्ड्ठ ड्ड्ड ड्ड्ढ ड्ड्ण ड्ड्त

ड्ड्थ ड्ड्द ड्ड्ध ड्ड्न ड्ड्न्न ड्ड्न्य ड्ड्न्र ड्ड्न्व ड्ड्प ड्ड्प्य ड्ड्प्र ड्ड्फ ड्ड्ब ड्ड्ब्न ड्ड्ब्य ड्ड्ब्र ड्ड्ब्ल ड्ड्भ ड्ड्म ड्य्च ड्य्ज ड्य्ज्ञ ड्य्झ ड्श्न ड्य्ब ड्म्म ड्म्य ड्श्र

ड्य्य ड्य्ल ड्य्व ड्य ड्य्न ड्य्य ड्य्र ड्र ड्श्म ड्र्य ड्र्व ड्ल ड्ल्म ड्ल्य ड्ल्र ड्ल्ल ड्ळ ड्व ड्ड्ग ड्ड्घ ड्ड्ङ ड्ड्ङ्य ड्ड्ङ्र ड्ड्ङ्व ड्ड्च ड्ड्छ ड्ड्ज ड्ड्ज्ञ

ड्ड्झ ड्ड्ञ ड्ड्ब ड्ड्ब्न ड्ड्ब्य ड्ड्ब्र ड्ड्ब्ल ड्ड्भ ड्ड्म ड्ड्य ड्ड्र ड्ड्ल ड्ड्व ड्ड्श ड्ड्श्य ड्ड्श्र ड्ड्ष ड्ड्ष्य ड्ड्ष्र ड्ड्स ड्ड्स्य ड्ड्स्र ड्ड्ह ड्ड्ह्य ड्ड्ह्र ड्ह ड्ह्ण ड्ह्न ड्ह्म

ड्ह्य ड्ह्य ड्ह्र ड्ह्य ड्ह्ल ड्ह्व

ढ्क ढ्क्ष ढ्ख ढ्ग ढ्घ ढ्ङ ढ्ङ्य ढ्ङ्र ढ्ङ्व ढ्च ढ्छ ढ्ज ढ्ज्ञ ढ्झ ढ्ञ ढ्ञ्ज ढ्ञ्र ढ्ट ढ्ट्य ढ्ट्र ढ्ट्व ढ्ठ ढ्ठ्य ढ्ठ्र ढ्ठ्व ढ्ड ढ्ड्य ढ्ड्र ढ्ड्व ढ्ढ ढ्ढ्य ढ्ढ्र ढ्ढ्व ढ्ण ढ्ण्य ढ्ण्र ढ्ण्व ढ्त

ढ्थ ढ्द ढ्ध ढ्न ढ्न्न ढ्न्य ढ्न्र ढ्न्व ढ्प ढ्प्य ढ्प्र ढ्फ ढ्ब ढ्ब्न ढ्ब्य ढ्ब्र ढ्ब्ल ढ्भ ढ्म ढ्य्च ढ्य्ज ढ्य्ज्ञ ढ्य्झ ढ्श्न ढ्य्ब ढ्म्म ढ्म्य ढ्श्र ढ्य्ल ढ्य्व ढ्य ढ्य्न

ढ्य्र ढ्र ढ्श्म ढ्र्य ढ्र्व ढ्ल ढ्ल्म ढ्ल्य ढ्ल्र ढ्ळ ढ्व ढ्व्न ढ्व्य ढ्व्र ढ्व्ल ढ्श ढ्श्य ढ्श्र ढ्ष ढ्ष्य ढ्ष्र ढ्स ढ्स्य ढ्स्र ढ्ह ढ्ह्य ढ्ह्र

ण्क ण्क्ष ण्ख ण्ग ण्घ ण्ङ ण्च ण्छ ण्ज ण्ज्ञ ण्झ ण्ञ ण्ट ण्ठ ण्ड ण्ढ ण्ण ण्त ण्थ ण्द ण्ध ण्न ण्प ण्फ ण्ब ण्भ

ण्म ण्य ण्र ण्ल ण्ळ ण्व ण्श ण्ष ण्स ण्ह

त्क त्क्क त्क्क त्त त्क्र त्क्ष त्ख त्ग त्घ त्ङ त्च त्च्क त्च्र त्च्ब त्च्भ त्च्म त्च्य त्च्र त्च्व त्च्श त्छ त्ज त्ज्ञ त्झ त्ञ त्ञ्र त्ञ्ब त्ञ्र

त्ञ्ल त्ञ्व त्ट त्ठ त्ड त्ढ त्ण त्त त्त्च त्त्ज त्त्ज्ञ त्त्ञ त्त्त त्त्न त्त्ब त्त्र त्त्ल त्त्व त्थ त्द त्ध त्न त्प त्फ त्ब त्भ त्म त्य त्र त्ल

त्ळ त्व त्श त्ष त्स त्ह

थ्क थ्क्ष थ्ख थ्ग थ्घ थ्ङ थ्च थ्छ थ्ज थ्ज्ञ थ्झ थ्ञ थ्ञ्ञ थ्ञ्र थ्ट थ्ठ थ्ड थ्ढ थ्ण थ्त थ्थ थ्द थ्ध थ्न थ्प थ्फ थ्ब थ्भ थ्म थ्य

थ्र थ्ल थ्ळ थ्व थ्श थ्ष थ्स थ्ह

द्क द्क्ष द्ख्व द्ग द्ग्ड द्ग्ध द्ग्र द्ग्य द्घ द्घ्न द्घ्य द्ग्र द्ग्य द्ग्ल द्ग्घ द्घ्य द्ग्ह द्ड द्ड्ड द्ड्ढ द्ड्र द्ड्य द्ढ द्ढ्न द्ढ्य द्ढ्र द्ढ्य द्ड्ल द्ढ द्ढ्य द्ङ द्ङ्य द्ङ्र द्ङ्व

द्छ द्छ्छ द्ज द्ज्र द्ज्छ द्ज्ञ द्ज्ज द्ज्झ द्झ द्झ द्ज्ड द्ज्ढ द्ज्ण द्ज्द द्ज्ध द्ज्न द्ज्ब द्ज्भ द्ज्म द्ज्य द्ज्र द्ज्ल द्ज्व द्ज्ह द्झ द्ञ द्ट द्ट्य द्ट्र द्ट्व द्ठ द्ठ्य द्ठ्र

द्ठ्व द्ड द्ड्य द्ड्र द्ड्व द्ढ द्ढ्य द्ढ्र द्ढ्व द्ण द्ण्य द्ण्र द्त द्त्य द्त्र द्थ द्द द्द्र द्द्ढ द्द्ध द्द्र द्द्य द्द्ध द्द्ध्र द्द्म द्द्य द्द्र द्द्य द्द्ल द्द्व द्द्य द्ध द्ध्र द्ध्य द्ध्ढ द्ध्न

द्ध्य द्ध्र द्ध्य द्ध्ल द्ध्ढ द्ध्य द्न द्न द्न्ढ द्न्ङ द्न्द द्न्ठ द्न्र द्न्ढ द्न्ढ द्न्म द्न्य द्न्र द्न्य द्न्ल द्न्ढ द्न्य द्प द्प्र द्फ द्ब द्ब्र द्ब्य द्भ द्भ्य द्भ्र द्भ्य द्भ्ल द्म

द्म्र द्म्न द्म्ब द्म्म द्म्य द्म्र द्म्य द्म्ल द्म्ब द्म्य द्म द्म्च द्म्ज द्म्ज्ञ द्म्ञ द्म्न द्म्ब द्म्र द्म्ल द्म्व द्य द्य्न द्य्र द्र द्व द्व्न द्व्य द्व्र द्व्य द्ल द्ळ द्व

द्व्र द्व्य द्व्न द्व्य द्व्र द्व्य द्व्ल द्श द्ष द्ष्र द्स द्ह द्ह्य द्ह्ल

ध्क ध्क्ष ध्ख ध्ग ध्घ ध्ङ ध्च ध्छ ध्ज ध्ज्ञ ध्झ ध्ञ ध्ञ्ञ ध्ञ्ब ध्ञ्र ध्ञ्ल ध्ञ्व ध्ट ध्ठ ध्ड ध्ढ ध्ण ध्त ध्थ ध्द ध्ध ध्न ध्प ध्फ ध्ब

ध्भ ध्म ध्य ध्र ध्ल ध्ळ ध्व ध्श ध्ष ध्स ध्ह

न्क न्क्क न्क्क न्त न्क्र न्क्ष न्क्ष न्ख न्ग न्घ न्ङ न्च न्च्क न्च्र न्च्ब न्च्भ न्च्म न्च्य न्च्र न्च्व न्च्श न्छ न्ज न्ज्ञ न्ज्ञ न्ञ्र न्ञ्ब न्ञ्भ न्ञ्म

न्ञ्र न्ञ्ल न्ञ्व न्ञ्श न्झ न्ञ न्ञ्ञ न्ञ्ब न्ञ्र न्ञ्ल न्ञ्व न्ट न्ठ न्ड न्ढ न्ण न्त न्त्च न्त्ज न्त्ज्ञ न्त्ञ न्त्त न्त्न न्त्ब न्त्र न्त्ल न्त्व न्थ न्द

न्ध न्न न्प न्फ न्ब न्भ न्म न्य न्र न्न्च न्न्ज न्न्ज्ञ न्न्ञ न्न्न न्ल न्ळ न्व न्श न्ष न्स न्ह

प्क प्च्क प्क्क प्क्क प्त प्क्र प्क्ष प्ख प्ग प्घ प्ङ प्च प्च्क प्च्र प्च्ब प्च्भ प्च्र प्च्व प्च्श प्छ प्ज प्ज्ञ प्झ प्ञ प्ञ्ञ प्ञ्ब प्ञ्र प्ञ्ल प्ञ्व प्ट

प्ट्क प्ट्च प्ट्छ प्ट्ज प्ट्ट प्ट्ठ प्ट्ण प्ट्त प्ट्न प्ट्प प्ट्फ प्ट्ब प्ट्म प्ट्स प्ट्र प्ट्ल प्ट्व प्ट्ष प्ठ प्ठ्क प्ठ्च प्ठ्छ प्ठ्ज प्ठ्ट प्ठ्ठ प्ठ्ण प्ठ्त प्ठ्न प्ठ्प प्ठ्फ प्ठ्ब प्ठ्म प्ठ्स प्ठ्र प्ठ्ल प्ठ्व प्ठ्ष

प्ड प्ढ प्ढ्स प्ढ्र प्ढ्व प्ण प्त प्त्स प्त्न प्त्ब प्त्र प्त्व प्थ प्द प्ध प्न प्प प्फ प्ब प्भ प्म प्य प्र प्ल प्ळ प्व प्श प्ष प्स प्ह प्क्क

फ्क्ष फ्ख फ्ग फ्घ फ्ङ फ्च फ्छ फ्ज फ्ज्ञ फ्झ फ्ञ फ्ञ्च फ्ञ्छ फ्ञ्ज फ्ञ्झ फ्ञ्व फ्ट फ्ठ फ्ड फ्ढ फ्ण फ्त फ्थ फ्द फ्ध फ्न

फ्न्म फ्न्य फ्न्र फ्प फ्फ फ्ब फ्ब्न फ्ब्म फ्ब्य फ्ब्र फ्भ फ्म फ्म्च फ्म्ज फ्म्ज्ञ फ्म्ञ फ्म्न फ्म्ब फ्म्र फ्म्ल फ्म्व फ्य फ्य्न फ्य्र फ्य्ल फ्र फ्ल्क

फ्ल्ङ फ्ल्च फ्ल्ज फ्ल्ज्ञ फ्ल्ञ फ्ल्ड फ्ल्न फ्ल्ब फ्र्म फ्र्य फ्ल्ल फ्ल्व फ्ल फ्ल्म फ्ल्य फ्ळ फ्व फ्व्न फ्व्म फ्व्य फ्व्र फ्श फ्ष फ्स फ्ह

ब्क ब्क्ष ब्ख ब्ग ब्घ ब्ङ ब्च ब्छ ब्ज ब्ज्ञ ब्ञ ब्ञ्च ब्ञ्छ ब्ञ्ज ब्ञ्झ ब्झ ब्ञ ब्ञ्ज ब्ञ्र ब्ट ब्ठ ब्ड ब्ढ ब्ण ब्त ब्थ ब्द ब्ध ब्न ब्प ब्फ ब्ब

ब्ब्न ब्ब्र ब्भ ब्म ब्य ब्र ब्ल्च ब्ल्ज ब्ल्ज्ञ ब्ल्ञ ब्ल्न ब्ल्ब ब्ल्व ब्ल ब्ळ ब्व ब्व्न ब्व्र ब्श ब्ष ब्स ब्ह

भ्क भ्क्ष भ्ख भ्ग भ्घ भ्ङ भ्च भ्छ भ्ज भ्ज्ञ भ्झ भ्ञ भ्ञ्ज भ्ञ्च भ्ञ्र भ्ञ्ल भ्ञ्व भ्ट भ्ठ भ्ड भ्ढ भ्ण भ्त भ्थ भ्द भ्ध भ्न भ्प भ्फ

भ्ब भ्भ भ्म भ्य भ्र भ्ल भ्ळ भ्व भ्श भ्ष भ्स भ्ह म्क म्क्ु म्क्क म्क्त म्क्र म्क्ष म्ख म्ग म्घ म्ङ म्च म्छ्क म्ज्ञ म्छ्र म्छ्भ म्छ्म

म्छ्य म्ज्र म्छ्ल म्छ्श म्छ म्ज म्ज्ञ म्ज्र म्ज्ब म्ज्र म्ज्व म्ज्श म्झ म्ञ म्ञ्ज म्ञ्ब म्ञ्र म्ञ्ल म्ञ्व म्ट म्ठ म्ड म्ढ म्ण म्त म्थ म्द म्ध म्न म्प

म्फ म्ब म्भ म्म म्य म्र म्ल म्ळ म्व म्श म्ष म्स म्ह

य्क य्क्ष य्ख य्ग य्घ य्ङ य्च य्छ य्ज य्ज्ञ य्झ य्ञ य्ञ्ज य्ञ्ब य्ञ्र य्ञ्ल य्ञ्व य्ट य्ठ य्ड य्ढ य्ण य्त य्थ य्द य्ध य्न य्प य्फ य्ब

य्भ य्म य्य य्र य्ल य्ळ य्व य्श य्ष य्स य्ह

र्क र्क्ष र्ख र्ग र्घ र्ङ र्च र्छ र्ज र्ज्ञ र्झ र्ञ र्ट र्ठ र्ड र्ढ र्ण र्त र्थ र्द र्ध र्न र्प र्फ र्ब र्भ र्म र्य र्र र्ल र्ळ र्व र्श र्ष र्स

र्ह

ल्क ल्क्ु ल्क्क ल्क्त ल्क्र ल्क्ष ल्ख ल्ग ल्घ ल्ङ ल्च ल्छ्क ल्छ्न ल्छ्ब ल्छ्भ ल्छ्म ल्छ्य ल्छ्र ल्छ्व ल्छ्श ल्छ ल्ज ल्ज्ञ ल्ज्ञ ल्ज्र ल्ज्ब

ल्ज्भ ल्ज्म ल्ज्र ल्ज्ल ल्ज्व ल्ज्श ल्झ ल्ञ ल्ञ्ज ल्ञ्ब ल्ञ्र ल्ञ्ल ल्ञ्व ल्ट ल्ठ ल्ड ल्ढ ल्ण ल्त ल्थ ल्द ल्ध ल्न ल्प ल्फ ल्ब

ल्भ ल्म ल्य ल्र ल्ल ल्ळ ल्व ल्श ल्ष ल्स ल्ह

ळ्क ळ्क्ष ळ्ख ळ्ग ळ्घ ळ्ङ ळ्च ळ्छ ळ्ज ळ्ज्ञ ळ्झ ळ्ञ ळ्ट ळ्ठ ळ्ड ळ्ढ ळ्ण ळ्त ळ्थ ळ्द ळ्ध ळ्न ळ्प ळ्फ

ळ्ब ळ्भ ळ्म ळ्य ळ्र ळ्ल ळ्ळ ळ्व ळ्श ळ्ष ळ्स ळ्ह

व्क व्क्ष व्ख व्ग व्घ व्ङ व्च व्छ व्ज व्ज्ञ व्ज्ञ व्ज्न व्ज्ब व्ज्र व्ज्ल व्ज्श व्झ व्ञ व्ञ्न व्ञ्र व्ट व्ठ व्ड व्ढ व्ण व्त व्थ व्द व्ध व्न व्प व्फ

व्ब व्ब्न व्ब्र व्भ व्म व्य व्र व्च व्ज व्ज्ञ व्ञ व्न व्ब व्व व्ल व्ळ व्व व्व्न व्व्र व्श व्ष व्स व्ह

श्क श्क्ष श्ख श्ग श्घ श्ङ श्च श्च्क श्च्ङ श्च्च श्च्ञ श्च्न श्च्ब श्च्ब श्च्भ श्च्म श्च्य श्च्र श्च्ल श्च्व श्च्श श्छ श्ज श्ज्ञ श्झ श्ञ श्ञ्न श्ञ्ब

श्ञ्र श्ञ्ल श्ञ्व श्ट श्ठ श्ड श्ढ श्ण श्त श्थ श्द श्ध श्न श्प श्फ श्ब श्ब्न श्ब्र श्भ श्म श्य श्र श्ल श्ळ श्व श्व्न श्व्र श्श्र श्ष

श्स श्ह

ष्क ष्क्क ष्क्ङ ष्क्त ष्क्र ष्क्ष ष्ख ष्ग ष्घ ष्ङ ष्च ष्छ ष्ज ष्ज्ञ ष्झ ष्ञ ष्ञ्न ष्ञ्ब ष्ञ्र ष्ञ्ल ष्ञ्व ष्ट ष्ट्क ष्ट्च ष्ट्छ ष्ट्ञ ष्ट्ट ष्ट्ठ ष्ट्ण ष्ट्त ष्ट्न ष्ट्प

ष्ट्फ ष्ट्ब ष्ट्म ष्ट्य ष्ट्र ष्ट्ल ष्ट्व ष्ट्ष ष्ठ ष्ठ्क ष्ठ्च ष्ठ्छ ष्ठ्ञ ष्ठ्ट ष्ठ्ठ ष्ठ्ण ष्ठ्त ष्ठ्न ष्ठ्प ष्ठ्फ ष्ठ्ब ष्ठ्म ष्ठ्य ष्ठ्र ष्ठ्ल ष्ठ्व ष्ठ्ष ष्ड ष्ढ ष्ढ्य ष्ढ्र ष्ढ्व ष्ण ष्त ष्त्त ष्त्न

ष्त्ब ष्त्र ष्त्व ष्थ ष्द ष्ध ष्न ष्प ष्फ ष्ब ष्भ ष्म ष्य ष्र ष्ल ष्ळ ष्व ष्श ष्ष ष्स ष्ह

स्क स्क्क स्क्ङ स्क्त स्क्र स्क्ष स्ख स्ग स्घ स्ङ स्च स्च्क स्च्न स्च्ब स्च्भ स्च्म स्च्य स्च्र स्च्व स्च्श स्छ स्ज स्ज्ञ स्ज्न स्ज्ब

स्ज्र स्ज्ल स्ज्व स्ज्श स्झ स्ञ स्ञ्न स्ञ्ब स्ञ्र स्ञ्ल स्ञ्व स्ट स्ठ स्ड स्ढ स्ण स्त स्थ स्द स्ध स्न स्प स्फ स्ब स्भ स्म

स्य स्र स्ल स्ळ स्व स्श स्ष स्स स्ह

ह्क ह्क्ष ह्ख ह्ग ह्घ ह्ङ ह्च ह्छ ह्ज ह्ज्ञ ह्ज्ञ ह्ज्न ह्ज्ब ह्ज्भ ह्ज्म ह्ज्र ह्ज्ल ह्ज्व ह्झ ह्ञ ह्ञ्न ह्ञ्र ह्ट ह्ठ ह्ड ह्ढ ह्ण ह्ण्म

ह्ण्य ह्त ह्थ ह्द ह्ध ह्न ह्प ह्फ ह्ब ह्ब्म ह्ब्य ह्भ ह्म ह्म्च ह्म्ज ह्म्ज्ञ ह्म्ञ ह्म्न ह्म्ब ह्म्र ह्म्ल ह्म्व ह्य ह्य्र ह्र ह्र्म ह्र्य ह्ल ह्ल्म

ह्ल्य ह्ळ ह्व ह्व्म ह्व्य ह्श ह्ष ह्स ह्ह

वैदिक की-बोर्ड ले-आउट

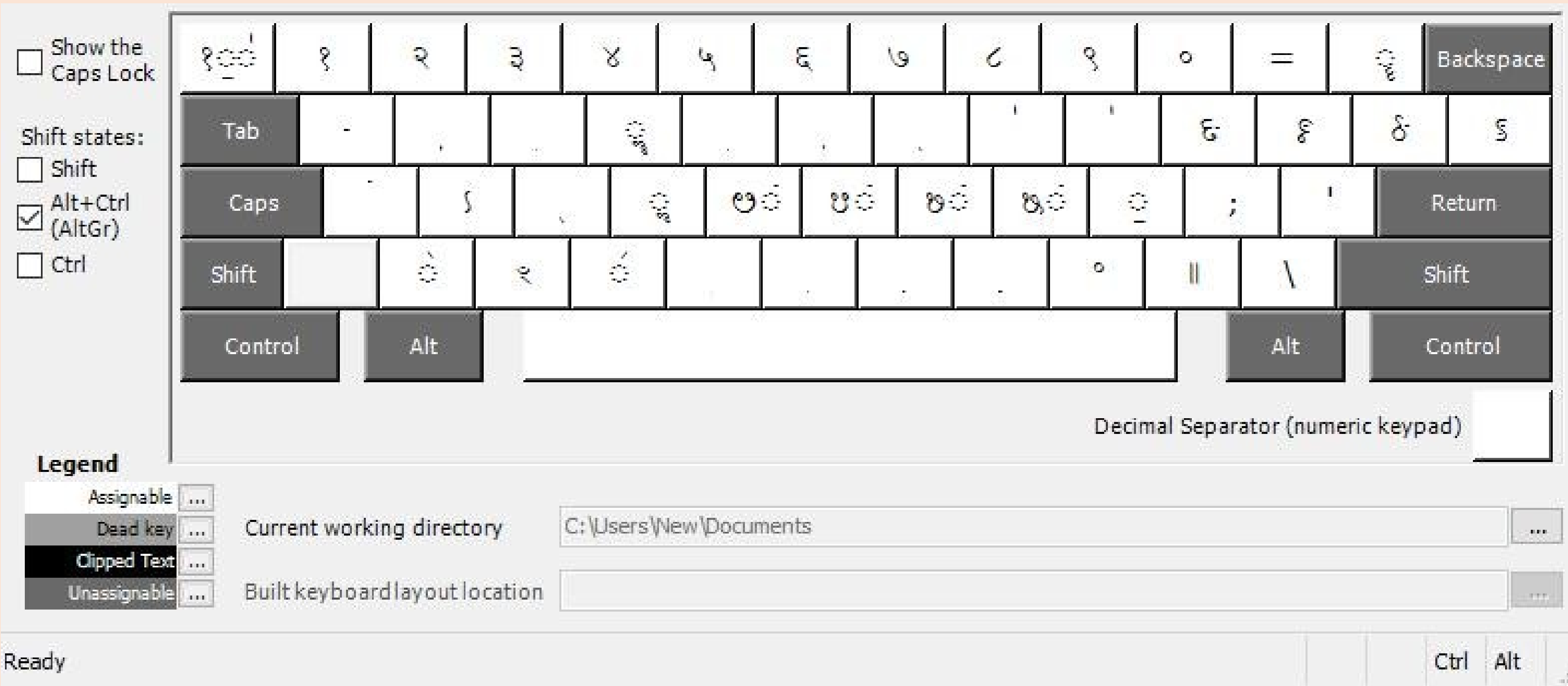
Key	N	S	Alt	AltS	Key	N	S	Alt	AltS	Key	N	S	Alt	AltS	Key	N	S	Alt	AltS
`	ॐ	卐	१	३	Q	◌ौ	औ	क᳙	क÷										
1	1	!	१	◌꣡	W	◌ै	ऐ	क᳕	क᳓	A	◌ो	ओ	क᳜	क꣐					
2	2	ˇ	२	◌꣢	E	◌ा	आ	क᳖	क᳔	S	◌े	ए	क᳟	क꣑	Z	ꣳ	ꣴ	के॑	ꣲ
3	3	¯	३	◌꣣	R	◌ी	ई	कॄ	ॡ	D	◌᳭	अ	क᳭	◌꣮	X	◌ं	◌ं	᳚	᳚
4	4	₹	४	◌꣤	T	◌ू	ऊ	कृ	क᳗	F	ि◌	इ	कॢ	ऌ	C	म	ण	र्क	ꣳ
5	5	ज्ञ	५	◌꣥	Y	ब	भ	कु	क᳘	G	◌ु	उ	क᳦	◌꣯	V	न	।◌	क᳝	◌꣰
6	6	त्र	६	◌꣦	U	ह	ङ	क्र	क᳙	H	प	फ	क᳧	◌꣫	B	व	◌᳟	क़	◌꣱
7	7	क्ष	७	◌꣧	I	ग	घ	क᳐	क᳚	J	र	ळ	क᳨	◌꣬	N	ल	ळ	क᳞	◌̂
8	8	श्र	८	◌꣨	O	द	ध	क᳑	क᳒	K	क	ख	कᳩ	◌꣭	M	स	श	क᳟	◌᳐
9	9	(	९	◌꣩	P	ज	झ	ꣵ	″	L	त	थ	क᳜	कं	<	,	ष	°	◌ऽ
0	0	)	०	◌꣠	{	ड	ढ	ꣶ	[	:	च	छ	;	:	>	.	।	॥	ऽ
-	-	◌ः	=	_	}	◌़	ञ	ꣷ	]	“	ट	ठ	‘	“	?	य	ष	\	?
=	◌ृ	ऋ	◌ॄ	ॠ	ǀ	◌ॉ	ऑ	ऽ	≥										

Note— *की-बोर्ड में 4 स्थितियाँ प्रयोग की गई हैं— 1. Normal Key Board 2. Shift Key Board, 3. दाँए हाथ वाला Alt Key Board, 4. दाँए हाथ वाला Alt+Shift Key Board (इंस्टाल करने पर नीचे ट्रे में सं दिखाई देगा)

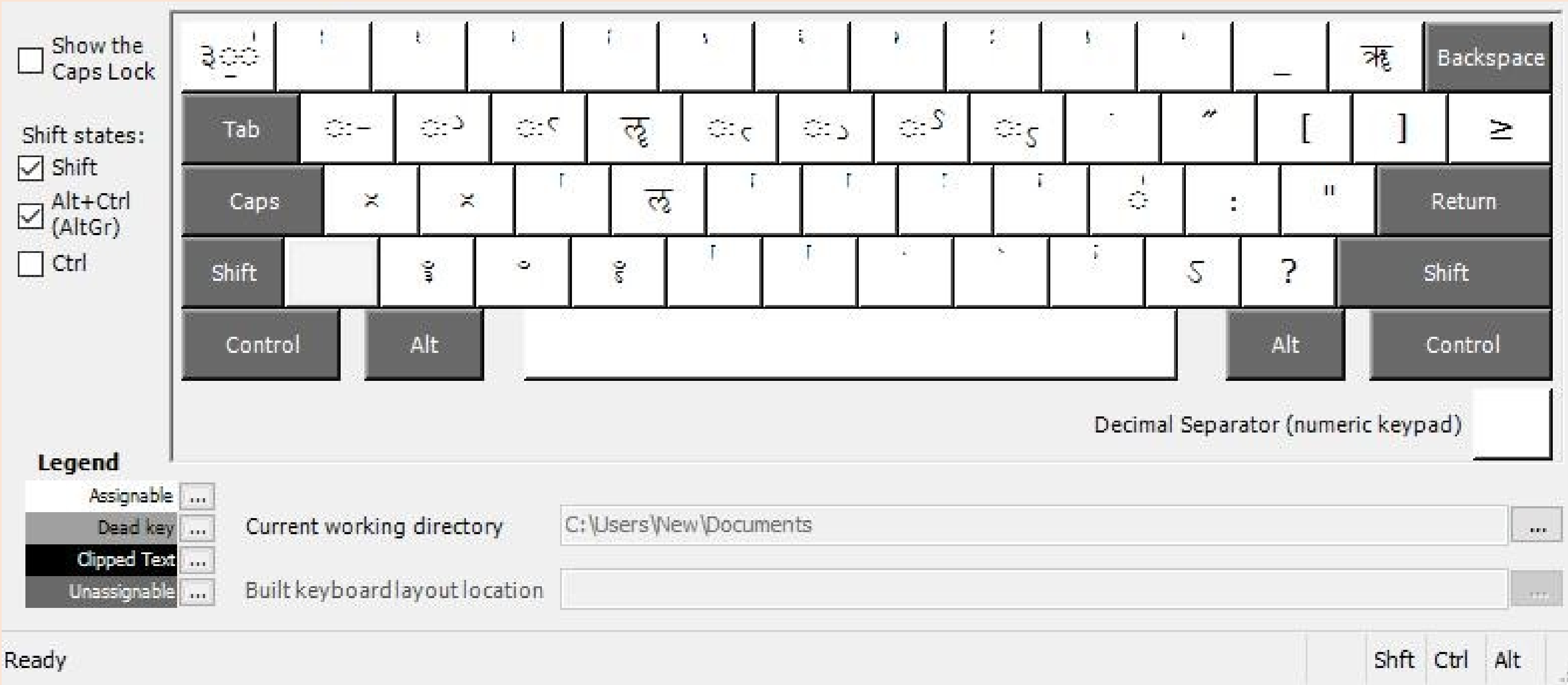
** MS Word में वैदिक यूनिकोड के कुछ चिह्नों को टाइप करने में समस्या आती है, अभी तक Sanskrit Text, Nirmala UI तथा Siddhanta फोन्ट ही श्रेष्ठ हैं। — डॉ॰ नरेश कुमार धीमान्, प्रिंसिपल, दोआबा कॉलेज, जालन्धर (मो॰—97805-18504)


Show the Caps Lock
Shift states:
Shift
Alt+Ctrl (AltGr)
Ctrl
ॐ
1
2
3
4
5
6
7
8
9
0
-
Backspace
Tab
ब
ह
ग
द
ज
ड
Caps
प
र
क
त
च
ट
Return
Shift
म
न
व
ल
स
,
.
य
Shift
Control
Alt
SP
Alt
Control
Decimal Separator (numeric keypad)
.
Legend
Assignable
Dead key
Clipped Text
Unassignable
Current working directory
C:\Users\New\Documents
Built keyboard layout location
Ready


Show the Caps Lock
Shift states:
Shift
Alt+Ctrl (AltGr)
Ctrl
卐 ! ॅ ॄ र ज्ञ त्र क्ष श्र ( ) ः ऋ
Backspace
Tab
औ ऐ आ ई ऊ भ ङ घ ध झ ढ ञ ऑ
Caps
ओ ए अ इ उ फ ऌ ख थ छ ठ
Return
Shift
ं ण ळ श ष । य
Shift
Control
Alt
S P
Alt
Control
Decimal Separator (numeric keypad)
Legend
Assignable
Dead key
Clipped Text
Unassignable
Current working directory
C:\Users\New\Documents
Built keyboard layout location
Ready
Shft



Show the Caps Lock
Shift states:
Shift
Alt+Ctrl (AltGr)
Ctrl
Backspace
Tab
Caps
Return
Shift
Shift
Control
Alt
Alt
Control
Decimal Separator (numeric keypad)
Legend
Assignable
Dead key
Clipped Text
Unassignable
Current working directory
C:\Users\New\Documents
Built keyboard layout location
Ready
Ctrl
Alt



Show the Caps Lock
Shift states:
Shift
Alt+Ctrl (AltGr)
Ctrl
Backspace
Tab
Caps
Return
Shift
Shift
Control
Alt
Alt
Control
Decimal Separator (numeric keypad)
Legend
Assignable
Dead key
Clipped Text
Unassignable
Current working directory
C:\Users\New\Documents
Built keyboard layout location
Ready
Shft
Ctrl
Alt

iR;d Vd.k e nk idkj d dthiVy gkr g ,d dk jkeu dthiVy dgr g tk iR;{k nf"Vikr vkrk g
,d dthiVy odfYid gkrk g tk fd dthiVy d nk; gkFk ij fn; g, lkf[;d Hkkx ftle 0 l 9
rd l[;k gkrh g mld ek/;e l i;kx fd;k tkrk gA

देवनागरी के लिए रमिंगटन अथवा टाईपराईटर प्रारुप प्रत्यक्ष कुंजीपटल का प्रदर्शन साधारण अवस्था में



noukxjh d fy, jfexVu vFkok VkbijkbVj i#i iR;{k dthiVy dk in'ku f'k¶V dth d lkFk

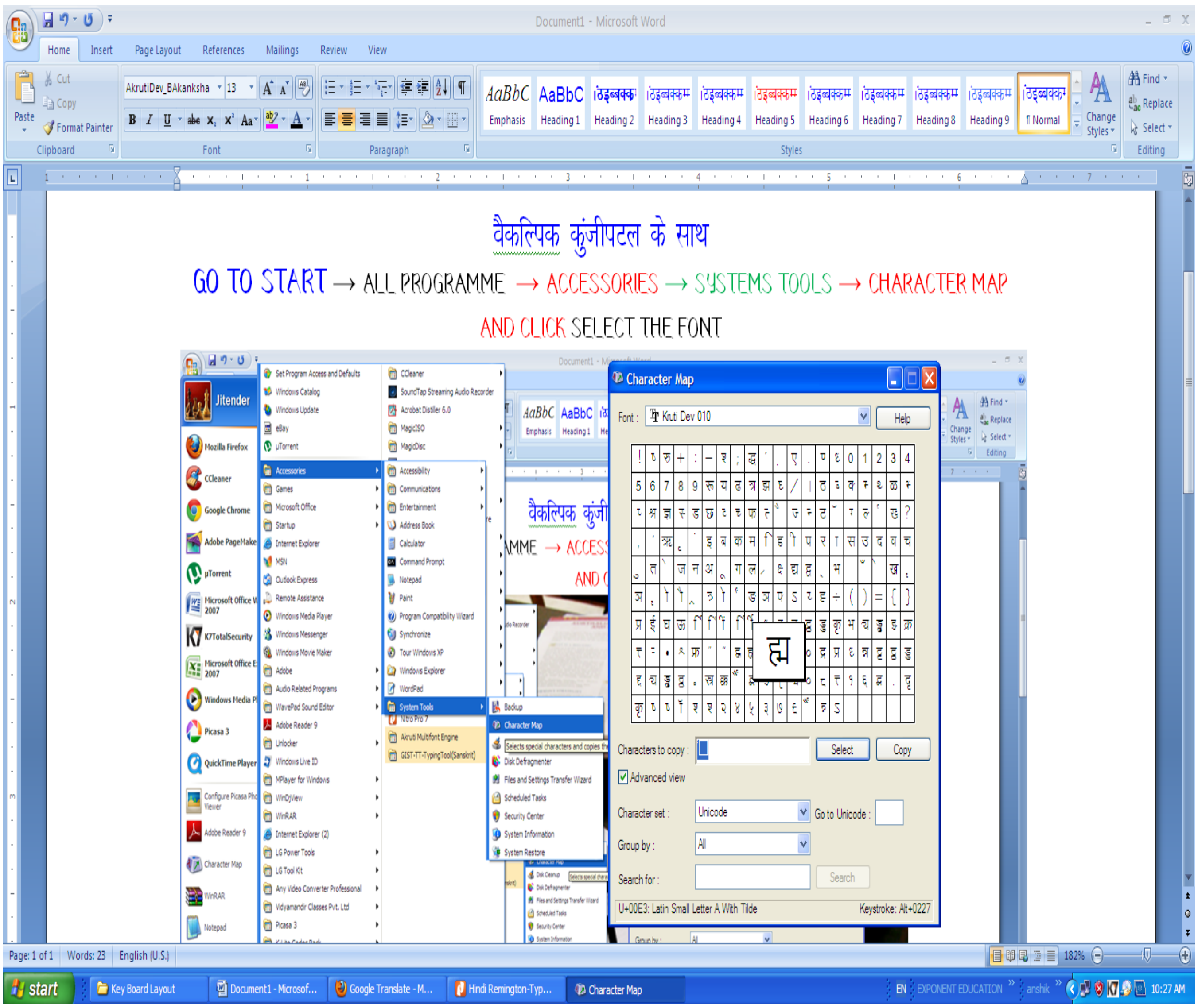




वैकल्पिक कुंजीपटल के साथ कार्य करने का पद्धति

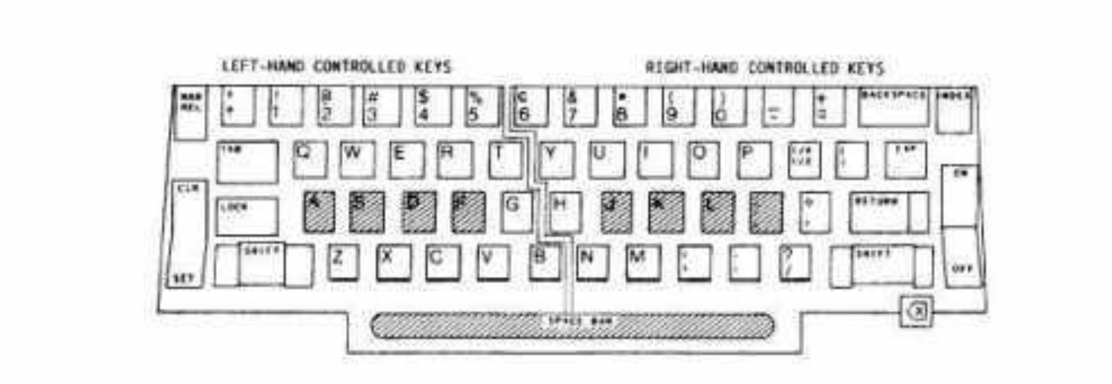
GO TO START → ALL PROGRAMME → ACCESSORIES → SYSTEMS TOOLS → CHARACTER MAP AND CLICK तो वैकल्पिक कुंजीपटल खुल जायेगा आप फॉंट में जाकर फॉंट चुन लें जिसमें आप कार्य कर रहे हैं। उसमें आपको कुछ अक्षर दृष्टिपात आयेंगे उनमें से कोई भी एक अक्षर को चुनने के उपरान्त उसके नीचे कोने में एक संख्या (Alt+0227) जैसा की आप नीचे चित्र में देख रहे हैं दृष्टिपात करेंगें। उस संख्या को कुंजीपटल में बांये हाथ से बांये हाथ की दिशा में दी Alt कुंजी के साथ दबाने पर वह अक्षर आकृति लिखने वाले स्थान पर ऊभर जायेगी। उदाहरण के लिए ब्रह्म में 'ब्र' प्रत्यक्ष कुंजीपटल के द्वारा लिपिबद्ध किया गया है व 'ह्म' वैकल्पिक कुंजीपटल के साथ।

टिप्पणी- यह पद्धति सभी फॉंट अथवा लिपि पर समान रुप से समान रुप से लागू होती है



अंगुलियों के अभ्यास के लिए

टंकण में पहला कदम की बोर्ड रहा है चित्र एक की बोर्ड से पता चलता है चित्रण प्रयोजनों के लिए यह दो वर्गों में बांटा गया है, बाएँ हाथ अनुभाग अपने बाएँ हाथ के द्वारा नियंत्रित कुंजी का प्रतिनिधित्व करता है , और अपने दाहिने हाथ से दाएँ हाथ अनुभाग नियंत्रित कुंजी का प्रतिनिधित्व करता है.



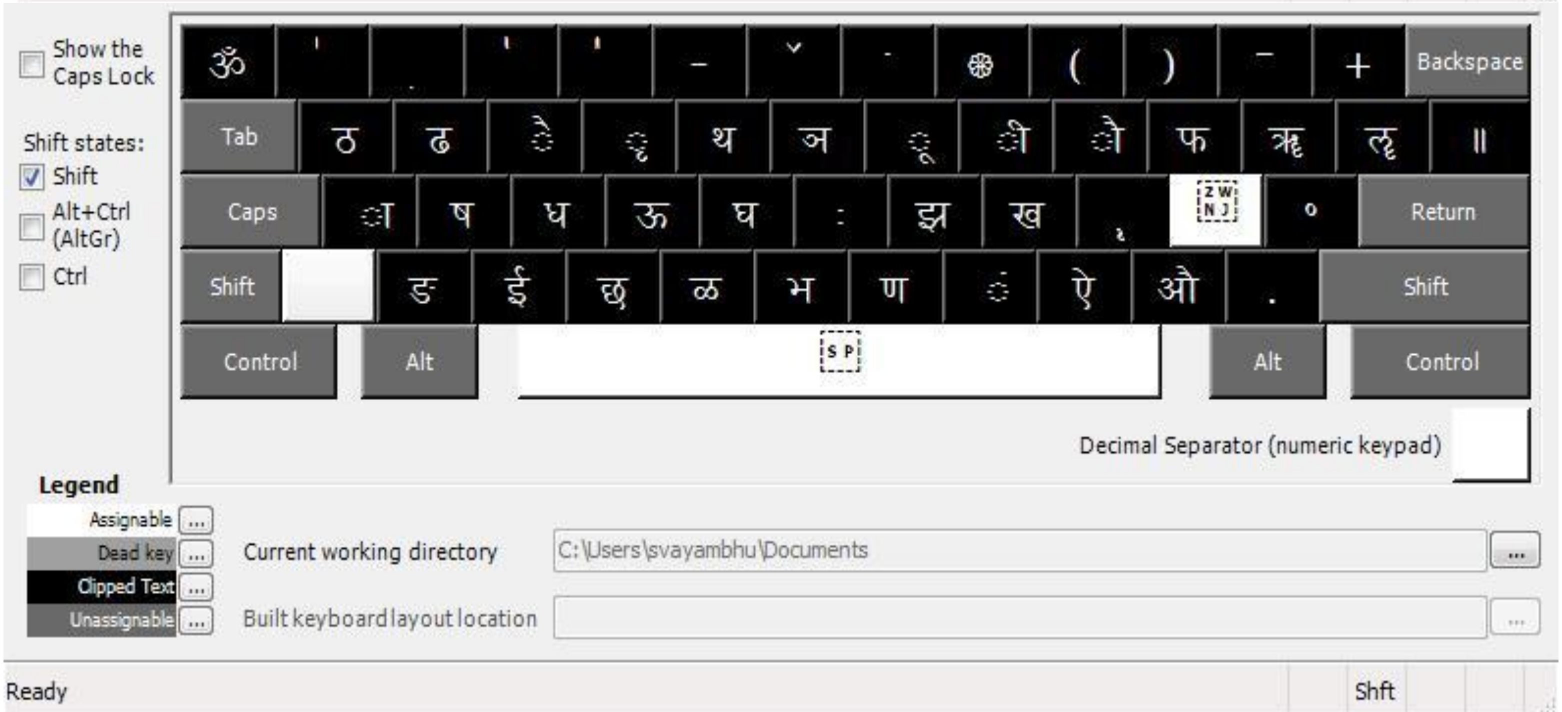


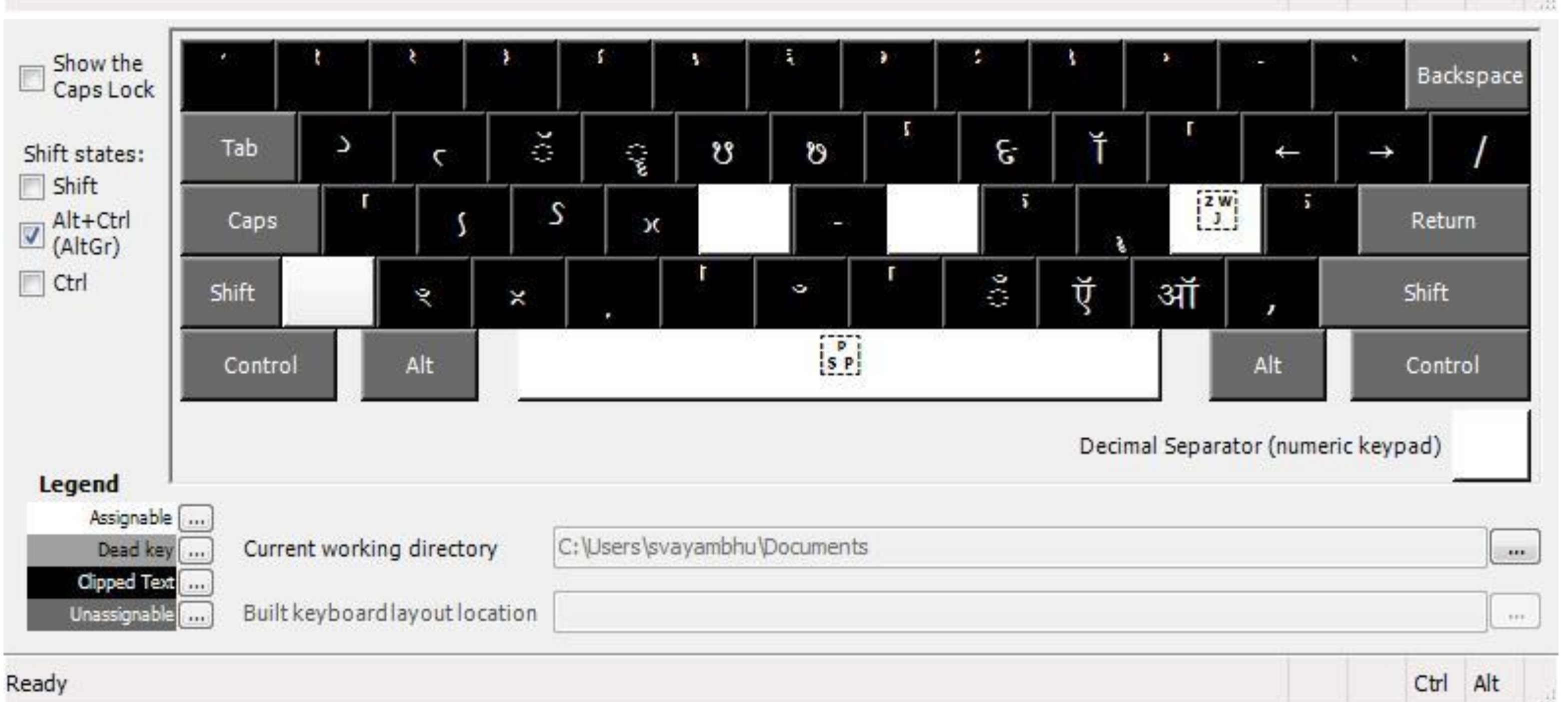
आंगल वह हिन्दी भाषा का संयुक्त कुंजीपटल प्रदर्शन

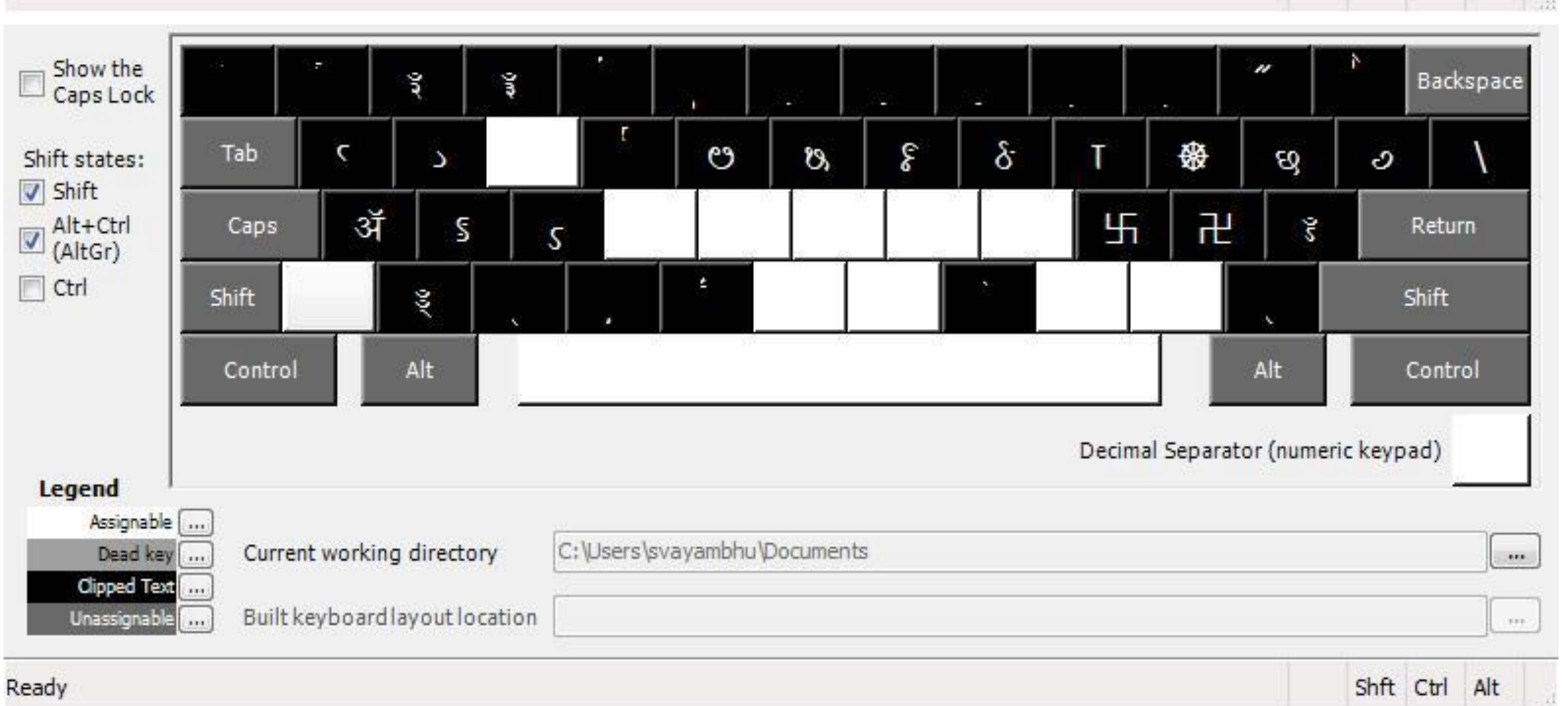


सिद्धान्ता वैदिक-कुञ्जी पटल प्रदर्शन



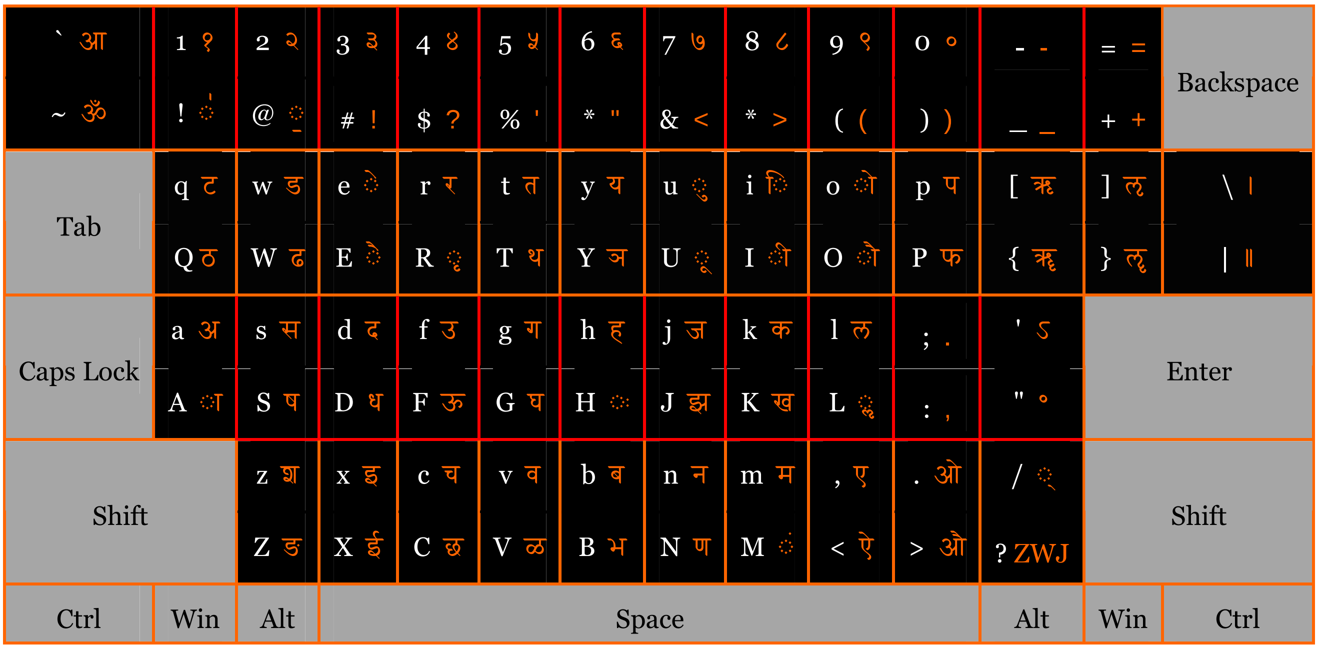




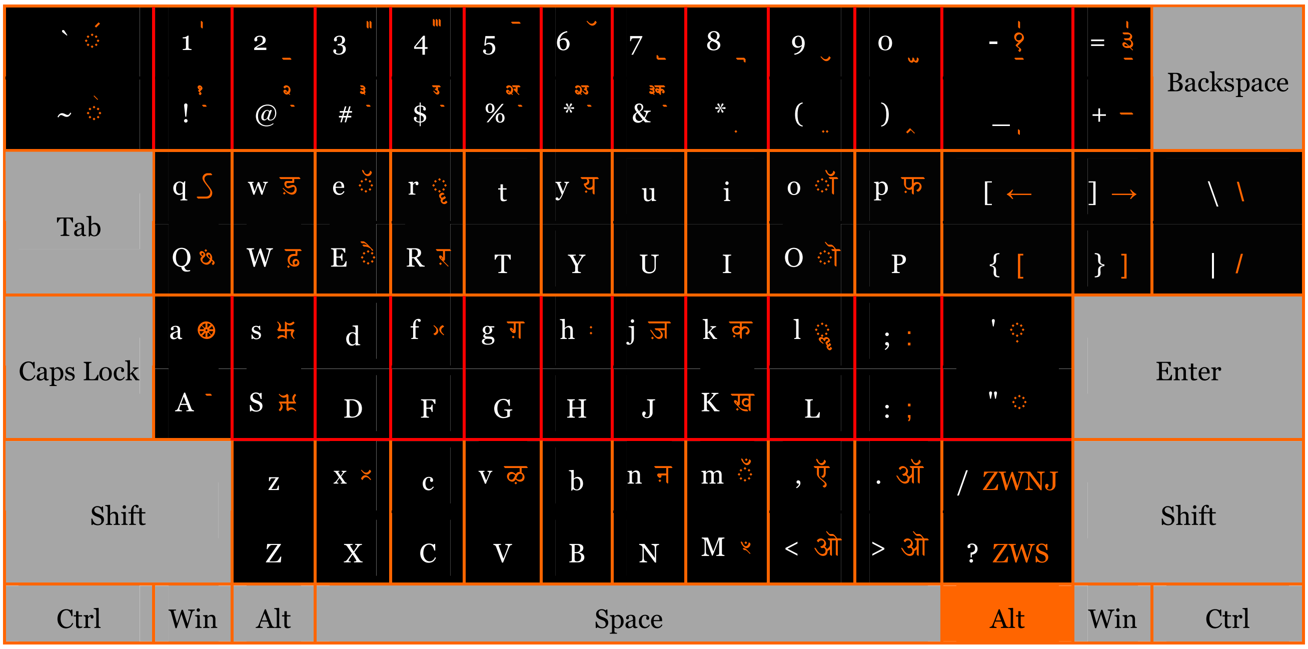


Chandas Devanāgarī IME Help

१ ॥ Keyboard Layout



Right Alt +



२ ॥ Installing

1) First make sure that support of Devanāgarī Script is enabled in Your System (this can be done only in Windows 2000, Windows XP and Windows 2003). To do this go to Control Panel > Language Settings > Languages > and click "Enable support of complex and left to right scripts"

2) Unpack chandas-ime.zip file and click on Chandas.msi.

3) Then go to Control Panel > Language Settings > Languages > Languages and Text Input Services > Add > and select as language Sanskrit and Chandas Devanāgarī as IME.

३ ॥ Typing

Devanāgarī is syllabic script. There are 4 main rules of typing:

1 Consonant-signs include vowel अ (a). To type a consonant without next vowel (*halanta*) use sign *virāma* -

क ka । ग ga । च ca ॥

क + ् → क् k । ग + ् → ग् g । च + ् → च् c ॥

2 Vowels in the beginning of a word and vowels after consonants have separate signs. Vowels after consonants (*mātrā*s) must be typed after consonant-signs.

आ ā । उ u । इ i ॥

क + ा → का kā ॥ क + ु → कु ku ॥ क + ि → कि ki ॥

3 Consonants before consonants must be typed with *virāma*. Ligature-signs (*saṃyoga*) are "constructed" automatically by Operational System.

क + ् + ष → क्ष kṣa। क + ् + त → क्त kta। ङ + ् + क + ् + त + ् + य → ङ्क्त्य ṅktya॥

वेब साईड पर लिखने या यूनिकोड के प्रयोग के लिए वेब साईड पर जायें

1. http://www.svayambhava.org/
2. कृपया निम्न DOWNLOAD कर लें। (यह संगणक अन्तरजाल पर निशुल्क उपलब्ध है।)
3. Siddhanta Variations Fonts Vaidika-Devanagari Input Method and Keyboard Layout
4. Vaidika ZIP फोल्डर को दो बार टिक-टिक (Click) करें।
5. फिर Vaidika फोल्डर को दो बार टिक-टिक (Click) करें।
6. यहां पर आपको Siddhanta Font के कुञ्जी पटल (Keyboard) का चित्र भी मिलेगा।
7. Setup.exe पर दो बार टिक-टिक (Click) करके अपने कमप्यूटर में डाल लें।
8. उसके बाद start पर टिक (Click) करके control panel में जाकर क्षेत्र व भाषा (Region and Language) पर टिक-टिक (Click) कर लें।
9. यहां पर एक खिडकी भाषा की व्यवस्था के लिए खुलेगी।
10. Window7 के लिए कुञ्जीपटल व भाषा (Keyboard and languages) नाम पत्र (Tab) पर टिक-टिक (Click) करें।
11. अब जो खिडकी खुली है उसमें भाषा जोडने के लिए (Add) पर टिक (Click) करके आप भाषा चुन सकते हैं।
12. आप Sanskrit चुनकर Vaidika पर टिक (Click) कर दें। और ok पर टिक (Click) कर दें।
13. आप संगणक के नीचे कोने में समय चक्रिका के पास अंग्रेजी और SA चुन में से एक विकल्प चुन सकते हैं।

लिपि डालना (Font Installation)

1. Siddhanta Variations Fonts को फौल्डर को ZIP से बाहर निकालें। व Copy कर लें।
2. Control panel में जाकर Font फोल्डर पर टिक-टिक (Click) करके Paste कर दें। यदि आपके लिपि सूची (Font Menu) में ना आये तो आप अपने संगणक को पुनः चालित कर लें।
3. उसके उपरान्त आप लिपि सूची (Font Menu) से Siddhanta लिपि (Siddhanta Font) चुन सकते हैं।

(इंडिक भाषा को सक्रिय करना) Enabling Indic Language Support

1. http://www.bhashaindia.com/ilit/
2. पहले आप Getting Start पर टिक (Click) करके आप साफ्टवेयर डालने व उसे सक्रिय करने की प्रक्रिया को देख सकते हैं।
3. Install Desktop Version पर टिक (Click) कर दें। साफ्टवेयर आपके संगणक में डाऊनलोढ हो जायेगा। उसके बाद next-next पर टिक (Click) करके संगणक में डाल लें।

वैकल्पिक कुंजी पटल के साथ कार्य करने की पद्धति या अक्षर चुनने की पद्धति

1. GO TO START➢ALL PROGRAMME ➢ACCESSORIES ➢SYSTEMS TOOLS ➢CHARACTERMAP ➢CLICK OF CHARACTAR MAP ➢CHOOSE THE FONT ➢CHOOSE TE LETTER(अक्षर)
2. CHARACTER MAP की जो विंडो खुली है दायें हाथ की और उसके नीचे दिये गए अंक संख्या को आप Alt+अंक संख्या टंकण करेंगे तो आप वह अक्षर टाईप कर सकते हैं।
3. Insert टैब में जाकर आप Symbol पर क्लिक करें। तो आप अक्षर चुनने के लिए एक विंडो खुलेगी जिससे आप अक्षर चुन सकते हैं।

लिपि (FONT TROUBLE SHUTTING) यदि ष या श कृतिदेव में कार्य न करें।

1. GO TO (OPEN) MS WORD➢CLICK MICROSOFT BUTTON LEFT TOP➢GO TO WORD OPTION➢GO TO PROOFING➢GO TO AUTO CORRECT OPTION➢CHECK THE STRAIGHT QUOTS WITH SMART QUOTS।

Font परिवर्तक के लिए यहां से डाउनलोड कर लें।
https://sites.google.com/site/technicalhindi/home

Font krutidev20 यहां से डाउनलोड कर लें।
http://in.ffonts.net/Hindi.html

iR;d Vd.k e nk idkj d dthiVy gkr g ,d dk jkeu dthiVy dgr g tk iR;{k nf"Vikr vkrk g ,d dthiVy odfYid gkrk g tk fd dthiVy d nk; gkFk ij fn; g, lkf[;d Hkkx ftle 0 l 9 rd l[;k gkrh g mld ek/;e l i;kx fd;k tkrk gA

देवनागरी के लिए रमिंगटन अथवा टाईपराईटर प्रारुप प्रत्यक्ष कुंजीपटल का प्रदर्शन साधारण अवस्था में



noukxjh d fy, jfexVu vFkok VkbijkbVj i#i iR;{k dthiVy dk in'ku f'k¶V dth d lkF

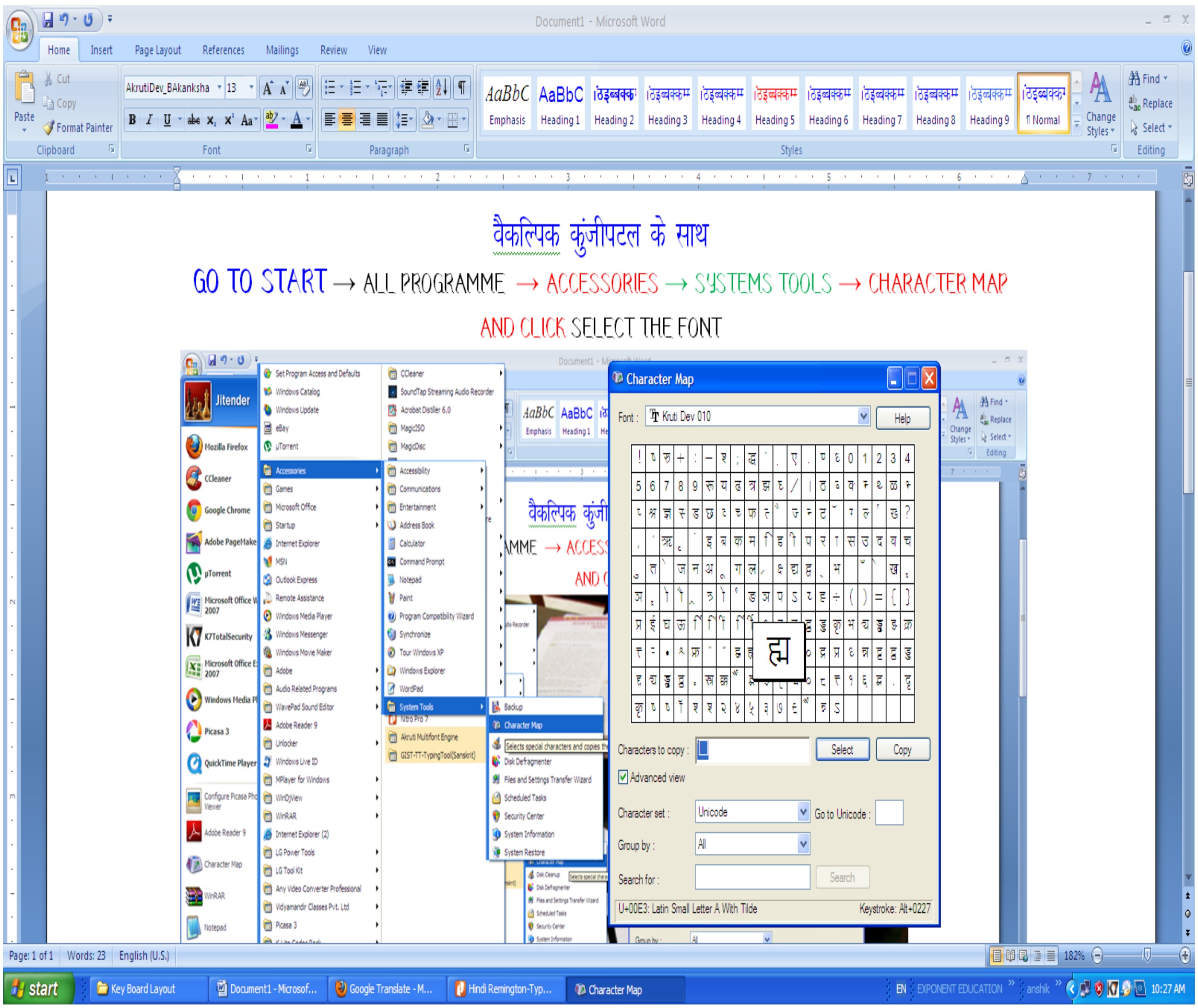




वैकल्पिक कुंजीपटल के साथ कार्य करने का पद्धति

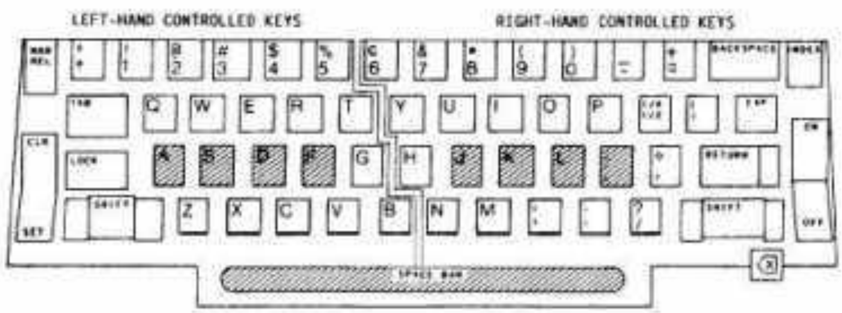
GO TO START → ALL PROGRAMME → ACCESSORIES → SYSTEMS TOOLS → CHARACTER MAP AND CLICK तो वैकल्पिक कुंजीपटल खुल जायेगा आप फॉंट में जाकर फॉंट चुन लें जिसमें आप कार्य कर रहे हैं। उसमें आपको कुछ अक्षर दृष्टिपात आयेंगे उनमें से कोई भी एक अक्षर को चुनने के उपरान्त उसके नीचे कोने में एक संख्या (Alt+0227) जैसा की आप नीचे चित्र में देख रहे हैं दृष्टिपात करेंगें। उस संख्या को कुंजीपटल में बांये हाथ से बांये हाथ की दिशा में दी Alt कुंजी के साथ दबाने पर वह अक्षर आकृति लिखने वाले स्थान पर ऊभर जायेगी। उदाहरण के लिए ब्रह्म में 'ब्र' प्रत्यक्ष कुंजीपटल के द्वारा लिपिबद्ध किया गया है व 'ह्म' वैकल्पिक कुंजीपटल के साथ।

टिप्पणी- यह पद्धति सभी फॉंट अथवा लिपि पर समान रुप से समान रुप से लागू होती है



अंगुलियों के अभ्यास के लिए

टंकण में पहला कदम की बोर्ड रहा है चित्र एक की बोर्ड से पता चलता है चित्रण प्रयोजनों के लिए यह दो वर्गों में बांटा गया है, बाएँ हाथ अनुभाग अपने बाएँ हाथ के द्वारा नियंत्रित कुंजी का प्रतिनिधित्व करता है , और अपने दाहिने हाथ से दाएँ हाथ अनुभाग नियंत्रित कुंजी का प्रतिनिधित्व करता है.



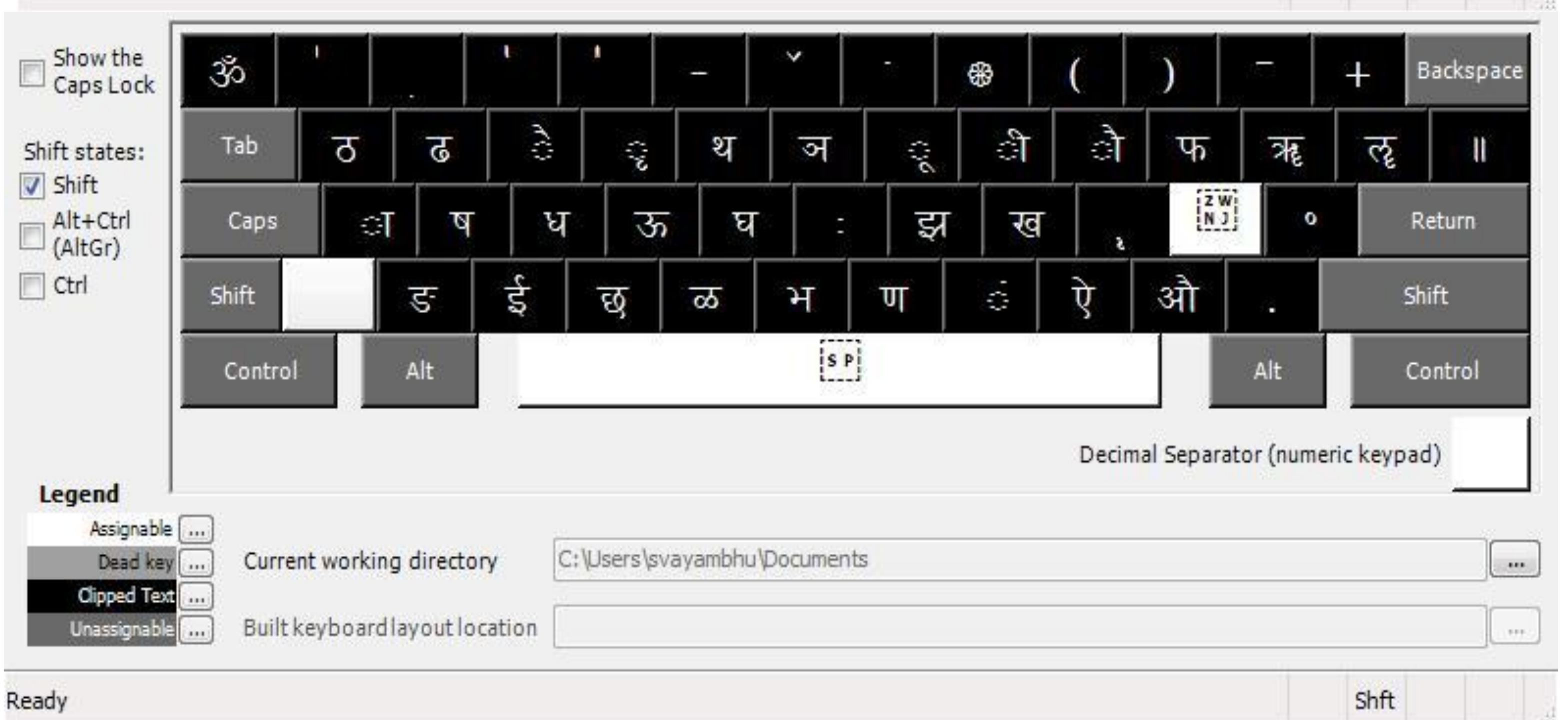


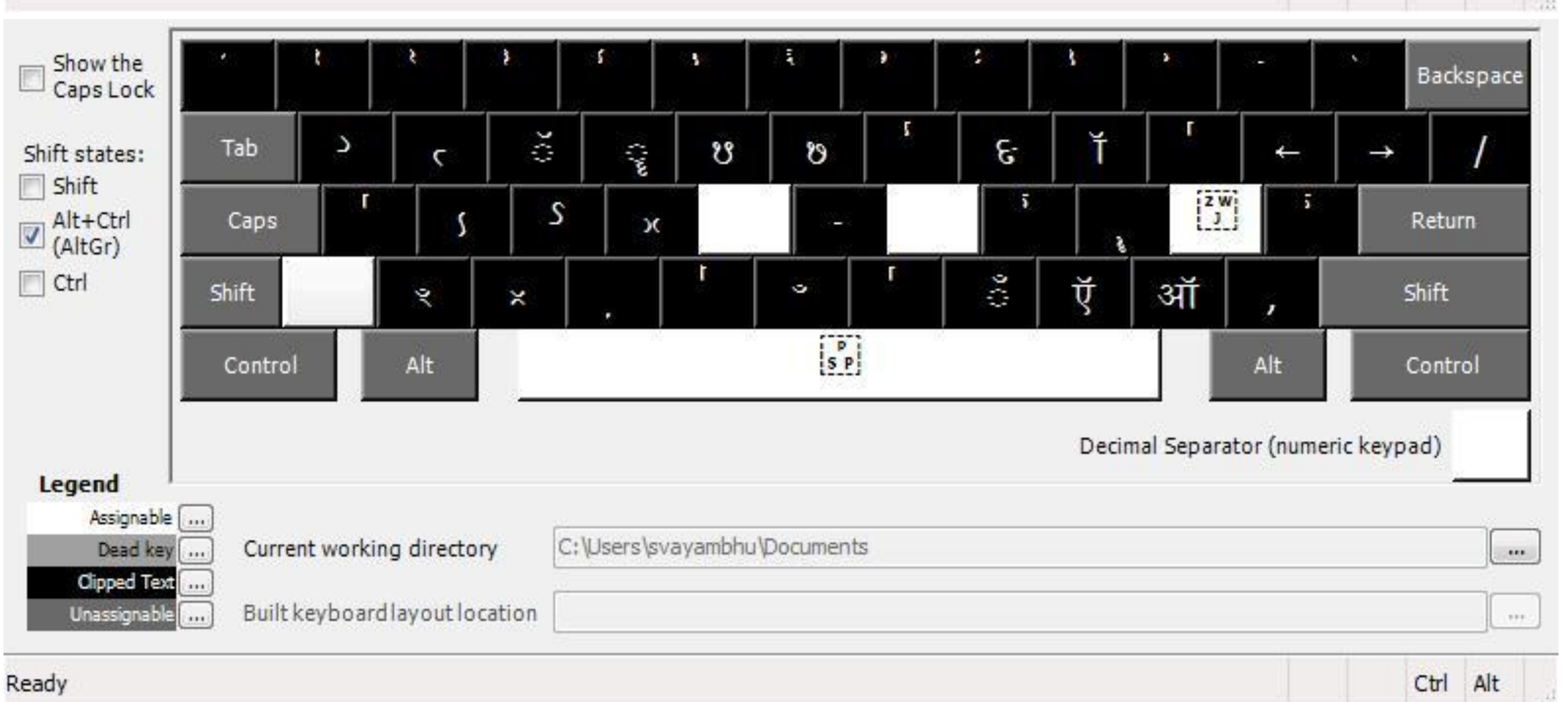
आंगल वह हिन्दी भाषा का संयुक्त कुंजीपटल प्रदर्शन

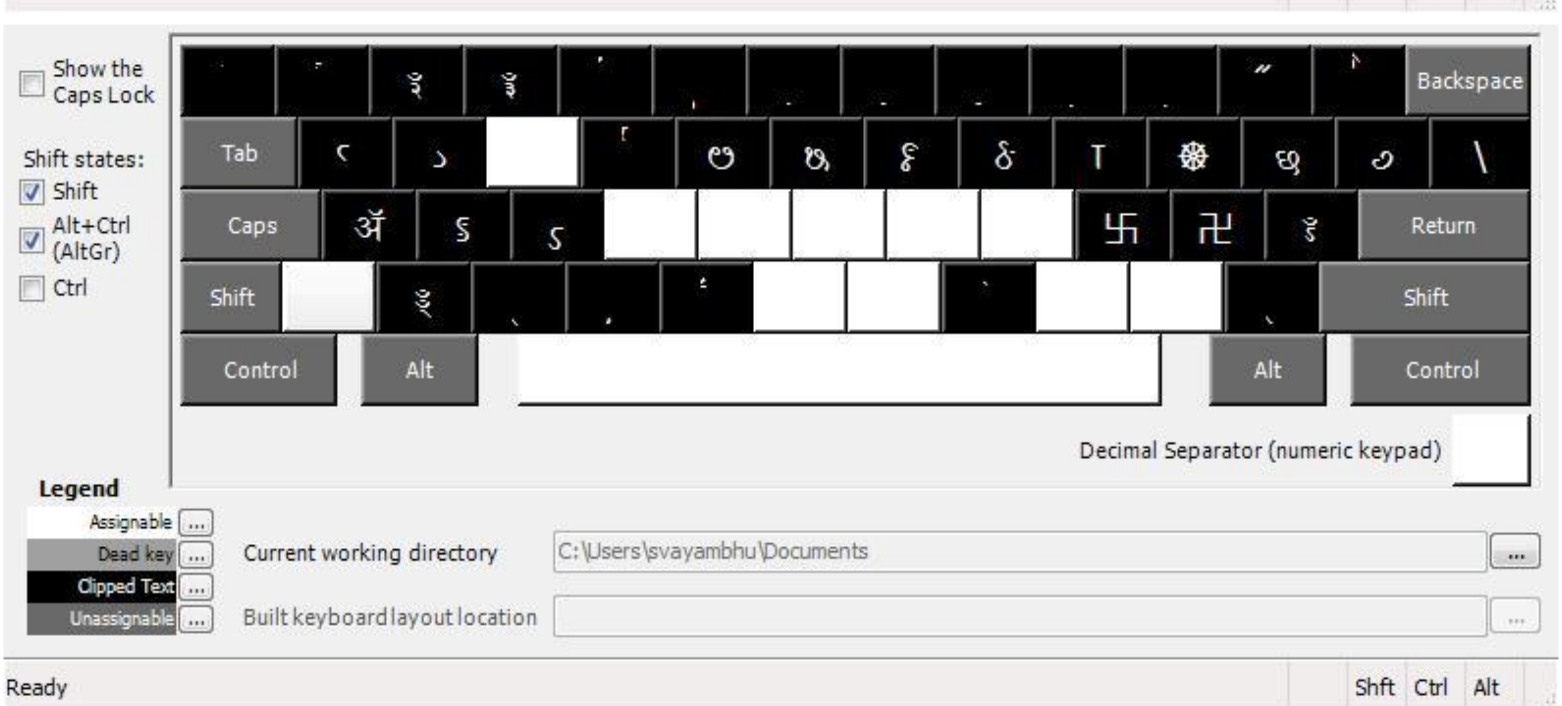


सिद्धान्ता वैदिक-कुञ्जी पटल प्रदर्शन



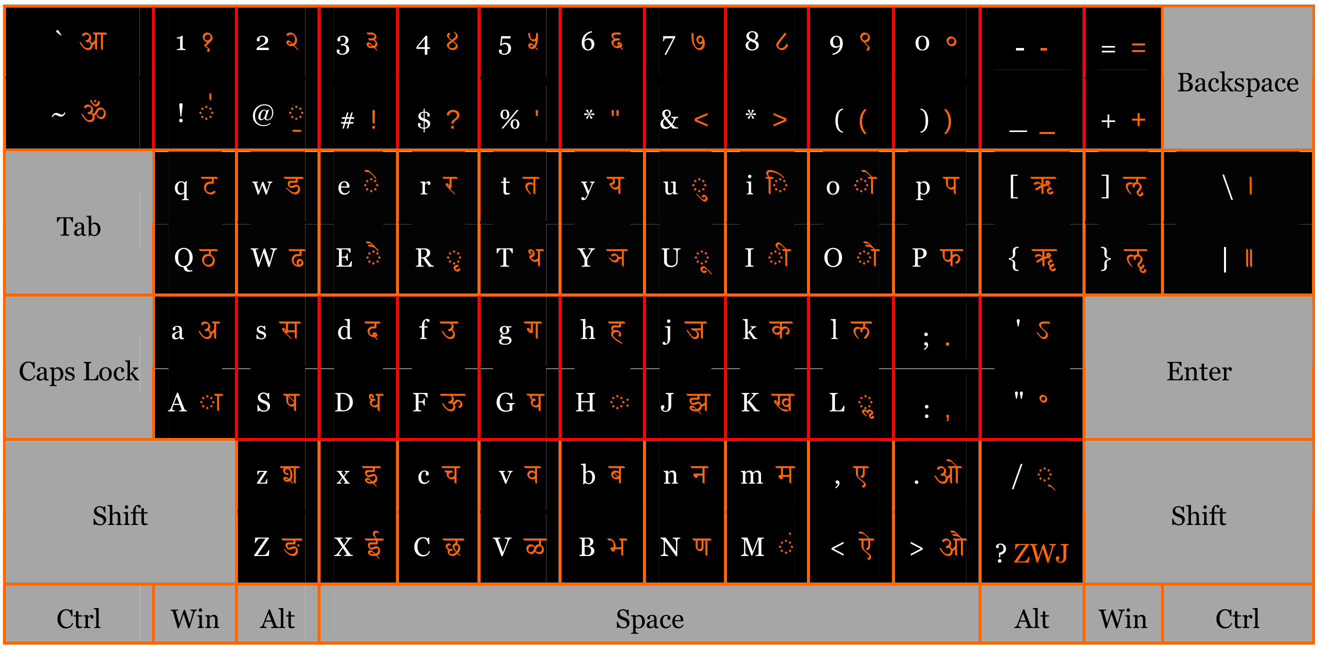




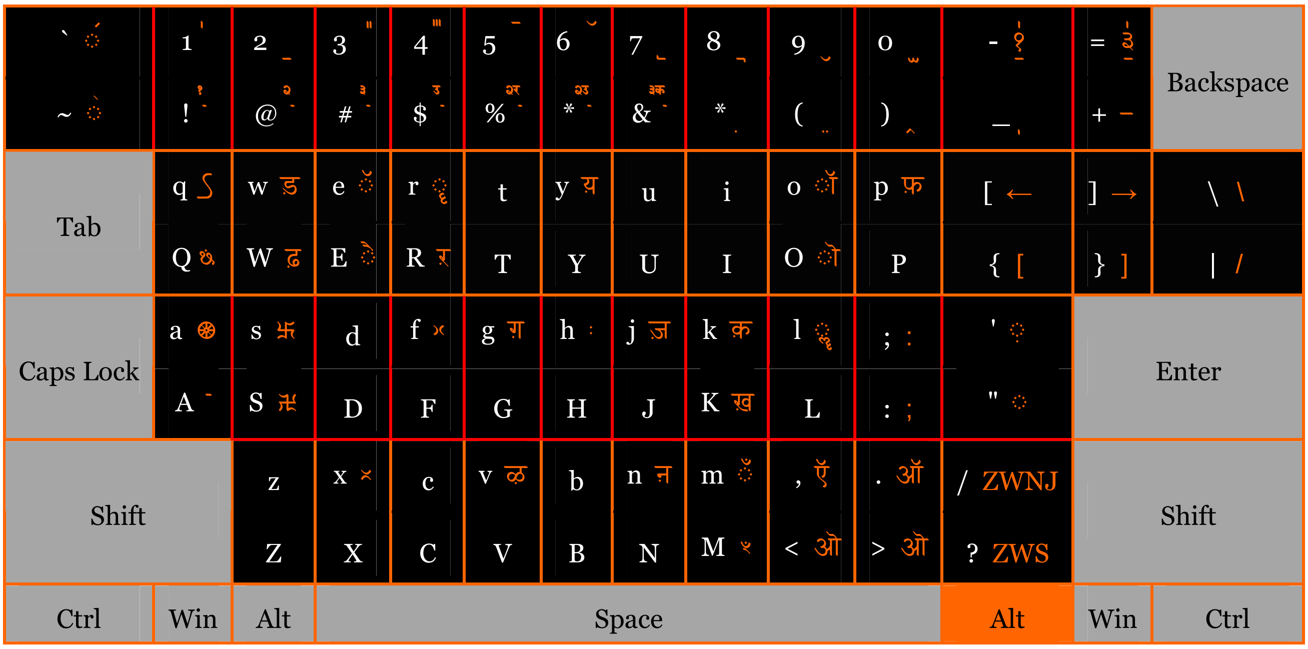


Chandas Devanāgarī IME Help

१ ॥ Keyboard Layout



Right Alt +



- Go To http://www.svayambhava.org/
- कृपया निम्न DOWNLOAD कर लें। (यह संगणक अन्तरजाल पर निशुल्क उपलब्ध है।)
- Siddhanta Variations Fonts Vaidika-Devanagari Input Method and Keyboard Layout
- Vaidika ZIP फोल्डर को दो बार टिक-टिक (Click) करें।
- फिर Vaidika फोल्डर को दो बार टिक-टिक (Click) करें।
- यहां पर आपको Siddhanta Font के कुञ्जी पटल (Keyboard) का चित्र भी मिलेगा।
- Setup.exe पर दो बार टिक-टिक (Click) करके अपने कमप्यूटर में डाल लें।
- उसके बाद start पर टिक (Click) करके control panel में जाकर क्षेत्र व भाषा (Region and Language) पर टिक-टिक (Click) कर लें।
- यहां पर एक खिडकी भाषा की व्यवस्था के लिए खुलेगी।
- Window7 के लिए कुञ्जीपटल व भाषा (Keyboard and languages) नाम पत्र (Tab) पर टिक-टिक (Click) करें। व change keyboard पर क्लिक करें।
- अब जो खिडकी खुली है उसमें भाषा जोडने के लिए (Add) पर टिक (Click) करके आप भाषा चुन सकते हैं।
- आप Hindi व Sanskrit चुनकर, Sanskrit में Chands Devnagri Add कर दें या पर टिक (Click) कर दें। और ok पर टिक (Click) कर दें।
- आप संगणक के नीचे कोने में समय चक्रिका के पास अंग्रेजी और SA चुन में से एक विकल्प चुन सकते हैं।
- यही प्रक्रिया आप chand व uttra लिपि के लिए अपना सकते हैं यह दोनों लिपि सामवेद लेखन में उपयोगी होते हैं।
- Control panel, regional and language option, language, details, setting tab, key setting पर जा करके भाषा बदलने की keyboard short key जान सकते हैं।
- जो पहले से सलैक्ट भाषा हैं उन पर किसी एक पर क्लिक करके आप उसमें वह की बोर्ड डाल सकते हैं। जैसे मैंने chand व uttra लिपि का डाला है।
- Chand व uttra लिपि में सामवेद के चिह्न भी मिलते हैं उसे प्रयोग करना अधिक लाभदायक होता है व उसमें अधिक कुञ्जी पटल प्रयोग भी हैं॥

लिपि डालना (Font Installation)

- Siddhanta Variations Fonts को फौल्डर को ZIP से बाहर निकालें। व Copy कर लें।
- Control panel में जाकर Font फोल्डर पर टिक-टिक (Click) करके Paste कर दें। यदि आपके लिपि सूची (Font Menu) में ना आये तो आप अपने संगणक को पुनः चालित कर लें।
- उसके उपरान्त आप लिपि सूची (Font Menu) से Siddhanta लिपि (Siddhanta Font) चुन सकते हैं।

(इंडिक भाषा को सक्रिय करना) Enabling Indic Language Support

- http://www.bhashaindia.com/ilit/
- पहले आप Getting Start पर टिक (Click) करके आप साफ्टवेयर डालने व उसे सक्रिय करने की प्रक्रिया को

देख सकते हैं।

- Install Desktop Version पर टिक (Click) कर दें। साफ्टवेयर आपके संगणक में डाऊनलोढ हो जायेगा। उसके बाद next-next पर टिक (Click) करके संगणक में डाल लें।

वैकल्पिक कुंजी पटल के साथ कार्य करने की पद्धति या अक्षर चुनने की पद्धति

- GO TO START➢ALL PROGRAMME ➢ACCESSORIES ➢SYSTEMS TOOLS ➢CHARACTERMAP ➢CLICK OF CHARACTAR MAP ➢CHOOSE THE FONT ➢CHOOSE TE LETTER(अक्षर)
- CHARACTER MAP की जो विंडो खुली है दायें हाथ की ओर उसके नीचे दिये गए अंक संख्या को आप Alt+अंक संख्या टंकण करेंगे तो आप वह अक्षर टाईप कर सकते हैं।
- Insert टैब में जाकर आप Symbol पर क्लिक करें। तो आप अक्षर चुनने के लिए एक विंडो खुलेगी जिससे आप अक्षर चुन सकते हैं।

कुंजी पटल के साथ कार्य करने की पद्धति व कुञ्जी निर्धारण करना

- GO TO Insert➢click on symbol➢click on more symbol➢select the character which you want to assign to key➢and click on shortcut key➢ then you assign the keyboard key

लिपि (FONT TROUBLE SHUTTING) यदि ष या श कृतिदेव में कार्य न करें।

- GO TO (OPEN) MS WORD➢CLICK MICROSOFT BUTTON LEFT TOP➢GO TO WORD OPTION➢GO TO PROOFING➢GO TO AUTO CORRECT OPTION➢CHECK THE STRAIGHT QUOTS WITH SMART QUOTS।

- **Font krutidev20 यहां से डाउनलोड कर लें।**
- **http://in.ffonts.net/Hindi.html।**
- **Font परिवर्तक के लिए निम्न लिंक से डाउनलोड कर लें।**
- https://sites.google.com/site/technicalhindi/home
- http://svayambhava.blogspot.com/p/siddhanta-devanagariunicode-open-type.html
- file:///E:/%E0%A4%9F%E0%A4%82%E0%A4%95%E0%A4%A3%20%E0%A4%B5%E0%A5%88%E0%A4%A6%E0%A4%BF%E0%A4%95%20%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%B5%E0%A4%B0/Dhiman%20UTTARA-to-Unicode-Converter.html

Vedic Accents

Following the rules of Pāṇini in the formation of a word from its rudimentary elements, the vowels acquire one of three basic pitch accents or *svara*:

(a) ***udātta***, raised pitch [1.2.29],
(b) ***anudātta***, not raised [1.1.30],
(c) ***svarita***, a blend of the first two [1.2.31].

The pronunciation of the *svarita* is initially *udātta* for the period of half a short vowel and *anudātta* for the rest (i.e. one and a half measures for a long vowel) [1.2.32]. In continuous speech or *saṃhitā*, all *anudātta* syllables following a *svarita* are called *pracaya* and are pronounced ***ekaśruti*** (monotone, between *anudātta* and *udātta*) [1.2.39], however, the *anudātta* immediately preceding a *svarita* or *udātta* is pronounced ***sannatara*** (lower than *anudātta*) [1.2.40]. The Vedas may also be recited entirely in *ekaśruti* (with exceptions) [1.2.36 ff.], nonetheless be aware that the accent may affect the meaning of a word, particularly a compound [6.1.223, 6.2.1] (e.g. *sú-kṛta*, ind. well done; *su-kṛtá*, n. a good deed).

With rare exceptions, a word standing alone has at most one vowel accented *udātta* or *svarita*, the rest being *anudātta* [6.1.158]. This is the basis of the Western system of marking Vedic accents in transliteration. Since most vowels are *anudātta*, this is taken as the basic or unaccented form, and the other accents are marked as:

(a) acute (´) for the *udātta* (e.g. *kárma*).
(b) grave (`) for the *svarita* (e.g. *vākyà*).

Vowel *sandhi*, besides producing a new vowel sound, also blends their accents: if this blending produces a *svarita* accent, it is called an **independent** *svarita* by Western grammarians. Where this independent *svarita* is within a word it is called *nitya* or ***jātya*** (innate), and where it arises due to the joining of words in *saṃhitā* (continuous speech) [8.2.4, 6] it is further classified according to the type of *sandhi*:

(a) ***Kṣaipra*** (quick) when the first vowel is replaced by its semivowel [6.1.77]; the name arises from the shortening of the time measure from that of a vowel to that of a semivowel. The *svarita* accent replaces an *anudātta* occuring immediately after the semivowel substitution for an *udātta* or *svarita* vowel [8.2.4] (e.g. *apsú antáḥ* ⇒ *apsvàntáḥ*).

(U or S_i) + A $\Rightarrow$ semivowel + S_i .... (1)
where U=*udātta*, S_i=independent *svarita*, and A=*anudātta*.

(b) ***Praśliṣṭa*** (coalescence) when both vowels are replaced by a single vowel [6.1.84 ff]; the single substitute of an *anudātta* at the beginning of a word and the preceding *udātta*, becomes *svarita* optionally [8.2.6] (e.g. *ná evá* $\Rightarrow$ *nàivá*).

U + A $\Rightarrow$ S_i .... (2)

This rule applies to *sandhi* between words, whereas the general rule is that the single replacement of *udātta* and *anudātta* vowels (in either order) is *udātta* [8.2.5].

U + A or A + U $\Rightarrow$ U .... (3)

(c) ***Abhinihita*** (close contact) when a following *a* is absorbed by a final *e* or *o* [6.1.109]; the rule for the accent follows that of the *praśliṣṭa* (e.g. *rayáḥ avániḥ* $\Rightarrow$ *rayò'vániḥ*).

An independent *svarita*, when the next syllable has an *udātta* or independent *svarita* accent, is pronounced ***kampa*** (tremolo) in some traditions: this would apply in the above three examples.

S_i - (S_i or U) $\Rightarrow$ K - (S_i or U)
where K=*kampa svarita*.

In *saṃhitā* there is a further *svarita* called ***śuddha*** (simple, mere); Western grammarians name it the **dependent**, substitute, or enclitic *svarita*. An *anudātta* syllable following one that is *udātta* becomes *svarita* [8.4.66], unless it is in turn followed by an *udātta* or *svarita* [8.4.67].

U - A $\Rightarrow$ U - S_d .... (4)
where S_d= dependent *svarita*.
But U - A - (U or S) $\Rightarrow$ U - A - (U or S) .... (5)

These rules combine to produce a rhythm in the sound:
A_s - U - S_d - A_e - A_e caused by the *udātta*, and
A_s - S_i - A_e - A_e caused by the independent *svarita*,
where A_s=*sannatara*, and A_e=*ekaśruti*.
The cadence becomes more complex with the reduction of syllables separating the main accents (U and S_i), so as to eliminate the *ekaśruti* or even the dependent *svarita*.

At this point it would be useful to present a practical illustration of these accent changes that arise in continuous speech. The example is taken from the *Ṛgveda* (10.125.7): the verse is shown as separate words and then in *saṃhitā* showing the applicable rules.

ahám suve pitáram asya mūrdhán máma yóniḥ apsú antáḥ samudré,
tátaḥ ví tiṣṭhe bhúvanā ánu víśvā utá amū́m dyā́m varṣmáṇā úpa spṛśāmi.

(4) (4) (5) (4) (1, *kampa*) (4)
ahám̥ sùve pitáràm asya mūrdhán máma yónìrapsvàntáḥ sàmudré,

(5) (4) (5)(3)(5) (5)(3*) (5) (3)(4)
táto ví tìṣṭhe bhúvanā́nu víśvotā́mū́m dyā́m varṣmánópà spṛśāmi.

(* optionally, rule 2 could apply here and become *kampa*.)

The tradition of Western sanskritists emphasizes grammar and translation, and thus will use the form of separated words in transliteration; it is unusual to find fully accented *saṃhitā* text in transliteration: at best only the *udātta* and *jātya svarita* are marked. India, on the other hand, has an oral tradition which emphasizes pronunciation and rhythm, and thus the marking of accents in *devanāgarī* script is optimized for correct pronunciation; in fact, the written form is a much later development and has given rise to different methods of accent notation. The various traditions are discussed separately:

(a) ***Ṛgveda*** has *udātta* unmarked; the *svarita (jātya* or *śuddha*) is marked with a vertical line above the syllable (e.g. अ॑), but the *kampa* is indicated by a numeral 1 following the vowel if it is short, or the numeral 3 if it is long, and in both cases there is a vertical line above the numeral and a horizontal line below it; in the case of the long *kampa* vowel the syllable usually also has a horizontal line below it (e.g. अ१॒॑ आ॒३॒॑ आ३॒॑). The *anudātta* is marked with a horizontal bar below the syllable: this applies to all *anudātta* syllables before the first *udātta* or *svarita* in a line of verse, after which only those *anudātta* that immediately precede an *udātta* or *svarita* (i.e. *sannatara*) is marked, and the rest of the *anudātta* (i.e. *ekaśruti*) are not marked.

Using the sample verse from the *Ṛgveda*, the accent marking in transliteration and the original *devanāgarī* is:

a̱haṃ su̍ve pi̱tara̍masya mū̱rdhan mama̱ yoni̍ra̱psva1̱ntaḥ sa̍mudre,
tato̱ vi ti̍ṣṭhe̱ bhuva̱nānu̱ viśvo̱tāmūṃ dyāṃ va̱rṣmanopa̍ spṛśāmi.

अ॒हं सु॑वे पि॒तर॑मस्य मू॒र्धन्मम॒ योनि॑र॒प्स्व१॒॑न्तः स॑मुद्रे।
ततो॒ वि ति॑ष्ठे॒ भुव॒नानु॒ विश्वो॒तामूं द्यां व॒र्ष्मनोप॑ स्पृशामि॥

To illustrate the notation when a verse begins with multiple *anudātta* syllables, let the first word have no accent, thus:

> *a̱ha̱ṃ su̱ve̱ pi̱tara̍masya mū̱rdhan mama̱ …*
>
> अ॒ह॒ं सु॒वे॒ पि॒तर॑मस्य मू॒र्धन्मम॒ °

For the *Ṛgveda* the current practice in India is, apparently, to pronounce all syllables marked with the underbar (*anudātta* and *sannatara*) as *anudātta*, all unmarked syllables (*udātta* and *ekaśruti*) as *ekaśruti*, and syllables marked *svarita* as moving from *udātta* to *ekaśruti*.

(b) ***Sāmaveda*** accents are marked with a numeral, or numeral and letter, above the syllable: *udātta*, *svarita*, and *anudātta* are marked with the numerals 1, 2, and 3 respectively; the figure 2 is also used to indicate an *udātta* when there is no following *svarita*; *ekaśruti* syllables are not marked. Special marking is used for particular accent sequences:

U - U - S	⇒	1 - unmarked - 2r
U - U - A	⇒	2u - unmarked - 3
A - S_i	⇒	3k - 2r

Using the same passage from the *Ṛgveda* as an illustration, the marking in transliteration and *devanāgarī* would be:

3 1 2 3 1 2 3 2u 3 1 2 3k 2r 1 2
ahaṃ suve pitaramasya mūrdhanmama yonirapsvantaḥ samudre,
2 3 1 2 3 2 3 2 3 2 3 2 2u 3 1 2r
tato vi tiṣṭhe bhuvanānu viśvotāmūṃ dyāṃ varṣmanopa spṛśāmi.

३ १ २ ३ १२ ३ २उ ३ १ २३क २र १ २
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ २उ ३ १ २र
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मनोप स्पृशामि॥

(c) ***Śatapatha-Brāhmaṇa*** uses only two accents, *udātta* and *anudātta*: a horizontal line below the syllable indicates *anudātta* (as in the *Ṛgveda*). The relationship to the grammatical accents described by Pāṇini is rather indirect: the *anudātta* marked here are the syllables **before** those which would be marked *svarita* in the *Ṛgveda* with rule (5) not applying.

Using the sample verse from the *Ṛgveda*, the accent marking would be:

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥

> **Caution:** beyond this point, the information to hand is incomplete and should be treated circumspectly.

(d) ***Maitrāyaṇī-Saṃhitā*** marks the *udātta* with a vertical line above the syllable; the independent *svarita* is indicated by a curve below (अ); the dependent *svarita* has a horizontal line crossing the middle of the syllable or three vertical strokes above it (अ) or a dot below it (अ); the *anudātta* is marked with a horizontal line below.

(e) ***Kāṭhaka-Saṃhitā*** marks the *udātta* with a vertical line above the syllable; the independent *svarita* is indicated by a curve below (अ) only if an *anudātta* follows, otherwise by a hook below (अ); the dependent *svarita* has a dot below the accented syllable (अ); the *anudātta* is marked with a horizontal or vertical line below (अ अ).

(f) ***Taittirīya-Saṃhitā, -Brāhmaṇa, and -Āraṇyaka, and Atharva-Veda, and Vājasaneyi-Saṃhitā*** are marked as the *Ṛgveda*, with minor differences, mainly in the marking of the *svarita* before an *udātta*.

Works consulted:

(a) S.M. Katre, Aṣṭādhyāyī of Pāṇini, Motilal Banarsidass.
(b) Ś.C. Vasu, The Siddhānta Kaumudī, Motilal Banarsidass.
(c) A.A. Macdonell, A Vedic Grammar for Students, Appendix III.
(d) W.D. Whitney, Sanskrit Grammar, para.80–97.
(e) M. Williams, A Practical Grammar of the Skt. Lang., para.975–985.
(f) K.V. Abhyankar, A Dictionary of Sanskrit Grammar, M.S. Univ. Baroda.
(g) Bureau of Indian Standards, ISCII (1991), Annex G.
(h) The *Bhāṣika* Accentuation System, George Cardona,
Studien zur Indologie und Iranistik 18 (1993): 1–40.

Notation	*udātta*	*svarita*	*anudātta*	special
Ṛgveda		अ॑ अ१॒॑ अ॒३॑ अ३॒॑	अ॒	
Sāmaveda	अ꣡	अ꣢	अ꣣	अ꣢꣫ अ꣢꣯ अ꣣꣬
Śatapatha		अ॒		
Maitrāyaṇī-Saṃhitā	अ॑	अ᳕ अ᳛ अ᳝	अ॒	
Kāṭhaka-Saṃhitā	अ॑	अ᳕ अ᳙ अ᳝	अ॒ अ᳜	
Taittirīya-Brāhmaṇa, -Saṃhitā, -Āraṇyaka		अ॑ अ१॒	अ॒	
Atharvaveda		अऽ अ॑ अ१॒॑ अ॒३॑ अ३॒॑	अ॒	
Vājasaneyi-Saṃhitā		अ॑ अ१॒॑ अ॒३॑ अ३॒॑	अ॒	
Taittirīya-Upaniṣad		अ॑ अ᳚	अ॒	
Śukla Yajurveda		अ᳖		
Non-Tait.° Yajurveda		अ᳕		
??? Sentence ending	अ᳞			

This file (possibly updated) is available from:
`ftp://ftp.nac.ac.za/wikner/accent.ps600-june97`.
Comments and corrections to: wikner@nac.ac.za.

25 June 1997.

śikṣām Vyakyaa syaamah - Varna Swarah - Mātrābalam - Saama Santaanah

śikṣā deals with *Varna*, *Svarā*, *Mātrā*, Strength, *Sāmā* and *Santaanā*

Our ṛaṣi s prescribed several fool-proof methods to correctly recite the *Vēdā mantra* in various patterns and combinations known as *vakhyā*, *padā*, *kramā*, *jaṭā*, *mālā*, *śikhā*, *rēkhā*, *dhvajā*, *daṇḍā*, *rathā* and *ghana :*

vakhya pāṭhā or *Samhitā pāṭhā* is to recite the *mantras* in a sentence straight. When *mantras* come in sentences, some of the words therein have to be conjoined in chanting.

***padā Pāṭhā* :** To recite the *Vēdā mantras*, word by word, instead of joining the words. This gives the student of the *Vēdās*, the knowledge of each word in a sentence.

***Krama Pāṭhā* :** In *Krama Pāṭhā*, the first word of the *mantra* is added to the second, the second to the third, the third to the fourth and so on, until the whole sentence of the mantras is completed. The order of words will be 1-2 ; 2-3 ; 3-4 ; 4-5 and so on. This helps the students to understand changes occuring n swara in such a combination. The person who is well versed n reciting the *Krama Pāṭhā* is known as "*Krama Vit*" (like *Vēdā* vit) When the *Padā* itself is a *Vēṣṭanā*, then, as soon as it eaves from its turn, we have to recite the *Vēṣṭanā*. For the last *adā* in a sentence also, we have to recite the *Vēṣṭanā*, whether

have to recite the *Vēṣṭanā*. For the last *padā* in a sentence also, we have to recite the *Vēṣṭanā*, whether it is a *Padā Vēṣṭanā* or not. If we express this in Mathematical series:

Mathematical Sequence, Series for *jatā Pāthā* :

Sentence (S) = $P_1, P_2, P_3, \ldots\ldots P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_n$
Jata Turn (T) number (T_1 to $_{n-1}$)
Turn 1 (T_1) = $P_1, P_2, P_2, P_1, P_1, P_2$;
Turn 2 (T_2) = $P_2, P_3, P_3, P_2, P_2, P_3$;
....
....
....
Turn n-2 (T_{n-2}) = $P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_{(n-1)}, P_{(n-2)}, P_{(n-2)}, P_{(n-1)}$;
Turn n-1(T_{n-1}) = $P_{(n-1)}, P_n, P_n, P_{(n-1)}, P_{(n-1)}, P_n$; **

Hence General Combination for *jaṭā Pāṭhā* is :
Turn n-1(T_{n-1}) = $P_{(n-1)}, P_n, P_n, P_{(n-1)}, P_{(n-1)}, P_n$;

where, n > 1, and Max No. of Turn < n (without any *Vēṣṭanā*)

P_n = n^{th} *Padā* in a Sentence

T_n = Turn of *jaṭā Pāṭhā*

n = Number of *Padā* in a Sentence

***Ghana pāṭhā* :** This is one of the most popular form of recitations and requires years of learning and practice by the student. A scholar proficient in recitation in this format is honored as *Ghana pāthi*. In *Ghana Pāṭhā* the combination will be: 1-2-2-1-1-2-3-3-2-1-1-2-3
2-3-3-2-2-3-4-4-3-2-2-3-4, 3-4-4-3-3-4-5-5-4-3-3-4-5 and so on till last *padā* ends in that sentence. Hence, *jaṭā* + 3rd *Padā* + Inverse of 3 *Padās* + 3 *Padās* in Straight way = *Ghana Pāṭhā*. It

is to be noted, there all 13 *padās* have to be recited together with proper sandhi (junction) In *Ghana Pāṭhā*, there will be 12 *sandhies*. When the *Padā* itself is a *Vēṣṭanā*, then, as soon as it leaves from its turn, we have to recite the *Vēṣṭanā*. For the last *padā* in a sentence also, we have to recite the *Vēṣṭanā*, whether it is a *Padā Vēṣṭanā* or not. If we express this in Mathematical series:

Mathematical Sequence, Series for *Ghana Pāthā*:

Sentence (S) = $P_1, P_2, P_3, \ldots\ldots P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_n$
Ghana Turn (T) number (T_1 to $_{n-2}$)
Turn 1 (T_1) = $P_1, P_2, P_2, P_1, P_1, P_2, P_3, P_3, P_2, P_1, P_1, P_2, P_3$;
Turn 2 (T_2) = $P_2, P_3, P_3, P_2, P_2, P_3, P_4, P_4, P_3, P_2, P_2, P_3, P_4$;

....

....

....

Turn n-2 (T_{n-2}) = $P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_{(n-1)}, P_{(n-2)}, P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_n, P_n, P_{(n-1)}, P_{(n-2)}, P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_n$;
Turn n-1(T_{n-1}) = $P_{(n-1)}, P_n, P_n, P_{(n-1)}, P_{(n-1)}, P_n$ **

Hence General Combination for *Ghana Pāṭhā* is :
Turn n-2 (T_{n-2}) = $P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_{(n-1)}, P_{(n-2)}, P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_n, P_n, P_{(n-)}, P_{(n-2)}, P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_n$;

where, $n > 2$, and Max No. of Turn $< n-1$ (without any *Vēṣṭanā*)

P_n = n^{th} *Padā* in a Sentence

T_n = Turn of *Ghana Pāṭhā*

n = Number of *Padā* in a Sentence

When a sentence has more than 4 words (*Padās*), then 1st *Padā* repeats 5 times, 2nd *Padā* 10 times and last but one 11 times, and last *padā* 6 times back and forth in different combinations. (except for *Padā Vēṣṭanā* and *Vēṣṭanā* for the end of the sentence). The rest of *padās* (i e from 3rd *padā* to last but two will repeat for 13 times)

** We could see, even if a sentence has any number of *padā*, for last two *padās*, the *Ghana* is as same as *Jaṭā*.

When a sentence has 4 *Padās*, then 1st *Padā* repeats 5 times, 2nd *Padā* 10 times, 3rd *Padā* 11 times and the last (4th) *Padā* 6 times back and forth in different combinations. (except for *Padā Vēṣṭanā* and *Vēṣṭanā* for the end of the sentence).

When a sentence has 3 *Padās*, then 1st *Padā* repeats 5 times, 2nd *Padā* 8 times, and the last (3rd) *Padā* 6 times back and forth in different combinations. (except for *Padā Vēṣṭanā* and *Vēṣṭanā* for the end of the sentence).

When a sentence has only 2 *padās*, then it is like *Jaṭā Pāṭhā* only.

When we listen to a *Ghanapāthi* reciting *Vēdās* in *Ghana* form, we note that he repeats *padās* in various ways, back and forth and in different patterns. This would be pleasant to the ears and creates a sense of happiness within. It would seem that the natural splendor of the *Vēdā mantras* is heightened, as it were We can now appreciate the rigor. a *Ghanapāthi* has to g

through in his education to learn, by heart, the thousands of *mantras*, to be able to recite in *Ghana* form.

The *Samhitā Pāṭhā* and *Padā Pāṭhā* are called *Prakrithi* (or natural) *Pāṭhās*, as the words of the *mantras* occur in normal sequence. The rest are called *Vikrithi* (or artificial and not natural) *Pāṭhās*. In Krama, although the words do not occur in the natural order of one, two and three, since they do not revert like one after two and two after three, it cannot be called fully *Vikrithi*.

<u>The *Vikrithis*</u> are eight in number:

jaṭā mālā śikhā rēkhā dhvajō daṇḍō rathō ghana :
aṣṭau vikṛtaya : prōktā ; kramapūrvā maharṣibhi :

jaṭā, mālā, śikhā, rēkhā, dhvajā, daṇḍā, and *rathā* and *ghanā*

Two types of *mālā* (garland) exist: a) *krama mālā* and b) *puṣpa mālā*. This is similar to *krama pāṭhā* in that two-word units with the characteristic overlapping are the foundation. *śikhā* (top knot) is similar to *jaṭā* except that, third word will be combined at the end of *jaṭā*. Recitations in *rēkhā* (row), *dhvajā* (flag), *daṇḍā* (Rod), and *rathā* (chariot) are more complex and the learner/reader should get advice from *pundits*.

Further, there are three types of *rathā*, namely, *dvicakrō* (two wheels), *tricakrō* (three wheels) and *catuścakrō* (4 wheels). Each wheel corresponds to a part of a verse (*ṛak*) of the text.

By repeating the words in manifold ways, the correct tally of

words was also kept which naturally ensure the purity of the texts. It is also believed that higher merits (*punya*) accompany greater complexities in chanting – for example, a *Ghana* recitation is several orders higher in merit (infinite) than *jaṭā* recitation,(1000 units) which is higher in merit than *krama* recitation (4 times), *Padā* recitation 2 times the *punya* (or merit or *phala*) of *Samhitā* recitation.

Vārttika-s

Introduction —

Kātyāyana's *vārttika*-s (approximately 3rd C.b.c.) have set a norm of the shortest commentary that explains, criticizes and supports the theme of the text to be focused.

Though the history of the grammatical thoughts as well as the activities start from the Vedas and from the Ṛgveda *padapāṭha*; the actual known grammatical text is Pāṇini's *sūtra*-s. The corpus of these almost 4000 compact statements is called Aṣṭādhyāyī which belongs to the 5th century b.c. according to the majority of scholars.

It is believed that two hundred years after Pāṇini, when the need arose to supplement as well as to explain Pāṇini's observations about the language Kātyāyana wrote the *varttika*-s.

***Vyākaraṇa* as a *vedāṅga* —**

For the better understanding of the vedic texts 6 ancillary systems came forth. These are called *vedāṅga*-s which are as follows –

Śikṣā (guidelines for correct pronunciation of the veda-s), *Kalpa* (aids to know how to follow ritualistic aspect of the vedas), *Vyākaraṇa* (guidelines to understand the language of the vedas), *Nirukta* (guidelines to understand the meaning of the vedic words), *Chandas* (guidelines to understand the metrical composition of the Vedas). *Jyotiṣa* (aids to understand exact time or positions of planets, constellation etc).These *vedāṇga*-s are helpful for reciting and understanding the vedic texts and for performing the ritual accordingly.

It goes without saying that the *vȳakaraṇa* is one out of these six *vedāṇga*-s. However Pāṇini's Aṣṭādhyāyī is the only text that is taken as the *Vedāṅga Vyākaraṇa*. The Aṣṭādhyāyī describes the nuances and intricacies of the classical Sanskrit. However Pāṇini takes note of the special features of the vedic language

and mentions those particular peculiarities with the words *chandasi*, *Brāhmaṇe*, *Yajuṣi*, etc.

The *daśagrantha* tradition includes these basic texts of the *vedāṅga*-s.

The traditional maxim '*trimuni vyākaraṇam*' shades light on the basic texts of the *vyākaraṇa vedāṅga* which are Aṣṭādhyāyī of Pāṇini, *vārttika*-s of Kātyāyana and Mahābhāṣya of Patañjali.

The Definition of the vtt. —

The traditional definition of the *vārttika*-s is as follows -

उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।

तं ग्रन्थं वार्त्तिकं प्राहुर्वार्त्तिकज्ञा मनीषिणः।।

(Tr. The wise ones call that text *vārttika* in which the discussion is held about what is spoken, what is not spoken and what is ill spoken.)

However Pt. Yudhiṣṭhira Mīmāṁsaka has pointed out that the said definition works in case of the *vtts* which are on the *bhāṣya* and not on the *sūtra*. The *śloka* and *tantra vārttika*-s on Śābarabhāṣya and Sureśvara's *vtts* on the *Sāṅkarabhāṣya* are the examples of this definition. The Kātyāyana-*vtts* are directly on the *sūtra*-s. So this definition doesn't suit them. Pt. Yudhiṣṭhira Mīmāṁsaka quotes the definition of *vtts* from Viṣṇudharmottara Purāṇa (*khaṇḍa* 3, *Adhyāya* 6). However the actual text of Viṣṇudharmottara Purāṇa says, 'सांवर्तिको धर्मगुणोऽष्टकश्च' whereas Pt. Yudhiṣṭhira Mīmāṁsaka reads it as 'स वर्तिको धर्मगुणोऽष्टकश्च'.

There are some other terms used for the *vtts* such as *vākya, vyākhyāna-sūtra, bhāṣyasūtra, anutantra* and *anusmṛti*.

A brief account of the *vārttikakāra*-s other than those of Kātyāyana —

Pāṇini was followed by many grammarians out of which Bhāradvāja, Kroṣṭṛ, Vāḍava, Sunāga, Vyāghrabhūti, Vaiyāghrapāda and Kātyāyana wrote *vtts* i.e. critical and supplementary notes on the Aṣṭādhyāyī. However except that of Kātyāyana, the works of other *vārttikakāra*-s have lost. Apart from the grammarians mentioned

by the MBh, some unknown grammarians have also contributed to the corpus of the *vtts*. E.g. समो हिततयोर्वा लोपः this is the *vtt* on P 6.1.144. The name of any specific grammarian is not mentioned here. However Patañjali commenting on P 1.1.27 सर्वादीनि सर्वनामानि says, 'इहान्ये वैयाकरणाः समस्तते विभाषा लोपमारभन्ते – समो हिततयोर्वेति।'

This means the actual *vtt* समो हिततयोर्वा लोपः is from the grammarian other than Kātyāyana.

Patañjali has mentioned the *Vtts* of Bhāradvāja in the *bhāṣya* on P 1.1.20,56; P 1.2.22; P 1.3.67; P 3.1.38,48,89; P 4.1.79; P 6.4.47,155.

Whether the Bhāradvāja *vtts* directly focused the *Pāṇinīya sūtras* or these are the *vtts* from some non-Pāṇinian grammatical tradition is not clear. A point should be noted that Pāṇini has also mentioned the grammarian Bhāradvāja.

Another bigger group of the *vtts* is that of Saunāga *vtts*. The MBh mentions the Saunāga *vtts* in the *bhāṣya* on P 2.2.18, P 3.2.56, P 4.1.74;87, P 4.3.155, P 6.1.95 and P 6.3.43.

Yudhiṣṭhira Mīmāṁsaka maintains that like the Kātyāyana *vtts* the Saunāga *vtts* might have been directly on the Pāṇinian *sūtra*-s.

The Saunāga *vtts* are comparatively bigger than Kātyāyana *vtts*. Even Patañjali has noticed this fact saying , 'एतदेव च सौनागैर्विस्तरतरकेण पठितम्।'

There is only one reference to the Kṛoṣṭrīya *vtts* with the remark, 'परिभाषान्तरमिति च कृत्वा क्रोष्ट्रीयाः पठन्ति –नियमादिको गुणवृद्धी भवतो विप्रतिषेधेन।' (MBh on P 1.1.3)

The MBh on P 8.2.106 mentions Vāḍava and elsewhere Patañjali also mentions Kuṇaravāḍava. Whether both are one or different is a point of dispute. The MBh doesn't mention any *vtt* of Vāḍava. It is Nāgeśa in his Bhāṣyapradīpodyota on P 8.2.106 mentions 'सिद्धं त्विदितोरिति वार्त्तिकं वाडवस्य'.

There is only occasional reference to Kuṇaravāḍava (कुणरवाडवस्त्वाह नैष वहीनरः....वैहिनरिः।). No *vtt* is mentioned of Kuṇaravāḍava.

Vyāghrabhūti is not directly mentioned in the MBh. However Kaiyaṭa says that the *ślokavārttika* जग्धिविधिर्ल्यपि etc. quoted in the MBh on P2.4.36 is from Vyāghrabhūti.

The MBh does not mention any *vtt* of Vaiyāghrapadya. However a *śloka* शुष्किकाशुष्कजङ्घा च referred to by Kāśikā on P8.2.1 पूर्वत्रासिद्धम् is mentioned as from Vaiyāghrapadya by Bhaṭṭoji Dīkṣita.

Pt. Yudhiṣṭhira Mīmāṁsaka maintains that Vaiyāghrapadya might have been a grammarian who might have composed his own grammar.

Thus the occasional references in the MBh suffice the fact that at least 8 grammarians have composed the *vtts* on the Aṣṭādhyāyī out of whom Kātyāyana's ones are available to us.

About Kātyāyana and his *vārttikapāṭha* —

Kātyāyana —

The *vtt pāṭha* that is available today is believed to be that of Kātyāyana. Hence Kātyāyana is aptly recognized as the *vārttikakāra* even by MBh.

There are some other treatises that are also credited to the name Kātyāyana, such as Śulbasūtra, Yajuḥ Prātiśākhya etc. Whether these are different Kātyāyana-s or one, is a point of dispute. This problem is resolved by Pt. Yudhiṣṭhira Mīmāṁsaka saying that there might have many Kātyāyana-s, out of them *vārttikakāra* Kātyāyana is Vararuci Kātyāyana staying in southern part (to the south of Vindhya mountains) of India as per the remark of Patañjali.

***Vārttikapāṭha* —**

Kātyāyana has composed *vāttika*-s on 1245 *sūtra*-s only. The number of the *vtts* on each of 1245 *sūtra*-s varies. The total number of the *vtts* goes upto 4000 approximately.

There are very few good editions of सवार्त्तिकसूत्रपाठ (i.e. the text of the *sūtra*-s accompanied by the *vtts* there on). There are some editions that give bare texts of the *vtts* as an appendix.

A point to be noted that a *vtt-pāṭha* appended to Kāśikāvṛtti and the one to the Siddhāntakaumudī slightly differ.

The *vtts* are commented upon by Pantañjali. The commentary is called Mahābhāṣya. The *vtts* that occur in the MBh are taken as the authentic one.

Thus there is no separate text of *vtts*. They are always to be read in the context of the *sūtra*-s and as a part of the MBh.

About the *vārttika*-s —

The vtts are like the small, compact notes on the *sūtra*-s. The *vārttikakāra* has tried to maintain *sūtra*-style i.e. a condensed statement without the verbal form. According to K.V. Abhyankar, the *vtts* seem to be notes on the *sūtra*-s prepared by some teachers, to facilitate the teaching of the *sūtra*-s. The *vtts* have suggested omission, addition, modification and explanation for either certain word of a *sūtra* or for the entire sutra. So there are some *vtts* explaining the meaning of the *sūtra*-s E.g. *vtts* on P 1.1.9 तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् and P 1.1.10 नाज्झलौ. Here Kātyāyana has introduced the principle of *vākyāprisamapti* i.e. interdependency of the sentences in one given discourse. Accordingly one sentences plucked out of the context is meaningless. Some *vtts* investigate the purpose behind the formation of the *sūtra*, E.g. 30 *vtts* on P1.1.56 स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ। Some *vtts* reveal the significance of certain word of the *sūtra*. (E.g. 17 *vtts* on the P 1.1.3 इको गुणवृद्धी and 10 *vtts* on P 1.1.51 उरण्रपरः). The *vtts* on the *sūtra*-s P1.1.6 दीधिवेवीटाम् and P 1.1.64 पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्। have refuted some words from the *sūtra*-s. The *vtts* on the *pratyāhāra sūtra* ऋलृक् and on P 1.1.4 न धातुलोप आर्धधातुके have refuted the entire *sūtra*-s. The *vtts* on P 1.1.11 ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् and P 1.1.13 शे have justified the *sūtra*-s through the debate method.

Many scholars maintain that the *vtts* are composed so to find out faults with Pāṇini. According to them the phrases 'उपसंख्यानम्' or 'इति वक्तव्यम्' in the *vtts* are stating the lacuna of the *sūtra*-s. When Kātyayāna refutes a word and even a *sūtra*, he is taken as attacking Pāṇini. However so is not the case, holds K.V. Abhyankar.

He maintains that Kātyāyana's suggestions about the addition, omission and refutation of certain *sūtra* is the reflection of the change in the language. When Kātyāyana thinks that certain word - current in the language - could not be accounted for by the *sūtra*, he suggests the addition or modification in the *sūtra*, so to cover that particular word or the expression.

Kātyāyana's contribution to grammatical tradition —

1. Kātyāyana's first *vtt* **सिद्धे शब्दार्थसंबन्धे लोकतः अर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण धर्मनियमः क्रियते यथा लौकिकवैदिकेषु।** gave the decisive turn to the history of grammar. He states that the role of grammar is to make '*dharmaniyama*', i.e. the grammar 'instructs' that the correct words should be spoken since it contributes to the religious merit. With this crept the concept of '*sādhutva*' for the language and that of the *dharma* as a result of using *śāstra* i.e. grammar-sanctioned words. The *vtt* 9 from Paspaśāhnika also echos the same idea- '**शास्त्रपूर्वके प्रयोगेऽभ्युदयस्तत्तुल्यं वेदशब्देन** (Tr. the prosperity lies in using the words with proper knowledge of the rules. It is just like the words from the veda-s)'. This gave the role of instructor of the *sādhu* words or sanctioning authority to the grammar.

This very concept of grammar being *śāstra* i.e. sanctioning authority motivated the *vārttikakāra* himself to compose the *upasaṁkhyāna vtt*s in order to bring some usages prevalent then under the purview of grammar. The *prakriyā* texts that guide the formation of the words according to the *sūtra*-s, other grammatical traditions giving easier and less complicated program to form the words and sentences came forth with the sole motivation of teaching how to form *sādhu* words.

2. Kātyāyana's view about the grammar is note worthy. He says, '**लक्ष्यलक्षणे व्याकरणम्।** (*vtt* 14 quoted in the Paspaśāhnika of MBh). (Tr. the grammar means both the targeted language and rules to govern it). This foresighted grammarian has

explicitly stated that a grammar cannot neglect the spoken language, which further implies that if the language goes on changing then the grammar has to take note of it. According to this *vtt* the grammar is *lakṣaṇa* i.e. on one hand it 'describes' the language and on the other hand it 'defines' the language.

3. The *vtt* is first available text introducing debate or dialogue style of commentary. Considering the chronology of the Sanskrit literature Kātyāyana follows Yāska who has used prose 'explanatory style'. However it is Kātyāyana, who has tried actual argument style with the expressions, सिद्धं तु, 'न वा', 'इति वक्तव्यम्' etc. The structure of this style is 'if' it is 'A' then there should be 'B', otherwise there would be 'C' which is not desired.

E.g. कारक इति संज्ञानिर्देशश्चेत्संज्ञिनोऽपि निर्देशः । *vtt* 1 on P 1.4.23

इतरथा ह्यनिष्टप्रसङ्गो ग्रामस्य समीपादागच्छतीत्यकारकस्य।। *vtt* 2 on P 1.4.23

Through subsequent *vtts* 7,8,9 etc. he has stated how the role of *kartṛ* can be assigned to the objects that are otherwise instruments, substratum etc. in the certain action. So the debate is settled on the point that the *saṁjñā sūtra* P 1.4.23 कारके doesn't need *saṁjñi*, since the technical term *kārake* itself is very significant and appropriate. The *vtts* of Kātyāyana are bigger than Pāṇini *sūtra*-s but they have maintained the rhythmic prose style sometimes even akin to metrical composition.

4. The commentarial merit of the *vtt* lies in its justifying certain word from the *sūtra*. E.g. *vtt* on P 1.1.3 इको गुणवृद्धी is 'इग्ग्रहणमात्सन्ध्यक्षरव्यञ्जननिवृत्यर्थम्' (Tr. The word *ik* in the *sūtra* is to restrict the application of *guṇa* and *vṛddhi* to *ā*, dipthongs i.e. *e, o, ai, au* and consonants). The *vtt* means to say that in absence of the word *ik*, the *guṇa* and *vṛddhi* would have been applicable to *ā*, dipthongs and to consonants also, which is not desired.

5. It is Kātyāyana who has given some novel techniques for the interpretation of the *sūtra*-s such as *yogavibhāga* i.e. splitting a rule.

E.g. P 1.1.17 is उञ ऊँ (Tr. The particle *uÑ* becomes *pragṛhya* when followed by *iti* and substituted by *ū*).

Kātyāyana has suggested the split in the *sūtra* through the *vtt* on this *sūtra*. 'उञ इति योगविभागः।' which means the *sūtra* should be split at *uñaḥ*. Then the meaning we get is that the particle *u* is *pragṛhya* when followed by *iti* according to Śākalya. This implies that according to Pāṇini it is not *pragṛhya* and hence can undergo *samdhi*. Thus according to Śākalya the form will be 'उ इति' whereas according to Pāṇini the *u* would form *saṁdhi* with *iti* and it would be विति.

With split one gets one more rule 'ऊँ'. The *vtt* 2 on the *sūtra* is 'ऊँ वा शाकल्यस्य।' means according to Śākalya the *u* is substituted by ऊँ i.e. nasalized *uÑ*.

The result of the *yogavibhāga* is there would be 3 forms with the particle '*u*'

1. उ इति - no *saṁdhi* being *pragṛhya*
2. विति - with *saṁdhi*
3. ऊँ इति - with substitution of nasalized

6. Extending scope of the *sūtra* through *upasaṁkhyāna vtts* is the major contribution of the *vārttkakāra*. The scope of the *sūtra* is extended to cover the contemporary usages which otherwise would have been left unaccounted. E.g. P 1.4.24 ध्रुवमपायेऽपादानम् assigns the technical term *apādāna* to the object that is the stable point in the action meaning 'moving away'. Accordingly ग्रामादागच्छति (He comes from a village) is justified. However the colloquial usages अधर्मात् जुगुप्सते, धर्माद् विरमति, स्वाध्यायान्मा प्रमदः etc. remain unjustified by the *sūtra,* since the verbs therein do not contain any element meaning movement. Thus the *vtt* on P 1.4.24 जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् extends the scope of the *apādānasamjñā* to the *karaka*-s that are directly involved in these actions, viz *jugupsā* - abhorrence, *virāma* - deviation, *pramāda* - negligence.

6.1 The *vtts* that extend the scope of the *sūtra* are called *upasaṁkhyāna vtts*. As it is Pāṇini's *sūtra* corpus can hardly account for the usages such as प्रकृत्या मधुरः or प्रासादात् प्रेक्षते or किं निमित्तं वसति, केन निमित्तेन वसति and with all other *vibhakti*-s. It is *vārttikakāra* who composed *vtts* (*vtt* 1 on P 2.3.18, *vtt* 1 on P 2.3.28, *vtt* 1 on P 2.3.23) to justify these usages. These *vtts* got the status and authority of the *sūtra*-s.

6.2 Complimentary *vtts* to *dvittva* (reduplication) (*vtts* 2,3 on P 6.1.3) justify the forms such as *īrṣyiyiṣati* (or *īrṣyiṣiṣati), kaṇḍūyiyiṣati* etc.

7. Exactly apposite to *upasaṁkhyāna*, the *vtts* have restricted the scope of the words from the *sūtra*, concentrating on their meaning. E.g. *vtt* 5,6,7 on P 1.4.52. The *sūtra* is about the roots meaning eating and about those meaning 'movement'. Out of several roots meaning to eat the roots *ad* and *khād* are excluded by the *vārttikakāra*. Out of the verbs meaning 'movement' he excludes the root '*vah*' when the agent of the *vah* is not under the control of the causative agent. There are several such examples. Like the *upasaṁkhyāna vtts* these restricting *vtts* also aim at getting *sūtra*-sanction to some current forms. It is necessary since the over application of the *sūtra* may yield the forms which are not used and those which are actually used would remain unaccounted.

I would like to discuss the point why Kātyāyana does so? I sincerely maintain that the entire *upasaṁkhyāna* or *anuktacintā* activity seems to be motivated by the concept of '*sādhutva*' which means forms derived by or sanctioned by the rules of grammar. If certain usage which is current in the language but could not be derived from the rules, then it means people are speaking wrong form. The *upasaṁkhyāna* or 'इति वक्तव्यम्' type of vtts bring these so called wrong or ungrammatical forms under the perview of grammar. As per Kātyāyana's definition of grammar (c.f. लक्ष्यलक्षणे व्याकरणम् / *vtt* 14 quoted in the Paspaśāhnika of MBh) the grammar cannot stand without *lakṣya* i.e. the language.

8. The *vtt* on P 1.4.27 वारणार्थेषु कर्मग्रहणानर्थक्यं कर्तुरीप्सिततमं कर्मेति वचनात्। (Tr. In the *Sūtra* वारणार्थानामीप्सितः, the word *karma* doesn't bear any significance, since Pāṇini has already formed the *sutra* कर्तुरीप्सिततमं कर्म।) gives the clue that the *vārttikakāra* might be having different wording of the *sūtra*, than what we know. The *vtt* says that the word *karma* in the present *sūtra* is of no use. However the actual *sūtra* doesn't bear the word *karman*.

9. The importance of the *vtts* also lies in shading light on some crucial concept in the *sūtra*-s. E.g. P 2.1.1 समर्थः पदविधिः।

It is the *vtt* that defines the concept *sāmarthya* saying पृथगर्थानामेकार्थीभावः समर्थवचनम् *vtt* 1 on P 2.1.1. Kātyāyana also mentions another definition of *sāmarthya* (c.p परस्परव्यपेक्षां सामर्थ्यमेके *vtt* 4, ibid)

10. Definition of *vākya* is one more contribution of the *vtts*. The *vtts* 9 and 10 on P2.1.1 define *vākya*. *Vtt* 9 is आख्यातं साव्ययकारकविशेषणं वाक्यम्। (Tr. A verbal form along with the particle, the *karaka*-s and the qualifiers is *vākya*). The *vtt* 10 defines *vākya* as एकतिङ् वाक्यम् (Tr. A group of words containing one *tiṅanta* i.e. finite verbal form is *vākya*).

11. The *vārttikakāra* has also introduced new suffix *kelimar* to be added to the roots in the agentive sense, (c.p केलिमर उपसंख्यानम् *vtt* 1 on P3.1.96) to account for the forms *pacelimāḥ, bhidelimāni* etc. Since Pāṇini has not enumerated this suffix, such forms could have been *asādhu*. With the *vtt* such forms got the *sādhutva* (i.e. grammatical correctness).

12. Some *vtts* help to understand the *sūtra*-s. These *vtts* are called *paribhāṣā vtts*. E.g. नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे *vtt* 2 on P 1.1.65 ङ्याब्ग्रहणमनर्थकं प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणात्। *vtt* 4 on P 4.1.1
कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि। *vtt* 9 on P 1.4.13

न वा निर्दिश्यमानस्यादेशत्वात्। *vtt* 3 on P 6.4.130

सिद्धं तु लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणात् *vtt* 2 on P 6.2.2

Several such *paribhāṣā vtts* are incorporated in the Paribhāṣenduśekhara with slight change in the wording.

Some important theories proposed by the *vārttikakāra*. —

1. The *śabda* (word), *artha* (meaning) and their relationship is eternal i.e. not produced by any agency such as speech community or grammar or any grammarian.
2. Using the grammatically correct form yields the 'dharma' religious merit.
3. Though a long vowel seems to be a cluster of two short ones, it should always be treated as the separate integral entity and never as a cluster of two vowels. (*vtt* 9 on ऐऔच्।)
4. A syllable is independently meaningless. However a certain sequence of the syllables when recognized as a root or stem or suffix (*prātipadika*) does bear meaning. (*vtt* on P 1.2.45)
5. *Vārttikakāra* maintains that *anusvāra* and *visarga* being *ūṣman* sound should come under the *antaḥsthā*.

Epilogue —

Thus the contribution of *vtts* may be evaluated from 3 different view points. From language point of view it has set a trend to get authenticity to the words being used. From grammatical view point the *vtts* have introduced new suffixes. From philosophical view point *vtts* have introduced the concept of eternity of the word its meaning and their relationship.

So this foresighted *vārttikakāra* is aptly honoured by the tradition by including him
in *trimuni*.

Abbreviations —

MBh - Mahābhāṣya of Patañjali

P - Aṣṭādhyāyī *sūtra* of Pāṇini

vtt or *vtts* - *vārttika*-s of Kātyāyana

References —

A

1. The Aṣṭādhyāyī of Pāṇini Vol. I by Sharma, Ram Nath, Pub. by Munshiram Manoharlal Publishers, Delhi, 1987.
2. Vyākaraṇa Mahābhāṣya (of Patañjali) Prastāvanā khaṇḍa Part VII (of Marathi translation of Vyākaraṇa Mahābhāṣya), by Abhyankar, K.V., Pub. by D.E. Society Pune, 1954.
3. Vyākaraṇa Mahābhāṣya (of Patañjali Marathi translation), Parts I-VI by Abhyankar, Vasudevshastri, Pub. by D.E. Society Pune, 1938,1941, 1951.

B

1. Cardona, George (1980), Pāṇini a Survey of Research, Motilal Banarsidas, Delhi.
2. Yudhiṣṭhira Mīmāṁsaka, (1968), Saṁskṛta Vyākaraṇaśāstra kā Itihāsa, Bahalgadh, Sonipat, Haryana.

Dr. Bhagyalata Pataskar.
Vaidika Samshodhana Mandala,
(Adarsha Sanskrit Shodha Sanstha), Pune
Mukund Nagar, Pune – 37
Cont. No. 9371230287

तृतीय अध्याय

छन्द एवं स्वर का विवेचन— गायत्री, जगति, त्रिश्टुप आदि छन्द तथा शड्ज, ऋशभ, धैवत् आदि स्वरों पर विचार

छन्द

वेदौं.ों में छन्द का पॉचवॉ स्थान माना गया है। वेदों में स्थापित गुढ़ अर्थों के सम्यक् ज्ञान के लिए मनीषियों ने, शिक्षा ल्पिादि, जिन छः वेदौं.ों को उपादेय कहा है, उनमें छन्द—शास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है। सौं.ोपाड्.वेद— वेत्ता ही वेद को भली प्रकार से समझा सकता है। पाणिनीय शिक्षा में छन्द का महत्व स्पष्ट तथा उल्लिखित है।[1]

इससे यह विदित होता है कि भारतीय परम्परा के अनुसार छन्दों के ज्ञान के बिना वेदार्थ का ज्ञान कदापि आगे नहीं बढ़ सकता है। अतः वेदाध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि वेद अध्येता, ऋषि, देवता, छन्द आदि का पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करे और इसके अभाव में यज्ञ आदि कार्य में प्रवृत्त न हो। वेदौं.ों सहित वेद का अध्ययन करने वाला ब्राह्मण ब्रह्मलोक में महत्वपूर्ण स्थान को प्राप्त करता है।

वैदिक शब्दों तथा धातुओं के जो रूप इत्यादि पाणिनीय सूत्रानुसार ब्युत्पन्न नहीं होता, उनके लिए 'छन्दस्' विशेषण का प्रयोग तथा 'बहुलं छन्दासि' आदि सूत्रों का निर्देश वैदिक भाषा के लिए 'छन्दस्' शब्द सम्भवतः इसी दृष्टि से हुआ है। संहिताओं में अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं, उनका अधिकांश भाग छन्दोबद्ध है।

निघण्टु कोष में छन्द, स्तुतिपरक आख्याताओं में पठित है।[2] देवों की स्तुतियों में इसका निषेध होने के कारण ही सम्भवतः 'छन्दस्' नाम से प्रचलित हुआ।

1. छन्दः पादौ तु वेदस्य... ब्रह्मलोके महीयते। पा0 शि0 40—42
2. निरू0 7/15, निरू0 7/12, छन्दांसि छ्दनात्।

वैदिक छन्द अक्षरों की संख्या पर आधारित माने गये हैं।[1] वैदिक मुख्यतः सात हैं, जिनके अक्षर अपने पूर्ववर्ती छन्द से क्रमशः चार–चार अक्षर अधिक हो जाते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रातश्नुवाक के सम्बन्ध में इन सातो छन्दों के श्रोत विनियोग का निर्देश मिलता है।[2] ये मुख्य छन्द क्रमशः– गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप एवं जगति ऋग्वेद में आये हैं।[3]

अक्षर व पादों की न्यूनता व अधिकता के कारण इन सातों छन्दों के अनेक अवान्तर भेद हो गये हैं। इन मुख्य सातों छन्दों से अधिक अक्षरों वाले छन्दों को अतिछन्द कहा जाता है। शाड्.खायन श्रौत सूत्र, निदान सूत्र, उपनिदान सूत्र, सर्वानुक्रमणी, ऋक् प्रातिशाख्य, पिँ.ल तथा जयदेव कृत छन्दः सूत्र, वेंकट माधव कृत छन्दोऽनुक्रमणी, युधिष्ठिर–मीमांसक कृत वैदिक छन्दोमीमांसा आदि में छन्दों का पर्याप्त विवेचन मिलता है।

अक्षर गणना के आधार पर छन्दों की चार कोटियॉ बनायी गयी हैं– प्रजापत्य, दैव, आसुर तथा आर्ष छन्द। प्रजापति के छन्द आठ अक्षरों से प्ररम्भ होते हैं तथा क्रमशः इनमें चार–चार अक्षर अधिक हो जाते हैं। दैव छन्द क्रमशः एक–एक अक्षर बढ़ते जाते हैं। आसुर छन्दों में क्रमशः अधिकतम अक्षर पन्द्रह होते हैं तथा वे क्रमशः एक–एक अक्षर कम हो जाते हैं। प्रजापति, दैव और आसुरों के छन्द संगत होकर ऋषियों के छन्द होते हैं। आर्ष छन्दों में प्रायः मन्त्र और श्लोक मिलते हैं।[4]

इन छन्दों के नाम गणना करने पर चारो प्रकार से एक से होते हैं, जिनको स्पष्ट करने के लिए निम्न सारणी को प्रस्तुत किया जा सकता है–

छन्द	गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुप्	बृहती	पड्.क्ति	त्रिष्टुप्	जगती
प्रजापत्य	8	12	16	20	24	28	32
दैव	1	2	3	4	5	6	7
आसुर	15	14	13	12	11	10	9
आर्ष	24	28	32	36	40	44	48

1. यदक्षर परिमाणं तच्छन्दः। ऋ0 परि0 पृ0 1–7
2. तस्मात् सप्त चतुरूत्तराणि छन्दांसि प्रातरनुवाके ऽनूच्यते। तै0 ब्रा0 1/5–20
3. ऋ0 प्रा0– 16/1–8
4. ऋ0 प्रा0– 16/1–8

प्रत्येक छन्द के देवता, वर्ण तथा ऋषि का भी निर्देश इस प्रकार दर्शाया गया है–

छन्द	गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुप्	बृहती	पड्.क्ति	त्रिष्टुप्	जगती
देवता	अग्नि	सविता	सोम	बृहस्पति	वपु	इन्द्र	विश्वेदेवा
वर्ण	श्वेत	सार›.	पिश›.	कृष्ण	अरूण	लोहित	सुवर्ण
ऋषि	गौतम	भारद्वाज	अथर्वा	अ ि.रा	आश्वलायन	याज्ञ– वल्क्य	कुत्स

ऋग्वेद के दशम मण्डल में इन सातों छन्दों के प्रयोग हुए हैं। अनुष्टुप के भेदों में से निचृत्, पाद–निचृत्, विराट् और भुरिक् का भी प्रयोग दशम मण्डल में हुआ है। गायत्री के भेदों में से, 'वर्णमाना', पिपिलिका मध्या' और प्रतिश्ठा का भी प्रयोग हुआ है। पड्.क्त के भेदों में 'निचृत्', 'पाद–निचृत्', 'विराट्' और आस्तार पड्.क्त, पश्चापड्.क्त, अक्षर पड्.क्त पड्.क्त तथा संसार पड्.क्त का प्रयोग किया गया है। वृहती में निचृत्, पाद–निचृत्, विराट् और भुरिक् का प्रयोग किया गया है। शक्वरी में पाद–निचृत्, शक्वरी का प्रयोग किया गया है, इसका प्रयोग दो सूक्त में हुआ है।[1] अति छन्दों में से मात्र 'अति जगति' का ही प्रयोग दशम मण्डल में हुआ है। इसके एक भेद 'निचृत् अति जगति' का प्रयोग भी एक स्थल पर हुआ है।[2] अब प्रत्येक छन्दों पर क्रमशः विचार प्रस्तुत किया जा सकता है।

अनुष्टुप छन्द

अनुष्टुप छन्द बत्तीस अक्षरों का होता है। इसमें आठ–आठ अक्षरों के चार पाद होते हैं।[3] इस छन्द को गायत्री का ही रूप माना जाता है। महर्षि यास्क के निरूक्त में यह निर्वचन मिलता है, जिसके अनुकरण करने से यह अनुष्टुप कहलाता है। तीन पादों वाली गायत्री का यह चतुर्थ पाद द्वारा अनुकरण करता है।[4]

1. ऋग्0 10/133/3, 115/9
2. ऋग् 10/133/2
3. ऋ0 प्रा0– 17/6–14
4. अनुष्टुबनुष्टोभनात् गायत्रीमेवत्रिपदा सती चतुर्थेन पादेनानुष्टोभीति। निरू0–12

अनुष्टुप का सामान्य अक्षर है– 8+8+8+8 = 32

उदाहरण– आपो अद्यान्वचारिषं, रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्र, आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ।।[1]

इस छन्द के देवता सोम तथा इसका वर्ण पिशैं. माना गया है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित अनुष्टुप छन्दस्क ऋचाओं की संख्या 88 है।

निचृत्

इसमें 31 अक्षर होते हैं। एक पाद में एक अक्षर कम होता है। दशम मण्डल में वर्णित अनुष्टुप छन्दस्क ऋचाओं की संख्या 99 है।

उदाहरण– आभिभूरहमागमं, विश्वकर्मेण धाम्ना ।
आ वश्चित्तमा वो व्रतमा वोऽहं समितिं ददे ।।[2]

पाद–निचृत्

इसमें 29 अक्षर होते हैं। तीन पाद में एक–एक अक्षर कम होता है। दशम मण्डल में वर्णित अनुष्टुप छन्दस्क ऋचाओं की संख्या 14 है।

उदाहरण– त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रात्मना वहध्यै ।
ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नाकिर्विदाय्यः ।।[3]

विराट्

इसमें 30 अक्षर होते हैं। दो पाद में एक–एक अक्षर कम होता है। दशम मण्डल में वर्णित अनुष्टुप छन्दस्क ऋचाओं की संख्या 43 है।

उदाहरण– यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा ।।[4]
8+8+7+7=30

भुरिक्

इसमें कुल 33 अक्षर होते हैं। एक पाद में एक अक्षर अधिक होता है। दशम मण्डल में वर्णित अनुष्टुप छन्दस्क ऋचाओं की संख्या 4 है।

उदाहरण– सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्ट पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ।।[5]
8+9+8+8त्र33

---

1. ऋग्0– 10/9/9
2. ऋग्0– 10/166/4
3. ऋग्0– 10/22/5
4. ऋग्0– 10/16/13
5. ऋग्0– 10/85/40

उष्णिक् छन्द

उष्णिक् छन्द में सामान्यतः 28 अक्षर होते हैं। यह तीन पादों से समन्वीत होता है। इसके पूर्ववर्ती दो पाद आठ–आठ अक्षरों के होते हैं, तृतीय पाद बारह अक्षरों का होता है। उष्णिक् शब्द 'उष्णिष' के आधार पर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ होता है– पगड़ी। जिस प्रकार पगड़ी शरीर के सबसे ऊँचे भाग सिर पर स्थित होने से दूर से ही स्पष्टतः दिखलायी देती है, उसी प्रकार उष्णिक छन्द के अन्तिम चरण में चार अक्षर अधिक होने से यह बढ़ा हुआ भाग स्पष्टतः दिखलायी देता है। पगड़ी की तुलना के आधार पर इसका उष्णिक नाम पड़ा। महर्षि यास्क के निरूक्त में इसके तीन निर्वचन प्राप्त होते हैं–

1. यह छन्द गायत्री की अपेक्षा अधिक अक्षरों से युक्त है, अतः ''उष्णिक्'' कहलाया।[1]
2. इच्छार्थक ''ष्णिह'' धातु से ''उष्णिक्'' बना है। अतः यह छन्द देवताओं कां अत्यन्त प्रिय है।
3. तुलनात्मक दृष्टि से तथा गायत्री की अपेक्षा 4 अधिकतम् अक्षर इस छन्द के ''उष्णिक्'' स्थानीय हैं, जिससे इसका नाम उष्णिक् पड़ा है।[2]

इस छन्द के देवता सविता तथा इसका वर्ण सारैं. कहा गया है। उष्णिक् छन्द की सामान्य अक्षर संख्या 8+8+12 28 मानी गयी है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में 5 ऋचाओं में उष्णिक् छन्द का प्रयोग मिलता है।[3]

निचृत्

इसमें 27 अक्षर होते हैं। एक पाद में एक अक्षर कम होता है। दशम मण्डल में वर्णित निचृत् उष्णिक् छन्दस्क ऋचाओं की संख्या 4 है।

उदाहरण– यज्ञे यज्ञे स मर्त्यो देवान्त्सपर्यति ।
यः सुभ्रै दीर्घश्रुत्तमः आविवासात्येनान् ।।[4]
7+6+8+6=27

---

1. ''उष्णिगुत्स्नाता भवति'' नि0 7/12
2. ''स्निहयतेवास्तात्कान्ति कर्मणः'' निरू0 7/12
3. ऋग0– 10/22/7, 26/1.2, 105/2, 145/2
4. ऋग0– 10/93/2

विराट्

इसमें 26 अक्षर होते हैं। दो अक्षर कम होता है। विराट् उष्णिक् छन्दस्क ऋचाओं की संख्या 3 मात्र है।

उदाहरण– अव नो वृजिना, शिशी ह्यृचा वनेमानृचः ।
ना ब्रह्मा यज्ञ ऋधम्जोषति त्वे ।।[1]

भुरिक्

भुरिक् उष्णिक् में कुल 29 अक्षर होते हैं, इसमें एक अक्षर अधिक होता है। दशम मण्डल में उष्णिक् छन्दस्क केवल एक ही ऋचा है।[2]

गायत्री

गायत्री का स्थान वैदिक छन्दों में अग्रणी है। निरूक्तकार यास्क गायत्री की ब्युत्पत्ति स्तुत्यर्थक 'गै' धातु से मानते हैं और इसके तीन चरण से युक्त होने से 'त्रि' तथा गमन को विपरित करके गायत्री शब्द का निर्माण हुआ है। ब्रह्माजी मुख से इस छन्द की उत्पत्ति होने का प्रमाण मिलता है।[3]

गायत्री छन्द में कुल 24 अक्षर होते हैं। आठ–आठ अक्षरों का तीन चरण होता है। इस छन्द के देवता अग्नि तथा इसका वर्ण श्वेत माना गया है।[4] ऋग्वेद दशम मण्डल में वर्णित गायत्री छन्दस्क ऋचााओं की संख्या 48 है।

उदाहरण– शंनोदेवी रभिष्टय आपोभवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रववन्तुनः।।[5]
8+8+8=24

वर्धमाना गायत्री

ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित तीन ऋचााओं में वर्धमाना गायत्री का उल्लेख मिलता है। इसके तीन पादों में क्रमशः 6+7+8=21 अक्षर होते हैं।

उदाहरण– ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्। अपोयाचामिभेषजम्।।[6]

---

1. ऋग्0– 10/105/8
2. ऋग्0– 10/105/3
3. गायत्री गायते स्तुति कर्मणः। जिमना वा विपरीता गायतो मुखात् उद्पतत् इति च ब्राह्मणम्। निरू0 7/12
4. अग्ने गायत्रवत्... संवभूव। ऋ0 प्रा0 17/6/14
5. ऋग्0– 10/9/4
6. ऋग्0– 10/9/5

प्रतिष्ठा

ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित केवल एक ही ऋचााओं में प्रतिष्ठा गायत्री का उल्लेख मिलता है। इसके तीन पादों में क्रमशः 8+7+6=21 अक्षर होते हैं।

उदाहरण– आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे3मम। ज्योक् च सूर्यं दृशे।।[1]

पिपिलिका मध्या

ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित केवल एक ही ऋचा में पिपिलिका मध्या गायत्री का उल्लेख मिलता है। इसके तीन पादों में क्रमशः 8+8+5=21 अक्षर होते हैं।

उदाहरण– अदाभ्येन शोचिषा ऽग्रे रक्षस्त्वंदह। गोपा ऋतस्य दीदिहि।।[2]

निचृत् पिपिलिकामध्या

निचृत् पिपिलिकामध्या का भी प्रयोग केवल एक ही ऋचा में हुआ है। इसके तीन पादों में क्रमशः 7+7+5=19 अक्षर होते हैं।

निचृत् गायत्री

निचृत् गायत्री का प्रयोग ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित कुल 26 ऋचााओं में हुआ है। कुल 21 अक्षर होते हैं।

उदाहरण– जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन।तं त्वा हवन्त मर्त्याः।।[3]

8+8+7

पाद निचृत् गायत्री–

पाद निचृत् गायत्री का प्रयोग दशम मण्डल में कुल 5 ऋचाओं में उल्लेख हुआ है। कुल 21 छन्द होते हैं–

उदाहरण– तं मर्ता अमर्त्य घृतेनाग्निं सपर्यत। अदाभ्यं गृहपतिम्।[4]

6+8+3

विराट् गायत्री–

विराट् गायत्री का प्रयोग ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित कुल 18 ऋचााओं में हुआ है। इसमें कुल 21 अक्षर होते हैं।

उदाहरण– तवमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः।तवं वृशन् वृथेदसि।।[5]

---

1. ऋग्0– 10/9/7
2. ऋग्0– 10/118/6
3. ऋग्0– 10/118/5
4. ऋग्0– 10/118/6
5. ऋग्0– 10/153/2

स्वराट् गायत्री

केवल एक ही ऋचा में का प्रयोग ऋग्वेद में स्वराट् गायत्री का उल्लेख है। इसमें कुल 26 अक्षर अर्थात् दो पाद में एक–एक अक्षर अधिक होता है।

उदाहरण– जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति।

पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः।।[1]

आर्ची स्वराट् गायत्री

आर्ची स्वराट् गायत्री का भी प्रयोग दशम मण्डल में वर्णित एक ही ऋचा में हुआ है। इसमें कुल 20 अक्षर होते हैं।

उदाहरण– सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात्। अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः।।[2]

7+6+7

जगती

जगती छन्द में कुल 48 अक्षर होते हैं। इसमें 12–12 अक्षरों के चार पाद होने से इसकी संख्या 48 होती है।[3] निरूक्तकार यास्क ने इसका निर्वचन– ''जगति गततमं छन्दः'' अर्थात् सबसे आगे आया हुआ अन्तिम छन्द कहा है।[4] 'आचार्य दुर्ग' ने इसका निर्वचन इस प्रकार किया है– 'यह छन्द जल की लहरों की भाँति विस्तृत होता है।'' अर्थात् जल के समान विस्तार होने के कारण इसे जलकर कहा है। इस सम्बन्ध में यास्क एक उल्लेख देते हुए कहते हैं कि– स्रष्टा ने इसका सृजन किया है।' प्रस्तुत छन्द के देवता विश्वेदेवाः तथा इसका वर्ण सुवर्ण है।

ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित कुल 53 ऋचााओं में इस छन्द का उल्लेख मिलता है।

उदाहरण– पतँ.मक्तमसुरस्य, मायया हृदा पश्यन्ति मनसाविपश्चितः।

समुद्रे अन्तः कवयो विचक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः।।[5]

12+12+12+12=48

---

1. ऋग्0– 10/158/2
2. ऋग्0– 10/158/1
3. प×चाशज्जगती......बहुलंवृत्तम्। ऋ0 प्रा0 16/74
4. निरू0 7/13
5. ऋग्0– 10/177/1

निचृत्

निचृत् जगती का प्रयोग, ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित कुल 87 ऋचााओं में हुआ है। इसमें एक पाद में एक अक्षर कम होता है। कुल 47 अक्षर होते हैं।

उदाहरण– उषानक्ता बृहती सुपेशसा द्यावाक्षामा वरूणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रं हुवे मरुतः पर्वतॉ अप आदित्यान् द्यावा पृथिवी अपः स्वः।।[1]
12+12+12+11=47

पाद निचृत् जगती

पाद निचृत् जगती का प्रयोग, ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित कुल 45 ऋचााओं में हुआ है। इसमें एक पाद में एक अक्षर कम होता है। कुल 48 अक्षर होते हैं।

उदाहरण–

इन्दाग्नी वृत्र हत्येशु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा समसमाोमोकसा अन्तरिक्षं मह्या पप्नुरोजसा सोमो घृत श्रीर्महिमानभीरयन्।।[2]
12+11+11+12=45

विराट् जगती–

विराट् जगती का प्रयोग, ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित कुल 96 ऋचााओं में हुआ है। इसमें कुल 48 अक्षर होते हैं। इसके दोनों पाद में एक–एक अक्षर कम होता है।

उदाहरण– आ वो धियं यज्ञिया। वर्त ऊतये देवा देवी यजतां यज्ञियामिह।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ।।[3]
12+12+11+11=46

भुरिक् जगती–

भुरिक् जगती का प्रयोग, ऋग्वेद के दशम मण्डल में केवल एक ऋचा में हुआ है। इसमें कुल 49 अक्षर होते हैं। इसके एक पाद में एक अक्षर अधिक होता है।[4]

12+12+12+13=49

---

1. ऋग्0– 10/36/1
2. ऋग्0– 10/65/2
3. ऋग्0– 10/101/9
4. ऋग्0– 10/5/2

स्वराट् जगती

स्वराट् जगती का प्रयोग भी ऋग्वेद के दशम मण्डल एक ऋचा में ही हुआ है।[1] इसमें 50 अक्षर होते हैं।

त्रिष्टुप

त्रिष्टुप छन्द का वैदिक छन्दों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रयोग ऋग्वेद में सर्वाधिक हुआ है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 253 स्थलों पर ही त्रिष्टुप छन्द का प्रयोग हुआ है।[2] निरूक्तकार यास्क ने इसका निर्वचन 'तर्णितम' (सर्वाधिक विस्तृत) छन्द कहकर किया है। इस छन्द के देवता इन्द्र तथा इसका वर्ण लोहित है। इसके महत्व को दृष्टि में रखकर कात्यायन ने इसकी परिभाषा दी है, जहॉ पर छन्द और देवता का निर्देश न हुआ हो, वहॉ इन्द्र देवता और त्रिष्टुप छन्द समझना चाहिए।[3]

उदाहरण— गर्भे नु नौ जनिता दम्पती क र्देवस्त्वष्टा सविताविश्वरूपः ।
नकिरस्य प्रमिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी ।।[4]

निचृत् त्रिष्टुप

निचृत् त्रिष्टुप का प्रयोग दशम मण्डल में 288 ऋचाओं में मिलता है। इसमें एक पाद में एक अक्षर कम होता है। कुल 43 अक्षर होते हैं। 11+11+10+11=43

उदाहरण— य आत्मदाबलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मैदेवाय हविषाविधेम।।[5]

पादनिचृत्

पादनिचृत् त्रिष्टुप का प्रयोग दशम मण्डल में 35 ऋचाओं में मिलता है। इसके तीन पाद में एक–एक अक्षर कम होता है। कुल 41 अक्षर होते हैं।

उदाहरण— वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दाक्षायभियसं दधाति।
अध्यनच्च व्यनच्च ससिनसंतेनवन्त प्रभृतामदेषु।।[6]
10+11+10+10=41

---

1. ऋग्0— 10/114/4
2. निरू0 7/12
3. अनादेशो तु इन्द्रो देवता त्रिष्टुप छन्दः। सर्वानु0— 1/12
4. ऋग्0— 10/10/5
5. ऋग्0— 10/121/2
6. ऋग्0— 10/120/2

विराट् स्थाना

ऋक् प्रातिशाख्य के अनुसार त्रिष्टुप का एक या अनेक पाद 9 या 10 अक्षरों का हो और एक या अनेक पाद ग्यारह अक्षरों का हो, तब उस अवस्था में त्रिष्टुप का अभिधान विराट् स्थाना होता है।[1] ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित विराट् स्थाना त्रिष्टुप् 50 ऋचााओं में मिला है।

विराट् रूपा

ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित कुल 6 ऋचाओं में विराट् रूपा का उल्लेख हुआ है। इसमें भी कुल 41 अक्षर होते हैं। एक पाद में आठ अक्षर शेष तीनों पादों में 11–11 अक्षर है।

11+11+11+8=41

विराट् त्रिष्टुप

विराट् त्रिष्टुप में कुल 42 अक्षर होते हैं। दो पाद में एक–एक अक्षर कम होते है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 170 ऋचाओं में विराट् त्रिष्टुप का प्रयोग मिला है।

उदाहरण– यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमा प्रदियाो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम।।[2]

10+11+10+11=42

भुरिक्

भुरिक् त्रिष्टुप में कुल 45 अक्षर होते हैं। इसके एक पाद में एक अक्षर अधिक होते है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 41 ऋचाओं में भुरिक् त्रिष्टुप का प्रयोग मिलता है। इनके पादों की अक्षर संख्या क्रमशः 11+11+12+11=45 है।

स्वराट्

स्वराट् त्रिष्टुप में दो अक्षर अधिक होते हैं। इसमें कुल 46 अक्षर होते हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 5 ऋचाओं में स्वराट् त्रिष्टुप का प्रयोग मिलता है। इनके पादों की अक्षर संख्या क्रमशः 11+11+13+11=46 है।

---

1. ऋ0 प्रा0 16/67
2. ऋग्0– 10/121/4

पङ्क्ति

वैदिक छन्दों में बृहति के बाद पङ्क्ति का स्थान है। इसमें आठ–आठ अक्षर के पॉच पाद होते हैं। कुल मिलाकर इस छन्द में 40 अक्षर होते हैं।[1]

वैदिक छन्दों में अक्षरों की अधिक महत्ता के कारण वे सभी छन्द जिसमें अक्षर संख्या 40 हो चाहे पाद के हों या पॉच पाद के पङ्क्ति छन्द के अन्तरगत आते हैं, परन्तु 8–8 पादों पञ्चपदा पङ्क्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। दशम मण्डल में इसका उदाहरण इस प्रकार है–

वि हि सोतो रसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत।
यत्रामद द्वृषाकपि रर्यः पुष्टेषुमत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।[2]
8+8+8+8+8=40

यह पङ्क्ति के मुख्य स्वरूप को प्रदर्शित करती है, इसलिए इस छन्द का नाम पङ्क्ति छन्द रखा गया है। इस छन्द के देवता मित्र और वरूण तथा इसका वर्ण नील है।[3] ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 39 ऋचाओं में पङ्क्ति छन्द का उल्लेख किया गया है।

आस्तार पङ्क्ति

यदि 8–8 अक्षरों वाले दो पाद आदि में हो तो वह पङ्क्ति आस्तार पङ्क्ति कहलाती है।[4] इसके प्रत्येक पाद में क्रमशः 8+8+12+12=40 अक्षर होते हैं।

प्रस्तार पङ्क्ति

यदि 8–8 अक्षरों वाले दो पाद अन्त में हो तो वह पङ्क्ति प्रस्तार पङ्क्ति कहलाती है।[5] 12+12+8+8=40

इसी प्रकार थोड़े अन्तराल से 'आस्तार, विस्टार' तथा 'संस्तार' पङ्क्ति होती है।

आस्तार– 8+8+12+12=40
विस्टार– 8+12+12+8=40
संस्तार– 12+8+8+12=40

---

1. पञ्चपदापङ्क्तिः– निरू0 7/12, पङ्क्तिरष्टाक्षशः। ऋ0 प्रा0 16/54
2. ऋग्0– 10/86/1
3. ऋ0 प्रा0 17/8/14
4. आस्तारपङ्क्तिरादितः। ऋ0 प्रा0 16/59
5. प्रस्तारपङ्क्तिरन्ततः। ऋ0 प्रा0 16/60

निचृत्

निचृत पर्ङि.त में एक अक्षर कम होता है। इसमें कुल 39 अक्षर होते हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 36 ऋचाओं में निचृत पर्ङि.त का प्रयोग मिलता है। इनके प्रत्येक पादों की अक्षरों का क्रम इस प्रकार है–

10+10+10+9=39

पाद–निचृत

इसके तीन पादों में एक–एक अक्षर कम होता है। इसमें कुल 37 अक्षर होते हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 7 ऋचाओं में पाद–निचृत पर्ङि.त का प्रयोग मिलता है। इनके प्रत्येक पादों की अक्षरों का क्रम इस प्रकार है–

7+8+7+7+8=37

विराट्

इसमें कुल 38 अक्षर होते हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 19 ऋचाओं में विराट् पर्ङि.त का उल्लेख मिलता है। पादों और अक्षरों का क्रम इस प्रकार है–

8+7+8+7+8=38

बृहती

बृहती छन्द सातों छन्दों का मध्यवर्ती माना गया है। इस छन्द में चार पाद और 36 अक्षर होते हैं, जिसमें तीसरा पाद बारह तथा शेष 8–8 अक्षरों के होते हैं।[1] निरूक्तकार यास्क ने बृहती का निर्वचन इस प्रकार किया है– परिबृहत् अर्थात् बढ़ा हुआ होने के कारण इसे बृहती कहा गया है।[2] इस छन्द के देवता बृहस्पति तथा इसका वर्ण कृष्ण है।[3] ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 9 ऋचाओं में बृहती का उल्लेख मिलता है।

इसका सामान्य अक्षर इस प्रकार है– 8+8+12+8=36

निचृत्

8–8 ऋचाओं में निचृत् बृहती का उल्लेख दशम मण्डल में प्राप्त होता है। इसमें कुल 35 अक्षर होते हैं, एक अक्षर कम होता है। पादों और अक्षरों का क्रम इस प्रकार है–

8+8+11+8=35

---

1. ऋ0 प्रा0 16/45
2. बृहतीपरिर्बृहणात्। निरू0 7/12
3. ऋ0 प्रा0 17/6/14

पाद निचृत्–

केवल दो ऋचाओं में इसका उल्लेख मिलता है। इसमें दो अक्षर कम कुल मिलाकर 34 अक्षर होते हैं। सामान्य अक्षर इस प्रकार है– 8+10+8+8=34

भुरिक

भुरिक बृहती में कुल 37 अक्षर होते हैं, एक अक्षर अधिक होता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित केवल एक ही ऋचा में भुरिक बृहती का उल्लेख मिलता है।

अति जगती

अति जगती 52 अक्षरों की होती है।[1] यह अति छन्द में आता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित केवल एक ही ऋचा में अति जगती का उल्लेख मिलता है। एक अक्षर कम होने से निचृत् अति जगती होती है। इसमें 51 अक्षर होते हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित केवल एक ही ऋचा में इसका भी उल्लेख मिलता है।

पाद–निचृत् शक्वरी

ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित दो ऋचाओं में पाद–निचृत् शक्वरी का उल्लेख मिलता है। इसमें कुल 53 अक्षर होते हैं। इसके पॉच पाद में क्रमशः 11+10+10+11+11=53 अक्षर होते हैं।[2]

स्वर

स्वर लौकिक और वैदिक दोनों वाड़्.मय में शब्दों के उचचारण के साथ सम्बन्ध रखता है। 'स्वर' शब्द 'स्व्' धातु से अप् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है।

वेदों के वास्तविक अभिप्राय तक पहॅुचने के लिए जितने भी साधन हैं, उनमें स्वर का सबसे प्रमुख स्थान है। ब्याकरण और निरूक्त जैसे प्रमुख साधन भी इसके सहयोग से ही वेदार्थ तत्व का प्रतिपादन कराते हैं। स्वरशास्त्र के विरोध होने पर ये दोनों शास्त्र वेदार्थ ज्ञान में असमर्थ बने रहते हैं। स्वर के बिना मन्त्र का वास्तविक अभिप्राय आात ही नहीं रहता है, अपितु अर्थ का ज्ञान नितान्त आवश्यक माना गया है।

---

1. प्रथमातिजगत्यासां द्विप×चाशब्दक्षराः। ऋ0 प्रा0 16/80
2. ऋग्0 10/115/9, 133/3

स्वर लौकिक और वैदिक दोनों वाड्.मयों में अनेक अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। निघण्टु में यह वाड्.मय पठित है।[1] सामान्य रूप से पाणिनीय ब्याकरण और वेद में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित के रूप में स्वर अभिहित हैं। वेदों में ऋग्वेद के सूक्तों, यजुर्वेद और सामवेद के मन्त्रों के ऊपर ऋषि, देवता और छन्दों के साथ स्वरों का भी निर्देश रहता है। ये मन्त्रों के स्वर से भिन्न हैं।

इनका सम्बन्ध मन्त्रों के पाठ की दृष्टि से उच्चारण के साथ नहीं होता है, अपितु गायन के साथ होता है। ये मन्त्रों के नहीं अपितु स्वरों के छन्द कहे गये हैं। यहॉ उदात्त आदि स्वर प्रतिपाद्य नहीं है। इस पर अधिकांश कार्य किया जा चुका है, जिस प्रकार ऋषि, देवता और छन्दों के विषय में विचार प्रस्तुत किया गया है, उसी प्रकार गायन से सम्बद्ध छन्दों के स्वरों पर विचार प्रसतुत करना हमारा अभिप्राय है।

वेदों में गायत्री आदि सात छन्दों का प्रयोग किया गया है। इनमें प्रत्येक छन्द का अपना–अपना स्वर है। यथा–

छन्द	**स्वर**
गायत्री	षड्ज
उष्णिक्	ऋषभ
अनुष्टुप्	गान्धार
बृहती	मध्यम
पर्ङि.त	प×चम
त्रिष्टुप्	धैवत्
जगती	निषाद।[2]

1. स्वर इति वाड्.नाम। निघ0 1/11
2. स्वराः षड्जभगाान्धार मध्यम प×चम धैवत निषादाः। पि0 छं0 सू0 3/65

इसके अतिरिक्त अतिछन्द अति जगती का स्वर निषाद और शक्वरी का धैवत् है।

1. **षड्ज स्वर–** यह गायत्री का स्वर है। गायत्री तीन पादों वाली 24 अक्षरों की होती है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में गायत्री छन्द के 48 मन्त्र हैं।[1]
2. **ऋषभ स्वर–** यह उष्णिक् का स्वर है। उष्णिक् छन्द तीन पाद अथवा सात अक्षर युक्त चार पादों वाली 28 अक्षरों की होती है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में उष्णिक् छन्द के 5 मन्त्र मिलते हैं।[2]
3. **मध्यम स्वर–** यह चार पाद एवं 36 अक्षरों वाले बृहती छन्द का स्वर है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में बृहती छन्द के 9 मन्त्र मिलते हैं।[3]
4. **गान्धार–** यह अनुष्टुप् छन्द का स्वर है। अनुष्टुप् छन्द बत्तीस अक्षरों से युक्त चार पादों वाला होता है। ऋग्वेद के दषम मण्डल में इसके 99 मन्त्र मिलते हैं।[4]
5. **प×चम स्वर–** यह पर्ङि.त छन्द का स्वर है। चार या पॉच पादों वाली पर्ङि.त 40 अक्षरों वाली होती है। दशम मण्डल में इसके 39 मन्त्र हैं।[5]

---

1. क– तस्माअरं गमाय वो...जनयथा च नः।। ऋग्0 10/9/3
   ख– संनोदेवी......स्रवन्तुनः।। ऋग्0 10/9/4
   ग– ऋग्0 10/19/6, 57/6, 101/4, 118/4, 127/4, 156/5
2. क– आ न इन्द्र पृच्छसे.....यद्धन्नमानुपम्।। ऋ0 10/22/7
   ख– ऋ0 10/26/1.2, 105/2, 145/3
3. त्वां यज्ञेभिरूक्थै.....विवक्षसे।।
   ऋग्0 10/24/2, ऋ0 10/62/6, 93/1, 126/7, 132/1, 150/2
4. क– इदमापः प्र वहत यत् किंच दुरितं मयि।
   यद्वा हमींीदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम्।। ऋग्0 10/9/8
   आपो........सृज वर्चसा।। ऋग्0 10/9/9
   ख– ऋग्0 10/14/16, 16/11, 20/2, 85/2,4
5. क– वतो बतासि यम नैव .... लिबुजेववृक्षम्।। ऋ0 10/12/13
   ख– सं गच्छस्व......तन्वा सुवर्चाः।। ऋग्0 10/14/8
   ग– भद्रं नो आपिवातय.......गावो न यवसे विवक्षसे।। ऋ0 10/25/1
   घ– ऋ0 10/47/2, 49/3, 56/4, 63/76

6. **धैवत् स्वर–** यह त्रिष्टुप छन्द का स्वर है। चार या पॉच पादों से युक्त 44 अक्षरों वाला होता है। दशम मण्डल में इसके 253 मन्त्र हैं।[1] इसके अतिरिक्त शक्वरी के भी स्वर धैवत् हैं।
7. **निषाद स्वर–** चार पाद एवं 48 अक्षरों से युक्त जगती का स्वर निषाद है। दशम मण्डल में इसके 53 मन्त्र हैं।[2] अति जगती का भी स्वर निषाद है।

---

1. क– वेपि होत्र मुत पोत्रं जनानां मान्धातासि द्रविणोदा ऋतावा। ऋ0 10/2/2
   ख– यद्वो वयं प्रमिनाम......ऋतुभि कल्पयाति। ऋ0 10/2/4
   ऋग्0 10/5/2, 14/10, 18/2, 30/5, 31/3, 142/3
2. क– चोदयतं सूनृताः ....मघवत्सु नमस्कृतम्। ऋग्0 10/39/2
   ख– अहमिन्द्रो रोधो वक्षो.....मातरिश्वने।। ऋ0 10/48/2
   ऋग्0 10/49/4, 65/5, 66/3, 96/7, 167/3, 170/2

South Asia Subcommittee

Encoding of Vedic

1 Introduction

The purpose of this page is to record the current state of proposals, discussions, and consensus on the encoding of Vedic. The discussions take place on the southasia@unicode.org mailing list.

2 Documents

The Everson, Scharf et al. proposals:

- 2008-01-28: L2/08-050
- 2007-10-18: L2/07-343; differences with L2/07-230 in L2/07-394; additional evidence in L2/08-035
- 2007-07-26: L2/07-230; history of that document in L2/07-262
- 2007-04-26: L2/07-095R
  - Comments in L2/07-388
    - Comments in L2/07-400

The Government of India proposals:

- 2008-01-28: L2/08-042, L2/08-043
- 2007-10-10: L2/07-395, L2/07-396, L2/07-397
- 2006-05-10 L2/06-185

Comparasions:

- 2007-10-18: L2/07-401: L2/07-343 vs. L2/07-39{5,6,7}
- 2007-08-08: L2/07-271: L2/07-230 vs. L2/06-185
    - Response in L2/07-386
        - Comments in L2/07-400

3 Areas of work

The reminder of this page lists the various areas that need work. It follows the organization of L2/07-343, so as to able to work on manageable chunks.

Each area starts with the relevant characters proposed in L2/07-343, L2/08-050, L2/07-39x and L2/08-042. Those that have been accepted during the October 2007 UTC meeting #113 are preceded with a green "y".

This is followed by a summary of the discussion on the list. When a discussion item has been resolved by latest iterations of the proposal, that discussion has been omitted. In other words, only the discussion relevant to the current disagreements is included.

3.1 Prishthamatra

In the Prishthamatra orthography, a number of vowels sounds are written using different forms than the modern orthography, in dependent form:

sound	Prishthamatra	modern
ke	ाक	के
kai	ाके	कै
ko	ाका	को
kau	ाको	कौ

Three approaches have been considered:

1. encoding of a combining character for the left side part, and use of the existing vowel signs U+0947 DEVANAGARI VOWEL SIGN E, U+093E DEVANAGARI VOWEL SIGN AA and U+094B DEVANAGARI VOWEL SIGN O.
2. encoding of four combining characters for the four vowel signs
3. use of the same sequences as for the modern representation and and higher-protocol to trigger a rendering in one or the other orthography.

L2/08-050 (and earlier L2/07-230) and Peter Constable favor 1:

accepted	Everson/Scharf				Govt. India		name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
	ॎ		94e				devanagari vowel sign prishthamatra e

The Government of India favors 3. Sobi, on the southasia list, 2008-01-03:

> [...] we have already shown serious concern about the code point in our comments document L2/07-388, observation No 3. We still retain our same stands that Prishthamatra is not advisable to be separately encoded.
>
> In reference to the comment made in 2.1 in document no L2/07-343 we are of the opinion that font may handle such situation however it may need rendering engine reordering support as it is now present for Devanagari short i matra.

Eric Muller favors 2. On the southasia list, 2008-11-13:

> The model that has been followed so far in Devanagari is to encode each vowel sign separately, even if they can be analyzed graphically as composites. For example, we have U+094B DEVANAGARI VOWEL SIGN O, and we don't use the sequence <U+093E DEVANAGARI VOWEL SIGN AA, U+0947 DEVANAGARI VOWEL SIGN E> to represent a vowel sign o.
>
> The current encoding proposal would break that model, by introducing a single new coded character, which could be used in combination with other coded characters for vowel signs. The question is whether we want to go down that path or whether we want to stick to the current model.
>
> Keeping the current model would suggest four coded characters
>
> > devanagari vowel sign prishthamatra e
> > devanagari vowel sign prishthamatra ai
> > devanagari vowel sign prishthamatra o
> > devanagari vowel sign prishthamatra au
>
> The last three coded characters would be "two part" vowels, which have received two treatments in Unicode: with a canonical decomposition (scripts of India) or without (Khmer). If I understand correctly, the canonical decomposition was primarily a concession to implementations and was not primarily intended to depart from the model of atomic vowel signs.

As Peter Constable pointed out, all three approaches suffer from confusables: काक would is either kaaka in modern orthography (<915, 93E, 915>) or kake in Prishthamatra orthography (<915, 915, 94e> under 1 and 2, and <915, 915, 947> under 3).

3.2 Rigvedic

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)

		07-343	08-050		07-39x	08-042	
		1cdc	1ce0			1ce7	vedic tone rigvedic kashmiri independent svarita vaidika uurdhva vakra rekhaa

Peter Scharf, on the southasia list, 2007-11-07:

> Although Scharf and Everson provide ample evidence in European and Indian printed editions to justify the encoding of 1cdc (see n3366 figure 3, p. 14), manuscript evidence of the historical indigenous Indian use of the character is sought to allay Joshi's reservations that it may be a modern editorial invention.

Sobi, on the southasia list, 2008-01-03

> In the Indian editions of Rigveda Khilani 1.11.4 and 1.12.7 (Poona edition), the sign is clearly depicting numeral '8' in Devanagari (southern-marathi numeral style) as an accent mark. This has been further commented and confirmed by Dr. B.B.Choubey in his 'Vedic Svarita Mimansa' (Hoshiyarpur Edition,1972 pg:107), unlike what is indicated in the documentary support under 3c and 3d in document L2/07-343.
>
> There could be a possibility that 1CDC is based on North Indian-Hindi numeral '8', where the upper stroke of numeral '8' is horizontal as compared to the upper stroke of southern variety of numeral '8' which shows the same stroke angularly.
>
> Therefore we propose the following:
>
> Instead of giving separate code as suggested in L2/07-343 , the code point A8E8 can be modified to look like more or less horizontal '8', which could double up for 1CDC VEDIC TONE RIGVEDIC KASHMIRI INDEPENDENT SVARITA
>
> Further, it must be noted that neither of the two proposals provide documentary support for this code A8E8. So now we are left with two alternatives:
>
> 1.To delete A8E8 (L2/07-343), although it may cause an inelegant gap; and to have a separate code for 1CDC
>
> 2.Or to keep A8E8 with slight change in the form which can be effectively used as VEDIC TONE RIGVEDIC KASHMIRI INDEPENDENT SVARITA and also as combining Devanagari Digit Eight in Samaveda if need arises(since it is not yet found).
>
> We would prefer the second alternative to encode 1CDC under Samaveda and this will be effected in our Revised Combined Proposal

Peter Scharf, on the southasia list, 2008-01-15

> The 8 was a typographic substitute for what is shown in the mss. I have now provided the mss evidence in [L2/08-035].

3.3 Samavedic, letters and digits

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
	० ◌	a8e0	a8e0	० ◌	8b4	a8e0	combining devanagari digit zero vaidika saamasvara anka shuunya
	१ ◌	a8e1	a8e1	१ ◌	8b5	a8e1	combining devanagari digit one vaidika saamasvara anka eka udatta
	२ ◌	a8e2	a8e2	२ ◌	8b6	a8e2	combining devanagari digit two vaidika saamasvara anka dvi svarita
	३ ◌	a8e3	a8e3	३ ◌	8b7	a8e3	combining devanagari digit three vaidika saamasvara anka tri anudatta
	४ ◌	a8e4	a8e4	४ ◌	8b8	a8e4	combining devanagari digit four vaidika saamasvara anka chatur
	५ ◌	a8e5	a8e5	५ ◌	8b9	a8e5	combining devanagari digit five vaidika saamasvara anka pancha
	६ ◌	a8e6	a8e6	६ ◌	8ba	a8e6	combining devanagari digit six vaidika saamasvara anka shatt
	७ ◌	a8e7	a8e7	७ ◌	8bb	a8e7	combining devanagari digit seven vaidika saamasvara anka sapta
	८ ◌	a8e8	a8e8	८ ◌		a8e8	combining devanagari digit eight vaidika saamasvara anka ashtta
	९ ◌	a8e9	a8e9	९ ◌		a8e9	combining devanagari digit nine vaidika saamasvara anka nava
	अ ◌	a8ea	a8ea	अ ◌	8bc	a8ea	combining devanagari letter a vaidika saamasvara abhinihita
	उ ◌	a8eb	a8eb	उ ◌		a8ee	combining devanagari letter u vaidika saamasvara u
		<a8e3, a8eb>	<a8e3, a8eb>	२उ ◌	8c5	a8f0	vaidika saamasvara svarita dviu
							combining devanagari letter ka

	क ◌	a8ec	a8ec	क ◌		a8ed	vaidika saamasvara ka
		<a8e3, a8ec>	<a8e3, a8ec>	३क ◌	8c6	a8f1	vaidika saamasvara svarita trika
	न ◌	a8ed	a8ed	न ◌	8bd	a8eb	combining devanagari letter na vaidika saamasvara namana
	प ◌	a8ee	a8ee	प ◌	8cb	a8f2	combining devanagari letter pa vaidika saamasvara prannatam
	र ◌	a8ef	a8ef	र ◌	8bf	a8ec	combining devanagari letter ra vaidika saamasvara ra
		<a8e1, a8ef>	<a8e1, a8ef>	१र ◌	8c0	a8ef	vaidika saamasvara svarita ekara
		<a8e2, a8ef>	<a8e2, a8ef>	२र ◌	8c1	removed	vaidika saamasvara dvi ra
		<a8e3, a8ef>	<a8e3, a8ef>	३र ◌	8c2	removed	vaidika saamasvara tri ra
		<a8e4, a8ef>	<a8e4, a8ef>	४र ◌	8c3	removed	vaidika saamasvara chatur ra
		<a8e5, a8ef>	<a8e5, a8ef>	५र ◌	8c4	removed	vaidika saamasvara pancha ra
	वि ◌	a8f0	a8f0	वि ◌	8ca	a8f3	combining devanagari letter vi vaidika saamasvara vinata
	ऽ ◌	a8f1	a8f1	ऽ ◌	8c8	a8f4	combining devanagari sign avagraha vaidika saamasvara dirgibava

Even though the two proposals have the same approach and have considerable overlap, no characters in this group were accepted by the UTC at its October 2007 meeting, because there was no consensus on whether combining characters or ruby annotations are the best approach.

Note also that L2/07-343 proposes to use sequences where L2/07-39x proposes atomic characters.

Eric Muller and Peter Scharf, on the southasia list, 2007-11-08:

> [Eric] I read the note http://sanskritlibrary.org/VedicUnicode/SLTN1.pdf which discusses ruby. As far as I can tell, the arguments are:

- unlike the general case of ruby in Japanese where the ruby base can be multiple characters/syllables, here the ruby base is always an akshara, so there is no scoping issue (and that scope is similar to that of other combining marks such as the vowel signs)

- the set of strings which appear as ruby text is a small, fixed repertoire

Here are a few counter arguments:

- looking the examples, I can't help but see the very mechanism of ruby at work, i.e. a mechanism of inter linear annotations rather than modifications of letters (which is what combining marks are generally used for)

- since the Jaiminiya tradition clearly requires a ruby implementation, an argument for combining marks based on availability of implementations is also one that suggests that the Jaiminiya tradition is a second class citizen

> [Peter]: No. The Jaiminiya notation has scoping issues that warrant Ruby just as Japanese does. These issues do not apply to the Kauthuma and Ranayaniya annotation methods.
>
> > [Eric]: My point is that if you go for combining marks because you expect implementations to be more readily available for combining marks than for ruby, and since Jaiminiya requires ruby, then you are willing to leave Jaiminiya behind, i.e. treat it as a second class system.

- the fact that there is no scoping issue and that combining characters would "work" is *not* an argument *against* ruby; it's only a necessary condition for combining marks

> [Peter]: Macrons, circumflexes, and accent marks in Roman could be handled by Ruby too, but they aren't.
>
> > [Eric]: But the accents in Latin do not write annotations, they are used to form new letters. One test is whether the text is still meaningful after you drop annotation/accents. If it is (as I suspect it is for the Vedic case), you have annotations; if it isn't (e.g., French), you have accents.
>
> [Peter] Nor are accent marks for Rgveda, Yajurveda, and Atharvaveda. For the same reasons that they aren't, such marks in Samaveda shouldn't be either.
>
> > [Eric] Which brings us to the distinction between interlinear annotations and non-interlinear annotations. I think it would be hard to argue that the neat arrangement we see in the examples is not interlinear.

- I suppose that one of the (unstated) arguments for combining marks is that implementations which can deal with, say, modern Hindi will just work with combining marks. Looking at an example like 4.1Qa in L2/07-343, I see that the placement of the 2nd and 3rd annotations, <digit 2> and <digit 1, vi>, is not strictly above their aksharas but spread to avoid collisions. This is a typical problem that ruby implementations have to deal with. I think that combining mark implementations will have

> a hard time dealing with this correctly; stated another way, I am not convinced at all that an implementation for modern Hindi will work adequately. I fear that the attempt at getting something (Vedic support) for nothing is going to backfire.
>
> - I suppose that the interest in the representation of Vedic text goes beyond the ability to display those texts, and includes the ability to manipulate them. It seems necessary for those manipulations to be able to reliably separate the annotated text from the annotations. In a combining mark representation, a candrabindu belonging to the annotated text and a digit one belonging the annotation have the same status (both are combining marks), which means that the characteristic of being an annotation is an integral part of the identity of the proposed characters. That seems a bit too much to me.
>
> - the example to support a8e0/8b4 in L2/07-39x actually shows a latin 1 and a latin 2, if I am not mistaken. What would be used for those?
>
>> [Peter] The Latin characters were employed in this example precisely because of the unavailability of Devanagari superscript characters such as those proposed. To meet such a need is the motivation for the current proposal.
>>
>>> [Eric] So either the example given in L2/07-39x as evidence for a superscript 0 is
>>>
>>> - not something anybody wants to be able to do with Unicode, and that proposal does not have evidence for a superscript 0 (no big deal at the end of the day, we have evidence from L2/07-343)
>>>
>>> - something that is wanted, but is not achieved by a superscript *devanagari* 0 (and the example says we would need combining *latin* 0, 1 and 2)
>
> [Eric] My main observation so far is that the arguments for one way or the other are not that clear cut, at least not at much as L2/07-343 pretends they are. With the arguments advanced so far, my opinion is in favor of ruby, but I would like to make sure that the best arguments are brought forward.

Following a question on the list, Eric Muller speculates that a ruby implementation is very likely to provide quite a bit of control over the styling of the ruby (e.g. font choice, point size, distance to the base character, top vs. above) and that a combining character implementation is unlikely to provide that control.

L2/08-050 reaffirms that ruby is entirely inappropriate and the combining characters are the best solution.

3.4 Samavedic, others

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
							vedic tone karshana

		1cd1	1cd0		8c7	a8f5	vaidika saamasvara karshanna
		1cd2	1cd1		8a3	a8f6	vedic tone shara vaidika svarita uurdhva shara
		1cd3	1cd2		8c9	a8f7	vedic tone prenkha vaidika saamasvara prenkha
		1cd4	1cd3		8cc	a8f8	vedic sign nishshvasa vaidika saamagaan yogakaala
			1cd4		8be	removed	vedic sign kampa vaidika saamsavara kampa

See the comment for the previous section.

3.5 Yajurvedic, general

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
y		1cd6	1cd6		8a8	1ceb	vedic tone yajurvedic independent svarita vaidika svarita adhah konna
y		1cd8	1cd7		8a9	1ce8	vedic tone yajurvedic kathaka independent svarita vaidika svarita adho vakra rekhaa
y		1cd7	1cd5		8a7	1cea	vedic tone yajurvedic aggravated independent svarita vaidika svarita adho nyubja
y		1cda	1cd8		8a6	1ce9	vedic tone candra below vaidika svarita adhah ardha vakra
		<U+0951>			8a0	removed	vaidika svarita uurdhva rekha
		<U+0952, U+0952> ?			8a1	removed	vaidika svarita adho dvi rekha
y		1cd4	1cda		8a4	1ce5	vedic tone double svarita vaidika svarita uurdhva dvi rekhaa
y		1cd5	1cdb		8a5	1ce6	vedic tone triple svarita vaidika svarita uurdhva tri rekhaa
							vedic tone dot below

y		1cdf	1cdd		8ac	1ced	vaidika svarita adho bindu
y		1ce0	1cdc		8ab	1cec	vedic tone kathaka anudatta vaidika svarita adho rekhaa
		1cd9	1cd9			1cee	vedic tone yajurvedic kathaka independent svarita schroeder vaidika svarita adho samyukt rekhaa

Note that U+0951 DEVANAGARI STRESS SIGN UDATTA and U+0952 DEVANAGARI STRESS SIGN ANUDATTA are already encoded, and that 0951 has the annoation "mostly used for Rigvedic svarita, with rare use for Yajurvedic udatta".

Sobi, on southasia list, 2007-12-31:

> 1. 08A1 Vaidika Svarita adho dvi rekha may not be addressed as two Anudatta as it has been identified as Svarita. Generally Shatapatabrahmana does not include svarita and has no sign for the same. However Weber in his edition of Shatapatabrahmana has a way to show independent Svarita by adding two horizontal lines to the prior Varna of the svarita Varna. e.g. Viryam
>
> To retain the authentic approach of Weber we have identified it as a Vaidika svarita Adho dvi Rekha and not as a two Anudatta, one below another.
>
> 2. In case of 1CD9 we are awaiting for the source material from which this sign has been identified. We are in process to examine parallel Indian Editions for the same.

Peter Scharf, on southasia list, 2008-01-15.

> George Cardona in his Bhasika System of Accentuation has demonstrated that the Satapathabrahmana marking indicates a two-tone system marking only anudatta. Although this two-tone sytem derives from the triple-tone system; it is not identical with it. The system designed by Weber needs to be reproduced but it is incorrect to identify double line below with a svarita mark. It marks an anudatta that precedes a svarita. Hence this should be produced by a sequence just as you agree the six dots should be produced by a sequence of two triple dot characters.

3.6 Yajurvedic, Satapathabrahmana

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
y		1cdd	1cdf		8ae	removed	vedic tone three dots below vaidika svarita adhas tri bindu
		<1cdd, 1cdd>	<1cdf, 1cdf>		8af	removed	vaidika svarita adhas shatt bindu
							vedic tone two dots below

y		1cde	1cde		8ad	removed	vaidika svarita adho dvi bindu

Sobi, on southasia list, 2007-12-31:

> In case of 08AF Vaidika Svarita Adhas Shatt Bindu in L2/07-396, We agree to combine <08AE, 08AE> (with positioning underneath)> as recommended in the document L2/07-271. This will reflect in our revised combined proposal.

accepted		Everson/Scharf		Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
		<0967, 0951, 0952>			8b0	removed	vaidika svarita hrasva kampa
		<0969, 0951, 0952>			8b1	removed	vaidika svarita deergha kampa
		<0967, 0951>			8b2	removed	vaidika svarita hrasva kampa adhorekha
		<0969, 0951>			8b3	removed	vaidika svarita hrasva deergha kampa adhorekha
			<0951, 0952>			1cef	vaidika kampa
						1cf0	vaidika svarita urasi rekhaa

Sobi, on southasia list, 2007-12-31:

> 1. 08B0 Vaidika Svarita Hrasva Kampa and 08B1 Vaidika Svarita Deergha Kampa have been recommended as an integrated sign in L2/07-396.
>
> The Hrasva Kampa is of one maatra duration in which first half maatra duration can be attributed to, as part of Udatta(Uddatansh)and the second half maatra duration belongs to part of Anudatta(Annudattansh). Whereas Deergha Kampa has two maatra time duration in which the first half maatra duration belongs to Udatta(Udattansh) and remaining 3 half maatra duration as part of Anudatta (Anudattansh).
>
> 1A. Thus the svarita kampa is a concept of integrated sound pattern of svarita/Udattaunsh and Anudattansh. Hence their dual identity has to be acknowledged by the integrated relevant accent mark as observed in Rigveda (Shaakal) kampa swara.
>
> 2. As special cases of Hrasva and Deergha Kampa, are observed as follows:
>
> 2A. In Atharveda Shaunaka the Hrasva kampa is shown with small numeral one and the horizontal

line Anudattansh below it. However, the vertical line as a svarita/udattansh is kerned backward and appears on the immediate previous independent svarita. Similar situation is also observed in Taitriya samhita.

In case of Deergha kampa a different variation is also observed where the small numeral 3 gets the vertical line (svarita/udattansh) on the top and the horizontal line (Anudattansh) is kerned backward and appears on the immediate previous independent svarita.

2B. In Rigveda Kashmir part, Kampa; Hrasva or Deergha is indicated by small numeral 3 with horizontal line (Annudattansh) and no vertical line (svarita/udattansh) appears on the top.

2C. In Maitrayini samhita the Kampa is shown by small numeral 3. However, the lower horizontal line (Anudattansh) is kerned forward on the next immediate independent svarita varna which could be either short or long.

2D. In the edition of Maitrayini samhita by Schroeder only small numeral 3 is indicated and no horizontal line (Anudattansh) is kerned forward on the next immediate independent svarita varna.

From the above now we suggest the following: (These action points would be reflected in our Revised Combined Proposal for Feb 2008 UTC meeting.)

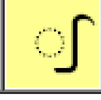
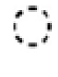
A. In case of 1, only one code with vertical line above and horizontal line below could be considered in place of 08B0 and O8B1 and small numerals 1 and 3 can be attached to it as separate codes. This will reflect in our revised combined proposal.

B. In case of 2, considering all variations, it may be better to compose them with respective codes at respective places. Therefore the two codes 08B2 and 08B3 as suggested in L2/07-396 will be dropped out in our revised combined proposal.

Peter Scharf, on southasia list, 2008-01-15:

The variety you describe in points 2A-2D can all be accounted for by using the existing numeral, udatta, and anudatta marks. Font makers can design precomposed glyphs that compose the items with smaller numerals.

3.7 Atharvavedic

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
y		1cdb	1ce1		8a2	1ce4	vedic tone atharvavedic independent svarita vaidika svarita dvi vakra khanda

3.8 Ardhavisarga

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
					07-		

		07-343	08-050		39x	08-042	
		1ce1	1ce2		8aa	1cde	vedic sign visarga svarita vaidika madhyerekhaa
		<0903, 1ce1>	<0903, 1ce2>		898	removed	vaidika visarga madhyerekha
		1ce2	1ce3			1cdf	vedic sign visarga udatta vaidika dakshinnatah uurdhvaga
		<0903, 1ce2>	<0903, 1ce3>		89b	removed	vaidika visarga dakshinnatah uurdhvaga
			1ce4			1ce1	vedic sign reversed visarga udatta vaidika vaamatah uurdhvaga
			<0903, 1ce4>		899	removed	vaidika visarga vaamatah adhoga
		1ce3	1ce5			1ce0	vedic sign visarga anudatta vaidika vaamatah adhoga
		<0903, 1ce3>	<0903, 1ce5>		89a	removed	vaidika visarga vaamatah adhoga
			1ce6			1ce2	vedic sign reversed visarga anudatta vaidika dakshinatah adhoga
			1ce7				vedic sign visarga udatta with tail
			<0903, 1ce7>		89c	removed	vaidika visarga dakshinnatah uurdhva vakra
			1ce8				vedic sign visarga anudatta with tail
			<0903, 1ce8>		89d	removed	vaidika visarga vaamatak adho vakra

L2/07-343 proposes the encoding of pieces while L2/07-39x proposes the encoding of combinations of pieces.

Peter Scharf, on southasia list, 2007-11-07:

> In their meeting on 1 November in Paris, Joshi concurred that encoding the accent marks separately from the visarga which they accent would provide these advantages and agreed with the proposal to encode them thus in spite of reservations regarding the difficulties font designers would encounter in positioning the 1ce3 to the left of the visarga.

> Conversely, Scharf accepted the possibility that the flourishes that appear on Joshi and Irani's 089c and 089d may be contours that depict tonal melodic flourishes. Further evidence of this from Vedic recitation or texts describing it would strengthen the case for a character encoding of the more elaborate udatta and anudatta visarga accents separate from that of the simpler udatta and anudatta accents. Scharf and Everson figure 7Bb, in n3366 p. 24 shows the simple and the flourished udatta accents in red marking the underlying visarga in black in a manuscript. The fact that both occur in the same passage probably indicates that they are intended to mark a significant difference, and the fact that they are written in a different ink indicates that they are independent characters from the visarga that they embellish.

Ganti Shantosh, on the southasia list, 2007-12-12:

> 1) 08AA : It may be discussed under 3.5, being Svarita sign and semantically it is not associated with Ardhavisarga.
>
> 2) 0898,0899,089B,089A are semantically well associated with the visuals of two vertical dots (as Visarga) and hence we have recommended the separate codes for all of the above , integrated with the other curvilinear elements in 0899,089B & 089A.This will help to create the plain-text of Vedic Sanskrit without much complexity.
>
> 3) Further, it may be agreed that the composed versions for 0898, 0899, 089B, 089A with two codes might help in adding an extra colour(deep red),but it is not observed in any printed source material as revealed in the support documents provided.
>
> 4) This approach will add more complexities in terms of positioning these curves(0899,089A,089B) with no economical gains and further, in the font area default Visarga(0903) may have to be substituted with another Visarga of broader width to accommodate 0898,0899,089A,089B characters with a post context reference.
>
> 5) The case of 089C,0890: The supporting documents reflect the need for these two cases. However, if 089C & 089D is treated as a variant of 089B & 089A respectively (and endorsed by scholars) then we could reconsider the above two codes.
>
> This may raise another issue of provision codes for variant-one and variant-two(at least),as suggested by Miachel Everson in the document Encoding vedic Accents dated 2000-04-22
>
> This is for further discussion.

Peter Scharf, on the southasia list, 2008-01-15:

> I feel very strongly that the svarita markings on visarga be kept as separate characters to enable character level color coding of accents, as is evidenced in manuscripts. The fact that printed texts did not capture this feature of free-hand writing does not justify continuing the inability to capture Vedic writing systems properly in the digital medium.
>
> If evidence does show that 089C & 089D had a different significance, for instance that the tonal pattern is more complex, I would favor encoding the svarita elements separately from the visarga here as well.

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
		1ce4	1cf1				vedic sign ardhavisarga
					89e	removed	vaidika jihvaamuliya vajra
					89f	1ce3	vaidika jihvaamuliya upadhamaaniya

The UTC earlier approved *U+0C71 TELUGU SIGN ARDHAVISARGA (proposed in L2/06-250, same shape as 1ce4, but combining), but it was pulled from the ballot by WG2 when it was realized that it was probably better treated as a general Vedic sign, rather than as a specifically Telugu sign.

Peter Scharf, on southasia list, 2007-11-07:

> In their meeting in Paris 1 Nov., Joshi argued that a sharp-cornered wedge shaped half-visarga is distinct in shape from the rounded shape so that two characters 089e and 089f are justified. Since the Kannada signs are already encoded, Joshi proposes a new character with common properties rather than changing the Kannada sign's properties and the insertion of remarks concerning equivalence of 089e with Kannada 0cf1 and of 089f with 0cf2. Remarks of equivalence should be added under the Kannada characters as well. Scharf concurs that 1ce4 can be merged with 089f and that 089e is the proper shape for the jihvaamuliya, i.e. not an x but wedges approaching each other. He maintains no objection to Joshi's proposal for encoding the vajra and gajakumbha but notes that the latter shape is commonly used both for jihvamuliya and upadhmaniya, which perhaps should be indicated in a remark.

Ganti Shantosh, on the southasia list, 2007-12-12:

> The case of 089E & 089F: The two separate signs are semantically and visually two different signs which are proposed for one in the shape of Vajra(089E,angular weapon) and the other one as a Gajakumba(089F,variety of pot).Since, these two signs are associated grammatically with two different situations to grant them two separate codes is in order.

Peter Scharf, on the southasia list, 2008-01-15:

> I don't see evidence of the semantic distinction between vajra and gajakumbha on pp. 52-53 of L2/07-395,396,397.

3.9 Nasals

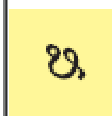
accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	

		900	a8f2			900	devanagari sign inverted candrabindu vaidika adhomukha candrabindu
		a8f2	a8f3			1cd0	devanagari sign spacing candrabindu vaidika candrabindu
y		a8f3	a8f4		889	1cd1	devanagari sign candrabindu virama vaidika anusvaara candrabindu tiryak
y		a8f4	a8f5		88d	1cd5	devanagari sign double candrabindu virama vaidika anusvaara dvi candrabindu tiryak
			a8f6				devanagari sign candrabindu one
y		a8f5	a8f7		88a	1cd2	devanagari sign candrabindu two vaidika anusvaara candrabindu sadvi
y		a8f6	a8f8		88b	1cd3	devanagari sign candrabindu three vaidika anusvaara candrabindu satri
y		a8f7	a8f9		88c	1cd4	devanagari sign candrabindu avagraha vaidika anusvaara candrabindu saavagraha

Peter Scharf, on the southasia list, 2007-11-07:

> Joshi [...] wished to see evidence that 0900 inverted chandrabindu occurs in mss. and is not an editorial invention. Rosenfield has confirmed that it does occur in Kathaka mss. and is obtaining the evidence.

accepted	**Everson/Scharf**			**Govt. India**			**name(s)**
		07-343	**08-050**		**07-39x**	**08-042**	
		1ce5	1ce9				vedic sign anusvara antargomukha
		<1ce5, 0902>	<1ce9, 0902>		88e	1cd6	vaidika anusvaara antarmukha
			1ceb				vedic sign anusvara vamagomukha
			<1ceb, 0902>		88f	1cd7	vaidika anusvaara vaamamukha
			<1ceb,		890	1cda	vaidika anusvaara vaamamukha sacandra

			0901>				
		1ce6	1cea				vedic sign anusvaara bahirgomukha
		<1ce6, 0902>	<1cea, 0902>		893	1cd9	vaidika anusvaara bahirmukha
		<1ce6, 0901>	<1cea, 0901>		894	1cdb	vaidika anusvaara bahirmukha sacandra
		1ce7	1cec				vedic sign vamargomukha with tail [EM: I suspect the "r" should be removed; see 1ceb]
		<1ce7, 0902>	<1cec, 0902>		891	1cd8	vaidika anusvaara vaamamukha savakra

In all but one example, there is an anusvara or candrabindu component (there may be other signs as well). The only exception is example 8Ja of L2/07-343 which shows 1ce7 alone.

The approach proposed by L2/07-343 is to encode the unardorned signs, with the understanding that U+0902 DEVANAGARI SIGN ANUSVARA or U+0901 DEVANAGARI SIGN CANDRABINDU would be used as necessary. The basis is essentially to cut down on the number of characters to be encoded.

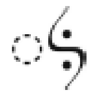
The approach proposed by L2/07-39x is to encode the combinations. The basis is that only the combinations are meaningful. The exception of example 8Ja is explained by:

> The Sign 1CE7 by itself is observed in some places but this could be because of composing errors as observed in "Maadyandina Asskhiyaama Satapathabraahmanam, Bharatiya Vidya Prakashan, Varanasi,1986,Page:7"where the same word repeated twice on the same page in lines 11 & 13. The word "havishi" is having 1CE7 with anudatta and 0891.
>
> To avoid such errors 0891 is needed or needed to be encoded.

Peter Scharf, on southasia list, 2007-11-07:

> In their meeting in Paris 1 Nov. Joshi argued that the difficulties of positioning multiple diacritics on 1ce5, 1ce6, and 1ce7, which never appear alone as such, justifies the encoding the greater number of characters with diacritics included. Scharf maintains no objection to Joshi's handling of these signs.

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	

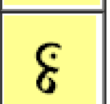
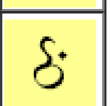
		<0903, 1ce2, 1ce3>	<0903, 1ce4, 1ce6>		897	removed	vaidika anusvaara dvi bindu avagraha

Ganti Shantosh, on the southasia list, 2007-12-12:

> Comment about 0897 : In L2/07-343 under figure 8Kb only the code 1CE8 & 0895 has been coded. However , the observation "The latter also shows VEDIC TONE VISARGA UDATTA and VEDIC TONE VISARGA ANUDATTA combined on a visarga in final position." has not been identified as a candidate for a code point. However the same sign has been found in "Sukla Yajurveda Samhitaa, Vasudev Laksmana Panasikara,Hindi vyakhyakar:Dr.Raamakrishna Saastri,Choukhamba VidyaBhavan,Varanasi,Page:102,Line:2"in a Padapaatha corresponding to Sahityapaatha on the same page(left column bottom) as an interpretation of Anusvaara sign 0893 and / or (1CE6,0902). Therefore the sign 0897 is presumed to be another type of Anusvaara appearing in Padapaatha. Hence, it is treated as vedic Anusvaara Dvi Bindu Avagraha and not Udatta Anudatta Visarga.

Peter Scharf, on the southasia list, 2008-01-15:

> the shape occurs with moderate frequency to represent visarga with tonal mark. A single instance in which a presumption is made that it corresponds to nasalization is not sufficient evidence to override the frequent use it has as toned visarga. Scharf and Everson prefer not to encode the sign but to produce it with the combination of visarga + udatta + anudatta.

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
		1ce8	1cee		892	1cdc	vedic sign hexiform long anusvara vaidika anusvaara anugami
			1cef		895	removed	vedic sign long anusvara
			1cf0		896	1cdd	vedic sign rthang long anusvara vaidika anusvaara tthasadrisha

Peter Scharf, on the southasia list, 2007-11-07:

> On the http://sanskritlibrary.org/ site under Vedic Unicode proposal The document VedicMarks2007Mar10V.pdf Section C. Conclusions regarding Nasals, 1. Six dot is synonymous with rthang, presents evidence to show the synonymity of these characters. Six-dot (DAKSHINNAMUKHA) and Rthang (TTHASADRISHA) are typographic imitations of the VEDIC SIGN LONG ANUSVARA (CANCUMUKHA); all indicate the same phonetics in the same contexts.
>
> Although Joshi concurs that the six dot and rthang (see L2/07-397, p. 44) are developments of 1ce8=0895, he argues that they deserve separate character status because their distinctive shapes are now commonly found, recognized, and referred to. In their meeting 1 November in Paris,

Scharf accepted Joshi's proposal to encode 0892 and 0896 as separate characters from 0895 cancumukha which is identical to Scharf and Everson's n3366: 1ce8.

Ganti Shantosh, on the southasia list, 2007-12-12:

The code point 0895 is observed in manuscript (Refer L2/07-397 document, Page no:44 Source Point No:4) and printed books as per document L2/07-397. In the same document L2/07-397 Page-43, the Source Point 1 and 2 shows the evidence for the code point 0895 itself.

Whereas, 0896 is the evolved form of 0895 for the print purpose in Northern editions. The horizontal line in this character has been Stressfully introduced to match with the top line of Devanagari script. As in the L2/07-397 document, Page no:44 Source Point No:4, one can observe the earlier handwritten version of this character.

It is also noted that such version was adopted in a typeface as seen in L2/07-397 document, Page no:44 Source Point No: 2 & 5. This version in our opinion is leading to the character code suggested under 0985 and 1CE8 in L2/07-343. This also establishes the fact that 0895 or 1CE8 is not the source of 0892.

In fact,"Maadyandina Asskhiyaama Satapathabraahmanam, Bharatiya Vidya Prakashan, Varanasi,1986,Page:7" clearly shows the separate and distinct usage of 0892,0895 and 0896.

Hence , the three separate codes as 0892,0895 & 0896 have been recommended in L2/07-397.

Peter Scharf, on the southasia list, 2008-01-15:

Scharf and Everson agree that 0896 developed as described from 0895 but disagree with the statement, "This also establishes the fact that 0895 or 1CE8 is not the source of 0892." On the contrary, 0892 is similarly a typographic imitation of 0895. We would have no objection to separately encoding these if some justification could be provided for distinguishing them as separate characters rather than as glyph variants. However, the three shapes occur without apparent difference. The synonymy of the boomerang and the six-dot is evident from the evidence in sections D2-3 of the document: http://www.brown.edu/Departments/Classics/archive/Scharf/VajasaneyiAdditionalMarksV.pdf (DRGG refers to Daulata Rama Gauda Gupta's edition of Vajasaneyisamhita) I am unable obtain the reference in order to verify the statement: "In fact,"Maadyandina Asskhiyaama Satapathabraahmanam, Bharatiya Vidya Prakashan, Varanasi,1986,Page:7" clearly shows the separate and distinct usage of 0892,0895 and 0896."

3.10 Additions for Devanagari

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
		<0905, 0881>			880	removed	indo iranian avesta letter sarekah candra long a

y	◌ॕ	955	955	◌ॕ	881	removed	devanagari vowel sign candra long e indo iranian avesta vowel sign sarekha candra long a
		<0906, 094B>		आो	882	removed	indo iranian avesta letter long aaoo
				◌ो	883	removed	indo iranian avesta vowel sign long aaoo
y	ज़	979	979	ज़्	884	removed	devanagari letter zha indo iranian avesta letter zh
y	ॺ	97a	97a	ॺ	885	979	devanagari letter heavy ya vaidika letter jjya
				ळ्ह	886	97a	vaidika letter llha
	꣸	973	973	꣸		1cf1	devanagari sign pushpika
	ˇ	974	974	◌ˇ		1cf5	devanagari sign divider vaidika trutikaa

Peter Scharf, on the southasia list, 2007-11-07:

> Joshi accepts 973 and 974.

Ganti Santosh, on the southasia list, 2007-12-10:

> In Proposal submitted by Michael Everson and Peter Schraf et al. L2/07-095,-095R,-230,343 only one Avestan dependent vowel sign 0955 Devanagari Vowel sign Candra Long E was included. We had put forward our views of inclusion of the Independent Vowel Letters and other Letters in our Observation 4 (first point) in the document L2/07-388.
>
> It is observed that so far 15 vowels and 34 consonants have been identified for Avesta pronunciation and transcription in Devanagari Script. (source: Avesta Part I by Kanga and Sontakke, Vaidika Sanshodhan Mandal, Pune) In addition to Short E and Short O there is a vowel pronunciation ARRA as in 'arrackal' which needs attention. As well as there are some peculiar consonant sounds of KH, for which reserved points were kept in 0887 and 0888 in L2/07-395,-396,-397.
>
> Obviously this needs more detailed probe. Therefore we tend to agree with the remarks made by Dr Michael Witzel (in his mail dated 19th October 2007 to Peter Scharf further forwarded to Prof R K Joshi) and with Peter Scharf's opinion (as expressed in his mail dated 8th November 2007 to Prof R K Joshi) that it may be advantageous for us to move all these into another area by themselves or into a separate proposal.

> Therefore we may not consider Avestan characters into our Revised proposal due for the upcoming UTC meeting in Feb 2008. This may cause repercussion in the accepted list of characters accepted during the October 2007 UTC meeting #113.

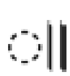
Peter Scharf, on the southasia list, 2008-01-14

> Scharf and Everson concur that 0881 (= n3366 0955) and 0884 (= n3366 0979) require encoding, but not with the encoding of characters 0880, 0882, 0883 for the following reasons.
>
> 0880 can be produced by the sequence 0905 + 0881; 0881 is identical to n3366 0955.
>
> 0882 can be produced by the sequence 0905 + 0883; it would also be able to be produce by the sequence 0906 + 094B. It is undesireable to have the same glyph producible by more than one sequence. Therefore it is preferable not to encode 0883 but to produce 0882 just by the sequence 0906 + 094B.
>
> Apparently the CDAC proposal wishes to apply the principles of ISCII that underly the initial encoding of Indic scripts to Devanagari transcription of Avestan and to encode Avestan characters under analogous duplicate forms, i.e. both stand alone vowel forms and combining vowel forms. It is questionable whether this line of encoding should be pursued.
>
> There is no doubt about the necessity of the Avestan characters for which the CDAC proposal and Scharf and Everson n3366 are in agreement. It is therefore undersireable to withdraw them, although Scharf and Everson have no objection to them being moved into a separate area for the transcription of Avestan and other scripts into Devanagari.

3.11 Miscellaneous

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
					8cd	1cf4	vaidika swastika

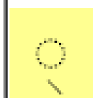
The UTC already approved four related characters, in particular 0FD5 TIBETAN SYMBOL GYUNG DRUNG NANG -KHOR, as documented in L2/07-148.

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
					8ce	1cf2	vaidikka maatraakaal
					8cf	removed	vaidika apurrnnaanka ardha

Sobi, on southasia list, 2008-01-03:

08CE Vaidikka Apuurnnaanka Paada is graphically shorter as compared to danda and semantically is indicative of duration of certain time ie 1/4th of Maatraa Kaal

08CF Vaidika Apurrnnaanka Ardha is again graphically shorter as compared to double danda and semantically is indicative of duration of certain time ie 1/2 of Maatraa Kaal

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
			1ced		8d0	1cf3	vedic sign tiryak vaidika tiryak

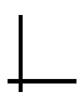
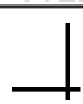
Peter Scharf, on the southasia list, 2007-11-07:

Joshi argues that the diagonal stroke beneath gomukhas (see sec. 3.9 nasals esp. chars n3366 1ce5-1ce7 or Joshi 088e-0894, 0891) has a different history from the virama which is used only under consonant signs. The combining sign tiryak would allow for the composition of several glyph variants of nasal marks common in mss. and printed texts.

Sobi, on southasia list, 2008-01-03:

08D0 Vaidika Tiryak is not same as Viraama Virama (Halant) is used to suppress inherent vowel of a consonant where as Tiryak doesnt do so. Tiryak is used to indicate the qualitative aspect of svara of anusvara/anunasika. The word Tiryak is been used by Pandit. Satyavrath Shastri (Pg: xxi) in the introductory note in his book "Vaidika Vyakran -Translation of Vedic Grammar by Arthur A McDonald" (Motilal Banarasidas, 1971)

3.12 Jaiminiya

accepted	Everson/Scharf			Govt. India			name(s)
		07-343	08-050		07-39x	08-042	
						a8fe	vaidika prarambha chihna
						a8ff	vaidika antha chihna

4 Document history

- Wednesday January 30, 2008: folded L2/08-050 and L2/08-042/043 in.
- Saturday January 19, 2008: folded in the discussions on the southasia list up to now; made 3.1 more complete
- Monday November 19, 2007: pointing to local copies of the docs
- Monday November 5, 2007: typos fixed
- Monday October 29, 2007: first version

L2/08-042

Proposal for Encoding of Vaidika Characters & Symbols in Unicode

Doc Type:	**Working Group Document**
Title:	**Proposal to encode 68 characters for Encoding of Vaidika Sanskrit Characters & Symbols in the BMP of UCS**
Source:	**Ministry of Communications and Information Technology Government of India**
Status:	**Institutional Member's Contribution**
Action:	**For consideration by UTC**
Replaces:	**L2/07-395, L2/07-396, L2/07-397**
Date:	**23 January 2008**

This Draft proposal dated 23 January 2008 is prepared by Prof. R. K. Joshi and Dr. Alka S. Irani and her team of LCG, C-DAC Mumbai in collaboration with Micheal Everson and Peter Scharf and their team and is a consolidation of their earlier proposals L2/07-39{5,6,7} dated 2007-10-18 and L2/07-343 dated 2007-10-18 respectively.

This proposal was advised by Shri. Bharat Bhushan, JS&FA, GC, LCG, Ministry of Communications and Information Technology (MC&IT), Govt. of India, guided and supervised by Smt. Swaran Lata, Director & HOD (HCC DIV), MC&IT, Govt. of India and co-ordinated by Shri. Manoj Jain, Joint Director, HCC, MC&IT, Govt. of India.

This proposal was drawn in consultation with various scholars, technologists and representatives of Institutes from India and abroad. Their contribution at various stages is greatly appreciated and hereby acknowledged.

The following documents (duly put up on the South Asian Sub-committee as per Unicode UTC# 113, Oct 2007 *http://www.unicode.org/~emuller/southasia/vedic/*) were duly considered in this revised combined single proposal.

Documents

The Everson, Scharf et al. proposals:

- 2007-10-18: L2/07-343; differences with L2/07-230 in L2/07-394
- 2007-07-26: L2/07-230; history of that document in L2/07-262
- 2007-04-26: L2/07-095R
  - Comments in L2/07-388
    - Comments in L2/07-400

The Government of India proposals:

- 2007-10-10: L2/07-395, L2/07-396, L2/07-397
- 2006-05-10 L2/06-185

Comparisons:

- 2007-10-18: L2/07-401: L2/07-343 vs. L2/07-39{5,6,7}
- 2007-08-08: L2/07-271: L2/07-230 vs. L2/06-185
  - Response in L2/07-386
    - Comments in L2/07-400

Opening Remarks

In the earlier proposal document L2/07-39{5, 6, 7} 79 character codes were identified under the block entitled Vaidika Extensions and requested for its inclusion in the suitable slot in the BMP of UCS.

And, in the earlier document No.L2/07-343 dated 2007-10-18, 53 characters were identified under Devanagari extended (23) and Vedic extensions (24) and Devanagari (6).

The comparative summary and comments on the above proposals in the South Asia sub-committee *http://www.unicode.org/~emuller/southasia/vedic/* under 3.1 to 3.11, has been taken into account in preparing of this Combined Revised Single Proposal (as per UTC# 113 advise). We have made our observations for Samavedic letters and digits (3.3) and Samavedic, others (3.4) and have presented our recommendations for encoding the same in Vaidika extensions B.

In this Revised Combined Single Proposal, the 68 characters for encoding purpose are as follows:
In the Vaidika Extensions A (1CD0 – 1CFF), 38 characters have been recommended for codes, and in Vaidika extensions B (A8E0 – A8FF), 27 characters have been recommended for codes which are for Samaveda. The two codes A8FE and A8FF namely Vaidika prarambha Chihna and Vaidika Antha Chihna have been provided for addressing syllabic tonal/accent marks in Jaiminiya branch. Three characters has been recommended to be added in Devanagari 09 block. The Samavedic syllabic marks as found in Jaiminiya branch have been kept open for the want of adequate document evidences.

This draft proposal have been discussed and consolidated with the help of many Vaidika Sanskrit scholars, Sanskrit academicians, linguists, technologists from various academic research institutions in India and abroad and Government of India officials. Their valuable contributions are duly acknowledged.

Introduction

The ancient holy text in India is known by the name of the *Veda*. The word *Veda* is derived from the root verb *"vid"- to know, to attain the knowledge*. There are 4 *Vedas* namely *RigVeda, YajurVeda, SaamaVeda* and *AtharvaVeda*. Composed in verse format using Sanskrit language, the contents of these *Vedas* are of spiritual, philosophical and practical nature and are to be vocalized in terms of recitation, chanting, singing, etc. The collections of the *Mantras* (the compositions in poetry and prose form) of the four *Vedas* were further divided into *Shaakhaas* (branches). The classes of reciters known as Vaidikas belonging to individual branches have retained their chanting characteristics while vocalizing the *Mantras*. This oral mode acquired a great significance in ancient India in terms of Teacher-students tradition *(guru-shishya paramparaa)*. At later stage such oral recitations had to be written down by *Pandits* in order to retain the knowledge in the written mode. To write such Vaidika text with vocal nuances, various signs (*svaraankana-paddhati*) were devised and placed around syllables. These are called Vaidika accent and tonal signs. It is interesting to note that a single chant if vocalised by the *Vaidikas* of different branches, would have slight variation in terms of nasalization, intonation, continuum, stress etc. And to indicate these differences, many variants of a single sign have been developed. For example, there are 15 variations of *Anusvaara* indicated by 15 graphic signs with slight variations in their visual forms. The selective usage of these signs indicates that the particular text is from a particular branch of *Veda*.

It is observed that there is a *Vaidika* tradition of hand movements *(Hasta-Mudraas)* to suggest the proper way of intonation while chanting the *Mantras*.

Sanskrit is one of the most ancient languages of the world, which has moulded the culture and the thought systems not only of India but also of many other countries in Asia. Sanskrit is not a dead language. Sanskrit was for over a millennium, a living spoken language with a considerable literature of its own. Besides works of literary value, there was a long philosophical and grammatical tradition.

Many Universities in India and abroad are involved in the Vaidika studies as a specialized subject. Traditional *Vaidika Paathashaalaas* in various parts of India are involved in imparting the practice and knowledge of *Vaidika* oral tradition. Temples and *Mathas* are providing support for learning and teaching Vaidika texts. Various research institutes are actively involved in bringing out critical editions of the Vaidika texts and various research activities in this field.

1. The range of Vaidika texts

The Vaidika texts refer to the four groups of *Vedas* namely *RigVeda, YajurVeda (Shukla and Krishna), SaamaVeda* and *AtharvaVeda*. The range of Vaidika texts extend to their respective *Shaakhaas, Upashaakhaas* (branches-subbranches), *Samhitaas, Braahmannas, Aarannyakas, Upanishads, Shrautasuutras, Praatishaakhyas* and *Shikshaas*. Originally, the Vaidika text (mostly in verse form)

–*Samhitaas* along with their respective *Padapaathas* exist in the oral mode and were passed on from *Guru* to *Shishya* through various processes such as *Shravanna* (listening), *Anuchchaaranna* (repetition), *Arthabodha* (understanding of the meaning), *Kannthasthiikaranna* (memorisation), *Charchaa-Samvaada* (discussion) and *Prashnottara* (Questions &Answers).
Later on when these texts were written (with appropriate methodologies and materials, the need was felt to introduce *Vaidika Svaraankana Chihnas* (accent/tonal marks, signs and symbols) as a guide for proper pronunciation (and hence proper reading) of such texts.

The *Shikshaas* cover the study of the terms such as *Varna* (letters of alphabet), *Svara* - (accents like *Udaatta, Anudaatta* and *Svarita*), *Maatraa* (the time measurement required for the pronunciation), *Bala* (stress - in context to *sthaana* and *prayatna*) etc.

The *Praatishaakhyas* constitute studies on phonetics, which prevailed in ancient India in different schools of the *Vedas*. Each *Praatishaakhya* with the ancient phonetic system was applicable to a particular school of each *Veda*. Some of the *Praatishaakhyas* such as *Taittiriiya* covered subjects like *Uchchaaranna-kalpa* - formation of articulate sounds and more of their production.

2. Vaidika texts with Svaraankana Chihnas

One of the most significant characteristics of Vaidika language is its proper accentuation system in utterances of its words, sentences as well as prose and versified compositions.
Vaidika text with *Svaraankana Chihnas* is available in various groups of Vaidika literature such as *Samhitaas*, *Braahmannas*, *Aarannyakas* and *Upanishads*. Besides, various *Pratishaakhyas* and *Shikshaagranthas* have discussed the theoretical as well as grammatical and practical aspects of `*Uchchaaranna'* (accentology) supported by examples of *Svaraankana Chihnas* (accentography) as well as their contextual rules.

Various branches of *RigVeda, YajurVeda, SaamaVeda* and *AtharvaVeda* are marked with `*Svaras'.* It is observed that the Vaidika text and its accent marks vary in their application and presentation as per its branch, sub-branch, tradition and location.

For example:
In *RigVeda*, the *Udaatta Svara* is left unmarked. In *Rigveda* and *YajurVeda* the *Svarita Svara* is marked with short vertical line on the top of a syllable. The same sign appears as *Anudaatta* mark below a syllable in *AtharvaVeda* (*Paippalaada Shaakhaa*).

3. The importance of Svaraankana Chihnas

Svaraankana Chihnas are very useful devices in more than one way. On one hand these marks represent nuances of pronunciation and on the other hand these marks are used for semantic differentiation as well.

3a. *Svaraankana Chihnas* are used in each *Pada* (word) as to help to understand the proper meaning (*Arthabodha*) of a *Mantra*.

3a.1 The knowledge of the kind of *Samaasapada*

इ॒न्द्र॒श॒त्रुः

- The killer of *Indra*

Tatpurusha samaas

इन्द्र॑शत्रुः

- The one for whom *Indra* is an enemy
Bahuvriihi samaas

3a.2 For Gender classification

मिह॑ः
- Adjective, Feminine Gender

मि॒हः
- Adjective, Masculine Gender

3b *Svaraankana Chihnas* are useful in context of deciding the grammatical status of a *pada*.

अप॑स्
- Noun

अ॒पस्
- Adjective

3c *Svaraankana Chihnas* are used in context to sentence classification. Some words in a sentence are accented and some are not, creating the correct meaning.

3c1. The verb in the principle clause is unaccented whereas in the subordinate clause it is accented.

3c2. In a given sentence, if a speaker does not give any stress on the *pada*, then it is marked as a *Sarvaanudaatta*. Whereas, if a speaker wants to give a stress in the beginning of the word then that is accented.

3c.3 If there is a concept of addressing someone (vocative) in the beginning of a sentence then the first syllable of the *pada* will be accented.

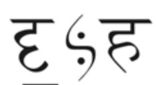
4. The Contextual aspect of Svaraankana Chihnas

The *Svaraankana Chihnas* of Vaidika Sanskrit are not independent signs. They do not behave as punctuation marks. The *Svaraankana Chihnas* are positioned all around the syllable. Some of them are of zero width and some have positive widths. However these marks with positive widths cannot be termed as letters. Most of these marks are dependent on the context i.e. preceding syllable and or following syllable. Further these positive width marks can take zero width marks above or below of them and are governed by linguistic rules as per grammar.

4.1 In *Samhitaa* text and in the *Padapaatha*, different signs are noticed in case of the same *pada*. (*Vaajasaneyi Maadhyandina Shukla YajurVeda Samhitaa* pg102/5.27).

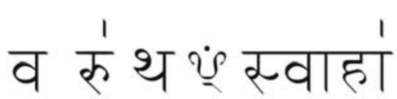


- *Samhitaa*



- *Padapaatha*

4.2 Vaidika *Anusvaara*, when it occurs in the *Samhitaa* is affected by the pronunciation of the subsequent sound. When *Samhitaa* is split into *padapaatha*, due to the pause that follows after the *Anusvaara*, the *Anusvaara* sounds differently so it is shown with two different signs in the *Samhitaa* and *Padapaatha*.



- *Samhitaa*

। वरूथम् । स्वाहा ।

- *Padapaatha*

Here the *Anusvaara* is changed to `M' in the *Padapaatha*.
Vaajasaneyi Maadhyandina Shukla YajurVeda Samhitaa (pg106/5.35).

4.3 The *Anusvaara*, which is inside the *pada* remains as it is.
This *Anusvaara* is not caused by any factor outside of that word itself, but is there in the process of the formation of the *pada.*
Vaajasaneyi Maadhyandina Shukla YajurVeda Samhitaa (pg129).

प्रशꣳसिषो

- *Samhitaa*

प्र । शꣳसिषः

- *Padapaatha*

All these and similar cases of an *Svaraankana Chihna* are appropriately reflected in the property data provided in this draft proposal.

5. The identified range, positioning and compositions of *Svaraankana Chihnas*

5a. The total number of 32 Vedic Sanskrit signs were identified in the `Extended character set for Vedic' in the ISCII document Annex-G (IS13194: 1991). The extension character (EXT), defined in ISCII, was to be followed by another character in the range of A1 Hex to EE Hex, to yield additional 32 characters needed for Vedic Sanskrit text with such accent marks.

5b. Further, the additional Vaidika accent signs (*Svaraankana Chihnas*) were observed from various sources- manuscripts/printed texts.

These signs were discussed and debated regarding their multiple usages, redundancies, earlier technology restrains, multiple shapes and usability factors.

5c. From the total of identified 102 Vaidika signs, the codes for 68 Vaidika characters have been chosen and recommended as candidates for Unicode in this draft proposal.

The 68 Vaidika signs can be classified as follows:

• VAIDIKA ANUSVAARA	14
• VAIDIKA VISARGA	6
• VAIDIKA SVARITA	13
• VAIDIKA SAAMASVARA	25
• VAIDIKA SYMBOLS	5
• VAIDIKA JAIMINIYA SPEACIAL SIGNS	2
• DEVANAGARI	3

Through this range of codes, following texts can be addressed:

1. **Rigvedic Text :** for example 1CE7,1CEF from Vaidika Extensions 0951,0952 from Devanagari etc

2. **Yajurvedic Text:** for example 1CEB,1CEA,1CE9,1CE5,1CE8 etc
3. **Samavedic Text:** for example A8E0, A8E1, A8E2, A8E3, A8E4, A8E5 etc.
4. **Atharvavedic Text:** for example 1CE4,1CEC,1CED etc
5. **Nasal/Tonal narks:** for example 1CD1,1CD8,1CDC,1CE3 etc
6. **Vaidika Symbols:** for example 1CF1, 1CF2, 1CF3 etc
7. **Samavedic Text:**

Jamaniya Shaakha:
In case of *Samavedic text* of *Jaiminiiya Shaakha*, it is observed that they have different system of syllables to be used as accent marks. These marks need to be handled through a separate soft tool or can be addressed by introducing two new codes namely A8FE & A8FF.

6. The compositional rules

The *Vaidika Swaraadi Chihnas, Vaidika Svaraankana Chihnas, Vaidika Saamasvara Chihnas* are to be rendered above, below and/or right side of the syllable.

The types of *Svaraankana Chihnas* and their compositional rules are given separately

VAIDIKA EXTENTIONS A

	1CD	1CE	1CF
0	1CD0	1CE0	1CF0
1	1CD1	1CE1	1CF1
2	1CD2	1CE2	1CF2
3	1CD3	1CE3	1CF3
4	1CD4	1CE4	1CF4
5	1CD5	1CE5	1CF5
6	1CD6	1CE6	R 1CF6
7	1CD7	1CE7	R 1CF7
8	1CD8	1CE8	R 1CF8
9	1CD9	1CE9	R 1CF9
A	1CDA	1CEA	R 1CFA
B	1CDB	1CEB	R 1CFB
C	1CDC	1CEC	R 1CFC
D	1CDD	1CED	R 1CFD
E	1CDE	1CEE	R 1CFE
F	1CDF	1CEF	R 1CFF

VAIDIKA EXTENTIONS B

	A8E	A8F
0	A8E0	A8F0
1	A8E1	A8F1
2	A8E2	A8F2
3	A8E3	A8F3
4	A8E4	A8F4
5	A8E5	A8F5
6	A8E6	A8F6
7	A8E7	A8F7
8	A8E8	A8F8
9	A8E9	R A8F9
A	A8EA	R A8FA
B	A8EB	R A8FB
C	A8EC	R A8FC
D	A8ED	R A8FD
E	A8EE	A8FE
F	A8EF	A8FF

DEVANAGARI

0900	0979
097A	

Summary:
VAIDIKA EXTENTIONS A = 38 signs
VAIDIKA EXTENTIONS B = 27 signs
DEVANAGARI = 3 sign

TOTAL = 68 signs

VAIDIKA ANUSVAARA		
1CD0		VAIDIKA CANDRABINDU
1CD1		VAIDIKA ANUSVAARA CANDRABINDU TIRYAK
1CD2		VAIDIKA ANUSVAARA CANDRABINDU SADVI
1CD3		VAIDIKA ANUSVAARA CANDRABINDU SATRI
1CD4		VAIDIKA ANUSVAARA CANDRABINDU SAAVAGRAHA
1CD5		VAIDIKA ANUSVAARA DVI CANDRABINDU TIRYAK
1CD6		VAIDIKA ANUSVAARA ANTARMUKHA
1CD7		VAIDIKA ANUSVAARA VAAMAMUKHA
1CD8		VAIDIKA ANUSVAARA VAAMAMUKHA SAVAKRA
1CD9		VAIDIKA ANUSVAARA BAHIRMUKHA
1CDA		VAIDIKA ANUSVAARA VAAMAMUKHA SACANDRA
1CDB		VAIDIKA ANUSVAARA BAHIRMUKHA SACANDRA
1CDC		VAIDIKA ANUSVAARA ANUGAMI
1CDD		VAIDIKA ANUSVAARA TTHASADRISHA

VAIDIKA VISARGA		
1CDE		VAIDIKA MADHYEREKHAA
1CDF		VAIDIKA DAKSHINNATAH UURDHVAGA
1CE0		VAIDIKA VAAMATAH ADHOGA
1CE1		VAIDIKA VAAMATAH UURDHVAGA
1CE2		VAIDIKA DAKSHINATAH ADHOGA
1CE3		VAIDIKA JIHVAAMULIYA UPADHAMAANIYA

VAIDIKA SVARITA		
1CE4		VAIDIKA SVARITA DVI VAKRA KHANDA
1CE5		VAIDIKA SVARITA UURDHVA DVI REKHAA
1CE6		VAIDIKA SVARITA UURDHVA TRI REKHAA
1CE7		VAIDIKA UURDHVA VAKRA REKHAA
1CE8		VAIDIKA SVARITA ADHO VAKRA REKHAA
1CE9		VAIDIKA SVARITA ADHAH ARDHA VAKRA
1CEA		VAIDIKA SVARITA ADHO NYUBJA
1CEB		VAIDIKA SVARITA ADHAH KONNA
1CEC		VAIDIKA SVARITA ADHO REKHAA
1CED		VAIDIKA SVARITA ADHO BINDU
1CEE		VAIDIKA SVARITA ADHO SAMYUKT REKHAA
1CEF		VAIDIKA KAMPA
1CF0		VAIDIKA SVARITA URASI REKHAA

VAIDIKA SYMBOLS		
1CF1		VAIDIKA PUSHPIKA
1CF2		VAIDIKA MAATRAAKAAL
1CF3		VAIDIKA TIRYAK
1CF4	卐	VAIDIKA SWASTIKA
1CF5		VAIDIKA TRUTIKAA

VAIDIKA SAAMASVARA		
A8E0	०◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA SHUUNYA
A8E1	१◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA EKA UDATTA
A8E2	२◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA DVI SVARITA
A8E3	३◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA TRI ANUDATTA
A8E4	४◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA CHATUR
A8E5	५◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA PANCHA
A8E6	६◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA SHATT
A8E7	७◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA SAPTA
A8E8	८◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA ASHTTA
A8E9	९◌	VAIDIKA SAAMASVARA ANKA NAVA
A8EA	अ◌	VAIDIKA SAAMASVARA ABHINIHITA
A8EB	न◌	VAIDIKA SAAMASVARA NAMANA
A8EC	र◌	VAIDIKA SAAMASVARA RA
A8ED	क◌	VAIDIKA SAAMASVARA KA
A8EE	उ◌	VAIDIKA SAAMASVARA U
A8EF	१र◌	VAIDIKA SAAMASVARA SVARITA EKARA
A8F0	२उ◌	VAIDIKA SAAMASVARA SVARITA DVIU
A8F1	३क◌	VAIDIKA SAAMASVARA SVARITA TRIKA
A8F2	प◌	VAIDIKA SAAMASVARA PRANNATAM
A8F3	वि◌	VAIDIKA SAAMASVARA VINATA
A8F4	ऽ◌	VAIDIKA SAAMASVARA DIRGIBAVA
A8F5	^◌	VAIDIKA SAAMASVARA KARSHANNA
A8F6	↑◌	VAIDIKA SVARITA UURDHVA SHARA
A8F7	◌̄	VAIDIKA SAAMASVARA PRENKHA
A8F8	◌〃	VAIDIKA SAAMAGAAN YOGAKAALA

VAIDIKA JAIMINIYA SPEACIAL SIGNS		
A8FE	⊥	VAIDIKA PRARAMBHA CHIHNA
A8FF	⊥	VAIDIKA ANTHA CHIHNA

DEVANAGARI (23 JANUARY 2008)

0900	ऀ	VAIDIKA ADHOMUKHA CANDRABINDU
0979	ॹ	VAIDIKA LETTER JJYA
097A	ॺ	VAIDIKA LETTER LLHA

Unicode Data Properties

```
1CD0;VAIDIKA CANDRABINDU;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD1;VAIDIKA ANUSVAARA CANDRABINDU TIRYAK ;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD2;VAIDIKA ANUSVAARA CANDRABINDU SADVI ;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD3;VAIDIKA ANUSVAARA CANDRABINDU SATRI;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD4;VAIDIKA ANUSVAARA CANDRABINDU SAAVAGRAHA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD5;VAIDIKA ANUSVAARA DVI CANDRABINDU TIRYAK;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD6;VAIDIKA ANUSVAARA ANTARMUKHA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD7;VAIDIKA ANUSVAARA VAAMAMUKHA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD8;VAIDIKA ANUSVAARA VAAMAMUKHA SAVAKRA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CD9;VAIDIKA BAHIRMUKHA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CDA;VAIDIKA ANUSVAARA VAAMAMUKHA SACANDRA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CDB;VAIDIKA ANUSVAARA  BAHIRMUKHA SACANDRA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CDC;VAIDIKA ANUSVAARA ANUGAMI;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CDD;VAIDIKA ANUSVAARA TTHASADRISHA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
1CDE;VAIDIKA MADHYEREKHAA;Mn;1;NSM;;;;;N;;;;;
1CDF;VAIDIKA DAKSHINNATAH UURDHVAGA  ;Mn;1;NSM;;;;;N;;;;;
1CE0;VAIDIKA VAAMATAH ADHOGA  ;Mn;1;NSM;;;;;N;;;;;
1CE1;VAIDIKA VAAMATAH UURDHVAGA;Mn;1;NSM;;;;;N;;;;;
1CE2;VAIDIKA DAKSHINATAH ADHOGA;Mn;1;NSM;;;;;N;;;;;
1CE3;VAIDIKA JIHVAAMULIYA UPADHAMAANIYA ;Mc;0;L;;;;;N;;;;;
1CE4;VAIDIKA SVARITA DVI VAKRA KHANDA;Mc;0;L;;;;;N;;;;;
1CE5;VAIDIKA SVARITA UURDHVA DVI REKHAA;Mn;230;NSM;;;;;N;;;;;
1CE6;VAIDIKA SVARITA UURDHVA TRI REKHAA;Mn;230;NSM;;;;;N;;;;;
1CE7;VAIDIKA UURDHVA VAKRA REKHAA;Mn;230;NSM;;;;;N;;;;;
1CE8;VAIDIKA SVARITA ADHO VAKRA REKHAA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
1CE9;VAIDIKA SVARITA ADHAH ARDHA VAKRA ;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
1CEA;VAIDIKA SVARITA ADHO NYUBJA ;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
1CEB;VAIDIKA SVARITA ADHAH KONNA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
1CEC;VAIDIKA SVARITA ADHO REKHAA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
1CED;VAIDIKA SVARITA ADHO BINDU;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
1CEE;VAIDIKA SVARITA ADHO SAMYUKT REKHAA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
1CEF;VAIDIKA KAMPA;Mn;0;NSM;;;;;N;;;;;
1CF0;VAIDIKA SVARITA URASI REKHAA;Mn;1;NSM;;;;;N;;;;;
1CF1;VAIDIKA PUSHPIKA;Po;0;L;;;;;N;;;;;
1CF2;VAIDIKA MAATRAAKAAL ;Mc;0;L;;;;;N;;;;;
1CF3;VAIDIKA TIRYAK;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
1CF4;VAIDIKA SWASTIKA;So;0;L;;;;;N;;;;;
1CF5;VAIDIKA TRUTIKAA;Po;0;L;;;;;;;;;;
A8E0;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA SHUUNYA;Mn;220;NSM;;;;;;;;;;
A8E1;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA EKA UDATTA;Mn;220;NSM;;;;;;;;;;
A8E2;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA DVI SVARITA;Mn;220;NSM;;;;;;;;;;
A8E3;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA TRI ANUDATTA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8E4;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA CHATUR;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8E5;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA PANCHA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8E6;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA SHATT;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8E7;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA SAPTA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8E8;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA ASHTTA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8E9;VAIDIKA SAAMASVARA ANKA NAVA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8EA;VAIDIKA SAAMASVARA ABHINIHITA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8EB;VAIDIKA SAAMASVARA NAMANA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
```

```
A8EC;VAIDIKA SAAMASVARA RA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8ED;VAIDIKA SAAMASVARA KA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8EE;VAIDIKA SAAMASVARA U;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8EF;VAIDIKA SAAMASVARA SVARITA EKARA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F0;VAIDIKA SAAMASVARA SVARITA DVIU;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F1;VAIDIKA SAAMASVARA SVARITA TRIKA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F2;VAIDIKA SAAMASVARA PRANNATAM;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F3;VAIDIKA SAAMASVARA VINATA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F4;VAIDIKA SAAMASVARA DIRGIBAVA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F5;VAIDIKA SAAMASVARA KARSHANNA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F6;VAIDIKA SVARITA UURDHVA SHARA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F7;VAIDIKA SAAMASVARA PRENKHA;Mn;220;NSM;;;;;N;;;;;
A8F8;VAIDIKA SAAMAGAAN YOGAKAAL;Mc;0;L;;;;;N;;;;;
A8FE;VAIDIKA PRARAMBHA CHIHNA;Cf;0;ON;;;;;N;;;;;
A8FF;VAIDIKA ANTHA CHIHNA;Cf;0;ON;;;;;N;;;;;
0900;VAIDIKA ADHOMUKHA CANDRABINDU;Mn;0;NSM;;;;;N;;;;;
0979;VAIDIKA LETTER JJYA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
097A;VAIDIKA LETTER LLHA;Lo;0;L;;;;;N;;;;;
```

Proposal for Encoding Of Vaidika Characters & Symbols in Unicode

Vaidika Marks Rendering Rules:

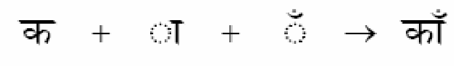
23 January 2008

Proposed revised text for R10

R 10: Other modifying marks, in particular bindus and svaras, apply to the orthographic syllable as a whole and should follow (in the memory representation) all other characters that constitute the syllable. The bindus should follow any vowel signs, and the svaras should come last. The relative placement of these marks is horizontal rather than vertical; the horizontal rendering order may vary according to typographic concerns.***<u>The Vaidika Swaraadi Chihnas, Vaidika Svaraankan Chihnas, Vaidika Saamasvara Chihnas are to be rendered above, below and/or right side of the syllable.</u>***

Existing Examples:

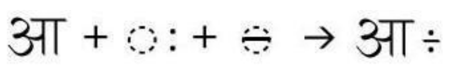
KA_n + AA_{vs} + $CANDRABINDU_n$



Additional Examples of Vaidika Swaraadi Chihna:

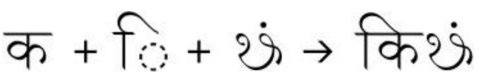
Class A: Single vowel syllable:

AA_n + VAIDIKA $VISARGA_n$

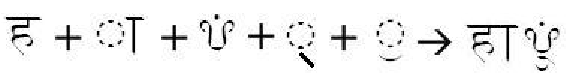


Class B: *Single consonant syllable:*

KA_n + I_{vs} + VAIDIKA $ANUSVAARA_n$

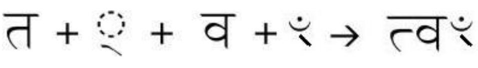


HA_n + AA_{vs} + VAIDIKA $ANUSVAARA_n$ + VAIDIKA TIRYAK + *VAIDIKA $SVARITA_n$*

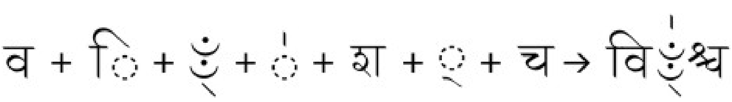


Class C: *Multiple consonant syllable:*

TA_n + $VIRAMA_n$ + VA_n + VAIDIKA $ANUSVAARA_n$



VA_n + II_{vs} + VAIDIKA $ANUSVAARA_n$ + VAIDIKA $SVARITA_n$ + SHA_n + $VIRAMA_n$ + CA_n



Examples of Vaidika Svaraankan Chihna:

Class A: Single vowel syllable:

AA_n + VAIDIKA $SVARITA_n$

आ + ◌॑ → आ॑

Class B: *Single consonant syllable:*

MA_n + $VISARGA_n$ + VAIDIKA $SVARITA_n$

म + ◌ः + ◌॑ → म॑ः

Class C: *Multiple consonant syllable:*

SA_n + $VIRAMA_n$ + TA_n + U_{vs} + VAIDIKA $SVARITA_n$

स + ◌् + त + ◌ु + ◌॒ → स्तु॒

Examples of Vaidika Saamasvara Chihna:

Class A: *Single vowel syllable:*

O_n + VAIDIKA $SAAMASVARA_n$

ओ + ◌꣡ → ओ꣡

Class B: *Single consonant syllable:*

THA_n + AA_{vs} + VAIDIKA $SAAMASVARA_n$

थ + ◌ा + ◌꣡꣬ → था꣡꣬

Class C: *Multiple consonant syllable:*

TA_n + $VIRAMA_n$ + SA_n + U_{vs} + VAIDIKA $SAAMASVARA_n$

त + ◌् + स + ◌ु + ◌꣬ → त्सु꣬

Acknowledgements: for references and source material

1. *Yajurveda- Sāmaveda-Atharvaveda*
(Bhāṣā Bhaśya Saṁpurṇa)
Pub. by: Dayananda Sarasvati, New, Delhi – 5

2. *The Vājasaneyi Saṁhitā*
Edited by: Albrecht Weber
Pub. by: Chaukhamba Sanskrit Series Office,
Varanasi (Vikram Saṁvat 2029)
1972

3. *The Śatapatha Brāhmaṇa*
Edited by: Albrecht Weber
Pub. by: Chawkhamba Sanskrit Series Office,
Varanasi
1964.

4. *Vājasaneyī ŚrīŚuklaYajurveda Saṁhitā*
(Mādhyandinīyaśakhāpāṭhasameta)
Pub. by: Shri Venkateshvar Mudran Mantralaya,
1912

5. *Vājasaneyi-Mādhyandina – Śukla Yajurveda Saṁhitā*
Tr in Eng with Notes and
By: R.T.H. Griffith
Pub. by: Nag publishers,
1990.

7. *Mādhyandina-Saṁhitā*
Edited by Yudhiṣṭhira Mīmāṁsakā
Ramlala Kapur Trust, Sonpat
1971

8 *Śukalayajuravedīya Mādhyandinīya Saṁhitā*
Printed by Nag publishers
2000

9 *Vājasaneyī Mādhyandina Śuklayajurveda Saṁhitā*
With commentary by Panḍita Īśavaracandra,
Parimala publications, New Delhi
2004.

10. *Śrīmadvājasaneyī- Mādhyandina-*
Śukla yajurveda- saṁhitā
English translation by R.T.H.Griffith,
Edited By Ravi Prakāśa Ārya
Pub. by Parimala Publications, Delhi
1997

11. *Ṛgveda saṁhitā*
vol I,II,III,IV
Pub. by Vaidika Samshodhan Mandal, Pune

12. *Taitiarīya Saṁhitā*
Vol I, II, III
With Sayana Bhaṭṭbhāskara Bhāṣya
Edited by T. N. Dharmādhikāri
Pub. by Vaidika Samshodhan Mandal, Pune

13. *Atharvaveda Śaunakiyaḥ*
Edited by Viśvabaṁdhu
Pub by VVRI Hoshiyarpur
1960

14. *Atharvaveda Saṁhitā*
Edited by S.D. Sātavaḷekara
Pub by svādhyāya maṁdala, Pardi
4th Edition

15. *Atharvaveda saṁhitā and sāmavedasaṁhitā*
Pub by Ajamera Vaidikāyaṁtrālayā
Saṁ.1957

16. *Śuklayajurveda Mādhyandina Saṁhitā*
Edited by S.P. Sātavaḷekara
Pub. by Svādhyāya Mandala, Pardi

17. *Ṛgveda Saṁhitā*
Edited by S.D. Sātavaḷekara
Pub. by Svādhyāya Mandala, Pardi

18. *The sāmaveda*
Text with Eng translation by
Devi Canda, Muṁśīrāma Manoharalāl
Publishers Pvt Ltd, New Delhi
2000

19. *Ūhagānam and Uhyaganam*
Edited by Pt. A.M. Rāmanāth Dikśita
Pub by Vedic Research Committee
B.H.U.Vārāṇasī
1967

20. *Sāmvedasaṁhitā*
Edited by S.D. Sātavaḷekara
Pub. by Svādhyāya Mandala, Pardi

21. *Mahārāṣṭrīya Jnanakosha Part II Vedavidya*
Edited. by S. V. Ketkara
Pub by Maharashtriya Jnanakosha Mandala
Pune
1921

22. *Avesta In Devanāgarī Parts I, II, III*
Edited. by the late Prof. Kanga Ema. Eph.
and Sonatakke
Pub. by Vaidika Samshodhan Mandala, Pune
Sake 1884

23. *Kāṇva Saṁhitā with the commentaries*
Of Ānandabodha and Anantacarya
Vol. I – IV
Edited by B . R. Śarma
Pub by Vaidika Samshodhan Mandala Pune
1988 – 1999

24. *Sāmavedasṁhitā Pūrvarcika*
Sāmavedasaṁita Uttarārcika
Edited by Board of Editors
Pub by Sadguru Gangesvara International
Veda Mission
1979, 1981

25. *Prāchīna Bhāratiya Bhāṣāśāstra (Marathi)*
Author: Manchara Devakriṣṇa Paṁḍita
Pub by Shubhada Sarasvata Prakashana Pune
2000 AD

26. *R.K. Tantra : Eka Parishilana*
by Dr. Sureśa Prakāśa Pāndeya
Pub by Parimal Publications, Delhi
1992

27 *Yajurvedoccāraṇavidhivimarśah*
By Dr. Ciranji Śarmā
Pub by Srngerimatha AIlahabad
2001

28. *Taitariya Pratiśākhya : Eka Parihilana*
Dr. Ānandkumāra Śrivastav
Pub by Vani Mandir, Varanasi
1st Edition 1996

29. *The Tattiriya - Pratisakhya*
With Introduction by William D. Whitney
Pub by Motilāla Banārasidāsa, Delhi
Reprint 1973

30 *Atharva - Prātiśākhya*
By Surya Kānta
Delhi ,
1968

31. *Ṛgveda Prātiśākhya*
By Maṁgala Deva Śāstri
Benaras
1934

32. *Ṛgveda Prātiśākhya*
Patala 1.14
By Dr. Vrajabihārī Caube
Pub. By Bhartiya Vidya Prakashan Delhi
1992

33. *Sartha Ṛgveda - Pratiśākhya Parts I and II*
by Paṁḍita Śivarāmaśāstrī Śintre
Bombay
1939

34. *Vajāsaneyī Prātiśākhyam*
by Dr. Vīrendra Kumāra Varmā
Pub by Choukhamba Sanskrit Pratisthana
Delhi - Reprint
2001

35. *Śaunakiya Caturadhyāyikā*
By Mādhava M. Deśpānde
Pub. by Dept of Sanskrit and Indian Studies
Harvard University
1997

36. *Vaidika Vyākaraṇa*
By Dr. Rāmagopāla
Pub. By National Publishing House, Delhi
1965

37. *Kriṣṇa Yajuravediyam*
Taittirīya Brāhmanam
Part I - II
Pub. by Anandaśrama, Pune , 1901

38 *TaittiriyaBrāhmanam Vol. I – IV*
Edited. by E. Mahādevaśāstri
Pub. by Motīlāla Benārsīdāsa
(1st edition - by Govt. of Mysore State)
1911

39. *The Śrauta Sūtra of Āśvalāyana*
with commentary of Gargya Nārāyana
Pub by Asiatic Society of Bengal, Calcutta
1874

40. *The Baudhayana Śrauta Sūtra*
Vol. I & II
Edited by Caland W. Pub
by Munshiram Manoharlal
2nd Edition 1982

41. *Kriṣṇa Yajurvediyam*
Vādhūlaśrautasūtrama
By Dr. B. B. Caube
Pub. By Katyayana Vaidik Sahitya Prakashan,
Hoshiarpur
1993.

42. *The Śrauta Sūtra of Āpastamba,* Vol. I - III
With commentary of Rudra datta
Edited. By Dr. Ricarda Garbe
Pub. By Munśīrāma Mancharlala

43. *Vaidika Bapat Dundirājaśāstri Saṁhītā*
Pub. By Bharat Gayana Samaja
Pune

44. *Sānvayārthvivaraṇā śrīvedāṇṣiksā (in Marathi)*
By Kāvyāḷṇkārabhuṣaṇa
Paṁḍita Śivarāmaśāstrī Śintre
Shastri, Elphinstan college, Mumbai
1993

45. *Yājñavaḷkya śikṣā*
Śikṣāvaḷī'- Vivṛtisanalṇkṛtā
Edited by: Śrī AmaranāthŚāstrī Dīkṣita
Corrected by
Śrī lalitāprasāda ḍbrāla,Vyākaraṇācārya
Pub. by: Śrī Padmanābhśarmā dīkśita
Pashupateeshwar, Kashi
1994.

46. *Vead Mimamsa Research Centre*
Service no 1
Vyāsaśikṣā along with the commentaries
Vedataijasa of Śrī Sūryanārāyaṇa Sūrāvadhānī
and Sarvalakṣaṇamañjrīsaṇagraha of
Śrī Rājā Dhanapāṇī
Edited by
Acarya Śhri P. N. Pattabhirāma Śāstri
Pub. By Veda Mimamasa research centre
4/7 Hanuman Ghat Varanasi
1976

47. *Vaidika-Svarita-Mīmāṁsā*
By Dr. B. B. Caube
Pub. By Vaidik Sahitya Sadan, Hoshiarpur
1972

48. *Śikṣāmahābhāṣyam*
By Citrarṣi Citrācāyorpanāmā Jagadīśācāryaḥ

49. *Śikṣāśāstram (laghupāṭhaḥ)*
By Citrarṣi Citrācāyorpanāmā Jagadīśācāryḥ

50. *Vṛhatśikṣāśāstram (Vṛhatpāṭhaḥ)*
By Citrarṣi Citrācāyorpanāmā Jagadīśācāryḥ
Pub. by
Śrī Rāmlāl Kapūr Trust
Po Balagarh, Sonpat (Haryana)

51. *Vedavikrtilakṣaṇasmgraha*
(a collection of twelve tracks on
Vedavikṛtis and allied topics)
[research unit publication no 5]
Compiled and critically edited with
introduction and variant readings by
Prof K.V. Abhyankar and Śrī J.V. Devasthali
Pub. by Bhandarkar OrientalResearch Institute,
Pune 411004
1978.

52. *Bhāradvājaśikṣā*
with Nāgeśvara's commentary
[Government oriental Series –class a, no.6]
Edited by
Śrī V. R. Rāmacandra Dikṣita and
Śrī P.S. Sundrama Ayyar
Pub. by Bhandarkar Institute Pune 411004
1938.

53. *Nāradīyaśikṣā with the commentary of Bhaṭṭa bhāskara*
[research unit series no 8]
Critically edited with translation and
explanatory notes in English
By Dr. Uṣā R. Bise
Pub. by Bhandarkar Oriental Research Institute
Pune 411004.

54. *Svaramañjarī of Śrīnarasiṁhasūrī*
[research unit service no 6]
Edited by
Śiva J.V.Devasthali
Bhandarkar Oriented Research Institute,
Pune 411004
1986.

55. *Svaramañjarī of Śrīnarasiṁhasūrī*
with Parīmala of Girināth
[Mss R.5655 in the government
Oriental Mss.library, Madras 5]
A transcript of the said Mss was received at
B.O.R.I on 12-3-75
Source : introduction to svaramajarī of
Śrīnarasiṁhasūrī ed G.V. Devasthali p.no 11].

56. *Ṛgvedaprātiśākhya*
Editor Max Muller.

57. *Taittirīya Prātiśākhya*
Edited by Whiteny.

58. *Atharva prātiśākhya*
Edited by whiteny.

59. *Vājasaneyi- Prātiśākhya of Kātyāyana*
with the commentaries of
Uvaṭa and Anantabhaṭṭa
Edited by
Śrī V. D.Venkataramana Śarma
University of Madras
1934.

60. *Śikṣāsaṇgrahaḥ*
Pub. by: Ramamurti Chaturvedi,
Sampunand Sanskrit Vishwa Vidyalay,
Varanasi.

61. *Śvaṛa Prakriyā* Of Rāmacandra
Anandashram series no 138, Pune.

62. *Svarasiddhāntacandrikā Of Śrīnivāsadikṣita*
Edited by
Shri K. E. Śivarāmaikriṣna Śāstri
Annamalai University
Sanskrit series no.4.

63. *Svarakaumudī of Bhagavadbhakta*.
Edited by: Devastali
Svaramanjari

64. *Ṛgveda Prātiśākhya*
(Bhāga Philā aṇi Dusarā)
By Kāvyālaṇkārabhūṣṇa
Paṁḍita Śivarāmaśāstrī Śintre
Shastri Elphinstan college, Mumbai
Part -1 1993
Part 2-1994.

65. *Śikṣādivedaṣaḍaṅga*
Publisher: Śri Tukārama
Nirnaya sagar press, Mumbai
1915.

66. *Sāmaveda Saśvra Bhāṣābhāṣya Ane*
Sāmagānaprakriyā
Edited and authored by
Vedācārya Viṣṇudeva Sākaleśvara Paṁḍita
Pub. by: Amṛta ṭrasṭa ane Vedaprakāśana samiti
21 ḍalabhai Park Geeta Mandir Road,
Ahemdabad 320022
1978.

67. *The Unicode Standard Version 3.0*
0900 Devanagari 097F

68. Indian Standard
Indian Script Code for Information Interchange – ISCII
Bureau of Indian Standards,
New Delhi 110 002, India.
December 1991

69. *Sūrya Namaskāra Mantra Prasannaḥ*
Taitiriya Araṇyaka - Prathama Praśnaḥ
(saswarah) Vedic text (in Malayalam script)
Editor: G. E. Rāmanathana
The educational suppliers dept.
Palakkad – 678 001.
First Pub. in 1992

70. *Mantrapuṣpam (sasvara)*
Swāmī Devarupānanda
Ramakrishna Math,
Khar, Mumbai 400 052
1989 – 1998
Pages: 345 – 347.

71. *Nityakarma Prayogamālā (Śukla Yajurveda)*
Paṁḍita Chaturthīlāla Śarmā.
Printer & Publisher: Kṣemarāja ŚrīKṛṣṇadāsa,
Shri Venkateshwar Steam Press, Mumbai
Samvat 2046, Shake 1911

72. *Nāradiya śikṣā*
With the commentary of
Bhaṭṭa Bhaskara
Uṣā bhise
Bhandarkar Oriental Research Institute,
Pune 411004, India.
1986 (PP 15 -16 -17)

73. *The World of Music*
(Sacred Music)
Vol. XXIV NO. 3 1982
Article : Music and Accentuation in
Vedic literature.
Wayne Howard
Page: 23 -34.

74. *The Saman Chants*
(A review of Research)
G. H. Tarlekar
Pub. by :
Secretary, Indian Musicological Society
Baroda 390 001
1985
Pages: 24 – 25, 26 – 31.

75. *Veda Recitation in Vārāṇsī*
Wayne Howard
Motīlāla Banārsīdās
(Narendra Prakāś Jaina)
Bungalow Road, Delhi 1986
ISBN 81-208-0071-0
Pages: 214 – 221, 225 – 230.

76. *Sāma Veda*
S. V. Gaṇapatī
143, kalākṣetra Colonī
Madras 600 090
Printed by Motīlāla Banārsīdās
At Śrī Jainendra Press
A-45, Phase I, Industrial Area,
Naraina, New Delhi 110 028
First Edition, 1982

77. *Matra Lakṣaṇām*
IGNCA – Guest Editor Dr. Kapilā Vātsyāyana
By Wayne Howard
Pub. by IGNCA in Association with
Motīlāla Banārsīdās Publishers P.Ltd.
Bungalow Road, Delhi 110 007
ISBN 81-208-0585-2

78. BIBLIOTHECA INDICA :
VOL I : CALCUTTA
Sāma Vedā Saṁhitā
With the commentary of sāyaṇa Ācārya
Edited by
Editor of the Hindu commentator.
Collection of oriental works
Pub. under the Superintendence of
the Asiatic Society of Bengal
Printed at the Ganesh Press
1874

79. Vaidika Vyākaraṇa
Arthur Anthony Mcdonell (Author)
Satyavrata śāstrī (Translator)
Motīlāla Banārsīdās
New Delhi. India
1987
Pages: 18 and 37.

Following scholars, technologists and representatives were consulted at various stages in preparation of the Vaidika Sanskrit encoding proposal.

Dr.Amba Kulkarni, Head, Department of Sanskrit Studies, University of Hyderabad, Hyderabad, Email: ambapradeep@gmail.com
Dr. Vineet Chaitanya, Professor, Department of Sanskrit Studies, University of Hyderabad, Hyderabad
Dr.R.V.S.Avadhanulu, Director, Vedic Bharati Language Institute
Prof.K.Subramaniyan, Centre for Applied Linguistics and Translation Studies, University of Hyderabad, Email:ksmshouh@yahoo.com
Shri K.S.S. Avadhani, Principal SVVS Patashala, Hyderabad, Email: avadhanulu-ramella@rediffmail.com
Dr.S. Sudarshan Sharma, Vice chancellor of S.V.Vedic University,Tirupati, vcvedicuniversity@yahoo.com
Dr.R.J.Rama Sree, Head of Department, Computer Science, Rashtriya Sanakrit Vidyapeetha, Tirupati, Email:shrivara@gmail.com
Dr. Hare Krishna Satapathy, Vice chancellor of Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha
Prof V. Venkata Ramana, Director, S.V. Oriental Research Institute, Tirupati
Dr.E.Chandramouli, Asst Professor Telugu, S.V.University, Tirupati
T. Anantanarayan, Research Assistant, S.V.University, Tirupati
Dr. M Prabhakar Rao, Assistant Professor, S.V.University, Tirupati
Dr. L. Dyana Prakasham Naidu, Curator cum Librarian, S.V.University, Tirupati
Sri Vasudevan Namboodiri, Samaveda Vedapathi,Nellikkattil Mana, Samaveda Gurukulam, Panjal, (Ph)04884274843
Sri Vasudevan Namboodiri, Samaveda Vedapathi, Perumangattu Mana, Samaveda Gurukulam,(M)04884274156
Sri Kunju Vasudevan, Director, Samaveda Gurukulam, Panjal 67953, kunjupad@gmail.com,(Ph) 04884252292
Dr. CM. Neelakandhan, Sree Sankaracharya University of Sanskrit, Kalady, Kerala
Dr. K.A. Ravindran. Senior Lecturer, Dept of Sahitya, S.S.U.S. Kalady, Kerala, Email: karavindran@sify.com. (Ph)04885263642
Dr. R Saxena, Visiting Faculty- Dept of Vedic Studies, S.S.U.S. Kalady, (M)09845218372
Dr. V. Ramakrishna Bhat, Reader, Vedic Studies, S.S.U.S. Kalady, Kerala
Dr. A.R. Anil Kumar, Lecturer, Vedic Studies, S.S.U.S. Kalady, Kerala
Dr. N. Parameswar Unni, Ex. V.C., S.S.U.S. Kalady, Kerala, ph- 0491-2474442
Dr. K. Maheswaran Nair, Prof & HoD, University of Kerala, Trivendrum
Dr. N. Vasudevan, Sr. Lecturer, Regional Centre Sankaracharya Sanskrit University
Dr. S. A. Shanvas, Dir of TRCML, Dept of Linguistics, University of Kerala, Trivendrum
Dr. Sulochona, Language Technologist, C-DAC Trivendrum
K.G. Shreelekha, Oriental Research Institute, Manuscript Library, University of Kerala Meera Subhash, University of Kerala, Trivendrum
Dr. Gopal Krishna Dash, Professor, P.G. Department of Sanskrit, Utkal University, Vanivihar, Bhubaneswar-751001, Orissa, E-mail: gopalkrishna.dash@gmail.com, (R)- 0674 2580862
Dr. (Mrs) P. M. Rath, Reader, P.G. Department of Sanskrit, Utkal University, Vanivihar, Bhubaneswar-751001, Orissa E-mail: prativam_rath@yahoo.co.in, (M)-9437281871
Dr. Prafulla Ku. Mishra, Professor, P.G. Department of Sanskrit, Utkal University, Vanivihar, Bhubaneswar-751001, Orissa E-mail: prafulla11@rediffmail.com / mprafullak@yahoo.com, (M)- 9437229658
Dr. (Mrs) Sanghamitra Mohanty, Professor, RC-ILTS-ORIYA, Department of Computer Science and Application, Vanivihar, Bhubaneswar-751001, Orissa E-mail: sangham1@rediffmail.com, (O) 0674 2588216
Dr. Satrughna Panigrahi, Veda adhyapaka, Shri Jagannath Sanskrit Vishvavidyalaya, Shrivihar, Puri – 752003, Orissa M-9861274569
Dr. Ramachandra Hota, Veda adhyapaka, Shri Jagannath Sanskrit Vishvavidyalaya,Shrivihar, Puri – 752003, Orissa
Dr. Bijay Ku. Rath, Ex Director, Archives State Museum Orissa, C/O: Dr. (Mrs) Sanghamitra Mohanty, HIG 33, 7th Acre, Chandrashekharpur,House board Colony, Phase-1, Bhubaneswar, Phone (R) 0674 2740614, drbkrath@yahoo.com
Mr. Hariram Pansari, Assistant Manager (Rajbhasha), NALCO, P/1, Nayapalli, Bhubaneswar-751013, Phone (O): 0674-2301988 PBX . Ext.2537, E-mail: hariraama@gmail.com
Jaga Mohan Acharya, research scholar, P.G. Department of Sanskrit, Utkal University, Vanivihar, Bhubaneswar-751001, Orissa, M- 09861463441
P. S. Yogamaya, research scholar, P.G. Department of Sanskrit, Utkal University, Vanivihar, Bhubaneswar-751001, Orissa, M-09438133376, E-mail: sansyogamaya@yahoo.com
Dr. Divakar Mohapatra, Professor, Vedic studies, Shri Jagannath Sanskrit Vishvavidyalaya, Veda Niketanam, Luhagarh jaga Lane, Tiadi Sahi, Bali Sahi, Puri- 752001, R- 06752-225265
Er. Priyabrata Dash, Vedic Expert, Vaidik Anusandhan Pratisthan, 139, Shahid Nagar, Bhubaneswar- 751007, Phone: 0674 2544410
Dr. T. N. Dharmadhikari,Ex. Director, vaidika Samshodhan Mandal, Pune
Dr. Nirmala Kulkarni, Dept of Sanskrit, Pune University, Pune
Dr. Bhagyalata Pataskar, Director, vaidika Samsodhan Mandal, Pune
Dr. Bhagyasree Bhagvat, Editor, vaidika Samsodhan Mandal, Pune
Dr. S.D. Joshi, Ex Prof. Deccan College, Pune
Dr. M. V. Dhadaphale, Bhandarkar Oriental Research Institute, Pune
Dr. S.D. Laddu, Ex Curator, Bhandarkar Oriental Research Institute, Pune
Dr. Saroja Bhate, Bhandarkar Oriental Research Institute, Pune
Sri Nana Kale, Vaidika Pathashala, Barsi, Maharastra
Prof. Lakshmishwar Jha, Lalbahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, New Delhi
Prof. Bhavendra Jha, Head, vyakarana Vibhag, Lalbahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, New Delhi
Dr. Gopal Prasad Sharma, Veda Vibhag, Lalbahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, New Delhi
Prof. Harihar Trivedi, Lalbahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, New Delhi
Dr. Devendra Prasad Mishra, Lalbahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, New Delhi
Dr. Sunder Narayan Jha, vyakhyata, Veda Vibhag, Lalbahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, New Delhi
Prof. Sashiprabha Kumar, Special Centre for Sanskrit, JNU, New Delhi-67
Prof. Brij Bihari Chaubey, Vishweshvaranand Vedic Shodh Samsthan, Hoshiarpur
Dr. Keerthikant Sharma, Research Officer, Manuscript Unit,IGNCA, New Delhi

Dr.Santosh Kumar Shukla, Asst Professor, Centre for Sanskrit Studies, JNU, New Delhi-110067 (M)9810317119
Dr.Satyavratha Shastri Pandit Santhakari Mukopadhya
Prof. Deepak Bhattacharya, Ex Professor of Vedic Sanskrit, Vishwabharati, Atharban, Gurupalli West, Santiniketan, Bholpur, West Bengal, Pin 731235, R- 03463-262039, E-mail:dbhattacharya2004@yahoo.co.in
Prof. Sri Kishore Mishra, Head, Dept. of Sanskrit Vedic Studies, Faculty of Arts, BHU, Varanasi, Phone: 0542-2204403,
Prof. Yugal Kishore Mishra, Dept of Vedic Studies, Sampurnananda Sanskrit University, Varanasi
Prof. Probal Dasgupta, Linguistic Research Unit, Indian Statistical Institute, 203 B.T. Road, Kolkata 700108, India
tel. 033 25753282, E-mail: probal53@yahoo.com
Prof. Pabitra Sarkar, Linguist & Ex V.C. of HSE West Bengal, 21, Kendua Main Road, Post: Garia, Kolkata-700084,
Phone: 033-4303577, E-mail: pabitra123@vsnl.net
Prof. Sri Kishore Mishra, Head, Dept. of Sanskrit, Banaras Hindu University, Varanasi-221 005 Phone: 0542-2204403
Dr. Abhijit Ghosha, Dept of Sanskrit, PG Arts Bldg 3rd floor, Jadavpur University, Jadavpur Campus, Kolkata 700 032
Phone: 033-24169027
Dr. Tapan Sankar Bhattacharya, PG Arts Bldg 3rd floor, Jadavpur University, Jadavpur Campus, Kolkata 700 032
Dr. Bhaskarnath Bhattacharya, Reader, School of Vaidic Studies, Ravindra Bharati University, 56 A, BT Road, Kolkata- 700050
Prof. Navanarayan Bandopadhyaya,Director, School of Vaidic Studies, Ravindra Bharati University, 56 A, BT Road, Kolkata-700050, Phone: 033-25571028/ 3028/ 4028/ 7161
Dr. Ratna Vasu, HoD Dept. of Sanskrit, Manuscript Dept, Kolkata University Campus, College Street, Kolkata-700 073, West Bengal, Phone: 033-24148840
Dr. Shyamal Das Mandal, Computer scientist, C-DAC Kolkata
Mr. Subash Chandra, Sanskrit linguist, C-DAC Kolkata
Dr. A. Sandandan, Bharatiya Samskrit Vidya Niketanam, Lonavala, Mumbai
Prof. S.A. Upadhaya, HoD Dept of Sanskrit, Bharatiya Vidya Bhavan, Mumbai
Sri Lakshminarsimhan, Anantacharya Indological Research Institute, Mumbai
Dr. R. Devnathan, Principal, Rashtriya Sanskrit Sansthan, Sringeri, Karnataka
Dr. Uma Raman Jha, Ex Director, Vrindavan Shodh Samsthan, Mathura, U.P.
Prof. V. V. P. Ramanujan, Vedic Sanskrit Scholar, C-DAC Bangalore
Mr. Naankar and Mr. Satpute of GIST group C-DAC, Pune
Sri Bharadwaj of Anantacharya Indological Researach Institute, Mumbai
Sri Kaustubh Kale, Vidya Prachara Mandal, Naupada, Thane, Mumbai
Sri Rajgopal Iyer, Dr.V. N. Bedekar Institute of Management Studies, Mumbai
G.B. Jani, Reasearch Associate, Dept of Sanskrit, Bharatiya Vidya Bhavan, Mumbai
Dr. Malhar Kulkarni, Reader, HSS, IIT Bombay, Mumbai
Dr. Usha Bhise, Sanskrit Scholar, Ex- Bharatiya Samskrit Vidya Niketanam, Lonavala, Mumbai
Dr. M.D. Paradakar, Sanskrit Scholar & Vice Chancelar, Bombay Hindi Vidyapitha

Acknowledgements:

We are thankful to Michael Everson and Peter Scharf (editors), Michel Angot, R. Chandrashekar, Malcolm Hyman, Susan Rosenfield, B. V. Venkatkrishna Sastry, Michael Witzel for their contribution for Vaidika Sanskrit Encoding and further interaction in preparation of this Combined Common Revised Single Proposal.

The role played by Ms. Swaran Lata is appreciated. We are thankful to her and her team at the Ministry of Communications and Information Technology. We acknowledge the help extended by Dr. Pataskar and Dr. Bhagwat of Vaidika Sanshodhan Mandal, Pune and Dr. S. Upadhyay and Mr. A. Jani of Bhartiya Vidya Bhavan, Mumbai in preparing the draft proposal.We are thankful to officers in CDAC and members of Language Computing Group of C-DAC Mumbai namely Sobi, Santosh, Kousik , Jui, Supriya and Gracy and others for their support.

This proposal is an outcome of financial support by the Ministry of Communications and Information Technology, Govt. of India to C-DAC Mumbai. We acknowledge their help and encouragement.

Prof. R. K. Joshi
23 January 2008

ISO/IEC JTC 1/SC 2/WG 2
PROPOSAL SUMMARY FORM TO ACCOMPANY SUBMISSIONS
FOR ADDITIONS TO THE REPERTOIRE OF ISO/IEC 10646[1]

A. Administrative

1. **Title:** ***Proposal for Encoding Of Vaidika Characters & Symbols in Unicode***
2. Requester's name: ***Department of Information technology, Ministry of Communications & IT, Government Of India***
3. Requester type (Member body/Liaison/Individual contribution): ***Member Body***
4. Submission date:
5. Requester's reference (if applicable):
6. Choose one of the following:
   This is a complete proposal: ***Yes***
   (or) More information will be provided later: ***No***

B. Technical – General

1. Choose one of the following:
   a. This proposal is for a new script (set of characters): ***Yes***
      Proposed name of script: ***Vaidika Extensions***
   b. The proposal is for addition of character(s) to an existing block: ***No***
      Name of the existing block: ***Not Applicable***
2. Number of characters in proposal: ***68***
3. Proposed category (select one from below - see section 2.2 of P&P document): ***B.1***
   A-Contemporary B.1-Specialized (small collection) B.2-Specialized (large collection)
   C-Major extinct D-Attested extinct E-Minor extinct
   F-Archaic Hieroglyphic or Ideographic G-Obscure or questionable usage symbols
4. Is a repertoire including character names provided? ***Yes***
   a. If YES, are the names in accordance with the "character naming guidelines" in Annex L of P&P document? ***Yes***
   b. Are the character shapes attached in a legible form suitable for review? ***Yes***
5. Who will provide the appropriate computerized font (ordered preference: True Type, or PostScript format) for Publishing the standard? ***CDAC Mumbai***
   If available now, identify source(s) for the font (include address, e-mail, ftp-site, etc.) and indicate the tools used: ***Fontographer V 4.1***
6. References:
   a. Are references (to other character sets, dictionaries, descriptive texts etc.) provided? ***Yes***
   b. Are published examples of use (such as samples from newspapers, magazines, or other sources) of proposed characters attached? ***Yes***
7. Special encoding issues:
   Does the proposal address other aspects of character data processing (if applicable) such as input, presentation, sorting, searching, indexing, transliteration etc. (if yes please enclose information)? ***Yes***

8. Additional Information:

Submitters are invited to provide any additional information about Properties of the proposed Character(s) or Script that will assist in correct understanding of and correct linguistic processing of the proposed character(s) or script. Examples of such properties are: Casing information, Numeric information, Currency information, Display behaviour information such as line breaks, widths etc., Combining behaviour, Spacing behaviour, Directional behaviour, Default Collation behaviour, relevance in Mark Up contexts, Compatibility equivalence and other Unicode normalization related information. See the Unicode standard at http://www.unicode.org for such information on other scripts. Also see http://www.unicode.org/Public/UNIDATA/UCD.html and associated Unicode Technical Reports for information needed for consideration by the Unicode Technical Committee for inclusion in the Unicode Standard.

[1] Form number: N3102-F (Original 1994-10-14; Revised 1995-01, 1995-04, 1996-04, 1996-08, 1999-03, 2001-05, 2001-09, 2003-11, 2005-01, 2005-09, 2005-10, 2007-03)

C. Technical - Justification

1. Has this proposal for addition of character(s) been submitted before? ***Yes***

   If YES explain ***The Proposal was submitted to UTC in 2003 (L2/03-066 and L2 /03-067) and it were also discussed in UTC#101.***
   The proposal was resubmitted to UTC in 2006 (L2/06-185).
   A further revised proposal was submitted to UTC in October 2007 (L2/07-395,396,397)

2. Has contact been made to members of the user community (for example: National Body, user groups of the script or characters, other experts, etc.)? ***Yes***

   If YES, with whom? ***Vaidika Sanskrit Scholars, Linguists, IT experts working in language technology, Industry Representatives, Sanskrit Scholars etc.***

   If YES, available relevant documents:

3. Information on the user community for the proposed characters (for example: size, demographics, information technology use, or publishing use) is included? ***Yes***

   Reference:

4. The context of use for the proposed characters (type of use; common or rare) ***The type of usage can be very from common to rare***

   Reference:

5. Are the proposed characters in current use by the user community? ***Yes***

   If YES, where? Reference: ***Critically edited versions of Scholarly Publications***

6. After giving due considerations to the principles in the P&P document must the proposed characters be entirely in the BMP? ***Yes***

   If YES, is a rationale provided? ***Yes***

   If YES, reference: ***The proposed characters are used in Indian Scripts***

7. Should the proposed characters be kept together in a contiguous range (rather than being scattered)? ***Yes***

8. Can any of the proposed characters be considered a presentation form of an existing character or character sequence? ***No***

   If YES, is a rationale for its inclusion provided?

   If YES, reference:

9. Can any of the proposed characters be encoded using a composed character sequence of either existing characters or other proposed characters? ***No***

   If YES, is a rationale for its inclusion provided?

   If YES, reference:

10. Can any of the proposed character(s) be considered to be similar (in appearance or function) to an existing character? ***Yes***

    If YES, is a rationale for its inclusion provided? ***Yes***

    If YES, reference:

11. Does the proposal include use of combining characters and/or use of composite sequences? ***Yes***

    If YES, is a rationale for such use provided? ***No***

    If YES, reference:

    Is a list of composite sequences and their corresponding glyph images (graphic symbols) provided? ***No***

    If YES, reference:

12. Does the proposal contain characters with any special properties such as control function or similar semantics? ***No***

    If YES, describe in detail (include attachment if necessary)

13. Does the proposal contain any Ideographic compatibility character(s)? ***No***

    If YES, is the equivalent corresponding unified ideographic character(s) identified?

    If YES, reference:

(i) correct production of letters (word) अक्षरशुद्धि

(ii) correct duration of utterance of letters (मात्राशुद्धि)

(iii) correct intonation of letters (स्वरशुद्धि)

So, in the vedic period correct pronunciation of the vedic mantras was meticulously observed at the time of their utterance in the performance of sacrifices (yajna) and studing the vedas. A mantra wrongly pronounced in the matter of accent or a syllable and wrongly used in sacrifice could bring disaster to the sacrificer and the officiating priests.[1] Our Rishis prescribed several fool-proof methods to correctly recite the veda mantras. Several works dealing with the phonetic peculiarities of respective sakhas were composed under the class of technical literature known as vedanga. Vedangas are six in number viz (1) Shiksha and Pratishakhya, (2) Vyakaran, (3) Nirukta, (4) Chhandas, (5) Kalpa and (6) Jyolish.

In oral tradition vedic seers devised many ways to prevent even a small error to creep to the recitation of the veda mantra for which various patterns and combinations were practiced. All the mantras are recited in three notes i.e. Udatta, Anudatta and Svarita is set principles.[2] There were eleven types of Pathas known as vakya, Pada, Krama, Jata, Mala, Shikha, Rekha, Dhvaja, Danda, Rath and Ghana.

Among these, vakya, pada, krama, jata and ghana methods of chanting are more popular and let usanalyze those patterns.

1. Vakya or Samhita path- vakyapath is to recite a mantra in a sentence straight with appropriate intonations.
2. Padapath is word by word recitation in which compounds are dissolved.
3. Krampath – In Krampath words are arranged in the pattern of 12,23,34.

Here the first word of the sentence is added to the second and second to the third. The third to the fourth and so on, untill the whole sentence is completed. The reciter, who known this pattern is known as kramvit.

Jatapath – In the Jata method the first word and the second word are recited together and then the words are recited in the reverse order and then again in the original order. They are recited as 1-2-2-1-1-2; 2-3-3-2-2-3, 3-4-4-3-3-4 and so on. Scholarly priest capable of reciting in the Jatapath pattern are entitled 'Jataballabha'.

Ghanapath – The Ghana method is more difficult than the above where the combination of words will be 1-2-2-1-1-2-3-3-2-1-1-2-3; 2-3-3-2-2-3-4-4-3-2-3-4 and so on, the words are repeated back and forth in a bell shape.

---

[1] मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।

स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् पाणिनीय शिक्षा 52

[2] Vedic Svaro Bodh, Chaubey B.B. Vedic Sahitya Sadan, Hosharpur, 1972, p. 22 onwards.

This pattern is known as the Bell mode of chanting because in this pattern the words are repeated back and forth in a ball shape.

At first stage students are taught to memorize using simple patterns i.e. Prakriti path (Samhita, Pada and Krama) and then eight complex patterns i.e. vikriti paths.[3] It is to be pointed out that reversing the word order or back word chanting does not alter the meaning of the vedic language.

Samaveda is veda of chanting. This chanting is doen in seven svaras i.e. Krushta, Pratham, Dvitiya, Tritya, Chaturth, Mandra and Atisvarya. For chanting of samagana definite techniques seem to have been introduced and developed by the samasingers. From the study of Brahmana and vedanga literature, we come accross various techniques and patterns of saman chanting. When a saman is sung on a particular Rik mantra then it undergoes some modifications, altrations and additions to suit the chanting. This feature is technically known as vikriti. The samhitopanishad Brahmana gives the number of such vikritis as eighteen, the pushpasutra as twenty and the samtantra as thirty four.

These vikaras can be classified into two groups viz. internal and external. Internal vikaras are those which are based on the padas and the varnas of the rik on which the saman is chanted. Following are based on padas.

अंभाव, अतिहार भाव, अभ्यास, अवृद्ध, आइभाव, एभाव, ऐभाव, ओभाव, औभाव, यभाव, रेफत्वलोप, लोपभाव, वन्तविधि, विकर्ष, वृद्ध, ह्रस्वभाव।

These are the different patterns for changing the word for malody. For example in Am-bhava (अंभाव) a, i, u, r are changed into 'a' e.g. पावका to पवाका Following vikaras are based on melody or chanting. अतिक्रम, कर्षण, धार्य, नुभाव, प्रत्युत्क्रम, परिस्वार, प्रणीत, प्रेंङ्रव etc.

अतिक्रम – When a svara cross the next and goes to the other svara. This skip is known as Atikrama. There are four types of Atikrama[4] In first kind krushta omits the first in crossing to the second. In the second type first svara goes to the third by skipping second. Then third goes to the fifth note and in fourth type First crosses second, third and fourth and goes to fifth.

कर्षण&(Karshan)-Karshan is lenghtening. When a word is chanted by extending to its next note, it is known as Karshan. Karshan again is of five types.[5]

---

[3] जटा, माला शिखा रेखा ध्वज दण्डो रथो घनः

इत्यष्ट विकृत्याह प्रयुक्तः क्रमपूर्वमहिर्षिभिः।।

[4] चतुर्विधो अतिक्रमः । मात्रालक्षण 1.27

[5] पञ्चविधं कर्षणम्। आद्वितीयकर्षणमातृतीयकर्षणमाचतुर्थ कर्षणम।

मन्द्रश्चतिस्वार्यात् कृष्यते। मा० ल० 1.32

प्रत्युत्क्रम (Pratiyutkrama) – When a chanter while singing sings a note then goes to the higher note and then comes back to the same note. This process of ascending and descending back to the same note is known as प्रत्युत्क्रम. We find eight types of this pattern.[6] These are some examples mentioned above.

Under the external vikaras, come the stobha (स्तोभ) which are also of various kinds and patterns. Sometimes a syllable, sometimes a pada (word) or a paada (sentence) are included at the time of chanting but these syllable, pada and paada have no relation with the Rik. These are called varna slobha (वर्णस्तोभ)] Pada stobha (पदस्तोभ) and Paada Stobha (पाद स्तोभ) respectively. Akshartantra and stobhausamhar illustrate all the stobhas.

There are many more patterns in chanting the saman. We have just given a glimps of this rich and highly technical tradition. These patterns have great impact on the later developed classical music of India.

In conclusion we can say that there are various pattern of reciting the Rk, yajush and Sama mantras. Pada, Rhythm and svara patterns in samagana chanting. But today in the absence of performance of rituals these techniques are gradually declining. Moreover in the absence of proper study and practice of samaveda and its literature the terms and patterns use therein are becoming obsolete. So efforts be made to study and preserve, because they are relevant in our modern classical music also.

[6] प्रत्युत्क्रमोऽष्टविधः। मा० ल० 1.18

Some usages I have seen

References	Jīhvāmūlīya	Upadhmānīya
F. Max Müller, *A Sanskrit Grammar for beginners*, 1870, p.5; F. Kittel, *A Kannada-English Dictionary*, 1894, p.xii (for Skr.)	X	
F. Kittel, *op. cit*., p.xii & s.v. (for Kannada)	⧗ or X	oo
Journal of the Bihar and Orissa Research Society, transliteration table	X	)(
Anshuman Pandey, devchars.pdf	≍	)(
ALA-LC Romanization Tables, 1997, 'Sanskrit and Prakrit'	)(	≍
ISCII - 1991, pp.23, 24	×	×
G. Bühler, *Leitfaden für den Elementarcursus des Sanskrit*, 1883, Schrifttafel	X	ᳲ
H. T. Colebrooke, *A Grammar of the Sanskrit Language*, 1805, p.2	ᳲ	ᳲ
A. A. Macdonell, *A Sanskrit Grammar for Students*[3], 1927, p.4	≍	≍

Note: ᳲ is Ardhavisarga, and ≍ is presumably a variant form.

A.P.Stone April 28, 2000

The Various Methods of Marking Accent Employed in Vedic Literature

9/15/07

Notes translated and adapted from Yudhiṣṭhira Mīmāṁsaka's Hindi-language work.

Mīmāṁsaka, Yudhiṣṭhira. Vikrama 2021 [1964]. *Vaidika-vāṅmaya meṁ prayukta vividha svarāṅkana prakāra.* Ajmer: Bhāratīya Prācyavidyā Pratiṣṭhāna.

| svarita (RV, AV), udātta̤ (MS)

_ anudātta (RV), udātta (ŚB)

Ācārya, Padmanārāyaṇa. "Vaidika svara kā eka paricaya." *Nāgarī Pracāriṇī Patrikā*, bhāga 14, pp. 283-322.

[YM: Follows european rules which are deficient.]

Śāstrī, Dhāreśvarī (a?). YM: "Dhāreśvara Śāstrī ne Sāma saṁbandhī svarāṅkana kā nirdeśa 8 sūtroṁ se darśāyā hai." But he can't remember the name of the book because he copied it as a student long ago.

Sātavalekara. Intro to Sāmaveda, *Maitrāyaṇī Saṁhitā*, etc.

Viśvabandhu Śāstrī. *Vaidikapadānukramakoṣa.* Saṁhitā bhāga, part 1, intro.

[YM: Follows european rules which are deficient.]

Scan Abbreviations:

DRGG = Daulata Rāma Gauḍa editor for Gupta publication of Mādhyandina Śukla Yajurveda

DRGC = Daulata Rāma Gauḍa editor for Caukhamba publication of Mādhyandina Saṃhitā

RVKhS = Ṛgveda, editors Sontakke and Kashikar

VSKS = Vājasaneyi Saṃhitā, Kāṇva recension, editor Sātavalekar

KāSS = Kāṭhaka Saṃhitā, editor Sātavalekar

KāSSch = Kāṭhaka Saṃhitā, editor Schröder

MSS = Maitrāyaṇīya Saṃhitā, editor Sātavalekara

MSSch= Maitrāyaṇīya Saṃhitā, editor Schröder

SVKŚ = Sāmaveda, Kauthuma recension, editor B.R. Śarma

AVŚW= Atharvaveda, Śaunaka recension, editor Whitney

AVPR = Atharvaveda, Paippalāda recension, editor Raghuvīra

ŚBMA = Śatapatha Brāhmaṇa, Mādhyandina recension, published by Acyuta Granthamāla

KāBS = Kāṭhaka Brāhmaṇa, editor Sūryakānt

Svarita

jātya svarita: lexicalized kṣaipra, e.g. *kva*
kṣaipra svarita: udātta *ik* > *yaṇ*, subsequent anudātta > svarita *iko yaṇ aci*
praśleṣa svarita: udātta ac + anudātta ac > svarita, e.g. *ā*, *ī*, etc. *akaḥ savarṇe dīrgha*, *ād guṇaḥ*, *vr̥ddhir eci*
abhinihita: [*eo*] + *a* > [*eo*] ′ *eṅaḥ padāntād aci*

Pāṭha

nirbhuja = saṁhitā   mantra-saṁhitā = *ārṣī*-saṁhitā
pratṛṇa = analyzed (*padapāṭha*)   pada-saṁhitā = ācārya-saṁhitā
prakṛti = saṁhitā, pada-pāṭha, > krama-pāṭha >
vikṛti = (8) jaṭa, mālā, śikhā, rekhā, dhvaja, daṇḍa, ratha, ghana
principal among the vikṛtis are jaṭa and daṇḍa
jaṭa > śikhā
daṇḍa > mālā, rekhā, dhvaja, ratha
both > ghana
krama-saṁhitā = another name for krama-pāṭha = rūḍhā (2 words at a time: ab | bc | cd | ...)
saṁhitā = yogā (abcd...)

Accentuation according to Vedic recensions

[Underlying accents are marked with a mark preceding the accented vowel as follows: Mark only udātta (with forward slash), and independent svarita (with caret) [pracaya is unmarked]
Surface graphic accents are marked as follows:
backslash = horizontal line below the preceding akṣara
caret = vertical line above the preceding akṣara]
(Page) Sūtra.
ekaśruti: the same pitch as a preceding raised pitch
(p. 7)

7. Ṛgveda (Śākala)

8. _ anudātta
9. | svarita
10. unmarked after a svarita is ekaśruti = pracaya
(p. 8)
YM thinks pracaya is similar to anudātta, but in RV _ marks sannatara which is lower than anudātta and svarita begins higher than udātta so udātta ends up between the beginning of svarita and the sannatara.
In

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तम् (*Ṛgveda* 1.1.1) p. 7 (1)

Deep accent: *agnímīḷe puróhitam*

अ and पु are anudātta

मी and हि are svarita

In

होता॑रं रत्न॒धात॑मम् (*Ṛgveda* 1.1.1) p. 8 (2)

Deep accent: *hótāraṁ ratnadhā́tamam*

रं, र, and म are ekaśruti.

11. Initial or preceded by an anudātta, an unmarked syllable is udātta.
In

अग्ने॒ यं य॒ज्ञम॑ध्व॒रम् (*Ṛgveda* 1.1.4) p. 8 (3)

Deep accent: *ágne yáṁ yajñámadhvarám*

12. Preceded by an independent (jātya, kṣaipra, praśleṣa, or abhinihita) svarita that is uttered with kampa, an unmarked syllable is udātta. (If the preceding doesn't have kampa then

it'll be ekaśruti=pracaya.)
(p. 9)

13. An independent (jātya, kṣaipra, praśleṣa, or abhinihita) svarita has kampa if followed by an udātta or svarita. (*Ṛkprātiśākhya* 3.34) Other svaritas result from anudātta which remains anudātta before udātta or svarita.
(p. 10)

14. 1 after a short independent (jātya, kṣaipra, praśleṣa, or abhinihita) svarita with kampa.

jātya: क्थ्यं in: उक्थ्यं१ वचो यतस्रुचा (*Ṛgveda* 1.83.3) p. 10 (4)

Deep accent: *ukthyàṁ váco yatásrucā*

kṣaipra: ध्र्य in: सध्र्य१ङ्नाम भद्रम् (*Ṛgveda* 1.108.3) p. 10 (5)

Deep accent: *sadhryàṅnā́ma bhadrám*
[praśliṣṭa and abhinihita svaritas are never short]
The first half mātra of a svarita vowel is udātta; the remainder, i.e. half a mātra of a short vowel, 1.5 mātra of a long vowel and 2.5 mātras of a pluta vowel, is anudātta.
(p. 11)
[pluta svarita with kampa is never found]

In शतचक्रं यो३ ऽह्यो वर्तनिः (*Ṛgveda* 10.144.4) यो is a long [YM: abhinihita <

यो। अह्यः] svarita with kampa followed by a svarita. p. 11 (6)

Deep accent: *śatácakraṁ yò ’hyò vartaníḥ*

15. Long svarita with kampa is marked with horizontal line below plus the numeral 3 with vertical line above and horizontal line below.

jātya: रथ्यो३ वयस्वतः (*Ṛgveda* 2.24.15)

kṣaipra: विक्ष्वा३योः (*Ṛgveda* 2.4.2)
Deep accent: *vikṣvā̀yóḥ*

praśliṣṭa: अभी३दम् (*Ṛgveda* 10.48.7
Deep accent: *abhī̀dám*

abhinihita: प्रथमं वां वृणानो३ऽयं सोमो (*Ṛgveda* 1.108.6)

Deep accent: *prathamáṁ vāṁ vr̥ṇānò ’yáṁ sómo*
Here, on p. 11 (7), व, यो, द, and य are udātta; थ्यो, क्ष्वा, भी, and नो are svarita with kampa.
(p. 12)
The 3 does not indicate pluta; a 3 without other marks (such as vertical line above and horizontal line below) does. A pluta is shown in

ओ३ङ्क्रतो स्मर (*Mādhyandinasaṁhitā* 40.15) p. 12 (8)

Deep accent: *ó3ṅkráto smara*

DRGG40.15
View Scan [.png] High Res [.tif]

16. Kashmiri Ṛgveda

End of the khilas in vol. 4 of the Pune edition: khila according to the Kashmiri recension.
17. In mss of the *Ṛgveda* in Kashmir, the high pitch (udātta) is marked by a vertical line above.

अहं यशस्विनां यशो विश्वा रूपाण्या ददे । (*Ṛgveda* Khila 1.1.1) p. 12 (9)

Deep accent: *ahám̐ yáśasvínām̐ yáśo víśvā rūpā́ṇyā́ dade .*

RVKhS1.1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

[Khilas Sontakke and Kashikar 1983: 889-1001. Pp. includes the Khilas according to the Kashmiri recension.]

[Peterson. Catalogue of mss. in the Alwar State Library. includes Khilas with accent found in certain sam̐hitā and pada mss. of *Ṛgveda* found in that library. "The most extensive collection of Khilas is preserved in a ms. of *Ṛgveda* sam̐hitā discovered in Kashmir by Prof. G. Bühler and described for the first time in his "Detailed report of a tour in search of Sanskrit mss.", Bombay 1877, pp. 35-36. The ms. was procured for the library of the Deccan College, Poona, which is now transferred to the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, where it is deposited at present." p. 892. "The text is accented throughout. ... only the Udātta and primary Svarita are marked. The Udātta is marked by a small vertical stroke. This kind of marking Udātta is also found in the *Maitrāyaṇī Sam̐hitā* (Cf. Schröder, Preface p. xxx). The primary Svarita is denoted by the sign "T" [that is just the curly hook at the beginning of a scripted *T*]. This sign occurs twice in the Khila portion (I.11.4; 12.7). In *Kāṭhaka Sam̐hitā* a strong curve above the line comes as a sign of the primary Svarita, while in *Maitrāyaṇī Sam̐hitā* the curve lies below the line (Cf. Schröder, ibid.). If the next syllable is accented, the primary svarita is denoted by '3' (Trikampa) even though the preceding syllable is short. This '3' which stands after the Svarita syllable has either a horizontal stroke below the line or a perpendicular stroke above the line. Scheftelowitz has retained this method of accentuation in his edition; the same has been followed here too. p. 894

p. 895 "In the Junagadh ms. however, the Svarita is marked by a horizontal line through the body of the letter and the Anudātta is marked as usual. This method is exactly the same as that in part of one of the alwar mss. of *Ṛgveda Sam̐hitā* which are described in the Catalogue as belonging to the Śāṅkhāyana śākhā (See 'A Second Report of operations in search of Sanskrit mss. in the Bombay Circle', 1883-84 by Peter Peterson; Extra No. JBBRAS 1884). p. 895.]

Sontakke, N. S. and C. G. Kashikar, eds. 1983. *Ṛgveda-sam̐hitā with the commentary of Sāyaṇācārya.* Vol. 4, Maṇḍalas 9-10. 2d. Pune: Tilak Maharashtra Vidyapith, Vaidika Sam̐śodhana Maṇḍala.

(The corresponding *Atharvaveda* has य anudātta 6.39.1, 19.56.6 and only *vin*-pratyaya should be high-pitched: *yaśasvín*, not both the 1st *a* and *i*.
(p. 13)
18. An independent (jātya, kṣaipra, praśleṣa, or abhinihita) svarita is marked with a crooked line above. It is indicated in this file by the numeral 8 which as a superscript approximates the beginning of a scripted capital T used in Sontakke and Kashikar's

edition.

Jātya: हवन्तं मेषान् वृक्येऽ (Khila 1.12.7) p. 13 (10) (Sontakke and Kashikar 1983: 923)

Deep accent: *hávantaṁ meṣā́n vṛkyè*

RVKhS1.12.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

Kṣaipra समधान्वारुहन् स्वऽः (Khila 1.11.4) p. 13 (10) (Sontakke and Kashikar 1983: 922) [YM erroneously has आरुन्नहन्]

Deep accent: *sámadhā́nvāruhan svàḥ*

RVKhS1.11.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

(In YM, a Devanāgarī 8 appears small and raised over the last consonantal character of the akṣara. In Sontakke and Kashikar, it looks like the loop at the beginning of the fancy scripted T at the top and to the right of the horizontal bar at the top of the character.)

19. Followed by an udātta, an independent (jātya, kṣaipra, praśleṣa, or abhinihita) svarita has kampa.

20. It itself, unmarked, is followed by a 3 with a horizontal line below (regardless of whether it is short or long).

(p. 14)

jātya आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं३ सरः । (Khila 3.1.3) p. 14 (11) (Sontakke and Kashikar 1983: 940)

Deep accent: *ā́po ná vajrinnánvokyàṁ3 sáraḥ .*

kṣaipra सन्ति ह्य३र्य आशिष (Khila 3.6.7) p. 14 (11) (Sontakke and Kashikar 1983: 944)

Deep accent: *sánti hyàryá āśíṣa*

RVKhS3.6.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

यो जाम्या३ः प्रत्यमदद्यः (Khila 5.12.2) p. 14 (11)

Deep accent: *yó jāmyā̀ḥ prátyamadadyáḥ*

RVKhS5.12.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita परे हीऽतो३घ्न्यास्ये (Khila 4.5.32) p. 14 (11)

Deep accent: *paré hī'tòghnyā́sye*

RVKhS4.5.32
View Scan [.png] High Res [.tif]

(Av 10.1.20 verifies the last example which is incorrect in the Pune edition and the German edition.)

21. The rest (anudātta, ekaśruti, and svarita following an udātta) is unmarked.

p.15

[Kāṭhaka and *Maitrāyaṇī Saṁhitā* use the above methods with some modification.]

22. Yajurveda

23. Śukla versus Kṛṣṇa
24. Śukla: Mādhyandina, Kāṇva
25. Kṛṣṇa: Taittirīya, Maitrāyaṇī, Kāṭhaka, Kapiṣṭhala Kaṭha
26. In the *Mādhyandina Saṁhitā*, the udātta, anudātta, ekaśruti, and dependent svarita is marked as in *Ṛgveda* (*Śākala*).

    इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ । (*Mādhyandina* 1.1.) p. 15 (12)

    Deep accent: *iṣé tvorjé tvā vāyáva stha .*

    DRGG1.1
    View Scan [.png] High Res [.tif]
    DRGC1.1
    View Scan [.png] High Res [.tif]

    इ, त्वो, वा marked with horizontal line are anudātta (sū. 8)

    त्वा, व marked with vertical line are svarita (sū. 9)

    स्थ unmarked is ekaśruti (sū. 10)

    षे, र्जे, य unmarked are udātta after anudātta (sū. 11)

27. Following an anudātta, an independent (jātya, kṣaipra, praśleṣa, or abhinihita) svarita is marked with a crooked line below: (कङ्क) indicated in this file by <ISM> for "Independent Svarita (not followed by udātta or svarita) YV *Mādhyandina Saṁhitā*" = Vedic Symbol 149.
    (p. 16)

    jātya वीर्या<ISM>णि प्र वोचं यः (*Mādhyandina* 5.18) p. 16 (13)

    Deep accent: *vīryā̀ṇi prá vocaṁ yáḥ*

    DRGG5.18
    View Scan [.png] High Res [.tif]
    DRGC5.18
    View Scan [.png] High Res [.tif]

    kṣaipra द्यौरसि पृथिव्य<ISM>सि (*Mādhyandina* 1.2) p. 16 (13)

    Deep accent: *dyaúrasi pṛthivyàsi*

    DRGG1.2
    View Scan [.png] High Res [.tif]
    DRGC1.2
    View Scan [.png] High Res [.tif]

    praśleṣa अभी<ISM>न्धतामुखे वरूत्रीष्टा (*Mādhyandina* 11.61) p. 16 (13)
    Deep accent: *abhī̀ndhatāmukhe várūtrīṣṭvā*

    DRGG11.61
    View Scan [.png] High Res [.tif]
    DRGC11.61
    View Scan [.png] High Res [.tif]

    abhinihita घर्मो<ISM> ऽसि (*Mādhyandina* 1.2) p. 16 (13)
    Deep accent: *gharmò ’si*

    DRGG1.2
    View Scan [.png] High Res [.tif]
    DRGC1.2
    View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita वधो<ISM> ऽसि (*Mādhyandina* 1.2) p. 16 (13)
Deep accent: *vadhò 'si*

DRGG1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

When kṣaipra does not follow a low pitch, then it's marked like a dependent svarita with a vertical line above.

त्र्यम्बकं यजामहे (*Mādhyandina* 3.60) p. 16 (14)
Deep accent: *tryàmbakaṁ yajāmahe*

DRGG3.60
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC3.60
View Scan [.png] High Res [.tif]

अव देवं त्र्यम्बकम् (*Mādhyandina* 3.58) p. 16 (14)
Deep accent: *áva deváṁ tryàmbakam*

DRGG3.58
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC3.58
View Scan [.png] High Res [.tif]

उर्व्या व्यद्यौत् (*Mādhyandina* 12.1) p. 16 (14)
Deep accent: *urvyā́ vyàdyaut*

DRGG12.1
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC12.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

28. If an independent (jātya, kṣaipra, praśleṣa, or abhinihita) svarita is followed by an udātta then it is marked with a three-pronged mark (क) below indicated in this file by <ISKM> for "Independent Svarita followed by udātta or svarita YV *Mādhyandina Saṁhitā*" = Vedic Symbol 135.

jātya वेर्दूत्य<ISKM>मवतां त्वा (*Mādhyandina* 2.9) p. 16 (15)
Deep accent: *verdūtyàmávatāṁ tvā*

DRGG2.9
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC2.9
View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra उर्व<ISKM>न्तरिक्षमन्वेमि (*Mādhyandina* 1.7, 1.11) p. 16 (15)
Deep accent: *urvàntárikṣamánvemi*

DRGG1.7
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC1.7
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGG1.11
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC1.11

View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa अभी<ISKM>मं महिमा (*Mādhyandina* 38.17) p. 16 (15)
Deep accent: *abhi̖mám̐ mahimā́*

DRGG38.17
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC38.17
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita पाशैर्यो<ISKM> ऽस्मान् द्वेष्टि यं च (*Mādhyandina* 1.25) p. 16 (15)
Deep accent: *pā́śairyò ’smā́n dvéṣṭi yám̐ ca*

DRGG1.25
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC1.25
View Scan [.png] High Res [.tif]

लोके<ISKM> ऽस्मिन् (*Mādhyandina* 3.21) p. 16 (15)
Deep accent: *lokè ’smín*

DRGG3.21
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC3.21
View Scan [.png] High Res [.tif]

[The crooked line (कङ्क) occurs beneath the independent svarita if it is followed by anudātta, ekaśruti, or no sound; the three-pronged mark (क॑) if followed by udātta.]
[YM raises the following problem: But in the following passage, in the first स्वर्ण, the kṣaipra or jātya svarita is marked with a horizontal line below (क॒) instead of with the three pronged mark (क॑) as in the non-initial. Dayānanda Sarasvati's commentary has the three-pronged mark.
स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्व<ISKM>र्णार्कः स्वाहा स्व<ISKM>र्ण शुक्रः स्वाहा स्व<ISKM>र्ण ज्योतिः स्वाहा स्व<ISKM>र्ण सूर्यः स्वाहा ।। (*Mādhyandina* 18.50) p. 16 (16) [YM missing accent marks on *gharmaḥ*, *arkaḥ*, and *sūryaḥ*]
Deep accent: *svàrṇá gharmáḥ svā́hā svàrṇā̀rkáḥ svā́hā svàrṇá śukráḥ svā́hā svàrṇá jyótiḥ svā́hā svàrṇá sū́ryaḥ svā́hā ..*
Deep accent: *gharmáḥ . arkáḥ . ná . svā́hā . śukráḥ . sū́ryaḥ . jyótiḥ*
[MW has *gharmá*.]

DRGG18.50
View Scan [.png] High Res [.tif]
DRGC18.50
View Scan [.png] High Res [.tif]

(p. 17)
29. In all saṁhitās of the YV except *Maitrāyaṇīsaṁhitā*, an independent svarita before an udātta does not have kampa as it does in the RV. [See sū. 47 for *Maitrāyaṇī*'s kampa.]

30. Kāṇvasaṁhitā

An independent svarita not followed by an udātta, i.e. followed by anudātta, ekaśruti, or virāma, is marked by a vertical line above as in RV.

(p. 18)

jātya वीर्याणि प्र वोचं यः (*Kāṇvasaṁhitā* 5.5.6) p. 18 (17)

Deep accent: *vīryā̀ṇi prá vocaṁ yáḥ*

VSKS5.5.6

View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra द्यौरसि पृथिव्यसि (*Kāṇvasaṁhitā* 1.2.1) p. 18 (17)

Deep accent: *dyaúrasi pṛthivyàsi*

VSKS1.2.1

View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa अभीन्धतामुखे (*Kāṇvasaṁhitā* 12.6.2) p. 18 (17)

Deep accent: *abhī̀ndhatāmukhe*

VSKS12.6.2

View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita घर्मो ऽसि (*Kāṇvasaṁhitā* 1.2.1) p. 18 (17)

Deep accent: *gharmò 'si*

VSKS1.2.1

View Scan [.png] High Res [.tif]

वधो ऽसि (*Kāṇvasaṁhitā* 1.9.6) p. 18 (17)

Deep accent: *vadhò 'si*

VSKS1.9.6

View Scan [.png] High Res [.tif]

31. An independent svarita followed by an udātta or svarita is marked just by a horizontal line below.

jātya वीर्यं मयि धेहि (*Kāṇvasaṁhitā* 21.1.8) p. 18 (18)

Deep accent: *vīryàṁ máyi dhehi*

VSKS21.1.8

View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra उर्वन्तरिक्षमन्वेमि (*Kāṇvasaṁhitā* 1.3.3) p. 18 (18)

Deep accent: *urvàntárikṣamánvemi*

VSKS1.3.3

View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa अभीमं महिमा (*Kāṇvasaṁhitā* 38.4.1) p. 18 (18)

Deep accent: *abhī̀máṁ mahimā́*

VSKS38.4.1

View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च (*Kāṇvasaṁhitā* 1.9.4) p. 18 (18)

Deep accent: *yò 'smā́n dveṣṭi yáṁ ca*

VSKS1.9.4

View Scan [.png] High Res [.tif]

र्य, र्व, ब्ही, and यो are marked below with a horizontal line.

Just as by *Aṣṭādhyāyī* 8.4.66 After an udātta an anudātta is replaced by a svarita, and by *Aṣṭādhyāyī* 8.4.67 not before an udātta or svarita, similarly in the *Kāṇvasaṁhitā* (not only

a svarita after an udātta but) even an independent svarita before an udātta or svarita is replaced by an anudātta.

Vājasaneyi Prātiśākhya 4.138 निहितमुदात्तस्वरितपरम्

<rule source = "^" target = "\" rcontext = "[/^]" c = " *VPr.* 4.138"/>

In *Kāṇvasaṁhitā*, an independent svarita becomes anudātta before an udātta or svarita. [In Śākalya and Śaunaka's śākhās the 2nd part of a svarita becomes low-pitched and has kampa but in *Taittirīyasaṁhitā* it doesn't (in opposition to Ananta's commentary on *VPr.* sūtra 4.141.]

Cf *Mādhyandina* on p. 16 sūtra 28) Kāṇva on 22.2.13 [YM error; located at 20.2.13 in Satavalekar's edition of the Kāṇva recension of the *Vājasaneyisaṁhitā*]:

स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः स्वाहा ।। (*Kāṇvasaṁhitā* 22.2.13) p. 19 (19)

Deep accent: *svàrṇá gharmáḥ svā́hā svàrṇā̀rkáḥ svā́hā svàrṇá śukráḥ svā́hā svàrṇá jyótiḥ svā́hā svàrṇá sū́ryaḥ svā́hā ..*

VSKS20.2.13
View Scan [.png] High Res [.tif]

स्व is anudātta before udātta.

हा in स्वाहा becomes anudātta before स्वर्णार्कः even though its svarita becomes anudātta. So it still retains some influence of being svarita.
(p. 20)

32. Kapiṣṭhala-kaṭha Saṁhitā

In *Kapiṣṭhala-kaṭha Saṁhitā* everything is as in *Kāṇvasaṁhitā.*

33. A short independent (jātya or kṣaipra) svarita followed by an udātta becomes long. [praśleṣa and abhinihita svaritas are always long.]
(p. 21)

उर्वान्तरिक्षम् (*KKS.* 1.2) p. 21 (20)

Deep accent: *urvàntárikṣam*

अप्स्वान्तः (*KKS.* 48.4) p. 21 (20)

Deep accent: *apsvàntáḥ*

[Intro to Vishvabandhu's *Vaidika Koṣa*, 1st part of saṁhitā vol. intro. p. 119.]

34. Taittirīya Saṁhitā

In *Taittirīya Saṁhitā* recitation the marking of accents is the same as in *Kāṇva* recitation except an independent svarita followed by an udātta.

35. An independent svarita followed by an udātta too is marked by a vertical line above. [All svaritas in TS are marked with a vertical line above.]

36. Kāṭhaka Saṁhitā

In *Kāṭhaka Saṁhitā* the udātta is marked by a vertical line above.

देवस्य त्वा सवितुः (*KāS.* 1.2) p. 21 (21)

Deep accent: *devásya tvā savitúḥ*

KāSS1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

37. An independent svarita not followed by an udātta or svarita (i.e. followed by an anudātta, ekaśruti, or virāma) is marked with a half moon (ardha candra) below (का). It is indicated in this file by <ISK> for "Independent Svarita (not followed by udātta or svarita) YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" = Vedic Symbol 59. [p. 22 note 1: Schröder's edition uses a backwards cedille (ḩ = Times 254) instead of a half moon.

jātya निष्टर्क्यं<ISK> बध्नाति (*KāS.* 24.5) p. 22 (22)
Deep accent: *niṣṭarkyàṁ badhnāti*

KāSS24.5
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch24.5
View Scan [.png] High Res [.tif]

वीर्य<ISK>मभिसमियात् (*KāS.* 24.5) p. 22 (22) [???Missing acute on sam? YM might have had one on mi]
Deep accent: *vīryàmabhisamiyāt*

KāSS24.5
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch24.5
View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra व्यृ<ISK>द्धा वा (*KāS.* 24.4) p. 22 (22)
Deep accent: *vyr̥̀ddhā vā́*

KāSS24.4
View Scan [.png] High Res [.tif]
KaSSch24.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa उर्व<ISKK>न्तरिक्षं वी<ISK>हि (*KāS.* 1.4) p. 22 (22)
Deep accent: *urvàntárikṣaṁ vìhi*

KāSS1.4
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch1.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita प्राणो व्यानो<ISK> ऽतिष्ठिता (*KāS.* 38.5) p. 22 (22) [Not found in Schroeder's or Satavalekar's eds. of the *Kāṭhaka Saṁhitā*]
Deep accent: *prāṇó vyānò 'tiṣṭhitā*
In pause:
jātya प्र वीर्य<ISK>म् । श्नथद्० (*KāS.* 4.15) p. 22 (22)
Deep accent: *prá vīryàm . śnáthad...*

KāSS4.15
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch4.15
View Scan [.png] High Res [.tif]

मन्त्रं वदत्युक्थ्य<ISK>म् । यस्मिन्० (*KāS.* 7.14) p. 22 (22) [???Missing udātta on yasmin?]
Deep accent: *mántraṁ vadatyukthyàm . yasmin...*

KāSS7.14
View Scan [.png] High Res [.tif]

KāSSch7.14
View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa सुगं मेषाय मेष्यै<ISK> । अथो० (*KāS.* 9.7) p. 22 (22)
Deep accent: *sugáṁ meṣā́ya meṣyaì . atho...* [???Missing udātta on *atho*?]
KāSS9.7
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch9.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

38. Followed by an udātta or svarita, an independent svarita is marked by a three-pronged mark below. It is indicated in this file by <ISKK> (= <ISKM> क) for "Independent Svarita followed by udātta or svarita (with kampa note shape!) YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" = Vedic Symbol 135. [p. 22 note 2: Schröder's edition uses a hollow triangle below (closest but too big and in line instead of below is (= Wingdings 3 char 114) instead of a three-pronged mark.]
Followed by udātta:

jātya उक्थाव्यं<ISKK> यत्त इन्द्र (*KāS.* 4.5) p. 23 (23)
Deep accent: *ukthāvyàṁ yátta indra*
KāSS4.5
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch4.5
View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra उर्व<ISKK>न्तरिक्षम् (*KāS.* 1.2, 1.4) p. 23 (23)
Deep accent: *urvàntárikṣam*
KāSS1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSS1.4
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch1.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa वी<ISKK>हीन्द्रस्य (*KāS.* 1.2) p. 23 (23)
Deep accent: *vīh̀ī́ndrasya*
KāSS1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

ही<ISKK>माः (*KāS.* 24.4) p. 23 (23)
Deep accent: *hìmā́ḥ*
KāSS24.4
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch24.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita प्रसवे<ISKK> ऽश्विनोर्बाहुभ्याम् (*KāS.* 1.2) p. 23 (23)
Deep accent: *prasavè 'śvínorbāhúbhyām*
KāSS1.2

View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

आस्माको<ISKK> ऽसीति (*KāS.* 24.5) p. 23 (23)
Deep accent: *āsmākò 'sīti*

KāSS24.5
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch24.5
View Scan [.png] High Res [.tif]

Followed by svarita:

सो<ISKK> ऽर्को ऽभवत् (*KāS.* 21.6) p. 23 (23)
Deep accent: *sò 'rkò 'bhava*

KāSS21.6
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch21.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

Exceptions:

1. विशो वै वीर्यमपाक्रमत् (*KāS.* 11.6) p. 23 (24)
Deep accent: *viśó vaí vīryàmápākramat*

KāSS11.6
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch11.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

2. देवाः पितरौ मनुष्यास्ते<ISKK> ऽन्यतः आसन् (*KāS.* 10.7) p. 23 (24)
Deep accent: *devā́ḥ pitárau manuṣyā̀stè 'nyátaḥ ā́san*

KāSS10.7
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch10.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

Even though an udātta follows in 1, र्य in वीर्य is marked with an *u* instead of the three-pronged mark क॒<ISKK>.

Even though a svarita follows in 2, ष्या is marked with an *u* instead of the three-pronged mark क॒<ISKK>.

[??? Is this a restriction or a copying error? YM actually marks them with a horizontal line below instead of the half moon below.]

[In Vishvabandhu's system, svarita followed by udātta is marked with a horizontal line below:

प्रसवे ऽश्विनोः (*KāS.* 2.9) p. 23 (25)]
Deep accent: *prasavè 'śvínoḥ*

KāSS2.9
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch2.9
View Scan [.png] High Res [.tif]

39. After an udātta, a [dependent] svarita (YM: replacing an anudātta) is marked with a dot

below (क). It is indicated in this file by <DSK> for "Dependent Svarita YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" = Vedic Symbol 190.
(p. 24)

इषे त्वो<DSK>र्जे त्वा<DSK> (*KāS.* 1.1) p. 24 (26)

Deep accent: *iṣé tvorjé tvā*

KāSS1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]
KāSSch1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

[Schröder doesn't mark it at all. Neither does Sātavalekara who follows him. Kaṭha should be added to the list of exceptions in *Aṣṭādhyāyī* 6.4.67 नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् since svarita occurs in the *Kāṭhaka Saṁhitā* even when an udātta follows.]
[Satvalekar Intro. p. 14 describes and has example]

40. An anudātta followed by an udātta is marked below by a vertical line below. It is indicated in this file by <AFUK> for "Anudātta Followed by Udātta YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" No precise equivalent but closest = (कै) Vedic Symbol 175, except that it doesn't occur beneath. [It is not clear whether this occurs under an anudātta followed by a svarita as well; I have so marked such anudāttas examples in columns G, H, and I in the excel table but note that dependent svarita takes precedence even if followed by udātta or svarita as in the example in column E. It is also not clear whether this occurs beneath initial anudātta followed by anudāttas.???]

अ<AFUK>ग्नि

Deep accent: *agní*

[Sātavalekara uses the crooked line <ISK> (क) for the independent svarita and the three-pronged mark <ISKM> (क) below for the independent svarita followed by udātta or svarita (with kampa note shape!) as in ŚYV. Schröder uses a wavy long comma-like symbol and an up-angle lower and more centered than the post-round-bottom r (कद्र) which is Vedic symbol 123 respectively, see p. 25 line 2.]
(p. 25)

41. Maitrāyaṇīya Saṁhitā

"The accent marking used in the mss. of the *Maitrāyaṇīya Saṁhitā* cannot be properly represented in print until special accented type is created." YM shows it as in Sātavalekara's edition in the Svādhyāya Maṇḍala publications with some modifications.

42. A vertical stroke above marks an udātta.
43. A horizontal stroke below marks an anudātta.
44. After an udātta, a svarita that is either final or followed by ekaśruti is marked by a horizontal line through the character at mid-height in mss. It is indicated in this document by <DSEMai> for "Dependent Svarita before final or Ekaśruti *Maitrāyaṇīya Saṁhitā.*" By YM it is marked by a crooked line below (क).

Final:

य एवंविद्वान<DSEMai>ग्निहोत्रं जुहोति<DSEMai> (*MaiS.* 1.8.6) p. 26 (27a)

Deep accent: *yá evámvidvā́nagnihotrám juhóti*

MSS1.8.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

MSSch1.8.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

दोषा वस्तोर्नमः स्वाहा<DSEMai> (*MaiS.* 1.8.7) p. 26 (27a)
Deep accent: *doṣā́ vástornámaḥ svā́hā*

MSS1.8.7
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.8.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

Here the ति in जुहोति and the हा in स्वाहा are final svarita.
Followed by ekaśruti:

इषे त्वा<DSEMai> सुभूताय<DSAMai> वायव<DSEMai> स्थ (*MaiS.* 1.1.1) p. 26 (27a)
Deep accent: *iṣé tvā subhūtā́ya vāyáva stha*

MSS1.1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

य एवं विद्वान<DSEMai>ग्निहोत्रं जुहोति<DSEMai> (*MaiS.* 1.8.6) p. 26 (27a)
Deep accent: *yá evám̐ vidvā́nagnihotrám̐ juhóti*

MSS1.8.6
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.8.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

In 1.1.1 after the udātta षे the त्वा is svarita before ekaśruti सु, and व is svarita before ekaśruti स्थ. In 1.8.6 after the udātta द्वा न is svarita before ekaśruti ग्नि.

45. Followed by an anudātta, a svarita following an udātta is marked by three vertical lines above in mss. It is indicated in this document by <DSAMai> for "Dependent Svarita before Anudātta *Maitrāyaṇīya Saṁhitā*." [By YM it is marked below by a three-pronged mark (कं).]

इषे त्वा<DSEMai>सुभूताय<DSAMai>वायव<DSEMai>स्थ (*MaiS.* 1.1.1) p. 26 (27b)
Deep accent: *iṣé tvā subhūtā́ya vāyáva stha*

MSS1.1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

ता अ<DSAMai>तिमन्य<DSEMai>माना (*MaiS.* 2.5.6) p. 26 (27b)
Deep accent: *tā́ atimányamānāḥ* [varuṇa... Sātavalekara's ed.]

MSS2.5.6
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch2.5.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

(p. 27)
In some places, the crooked line below appears (in Sātavalekara's edition) instead of the three-pronged mark perhaps by mistake in printing or erroneous mss. reading.
For example:

मह<DSAMai>ः स्थ महो<DSEMai> वा (*MaiS. ??.??.??*) p. 27 (27c)
Deep accent: *máhaḥ stha máho vā* [???Should *vā* be accented?]
Sātavalekara has a crooked line under the हः, where he should have put the three-pronged mark which he uses instead of the triple vertical bars above, as well as under the हो, which he marked appropriately substituting crooked line for horizontal bar through the character at mid-height.
YM marks the following with triple bar:
इध्मः प्र<DSAMai>थमः (*MaiS.* 1.4.11) p. 27 (27)
Deep accent: *idhmáḥ prathamáḥ*

MSS1.4.11
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.4.11
View Scan [.png] High Res [.tif]

सवितुः प्र<DSAMai>स३वे ऽश्विनोः (*MaiS.* 1.2.15) p. 27 (27)
Deep accent: *savitúḥ prasavè 'śvínoḥ*

MSS1.2.15
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.2.15
View Scan [.png] High Res [.tif]

46. Followed by an anudātta or ekaśruti, an independent svarita is marked below by a half-moon (ardha candra) (का). It is indicated in this file by <ISMai> for "Independent Svarita (without kampa) YV *Maitrāyaṇīya Saṁhitā*" = Vedic Symbol 59.
Followed by anudātta:
jātya वीर्या<ISMai>णि प्रवो<DSAMai>चं यः (*MaiS.* 1.2.9) p. 27 (28)
Deep accent: *vīryầṇi právocaṁ yáḥ*

MSS1.2.9
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.2.9
View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra चरुः सि<DSEMai>नीवाल्यै<ISMai> चरुः (*MaiS.* 2.6.4) p. 27 (28)
Deep accent: *carúḥ sinīvālyaì carúḥ*

MSS2.6.4
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch2.6.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita मित्रो<ISMai> ऽसि० (*MaiS.* 2.6.9) p. 27 (28)
Deep accent: *mitrò 'si...*

MSS2.6.9
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch2.6.9
View Scan [.png] High Res [.tif]

Followed by ekaśruti:

jātya in शिक्यं<ISMai> षडुद्या<ISMai>वं शिक्यं<ISMai> भवति षड्
(*MaiS.* ??.??.??) p. 27 (28)
Deep accent: *ṣáḍudyā̀vaṁ śikyàṁ bhavati ṣáḍ*

kṣaipra स्व<ISMai>रिति ३स्वर्मह्यं (*MaiS.* ??.??.??) p. 27 (28)
Deep accent: *svàrihi svàrmáhyaṁ*

(p. 28)

abhinihita श्वोभूते<ISMai> ऽग्नीषोमीया॰ (*MaiS.* 2.6.1) p. 28 (28)
Deep accent: *śvóbhūtè 'gnīṣomī́yā...*

MSS2.6.1
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch2.6.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

सो<ISMai> ऽकामयत (*MaiS.* 2.5.11) p. 28 (28)
Deep accent: *sò 'kāmayata*

MSS2.5.11
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch2.5.11
View Scan [.png] High Res [.tif]

[YM does not distinguish anusvāra from anunāsika properly here marking before spirants and semivowels with candrabindu in line with virama and before stops with bindu above.]

47. Followed by an udātta, an independent svarita has kampa.

48. A svarita accompanied by kampa is marked below by a straight horizontal line and by a preceding 3.

jātya नैक<DSEMai>मेकं पितृदेव३त्यं तद् (*MaiS.* 1.4.10) p. 28 (29)
Deep accent: *naíkamekaṁ pitr̥devàtyaṁ tád*

MSS1.4.10
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.4.10
View Scan [.png] High Res [.tif]

स्रुक् का३र्यानेन वा (*MaiS.* 1.8.1) p. 28 (29)
Deep accent: *srúk kāryā̀néna vā́*

MSS1.8.1
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.8.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra मूर्ध्ना ह<DSEMai>राम्यु३र्वन्तरि<DSAMai>क्षं ३वीह्या
द<DSEMai>त्यास्त्वा(*MaiS.* 1.1.2) p. 28 (29)
Deep accent: *mūrdhnā́ harāmyurvàntárikṣaṁ vìhyádityāstvā*

MSS1.1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa उ३र्वन्तरि<DSAMai>क्ष ३वीहीत्य<DSEMai>न्तरिक्ष॰ (*MaiS.*

3.10.1) p. 28 (29)
Deep accent: *urvàntárikṣa vīhī́tyantarikṣa...* [???Any further accents on antarikṣa?]
MSS3.10.1
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch3.10.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita अ॒३जो॒ ऽस्यै॑क<DSEMai>पा॑दहि<DSEMai>रसि (*MaiS.* 1.2.12) p. 28 (29)
Deep accent: *ajò 'syékapādáhirasi*
MSS1.2.12
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.2.12
View Scan [.png] High Res [.tif]

०सवि॒तु॑ः प्र<DSAMai>स॒३वे॒ ऽश्वि॑नोः (*MaiS.* 1.2.15) p. 28 (29)
Deep accent: *...savitúḥ prasavè 'śvínoḥ*
MSS1.2.15
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.2.15
View Scan [.png] High Res [.tif]

[Schröder put 3 before but not the horizontal line below.]
(p. 29)
[In स्व॒र्वि॑द<DSAMai>सि॒ (*MaiS.* 1.2.15) p. 29 (30) स्वर्-विद् is a compound with उत्तरपदप्रकृतिस्वर so स्व is anudātta, not svarita. स्व- or स्वर्-?]
Deep accent: *svarvídasi*
MSS1.2.15
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.2.15
View Scan [.png] High Res [.tif]

[YM: न॑मो<DSEMai> ऽस्यद्भ्यो॒० (*MaiS.* 2.9.4) p. 29 note 1 is incorrect in Sātavalekara's edition but correct in Schröder's edition. मो should be udātta (not svarita) as a result of the sandhi of anudātta म and following udātta अ according to A. 8.2.5.]
Deep accent: *námo 'syadbhyo...*
MSS2.9.4
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch2.9.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

Aṣṭādhyāyī 8.2.5 एकादेश उदात्तेनोदात्तः The single replacement of an udātta and a following anudātta is an udātta.
\ + / > / (in praśliṣta or abhinihita sandhi)
By determinate option (*vyavasthitavibhāṣā*) the following holds:
1. /a + \a > /A
2. /i + \i > ^I
3. /u + \u > ^U
4. / + \ > ^ in abhinihita sandhi

Examples of 1:

पृष्ठान्येवाचीकॢपत् (*MaiS.* 1.5.6) p. 29 (31) ev\a + /acI > ev/AcI
Deep accent: *pṛṣṭhā́nyevā́cīkḷpat*

MSS1.5.6
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.5.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

आप्त्वाव<DSEMai>रुन्धे (*MaiS.* 1.5.6) p. 29 (31) Aptv/A + \ava > Aptv/Ava
Deep accent: *āptvā́varundhe*

MSS1.5.6
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.5.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

Examples of 2:
In MaiS.1.1.2 in (29), ०३वीह्य० v/i + \ihi > v^Ihi
Deep accent: *...vī̀hya...*

MSS1.1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

(p. 30)
Example of 4:
गो३ष्ठे ऽयं० (*MaiS.* 1.5.2) p. 30 (32).
Deep accent: *goṣṭhè 'yáṁ...*
In g\oṣṭh/e \ay/am, /e + \a > ^e.

MSS1.5.2
View Scan [.png] High Res [.tif]
MSSch1.5.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

[RV Kaśmīrī recension, Kapiṣṭhalakaṭha, and Maitrāyaṇī YV recensions are closely related. All use the vertical line above for udātta. The second lengthens (per sūtra 33) the short svarita where Kaśmīrī puts 3 after both short and long kampita svarita and Maitrāyaṇī puts 3 before.]

49. Sāmaveda

a. Jaiminīya (published without accents).
b. Kauthuma published with accents, which YM follows.

Udātta

50. udātta is marked with the numeral १ above.

51. But only the first of a series of udāttas is marked (with १ or २, etc. as in 50, 52-54).
(p. 31)

52. If a svarita follows (one or more udāttas) the first has after the १ an र.
(p. 32)
[Here and there in the published editions the र is missing even though a svarita follows.]

53. In pause an udātta is marked with the numeral २ (instead of १), also on the first of a series of udāttas followed by pause.

54. Also, followed by an anudātta, an udātta has the numeral २ above [???or independent svarita?].
55. The first of a series of udāttas followed by anudātta has its २ followed by an उ.

Svarita

56. A svarita is marked with a २ above, (i.e. dependent svarita, and independent svarita followed by udātta but not preceded by udātta).
(p. 33)
57. If it follows a series of udāttas, its २ is accompanied by र.
(p. 34)
58. An independent svarita followed by anudātta, ekaśruti, or pause, if not following an udātta, is also marked with २र.
(p. 35)
59. Followed by an udātta, an independent svarita is prolated and is so indicated in the usual way by writing ३ after it.
(p. 37)
60. But preceded by an udātta, an independent svarita is not marked by २ above.

Anudātta

61. An anudātta is marked by a ३ above.
62. But only the first of a series of anudāttas is so marked.
(p. 38)
63. The ३ is accompanied by क, if the anudātta is followed by an independent svarita marked with र (accompanying its २ per sū. 58).

Ekaśruti

64. Ekaśruti (following svarita) is unmarked.

Examples

अग्न आ याहि (SV Pū. 1.1.1) p. 30 (33)

Deep accent: *ágna ā́ yāhi*

1. The initial udātta अ followed by anudātta gna is marked with २ per sū. 54.
2. The anudātta ग्न is marked with ३ per sū. 61.
3. The high-pitched आ is marked with the numeral १ per sū. 50.
4. The dependent svarita या is marked with 2 per sū. 56.
5. The ekaśruti हि is unmarked per sū. 64.

SVKŚ1.1.2
[View Scan [.png]](#) [High Res [.tif]](#)

पाहि विश्वस्या अरातेः (SV pū. 1.1.6) p. 31 (34)

Deep accent: *pāhí víśvasyā árāteḥ*

1. Only the first of two udāttas हि-वि is marked per sū. 51.
2. Because followed by svarita श्व, the first udātta हि's १ is followed by र per sū. 52.

3. Dependent svarita श्व is marked with 2 per sū. 56 and with र because preceded by a series of udāttas हे-वि per sū. 57.

4. Anudātta पा, followed by the first of a sequence of udāttas हि which is followed by dependent svarita श्व (so marked with १र per sū. 52), does not have its ३ accompanied by क.

SVKŚ1.1.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

ब्रह्मा कस्तं सपर्यति (SV pū. 2.5.8) p. 31 (35)

Deep accent: *brahmā́ kástáṁ saparyati*

1. Only the first of three udāttas ह्मा-कस्-तं is marked per sū. 51.
2. Because followed by svarita स, the first udātta ह्मा's १ is followed by र per sū. 52.
3. Dependent svarita स is marked with 2 per sū. 56 and with र because preceded by a series of udāttas ह्मा-क-स्तं per sū. 57.

SVKŚ2.5.8
View Scan [.png] High Res [.tif]

चिता गोः । (SV pū. 5.8.2) p. 31 (36)

Deep accent: *citā́ góḥ .*

1. Only the first of two udāttas ता-गोः is marked per sū. 51.
2. Because the series of udāttas ता-गोः is followed by pause, the first is marked with a २ (instead of १) per sū. 53.
3. Because not followed by an anudātta, the 2 above the first of the udāttas ता-गोः is not marked with u (as it would be by sū. 55).

SVKŚ5.8.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

महाँ हि षः । (SV pū. 4.10.1) p. 31 (37)

Deep accent: *mah/ā hí ṣáḥ .*

1. Only the first of three udāttas हां-हि-षः is marked per sū. 51.
2. Because the series of udāttas हां-हि-षः is followed by pause, the first is marked with a २ (instead of १) per sū. 53.

SVKŚ4.10.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

विश्वेषां हितः । (SV pū. 1.1.2) p. 32 (38)

Deep accent: *víśveṣāṁ hitáḥ .*

1. Because the udātta तः is followed by pause, it is marked with a २ (instead of १) per sū. 53.

SVKŚ1.1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

इन्दो समुद्रमा विश (SV pū. 5[1].15.2) p. 32 (39)

Deep accent: *índo samudrámā́ viśa*

1. The initial udātta इ is marked with 1 per sū. 50.
2. Dependent svarita न्दो is marked with २ per sū. 56.

SVKŚ5[1].15.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

आदित् प्रत्नस्य० (SV pū. 1.2.10) p. 32 (40)

Deep accent: *ā́dít pratnásya...*

1. The first of the two udāttas आ-दित् is marked with २ because followed by anudātta प्र per sū. 54 and the २ is accompanied by उ because it is the first of a series of udāttas so followed per sū. 55.

SVKŚ1.2.10
View Scan [.png] High Res [.tif]

गिरा ममा जाता० (SV pū. 1.5.8) p. 33 (41)

Deep accent: *girā́ mámā́ jātā́...*

1. The first of the three udāttas रा-म-मा is marked with २ because followed by anudātta जा per sū. 54 and the २ is accompanied by उ because it is the first of a series of udāttas so followed per sū. 55.

SVKŚ1.5.8
View Scan [.png] High Res [.tif]

तन्वा गिरा । (SV pū. 1.5.8) p. 34 (42)

Deep accent: *tanvà girā́ .*

1. Independent (kṣaipra) svarita न्वा, not preceded by udātta and followed by anudātta गि is marked with २र per sū. 58.
2. Anudātta त, followed by independent svarita न्वा which is followed by anudātta गि (so that the svarita is marked with २र per sū. 58), has its ३ accompanied by क.

SVKŚ1.5.8
View Scan [.png] High Res [.tif]

न्यस्मिन् दध्र० (SV pū. 1[2].5.8) p. 34 (43)

Deep accent: *nyàsmin dadhra...*

1. Independent (kṣaipra) svarita न्य, not preceded by udātta (i.e. initial) and followed by ekaśruti स्मिन् is marked with २र per sū. 58.

SVKŚ1[2].5.8
View Scan [.png] High Res [.tif]

०दुराध्यम् । (SV pū. 2.1.9) p. 34 (44)

Deep accent: *...durādhyàm .*

1. Independent (kṣaipra) svarita न्य, not preceded by udātta and followed by pause is marked with २र per sū. 58.

SVKŚ2.1.9
View Scan [.png] High Res [.tif]

दूढ्यम् । (SV pū. 2.2.7) p. 34 (45)

Deep accent: *dūḍhyàm .*

1. Independent (kṣaipra) svarita ढ्य, not preceded by udātta and followed by pause is marked with २र per sū. 58.

SVKŚ2.2.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

०मनुष्येभिः (SV pū. 1.8.7) p. 34 (46)

Deep accent: *...manuṣyèbhiḥ*

1. Independent (jātya) svarita ष्ये, not preceded by udātta and followed by ekaśruti भि ः is marked with २र per sū. 58.

2. Anudātta नु, followed by independent svarita ष्ये which is followed by ekaśruti भि ः (so that the svarita is marked with २र per sū. 58), has its ३ accompanied by क.

SVKŚ1.8.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

तं गूर्धया स्वर्णरम् (SV pū. 2.2.3) p. 34 (47)

Deep accent: *tám̐ gūrdhayā svàrṇaram* [???why क after 1?]

1. Independent (jātya) svarita स्व, not preceded by udātta and followed by ekaśruti र्ण is marked with २र per sū. 58.

SVKŚ2.2.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

अधा हीन्द्र० (SV pū. 5.2.8) p. 34 (48)

Deep accent: *ádhā hi̇̀ndra...*

1. Independent (praśleṣa) svarita ही, not preceded by udātta and followed by ekaśruti न्द्र is marked with २र per sū. 58.

2. Anudātta धा, followed by independent svarita ही which is followed by ekaśruti न्द्र (so that the svarita is marked with २र per sū. 58), has its ३ accompanied by क.

SVKŚ5.2.8
View Scan [.png] High Res [.tif]

तृम्पा व्यश्नुही० (SV pū. 2.7.7.) p. 35 (49)

Deep accent: *tṛmpā́ vyàśnuhī...*

1. Independent (kṣaipra) svarita व्य, preceded by udātta म्पा, and followed by ekaśruti श्नु is marked with २ per sū. 56 but not with र, as it would be per sū. 58 if not preceded by udātta.

SVKŚ2.7.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

क्वेयथ० (SV pū. 3.8.9) p. 35 (50)

Deep accent: *kvèyatha...*

1. Independent svarita क्वे, not preceded by udātta (i.e. initial) and followed by ekaśruti य is marked with २र per sū. 58. [???YM marks it २ए??? What does the ए signify?]

SVKŚ3.8.9

View Scan [.png] High Res [.tif]

पाह्यू३त (SV pū. 1.4.2) p. 35 (51)
Deep accent: *pāhyù3tá*
1. After anudātta पा, independent (kṣaipra) svarita ह्यू followed by udātta त is not marked with र as it would be per sū. 58 if not so followed. Instead it is prolated per sū. 59 and marked with just २ per sū. 56.
2. Anudātta पा, followed by independent svarita ह्यू which is followed by udātta त (so that the svarita is prolated per sū. 59 and not marked with र per sū. 58), does not have its ३ accompanied by क.
3. Final udātta त is marked with २ per sū. 53]

SVKŚ1.4.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

दूत्यां३चरन् (SV pū. 1.7.2) p. 35 (52)
Deep accent: *dūtyà̃ṁ3cáran*
1. After anudātta दू, independent (jātya) svarita त्या followed by udātta च is not marked with र as it would be per sū. 58 if not so followed. Instead it is prolated per sū. 59 and marked with just २ per sū. 56.

SVKŚ1.7.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

वृधे३ ऽस्माँ अवन्तु (SV pū. 3.5.7) p. 35 (53)
Deep accent: *vṛdhè3 'sm/ã avantu*
1. After anudātta वृ, independent (abhinihita) svarita धे followed by udātta स्मा is not marked with र as it would be per sū. 58 if not so followed. Instead it is prolated per sū. 59 and marked with just २ per sū. 56.

SVKŚ3.5.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

त्वं ह्या३ङ्गे (SV pū. 6.9.6) p. 37 (54)
Deep accent: *tváṁ hyà3ṅgé*
1. Independent (kṣaipra) svarita ह्या preceded by udātta त्व is unmarked per sū. 60.
2. Independent svarita ह्या followed by udātta ङ्गे is prolated per sū. 59.

[Why is the udātta त्व marked with २ rather than with १ as it would be per sū. 50.]
[Udātta ङ्गे should be marked with 2 per sū. 53 but YM marks it with 3 which indicates anudātta by sū. 61.]

SVKŚ6.9.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

ऊर्जे व्या३व्ययं० (SV pū. 6[3].1.4) p. 37 (55)
Deep accent: *ūrjé vyà3vyáyaṁ...*
1. Independent (kṣaipra) svarita व्या preceded by udātta र्जे is unmarked per sū. 60.

[???Why is the udātta र्जे marked with २ rather than with १ as it would be per sū. 50.]

2. Udātta व्य is marked with 1 per sū. 50.

SVKŚ6[3].1.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

विद्धी त्वा३स्य(SV pū. 2.4.8) p. 37 (56)

Deep accent: *viddhī́ tvā̀3syá*

1. Independent (jātya or kṣaipra) svarita त्वा preceded by udātta द्धी is unmarked per sū. 60. [???Why is the udātta द्धी marked with २ rather than with १ as it would be per sū. 50.]

2. Udātta स्य is marked with 1 per sū. 50.

SVKŚ2.4.8
View Scan [.png] High Res [.tif]

दूरेदृशं गृहपतिम्(SV pū. 1.7.10) p. 37 (57)

Deep accent: *dūredṛ́śaṁ gṛhápatim*

1. Only the first of the two anudāttas दू-रे is marked with ३ per sū. 62.

SVKŚ1.7.10
View Scan [.png] High Res [.tif]

अग्निं दूतं वृणीमहे (SV pū. 1.1.3) p. 38 (58)

Deep accent: *agníṁ dūtáṁ vṛṇīmahe*

1. Ekaśruti हि is unmarked per sū. 64.

2. Udātta ग्नि followed by anudātta is marked with 2 per sū. 54.

(p. 39)

SVKŚ1.1.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

65. Atharvaveda

a. Śaunakīya
b. Paippalāda

66. Śaunakīya Saṁhitā

67. Udātta, anudātta, and dependent svarita are marked as in RV.

68. An independent svarita is marked by a hangar after it (कण). It is indicated in this file by <ISS> for "Independent Svarita Atharva Veda Śaunakīya" = Vedic Symbol 60.

jātya दर्शय यातुधान्य<ISS>ः (AVŚ 4.20.6) p. 39 (59)

Deep accent: *darśáya yātudhānyàḥ*

AVŚW4.20.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

वज्रं स्वर्य<ISS> ततक्ष (AVŚ 2.5.6) p. 39 (59)

Deep accent: *vájraṁ svaryàṁ tatakṣa*

AVŚW2.5.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

kṣaipra तन्वो<ISS> अद्य (AVŚ 1.1.1) p. 39 (59)

Deep accent: *tanvò adyá*

AVŚW1.1.1

View Scan [.png] High Res [.tif]

स्वस्त्ये<ISS>नं जरसे (AVŚ 1.30.2) p. 39 (59)
Deep accent: *svastyènaṁ jaráse*

AVŚW1.30.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

praśleṣa नी<ISS>त एव (AVŚ 3.11.2) p. 39 (59)
Deep accent: *nī̀ta evá*

AVŚW3.11.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita ये<ISS> ऽस्या दोहमुपासते (AVŚ 5.17.17) p. 39 (59)
Deep accent: *yè 'syā dóhamupā́sate*

AVŚW5.17.17
View Scan [.png] High Res [.tif]

दिशो<ISS> ऽभिदासन्त्यस्मान्(AVŚ 4.40.1) p. 39 (59)
Deep accent: *diśò 'bhidā́santyasmān*

AVŚW4.40.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

[Roth and Whitney's edition and its re-editing by Linden (spelling? लिंडन) mark the independent svarita by just a vertical line above as in RV. Indian editions follow suit until YM's 6th edition. Ajmer: Vaidika Yantrālaya. Saṁvat 2001. (YM p. 40 note 2.)]
(p. 41)
Examples of independent svarita after udātta marked with the hangar (<ISS>) as it should be; not with a vertical line above (^):

अग्निर्ह्ये<ISS>षां दूतः (AVŚ 3.1.2) p. 41 (60)
Deep accent: *agnírhyèṣāṁ dūtáḥ*

AVŚW3.1.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

०आरण्यैर्व्या<ISS>प० (AVŚ 3.31.3) p. 41 (60)
Deep accent: *...āraṇyaírvyā̀pa...*

AVŚW3.31.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

दिवस्पृष्ठं स्व<ISS>र्गत्वा (AVŚ 4.14.2) p. 41 (60)
Deep accent: *divásprṣṭháṁ svàrgatvā́*

AVŚW4.14.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

लोकं स्व<ISS>रारोहन्तो० (AVŚ 4.14.6) p. 41 (60)
Deep accent: *lokáṁ svàrāróhanto...*

AVŚW4.14.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

[Śaṅkara Pāṇḍuraṅga's edition sometimes puts the hanger (<ISS>) for the vertical line above (^) on the dependent svarita and vice versa. YM fixed in his edition where mss. confused it.]
(p. 42)

69. An independent svarita followed by an udātta obtains kampa and is marked as in RV

(short independent svarita with kampa is followed by the numeral 1 with a vertical line above and a horizontal line below [क१]; long is marked by a horizontal line below followed by a 3 with a vertical line above and a horizontal line below [का३]).

kṣaipra तन्वं१ पादौ (AVŚ 6.9.1) p. 42 (61)
Deep accent: *tanvàṁ pā́dau*

AVŚW6.9.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

तन्वा३ सं बलेन (AVŚ 5.30.14) p. 42 (61)
Deep accent: *tanvā̀ sáṁ bálena*

AVŚW5.30.14
View Scan [.png] High Res [.tif]

jātya यदाद्यं१ यदंनाद्यम् (AVŚ 8.2.19) p. 42 (61)
Deep accent: *yádādyàṁ yádánnādyám*

AVŚW8.2.19
View Scan [.png] High Res [.tif]

या रोहिणीर्देवत्या३ गावो वा (AVŚ 1.22.3) p. 42 (61)
Deep accent: *yā́ róhiṇīrdevatyā̀ gā́vo vā́*

AVŚW1.22.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

abhinihita न ब्राह्मणो हिंसितव्यो३ ऽग्निः (AVŚ 5.18.6) p. 42 (61)
Deep accent: *ná brāhmaṇó hisitavyò 'gníḥ*

AVŚW5.18.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

70. Paippalāda Saṁhitā

71. Udātta is marked by a vertical line above.
72. Anudātta is marked by a vertical line below. It is indicated in this file by <AP> for "Anudātta AV *Paippalāda Saṁhitā*" = <AFUK> for "Anudātta Followed by Udātta YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" No precise equivalent but closest = (कै) Vedic Symbol 175, except that it doesn't occur beneath.
73. Dependent svarita is marked by a dot below (i.e. when /[\ > ^]). It is indicated in this file by <DSP> (का) for "Dependent Svarita AV *Paippalāda Saṁhitā*" = Vedic Symbol 190 [= <DSK> "Dependent Svarita YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" (p. 23 sū. 39).]
74. Independent svarita is marked by a crooked line below: (कङ्क) indicated in this file by <ISP> for "Independent Svarita AV *Paippalāda Saṁhitā*" = Vedic Symbol 149 (= <ISM> for "Independent Svarita (without kampa) YV *Mādhyandina Saṁhitā*".)
75. The first ekaśruti after an independent svarita is marked by a dot below. It is indicated in this file by <FEP> [= <DSP> (का) for "Dependent Svarita AV *Paippalāda Saṁhitā*" = Vedic Symbol 190 = <DSK> "Dependent Svarita YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" (p. 23 sū. 39).]
Examples:

शि<AP>वा श<DSP>र<AP>व्या<ISP> या (AVP 14.2.7) p. 42 (62), p. 43 (64)
Deep accent: *śivā́ śaravyā̀ yā́*

1. या is udātta

2. श is dependent svarita
3. व्या is independent svarita (jātya)
4. शि and र are anudātta

AVPR14.2.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

त<AP>न्व्<ISP>ऋा शन्त<DSP>मया (AVP 14.2.8) p. 42 (62), p. 43 (63), (64)
Deep accent: *tanvā̀ śántamayā*
1. श is udātta
2. न्त is dependent svarita
3. न्वा is independent svarita (kṣaipra)
4. त is anudātta

AVPR14.2.8
View Scan [.png] High Res [.tif]

कामो<DSP>दा<AP>ता (AVP 1.30.6) p. 43 (63)
Deep accent: *kā́mo dātā́*
1. का and ता are udātta
2. मो is dependent svarita
3. दा is anudātta

AVPR1.30.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

जि<AP>ह्वाया<DSP> ऋा<AP>स्या<ISP>य<FEP> च (AVP 16.104.6) p. 43 (64), (65)
Deep accent: *jihvā́yā āsyā̀ya ca*
1. ह्वा is udātta
2. या is dependent svarita
3. स्या is independent svarita (jātya)
4. य is the first ekaśruti following independent svarita
5. जि and the initial ऋा in ऋास्याय are anudātta

AVPR16.104.6
View Scan [.png] High Res [.tif]

(p. 43)
The Paippalāda Saṁhitā marks udātta, anudātta, and svarita exactly as the *Kāṭhaka Saṁhitā* does except that the *Kāṭhaka Saṁhitā* uses a half moon (ardha candra) below (का) [for <ISK> "Independent Svarita (without kampa) YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" = Vedic Symbol 59] and a three-pronged mark below [for <ISKK> (= <ISKM> क) "Independent Svarita with kampa YV *Kāṭhaka Saṁhitā*" = Vedic Symbol 135]. Both are from Kashmir.

76. Brāhmaṇas

77. *Mādhyandina Śatapatha.*
[YM primarily follows the accentuation in the edition Ajmer: Vaidika Yantrālaya which has a few small differences from Weber and Kāśī: Acyuta Granthamālā.]

(p. 44)

Udātta

78. Udātta is marked by a horizontal line below.

अ॒थ सं॒स्थिते वि॒सृजते (*ŚBM.* 1.1.1.3) p. 44 (66)

Deep accent: *átha sáṁsthite vísṛjate*

1. अ-सं-वि are udātta

[*Bhāṣika sūtra* is a pariśiṣṭa of *Śuklayajurveda Prātiśākhya* of Kātyāyana with the Ṭīkā of Anantabhaṭṭa. Kāśī ed. pp. 432-470.]
[p. 44 note 1: YM does not accept the following explanation given in the Bh. Sū.:
BhSū. 13-14 Independent svarita is replaced by udātta and is unmarked.
BhSū. 15 Udātta is replaced by anudātta and marked.]

ŚBMA1.1.1.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

79. Only the last of a series of udāttas is marked.

व्रतमु॒पायानी॒ति (*ŚBM.* 1.1.1.1) p. 44 (67)

Deep accent: *vratámúpāyāníti*

1. त-मु are udātta but only the second is marked

ŚBMA1.1.1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

त उ॒त्तरस्य (*ŚBM.* 4.6.9.11) p. 44 (67)

Deep accent: *tá úttarasya*

1. त-उ are udātta but only the second is marked

ŚBMA4.6.9.11
View Scan [.png] High Res [.tif]

अग्निर्ह वै धूर॒थ (*ŚBM.* 1.1.2.9) p. 44 (68)

Deep accent: *agnírhá vaí dhū́rátha*

1. All five ग्नि-ह-वै-धू-र are udātta but only the last र is marked

(p. 45)

ŚBMA1.1.2.9
View Scan [.png] High Res [.tif]

80. After an udātta, anusvāra (before a spirant or r) is marked by a half moon with dot (candra bindu) and virāma [Vedic Symbol 58 (ꣳ), Vedic Symbol 228, Vedic 177 (ञ्), Vedic Symbol 124, Vedic 40 (ँ)] and with a horizontal line below. [All other m/n become savarṇa with the next in Śuklayajurveda per Śuklayajurveda Śikṣā. Both marks occur after short and long vowels in the saṁhitā.]

य॒त्पञ्चमं॒ स्रु॒चा (*ŚBM.* 3.1.4.2) p. 45 (69)

Deep accent: *yátpañcamáṁ srucā́*

ŚBMA3.1.4.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

य॒दमेध्यं॒ रिप्रं॰ (*ŚBM.* 3.1.2.11) p. 45 (69) [???Since the final of रिप्रम् is udātta; it should have a horizontal line below if it's the last in a series.]

Deep accent: *yádamedhyáṁ ripráṁ...*

(p. 46)

ŚBMA3.1.2.11
View Scan [.png] High Res [.tif]

81. A pre-pause udātta, i.e. one that occurs immediately before a pause or mediated by a single syllable before a pause, followed by an udātta after the pause, is marked by two dots below (in the Vedic Yantrālaya edition and by three dots below in Weber's edition [by no mark in Kāśī: Acyuta Granthamālā edition]). [If an anudātta follows the pause, the preceding udātta is marked by a horizontal line per sū. 78.]
[Indicated in this document by <UFPUŚBM> for "Udātta Followed by Pause and Udātta in *Śatapatha Brāhmaṇa. Mādhyandina Saṁhitā*", it is approximated by Vedic Symbol 190-space-190.]
Immediately before pause:

द्वित एकत<UFPUŚBM>ः ॥१॥ त इन्द्रेण० ॥२॥ (*ŚBM.* 1.2.3.1-2) p. 46 (70)

Deep accent: *dvitá ekatáḥ ..1.. tá índreṇa... ..2..*

Udātta त followed by pause and two udāttas त-इ is marked per sū. 81; only the second of the latter udāttas इ is marked, per sū. 79, and is marked per sū. 78.

ŚBMA1.2.3.1-2
View Scan [.png] High Res [.tif]

मनुऽषेथैवं देवत्रा<UFPUŚBM> ॥७॥ स युनक्ति० ॥८॥ (*ŚBM.* 5.1.4.7-8) p. 46 (70)

Deep accent: *manuṣéthaivám̐ devatrā́ ..7.. sá yunakti... ..8..*

Pre-pause udātta त्रा followed by udātta स is marked per sū. 81; the latter स is marked per sū. 78.

ŚBMA5.1.4.7-8
View Scan [.png] High Res [.tif]

Mediated by a single syllable before a pause:

पृदाकुरि<UFPUŚBM>ति ॥३॥ अथ० ॥४॥ (*ŚBM.* 4.4.5.3-4) p. 47 (71)

Deep accent: *pṛ́dākuríti ..3.. átha... ..4..*

Udātta रि followed by anudātta ति, pause, and udātta अ is marked per sū. 81; the post-pause udātta अ is marked per sū. 78.

ŚBMA4.4.5.3-4
View Scan [.png] High Res [.tif]

यदपक्षीय<UFPUŚBM>ते ॥१५॥ अथ यत्० ॥१६॥ (*ŚBM.* 1.4.4.15-16) p. 47 (71)

Deep accent: *yádapakṣīyáte ..15.. átha yát... ..16..*

Udātta य followed by anudātta ते, pause, and udātta अ is marked per sū. 81; the post-pause udātta अ is marked per sū. 78.

ŚBMA1.4.4.15-16
View Scan [.png] High Res [.tif]

In the middle of a Kaṇḍikā, immediately before pause:

यदग्नि<UFPUŚBM>ः । तस्मात्० (*ŚBM.* 6.2.1.12) p. 48 (72)

Deep accent: *yádagníḥ . tásmāt...*

Pre-pause udātta ग्नि followed by udātta त is marked per sū. 81; the latter स is marked per

sū. 78.

ŚBMA6.2.1.12
View Scan [.png] High Res [.tif]

वा एता<UFPUŚBM>ः । षडाहुतयः० (*ŚBM.* 4.4.5.18) p. 48 (72)
Deep accent: *vā́ etā́ḥ . ṣáḍā́hutayaḥ...*
Pre-pause udātta ता followed by two udāttas ष-डा is marked per sū. 81; the latter of the two udāttas डा is marked per sū. 78. [but YM apparently leaves it off by mistake].

ŚBMA4.4.5.18
View Scan [.png] High Res [.tif]

Mediated by more than one syllable:
व्रतमुपैष्यन् । अन्तरेणा० (*ŚBM.* 1.1.1.1) p. 48 (73)
Deep accent: *vratámupaiṣyan . ántareṇā...*
Pre-pause udātta त followed by three anudāttas उ-पै-ष्य is not marked per sū. 81 but per sū. 78.

ŚBMA1.1.1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

[There are exceptions to 81. YM posits that there may be further restrictions.
The Ajmer edition has two dots where a horizontal line is expected:
तद्विश्वैर्दैवै<UFPUŚBM>ः सह यजमानं० (*ŚBM.* 9.2.3.25) p. 48 (74)
Deep accent: *tádvíśvairdaivaíḥ sahá yájamānaṁ...* [???*daivai*?]
Udātta वै followed without pause by anudātta स and udātta ह is marked per sū. 81.
Veṅkaṭeśvara, Weber, and Acyuta Granthamālā editions all read वै marked per sū. 78.]

ŚBMA9.2.3.25
View Scan [.png] High Res [.tif]

(p. 49)
The Ajmer edition has a horizontal line where two dots are expected:
पुमांसमुपशेते ॥२०॥ ता नान्तरेण० ॥२१॥ (*ŚBM.* 1.1.1.20-21) p. 49 (75)
Deep accent: *púmāṁsamupaśéte ..20.. tā́ nā́ntareṇa... ..21..*
Udātta शे followed anudātta ते, pause, and two udāttas ता-ना is not marked per sū. 81 but per sū. 78; only the second of the latter udāttas ना is marked, per sū. 79, and is marked per sū. 78.

ŚBMA1.1.1.20-21
View Scan [.png] High Res [.tif]

तस्माद् वृत्रो नाम ॥४॥ तमिन्द्रो० ॥५॥ (*ŚBM.* 1.1.3.4-5) p. 49 (75)
Deep accent: *tásmād vṛtró nā́ma ..4.. támíndro... ..5..*
Udātta ना followed anudātta म, pause, and two udāttas त-मि is not marked per sū. 81 but per sū. 78; only the second of the latter udāttas मि is marked, per sū. 79, and is marked per sū. 78.

ŚBMA1.1.3.4-5
View Scan [.png] High Res [.tif]

भवितोरिति ॥९॥ तदु वै यजेतैव<UFPUŚBM>० ॥१०॥ (*ŚBM.* 5.1.1.9-10) p. 49 (75)

Deep accent: *bhávitoríti ..9.. tádu vai yájetaivá... ..10..*
Udātta रि followed anudātta ति, pause, and udātta त is not marked per sū. 81 but per sū. 78; the latter udātta त is marked per sū. 78.

ŚBMA5.1.1.9-10
View Scan [.png] High Res [.tif]

लोके॒षु दिशः ॥१३॥ बा॒ह्येनाग्निं॰ ॥१४॥ (*ŚBM.* 7.3.1.13-14) p. 49 (75)
Deep accent: *lokéṣu díśaḥ ..13.. bā́hyenāgní... ..14..* [agni is antodātta so should be marked unless an udātta follows.]
Udātta दि followed anudātta श, pause, and udātta बा is not marked per sū. 81 but per sū. 78; the latter udātta बा is marked per sū. 78.]

ŚBMA7.3.1.13-14
View Scan [.png] High Res [.tif]

82. A pre-pause udātta, i.e. one that occurs immediately before a pause or mediated by a single syllable before a pause, followed by an independent (jātya or abhinihita since the kṣaipra and praśleṣa are impossible immediately after a pause) svarita after the pause, is also marked by two dots below (in the Vedic Yantrālaya edition and by two sets of three dots below in Weber's edition [by no mark in Kāśī: Acyuta Granthamālā edition]). [Indicated in this document by <UFPISŚBM> for "Udātta Followed by Pause and Independent Svarita in *Śatapatha Brāhmaṇa. Mādhyandina Saṁhitā*", it is approximated by Vedic Symbol 190-space-190.]

॰मित्येतत्॒<UFPISŚBM> ॥२६॥ स्वर्य॒न्तो॰ ॥२७॥ (*ŚBM.* 9.2.3.26-27) p. 49 (76)
Deep accent: *...mítyetát ..26.. svàryánto... ..27..*
Udātta त followed by pause and independent (jātya or kṣaipra [see YM p. 13 note 2) svarita स्व is marked per sū. 82; the svarita स्व is unmarked; the following udātta र्य is marked per sū. 78.

ŚBMA9.2.3.26-27
View Scan [.png] High Res [.tif]

प्रतिप्रस्थाता<UFPISŚBM> ॥१३॥ सो ऽध्वर्यु<UFPUŚBM>ः॰ ॥१४॥
(*ŚBM.* 4.2.1.13-14) p. 49 (76)
Deep accent: *pratiprasthātā́ ..13.. sò 'dhvaryúḥ... ..14..*
Udātta ता followed by pause and independent (abhinihita) svarita सो is marked per sū. 82; the svarita सो is unmarked; र्यु is marked per sū. 81-82, ???depending upon whether udātta or svarita follows the pause (if the latter, Weber will have two sets of three dots?). (p. 50)

ŚBMA4.2.1.13-14
View Scan [.png] High Res [.tif]

Anudātta

83. An (immediately) pre-pause anudātta, followed by an independent (jātya or abhinihita since the kṣaipra and praśleṣa are impossible immediately after a pause) svarita after the pause, is also marked by two dots below (in the Vedic Yantrālaya edition and by two sets of three dots below in Weber's edition [by no mark in Kāśī: Acyuta Granthamālā edition]).
[Indicated in this document by <AFPISŚBM> for "Anudātta Followed by Pause and

Independent Svarita in *Śatapatha Brāhmaṇa. Mādhyandina Saṁhitā*", it is approximated by Vedic Symbol 190-space-190.]

न मामन्य इति<AFPISŚBM> ।। ते ऽविदुः । ० (*ŚBM.* 3.4.3.7-8) p. 50 (77)

Deep accent: *ná mā́manya íti .. tè 'viduḥ . ...*

Anudātta ति followed by pause and independent (abhinihita) svarita ते is marked per sū. 83.

ŚBMA3.4.3.7-8
View Scan [.png] High Res [.tif]

84. An anudātta, after which an immediately pre-pause udātta in sandhi combination with the post-pause anudātta would result in a svarita if the pause did not intervene, is also marked by two dots below (in the Vedic Yantrālaya edition and by two sets of three dots below in Weber's edition [by no mark in Kāśī: Acyuta Granthamālā edition]).
[Indicated in this document by <AFUPAŚBM> for "Anudātta Followed by Pause and Independent Svarita in *Śatapatha Brāhmaṇa. Mādhyandina Saṁhitā*", it is approximated by Vedic Symbol 190-space-190.]

समवमृशन्त्ये<AFUPAŚBM>व । एतद्ध० (*ŚBM.* 3.4.2.13) p. 50 (78)

Deep accent: *samávamr̥śantyevá . etáddha...*

Since the udātta अ of एव and the anudātta ए of एतद् would combine by sandhi in (praśleṣa) svarita वै if the virāma were removed, the anudātta न्त्ये preceding the udātta व before the pause is marked per sū. 84.

ŚBMA3.4.2.13
View Scan [.png] High Res [.tif]

85. An anusvāra following a syllable marked with dots is marked by a horizontal line below. (p. 51)

पौष्णं ।।१९।। सैषा० ।।२०।। (*ŚBM.* 3.1.4.19-20) p. 51 (79)

Deep accent: *pauṣṇáṁ ..19.. saiṣā́... ..20..* [???Isn't सै svarita rather than udātta as YM says?]

Anusvāra is marked per sū. 85 after udātta ष्ण followed by pause and udātta सै marked with two dots per sū. 80.

ŚBMA3.1.4.19-20
View Scan [.png] High Res [.tif]

Unmarked

86. An independent svarita is unmarked; the preceding anudātta is marked by a horizontal line below (by two horizontal lines in Weber's edition (81)). [An independent svarita preceded by an udātta is unmarked.]

धान्यमसि(*ŚBM.* 1.2.1.18) p. 51 (80)

Deep accent: *dhānyàmasi*

Anudātta धा before (jātya) svarita न्य is marked per sū. 86.

ŚBMA1.2.1.18
View Scan [.png] High Res [.tif]

भूर्भुवः स्वः (*ŚBM.* 2.4.1.1) p. 51 (80)

Deep accent: *bhū́rbhúvaḥ svàḥ*
Anudātta व before (jātya) svarita स्व is marked per sū. 86. The second of two udāttas भू-र्भु is marked per sū. 78-79.

ŚBMA2.4.1.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

उर्वन्तरिक्षम् (*ŚBM.* 1.1.2.4) p. 51 (80)
Deep accent: *urvàntárikṣam*
Anudātta उ before (kṣaipra) svarita र्व is marked per sū. 86. Udātta न्त is marked per sū. 78.

ŚBMA1.1.2.4
View Scan [.png] High Res [.tif]

दिवीव चक्षुराततम् (*ŚBM.* 3.7.1.18) p. 51 (80)
Deep accent: *divī̀va cákṣurā́tatam*
Anudātta दि before (praśleṣa) svarita वी is marked per sū. 86. Udāttas च-श्रा are marked per sū. 78.

ŚBMA3.7.1.18
View Scan [.png] High Res [.tif]

प्रसवे ऽश्विनोः (*ŚBM.* 1.1.2.17) p. 51 (80)
Deep accent: *prasavè 'śvínoḥ*
Anudātta स before (abhinihita) svarita वे is marked per sū. 86. Udātta श्वि is marked per sū. 78.

ŚBMA1.1.2.17
View Scan [.png] High Res [.tif]

वेदो ऽसि येन (*ŚBM.* 1.9.2.23) p. 51 (80)
Deep accent: *vedò 'si yéna*
Anudātta वे before (abhinihita) svarita दो is marked per sū. 86. Udātta ये is marked per sū. 78.

ŚBMA1.9.2.23
View Scan [.png] High Res [.tif]

(p. 52)
[YM: The horizontal line beneath marks anudātta. It is not the case that the mark beneath indicates a subsequent high pitch in either an udātta or svarita. Therefore it is erroneous to distinguish the low pitch before udātta from the low pitch before svarita as Weber has done.]

Missing sū. 87? A praśleṣa svarita followed by another praśleṣa svarita is also marked by a horizontal line below.s

यविष्ठ्येति सैषैतमेव (*ŚBM.* 1.4.1.26) p. 52 (82)
Deep accent: *yaviṣṭhyéti saìṣaìtámevá*
Udātta ष्ठ्ये (< udāttas ष्ठ्य-इ) is marked by sū. 78. Anudātta ति, followed by independent (praśleṣa) svarita सै (< सा-ए), is marked per sū. 86. Independent (praśleṣa) svarita षै (< षा-ए) is unmarked per sū. 86. Udāttas त-व are marked per sū. 78. [Weber marks both ति and सै with two horizontal lines below to indicate following independent svarita.]

ŚBMA1.4.1.26

View Scan [.png] High Res [.tif]

88. The final udātta of a pāda in a mantra is unmarked, even though a pause intervenes between it and the following vowel. [Weber marks with three dots before anudātta per sū. 83 and by two sets of three dots before svarita per sū. 82.]

०अवयाः । महः० (*ŚBM.* 2.5.2.28) p. 53 (83)

Deep accent: *...avayā́ḥ . maháḥ...*

ŚBMA2.5.2.28
View Scan [.png] High Res [.tif]

०प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वं० (*ŚBM.* 1.4.1.39) p. 53 (83)

Deep accent: *...prayátyadhvaré . vṛṇīdhvaṁ...*

ŚBMA1.4.1.39
View Scan [.png] High Res [.tif]

०मतिं कविम् । ऊर्ध्वाय० (*ŚBM.* 3.3.2.12) p. 53 (83)

Deep accent: *...matiṁ kavím . ūrdhvāya...* [???Missing accent on मतिम् । ऊर्ध्वाय?]

ŚBMA3.3.2.12
View Scan [.png] High Res [.tif]

०दशस्या । व्यस्कन्ना रोदसी० (*ŚBM.* 3.5.3.14) p. 53 (83)

Deep accent: *...daśasyā́ . vyàskannā ródasī...*

ŚBMA3.5.3.14
View Scan [.png] High Res [.tif]

Pāda-final udāttas याः, रे, and वि, before pāda-initial anudāttas म, वृ, and ऊ respectively, are unmarked per sū. 88 instead of by a line below per sū. 78. Pāda-final udātta स्या, before pāda-initial independent (kṣaipra) svarita व्य, is unmarked per sū. 88 instead of by two dots per sū. 82.

[Weber marks the pāda-final udāttas याः, रे, and वि with three dots below in the manner of (but not exactly in accordance with) sū. 81 and marks pāda-final udātta स्या with two sets of three dots per sū. 82. The Ajmer edition marks them with a horizontal line below.

89. The final udātta in a Brāhmaṇa also is unmarked. [Weber marks it.]
(*ŚBM.* 4.5.1.16) [YM provides references only on p. 53]
(*ŚBM.* 4.1.1.28)

90. Dependent svarita, ekaśruti, and the rest of anudāttas are unmarked.
(p. 54)

91. Kāṇva

In the Kāṇva recension of the *Śatapathabrāhmaṇa* accents are marked mostly as in the Mādhyandina recension. The exception is that at the end of a Kaṇḍikā, an udātta, followed by an udātta (in the next kaṇḍikā) is unmarked. In the Mādhyandina recension, it is marked by two dots below in the Vaidikayantrālaya edition and by three dots below in Weber's edition. It is unmarked in the Acyuta Granthamālā edition.

ऐवैन्द्री वाक् ।। स जुहोति (ŚBK 1.5.2.17-18) p. 54 (84)

Deep accent: *evaìndrī́ vā́k .. sá juhoti*

स्वाहेति ।। ग्रथ (ŚBK 1.5.2.18-19) p. 54 (84)

Deep accent: *svā́héti .. átha* [/iti is ādyudātta]

92. Taittirīya

In the *Taittirīyabrāhmaṇa*, accent is marked as in the *Taittirīyasaṁhitā.*

93. In *Tāṇḍya*, *Bhāllavi* and RV Brāhmaṇas, accent was as in *Śatapathabrāhmaṇa.* The *Tāṇḍyabrāhmaṇa* and the RV brāhmaṇas (*Aitareya*, *Kauṣītaki*, and *Śāṅkhāyana*) are extant only unaccented. *Bhāllavibrāhmaṇa* is not extant.

(p. 55)

94. In *Bṛhadāraṇyaka* (Mādhyandina and Kāṇva) and *Taittirīya* āraṇyakas, accents are marked as in their brāhmaṇas.

95. In *Maitrāyaṇīyāraṇyaka*, accent is marked as in RV.

96. A svarita with kampa is marked by a horizontal line below and a 3 before.

भूर्भुवः ३स्वरित्युपासीतानेन (MaiĀ 6.6) p. 55 (85)

Deep accent: *bhū́rbhúvaḥ svàrítyupā́sītā́nena*

ब्रह्मचारिणो ३यो ऽयं विष्णुः (MaiĀ 5.2) p. 55 (85)

Deep accent: *brahmácāriṇo yò 'yáṁ víṣṇuḥ* [???Since विष्णु is ādyudātta the horizontal line beneath वि in YM must be in error and should be removed?]

[Sātavalekara's edition is based on a single manuscript and therefore accent marking is full of errors. YM gives (or claims to) correct accent on p. 55 (86) of the following:

भूर्भुवः ३स्वरोमित्यष्टपादं० । नमो ऽग्नये पृथिवी ३क्षिते ६।३५।।

Deep accent: *bhū́rbhúvaḥ svàrómítyaṣṭapādáṁ... . námo 'gnáye pṛthivī́ kṣité 6.35..*

ग्रोम् is udātta; इति is ādyudātta]

97. In *Kāṭhakabrāhmaṇa*, accent is marked as in *Kāṭhakasaṁhitā.*

[Sūryakānt, ed. Lahore shows accents here and there]

[Apparently only udātta (by vertical line above), independent svarita (<ISK>) (by a half moon below), and independent svarita with kampa (<ISKK>) (by a upward-pointing wedge below) are marked in most of the following examples. In the last two, independent svarita (<ISK>) is marked by an avagraha-like figure स् below. References are to page and line in Sūryakānt's edition]

भद्रो ऽहिर्बुध्न्यो<ISKK> भुवनस्य रक्षिता (*KāṭhBr.* 60.7)

Deep accent: *bhadró 'hirbudhnyò bhúvanasya rakṣitā́*

KāBS60.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

ग्रन्तर्हिता ह्य<ISKK>मुष्मादादित्यात् पितरः (*KāṭhBr.* 59.1)

Deep accent: *antárhitā hyàmúṣmādādityā́t pitáraḥ*

KāBS59.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

देवेभ्यश्च मनुष्ये<ISKK>भ्यश्च पितरः(*KāṭhBr.* 59.1)

Deep accent: *devébhyaśca manuṣyèbhyaśca pitáraḥ*

KāBS59.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

सा वा एषा सावित्र्ये<ISKK>षां लोकानां प्रतिपत (*KāṭhBr.* 51.3)
Deep accent: *sā́ vā́ eṣā́ sāvitryèṣā́ṁ lokā́nāṁ pratipáta*
KāBS51.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

वीर्यं<ISKK> वै कर्म वीर्ये<ISK>ण वा अन्नमद्यते (*KāṭhBr.* 50.2)
Deep accent: *vīryàṁ vaí kárma vīryèṇa vā́ ánnamadyate*
KBS50.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

ते<ISK> ऽब्रुवन् (*KāṭhBr.* 57.1)
Deep accent: *tè 'bruvan*
KāBS57.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

एवमिव हि ते<ISK> ऽन्तर्हिता भवन्ति (*KāṭhBr.* 59.3)
Deep accent: *evámiva hí tè 'ntárhitā bhavanti*
KāBS59.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

उभये ही<ISK>ज्यन्ते (*KāṭhBr.* 59.2)
Deep accent: *ubháye hì̀jyánte*
KāBS59.2
View Scan [.png] High Res [.tif]

प्राणो व्यानो<ISK> ऽपानः (*KāṭhBr.* 52.3)
Deep accent: *prāṇó vyānò 'pānáḥ*
KāBS52.3
View Scan [.png] High Res [.tif]

सो<ISK> ऽब्रवीत् (*KāṭhBr.* 55.1)
Deep accent: *sò 'bravīt*
KāBS55.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

हस्ती वै भूत्वा स्व<ISK>र्भानुरमुमादित्यं छाययाऽभ्य<ISK>भवत् (*KāṭhBr.* 56.1)
Deep accent: *hastī́ vaí bhūtvā́ svàrbhānuramúmādityáṁ chāyáyābhyàbhavat*
KāBS56.1
View Scan [.png] High Res [.tif]

तस्मादुभौ यष्टव्यौ<ISK> (*KāṭhBr.* 56.7)
(p. 57)
Deep accent: *tásmādubhaú yaṣṭavyaù*
4.KāBS56.7
View Scan [.png] High Res [.tif]

98. The remaining literature is unmarked.

Chandas

Encoding Table

ँ	anunāsikaḥ	0901
ं	anusvāraḥ	0902
ः	visarjanīyaḥ	0903
ऄ	ă	0904
अ	a	0905
आ	ā	0906
इ	i	0907
ई	ī	0908
उ	u	0909
ऊ	ū	090A
ऋ	ṛ	090B
ऌ	ḷ	090C
ऍ	ê	090D
ऎ	ĕ	090E
ए	e	090F
ऐ	ai	0910
ऑ	ô	0911
ऒ	ŏ	0912
ओ	o	0913
औ	au	0914

क	ka	0915
ख	kha	0916
ग	ga	0917
घ	gha	0918
ङ	ṅa	0919
च	ca	091A
छ	cha	091B
ज	ja	091C
झ	jha	091D
ञ	ña	091E
ट	ṭa	091F
ठ	ṭha	0920
ड	ḍa	0921
ढ	ḍha	0922
ण	ṇa	0923
त	ta	0924
थ	tha	0925
द	da	0926
ध	dha	0927
न	na	0928
ऩ	ṉa	0929
प	pa	092A
फ	pha	092B

ब	ba	092C
भ	bha	092D
म	ma	092E
य	ya	092F
र	ra	0930
ऱ	ṟa	0931
ल	la	0932
ळ	ḷa	0933
ऴ	ḻa	0934
व	va	0935
श	śa	0936
ष	ṣa	0937
स	sa	0938
ह	ha	0939
़	nuktaḥ	093C
ऽ	avagrahaḥ	093D
ा	āmātrā	093E
ि	imātrā	093F
ी	īmātrā	0940
ु	umātrā	0941
ू	ūmātrā	0942
ृ	ṛmātrā	0943
ॄ	ṝmātrā	0944

◌ॅ	êmātrā	0945
◌ॆ	ĕmātrā	0946
◌े	emātrā	0947
◌ै	aimātrā	0948
◌ॉ	ômātrā	0949
◌ॊ	ŏmātrā	094A
◌ो	omātrā	094B
◌ौ	aumātrā	094C
◌्	virāmaḥ	094D
ॐ	Oṃ	0950
◌॑	svaritaḥ	0951
◌॒	anudāttaḥ	0952
◌॓	gravis	0953
◌॔	acutus	0954
क़	qa	0958
ख़	k̲h̲a	0959
ग़	ġa	095A
ज़	za	095B
ड़	ṛa	095C
ढ़	ṛha	095D
फ़	fa	095E
य़	ẏa	095F
ॠ	ṝ	0960

ॡ	ḹ	0961
◌ॢ	ḷmātrā	0962
◌ॣ	ḹmātrā	0963
।	daṇḍaḥ	0964
॥	daṇḍadvayam	0965
०	śūnyam	0966
१	ekam	0967
२	dve	0968
३	trīṇi	0969
४	catvāri	096A
५	pañca	096B
६	ṣaṭ	096C
७	sapta	096D
८	aṣṭau	096E
९	nava	096F
॰	saṅkṣepaḥ	0970
	zero width space	200B
	zero width non-joiner	200C
	zero width joiner	200D
◌	dotted circle	25CC
अ	a variant 1	F100
अ	a variant 2	F101
अ	a variant 3	F102
ऋ	ṛ variant 1	F103

ऋ	ṛ variant 2	F104
ॠ	ṝ variant 1	F105
क्ष	kṣa variant	F106
झ	jha variant 1	F107
झ	jha variant 2	F108
झ	jha variant 3	F109
ण	ṇa variant	F10A
ध	dha variant	F10B
भ	bha variant 1	F10C
भ	bha variant 2	F10D
ल	la variant 1	F10E
ल	la variant 2	F10F
श	śa variant 1	F110
श	śa variant 2	F111
१	ekam variant	F112
४	catvāri variant	F113
५	pañca variant 1	F114
५	pañca variant 2	F115
६	ṣaṭ variant	F116
८	aṣṭau variant	F117
९	nava variant 1	F118
९	nava variant 2	F119
९	nava variant 3	F11A

ˋ	avestic sign 1	F11B
ˋा	avestic sign 2	F11C
ऽऽ	avagrahadvayam	F11D
ʃ	atharvavedic svaritaḥ 1	F11E
ꞩ	atharvavedic svaritaḥ 2	F11F
卐	svastikaḥ 1	F120
卍	svastikaḥ 2	F121
卐	svastikaḥ 3	F122
卍	svastikaḥ 4	F123
卐	svastikaḥ 5	F124
卍	svastikaḥ 6	F125
❀	puṣpikaḥ	F126
⊛	cakram	F127
—	space variant 1	F128
–	space modifier 2	F129
-	space modifier 3	F12A
ˇ	space modifier 4	F12B
ˆ	space modifier 5	F12C
–	space modifier 6	F12D
-	space modifier 7	F12F
ः	additional visarjanīyaḥ	F130
ᳵ	jihvāmūlīyaḥ	F131
ᳶ	ardhavisargaḥ 1	F133

	ardhavisargaḥ 2	F134
	upadhmānīyaḥ	F136
	ardhavisargaḥ 3	F137
	ardhavisargaḥ 4	F138
	ardhavisargaḥ 5	F139
	visarjanīyaḥ variant 1	F13A
	ardhavisargaḥ 6	F13B
	visarjanīyaḥ variant 2	F13C
	ardhavisargaḥ 7	F13D
	ardhavisargaḥ 8	F13E
	ardhavisargaḥ 9	F13F
	ardhavisargaḥ 10	F140
	ardhavisargaḥ 11	F141
	ardhavisargaḥ 12	F142
	ardhavisargaḥ 13	F143
	ardhavisargaḥ 14	F144
	ardhavisargaḥ 15	F145
	ardhavisargaḥ 16	F146
	ardhavisargaḥ 17	F147
	ardhavisargaḥ 18	F148
	ardhavisargaḥ 19	F149
	ardhavisargaḥ 20	F14A
	ardhavisargaḥ 21	F14B

	ardhavisargaḥ 22	F14C
	ardhavisargaḥ 23	F14D
	ardhavisargaḥ 24	F14E
	ardhavisargaḥ 25	F14F
	additional anusvāraḥ	F150
	additional anunāsikaḥ	F151
	Vedic anusvāraḥ 1	F153
	Vedic anusvāraḥ 2	F154
	Vedic anusvāraḥ 3	F155
	Vedic anusvāraḥ 4	F156
	Vedic anusvāraḥ 5	F157
	Vedic anusvāraḥ 6	F158
	Vedic anusvāraḥ 7	F159
	Vedic anusvāraḥ 8	F15A
	Vedic anusvāraḥ 9	F15B
	Vedic anusvāraḥ 10	F15C
	Vedic anusvāraḥ 11	F15D
	Vedic anusvāraḥ 12	F15E
	Vedic anusvāraḥ 13	F15F
	Vedic anusvāraḥ 14	F160
	Vedic anusvāraḥ 15	F161
	Vedic anusvāraḥ 16	F162
	Vedic anusvāraḥ 17	F163

	Vedic anusvāraḥ 18	F164
	Vedic anusvāraḥ 19	F165
	Vedic anusvāraḥ 20	F166
	Vedic anusvāraḥ 21	F167
	Vedic anusvāraḥ 22	F168
	Vedic anusvāraḥ 23	F169
	Vedic anusvāraḥ 24	F16A
	Vedic anusvāraḥ 25	F16B
	Vedic anusvāraḥ 26	F16C
	Vedic anusvāraḥ 27	F16D
	Vedic anusvāraḥ 28	F16E
	Vedic anusvāraḥ 29	F16F
	Vedic anusvāraḥ 30	F170
	Vedic anusvāraḥ 31	F171
	Vedic anusvāraḥ 32	F172
	Vedic anusvāraḥ 33	F173
	Vedic anusvāraḥ 34	F174
	additional svaritaḥ	F175
	Vedic svaritaḥ 1	F176
	Vedic svaritaḥ 2	F177
	guru	F178
	laghu	F179
	Vedic accent	F17A

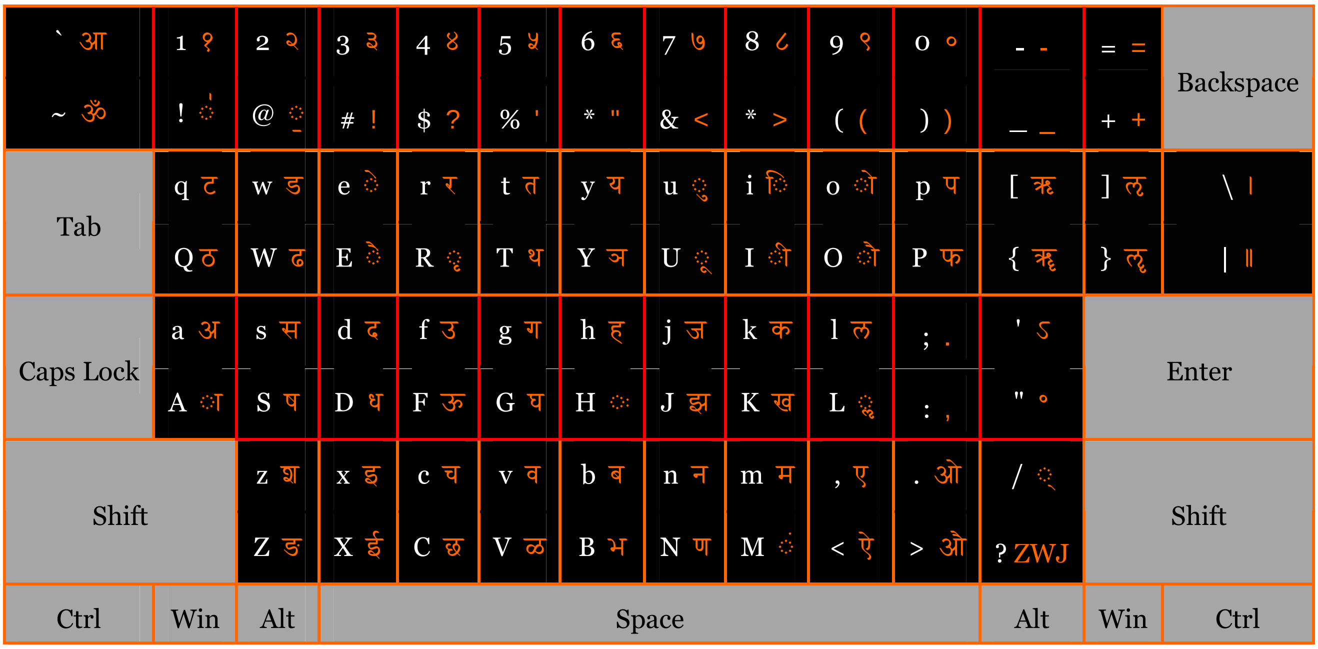
ˆ	Vedic accent	F17B
ˇ	Vedic accent	F17C
⌒	Vedic accent	F17D
ω	Vedic accent	F17E
m	Vedic accent	F17F
≍	Vedic accent	F180
ꜗ	Vedic accent	F181
‶	Vedic accent	F182
〃	Vedic accent	F183
१	kampaḥ 1	F184
३	kampaḥ 2	F185
२	Sāmavedic accent 1	F187
३	Sāmavedic accent 2	F188
४	Sāmavedic accent 3	F189
५	Sāmavedic accent 4	F18A
६	Sāmavedic accent 5	F18B
७	Sāmavedic accent 6	F18C
८	Sāmavedic accent 7	F18D
९	Sāmavedic accent 8	F18E
०	Sāmavedic accent 9	F18F
.	Sāmavedic accent 10	F190
र	Sāmavedic accent 11	F191
क	Sāmavedic accent 12	F192

उ	udāttaḥ	F193
ऽ	Sāmavedic accent 13	F194
१र	Sāmavedic accent 14	F195
२र	Sāmavedic accent 15	F196
३र	Sāmavedic accent 16	F197
४र	Sāmavedic accent 17	F198
५र	Sāmavedic accent 18	F199
र॰	Sāmavedic accent 19	F19A
१र॰	Sāmavedic accent 20	F19B
२र॰	Sāmavedic accent 21	F19C
३र॰	Sāmavedic accent 22	F19D
४र॰	Sāmavedic accent 23	F19E
५र॰	Sāmavedic accent 24	F19F
२उ	Sāmavedic accent 25	F1A0
३क	Sāmavedic accent 26	F1A1
_	additional anudāttaḥ	F1A2
˪	Vedic accent	F1A3
¬	Vedic accent	F1A4
◡	Vedic accent	F1A5
⌒	Vedic accent	F1A6
ω	Vedic accent	F1A7
m	Vedic accent	F1A8
˥	Vedic accent	F1A9

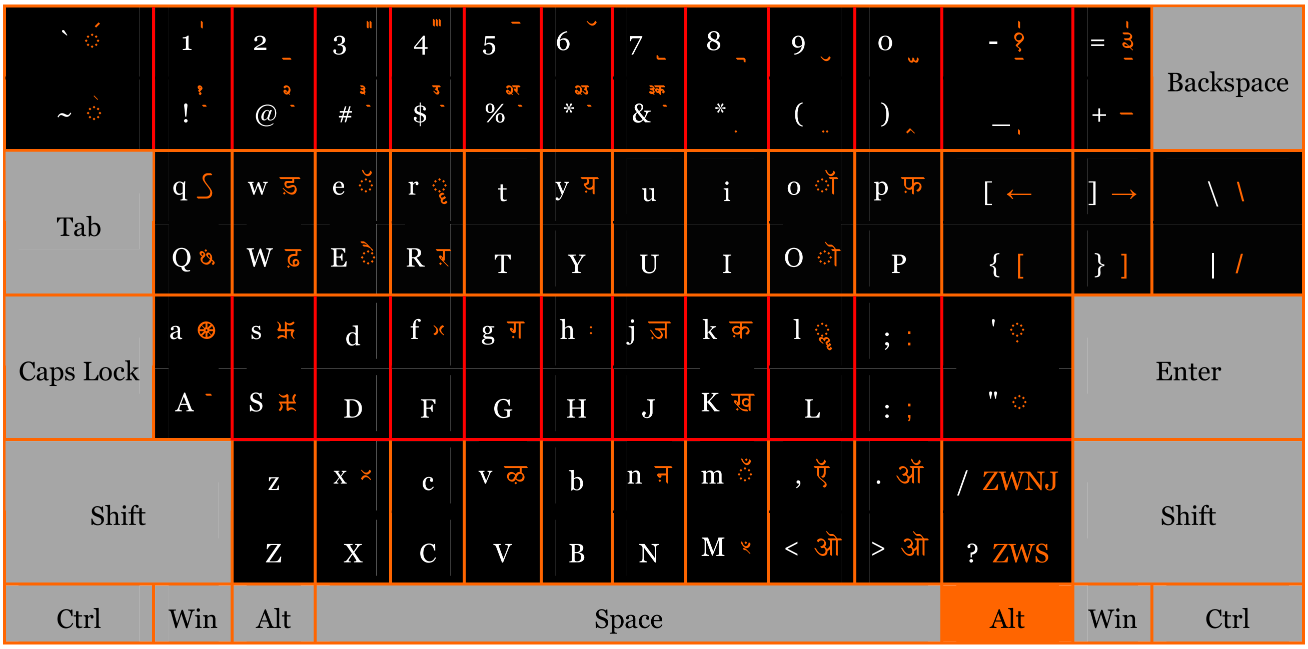
.	Vedic accent	F1AA
..	Vedic accent	F1AB
∵	Vedic accent	F1AC
⫟	Vedic accent	F1AD
⊤	Vedic accent	F1AE
ˇ	Vedic accent	F1AF
ˆ	Vedic accent	F1B0
≫	Vedic accent	F1B1
=	Vedic accent	F1B2
ˌ	Vedic accent	F1B3
ऽ	Vedic accent	F1B4
ऽऽ	Vedic accent	F1B5
ˆ	Vedic accent	F1B6
ˇ	Vedic accent	F1B7
૯	Vedic accent	F1B8
ɔ	Vedic accent	F1B9
–	Vedic udāttaḥ 1	F1BA
—	Vedic udāttaḥ 2	F1BB
——	Vedic udāttaḥ 3	F1BC

Chandas Devanāgarī IME Help

१ ॥ Keyboard Layout



Right Alt +



२ ॥ Installing

1) First make sure that support of Devanāgarī Script is enabled in Your System (this can be done only in Windows 2000, Windows XP and Windows 2003). To do this go to Control Panel > Language Settings > Languages > and click "Enable support of complex and left to right scripts"

2) Unpack chandas-ime.zip file and click on Chandas.msi.

3) Then go to Control Panel > Language Settings > Languages > Languages and Text Input Services > Add > and select as language Sanskrit and Chandas Devanāgarī as IME.

३ ॥ Typing

Devanāgarī is syllabic script. There are 4 main rules of typing:

1 Consonant-signs include vowel अ (a). To type a consonant without next vowel (*halanta*) use sign *virāma* -

क ka । ग ga । च ca ॥

क + ् → क् k । ग + ् → ग् g । च + ् → च् c ॥

2 Vowels in the beginning of a word and vowels after consonants have separate signs. Vowels after consonants (*mātrā*s) must be typed after consonant-signs.

आ ā । उ u । इ i ॥

क + ा → का kā ॥ क + ु → कु ku ॥ क + ि → कि ki ॥

3 Consonants before consonants must be typed with *virāma*. Ligature-signs (*saṃyoga*) are "constructed" automatically by Operational System.

क + ◌् + ष → क्ष kṣa । क + ◌् + त → क्त kta । ङ + ◌् + क + ◌् + त + ◌् + य → ङ्क्त्य ṅktya ॥

4 To type consonant half-form sign use Zero-Width-Joiner sign (ZWJ). This can be used also to type horizontal ligature-variations and *anunāsika* after *halanta antasstha*-consonant. To prevent ligature-construction use Zero-Width-Non-Joiner sign.

क + ◌् + ZWJ → क्‍ । च + ◌् + ZWJ → च्‍ । क + ◌् + ZWJ + त → क्‍त ॥ ळ + ◌् + ZWJ + ◌ँ + ळ → ळ्‍ँळ ।

क + ◌् + ZWNJ + त → क्‌त ॥

Devanāgarī Unicode Fonts

This IME can be used with all Unicode Devanāgarī fonts. But Vedic accents are not yet supported by Unicode Standard and can not be found in other fonts. Other Unicode Devanāgarī fonts can be found here -

www.devanagari.net

www.alanwood.net/unicode/fonts.html#devanagari

www.travelphrases.info/gallery/Fonts_Devanagari.html

अचः । Vowels

Devanāgarī character	*Roman keyboard key*
◌ा	A
◌ि	i
◌ी	I
◌ु	u
◌ू	U
◌ृ	R
◌ॄ	Alt+r
◌ॢ	L
◌ॣ	Alt+l
◌े	e
◌ै	E
◌ो	o
◌ौ	O
◌ं	M
◌ः	H
◌ँ	Alt+m

Devanāgarī character	*Roman keyboard key*
अ	a
आ	`
इ	x
ई	X
उ	f
ऊ	F
ऋ	[
ॠ	{
ऌ	]
ॡ	}
ए	,
ऐ	<
ओ	.
औ	>

हलः । Consonants

Devanāgarī character	*Roman keyboard key*
क	k
ख	K
ग	g

घ	G
ङ	Z
च	c
छ	C
ज	j
झ	J
ञ	Y
ट	q
ठ	Q
ड	w
ढ	W
ण	N
त	t
थ	T
द	d
ध	D
न	n
प	p
फ	P
ब	b
भ	B

म	m
य	y
र	r
ल	l
व	v
श	z
ष	S
स	s
ह	h
ळ	V

Special signs

Devanāgarī character	*Roman keyboard key*
◌् (विरामः)	/
ऽ (अवग्रहः)	'
॰ (निर्ह्रासः)	"
◌॑ (स्वरितः)	!
◌॒ (अनुदात्तः)	@
◌́	Alt+`
◌̀	Alt+Shift+`
ॐ (ॐकारः)	~

। (दण्डः)	\
॥ (द्विदण्डौ)	|
़ (नुक्तः)	Alt+'

Other Devanāgarī signs

Devanāgarī character	*Roman keyboard key*
ऍ	Alt+,
ऎ	Alt+ Shift+,
ऑ	Alt+.
ऒ	Alt+ Shift+.
ऩ	Alt+n
ऱ	Alt+Shift+r
ऴ	Alt+v
ॅ	Alt+e
ॆ	Alt+Shift+e
ॉ	Alt+o
ॊ	Alt+Shift+o
क़	Alt+k
ख़	Alt+Shift+k
ग़	Alt+g
ज़	Alt+j

ड़	Alt+w
ढ़	Alt+Shift+w
फ़	Alt+p
य़	Alt+y

संख्याः / Numerals

Devanāgarī character	*Roman keyboard key*
१	1
२	2
३	3
४	4
५	5
६	6
७	7
८	8
९	9
०	0

Additional Vedic signs (supported only in Chandas font)

Devanāgarī character	*Roman keyboard key*
ꣳ (Vedic अनुस्वारः)	Alt+Shift+m
ᳵ (जिह्वामूलीयः)	Alt+x
ᳶ (उपध्मामीयः)	Alt+f
: (Additional विसर्गः)	Alt+h
॑ (Additional स्वरितः)	Alt+1
॒ (Additional अनुदात्तः)	Alt+2
᳚ (Vedic स्वरितः)	Alt+3
᳛ (Vedic स्वरितः)	Alt+4
¯ (गुरु)	Alt+5
˘ (लघु)	Alt+6
᳜ (Vedic स्वरितः)	Alt+7
᳝ (Vedic स्वरितः)	Alt+8
᳞ (Vedic स्वरितः)	Alt+9
᳟ (Vedic स्वरितः)	Alt+0
१॒॑ (ह्रस्वकम्पः)	Alt+-
३॒॑ (दीर्घकम्पः)	Alt+=
ऽ (Vedic स्वरितः)	Alt+q
⊛ (चक्रम्)	Alt+a
卐 (स्वस्तिकः)	Alt+s

卐 (स्वस्तिकः)	Alt+Shift+s
ˉ (Devanagari space variant)	Alt+Shift+a
ꣳ (Vedic अनुस्वारः)	Alt+Shift+q
꣡ (Sāmavedic accent)	Alt+Shift+1
꣢ (Sāmavedic accent)	Alt+Shift+2
꣣ (Sāmavedic accent)	Alt+Shift+3
꣫ (उदात्तः)	Alt+Shift+4
꣢꣯ (Sāmavedic accent)	Alt+Shift+5
꣢꣫ (Sāmavedic accent)	Alt+Shift+6
꣣꣬ (Sāmavedic accent)	Alt+Shift+7
. (Vedic accent)	Alt+Shift+8
.. (Vedic accent)	Alt+Shift+9
‸ (Vedic accent)	Alt+Shift+0
ˌ (Vedic accent)	Alt+Shift+-
– (Vedic उदात्तः)	Alt+Shift+=

All other Vedic symbols in Chandas font are encoded in Unicode Private Area and can be found there.

Special Unicode Signs

Unicode sign	*Roman keyboard key*
(U25CC) ◌ Dotted Circle	Alt+Shift+'
Punctuation Space	Alt+Space

(U200D) Zero Width Joiner	Shift+/
(U200C) Zero Width Non-Joiner	Alt+/
(U200B) Zero Width Space	Alt+Shift+/

Additional Roman Signs

Additional character	*Roman keyboard key*
.	;
,	Shift+;
:	Alt+;
;	Alt+Shift+;
-	-
_	_
=	=
+	+
!	Shift+3
?	Shift+4
'	Shift+5
"	Shift+6
<	Shift+7
>	Shift+8
(	Shift+9
)	Shift+0
[	Alt+Shift-[
]	Alt+Shift-]

\	Alt+\
/	Alt+Shift+\
←	Alt+[
→	Alt+]

॥ संयोगपत्त्रम् ॥

Ligature examples

क्क क्क्त क्क्ण क्क्न क्क्म क्क्य क्क्व क्क्ष क्ख क्ग क्घ क्ङ क्च क्च्क क्च्ङ क्च्च क्च्छ क्च्ड क्च्न क्च्ब क्च्म क्च्य क्च्र क्च्ल क्च्व क्छ क्ज क्ज्ञ

क्झ क्ञ क्ञ्न क्ञ्ब क्ञ्म क्ञ्य क्ञ्र क्ञ्ल क्ञ्व क्ट क्ठ क्ड क्ढ क्ण क्त क्त्क क्त्क्म क्त्क्य क्त्ज क्त्ज्ञ क्त्ञ क्त्ञ्म क्त्ञ्य क्त्त क्त्त्म

क्त्त्य क्त्न क्त्न्म क्त्न्य क्त्ब क्त्ब्म क्त्ब्य क्त्म क्त्य क्त्र क्त्र्म क्त्र्य क्त्ल क्त्ल्म क्त्ल्य क्त्व क्त्व्म क्त्व्य क्थ क्द क्ध क्न क्न्म क्न्य क्न्र

क्प क्फ क्ब क्ब्न क्ब्म क्ब्य क्ब्र क्भ क्म क्म्च क्म्ज क्म्ञ क्म्झ क्म्न क्म्ब क्म्र क्म्ल क्म्व क्य क्य्न क्य्र क्र क्र्क क्र्ङ क्र्च क्र्ज क्र्ञ क्र्झ

क्र्ड क्र्न क्र्ब क्र्म क्र्य क्ल्क क्ल्व क्ल क्ल्म क्ल्य क्ळ क्व क्व्न क्व्म क्व्य क्व्र क्श क्ष क्ष्क क्ष्क्ष क्ष्ख क्ष्ग क्ष्घ क्ष्ङ क्ष्च क्ष्छ क्ष्ज क्ष्ञ

क्ष्झ क्ष्ञ क्ष्ञ्न क्ष्ञ्र क्ष्ट क्ष्ठ क्ष्ड क्ष्ढ क्ष्ण क्ष्त क्ष्थ क्ष्द क्ष्ध क्ष्न क्ष्प क्ष्फ क्ष्ब क्ष्भ क्ष्म क्ष्य क्ष्र क्ष्ल क्ष्ळ क्ष्व क्ष्श क्ष्ष क्ष्स क्ष्ह

क्स क्ह

ख्क ख्क्ष ख्ख ख्ग ख्घ ख्ङ ख्च ख्छ ख्ज ख्ज्ञ ख्झ ख्ञ ख्ञ्न ख्ञ्र ख्ट ख्ठ ख्ड ख्ढ ख्ण ख्त ख्थ ख्द ख्ध ख्न ख्प ख्फ ख्ब ख्ब्न

ख्ब्र ख्भ ख्म ख्य ख्र ख्ल ख्ळ ख्व ख्व्न ख्व्र ख्श ख्ष ख्स ख्ह

ग्क ग्क्ष ग्ख ग्ग ग्घ ग्ङ ग्च ग्छ ग्ज ग्ज्ञ ग्झ ग्ञ ग्ट ग्ठ ग्ड ग्ढ ग्ण ग्त ग्थ ग्द ग्ध ग्न ग्प ग्फ ग्ब ग्भ ग्म ग्य

ग्र ग्ल ग्ळ ग्व ग्श ग्ष ग्स ग्ह

घ्क घ्क्ष घ्ख घ्ग घ्घ घ्ङ घ्च घ्छ घ्ज घ्ज्ञ घ्झ घ्ञ घ्ञ्न घ्ञ्ब घ्ञ्र घ्ञ्ल घ्ञ्व घ्ट घ्ठ घ्ड घ्ढ घ्ण घ्त घ्थ घ्द घ्ध घ्न घ्प घ्फ घ्ब

घ्भ घ्म घ्य घ्र घ्ल घ्ळ घ्व घ्श घ्ष घ्स घ्ह

ङ्क ङ्क्क ङ्क्ष्म ङ्क्व ङ्क्छ ङ्क्ञ ङ्क्ट ङ्क्ठ ङ्क्ण ङ्क्त ङ्क्त्य ङ्क्न ङ्क्न्य ङ्त्व ङ्त्व्य ङ्क्थ ङ्क्क ङ्क्प ङ्क्फ ङ्क्ब ङ्क्म ङ्क्य ङ्क्र ङ्क्र्य ङ्क्ल ङ्क्व ङ्क्व्य ङ्क्श ङ्क्ष ङ्क्ष ङ्क्ष्क

ङ्क्ष्ट ङ्क्ष्ठ ङ्क्ष्ण ङ्क्ष्त ङ्क्ष्थ ङ्क्ष्न ङ्क्ष्प ङ्क्ष्फ ङ्क्ष्म ङ्क्ष्य ङ्क्ष्र ङ्क्ष्र्य ङ्क्ष्ल ङ्क्ष्व ङ्क्ष्व्य ङ्क्ष्ष ङ्क्स ङ्ख ङ्ख्ण ङ्ख्न ङ्ख्म ङ्ख्य ङ्ख्र ङ्ख्र्य ङ्ख्ल ङ्ख्व ङ्ग ङ्ज ङ्घ ङ्घ्य

ङ्घ्र ङ्ङ ङ्ज ङ्ज्ञ ङ्ञ ङ्ड ङ्ढ ङ्ण ङ्द ङ्ध ङ्न ङ्ब ङ्भ ङ्म ङ्य ङ्र ङ्र्य ङ्ल ङ्व ङ्व्य ङ्ह ङ्घ ङ्घ्न ङ्घ्ण ङ्घ्न ङ्घ्ब ङ्घ्म ङ्घ्य ङ्घ्र ङ्घ्र्य ङ्घ्ल ङ्घ्व

ङ्ङ ङ्ङ्य ङ्ङ्र ङ्ङ्र्य ङ्ङ्व ङ्व ङ्क्क ङ्ग्ग ङ्च्च ङ्छ्छ ङ्ज्ञ ङ्ट ङ्ठ ङ्ण ङ्त ङ्थ ङ्न ङ्प ङ्फ ङ्ब ङ्म ङ्य ङ्र ङ्र्य ङ्ल ङ्व ङ्व्य ङ्श ङ्ष ङ्स ङ्छ ङ्छ्म

ङ्क्र ङ्क्र्य ङ्क्व ङ्ख ङ्ख्न ङ्ख्य ङ्ग ङ्ग्ज ङ्ग्न ङ्घ्न ङ्ङ ङ्ङ ङ्ङ्य ङ्ङ्र ङ्ङ्व ङ्ड ङ्ढ ङ्ण ङ्द ङ्ध्य ङ्न ङ्ब ङ्भ ङ्म ङ्य ङ्र ङ्र्य ङ्ल ङ्व ङ्श ङ्ष

ङ्स ङ्ह ङ्क्ष ङ्क्ष्य ङ्क्ष्र ङ्क्ष्र्य ङ्त ङ्क्त ङ्ख्व ङ्ग ङ्घ ङ्ङ ङ्च ङ्छ ङ्ज ङ्ज्ञ ङ्झ ङ्ञ ङ्ट ङ्ठ ङ्ड ङ्ढ ङ्ण ङ्त ङ्थ ङ्द ङ्ध ङ्न ङ्प ङ्फ ङ्ब

ङ्भ ङ्म ङ्य ङ्र ङ्र्य ङ्ल ङ्व ङ्श ङ्ष ङ्स ङ्ह ङ्ट ङ्ट्य ङ्ट्र ङ्ट्र्य ङ्ट्व ङ्ठ ङ्ठ्य ङ्ठ्र ङ्ठ्र्य ङ्ठ्व ङ्ड ङ्ड्य ङ्ड्र ङ्ड्र्य ङ्ड्व ङ्ढ ङ्ढ्य ङ्ढ्र ङ्ढ्र्य ङ्ढ्व ङ्ण

ङ्ण्ढ्व ङ्ण्ज ङ्ण्ट ङ्ण्ठ ङ्ण्ड ङ्ण्ढ ङ्ण्ण ङ्ण्न ङ्ण्म ङ्ण्य ङ्ण्र ङ्ण्र्य ङ्ण्ल ङ्ण्व ङ्ण्ष ङ्त ङ्त्क ङ्त्क्ष ङ्त्ख ङ्त्ड ङ्त्च ङ्त्छ ङ्त्ट ङ्त्ठ ङ्त्ण ङ्त्त ङ्त्थ ङ्त्न ङ्त्प ङ्त्फ ङ्त्म ङ्त्य ङ्त्र

ङ्त्र्य ङ्त्ल ङ्त्व ङ्त्ल्य ङ्त्श ङ्त्ष ङ्त्स ङ्थ ङ्थ्न ङ्थ्ब ङ्थ्य ङ्थ्र ङ्थ्र्य ङ्थ्व ङ्द ङ्द्ग ङ्द्घ ङ्द्द ङ्द्ध ङ्द्न ङ्द्ब ङ्द्भ ङ्द्म ङ्द्य ङ्द्र ङ्द्र्य ङ्द्व ङ्द्व्य ङ्ध ङ्ध्न ङ्ध्ब ङ्ध्म ङ्ध्य

ङ्ध्र ङ्ध्र्य ङ्ध्ल ङ्ध्व ङ्न ङ्न्क ङ्न्क्ष ङ्न्ख ङ्न्ग ङ्न्घ ङ्न्ङ ङ्न्च ङ्न्छ ङ्न्ज ङ्न्ज्ञ ङ्न्झ ङ्न्ञ ङ्न्ट ङ्न्ठ ङ्न्ड ङ्न्ढ ङ्न्ण ङ्न्त ङ्न्थ ङ्न्द ङ्न्ध ङ्न्न ङ्न्प ङ्न्फ ङ्न्ब ङ्न्भ ङ्न्म ङ्न्य

ङ्न्र ङ्न्र्य ङ्न्ल ङ्न्व ङ्न्ल्य ङ्न्श ङ्न्ष ङ्न्स ङ्न्ह ङ्प ङ्प्क ङ्प्ङ ङ्प्च ङ्प्ट ङ्प्ठ ङ्प्त ङ्प्न ङ्प्म ङ्प्य ङ्प्र ङ्प्र्य ङ्प्ल ङ्प्व ङ्प्ल्य ङ्फ ङ्फ्र ङ्फ्म ङ्फ्य ङ्फ्र ङ्फ्र्य ङ्फ्ल ङ्फ्ल्य ङ्ब

ङ्ब्ज ङ्ब्ध ङ्ब्ङ ङ्ब्ज ङ्ब्ज्ञ ङ्ब्झ ङ्ब्ञ ङ्ब्ड ङ्ब्ढ ङ्ब्ण ङ्ब्द ङ्ब्ध ङ्ब्न ङ्ब्ब ङ्ब्भ ङ्ब्म ङ्ब्य ङ्ब्र ङ्ब्र्य ङ्ब्ल ङ्ब्व ङ्ब्श ङ्ब्ष ङ्ब्स ङ्ब्ह ङ्भ ङ्भ्ण ङ्भ्न ङ्भ्न ङ्भ्ब ङ्भ्म ङ्भ्य ङ्भ्र

ङ्भ्र्य ङ्भ्ल ङ्भ्व ङ्भ्ल्य ङ्म ङ्म्च ङ्म्ज ङ्म्ज्ञ ङ्म्ञ ङ्म्न ङ्म्ब ङ्म्भ ङ्म्य ङ्म्र ङ्म्र्य ङ्म्ल ङ्म्व ङ्य ङ्य्न ङ्य्य ङ्य्र ङ्य्र्य ङ्य्व ङ्र ङ्ल्म ङ्ल्प ङ्ल्व ङ्ल ङ्ल्म

ङ्ल्य ङ्ल्ल ङ्ल्ल्य ङ्ल्व ङ्ळ ङ्व ङ्व्ग ङ्व्घ ङ्व्ङ ङ्व्ज ङ्व्ज्ञ ङ्व्झ ङ्व्ञ ङ्व्ड ङ्व्ढ ङ्व्ण ङ्व्द ङ्व्ध ङ्व्न ङ्व्ब ङ्व्भ ङ्व्म ङ्व्य ङ्व्र ङ्व्र्य ङ्व्ल ङ्व्व ङ्व्श ङ्व्ष ङ्व्स ङ्व्ह ङ्श ङ्श्क

ङ्श्क्ष ङ्श्ङ ङ्श्च ङ्श्छ ङ्श्ज ङ्श्ट ङ्श्ठ ङ्श्ण ङ्श्त ङ्श्थ ङ्श्न ङ्श्प ङ्श्फ ङ्श्म ङ्श्य ङ्श्र ङ्श्र्य ङ्श्ल ङ्श्व ङ्श्व्य ङ्श्श ङ्श्ष ङ्ष ङ्ष्क ङ्ष्ङ ङ्ष्च ङ्ष्ट ङ्ष्ठ ङ्ष्त ङ्ष्न ङ्ष्म ङ्ष्य

ङ्ष्र ङ्ष्र्य ङ्ष्ल ङ्ष्व ङ्ष्ल्य ङ्स ङ्स्क ङ्स्क्ष ङ्स्ख ङ्स्छ ङ्स्ट ङ्स्ठ ङ्स्ण ङ्स्त ङ्स्थ ङ्स्न ङ्स्प ङ्स्फ ङ्स्ब ङ्स्म ङ्स्य ङ्स्र ङ्स्र्य ङ्स्ल ङ्स्व ङ्स्स ङ्ह ङ्ह्ण ङ्ह्न ङ्ह्ब ङ्ह्म ङ्ह्य

ङ्ह्र ङ्ह्र्य ङ्ह्ल ङ्ह्व

च्क च्क्व च्क्ज च्क्ञ च्क्त च्क्न च्क्म च्क्य च्क्र च्क्ल च्क्ष च्ख च्ग च्घ च्ङ च्च च्छ्क च्छ्ङ च्च्च च्च्छ च्च्न च्च्ब च्छ्म च्छ्य च्च्र च्छ्ल च्च्व च्छ्श च्छ

च्ज च्ज्ञ च्झ च्ञ च्ञ्न च्ञ्ब च्ञ्र च्ञ्ल च्ञ्व च्ट च्ठ च्ड च्ढ च्ण च्त च्थ च्द च्ध च्न च्प च्फ च्ब च्ब्न च्ब्र च्भ च्म च्य च्र च्र्क च्र्ङ च्र्च

च्र्ज च्र्ज्ञ च्र्ञ च्र्ड च्र्न च्र्ब च्र्ल च्र्व च्ल च्ळ च्व च्व्न च्व्र च्श च्ष च्स च्ह

छ्क छ्क्ष छ्ख छ्ग छ्घ छ्ङ छ्ङ्य छ्ङ्र छ्ङ्व छ्च छ्छ छ्छ्य छ्छ्र छ्छ्व छ्ज छ्ज्ञ छ्झ छ्ञ छ्ञ्न छ्ञ्र छ्ट छ्ट्य छ्ट्र छ्ट्व छ्ठ छ्ड छ्ड्य छ्ड्र छ्ड्व छ्ढ छ्ढ्य छ्ढ्र छ्ढ्व छ्ण छ्ण्य

छ्ण्र छ्ण्व छ्त छ्त्य छ्त्र छ्त्व छ्थ छ्द छ्ध छ्न छ्न्य छ्न्र छ्प छ्प्य छ्प्र छ्फ छ्ब छ्ब्न छ्ब्य छ्ब्र छ्ब्ल छ्भ छ्भ्य छ्म्च छ्म्ज छ्म्ज्ञ छ्म्ञ छ्म्न छ्म्ब छ्म्म छ्म्र

छ्म्ल छ्म्व छ्य छ्य्न छ्य्य छ्र छ्र्म छ्र्य छ्र्व छ्ल छ्ल्म छ्ल्य छ्ल्व छ्ळ छ्व छ्व्न छ्व्य छ्व्र छ्व्ल छ्श छ्श्च छ्श्ज छ्श्न छ्श्म छ्श्य छ्श्र छ्श्ल छ्श्व छ्श्श छ्ष छ्ष्य छ्ष्र

छ्स छ्स्य छ्स्र छ्ह

ज्क ज्क्ष ज्ख ज्ग ज्घ ज्ङ ज्च ज्छ ज्ज ज्ज्ञ ज्ज्र ज्झ्ब ज्झ्भ ज्झ्म ज्झ्र ज्झ्ल ज्झ्व ज्झ्श ज्झ ज्ञ ज्ञ्क ज्ञ्क्ष ज्ञ्ख ज्ञ्ग ज्ञ्घ ज्ञ्ङ ज्ञ्च

ज्ञ्छ ज्ञ्ज ज्ञ्ज्ञ ज्ञ्झ ज्ञ्ञ ज्ञ्ञ्ञ ज्ञ्ञ्ब ज्ञ्ञ्र ज्ञ्ञ्ल ज्ञ्ञ्व ज्ञ्ट ज्ञ्ठ ज्ञ्ड ज्ञ्ढ ज्ञ्ण ज्ञ्त ज्ञ्थ ज्ञ्द ज्ञ्ध ज्ञ्न ज्ञ्प ज्ञ्फ ज्ञ्ब ज्ञ्भ ज्ञ्म ज्ञ्य ज्ञ्र ज्ञ्र्च ज्ञ्र्ज

ज्ञ्र्ज्ञ ज्ञ्र्ञ ज्ञ्र्न ज्ञ्ल ज्ञ्ळ ज्ञ्व ज्ञ्श ज्ञ्ष ज्ञ्स ज्ञ्ह ज्ट ज्ठ ज्ड ज्ढ ज्ण ज्त ज्थ ज्द ज्ध ज्न ज्प ज्फ ज्ब ज्ब्न ज्ब्र ज्भ ज्म ज्य

ज्र ज्र्ज ज्र्ज्ञ ज्र्ञ ज्र्न ज्र्ल ज्ल ज्ळ ज्व ज्व्न ज्व्र ज्श ज्ष ज्स ज्ह

झ्क झ्क्ष झ्ख झ्ग झ्घ झ्ङ झ्च झ्छ झ्ज झ्ज्ञ झ्झ झ्ञ झ्ञ्न झ्ञ्र झ्ट झ्ठ झ्ड झ्ढ झ्ण झ्त झ्थ झ्द झ्ध झ्न झ्प झ्फ

झ्ब झ्भ झ्म झ्य झ्र झ्ल झ्ळ झ्व झ्श झ्ष झ्स झ्ह

ञ्क ञ्क्त ञ्क्र ञ्क्ष ञ्ख ञ्ग ञ्घ ञ्ङ ञ्च ञ्च्क ञ्च्ङ ञ्च्घ ञ्च्ञ ञ्च्न ञ्च्ब ञ्च्ब ञ्च्भ ञ्च्म ञ्च्य ञ्च्र ञ्च्ल ञ्च्व ञ्च्श ञ्छ ञ्ज ञ्ज्ञ ञ्ज्ञ्र ञ्ज्ब

ञ्ज्भ ञ्ज्म ञ्ज्र ञ्ज्ल ञ्ज्व ञ्ज्श ञ्झ ञ्ञ ञ्ञ्न ञ्ञ्ब ञ्ञ्र ञ्ञ्ल ञ्ञ्व ञ्ट ञ्ठ ञ्ड ञ्ढ ञ्ण ञ्त ञ्थ ञ्द ञ्ध ञ्न ञ्प ञ्फ ञ्ब ञ्भ ञ्म

ञ्य ञ्र ञ्र्च ञ्र्ज ञ्र्ज्ञ ञ्र्ञ ञ्र्न ञ्ल ञ्ळ ञ्व ञ्श ञ्ष ञ्स ञ्ह

ङ्क ङ्क्क ङ्क्ख ङ्क्छ ङ्क्ज ङ्क्ट ङ्क्ठ ङ्क्ण ङ्क्त ङ्क्थ ङ्क्न ङ्क्प ङ्क्फ ङ्क्ब ङ्क्म ङ्क्य ङ्क्र ङ्क्र्य ङ्क्ल ङ्क्व ङ्क्व्य ङ्क्श ङ्क्ष ङ्क्ष ङ्क्ष्क ङ्क्ष्ट ङ्क्ष्ठ ङ्क्ष्ण ङ्क्ष्त ङ्क्ष्थ ङ्क्ष्न

ङ्क्ष्प ङ्क्ष्फ ङ्क्ष्म ङ्क्ष्य ङ्क्ष्र ङ्क्ष्ल ङ्क्ष्व ङ्क्ष्ष ङ्क्स ङ्ख ङ्ग ङ्घ ङ ङ्य ङ्र ङ्व ङ्च ङ्च्क ङ्च्ङ ङ्च्च ङ्च्छ ङ्च्ञ ङ्च्ट ङ्च्ठ ङ्च्ण ङ्च्त ङ्च्थ ङ्च्न ङ्च्प ङ्च्फ ङ्च्ब ङ्च्म

ङ्च्य ङ्च्र ङ्च्र्य ङ्च्ल ङ्च्व ङ्च्श ङ्च्ष ङ्च्स ङ्छ ङ्छ्य ङ्छ्र ङ्छ्व ङ्ज ङ्ज्ञ ङ्झ ङ्ञ ङ्ञ्क ङ्ञ्ख ङ्ञ्ङ ङ्ञ्च ङ्ञ्छ ङ्ञ्ज ङ्ञ्ट ङ्ञ्ठ ङ्ञ्ण ङ्ञ्त ङ्ञ्थ ङ्ञ्न ङ्ञ्प ङ्ञ्फ ङ्ञ्ब ङ्ञ्म

ङ्ञ्य ङ्ञ्र ङ्ञ्र्य ङ्ञ्ल ङ्ञ्व ङ्ञ्श ङ्ञ्ष ङ्ञ्स ङ्ट ङ्ट्य ङ्ट्र ङ्ट्व ङ्ठ ङ्ठ्य ङ्ठ्र ङ्ठ्व ङ्ड ङ्ड्य ङ्ड्र ङ्ड्व ङ्ढ ङ्ढ्य ङ्ढ्र ङ्ढ्व ङ्ण ङ्ण्ड ङ्ण्ट ङ्ण्ठ ङ्ण्ण ङ्ण्न ङ्ण्म ङ्ण्य ङ्ण्र ङ्ण्र्य

ङ्ण्ल ङ्ण्व ङ्त ङ्त्क ङ्त्ख ङ्त्ङ ङ्त्च ङ्त्छ ङ्त्ट ङ्त्ठ ङ्त्ण ङ्त्त ङ्त्थ ङ्त्न ङ्त्प ङ्त्फ ङ्त्ब ङ्त्म ङ्त्य ङ्त्र ङ्त्र्य ङ्त्ल ङ्त्व ङ्त्व्य ङ्त्श ङ्त्व ङ्त्स ङ्थ ङ्थ्न ङ्थ्ब ङ्थ्य ङ्थ्र ङ्थ्र्य

ङ्थ्व ङ्द ङ्ध ङ्न ङ्न्क ङ्न्ख ङ्न्ङ ङ्न्च ङ्न्छ ङ्न्ज ङ्न्ट ङ्न्ठ ङ्न्ण ङ्न्त ङ्न्थ ङ्न्न ङ्न्प ङ्न्फ ङ्न्म ङ्न्य ङ्न्र ङ्न्र्य ङ्न्ल ङ्न्व ङ्न्व्य ङ्न्श ङ्न्ष ङ्न्स ङ्प ङ्प्क ङ्प्ङ ङ्प्ट ङ्प्ठ ङ्प्त

ङ्प्न ङ्प्म ङ्प्य ङ्प्र ङ्प्र्य ङ्प्व ङ्फ ङ्फ्न ङ्फ्म ङ्फ्य ङ्फ्र ङ्फ्र्य ङ्फ्ल ङ्फ्ल्य ङ्ब ङ्ब्न ङ्ब्य ङ्ब्र ङ्ब्ल ङ्भ्न ङ्भ ङ्म्च ङ्म्ज ङ्म्ज्ञ ङ्म्झ ङ्म्न ङ्म्ब ङ्म्म ङ्म्य ङ्म्र ङ्म्र्य

ङ्म्ल ङ्म्व ङ्य ङ्य्न ङ्य्र ङ्य्र्य ङ्र ङ्र्म ङ्र्य ङ्व ङ्ल ङ्ल्म ङ्ल्य ङ्ल्न ङ्ल्र्य ङ्ळ ङ्व ङ्व्न ङ्व्य ङ्व्र ङ्व्र्य ङ्व्ल ङ्श ङ्श्क ङ्श्ङ ङ्श्च ङ्श्छ ङ्श्ज ङ्श्ट ङ्श्ठ ङ्श्ण ङ्श्त

ङ्श्थ ङ्श्न ङ्श्प ङ्श्फ ङ्श्म ङ्श्य ङ्श्र ङ्श्र्य ङ्श्ल ङ्श्व ङ्श्व्य ङ्श्श ङ्श्ष ङ्ष ङ्ष्क ङ्ष्ङ ङ्ष्ट ङ्ष्ठ ङ्ष्त ङ्ष्न ङ्ष्म ङ्ष्य ङ्ष्र ङ्ष्र्य ङ्ष्व ङ्स ङ्स्क ङ्स्क्ष ङ्स्च ङ्स्छ ङ्स्ट ङ्स्ठ

ङ्स्ण ङ्स्त ङ्स्थ ङ्स्न ङ्स्प ङ्स्फ ङ्स्ब ङ्स्म ङ्स्य ङ्स्र ङ्स्र्य ङ्स्ल ङ्स्व ङ्स्स ङ्ह ङ्ह्य ङ्ह्र ड्क ड्क्ष ड्ख ड्ग ड्घ ड्ङ ड्ङ्य ड्ङ्र ड्ङ्व ड्च ड्छ ड्ज ड्ज्ञ ड्झ ड्ञ ड्ञ्र ड्ञ्र ड्ट

ड्ट्य ड्ट्र ड्ट्व ड्ठ ड्ठ्य ड्ठ्र ड्ठ्व ड्ड ड्ड्य ड्ड्र ड्ड्व ड्ढ ड्ढ्य ड्ढ्र ड्ढ्व ड्ण ड्ण्य ड्ण्र ड्ण्व ड्त ड्थ ड्द ड्ध ड्न ड्न्न ड्न्य ड्न्र ड्न्व ड्प ड्प्य ड्प्र ड्फ ड्ब ड्ब्न ड्ब्य ड्ब्र

ठ्ल ठ्भ्न ठ्भ ठ्म्च ठ्म्ज ठ्म्ज्ञ ठ्म्ञ ठ्म्न ठ्म्ब ठ्म्भ ठ्म्य ठ्म्र ठ्म्ल ठ्म्व ठ्य ठ्य्न ठ्य्य ठ्र ठ्र्भ ठ्र्य ठ्र्व ठ्ल ठ्ल्भ ठ्ल्य ठ्ल्र ठ्ळ ठ्व ठ्व्न ठ्व्य ठ्व्र

ठ्व्ल ठ्श ठ्श्य ठ्श्र ठ्ष ठ्ष्य ठ्ष्र ठ्स ठ्स्य ठ्स्र ठ्ह ठ्ह्य ठ्ह्र

ड्क ड्क्ष ड्ख ड्ग ड्ग्ग ड्ग्घ ड्ङ ड्ङ्ग ड्ज्ञ ड्ञ ड्ड ड्ढ ड्ण ड्द ड्ध ड्न ड्ब ड्भ ड्म ड्य ड्र ड्य्र ड्ल ड्व ड्व्य ड्ह ड्घ ड्घ्र ड्ङ्क ड्ङ्ग ड्ङ्ख ड्ङ्म ड्ङ्य

ड्ङ्र ड्ङ्य्र ड्ङ्ल ड्ङ्व ड्ङ ड्ङ्य ड्ङ्र ड्ङ्व ड्च ड्छ ड्ज ड्ज्ञ ड्ज्य ड्ज्ङ ड्ज्ज ड्ज्ज्ञ ड्ज्झ ड्झ ड्झ्न ड्झ्य ड्झ्र ड्झ्व ड्ञ्ड ड्ञ्ढ ड्ञ्ण ड्ञ्द ड्ञ्ध ड्ञ्न ड्ञ्ब ड्ञ्भ ड्ञ्म ड्ञ्य

ड्ञ्र ड्ञ्य्र ड्ञ्ल ड्ञ्व ड्ञ्श ड्ञ्ष ड्ञ्स ड्ञ्ह ड्झ ड्झ्य ड्झ्र ड्झ्य्र ड्ञ ड्ञ्क ड्ञ्ख ड्ञ्ग ड्ञ्घ ड्ञ्ङ ड्ञ्च ड्ञ्छ ड्ञ्ज ड्ञ्ज्ञ ड्ञ्झ ड्ञ्ञ ड्ञ्ट ड्ञ्ठ ड्ञ्ड ड्ञ्ढ ड्ञ्ण ड्ञ्त ड्ञ्थ

ड्ञ्द ड्ञ्ध ड्ञ्न ड्ञ्प ड्ञ्फ ड्ञ्ब ड्ञ्भ ड्ञ्म ड्ञ्य ड्ञ्र ड्ञ्य्र ड्ञ्ल ड्ञ्व ड्ञ्श ड्ञ्ष ड्ञ्स ड्ञ्ह ड्ट ड्ट्म ड्ट्र ड्ट्व ड्ठ ड्ठ्म ड्ठ्र ड्ठ्व ड्ड ड्ड्य ड्ड्र ड्ड्य्र ड्ड्व ड्ढ ड्ढ्म ड्ढ्र

ड्ढ्म्र ड्ढ्व ड्ण ड्ण्न ड्ण्ण ड्ण्ड ड्ण्ढ ड्ण्ण ड्ण्न ड्ण्म ड्ण्य ड्ण्र ड्ण्य्र ड्ण्ल ड्ण्व ड्ण्व ड्त ड्त्ब ड्त्य ड्त्र ड्त्व ड्थ ड्द ड्द्र ड्द्व ड्द ड्द्ध ड्द्न ड्द्ब ड्द्भ ड्द्म ड्द्य ड्द्र ड्द्य्र ड्द्व

ड्द्म ड्द्य ड्द्व ड्ध ड्ध्म ड्ध्य ड्ध्र ड्ध्य्र ड्ध्ल ड्ध्व ड्न ड्न्क ड्न्ख ड्न्ग ड्न्घ ड्न्ङ ड्न्च ड्न्छ ड्न्ज ड्न्ज्ञ ड्न्झ ड्न्ञ ड्न्ट ड्न्ठ ड्न्ड ड्न्ढ ड्न्ण ड्न्त ड्न्थ ड्न्द ड्न्ध ड्न्न ड्न्प ड्न्फ

ड्न्ब ड्न्भ ड्न्म ड्न्य ड्न्र ड्न्य्र ड्न्ल ड्न्व ड्न्व्य ड्न्श ड्न्ष ड्न्स ड्न्ह ड्प ड्प्य ड्प्र ड्प्व ड्फ ड्ब ड्ब्ज ड्ब्ज्ञ ड्ब्ञ ड्ब्ड ड्ब्ढ ड्ब्ण ड्ब्द ड्ब्ध ड्ब्न ड्ब्ब ड्ब्भ ड्ब्म

ड्ब्म ड्ब्य ड्ब्र ड्ब्य्र ड्ब्ल ड्ब्व ड्ब्श ड्ब्ष ड्ब्स ड्ब्ह ड्भ ड्भ्न ड्भ्भ ड्भ्म ड्भ्य ड्भ्र ड्भ्य्र ड्भ्ल ड्भ्व ड्भ्व्य ड्म ड्म्च ड्म्ज ड्म्ज्ञ ड्म्ञ ड्म्न ड्म्ब ड्म्भ ड्म्य ड्म्र

ड्म्य्र ड्म्ल ड्म्व ड्य ड्य्न ड्य्य ड्य्न ड्य्य ड्व्य ड्र ड्र्भ ड्र्य ड्र्व ड्ल ड्ल्भ ड्ल्य ड्ल्र ड्ल्य्र ड्ल्व ड्ळ ड्व ड्व्ज ड्व्ज्ञ ड्व्ञ ड्व्ड ड्व्ढ ड्व्ण ड्व्द ड्व्ध ड्व्न ड्व्ब

ड्व्भ ड्व्म ड्व्य ड्व्र ड्व्य्र ड्व्ल ड्व्व ड्व्श ड्व्ष ड्व्स ड्व्ह ड्श ड्श्न ड्श्भ ड्श्म ड्श्य ड्श्य ड्श्र ड्श्ल ड्श्व ड्ष ड्ष्य ड्ष्र ड्ष्व ड्स ड्स्य ड्स्र ड्ह ड्ह्न ड्ह्म ड्ह्व

ड्ह्म ड्ह्य ड्ह्र ड्ह्य्र ड्ह्ल ड्ह्व

ढ्क ढ्क्ष ढ्ख ढ्ग ढ्घ ढ्ङ ढ्ङ्म ढ्ङ्र ढ्ङ्व ढ्च ढ्छ ढ्ज ढ्ज्ञ ढ्झ ढ्ञ ढ्ञ्ज ढ्ञ्र ढ्ट ढ्ट्म ढ्ट्र ढ्ट्व ढ्ठ ढ्ठ्म ढ्ठ्र ढ्ठ्व ढ्ड ढ्ड्म ढ्ड्र ढ्ड्व ढ्ढ ढ्ढ्म ढ्ढ्र ढ्ढ्व ढ्ण ढ्ण्य ढ्ण्र ढ्ण्व ढ्त

ढ्थ ढ्द ढ्ध ढ्न ढ्न्न ढ्न्य ढ्न्र ढ्न्व ढ्प ढ्प्य ढ्प्र ढ्फ ढ्ब ढ्ब्न ढ्ब्म ढ्ब्र ढ्ब्ल ढ्भ ढ्भ्न ढ्म्च ढ्म्ज ढ्म्ज्ञ ढ्म्ञ ढ्म्न ढ्म्ब ढ्म्भ ढ्म्य ढ्म्र ढ्म्ल ढ्म्व ढ्य ढ्य्न

ढ्य्य ढ्र ढ्र्भ ढ्र्य ढ्र्व ढ्ल ढ्ल्भ ढ्ल्म ढ्ल्र ढ्ळ ढ्व ढ्व्न ढ्व्म ढ्व्र ढ्व्ल ढ्श ढ्श्य ढ्श्र ढ्ष ढ्ष्य ढ्ष्र ढ्स ढ्स्य ढ्स्र ढ्ह ढ्ह्य ढ्ह्र

ण्क ण्क्ष ण्ख ण्ग ण्घ ण्ङ ण्च ण्छ ण्ज ण्ज्ञ ण्झ ण्ञ ण्ट ण्ठ ण्ड ण्ढ ण्ण ण्त ण्थ ण्द ण्ध ण्न ण्प ण्फ ण्ब ण्भ

ण्म ण्य ण्र ण्ल ण्ळ ण्व ण्श ण्ष ण्स ण्ह

त्क त्क्क त्क्व त्क्त त्क्र त्क्ष त्ख त्ग त्घ त्ङ त्च त्च्क त्च्न त्च्ब त्च्भ त्च्म त्च्य त्च्र त्च्व त्च्श त्छ त्ज त्ज्ञ त्झ त्ञ त्ञ्न त्ञ्ब त्ञ्र

त्ञ्ल त्ञ्व त्ट त्ठ त्ड त्ढ त्ण त्त त्त्च त्त्ज त्त्ञ त्त्ज त्त्त त्त्न त्त्ब त्त्र त्त्ल त्त्व त्थ त्द त्ध त्न त्प त्फ त्ब त्भ त्म त्य त्र त्ल

त्ळ त्व त्श त्ष त्स त्ह

थ्क थ्क्ष थ्ख थ्ग थ्घ थ्ङ थ्च थ्छ थ्ज थ्ज्ञ थ्झ थ्ञ थ्ञ्न थ्ञ्र थ्ट थ्ठ थ्ड थ्ढ थ्ण थ्त थ्थ थ्द थ्ध थ्न थ्प थ्फ थ्ब थ्भ थ्म थ्य

थ्र थ्ल थ्ळ थ्व थ्श थ्ष थ्स थ्ह

द्क द्क्ष द्ख द्ग द्ग्ग द्ग्ध द्ग्र द्ग्र्य द्घ द्घ्न द्घ्य द्घ्र द्घ्र्य द्ग्ल द्घ द्घ्य द्घ्ह द्ङ द्ङ्ग द्ङ्घ द्ङ्र द्ङ्य द्ङ्घ द्ङ्न द्च द्च्र द्च्य द्च्ल द्छ द्छ्य द्ङ द्ङ्य द्ङ्र द्ङ्व

द्ज द्ज्ञ द्ज्ज द्ज्र द्ज्र्ज द्ज्ङ द्ज्ज द्ज्झ द्ज्ञ द्ज्ञ द्ज्ड द्ज्ढ द्ज्ण द्ज्द द्ज्द्र द्ज्ञ द्ज्ब द्ज्र द्ज्म द्ज्य द्ज्र्य द्ज्ल द्ज्व द्ज्ह द्झ द्ञ द्ट द्ट्य द्ट्र द्ट्व द्ठ द्ठ्य द्ठ्र

द्ठ्व द्ड द्ड्य द्ड्र द्ड्व द्ढ द्ढ्य द्ढ्र द्ढ्व द्ण द्ण्य द्त्र द्त द्त्य द्त्र द्थ द्द द्द्र द्द्ग द्द्घ द्द्र द्द्य द्द्ध द्द्ध्र द्द्म द्द्य द्द्र द्द्य द्द्ल द्द्व द्द्य द्ध द्ध्र द्ध्य द्ध्व द्ध्न

द्ध्य द्ध्र द्ध्र्य द्ध्ल द्ध्व द्ध्व्य द्न द्न्र द्न्व द्न्ङ द्न्द द्न्ध द्न्र द्न्ड द्न्ढ द्न्म द्न्य द्न्र द्न्र्य द्न्ल द्न्व द्न्व्य द्प द्प्र द्फ द्ब द्ब्र द्ब्य द्ब्म द्ब्य द्ब्र द्ब्र्य द्ब्ल द्ब्र

द्भ द्भ्य द्भ द्भ्म द्भ्य द्भ्र द्भ्र्य द्भ्ल द्भ्व द्भ्व्य द्म द्म्च द्म्ज द्म्ज्ञ द्म्ञ द्म्न द्म्ब द्म्र द्म्ल द्म्व द्य द्य्र द्य्य द्र द्र्व द्र्म द्र्य द्र्ढ द्र्व्य द्ल द्ळ द्व

द्व द्व्य द्व्म द्व्य द्व्र द्व्र्य द्व्ल द्श द्ष द्ष्र द्स द्ह द्ह्य द्ह्र

ध्क ध्क्ष ध्ख ध्ग ध्घ ध्ङ ध्च ध्छ ध्ज ध्ज्ञ ध्झ ध्ञ ध्ञ्न ध्ञ्ब ध्ञ्र ध्ञ्ल ध्ञ्व ध्ट ध्ठ ध्ड ध्ढ ध्ण ध्त ध्थ ध्द ध्ध ध्न ध्प ध्फ ध्ब

ध्भ ध्म ध्य ध्र ध्ल ध्ळ ध्व ध्श ध्ष ध्स ध्ह

न्क न्क्क न्क्व न्क्त न्क्र न्क्ष न्क्ष न्ख न्ग न्घ न्ङ ञ्च ञ्च्क ञ्च्न ञ्च्ब ञ्च्भ ञ्च्म ञ्च्य ञ्च्र ञ्च्व ञ्च्श न्छ ञ्ज ञ्ज्ञ ञ्ज्ञ ञ्ज्न ञ्ज्ब ञ्ज्भ ञ्ज्म

ञ्ज्र ञ्ज्ल ञ्ज्व ञ्ज्श न्झ ञ्ञ ञ्ञ्न ञ्ञ्ब ञ्ञ्र ञ्ञ्ल ञ्ञ्व न्ट न्ठ न्ड न्ढ न्ण न्त न्त्च न्त्ज न्त्ञ न्त्ज न्त्त न्त्न न्त्ब न्त्र न्त्ल न्त्व न्थ न्द

न्ध न्न न्प न्फ न्ब न्भ न्म न्य न्र न्न्च न्न्ज न्न्ञ न्न्ज न्न्न न्ल न्ळ न्व न्श न्ष न्स न्ह

प्क प्क्व प्क्क प्क्त ष्क प्क्र प्क्ष प्ख प्ग प्घ प्ङ प्च प्च्क प्च्न प्च्ब प्च्ज प्च्र प्च्व प्च्श प्छ प्ज प्ज्ञ प्झ प्ञ प्ञ्न प्ञ्ब प्ञ्र प्ञ्ल प्ञ्व प्ट

प्ट्क प्ट्च प्ट्छ प्ट्ज प्ट्ट प्ट्ठ प्ट्ण प्ट्त प्ट्न प्ट्प प्ट्फ प्ट्ब प्ट्म प्ट्य प्ट्र प्ट्ल प्ट्व प्ट्ष प्ठ प्ठ्क प्ठ्च प्ठ्छ प्ठ्ज प्ठ्ट प्ठ्ठ प्ठ्ण प्ठ्त प्ठ्न प्ठ्प प्ठ्फ प्ठ्ब प्ठ्म प्ठ्य प्ठ्र प्ठ्ल प्ठ्व प्ठ्ष

प्ड प्ढ प्ढ्य प्ढ्र प्ढ्व प्ण प्त प्स प्त्न प्त्ब प्त्र प्त्व प्थ प्द प्ध प्न प्प प्फ प्ब प्भ प्म प्य प्र प्ल प्ळ प्व प्श प्ष प्स प्ह प्फ्क

फ्क्ष फ्ख फ्ग फ्घ फ्ङ फ्च फ्छ फ्ज फ्ज्ञ फ्झ फ्ञ फ्ञ्ज फ्ञ्ब फ्ञ्र फ्ञ्ल फ्ञ्व फ्ट फ्ठ फ्ड फ्ढ फ्ण फ्त फ्थ फ्द फ्ध फ्न

फ्न्म फ्न्य फ्न्र फ्प फ्फ फ्ब फ्ब्न फ्ब्म फ्ब्य फ्ब्र फ्भ फ्म फ्म्च फ्म्ज फ्म्ज्ञ फ्म्ञ फ्म्न फ्म्ब फ्म्र फ्म्ल फ्म्व फ्य फ्य्न फ्य्र फ्य्ल फ्र फ्क्क

फ्ड्ङ फ्ड्च फ्ड्ज फ्ड्ज्ञ फ्ड्ञ फ्ड्ड फ्ड्न फ्ड्ब फ्र्म फ्र्य फ्ल्क फ्ल्व फ्ल फ्ल्न फ्ल्य फ्ळ फ्व फ्व्न फ्व्म फ्व्य फ्व्र फ्श फ्ष फ्स फ्ह

ब्क ब्क्ष ब्ख ब्ग ब्घ ब्ङ ब्च ब्छ ब्ज ब्ज्ञ ब्ञ ब्ञ्ज ब्ञ्ब ब्ञ्र ब्ञ्व ब्ञ्श ब्झ ब्ञ ब्ञ्न ब्ञ्र ब्ट ब्ठ ब्ड ब्ढ ब्ण ब्त ब्थ ब्द ब्ध ब्न ब्प ब्फ ब्ब

ब्ब्न ब्ब्र ब्भ ब्म ब्य ब्र ब्र्च ब्र्ज ब्र्ज्ञ ब्र्ञ ब्र्न ब्र्ब ब्र्व ब्ल ब्ळ ब्व ब्व्न ब्व्र ब्श ब्ष ब्स ब्ह

भ्क भ्क्ष भ्ख भ्ग भ्घ भ्ङ भ्च भ्छ भ्ज भ्ज्ञ भ्झ भ्ञ भ्ञ्ज भ्ञ्ब भ्ञ्र भ्ञ्ल भ्ञ्व भ्ट भ्ठ भ्ड भ्ढ भ्ण भ्त भ्थ भ्द भ्ध भ्न भ्प भ्फ

भ्ब भ्भ भ्म भ्य भ्र भ्ल भ्ळ भ्व भ्श भ्ष भ्स भ्ह म्क म्क्ङ म्क्क म्क्त म्क्र म्क्ष म्ख म्ग म्घ म्ङ म्च म्च्क म्च्र म्च्ब म्च्भ म्च्म

म्च्ञ म्च्र म्छ म्छ्श म्छ म्ज म्ज्ञ म्ज्ञ म्ज्ब म्ज्र म्ज्व म्ज्श म्झ म्ञ म्ञ्ज म्ञ्ब म्ञ्र म्ञ्ल म्ञ्व म्ट म्ठ म्ड म्ढ म्ण म्त म्थ म्द म्ध म्न म्प

म्फ म्ब म्भ म्म म्य म्र म्ल म्ळ म्व म्श म्ष म्स म्ह

य्क य्क्ष य्ख य्ग य्घ य्ङ य्च य्छ य्ज य्ज्ञ य्झ य्ञ य्ञ्ज य्ञ्ब य्ञ्र य्ञ्ल य्ञ्व य्ट य्ठ य्ड य्ढ य्ण य्त य्थ य्द य्ध य्न य्प य्फ य्ब

य्भ य्म य्य य्र य्ल य्ळ य्व य्श य्ष य्स य्ह

र्क र्क्ष र्ख र्ग र्घ र्ङ र्च र्छ र्ज र्ज्ञ र्झ र्ञ र्ट र्ठ र्ड र्ढ र्ण र्त र्थ र्द र्ध र्न र्प र्फ र्ब र्भ र्म र्य र्र र्ल र्ळ र्व र्श र्ष र्स

र्ह

ल्क ल्क्ङ ल्क्क ल्क्त ल्क्र ल्क्ष ल्ख ल्ग ल्घ ल्ङ ल्च ल्च्क ल्च्र ल्च्ब ल्च्भ ल्च्म ल्च्य ल्च्र ल्च्व ल्च्श ल्छ ल्ज ल्ज्ञ ल्ज्ञ ल्ज्र ल्ज्ब

ल्ज्भ ल्ज्म ल्ज्र ल्ज्ल ल्ज्व ल्ज्श ल्झ ल्ञ ल्ञ्ज ल्ञ्ब ल्ञ्र ल्ञ्ल ल्ञ्व ल्ट ल्ठ ल्ड ल्ढ ल्ण ल्त ल्थ ल्द ल्ध ल्न ल्प ल्फ ल्ब

ल्भ ल्म ल्य ल्र ल्ल ळ्ळ ल्व ल्श ल्ष ल्स ल्ह

ळ्क ळ्क्ष ळ्ख ळ्ग ळ्घ ळ्ङ ळ्च ळ्छ ळ्ज ळ्ज्ञ ळ्झ ळ्ञ ळ्ट ळ्ठ ळ्ड ळ्ढ ळ्ण ळ्त ळ्थ ळ्द ळ्ध ळ्न ळ्प ळ्फ

ळ्ब ळ्भ ळ्म ळ्य ळ्र ळ्ल ळ्ळ ळ्व ळ्श ळ्ष ळ्स ळ्ह

व्क व्क्ष व्ख व्ग व्घ व्ङ व्च व्छ व्ज व्ञ व्ज्ञ व्ज्र व्ज्ब व्ज्र व्ज्व व्ज्श व्झ व्ञ व्ञ्न व्ञ्र व्ट व्ठ व्ड व्ढ व्ण व्त व्थ व्द व्ध व्न व्प व्फ

व्ब व्ब्न व्ब्र व्भ व्म व्य व्र व्र्च व्र्ज व्र्ञ व्र्ञ व्र्न व्र्ब व्र्व व्ल व्ळ व्व व्व्न व्व्र व्श व्ष व्स व्ह

श्क श्क्ष श्ख श्ग श्घ श्ङ श्च श्च्क श्च्ङ श्च्च श्च्ञ श्च्न श्च्ब श्च्ब श्च्भ श्च्म श्च्य श्च्र श्च्ल श्च्व श्च्श श्छ श्ज श्ज्ञ श्झ श्ञ श्ञ्न श्ञ्ब

श्ञ्र श्ञ्ल श्ञ्व श्ट श्ठ श्ड श्ढ श्ण श्त श्थ श्द श्ध श्न श्प श्फ श्ब श्ब्न श्ब्र श्भ श्म श्य श्र श्ल श्ळ श्व श्व्न श्व्र श्व्व श्ष

श्स श्ह

ष्क ष्क्ञ ष्क्ङ ष्क्त ष्क्र ष्क्ष ष्ख ष्ग ष्घ ष्ङ ष्च ष्छ ष्ज ष्ज्ञ ष्झ ष्ञ ष्ञ्न ष्ञ्ब ष्ञ्र ष्ञ्ल ष्ञ्व ष्ट ष्ट्क ष्ट्च ष्ट्छ ष्ट्ञ ष्ट्ट ष्ट्ठ ष्ट्ण ष्ट्त ष्ट्न ष्ट्प

ष्ट्फ ष्ट्ब ष्ट्भ ष्ट्म ष्ट्र ष्ट्ल ष्ट्व ष्ट्ष ष्ठ ष्ठ्क ष्ठ्च ष्ठ्छ ष्ठ्ञ ष्ठ्ट ष्ठ्ठ ष्ठ्ण ष्ठ्त ष्ठ्न ष्ठ्प ष्ठ्फ ष्ठ्ब ष्ठ्भ ष्ठ्म ष्ठ्र ष्ठ्ल ष्ठ्व ष्ठ्प ष्ड ष्ढ ष्ढ्म ष्ढ्र ष्ढ्व ष्ण ष्त ष्त्त ष्त्न

ष्त्ब ष्त्र ष्त्व ष्थ ष्द ष्ध ष्न ष्प ष्फ ष्ब ष्भ ष्म ष्य ष्र ष्ल ष्ळ ष्व ष्श ष्ष ष्स ष्ह

स्क स्क्ञ स्क्ङ स्क्त स्क्र स्क्ष स्ख स्ग स्घ स्ङ स्च स्च्क स्च्न स्च्ब स्च्भ स्च्म स्च्य स्च्र स्च्व स्च्श स्छ स्ज स्ज्ञ स्ज्न स्ज्ब

स्ज्र स्ज्ल स्ज्व स्ज्श स्झ स्ञ स्ञ्न स्ञ्ब स्ञ्र स्ञ्ल स्ञ्व स्ट स्ठ स्ड स्ढ स्ण स्त स्थ स्द स्ध स्न स्प स्फ स्ब स्भ स्म

स्य स्र स्ल स्ळ स्व स्श स्ष स्स स्ह

ह्क ह्क्ष ह्ख ह्ग ह्घ ह्ङ ह्च ह्छ ह्ज ह्ज्ञ ह्ञ ह्ज्र ह्ज्ब ह्ज्भ ह्ज्म ह्ज्र ह्ज्ल ह्ज्व ह्झ ह्ञ ह्ञ्न ह्ञ्र ह्ट ह्ठ ह्ड ह्ढ ह्ण ह्ण्म

ह्ण्य ह्त ह्थ ह्द ह्ध ह्न ह्प ह्फ ह्ब ह्ब्म ह्ब्य ह्भ ह्म ह्म्च ह्म्ज ह्म्ञ ह्म्ञ ह्म्न ह्म्ब ह्म्र ह्म्ल ह्म्व ह्य ह्य्म ह्र ह्ल्म ह्ल्य ह्ल ह्ल्म

ह्ल्य ह्ळ ह्व ह्व्म ह्व्य ह्श ह्ष ह्स ह्ह

वैदिक की-बोर्ड ले-आउट

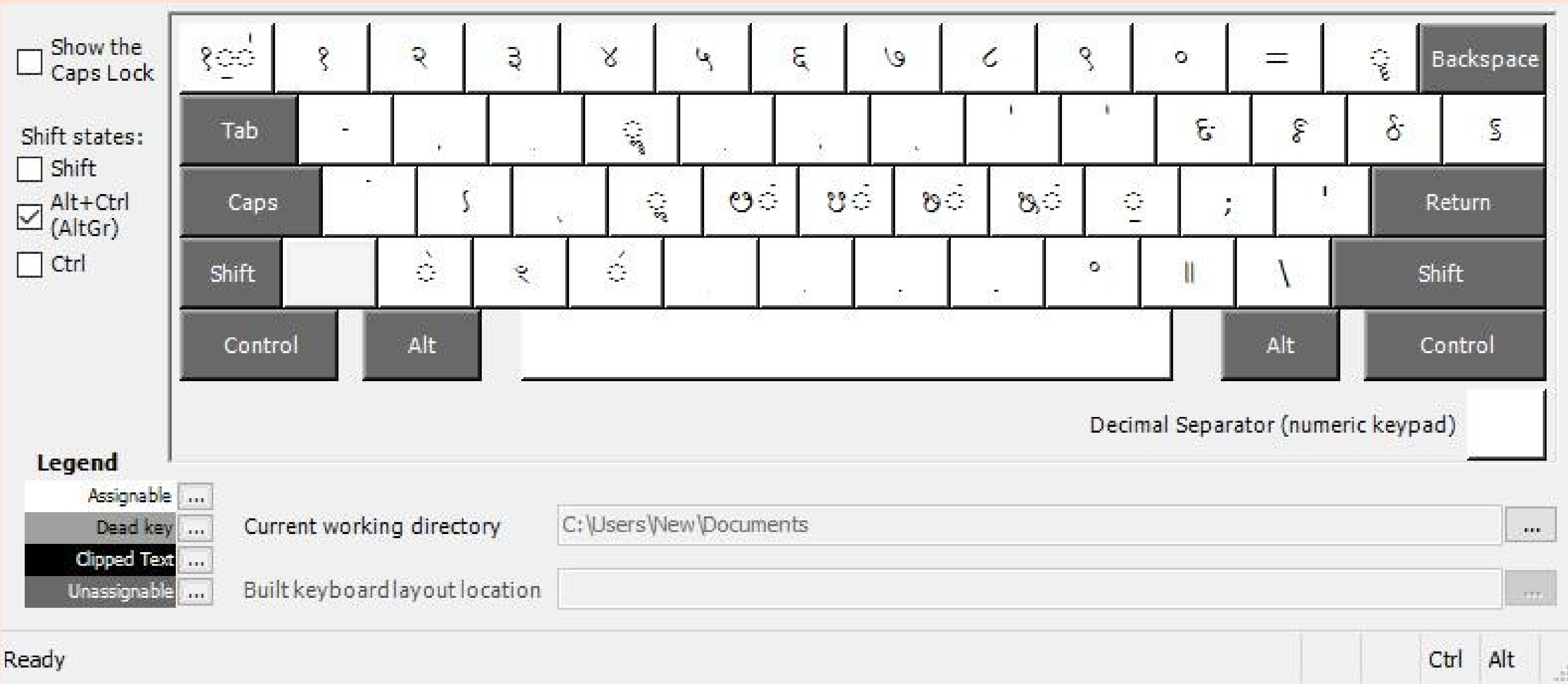
Key	N	S	Alt	AltS	Key	N	S	Alt	AltS	Key	N	S	Alt	AltS	Key	N	S	Alt	AltS
`	ॐ	卐	१	३	Q	◌ौ	औ	क᳘	क÷										
1	1	!	१	◌꣡	W	◌ै	ऐ	कु	क꣸	A	◌ो	ओ	क॔	कꣻ					
2	2	ˇ	२	◌꣢	E	◌ा	आ	कृ	क꣹	S	◌े	ए	क᳓	क꣺	Z	◌ꣷ	◌ꣶ	क॓	◌ꣵ
3	3	¯	३	◌꣣	R	◌ी	ई	कॄ	ॡ	D	◌्	अ	क्	◌꣪	X	◌ं	◌ं	ꣲ	◌ꣳ
4	4	₹	४	◌꣤	T	◌ू	ऊ	कृ	क꣼	F	ि◌	इ	कॢ	ऌ	C	म	ण	क॔	◌ꣴ
5	5	ज्ञ	५	◌꣥	Y	ब	भ	कु	कꣽ	G	◌ु	उ	कꣳ	◌꣫	V	न	ा◌	क᳕	◌꣭
6	6	त्र	६	◌꣦	U	ह	ङ	क्र	क꣸	H	प	फ	कꣴ	◌꣮	B	व	◌̆	क᳝	◌꣰
7	7	क्ष	७	◌꣧	I	ग	घ	क᳚	क꣹	J	र	ल	कꣵ	◌꣯	N	ल	ळ	क᳞	◌̂
8	8	श्र	८	◌꣨	O	द	ध	क᳛	क̅	K	क	ख	कꣶ	◌꣬	M	स	श	क᳟	◌᳐
9	9	(	९	◌꣩	P	ज	झ	ꣳ	″	L	त	थ	क॒	क॑	<	,	ष	°	◌꣱
0	0	)	०	◌꣠	{	ड	ढ	ꣴ	[	:	च	छ	;	:	>	.	।	॥	ऽ
-	-	◌ः	=	_	}	◌़	ञ	ꣲ	]	"	ट	ठ	'	"	?	य	ष	\	?
=	◌ृ	ऋ	◌ॄ	ॠ	|	◌ॉ	ऑ	ꣵ	≥										

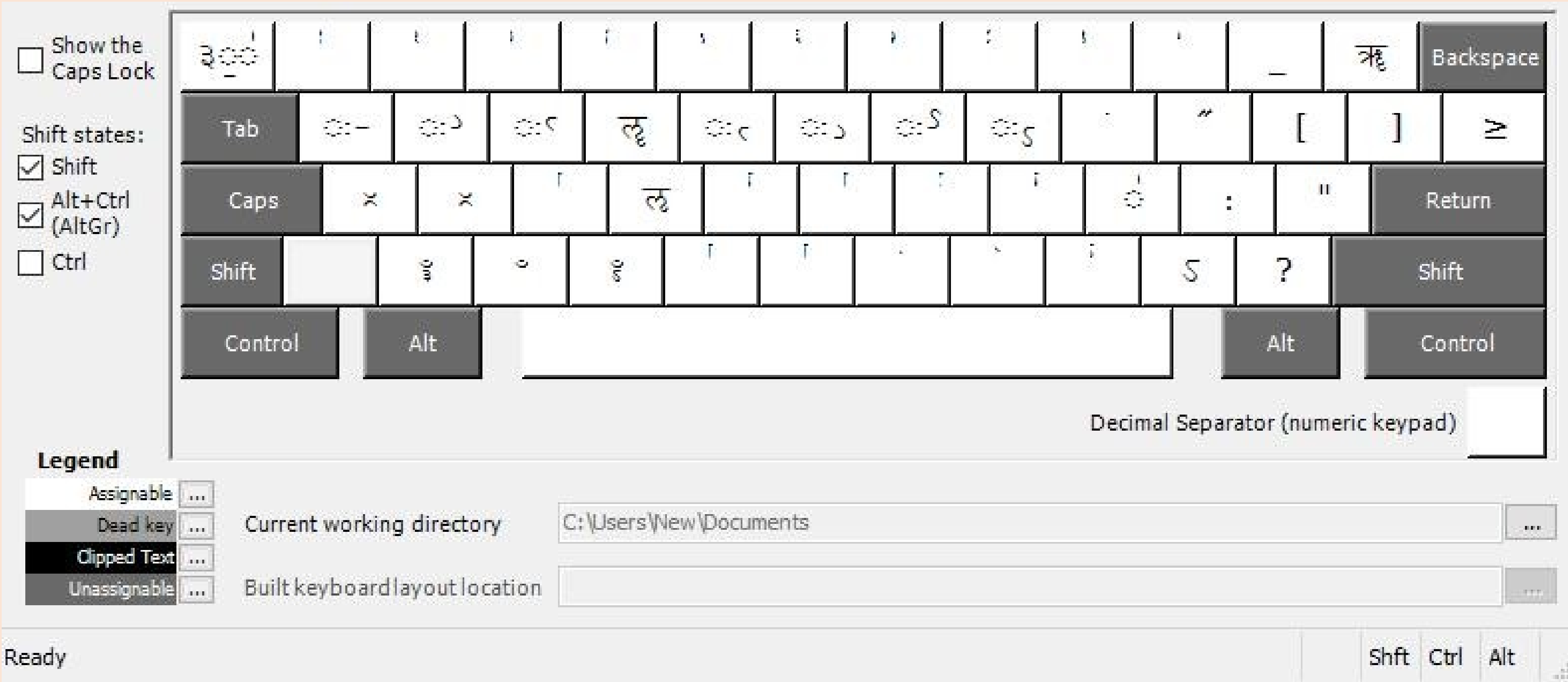
Note— *की-बोर्ड में 4 स्थितियाँ प्रयोग की गई हैं— 1. Normal Key Board 2. Shift Key Board, 3. दाँए हाथ वाला Alt Key Board, 4. दाँए हाथ वाला Alt+Shift Key Board (इंस्टाल करने पर नीचे ट्रे में सं दिखाई देगा)

** MS Word में वैदिक यूनिकोड के कुछ चिह्नों को टाइप करने में समस्या आती है, अभी तक Sanskrit Text, Nirmala UI तथा Siddhanta फोन्ट ही श्रेष्ठ हैं। — डॉ॰ नरेश कुमार धीमान्, प्रिंसिपल, दोआबा कॉलेज, जालन्धर (मो॰—97805-18504)


Show the Caps Lock
Shift states:
Shift
Alt+Ctrl (AltGr)
Ctrl
ॐ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 0 -
Backspace
Tab
ौ ै ा ी ू ब ह ग द ज ड ़ ॉ
Caps
ो े ् ि ु प र क त च ट
Return
Shift
ं म न व ल स , . य
Shift
Control
Alt
SP
Alt
Control
Decimal Separator (numeric keypad)
.
Legend
Assignable
Dead key
Clipped Text
Unassignable
Current working directory
C:\Users\New\Documents
Built keyboard layout location
Ready


Show the Caps Lock
Shift states:
Shift
Alt+Ctrl (AltGr)
Ctrl
卐 ! ( ) ऋ Backspace
Tab औ ऐ आ ई ऊ भ ङ घ ध झ ढ ञ ऑ
Caps ओ ए अ इ उ फ ख थ छ ठ Return
Shift ण ळ श ष । य Shift
Control Alt S P Alt Control
Decimal Separator (numeric keypad) .
Legend
Assignable
Dead key
Clipped Text
Unassignable
Current working directory
C:\Users\New\Documents
Built keyboard layout location
Ready
Shft


Show the Caps Lock
Shift states:
Shift
Alt+Ctrl (AltGr)
Ctrl
Backspace
Tab
Caps
Return
Shift
Shift
Control
Alt
Alt
Control
Decimal Separator (numeric keypad)
Legend
Assignable
Dead key
Clipped Text
Unassignable
Current working directory
C:\Users\New\Documents
Built keyboard layout location
Ready
Ctrl
Alt



Show the Caps Lock
Shift states:
Shift
Alt+Ctrl (AltGr)
Ctrl
Backspace
Tab
Caps
Return
Shift
Control
Alt
Decimal Separator (numeric keypad)
Legend
Assignable
Dead key
Clipped Text
Unassignable
Current working directory
C:\Users\New\Documents
Built keyboard layout location
Ready
Shft
Ctrl
Alt

iR;d Vd.k e nk idkj d dthiVy gkr g ,d dk jkeu dthiVy dgr g tk iR;{k nf"Vikr vkrk g
,d dthiVy odfYid gkrk g tk fd dthiVy d nk; gkFk ij fn; g, lkf[;d Hkkx ftle 0 l 9
rd l[;k gkrh g mlds ek/;e l i;kx fd;k tkrk gA

देवनागरी के लिए रमिंगटन अथवा टाईपराईटर प्रारुप प्रत्यक्ष कुंजीपटल का प्रदर्शन साधारण अवस्था में



noukxjh d fy, jfexVu vFkok VkbijkbVj i#i iR;{k dthiVy dk in'ku f'kQ¶V dth d lkFk

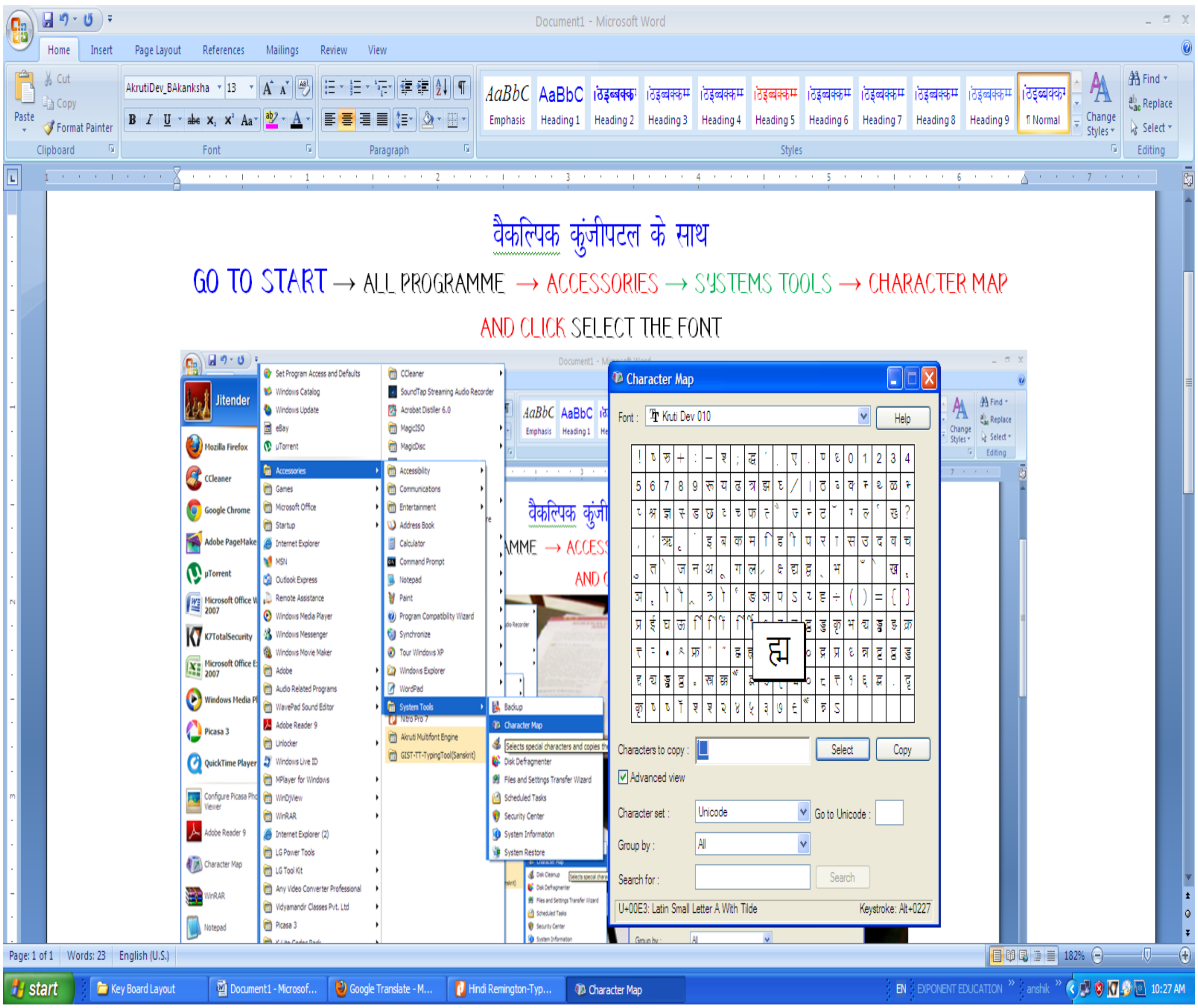




वैकल्पिक कुंजीपटल के साथ कार्य करने का पद्धति

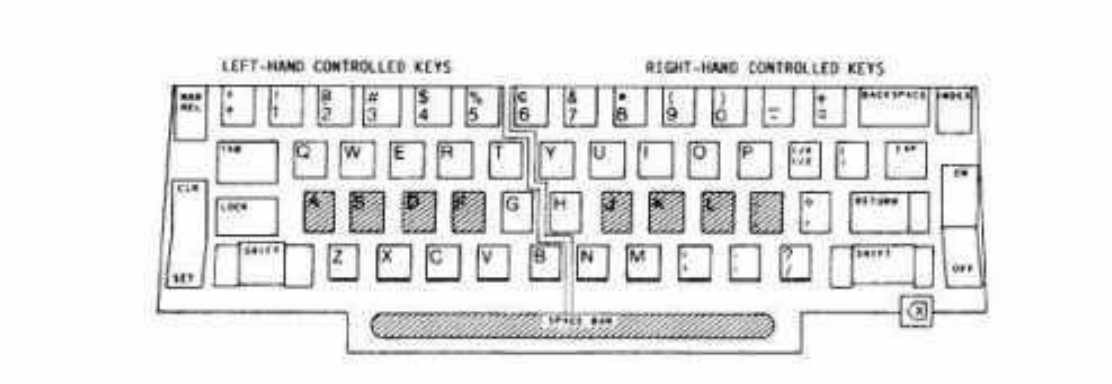
GO TO START → ALL PROGRAMME → ACCESSORIES → SYSTEMS TOOLS → CHARACTER MAP AND CLICK तो वैकल्पिक कुंजीपटल खुल जायेगा आप फाँट में जाकर फाँट चुन लें जिसमें आप कार्य कर रहे हैं। उसमें आपको कुछ अक्षर दृष्टिपात आयेंगे उनमें से कोई भी एक अक्षर को चुनने के उपरान्त उसके नीचे कोने में एक संख्या (Alt+0227) जैसा की आप नीचे चित्र में देख रहे हैं दृष्टिपात करेंगें। उस संख्या को कुंजीपटल में बांये हाथ से बांये हाथ की दिशा में दी Alt कुंजी के साथ दबाने पर वह अक्षर आकृति लिखने वाले स्थान पर ऊभर जायेगी। उदाहरण के लिए ब्रह्म में 'ब्र' प्रत्यक्ष कुंजीपटल के द्वारा लिपिबद्ध किया गया है व 'ह्म' वैकल्पिक कुंजीपटल के साथ।

टिप्पणी- यह पद्धति सभी फाँट अथवा लिपि पर समान रुप से समान रुप से लागू होती है



अंगुलियों के अभ्यास के लिए

टंकण में पहला कदम की बोर्ड रहा है चित्र एक की बोर्ड से पता चलता है चित्रण प्रयोजनों के लिए यह दो वर्गों में बांटा गया है, बाएँ हाथ अनुभाग अपने बाएँ हाथ के द्वारा नियंत्रित कुंजी का प्रतिनिधित्व करता है , और अपने दाहिने हाथ से दाएँ हाथ अनुभाग नियंत्रित कुंजी का प्रतिनिधित्व करता है.



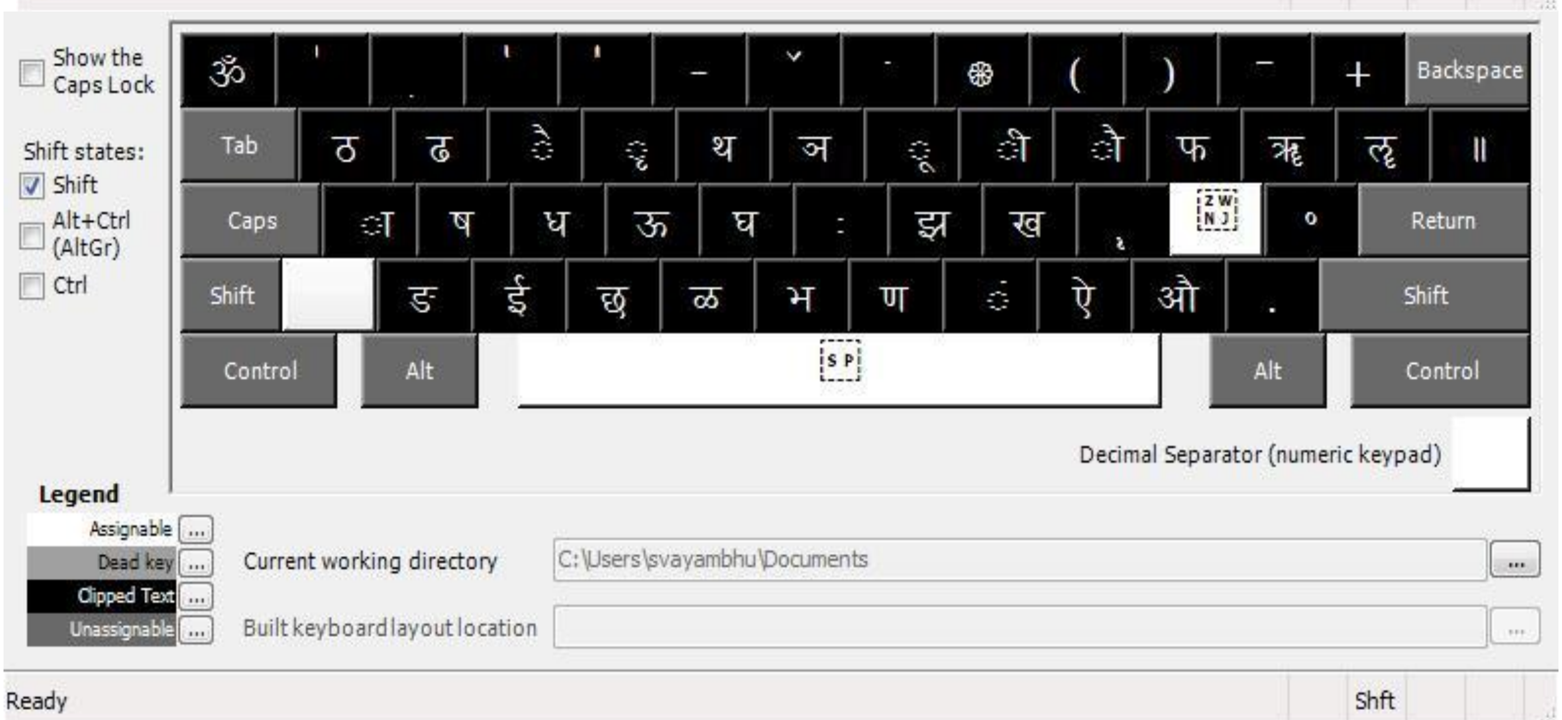


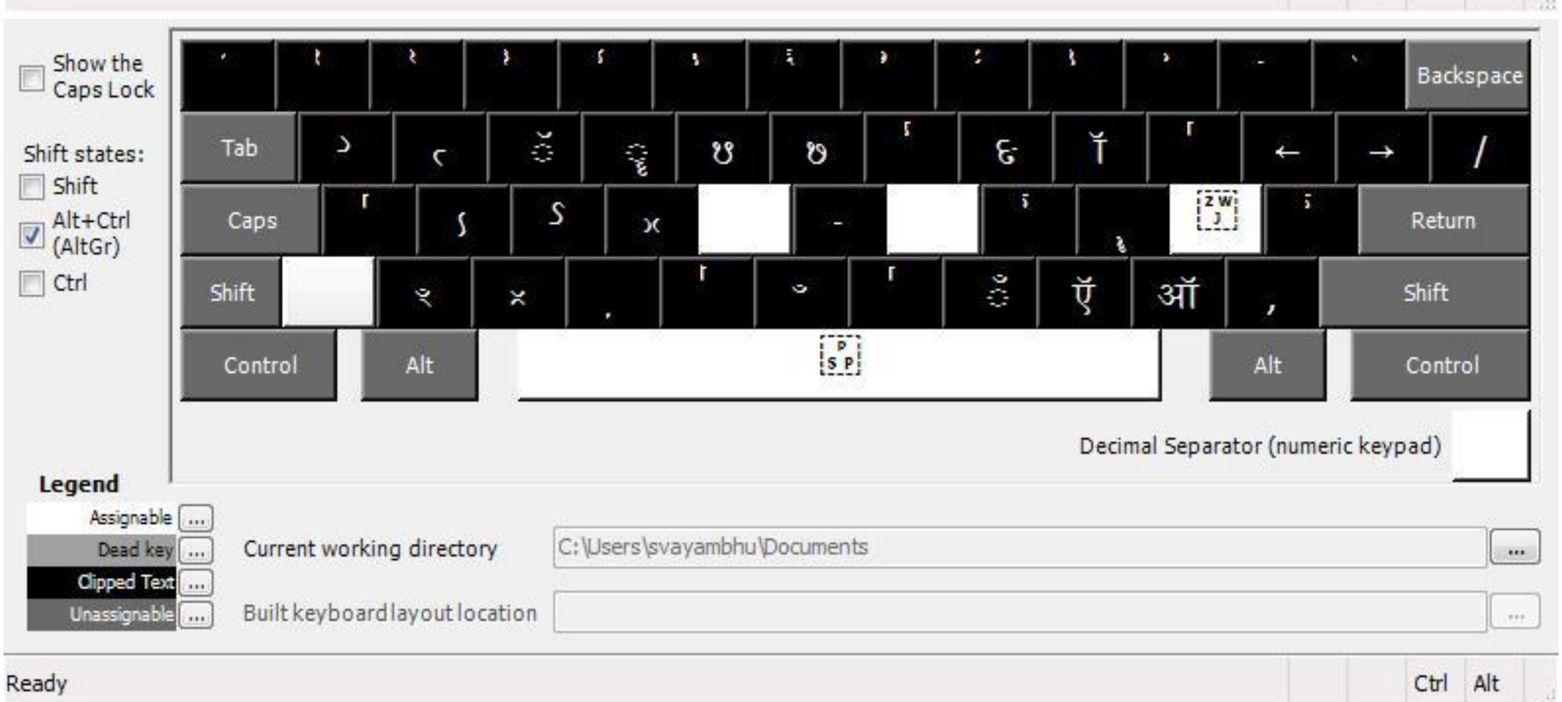
आंगल वह हिन्दी भाषा का संयुक्त कुंजीपटल प्रदर्शन

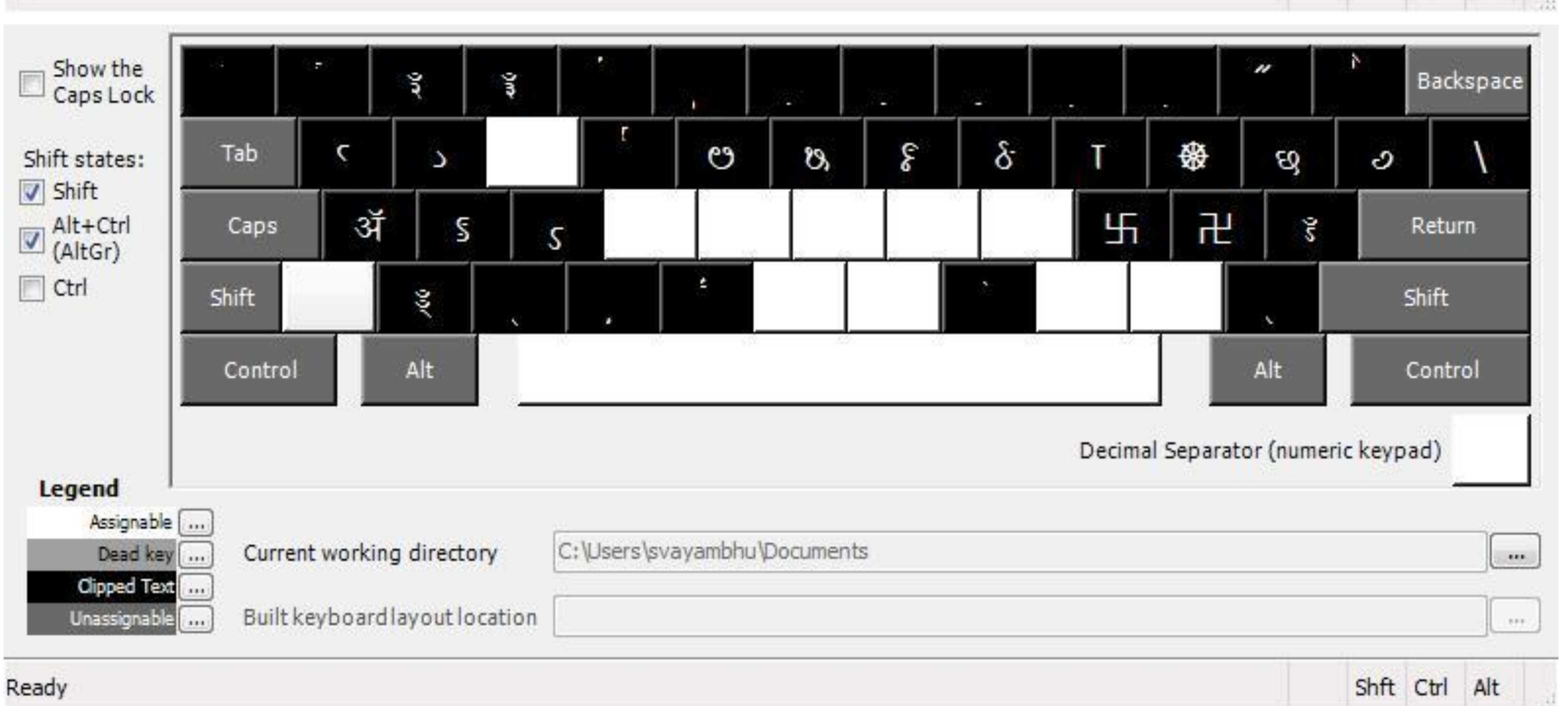


सिद्धान्ता वैदिक-कुञ्जी पटल प्रदर्शन



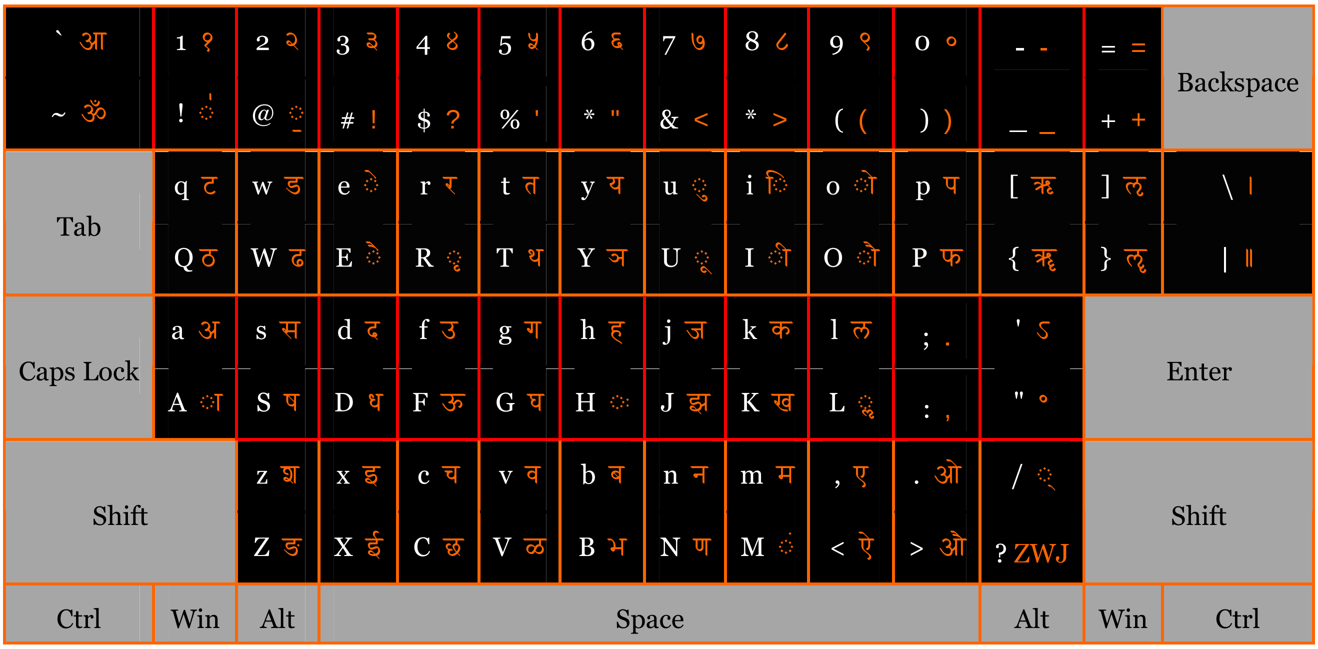




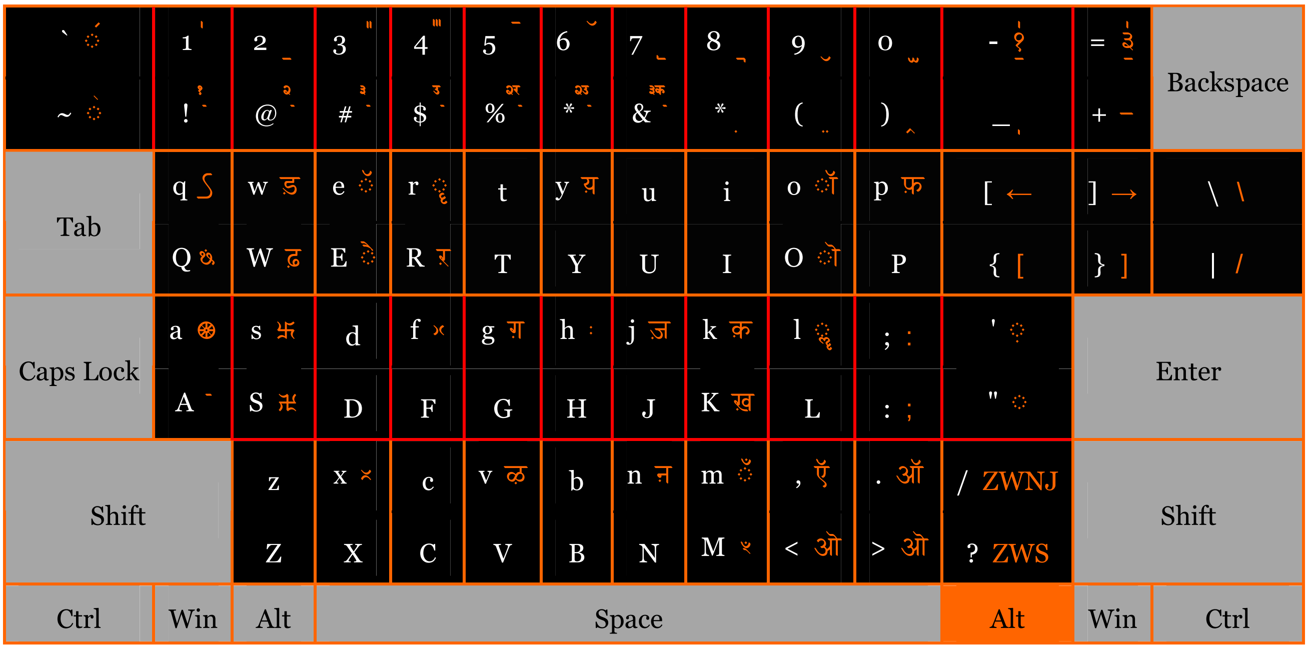


Chandas Devanāgarī IME Help

१ ॥ Keyboard Layout



Right Alt +



२ ॥ Installing

1) First make sure that support of Devanāgarī Script is enabled in Your System (this can be done only in Windows 2000, Windows XP and Windows 2003). To do this go to Control Panel > Language Settings > Languages > and click "Enable support of complex and left to right scripts"

2) Unpack chandas-ime.zip file and click on Chandas.msi.

3) Then go to Control Panel > Language Settings > Languages > Languages and Text Input Services > Add > and select as language Sanskrit and Chandas Devanāgarī as IME.

३ ॥ Typing

Devanāgarī is syllabic script. There are 4 main rules of typing:

1 Consonant-signs include vowel अ (a). To type a consonant without next vowel (*halanta*) use sign *virāma* -

क ka । ग ga । च ca ॥

क + ् → क् k । ग + ् → ग् g । च + ् → च् c ॥

2 Vowels in the beginning of a word and vowels after consonants have separate signs. Vowels after consonants (*mātrā*s) must be typed after consonant-signs.

आ ā । उ u । इ i ॥

क + ा → का kā ॥ क + ु → कु ku ॥ क + ि → कि ki ॥

3 Consonants before consonants must be typed with *virāma*. Ligature-signs (*saṃyoga*) are "constructed" automatically by Operational System.

क + ् + ष → क्ष kṣa। क + ् + त → क्त kta। ङ + ् + क + ् + त + ् + य → ङ्क्त्य

ṅktya॥

वैब साईड पर लिखने या यूनिकोड के प्रयोग के लिए वेब साईड पर जायें

1. http://www.svayambhava.org/
2. कृपया निम्न DOWNLOAD कर लें। (यह संगणक अन्तरजाल पर निशुल्क उपलब्ध है।)
3. Siddhanta Variations Fonts Vaidika-Devanagari Input Method and Keyboard Layout
4. Vaidika ZIP फोल्डर को दो बार टिक-टिक (Click) करें।
5. फिर Vaidika फोल्डर को दो बार टिक-टिक (Click) करें।
6. यहां पर आपको Siddhanta Font के कुञ्जी पटल (Keyboard) का चित्र भी मिलेगा।
7. Setup.exe पर दो बार टिक-टिक (Click) करके अपने कमप्यूटर में डाल लें।
8. उसके बाद start पर टिक (Click) करके control panel में जाकर क्षेत्र व भाषा (Region and Language) पर टिक-टिक (Click) कर लें।
9. यहां पर एक खिडकी भाषा की व्यवस्था के लिए खुलेगी।
10. Window7 के लिए कुञ्जीपटल व भाषा (Keyboard and languages) नाम पत्र (Tab) पर टिक-टिक (Click) करें।
11. अब जो खिडकी खुली है उसमें भाषा जोडने के लिए (Add) पर टिक (Click) करके आप भाषा चुन सकते हैं।
12. आप Sanskrit चुनकर Vaidika पर टिक (Click) कर दें। और ok पर टिक (Click) कर दें।
13. आप संगणक के नीचे कोने में समय चक्रिका के पास अंग्रेजी और SA चुन में से एक विकल्प चुन सकते हैं।

लिपि डालना (Font Installation)

1. Siddhanta Variations Fonts को फौल्डर को ZIP से बाहर निकालें। व Copy कर लें।
2. Control panel में जाकर Font फोल्डर पर टिक-टिक (Click) करके Paste कर दें। यदि आपके लिपि सूची (Font Menu) में ना आये तो आप अपने संगणक को पुनः चालित कर लें।
3. उसके उपरान्त आप लिपि सूची (Font Menu) से Siddhanta लिपि (Siddhanta Font) चुन सकते हैं।

(इंडिक भाषा को सक्रिय करना) Enabling Indic Language Support

1. http://www.bhashaindia.com/ilit/
2. पहले आप Getting Start पर टिक (Click) करके आप साफ्टवेयर डालने व उसे सक्रिय करने की प्रक्रिया को देख सकते हैं।
3. Install Desktop Version पर टिक (Click) कर दें। साफ्टवेयर आपके संगणक में डाऊनलोढ हो जायेगा। उसके बाद next-next पर टिक (Click) करके संगणक में डाल लें।

वैकल्पिक कुंजी पटल के साथ कार्य करने की पद्धति या अक्षर चुनने की पद्धति

1. GO TO START➢ALL PROGRAMME ➢ACCESSORIES ➢SYSTEMS TOOLS ➢CHARACTERMAP ➢CLICK OF CHARACTAR MAP ➢CHOOSE THE FONT ➢CHOOSE TE LETTER(अक्षर)
2. CHARACTER MAP की जो विंडो खुली है दायें हाथ की और उसके नीचे दिये गए अंक संख्या को आप Alt+अंक संख्या टंकण करेंगे तो आप वह अक्षर टाईप कर सकते हैं।
3. Insert टैब में जाकर आप Symbol पर क्लिक करें। तो आप अक्षर चुनने के लिए एक विंडो खुलेगी जिससे आप अक्षर चुन सकते हैं।

लिपि (FONT TROUBLE SHUTTING) यदि ष या श कृतिदेव में कार्य न करें।

1. GO TO (OPEN) MS WORD➢CLICK MICROSOFT BUTTON LEFT TOP➢GO TO WORD OPTION➢GO TO PROOFING➢GO TO AUTO CORRECT OPTION➢CHECK THE STRAIGHT QUOTS WITH SMART QUOTS।

Font परिवर्तक के लिए यहां से डाउनलोड कर लें।
https://sites.google.com/site/technicalhindi/home

Font krutidev20 यहां से डाउनलोड कर लें।
http://in.ffonts.net/Hindi.html

iR;d Vd.k e nk idkj d dthiVy gkr g ,d dk jkeu dthiVy dgr g tk iR;{k nf"Vikr vkrk g
,d dthiVy odfYid gkrk g tk fd dthiVy d nk; gkFk ij fn; g, lkf[;d Hkkx ftle 0 l 9
rd l[;k gkrh g mld ek/;e l i;kx fd;k tkrk gA

देवनागरी के लिए रमिंगटन अथवा टाईपराईटर प्रारुप प्रत्यक्ष कुंजीपटल का प्रदर्शन साधारण अवस्था में



noukxjh d fy, jfexVu vFkok Vkbijkbvj i#i iR;{k dthiVy dk in'ku f'kÝV dth d lkF

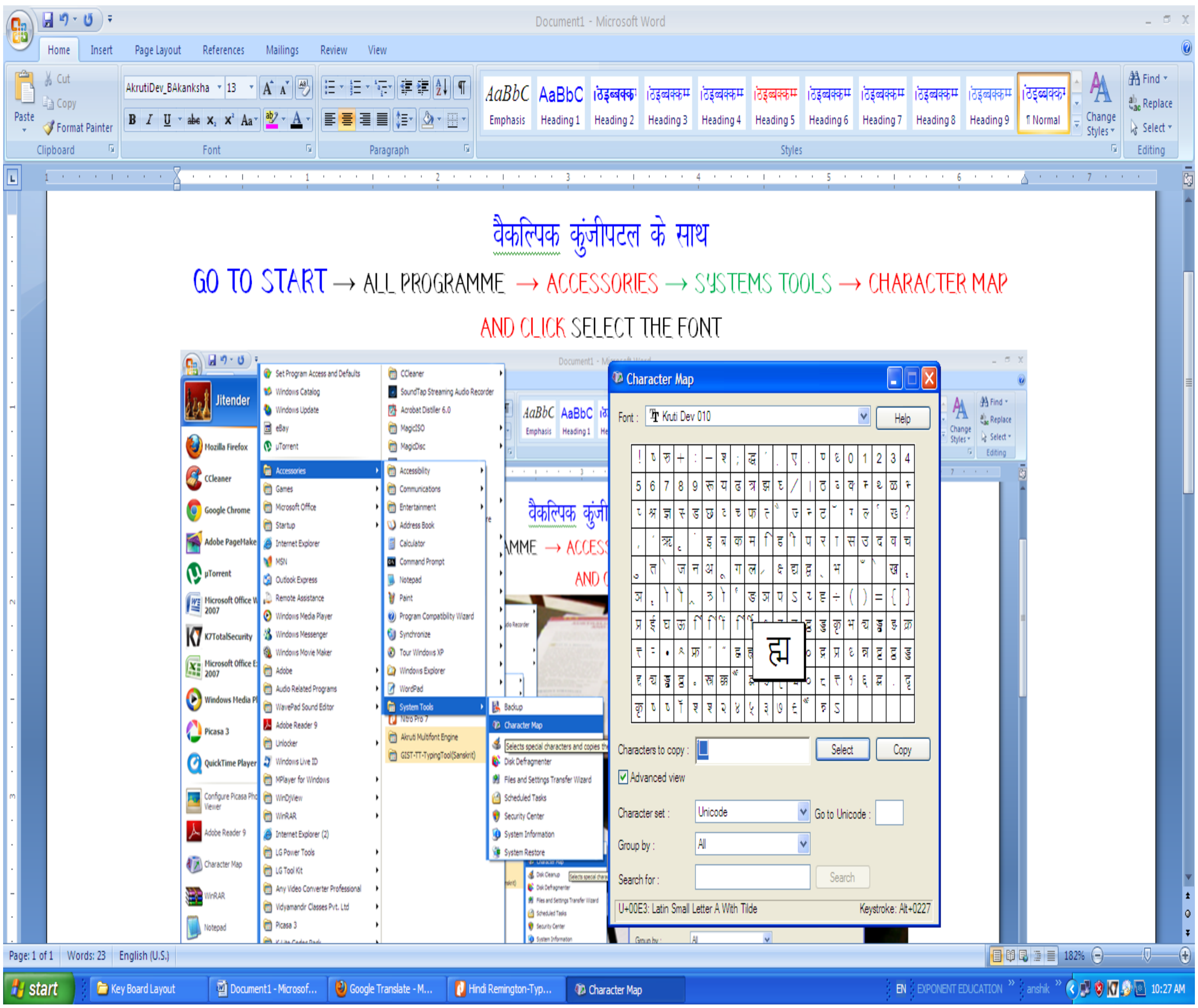




वैकल्पिक कुंजीपटल के साथ कार्य करने का पद्धति

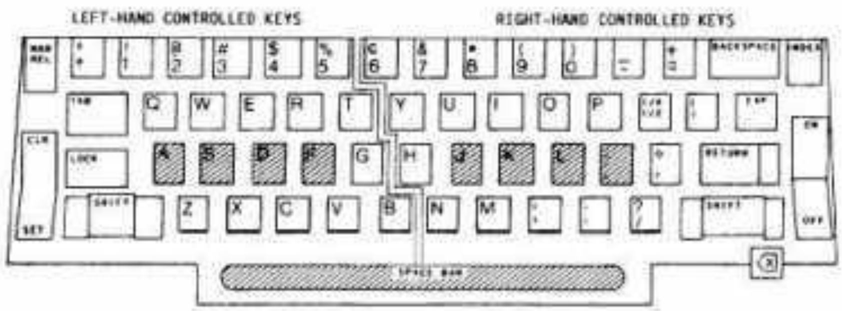
GO TO START → ALL PROGRAMME → ACCESSORIES → SYSTEMS TOOLS → CHARACTER MAP AND CLICK तो वैकल्पिक कुंजीपटल खुल जायेगा आप फॉंट में जाकर फॉंट चुन लें जिसमें आप कार्य कर रहे हैं। उसमें आपको कुछ अक्षर दृष्टिपात आयेंगे उनमें से कोई भी एक अक्षर को चुनने के उपरान्त उसके नीचे कोने में एक संख्या (Alt+0227) जैसा की आप नीचे चित्र में देख रहे हैं दृष्टिपात करेंगें। उस संख्या को कुंजीपटल में बांये हाथ से बांये हाथ की दिशा में दी Alt कुंजी के साथ दबाने पर वह अक्षर आकृति लिखने वाले स्थान पर ऊभर जायेगी। उदाहरण के लिए ब्रह्म में 'ब्र' प्रत्यक्ष कुंजीपटल के द्वारा लिपिबद्ध किया गया है व 'ह्म' वैकल्पिक कुंजीपटल के साथ।

टिप्पणी- यह पद्धति सभी फॉंट अथवा लिपि पर समान रुप से समान रुप से लागू होती है



अंगुलियों के अभ्यास के लिए

टंकण में पहला कदम की बोर्ड रहा है चित्र एक की बोर्ड से पता चलता है चित्रण प्रयोजनों के लिए यह दो वर्गों में बांटा गया है, बाएँ हाथ अनुभाग अपने बाएँ हाथ के द्वारा नियंत्रित कुंजी का प्रतिनिधित्व करता है , और अपने दाहिने हाथ से दाएँ हाथ अनुभाग नियंत्रित कुंजी का प्रतिनिधित्व करता है.



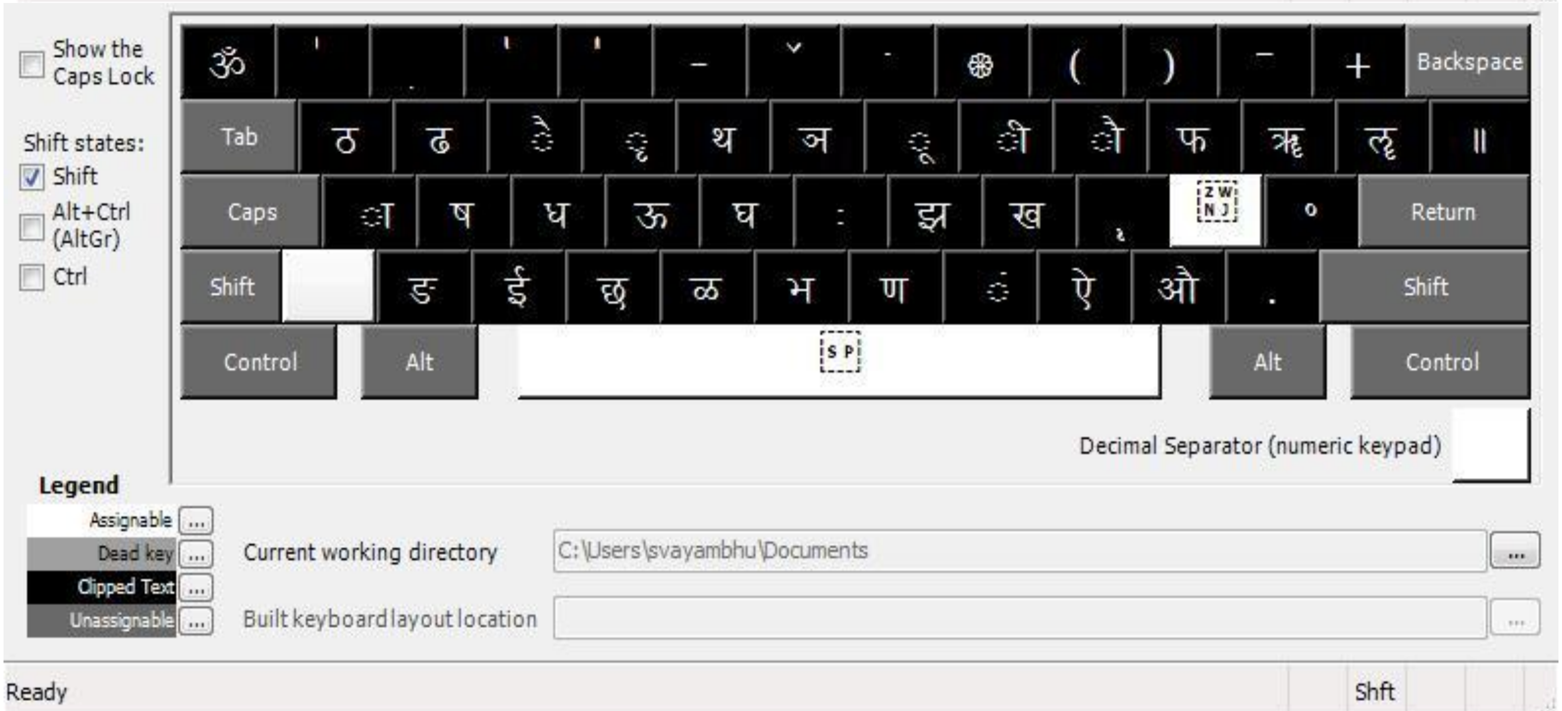


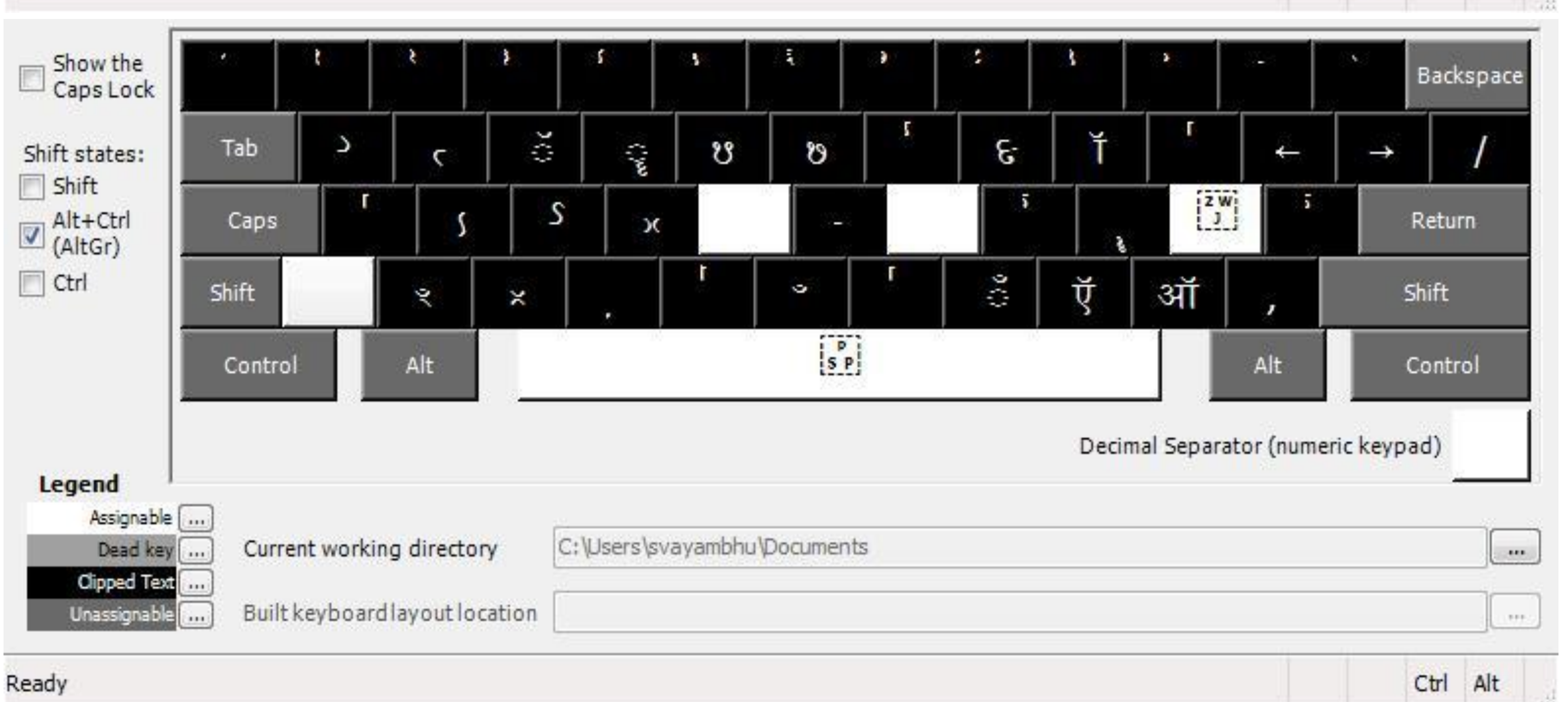
आंगल वह हिन्दी भाषा का संयुक्त कुंजीपटल प्रदर्शन

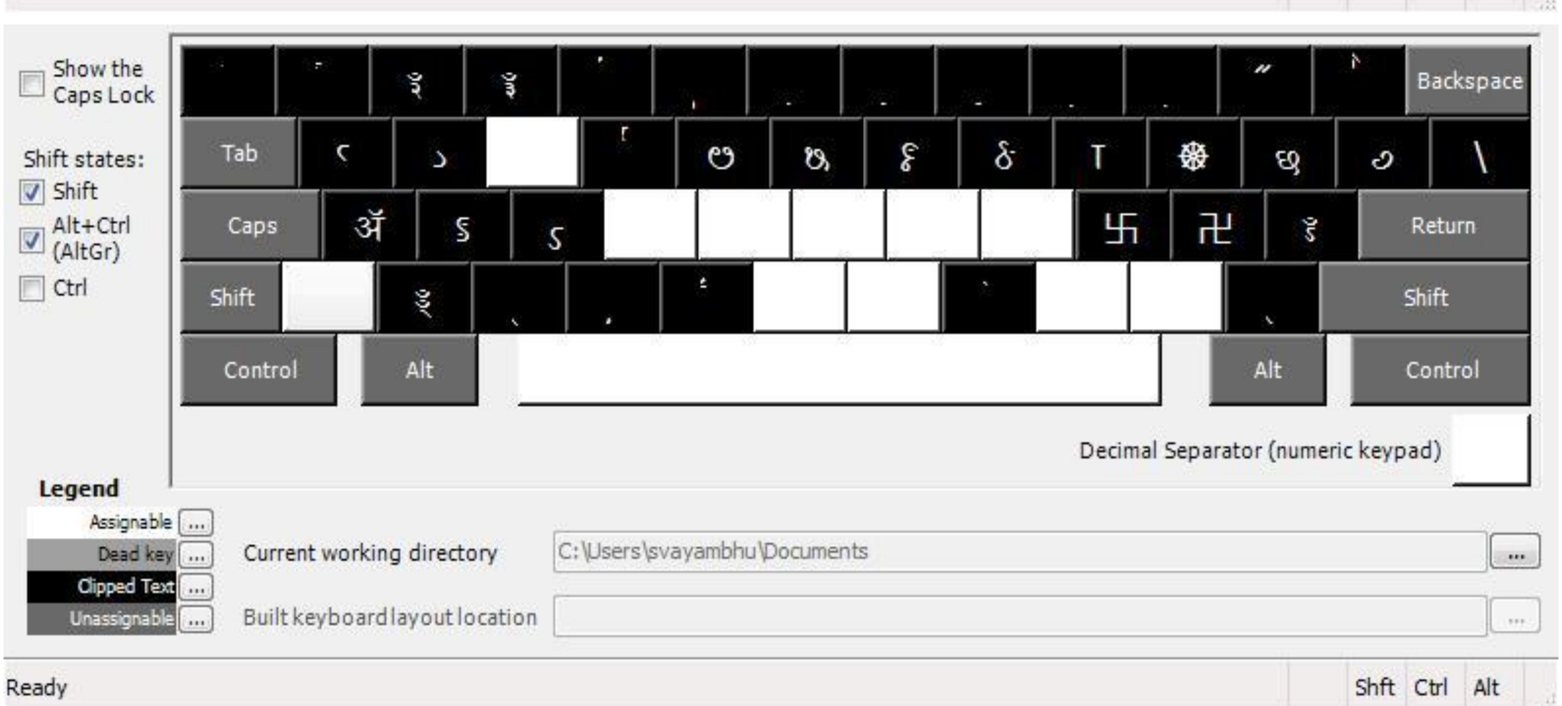


सिद्धान्ता वैदिक-कुञ्जी पटल प्रदर्शन



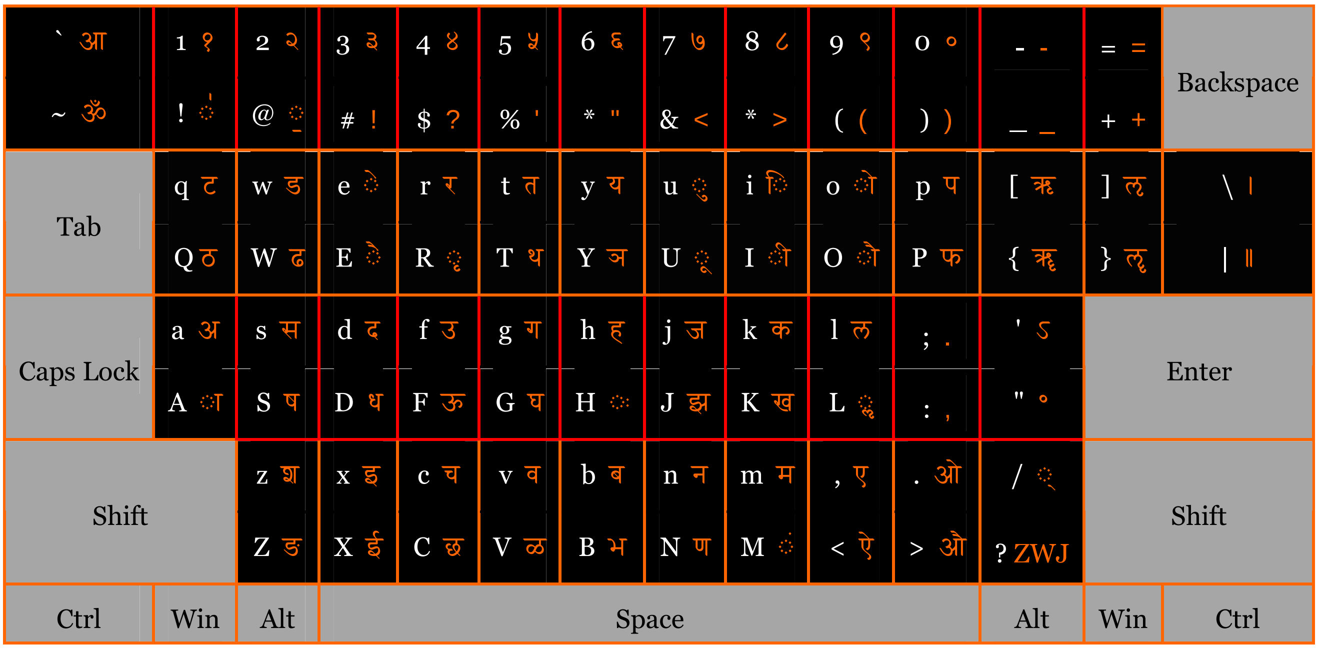




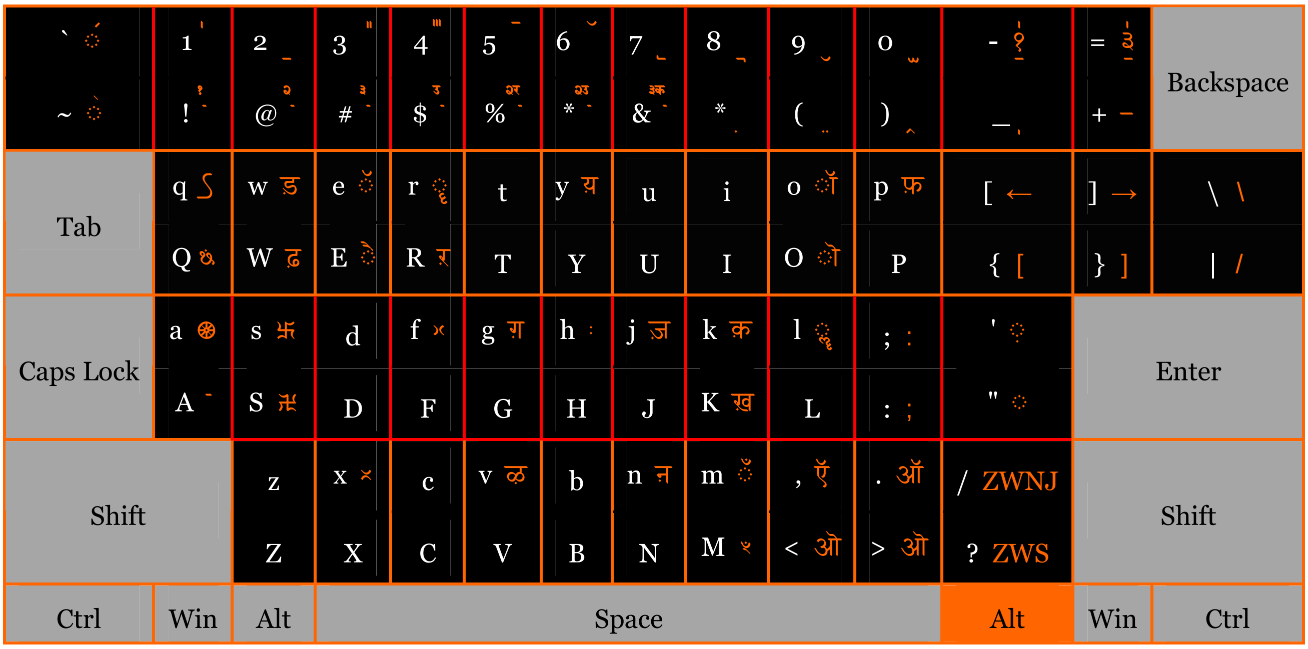


Chandas Devanāgarī IME Help

१ ॥ Keyboard Layout



Right Alt +



- Go To http://www.svayambhava.org/
- कृपया निम्न DOWNLOAD कर लें। (यह संगणक अन्तरजाल पर निशुल्क उपलब्ध है।)
- Siddhanta Variations Fonts Vaidika-Devanagari Input Method and Keyboard Layout
- Vaidika ZIP फोल्डर को दो बार टिक-टिक (Click) करें।
- फिर Vaidika फोल्डर को दो बार टिक-टिक (Click) करें।
- यहां पर आपको Siddhanta Font के कुञ्जी पटल (Keyboard) का चित्र भी मिलेगा।
- Setup.exe पर दो बार टिक-टिक (Click) करके अपने कमप्यूटर में डाल लें।
- उसके बाद start पर टिक (Click) करके control panel में जाकर क्षेत्र व भाषा (Region and Language) पर टिक-टिक (Click) कर लें।
- यहां पर एक खिडकी भाषा की व्यवस्था के लिए खुलेगी।
- Window7 के लिए कुञ्जीपटल व भाषा (Keyboard and languages) नाम पत्र (Tab) पर टिक-टिक (Click) करें। व change keyboard पर क्लिक करें।
- अब जो खिडकी खुली है उसमें भाषा जोडने के लिए (Add) पर टिक (Click) करके आप भाषा चुन सकते हैं।
- आप Hindi व Sanskrit चुनकर, Sanskrit में Chands Devnagri Add कर दें या पर टिक (Click) कर दें। और ok पर टिक (Click) कर दें।
- आप संगणक के नीचे कोने में समय चक्रिका के पास अंग्रेजी और SA चुन में से एक विकल्प चुन सकते हैं।
- यही प्रक्रिया आप chand व uttra लिपि के लिए अपना सकते हैं यह दोनों लिपि सामवेद लेखन में उपयोगी होते हैं।
- Control panel, regional and language option, language, details, setting tab, key setting पर जा करके भाषा बदलने की keyboard short key जान सकते हैं।
- जो पहले से सलैक्ट भाषा हैं उन पर किसी एक पर क्लिक करके आप उसमें वह की बोर्ड डाल सकते हैं। जैसे मैंने chand व uttra लिपि का डाला है।
- Chand व uttra लिपि में सामवेद के चिह्न भी मिलते हैं उसे प्रयोग करना अधिक लाभदायक होता है व उसमें अधिक कुञ्जी पटल प्रयोग भी हैं॥

लिपि डालना (Font Installation)

- Siddhanta Variations Fonts को फौल्डर को ZIP से बाहर निकालें। व Copy कर लें।
- Control panel में जाकर Font फोल्डर पर टिक-टिक (Click) करके Paste कर दें। यदि आपके लिपि सूची (Font Menu) में ना आये तो आप अपने संगणक को पुनः चालित कर लें।
- उसके उपरान्त आप लिपि सूची (Font Menu) से Siddhanta लिपि (Siddhanta Font) चुन सकते हैं।

(इंडिक भाषा को सक्रिय करना) Enabling Indic Language Support

- http://www.bhashaindia.com/ilit/
- पहले आप Getting Start पर टिक (Click) करके आप साफ्टवेयर डालने व उसे सक्रिय करने की प्रक्रिया को

देख सकते हैं।

- Install Desktop Version पर टिक (Click) कर दें। साफ्टवेयर आपके संगणक में डाऊनलोढ हो जायेगा। उसके बाद next-next पर टिक (Click) करके संगणक में डाल लें।

वैकल्पिक कुंजी पटल के साथ कार्य करने की पद्धति या अक्षर चुनने की पद्धति

- GO TO START➢ALL PROGRAMME ➢ACCESSORIES ➢SYSTEMS TOOLS ➢CHARACTERMAP ➢CLICK OF CHARACTAR MAP ➢CHOOSE THE FONT ➢CHOOSE TE LETTER(अक्षर)
- CHARACTER MAP की जो विंडो खुली है दायें हाथ की ओर उसके नीचे दिये गए अंक संख्या को आप Alt+अंक संख्या टंकण करेंगे तो आप वह अक्षर टाईप कर सकते हैं।
- Insert टैब में जाकर आप Symbol पर क्लिक करें। तो आप अक्षर चुनने के लिए एक विंडो खुलेगी जिससे आप अक्षर चुन सकते हैं।

कुंजी पटल के साथ कार्य करने की पद्धति व कुञ्जी निर्धारण करना

- GO TO Insert➢click on symbol➢click on more symbol➢select the character which you want to assign to key➢and click on shortcut key➢ then you assign the keyboard key

लिपि (FONT TROUBLE SHUTTING) यदि ष या श कृतिदेव में कार्य न करें।

- GO TO (OPEN) MS WORD➢CLICK MICROSOFT BUTTON LEFT TOP➢GO TO WORD OPTION➢GO TO PROOFING➢GO TO AUTO CORRECT OPTION➢CHECK THE STRAIGHT QUOTS WITH SMART QUOTS।

- **Font krutidev20 यहां से डाउनलोड कर लें।**
- **http://in.ffonts.net/Hindi.html।**
- **Font परिवर्तक के लिए निम्न लिंक से डाउनलोड कर लें।**
- **https://sites.google.com/site/technicalhindi/home**
- **http://svayambhava.blogspot.com/p/siddhanta-devanagariunicode-open-type.html**
- file:///E:/%E0%A4%9F%E0%A4%82%E0%A4%95%E0%A4%A3%20%E0%A4%B5%E0%A5%88%E0%A4%A6%E0%A4%BF%E0%A4%95%20%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%B5%E0%A4%B0/Dhiman%20UTTARA-to-Unicode-Converter.html

Vedic Accents

Following the rules of Pāṇini in the formation of a word from its rudimentary elements, the vowels acquire one of three basic pitch accents or *svara*:

(a) ***udātta***, raised pitch [1.2.29],
(b) ***anudātta***, not raised [1.1.30],
(c) ***svarita***, a blend of the first two [1.2.31].

The pronunciation of the *svarita* is initially *udātta* for the period of half a short vowel and *anudātta* for the rest (i.e. one and a half measures for a long vowel) [1.2.32]. In continuous speech or *saṃhitā*, all *anudātta* syllables following a *svarita* are called *pracaya* and are pronounced ***ekaśruti*** (monotone, between *anudātta* and *udātta*) [1.2.39], however, the *anudātta* immediately preceding a *svarita* or *udātta* is pronounced ***sannatara*** (lower than *anudātta*) [1.2.40]. The Vedas may also be recited entirely in *ekaśruti* (with exceptions) [1.2.36 ff.], nonetheless be aware that the accent may affect the meaning of a word, particularly a compound [6.1.223, 6.2.1] (e.g. *sú-kṛta*, ind. well done; *su-kṛtá*, n. a good deed).

With rare exceptions, a word standing alone has at most one vowel accented *udātta* or *svarita*, the rest being *anudātta* [6.1.158]. This is the basis of the Western system of marking Vedic accents in transliteration. Since most vowels are *anudātta*, this is taken as the basic or unaccented form, and the other accents are marked as:

(a) acute (´) for the *udātta* (e.g. *kárma*).
(b) grave (`) for the *svarita* (e.g. *vākyà*).

Vowel *sandhi*, besides producing a new vowel sound, also blends their accents: if this blending produces a *svarita* accent, it is called an **independent** *svarita* by Western grammarians. Where this independent *svarita* is within a word it is called *nitya* or ***jātya*** (innate), and where it arises due to the joining of words in *saṃhitā* (continuous speech) [8.2.4, 6] it is further classified according to the type of *sandhi*:

(a) ***Kṣaipra*** (quick) when the first vowel is replaced by its semivowel [6.1.77]; the name arises from the shortening of the time measure from that of a vowel to that of a semivowel. The *svarita* accent replaces an *anudātta* occuring immediately after the semivowel substitution for an *udātta* or *svarita* vowel [8.2.4] (e.g. *apsú antáḥ* ⇒ *apsvàntáḥ*).

(U or S_i) + A ⇒ semivowel + S_i .... (1)
where U=*udātta*, S_i=independent *svarita*, and A=*anudātta*.

(b) ***Praśliṣṭa*** (coalescence) when both vowels are replaced by a single vowel [6.1.84 ff]; the single substitute of an *anudātta* at the beginning of a word and the preceding *udātta*, becomes *svarita* optionally [8.2.6] (e.g. *ná evá* ⇒ *nàivá*).

U + A ⇒ S_i .... (2)

This rule applies to *sandhi* between words, whereas the general rule is that the single replacement of *udātta* and *anudātta* vowels (in either order) is *udātta* [8.2.5].

U + A or A + U ⇒ U .... (3)

(c) ***Abhinihita*** (close contact) when a following *a* is absorbed by a final *e* or *o* [6.1.109]; the rule for the accent follows that of the *praśliṣṭa* (e.g. *rayáḥ avániḥ* ⇒ *rayò'vániḥ*).

An independent *svarita*, when the next syllable has an *udātta* or independent *svarita* accent, is pronounced ***kampa*** (tremolo) in some traditions: this would apply in the above three examples.

S_i - (S_i or U) ⇒ K - (S_i or U)
where K=*kampa svarita*.

In *saṃhitā* there is a further *svarita* called ***śuddha*** (simple, mere); Western grammarians name it the **dependent**, substitute, or enclitic *svarita*. An *anudātta* syllable following one that is *udātta* becomes *svarita* [8.4.66], unless it is in turn followed by an *udātta* or *svarita* [8.4.67].

U - A ⇒ U - S_d .... (4)
where S_d= dependent *svarita*.
But U - A - (U or S) ⇒ U - A - (U or S) .... (5)

These rules combine to produce a rhythm in the sound:
A_s - U - S_d - A_e - A_e caused by the *udātta*, and
A_s - S_i - A_e - A_e caused by the independent *svarita*,
where A_s=*sannatara*, and A_e=*ekaśruti*.
The cadence becomes more complex with the reduction of syllables separating the main accents (U and S_i), so as to eliminate the *ekaśruti* or even the dependent *svarita*.

At this point it would be useful to present a practical illustration of these accent changes that arise in continuous speech. The example is taken from the *Ṛgveda* (10.125.7): the verse is shown as separate words and then in *saṃhitā* showing the applicable rules.

ahám suve pitáram asya mūrdhán máma yóniḥ apsú antáḥ samudré,
tátaḥ ví tiṣṭhe bhúvanā ánu víśvā utá amū́m dyā́m varṣmáṇā úpa spṛśāmi.

(4) (4) (5) (4) (1, *kampa*) (4)

ahám̐ sùve pitáràm asya mūrdhán máma yónìrapsvàntáḥ sàmudré,

(5) (4) (5)(3)(5) (5)(3*) (5) (3)(4)

táto ví tìṣṭhe bhúvanā́nu víśvotā́mū́m dyā́m varṣmánópà spṛśāmi.

(* optionally, rule 2 could apply here and become *kampa*.)

The tradition of Western sanskritists emphasizes grammar and translation, and thus will use the form of separated words in transliteration; it is unusual to find fully accented *saṃhitā* text in transliteration: at best only the *udātta* and *jātya svarita* are marked. India, on the other hand, has an oral tradition which emphasizes pronunciation and rhythm, and thus the marking of accents in *devanāgarī* script is optimized for correct pronunciation; in fact, the written form is a much later development and has given rise to different methods of accent notation. The various traditions are discussed separately:

(a) ***Ṛgveda*** has *udātta* unmarked; the *svarita (jātya* or *śuddha*) is marked with a vertical line above the syllable (e.g. अ॑), but the *kampa* is indicated by a numeral 1 following the vowel if it is short, or the numeral 3 if it is long, and in both cases there is a vertical line above the numeral and a horizontal line below it; in the case of the long *kampa* vowel the syllable usually also has a horizontal line below it (e.g. अ१॒॑ आ॒३॒॑ आ३॒॑). The *anudātta* is marked with a horizontal bar below the syllable: this applies to all *anudātta* syllables before the first *udātta* or *svarita* in a line of verse, after which only those *anudātta* that immediately precede an *udātta* or *svarita* (i.e. *sannatara*) is marked, and the rest of the *anudātta* (i.e. *ekaśruti*) are not marked.

Using the sample verse from the *Ṛgveda*, the accent marking in transliteration and the original *devanāgarī* is:

a̱haṃ su̍ve pi̱tara̍masya mū̱rdhan mama̱ yoni̍ra̱psva1̱ntaḥ sa̍mudre,
tato̱ vi ti̍ṣṭhe̱ bhuva̱nānu̱ viśvo̱tāmūṃ dyāṃ va̱rṣmanopa̍ spṛśāmi.

अ॒हं सु॑वे पि॒तर॑मस्य मू॒र्धन्मम॒ योनि॑र॒प्स्व१॒न्तः सं॑मु॒द्रे।
ततो॒ वि ति॑ष्ठे॒ भुव॒नानु॒ विश्वो॒तामूं॒ द्यां॑ व॒र्ष्मनोप॑ स्पृशामि॥

To illustrate the notation when a verse begins with multiple *anudātta* syllables, let the first word have no accent, thus:

> *a̱ha̱ṃ su̱ve̱ pi̱tara̍masya mū̱rdhan mama̱ ...*
>
> अ॒हं॒ सु॒वे॒ पि॒तर॑मस्य मू॒र्धन्मम॒ ॰

For the *Ṛgveda* the current practice in India is, apparently, to pronounce all syllables marked with the underbar (*anudātta* and *sannatara*) as *anudātta*, all unmarked syllables (*udātta* and *ekaśruti*) as *ekaśruti*, and syllables marked *svarita* as moving from *udātta* to *ekaśruti*.

(b) ***Sāmaveda*** accents are marked with a numeral, or numeral and letter, above the syllable: *udātta*, *svarita*, and *anudātta* are marked with the numerals 1, 2, and 3 respectively; the figure 2 is also used to indicate an *udātta* when there is no following *svarita*; *ekaśruti* syllables are not marked. Special marking is used for particular accent sequences:

U - U - S	⇒	1 - unmarked - 2r
U - U - A	⇒	2u - unmarked - 3
A - S_i	⇒	3k - 2r

Using the same passage from the *Ṛgveda* as an illustration, the marking in transliteration and *devanāgarī* would be:

3 1 2 3 1 2 3 2u 3 1 2 3k 2r 1 2
ahaṃ suve pitaramasya mūrdhanmama yonirapsvantaḥ samudre,
2 3 1 2 3 2 3 2 3 2 3 2 2u 3 1 2r
tato vi tiṣṭhe bhuvanānu viśvotāmūṃ dyāṃ varṣmanopa spṛśāmi.

३ १ २ ३ १२ ३ २उ ३ १ २३क २र १ २
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ २उ ३ १ २र
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मनोप स्पृशामि॥

(c) ***Śatapatha-Brāhmaṇa*** uses only two accents, *udātta* and *anudātta*: a horizontal line below the syllable indicates *anudātta* (as in the *Ṛgveda*). The relationship to the grammatical accents described by Pāṇini is rather indirect: the *anudātta* marked here are the syllables **before** those which would be marked *svarita* in the *Ṛgveda* with rule (5) not applying.

Using the sample verse from the *Ṛgveda*, the accent marking would be:

अह॒ं सुवे पित॒रमस्य मूर्धन्म॒म यो॒निर॒प्स्वन्त॒ः समुद्रे।
त॒तो वि॒ तिष्ठे भु॒वना॒नु वि॒श्वोतामूं द्या॒ं वर्ष्मनो॒प स्पृशामि॥

> **Caution:** beyond this point, the information to hand is incomplete and should be treated circumspectly.

(d) ***Maitrāyaṇī-Saṃhitā*** marks the *udātta* with a vertical line above the syllable; the independent *svarita* is indicated by a curve below (अ᳒); the dependent *svarita* has a horizontal line crossing the middle of the syllable or three vertical strokes above it (अ᳘) or a dot below it (अ᳭); the *anudātta* is marked with a horizontal line below.

(e) ***Kāṭhaka-Saṃhitā*** marks the *udātta* with a vertical line above the syllable; the independent *svarita* is indicated by a curve below (अ᳒) only if an *anudātta* follows, otherwise by a hook below (अ᳙); the dependent *svarita* has a dot below the accented syllable (अ᳭); the *anudātta* is marked with a horizontal or vertical line below (अ॒ अ᳚).

(f) ***Taittirīya-Saṃhitā, -Brāhmaṇa, and -Āraṇyaka, and Atharva-Veda, and Vājasaneyi-Saṃhitā*** are marked as the *Ṛgveda*, with minor differences, mainly in the marking of the *svarita* before an *udātta*.

Works consulted:

(a) S.M. Katre, Aṣṭādhyāyī of Pāṇini, Motilal Banarsidass.
(b) Ś.C. Vasu, The Siddhānta Kaumudī, Motilal Banarsidass.
(c) A.A. Macdonell, A Vedic Grammar for Students, Appendix III.
(d) W.D. Whitney, Sanskrit Grammar, para.80–97.
(e) M. Williams, A Practical Grammar of the Skt. Lang., para.975–985.
(f) K.V. Abhyankar, A Dictionary of Sanskrit Grammar, M.S. Univ. Baroda.
(g) Bureau of Indian Standards, ISCII (1991), Annex G.
(h) The *Bhāṣika* Accentuation System, George Cardona,
Studien zur Indologie und Iranistik 18 (1993): 1–40.

Notation	*udātta*	*svarita*	*anudātta*	special
Ṛgveda		अ॑ अ१॒॑ अ॒३॒॑ अ३॒॑	अ॒	
Sāmaveda	अ१	अ२	अ३	अ२उ अ२र अ३क
Śatapatha		अ॒		
Maitrāyaṇī-Saṃhitā	अ॑	अ᳚ अ᳛ अ᳝	अ॒	
Kāṭhaka-Saṃhitā	अ॑	अ᳚ अ᳖ अ᳝	अ॒ अ꣡	
Taittirīya-Brāhmaṇa, *-Saṃhitā, -Āraṇyaka*		अ॑ अ१॒	अ॒	
Atharvaveda		अऽ अ॑ अ१॒॑ अ॒३॒॑ अ३॒॑	अ॒	
Vājasaneyi-Saṃhitā		अ॑ अ१॒॑ अ॒३॒॑ अ३॒॑	अ॒	
Taittirīya-Upaniṣad		अ॑ अ᳚	अ॒	
Śukla Yajurveda		अ᳜		
Non-Tait.° Yajurveda		अ᳙		
??? Sentence ending	अ᳟			

This file (possibly updated) is available from:
`ftp://ftp.nac.ac.za/wikner/accent.ps600-june97`.
Comments and corrections to: wikner@nac.ac.za.

25 June 1997.

have to recite the *Vēṣṭanā*. For the last *padā* in a sentence also, we have to recite the *Vēṣṭanā*, whether it is a *Padā Vēṣṭanā* or not. If we express this in Mathematical series:

Mathematical Sequence, Series for *jatā Pāthā* :

Sentence (S) = $P_1, P_2, P_3, \ldots\ldots\ P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_n$
Jata Turn (T) number (T_1 to $_{n-1}$)
Turn 1 (T_1) = $P_1, P_2, P_2, P_1, P_1, P_2$;
Turn 2 (T_2) = $P_2, P_3, P_3, P_2, P_2, P_3$;
....
....
....
Turn n-2 (T_{n-2}) = $P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_{(n-1)}, P_{(n-2)}, P_{(n-2)}, P_{(n-1)}$;
Turn n-1(T_{n-1}) = $P_{(n-1)}, P_n, P_n, P_{(n-1)}, P_{(n-1)}, P_n$; **

Hence General Combination for *jaṭā Pāṭhā* is :
Turn n-1(T_{n-1}) = $P_{(n-1)}, P_n, P_n, P_{(n-1)}, P_{(n-1)}, P_n$;

where, n > 1, and Max No. of Turn < n (without any *Vēṣṭanā*)
P_n = n^{th} *Padā* in a Sentence
T_n = Turn of *jaṭā Pāṭhā*
n = Number of *Padā* in a Sentence

***Ghana pāṭhā* :** This is one of the most popular form of recitations and requires years of learning and practice by the student. A scholar proficient in recitation in this format is honored as *Ghana pāthi*. In *Ghana Pāṭhā* the combination will be: 1-2-2-1-1-2-3-3-2-1-1-2-3
2-3-3-2-2-3-4-4-3-2-2-3-4, 3-4-4-3-3-4-5-5-4-3-3-4-5 and so on till last *padā* ends in that sentence. Hence, *jaṭā* + 3rd *Padā* + Inverse of 3 *Padās* + 3 *Padās* in Straight way = *Ghana Pāṭhā*. It

is to be noted, there all 13 *padās* have to be recited together with proper sandhi (junction) In *Ghana Pāṭhā*, there will be 12 *sandhies*. When the *Padā* itself is a *Vēṣṭanā*, then, as soon as it leaves from its turn, we have to recite the *Vēṣṭanā*. For the last *padā* in a sentence also, we have to recite the *Vēṣṭanā*, whether it is a *Padā Vēṣṭanā* or not. If we express this in Mathematical series:

Mathematical Sequence, Series for *Ghana Pāṭhā*:

Sentence (S) = $P_1, P_2, P_3, \ldots\ldots\ P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_n$
Ghana Turn (T) number (T_1 to $_{n-2}$)
Turn 1 (T_1) = $P_1, P_2, P_2, P_1, P_1, P_2, P_3, P_3, P_2, P_1, P_1, P_2, P_3$;
Turn 2 (T_2) = $P_2, P_3, P_3, P_2, P_2, P_3, P_4, P_4, P_3, P_2, P_2, P_3, P_4$;

....

....

....

Turn n-2 (T_{n-2}) = $P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_{(n-1)}, P_{(n-2)}, P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_n, P_n, P_{(n-1)}, P_{(n-2)}, P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_n$;
Turn n-1(T_{n-1}) = $P_{(n-1)}, P_n, P_n, P_{(n-1)}, P_{(n-1)}, P_n$ **

Hence General Combination for *Ghana Pāṭhā* is :
Turn n-2 (T_{n-2}) = $P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_{(n-1)}, P_{(n-2)}, P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_n, P_n, P_{(n-)}, P_{(n-2)}, P_{(n-2)}, P_{(n-1)}, P_n$;

where, $n > 2$, and Max No. of Turn < n-1 (without any *Vēṣṭanā*)

P_n = n^{th} *Padā* in a Sentence

T_n = Turn of *Ghana Pāṭhā*

n = Number of *Padā* in a Sentence

When a sentence has more than 4 words (*Padās*), then 1st *Padā* repeats 5 times, 2nd *Padā* 10 times and last but one 11 times, and last *padā* 6 times back and forth in different combinations. (except for *Padā Vēṣṭanā* and *Vēṣṭanā* for the end of the sentence). The rest of *padās* (i e from 3rd *padā* to last but two will repeat for 13 times)

** We could see, even if a sentence has any number of *padā*, for last two *padās*, the *Ghana* is as same as *Jatā*.

When a sentence has 4 *Padās*, then 1st *Padā* repeats 5 times, 2nd *Padā* 10 times, 3rd *Padā* 11 times and the last (4th) *Padā* 6 times back and forth in different combinations. (except for *Padā Vēṣṭanā* and *Vēṣṭanā* for the end of the sentence).

When a sentence has 3 *Padās*, then 1st *Padā* repeats 5 times, 2nd *Padā* 8 times, and the last (3rd) *Padā* 6 times back and forth in different combinations. (except for *Padā Vēṣṭanā* and *Vēṣṭanā* for the end of the sentence).

When a sentence has only 2 *padās*, then it is like *Jatā Pāṭhā* only.

When we listen to a *Ghanapāthi* reciting *Vēdās* in *Ghana* form, we note that he repeats *padās* in various ways, back and forth and in different patterns. This would be pleasant to the ears and creates a sense of happiness within. It would seem that the natural splendor of the *Vēdā mantras* is heightened, as it were We can now appreciate the rigor. a *Ghanapāthi* has to g

through in his education to learn, by heart, the thousands of *mantras*, to be able to recite in *Ghana* form.

The *Samhitā Pāṭhā* and *Padā Pāṭhā* are called *Prakrithi* (or natural) *Pāṭhās*, as the words of the *mantras* occur in normal sequence. The rest are called *Vikrithi* (or artificial and not natural) *Pāṭhās*. In Krama, although the words do not occur in the natural order of one, two and three, since they do not revert like one after two and two after three, it cannot be called fully *Vikrithi*.

<u>The *Vīkrithis*</u> are eight in number:

jaṭā mālā śikhā rēkhā dhvajō daṇḍō rathō ghana :
aṣṭau vikṛtaya : prōktā ; kramapūrvā maharṣibhi :

jaṭā, mālā, śikhā, rēkhā, dhvajā, daṇḍā, and *rathā* and *ghanā*

Two types of *mālā* (garland) exist: a) *krama mālā* and b) *puṣpa mālā*. This is similar to *krama pāṭhā* in that two-word units with the characteristic overlapping are the foundation. *śikhā* (top knot) is similar to *jaṭā* except that, third word will be combined at the end of *jaṭā*. Recitations in *rēkhā* (row), *dhvajā* (flag), *daṇḍā* (Rod), and *rathā* (chariot) are more complex and the learner/reader should get advice from *pundits*.

Further, there are three types of *rathā*, namely, *dvicakrō* (two wheels), *tricakrō* (three wheels) and *catuścakrō* (4 wheels). Each wheel corresponds to a part of a verse (*ṛak*) of the text.

By repeating the words in manifold ways, the correct tally of

Vārttika-s

Introduction —

Kātyāyana's *vārttika*-s (approximately 3rd C.b.c.) have set a norm of the shortest commentary that explains, criticizes and supports the theme of the text to be focused.

Though the history of the grammatical thoughts as well as the activities start from the Vedas and from the Ṛgveda *padapāṭha*; the actual known grammatical text is Pāṇini's *sūtra*-s. The corpus of these almost 4000 compact statements is called Aṣṭādhyāyī which belongs to the 5th century b.c. according to the majority of scholars.

It is believed that two hundred years after Pāṇini, when the need arose to supplement as well as to explain Pāṇini's observations about the language Kātyāyana wrote the *varttika*-s.

Vyākaraṇa as a *vedāṅga* —

For the better understanding of the vedic texts 6 ancillary systems came forth. These are called *vedāṅga*-s which are as follows –

Śikṣā (guidelines for correct pronunciation of the veda-s), *Kalpa* (aids to know how to follow ritualistic aspect of the vedas), *Vyākaraṇa* (guidelines to understand the language of the vedas), *Nirukta* (guidelines to understand the meaning of the vedic words), *Chandas* (guidelines to understand the metrical composition of the Vedas). *Jyotiṣa* (aids to understand exact time or positions of planets, constellation etc).These *vedāṇga*-s are helpful for reciting and understanding the vedic texts and for performing the ritual accordingly.

It goes without saying that the *vȳakaraṇa* is one out of these six *vedāṇga*-s. However Pāṇini's Aṣṭādhyāyī is the only text that is taken as the *Vedāṅga Vyākaraṇa*. The Aṣṭādhyāyī describes the nuances and intricacies of the classical Sanskrit. However Pāṇini takes note of the special features of the vedic language

and mentions those particular peculiarities with the words *chandasi*, *Brāhmaṇe*, *Yajuṣi*, etc.

The *daśagrantha* tradition includes these basic texts of the *vedāṅga*-s.

The traditional maxim '*trimuni vyākaraṇam*' shades light on the basic texts of the *vyākaraṇa vedāṅga* which are Aṣṭādhyāyī of Pāṇini, *vārttika*-s of Kātyāyana and Mahābhāṣya of Patañjali.

The Definition of the vtt. —

The traditional definition of the *vārttika*-s is as follows -

उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।

तं ग्रन्थं वार्त्तिकं प्राहुर्वार्त्तिकज्ञा मनीषिणः।।

(Tr. The wise ones call that text *vārttika* in which the discussion is held about what is spoken, what is not spoken and what is ill spoken.)

However Pt. Yudhiṣṭhira Mīmāṁsaka has pointed out that the said definition works in case of the *vtts* which are on the *bhāṣya* and not on the *sūtra*. The *śloka* and *tantra vārttika*-s on Śābarabhāṣya and Sureśvara's *vtts* on the *Sāṅkarabhāṣya* are the examples of this definition. The Kātyāyana-*vtts* are directly on the *sūtra*-s. So this definition doesn't suit them. Pt. Yudhiṣṭhira Mīmāṁsaka quotes the definition of *vtts* from Viṣṇudharmottara Purāṇa (*khaṇḍa* 3, *Adhyāya* 6). However the actual text of Viṣṇudharmottara Purāṇa says, 'सांवर्तिको धर्मगुणोऽष्टकश्च' whereas Pt. Yudhiṣṭhira Mīmāṁsaka reads it as 'स वर्तिको धर्मगुणोऽष्टकश्च'.

There are some other terms used for the *vtts* such as *vākya, vyākhyāna-sūtra, bhāṣyasūtra, anutantra* and *anusmṛti*.

A brief account of the *vārttikakāra*-s other than those of Kātyāyana —

Pāṇini was followed by many grammarians out of which Bhāradvāja, Kṛoṣṭṛ, Vāḍava, Sunāga, Vyāghrabhūti, Vaiyāghrapāda and Kātyāyana wrote *vtts* i.e. critical and supplementary notes on the Aṣṭādhyāyī. However except that of Kātyāyana, the works of other *vārttikakāra*-s have lost. Apart from the grammarians mentioned

by the MBh, some unknown grammarians have also contributed to the corpus of the *vtts*. E.g. समो हिततयोर्वा लोपः this is the *vtt* on P 6.1.144. The name of any specific grammarian is not mentioned here. However Patañjali commenting on P 1.1.27 सर्वादीनि सर्वनामानि says, 'इहान्ये वैयाकरणाः समस्तते विभाषा लोपमारभन्ते – समो हिततयोर्वेति।'

This means the actual *vtt* समो हिततयोर्वा लोपः is from the grammarian other than Kātyāyana.

Patañjali has mentioned the *Vtts* of Bhāradvāja in the *bhāṣya* on P 1.1.20,56; P 1.2.22; P 1.3.67; P 3.1.38,48,89; P 4.1.79; P 6.4.47,155.

Whether the Bhāradvāja *vtts* directly focused the *Pāṇinīya sūtras* or these are the *vtts* from some non-Pāṇinian grammatical tradition is not clear. A point should be noted that Pāṇini has also mentioned the grammarian Bhāradvāja.

Another bigger group of the *vtts* is that of Saunāga *vtts*. The MBh mentions the Saunāga *vtts* in the *bhāṣya* on P 2.2.18, P 3.2.56, P 4.1.74;87, P 4.3.155, P 6.1.95 and P 6.3.43.

Yudhiṣṭhira Mīmāṁsaka maintains that like the Kātyāyana *vtts* the Saunāga *vtts* might have been directly on the Pāṇinian *sūtra*-s.

The Saunāga *vtts* are comparatively bigger than Kātyāyana *vtts*. Even Patañjali has noticed this fact saying , 'एतदेव च सौनागैर्विस्तरतरकेण पठितम्।'

There is only one reference to the Kroṣṭrīya *vtts* with the remark, 'परिभाषान्तरमिति च कृत्वा क्रोष्ट्रीयाः पठन्ति –नियमादिको गुणवृद्धी भवतो विप्रतिषेधेन।' (MBh on P 1.1.3)

The MBh on P 8.2.106 mentions Vāḍava and elsewhere Patañjali also mentions Kuṇaravāḍava. Whether both are one or different is a point of dispute. The MBh doesn't mention any *vtt* of Vāḍava. It is Nāgeśa in his Bhāṣyapradīpodyota on P 8.2.106 mentions 'सिद्धं त्विदितोरिति वार्त्तिकं वाडवस्य'.

There is only occasional reference to Kuṇaravāḍava (कुणरवाडवस्त्वाह नैष वहीनरः....वैहिनरिः।). No *vtt* is mentioned of Kuṇaravāḍava.

Vyāghrabhūti is not directly mentioned in the MBh. However Kaiyaṭa says that the *ślokavārttika* जग्धिविधिर्ल्यपि etc. quoted in the MBh on P2.4.36 is from Vyāghrabhūti.

The MBh does not mention any *vtt* of Vaiyāghrapadya. However a *śloka* शुष्किकाशुष्कजङ्घा च referred to by Kāśikā on P8.2.1 पूर्वत्रासिद्धम् is mentioned as from Vaiyāghrapadya by Bhaṭṭoji Dīkṣita.

Pt. Yudhiṣṭhira Mīmāṁsaka maintains that Vaiyāghrapadya might have been a grammarian who might have composed his own grammar.

Thus the occasional references in the MBh suffice the fact that at least 8 grammarians have composed the *vtts* on the Aṣṭādhyāyī out of whom Kātyāyana's ones are available to us.

About Kātyāyana and his *vārttikapāṭha* —

Kātyāyana —

The *vtt pāṭha* that is available today is believed to be that of Kātyāyana. Hence Kātyāyana is aptly recognized as the *vārttikakāra* even by MBh.

There are some other treatises that are also credited to the name Kātyāyana, such as Śulbasūtra, Yajuḥ Prātiśākhya etc. Whether these are different Kātyāyana-s or one, is a point of dispute. This problem is resolved by Pt. Yudhiṣṭhira Mīmāṁsaka saying that there might have many Kātyāyana-s, out of them *vārttikakāra* Kātyāyana is Vararuci Kātyāyana staying in southern part (to the south of Vindhya mountains) of India as per the remark of Patañjali.

***Vārttikapāṭha* —**

Kātyāyana has composed *vāttika*-s on 1245 *sūtra*-s only. The number of the *vtts* on each of 1245 *sūtra*-s varies. The total number of the *vtts* goes upto 4000 approximately.

There are very few good editions of सवार्त्तिकसूत्रपाठ (i.e. the text of the *sūtra*-s accompanied by the *vtts* there on). There are some editions that give bare texts of the *vtts* as an appendix.

A point to be noted that a *vtt-pāṭha* appended to Kāśikāvṛtti and the one to the Siddhāntakaumudī slightly differ.

The *vtts* are commented upon by Pantañjali. The commentary is called Mahābhāṣya. The *vtts* that occur in the MBh are taken as the authentic one.

Thus there is no separate text of *vtts*. They are always to be read in the context of the *sūtra*-s and as a part of the MBh.

About the *vārttika*-s —

The vtts are like the small, compact notes on the *sūtra*-s. The *vārttikakāra* has tried to maintain *sūtra*-style i.e. a condensed statement without the verbal form. According to K.V. Abhyankar, the *vtts* seem to be notes on the *sūtra*-s prepared by some teachers, to facilitate the teaching of the *sūtra*-s. The *vtts* have suggested omission, addition, modification and explanation for either certain word of a *sūtra* or for the entire sutra. So there are some *vtts* explaining the meaning of the *sūtra*-s E.g. *vtts* on P 1.1.9 तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् and P 1.1.10 नाज्झलौ. Here Kātyāyana has introduced the principle of *vākyāprisamapti* i.e. interdependency of the sentences in one given discourse. Accordingly one sentences plucked out of the context is meaningless. Some *vtts* investigate the purpose behind the formation of the *sūtra*, E.g. 30 *vtts* on P1.1.56 स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ। Some *vtts* reveal the significance of certain word of the *sūtra*. (E.g. 17 *vtts* on the P 1.1.3 इको गुणवृद्धी and 10 *vtts* on P 1.1.51 उरण्रपरः). The *vtts* on the *sūtra*-s P1.1.6 दीधिवेवीटाम् and P 1.1.64 पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्। have refuted some words from the *sūtra*-s. The *vtts* on the *pratyāhāra sūtra* ऋऌक् and on P 1.1.4 न धातुलोप आर्धधातुके have refuted the entire *sūtra*-s. The *vtts* on P 1.1.11 ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम् and P 1.1.13 शे have justified the *sūtra*-s through the debate method.

Many scholars maintain that the *vtts* are composed so to find out faults with Pāṇini. According to them the phrases 'उपसंख्यानम्' or 'इति वक्तव्यम्' in the *vtts* are stating the lacuna of the *sūtra*-s. When Kātyayāna refutes a word and even a *sūtra*, he is taken as attacking Pāṇini. However so is not the case, holds K.V. Abhyankar.

He maintains that Kātyāyana's suggestions about the addition, omission and refutation of certain *sūtra* is the reflection of the change in the language. When Kātyāyana thinks that certain word - current in the language - could not be accounted for by the *sūtra,* he suggests the addition or modification in the *sūtra,* so to cover that particular word or the expression.

Kātyāyana's contribution to grammatical tradition —

1. Kātyāyana's first *vtt* **सिद्धे शब्दार्थसंबन्धे लोकतः अर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण धर्मनियमः क्रियते यथा लौकिकवैदिकेषु।** gave the decisive turn to the history of grammar. He states that the role of grammar is to make '*dharmaniyama*', i.e. the grammar 'instructs' that the correct words should be spoken since it contributes to the religious merit. With this crept the concept of '*sādhutva*' for the language and that of the *dharma* as a result of using *śāstra* i.e. grammar-sanctioned words. The *vtt* 9 from Paspaśāhnika also echos the same idea- '**शास्त्रपूर्वके प्रयोगेऽभ्युदयस्तत्तुल्यं वेदशब्देन** (Tr. the prosperity lies in using the words with proper knowledge of the rules. It is just like the words from the veda-s)'. This gave the role of instructor of the *sādhu* words or sanctioning authority to the grammar.

This very concept of grammar being *śāstra* i.e. sanctioning authority motivated the *vārttikakāra* himself to compose the *upasaṁkhyāna vtt*s in order to bring some usages prevalent then under the purview of grammar. The *prakriyā* texts that guide the formation of the words according to the *sūtra*-s, other grammatical traditions giving easier and less complicated program to form the words and sentences came forth with the sole motivation of teaching how to form *sādhu* words.

2. Kātyāyana's view about the grammar is note worthy. He says, '**लक्ष्यलक्षणे व्याकरणम्।** (*vtt* 14 quoted in the Paspaśāhnika of MBh). (Tr. the grammar means both the targeted language and rules to govern it). This foresighted grammarian has

explicitly stated that a grammar cannot neglect the spoken language, which further implies that if the language goes on changing then the grammar has to take note of it. According to this *vtt* the grammar is *lakṣaṇa* i.e. on one hand it 'describes' the language and on the other hand it 'defines' the language.

3. The *vtt* is first available text introducing debate or dialogue style of commentary. Considering the chronology of the Sanskrit literature Kātyāyana follows Yāska who has used prose 'explanatory style'. However it is Kātyāyana, who has tried actual argument style with the expressions, सिद्धं तु, 'न वा', 'इति वक्तव्यम्' etc. The structure of this style is 'if' it is 'A' then there should be 'B', otherwise there would be 'C' which is not desired.

E.g. कारक इति संज्ञानिर्देशश्चेत्संज्ञिनोऽपि निर्देशः । *vtt* 1 on P 1.4.23

इतरथा ह्यनिष्टप्रसङ्गो ग्रामस्य समीपादागच्छतीत्यकारकस्य।। *vtt* 2 on P 1.4.23

Through subsequent *vtts* 7,8,9 etc. he has stated how the role of *kartṛ* can be assigned to the objects that are otherwise instruments, substratum etc. in the certain action. So the debate is settled on the point that the *saṁjñā sūtra* P 1.4.23 कारके doesn't need *saṁjñi*, since the technical term *kārake* itself is very significant and appropriate. The *vtts* of Kātyāyana are bigger than Pāṇini *sūtra*-s but they have maintained the rhythmic prose style sometimes even akin to metrical composition.

4. The commentarial merit of the *vtt* lies in its justifying certain word from the *sūtra*. E.g. *vtt* on P 1.1.3 इको गुणवृद्धी is 'इग्ग्रहणमात्सन्ध्यक्षरव्यञ्जननिवृत्यर्थम्' (Tr. The word *ik* in the *sūtra* is to restrict the application of *guṇa* and *vṛddhi* to *ā*, dipthongs i.e. *e, o, ai, au* and consonants). The *vtt* means to say that in absence of the word *ik*, the *guṇa* and *vṛddhi* would have been applicable to *ā*, dipthongs and to consonants also, which is not desired.

5. It is Kātyāyana who has given some novel techniques for the interpretation of the *sūtra*-s such as *yogavibhāga* i.e. splitting a rule.

E.g. P 1.1.17 is उञ ऊँ (Tr. The particle *uÑ* becomes *pragṛhya* when followed by *iti* and substituted by *ū*).

Kātyāyana has suggested the split in the *sūtra* through the *vtt* on this *sūtra*. 'उञ इति योगविभागः।' which means the *sūtra* should be split at *uñaḥ*. Then the meaning we get is that the particle *u* is *pragṛhya* when followed by *iti* according to Śākalya. This implies that according to Pāṇini it is not *pragṛhya* and hence can undergo *samdhi*. Thus according to Śākalya the form will be 'उ इति' whereas according to Pāṇini the *u* would form *saṁdhi* with *iti* and it would be विति.

With split one gets one more rule 'ऊँ'. The *vtt* 2 on the *sūtra* is 'ऊँ वा शाकल्यस्य।' means according to Śākalya the *u* is substituted by ऊँ i.e. nasalized *uÑ*.

The result of the *yogavibhāga* is there would be 3 forms with the particle '*u*'

1. उ इति - no *saṁdhi* being *pragṛhya*
2. विति - with *saṁdhi*
3. ऊँ इति - with substitution of nasalized

6. Extending scope of the *sūtra* through *upasaṁkhyāna vtts* is the major contribution of the *vārttkakāra*. The scope of the *sūtra* is extended to cover the contemporary usages which otherwise would have been left unaccounted. E.g. P 1.4.24 ध्रुवमपायेऽपादानम् assigns the technical term *apādāna* to the object that is the stable point in the action meaning 'moving away'. Accordingly ग्रामादागच्छति (He comes from a village) is justified. However the colloquial usages अधर्मात् जुगुप्सते, धर्माद् विरमति, स्वाध्यायान्मा प्रमदः etc. remain unjustified by the *sūtra,* since the verbs therein do not contain any element meaning movement. Thus the *vtt* on P 1.4.24 जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् extends the scope of the *apādānasamjñā* to the *karaka*-s that are directly involved in these actions, viz *jugupsā* - abhorrence, *virāma* - deviation, *pramāda* - negligence.

6.1 The *vtts* that extend the scope of the *sūtra* are called *upasaṁkhyāna vtts*. As it is Pāṇini's *sūtra* corpus can hardly account for the usages such as प्रकृत्या मधुरः or प्रासादात् प्रेक्षते or किं निमित्तं वसति, केन निमित्तेन वसति and with all other *vibhakti*-s. It is *vārttikakāra* who composed *vtts* (*vtt* 1 on P 2.3.18, *vtt* 1 on P 2.3.28, *vtt* 1 on P 2.3.23) to justify these usages. These *vtts* got the status and authority of the *sūtra*-s.

6.2 Complimentary *vtts* to *dvittva* (reduplication) (*vtts* 2,3 on P 6.1.3) justify the forms such as *īrṣyiyiṣati* (or *īrṣyiṣiṣati), kaṇḍūyiyiṣati* etc.

7. Exactly apposite to *upasaṁkhyāna*, the *vtts* have restricted the scope of the words from the *sūtra*, concentrating on their meaning. E.g. *vtt* 5,6,7 on P 1.4.52. The *sūtra* is about the roots meaning eating and about those meaning 'movement'. Out of several roots meaning to eat the roots *ad* and *khād* are excluded by the *vārttikakāra*. Out of the verbs meaning 'movement' he excludes the root '*vah*' when the agent of the *vah* is not under the control of the causative agent. There are several such examples. Like the *upasaṁkhyāna vtts* these restricting *vtts* also aim at getting *sūtra*-sanction to some current forms. It is necessary since the over application of the *sūtra* may yield the forms which are not used and those which are actually used would remain unaccounted.

I would like to discuss the point why Kātyāyana does so? I sincerely maintain that the entire *upasaṁkhyāna* or *anuktacintā* activity seems to be motivated by the concept of '*sādhutva*' which means forms derived by or sanctioned by the rules of grammar. If certain usage which is current in the language but could not be derived from the rules, then it means people are speaking wrong form. The *upasaṁkhyāna* or 'इति वक्तव्यम्' type of vtts bring these so called wrong or ungrammatical forms under the perview of grammar. As per Kātyāyana's definition of grammar (c.f. लक्ष्यलक्षणे व्याकरणम् / *vtt* 14 quoted in the Paspaśāhnika of MBh) the grammar cannot stand without *lakṣya* i.e. the language.

8. The *vtt* on P 1.4.27 वारणार्थेषु कर्मग्रहणानर्थक्यं कर्तुरीप्सिततमं कर्मेति वचनात्। (Tr. In the *Sūtra* वारणार्थानामीप्सितः, the word *karma* doesn't bear any significance, since Pāṇini has already formed the *sutra* कर्तुरीप्सिततमं कर्म।) gives the clue that the *vārttikakāra* might be having different wording of the *sūtra*, than what we know. The *vtt* says that the word *karma* in the present *sūtra* is of no use. However the actual *sūtra* doesn't bear the word *karman*.

9. The importance of the *vtts* also lies in shading light on some crucial concept in the *sūtra*-s. E.g. P 2.1.1 समर्थः पदविधिः।

It is the *vtt* that defines the concept *sāmarthya* saying पृथगर्थानामेकार्थीभावः समर्थवचनम् *vtt* 1 on P 2.1.1. Kātyāyana also mentions another definition of *sāmarthya* (c.p परस्परव्यपेक्षां सामर्थ्यमेके *vtt* 4, ibid)

10. Definition of *vākya* is one more contribution of the *vtts*. The *vtts* 9 and 10 on P2.1.1 define *vākya*. *Vtt* 9 is आख्यातं साव्ययकारकविशेषणं वाक्यम्। (Tr. A verbal form along with the particle, the *karaka*-s and the qualifiers is *vākya*). The *vtt* 10 defines *vākya* as एकतिङ् वाक्यम् (Tr. A group of words containing one *tiṅanta* i.e. finite verbal form is *vākya*).

11. The *vārttikakāra* has also introduced new suffix *kelimar* to be added to the roots in the agentive sense, (c.p केलिमर उपसंख्यानम् *vtt* 1 on P3.1.96) to account for the forms *pacelimāḥ, bhidelimāni* etc. Since Pāṇini has not enumerated this suffix, such forms could have been *asādhu*. With the *vtt* such forms got the *sādhutva* (i.e. grammatical correctness).

12. Some *vtts* help to understand the *sūtra*-s. These *vtts* are called *paribhāṣā vtts*. E.g. नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे *vtt* 2 on P 1.1.65 ङ्याब्ग्रहणमनर्थकं प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणात्। *vtt* 4 on P 4.1.1
कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि। *vtt* 9 on P 1.4.13

न वा निर्दिश्यमानस्यादेशत्वात्। *vtt* 3 on P 6.4.130

सिद्धं तु लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणात् *vtt* 2 on P 6.2.2

Several such *paribhāṣā vtts* are incorporated in the Paribhāṣenduśekhara with slight change in the wording.

Some important theories proposed by the *vārttikakāra*. —

1. The *śabda* (word), *artha* (meaning) and their relationship is eternal i.e. not produced by any agency such as speech community or grammar or any grammarian.
2. Using the grammatically correct form yields the 'dharma' religious merit.
3. Though a long vowel seems to be a cluster of two short ones, it should always be treated as the separate integral entity and never as a cluster of two vowels. (*vtt* 9 on ऐऔच्।)
4. A syllable is independently meaningless. However a certain sequence of the syllables when recognized as a root or stem or suffix (*prātipadika*) does bear meaning. (*vtt* on P 1.2.45)
5. *Vārttikakāra* maintains that *anusvāra* and *visarga* being *ūṣman* sound should come under the *antaḥsthā*.

Epilogue —

Thus the contribution of *vtts* may be evaluated from 3 different view points. From language point of view it has set a trend to get authenticity to the words being used. From grammatical view point the *vtts* have introduced new suffixes. From philosophical view point *vtts* have introduced the concept of eternity of the word its meaning and their relationship.

So this foresighted *vārttikakāra* is aptly honoured by the tradition by including him in *trimuni*.

Abbreviations —

MBh - Mahābhāṣya of Patañjali

P - Aṣṭādhyāyī *sūtra* of Pāṇini

vtt or *vtts* - *vārttika*-s of Kātyāyana

References —

A

1. The Aṣṭādhyāyī of Pāṇini Vol. I by Sharma, Ram Nath, Pub. by Munshiram Manoharlal Publishers, Delhi, 1987.
2. Vyākaraṇa Mahābhāṣya (of Patañjali) Prastāvanā khaṇḍa Part VII (of Marathi translation of Vyākaraṇa Mahābhāṣya), by Abhyankar, K.V., Pub. by D.E. Society Pune, 1954.
3. Vyākaraṇa Mahābhāṣya (of Patañjali Marathi translation), Parts I-VI by Abhyankar, Vasudevshastri, Pub. by D.E. Society Pune, 1938,1941, 1951.

B

1. Cardona, George (1980), Pāṇini a Survey of Research, Motilal Banarsidas, Delhi.
2. Yudhiṣṭhira Mīmāṁsaka, (1968), Saṁskṛta Vyākaraṇaśāstra kā Itihāsa, Bahalgadh, Sonipat, Haryana.

Dr. Bhagyalata Pataskar.
Vaidika Samshodhana Mandala,
(Adarsha Sanskrit Shodha Sanstha), Pune
Mukund Nagar, Pune – 37
Cont. No. 9371230287

तृतीय अध्याय

छन्द एवं स्वर का विवेचन– गायत्री, जगति, त्रिश्टुप आदि छन्द तथा शड्ज, ऋशभ, धैवत् आदि स्वरों पर विचार

छन्द

वेदौं.ों में छन्द का पॉचवॉ स्थान माना गया है। वेदों में स्थापित गुढ़ अर्थों के सम्यक् ज्ञान के लिए मनीषियों ने, शिक्षा ल्पिादि, जिन छः वेदौं.ों को उपादेय कहा है, उनमें छन्द–शास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है। सौं.ोपाड्.वेद– वेत्ता ही वेद को भली प्रकार से समझा सकता है। पाणिनीय शिक्षा में छन्द का महत्व स्पष्ट तथा उल्लिखित है।[1]

इससे यह विदित होता है कि भारतीय परम्परा के अनुसार छन्दों के ज्ञान के बिना वेदार्थ का ज्ञान कदापि आगे नहीं बढ़ सकता है। अतः वेदाध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि वेद अध्येता, ऋषि, देवता, छन्द आदि का पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करे और इसके अभाव में यज्ञ आदि कार्य में प्रवृत्त न हो। वेदौं.ों सहित वेद का अध्ययन करने वाला ब्राह्मण ब्रह्मलोक में महत्वपूर्ण स्थान को प्राप्त करता है।

वैदिक शब्दों तथा धातुओं के जो रूप इत्यादि पाणिनीय सूत्रानुसार ब्युत्पन्न नहीं होता, उनके लिए 'छन्दस्' विशेषण का प्रयोग तथा 'बहुलं छन्दासि' आदि सूत्रों का निर्देश वैदिक भाषा के लिए 'छन्दस्' शब्द सम्भवतः इसी दृष्टि से हुआ है। संहिताओं में अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं, उनका अधिकांश भाग छन्दोबद्ध है।

निघण्टु कोष में छन्द, स्तुतिपरक आख्याताओं में पठित है।[2] देवों की स्तुतियों में इसका निषेध होने के कारण ही सम्भवतः 'छन्दस्' नाम से प्रचलित हुआ।

1. छन्दः पादौ तु वेदस्य... ब्रह्मलोके महीयते। पा0 शि0 40–42
2. निरू0 7/15, निरू0 7/12, छन्दांसि छ्वदनात्।

वैदिक छन्द अक्षरों की संख्या पर आधारित माने गये हैं।[1] वैदिक मुख्यतः सात हैं, जिनके अक्षर अपने पूर्ववर्ती छन्द से क्रमशः चार–चार अक्षर अधिक हो जाते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रातश्नुवाक के सम्बन्ध में इन सातो छन्दों के श्रोत विनियोग का निर्देश मिलता है।[2] ये मुख्य छन्द क्रमशः– गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप एवं जगति ऋग्वेद में आये हैं।[3]

अक्षर व पादों की न्यूनता व अधिकता के कारण इन सातों छन्दों के अनेक अवान्तर भेद हो गये हैं। इन मुख्य सातों छन्दों से अधिक अक्षरों वाले छन्दों को अतिछन्द कहा जाता है। शाड्.खायन श्रौत सूत्र, निदान सूत्र, उपनिदान सूत्र, सर्वानुक्रमणी, ऋक् प्रातिशाख्य, पिँ.ल तथा जयदेव कृत छन्दः सूत्र, वेंकट माधव कृत छन्दोऽनुक्रमणी, युधिष्ठिर–मीमांसक कृत वैदिक छन्दोमीमांसा आदि में छन्दों का पर्याप्त विवेचन मिलता है।

अक्षर गणना के आधार पर छन्दों की चार कोटियाॅ बनायी गयी हैं– प्रजापत्य, दैव, आसुर तथा आर्ष छन्द। प्रजापति के छन्द आठ अक्षरों से प्ररम्भ होते हैं तथा क्रमशः इनमें चार–चार अक्षर अधिक हो जाते हैं। दैव छन्द क्रमशः एक–एक अक्षर बढ़ते जाते हैं। आसुर छन्दों में क्रमशः अधिकतम अक्षर पन्द्रह होते हैं तथा वे क्रमशः एक–एक अक्षर कम हो जाते हैं। प्रजापति, दैव और आसुरों के छन्द संगत होकर ऋषियों के छन्द होते हैं। आर्ष छन्दों में प्रायः मन्त्र और श्लोक मिलते हैं।[4]

इन छन्दों के नाम गणना करने पर चारो प्रकार से एक से होते हैं, जिनको स्पष्ट करने के लिए निम्न सारणी को प्रस्तुत किया जा सकता है–

छन्द	**गायत्री**	**उष्णिक्**	**अनुष्टुप्**	**बृहती**	**पड्.क्ति**	**त्रिष्टुप्**	**जगती**
प्रजापत्य	8	12	16	20	24	28	32
दैव	1	2	3	4	5	6	7
आसुर	15	14	13	12	11	10	9
आर्ष	24	28	32	36	40	44	48

1. यदक्षर परिमाणं तच्छन्दः। ऋ0 परि0 पृ0 1–7
2. तस्मात् सप्त चतुरूत्तराणि छन्दांसि प्रातरनुवाके ऽनूच्यते। तै0 ब्रा0 1/5–20
3. ऋ0 प्रा0– 16/1–8
4. ऋ0 प्रा0– 16/1–8

प्रत्येक छन्द के देवता, वर्ण तथा ऋषि का भी निर्देश इस प्रकार दर्शाया गया है–

छन्द	गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुप्	बृहती	पड्.क्ति	त्रिष्टुप्	जगती
देवता वर्ण ऋषि	अग्नि श्वेत गौतम	सविता सार›. भारद्वाज	सोम पिश›. अथर्वा	बृहस्पति कृष्ण अ੍.रा	वपु अरूण आश्वलायन	इन्द्र लोहित याज्ञ– वल्क्य	विश्वेदेवा सुवर्ण कुत्स

ऋग्वेद के दशम मण्डल में इन सातों छन्दों के प्रयोग हुए हैं। अनुष्टुप के भेदों में से निचृत्, पाद–निचृत्, विराट् और भुरिक् का भी प्रयोग दशम मण्डल में हुआ है। गायत्री के भेदों में से, 'वर्णमाना', पिपिलिका मध्या' और प्रतिश्ठा का भी प्रयोग हुआ है। पड्.क्त के भेदों में 'निचृत्', 'पाद–निचृत्', 'विराट्' और आस्तार पड्.क्त, पश्चापड्.क्त, अक्षर पड्.क्त पड्.क्त तथा संसार पड्.क्त का प्रयोग किया गया है। वृहती में निचृत्, पाद–निचृत्, विराट् और भुरिक् का प्रयोग किया गया है। शक्वरी में पाद–निचृत्, शक्वरी का प्रयोग किया गया है, इसका प्रयोग दो सूक्त में हुआ है।[1] अति छन्दों में से मात्र 'अति जगति' का ही प्रयोग दशम मण्डल में हुआ है। इसके एक भेद 'निचृत् अति जगति' का प्रयोग भी एक स्थल पर हुआ है।[2] अब प्रत्येक छन्दों पर क्रमशः विचार प्रस्तुत किया जा सकता है।

अनुष्टुप छन्द

अनुष्टुप छन्द बत्तीस अक्षरों का होता है। इसमें आठ–आठ अक्षरों के चार पाद होते हैं।[3] इस छन्द को गायत्री का ही रूप माना जाता है। महर्षि यास्क के निरूक्त में यह निर्वचन मिलता है, जिसके अनुकरण करने से यह अनुष्टुप कहलाता है। तीन पादों वाली गायत्री का यह चतुर्थ पाद द्वारा अनुकरण करता है।[4]

1. ऋग्0 10/133/3, 115/9
2. ऋग् 10/133/2
3. ऋ0 प्रा0– 17/6–14
4. अनुष्टुबनुष्टोभनात् गायत्रीमेवत्रिपदा सती चतुर्थेन पादेनानुष्टोभीति। निरू0–12

अनुष्टुप का सामान्य अक्षर है– 8+8+8+8 = 32

उदाहरण– आपो अद्यान्वचारिषं, रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्र, आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ।।[1]

इस छन्द के देवता सोम तथा इसका वर्ण पिशैं. माना गया है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित अनुष्टुप छन्दस्क ऋचाओं की संख्या 88 है।

निचृत्

इसमें 31 अक्षर होते हैं। एक पाद में एक अक्षर कम होता है। दशम मण्डल में वर्णित अनुष्टुप छन्दस्क ऋचाओं की संख्या 99 है।

उदाहरण– आभिभूरहमागमं, विश्वकर्मेण धाम्ना ।
आ वश्चित्तमा वो व्रतमा वोऽहं समितिं ददे ।।[2]

पाद–निचृत्

इसमें 29 अक्षर होते हैं। तीन पाद में एक–एक अक्षर कम होता है। दशम मण्डल में वर्णित अनुष्टुप छन्दस्क ऋचाओं की संख्या 14 है।

उदाहरण– त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रात्मना वहध्यै ।
ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नाकिर्विदाय्यः ।।[3]

विराट्

इसमें 30 अक्षर होते हैं। दो पाद में एक–एक अक्षर कम होता है। दशम मण्डल में वर्णित अनुष्टुप छन्दस्क ऋचाओं की संख्या 43 है।

उदाहरण– यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा ।।[4]
8+8+7+7=30

भुरिक्

इसमें कुल 33 अक्षर होते हैं। एक पाद में एक अक्षर अधिक होता है। दशम मण्डल में वर्णित अनुष्टुप छन्दस्क ऋचाओं की संख्या 4 है।

उदाहरण– सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्ट पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ।।[5]
8+9+8+8त्र33

1. ऋग्0– 10/9/9
2. ऋग्0– 10/166/4
3. ऋग्0– 10/22/5
4. ऋग्0– 10/16/13
5. ऋग्0– 10/85/40

उष्णिक् छन्द

उष्णिक् छन्द में सामान्यतः 28 अक्षर होते हैं। यह तीन पादों से समन्वीत होता है। इसके पूर्ववर्ती दो पाद आठ–आठ अक्षरों के होते हैं, तृतीय पाद बारह अक्षरों का होता है। उष्णिक् शब्द 'उष्णिष' के आधार पर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ होता है– पगड़ी। जिस प्रकार पगड़ी शरीर के सबसे ऊँचे भाग सिर पर स्थित होने से दूर से ही स्पष्टतः दिखलायी देती है, उसी प्रकार उष्णिक छन्द के अन्तिम चरण में चार अक्षर अधिक होने से यह बढ़ा हुआ भाग स्पष्टतः दिखलायी देता है। पगड़ी की तुलना के आधार पर इसका उष्णिक नाम पड़ा। महर्षि यास्क के निरूक्त में इसके तीन निर्वचन प्राप्त होते हैं–

1. यह छन्द गायत्री की अपेक्षा अधिक अक्षरों से युक्त है, अतः ''उष्णिक्'' कहलाया।[1]
2. इच्छार्थक ''ष्णिह'' धातु से ''उष्णिक्'' बना है। अतः यह छन्द देवताओं कां अत्यन्त प्रिय है।
3. तुलनात्मक दृष्टि से तथा गायत्री की अपेक्षा 4 अधिकतम् अक्षर इस छन्द के ''उष्णिक्'' स्थानीय हैं, जिससे इसका नाम उष्णिक् पड़ा है।[2]

इस छन्द के देवता सविता तथा इसका वर्ण सारैं. कहा गया है। उष्णिक् छन्द की सामान्य अक्षर संख्या 8+8+12 28 मानी गयी है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में 5 ऋचाओं में उष्णिक् छन्द का प्रयोग मिलता है।[3]

निचृत्

इसमें 27 अक्षर होते हैं। एक पाद में एक अक्षर कम होता है। दशम मण्डल में वर्णित निचृत् उष्णिक् छन्दस्क ऋचाओं की संख्या 4 है।

उदाहरण– यज्ञे यज्ञे स मर्त्यो देवान्त्सपर्यति ।
यः सुभ्रै दीर्घश्रुत्तमः आविवासात्येनान् ।।[4]
7+6+8+6=27

---

1. ''उष्णिगुत्स्नाता भवति'' नि0 7/12
2. ''स्निहयतेवास्तात्कान्ति कर्मणः'' निरू0 7/12
3. ऋग0– 10/22/7, 26/1.2, 105/2, 145/2
4. ऋग0– 10/93/2

विराट्

इसमें 26 अक्षर होते हैं। दो अक्षर कम होता है। विराट् उष्णिक् छन्दस्क ऋचाओं की संख्या 3 मात्र है।

उदाहरण– अव नो वृजिना, शिशी ह्यृचा वनेमानृचः ।
ना ब्रह्मा यज्ञ ऋधम्जोषति त्वे ।।[1]

भुरिक्

भुरिक् उष्णिक् में कुल 29 अक्षर होते हैं, इसमें एक अक्षर अधिक होता है। दशम मण्डल में उष्णिक् छन्दस्क केवल एक ही ऋचा है।[2]

गायत्री

गायत्री का स्थान वैदिक छन्दों में अग्रणी है। निरूक्तकार यास्क गायत्री की ब्युत्पत्ति स्तुत्यर्थक 'गै' धातु से मानते हैं और इसके तीन चरण से युक्त होने से 'त्रि' तथा गमन को विपरित करके गायत्री शब्द का निर्माण हुआ है। ब्रह्माजी मुख से इस छन्द की उत्पत्ति होने का प्रमाण मिलता है।[3]

गायत्री छन्द में कुल 24 अक्षर होते हैं। आठ–आठ अक्षरों का तीन चरण होता है। इस छन्द के देवता अग्नि तथा इसका वर्ण श्वेत माना गया है।[4] ऋग्वेद दशम मण्डल में वर्णित गायत्री छन्दस्क ऋचााओं की संख्या 48 है।

उदाहरण– शंनोदेवी रभिष्टय आपोभवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रववन्तुनः।।[5]
8+8+8=24

वर्धमाना गायत्री

ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित तीन ऋचााओं में वर्धमाना गायत्री का उल्लेख मिलता है। इसके तीन पादों में क्रमशः 6+7+8=21 अक्षर होते हैं।

उदाहरण– ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्। अपोयाचामिभेषजम्।।[6]

---

1. ऋग्0– 10/105/8
2. ऋग्0– 10/105/3
3. गायत्री गायते स्तुति कर्मणः। जिमना वा विपरीता गायतो मुखात् उद्पतत् इति च ब्राह्मणम्। निरू0 7/12
4. अग्ने गायत्रवत्... संवभूव। ऋ0 प्रा0 17/6/14
5. ऋग्0– 10/9/4
6. ऋग्0– 10/9/5

प्रतिष्ठा

ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित केवल एक ही ऋचााओं में प्रतिष्ठा गायत्री का उल्लेख मिलता है। इसके तीन पादों में क्रमशः 8+7+6=21 अक्षर होते हैं।

उदाहरण– आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे3मम। ज्योक् च सूर्यं दृशे।।[1]

पिपिलिका मध्या

ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित केवल एक ही ऋचा में पिपिलिका मध्या गायत्री का उल्लेख मिलता है। इसके तीन पादों में क्रमशः 8+8+5=21 अक्षर होते हैं।

उदाहरण– अदाभ्येन शोचिषा ऽग्ने रक्षस्त्वंदह। गोपा ऋतस्य दीदिहि।।[2]

निचृत् पिपिलिकामध्या

निचृत् पिपिलिकामध्या का भी प्रयोग केवल एक ही ऋचा में हुआ है। इसके तीन पादों में क्रमशः 7+7+5=19 अक्षर होते हैं।

निचृत् गायत्री

निचृत् गायत्री का प्रयोग ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित कुल 26 ऋचााओं में हुआ है। कुल 21 अक्षर होते हैं।

उदाहरण– जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन।तं त्वा हवन्त मर्त्याः।।[3]

8+8+7

पाद निचृत् गायत्री–

पाद निचृत् गायत्री का प्रयोग दशम मण्डल में कुल 5 ऋचाओं में उल्लेख हुआ है। कुल 21 छन्द होते हैं–

उदाहरण– तं मर्ता अमर्त्य घृतेनाग्निं सपर्यत। अदाभ्यं गृहपतिम्।[4]

6+8+3

विराट् गायत्री–

विराट् गायत्री का प्रयोग ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित कुल 18 ऋचााओं में हुआ है। इसमें कुल 21 अक्षर होते हैं।

उदाहरण– तवमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः।तवं वृशन् वृथेदसि।।[5]

---

1. ऋग्0– 10/9/7
2. ऋग्0– 10/118/6
3. ऋग्0– 10/118/5
4. ऋग्0– 10/118/6
5. ऋग्0– 10/153/2

स्वराट् गायत्री

केवल एक ही ऋचा में का प्रयोग ऋग्वेद में स्वराट् गायत्री का उल्लेख है। इसमें कुल 26 अक्षर अर्थात् दो पाद में एक–एक अक्षर अधिक होता है।

उदाहरण– जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति।

पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः।।[1]

आर्ची स्वराट् गायत्री

आर्ची स्वराट् गायत्री का भी प्रयोग दशम मण्डल में वर्णित एक ही ऋचा में हुआ है। इसमें कुल 20 अक्षर होते हैं।

उदाहरण– सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात्। अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः।।[2]

7+6+7

जगती

जगती छन्द में कुल 48 अक्षर होते हैं। इसमें 12–12 अक्षरों के चार पाद होने से इसकी संख्या 48 होती है।[3] निरूक्तकार यास्क ने इसका निर्वचन– ''जगति गततमं छन्दः'' अर्थात् सबसे आगे आया हुआ अन्तिम छन्द कहा है।[4] 'आचार्य दुर्ग' ने इसका निर्वचन इस प्रकार किया है– 'यह छन्द जल की लहरों की भाँति विस्तृत होता है।'' अर्थात् जल के समान विस्तार होने के कारण इसे जलकर कहा है। इस सम्बन्ध में यास्क एक उल्लेख देते हुए कहते हैं कि– स्रष्टा ने इसका सृजन किया है।' प्रस्तुत छन्द के देवता विश्वेदेवाः तथा इसका वर्ण सुवर्ण है।

ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित कुल 53 ऋचााओं में इस छन्द का उल्लेख मिलता है।

उदाहरण– पतँ.मक्तमसुरस्य, मायया हृदा पश्यन्ति मनसाविपश्चितः।

समुद्रे अन्तः कवयो विचक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः।।[5]

12+12+12+12=48

---

1. ऋग्0– 10/158/2
2. ऋग्0– 10/158/1
3. प×चाशज्जगती......बहुलंवृत्तम्। ऋ0 प्रा0 16/74
4. निरू0 7/13
5. ऋग्0– 10/177/1

निचृत्

निचृत् जगती का प्रयोग, ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित कुल 87 ऋचााओं में हुआ है। इसमें एक पाद में एक अक्षर कम होता है। कुल 47 अक्षर होते हैं।

उदाहरण– उषानक्ता बृहती सुपेशसा द्यावाक्षामा वरूणो मित्रो अर्यमा ।

इन्द्रं हुवे मरुतः पर्वतॉं अप आदित्यान् द्यावा पृथिवी अपः स्वः।।[1]

12+12+12+11=47

पाद निचृत् जगती

पाद निचृत् जगती का प्रयोग, ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित कुल 45 ऋचााओं में हुआ है। इसमें एक पाद में एक अक्षर कम होता है। कुल 48 अक्षर होते हैं।

उदाहरण–

इन्दाग्नी वृत्र हत्येशु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा समसमाोमोकसा अन्तरिक्षं मह्या पप्नुरोजसा सोमो घृत श्रीर्महिमानभीरयन्।।[2]

12+11+11+12=45

विराट् जगती–

विराट् जगती का प्रयोग, ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित कुल 96 ऋचााओं में हुआ है। इसमें कुल 48 अक्षर होते हैं। इसके दोनों पाद में एक–एक अक्षर कम होता है।

उदाहरण– आ वो धियं यज्ञिया। वर्त ऊतये देवा देवी यजतां यज्ञियामिह।

सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ।।[3]

12+12+11+11=46

भुरिक् जगती–

भुरिक् जगती का प्रयोग, ऋग्वेद के दशम मण्डल में केवल एक ऋचा में हुआ है। इसमें कुल 49 अक्षर होते हैं। इसके एक पाद में एक अक्षर अधिक होता है।[4]

12+12+12+13=49

---

1. ऋग्0– 10/36/1
2. ऋग्0– 10/65/2
3. ऋग्0– 10/101/9
4. ऋग्0– 10/5/2

स्वराट् जगती

स्वराट् जगती का प्रयोग भी ऋग्वेद के दशम मण्डल एक ऋचा में ही हुआ है।[1] इसमें 50 अक्षर होते हैं।

त्रिष्टुप

त्रिष्टुप छन्द का वैदिक छन्दों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रयोग ऋग्वेद में सर्वाधिक हुआ है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 253 स्थलों पर ही त्रिष्टुप छन्द का प्रयोग हुआ है।[2] निरूक्तकार यास्क ने इसका निर्वचन 'तर्णितम' (सर्वाधिक विस्तृत) छन्द कहकर किया है। इस छन्द के देवता इन्द्र तथा इसका वर्ण लोहित है। इसके महत्व को दृष्टि में रखकर कात्यायन ने इसकी परिभाषा दी है, जहॉ पर छन्द और देवता का निर्देश न हुआ हो, वहॉ इन्द्र देवता और त्रिष्टुप छन्द समझना चाहिए।[3]

उदाहरण– गर्भे नु नौ जनिता दम्पती क र्देवस्त्वष्टा सविताविश्वरूपः ।
नकिरस्य प्रमिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी ।।[4]

निचृत् त्रिष्टुप

निचृत् त्रिष्टुप का प्रयोग दशम मण्डल में 288 ऋचाओं में मिलता है। इसमें एक पाद में एक अक्षर कम होता है। कुल 43 अक्षर होते हैं। 11+11+10+11=43

उदाहरण– य आत्मदाबलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मैदेवाय हविषाविधेम।।[5]

पादनिचृत्

पादनिचृत् त्रिष्टुप का प्रयोग दशम मण्डल में 35 ऋचाओं में मिलता है। इसके तीन पाद में एक–एक अक्षर कम होता है। कुल 41 अक्षर होते हैं।

उदाहरण– वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दाक्षायभियसं दधाति।
अध्यनच्च व्यनच्च ससिनसंतेनवन्त प्रभृतामदेषु।।[6]
10+11+10+10=41

---

1. ऋग्0– 10/114/4
2. निरू0 7/12
3. अनादेशो तु इन्द्रो देवता त्रिष्टुप छन्दः। सर्वानु0– 1/12
4. ऋग्0– 10/10/5
5. ऋग्0– 10/121/2
6. ऋग्0– 10/120/2

विराट् स्थाना

ऋक् प्रातिशाख्य के अनुसार त्रिष्टुप का एक या अनेक पाद 9 या 10 अक्षरों का हो और एक या अनेक पाद ग्यारह अक्षरों का हो, तब उस अवस्था में त्रिष्टुप का अभिधान विराट् स्थाना होता है।[1] ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित विराट् स्थाना त्रिष्टुप् 50 ऋचााओं में मिला है।

विराट् रूपा

ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित कुल 6 ऋचाओं में विराट् रूपा का उल्लेख हुआ है। इसमें भी कुल 41 अक्षर होते हैं। एक पाद में आठ अक्षर शेष तीनों पादों में 11–11 अक्षर है।

11+11+11+8=41

विराट् त्रिष्टुप

विराट् त्रिष्टुप में कुल 42 अक्षर होते हैं। दो पाद में एक–एक अक्षर कम होते है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 170 ऋचाओं में विराट् त्रिष्टुप का प्रयोग मिला है।

उदाहरण– यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमा प्रदियाो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम।।[2]

10+11+10+11=42

भुरिक्

भुरिक् त्रिष्टुप में कुल 45 अक्षर होते हैं। इसके एक पाद में एक अक्षर अधिक होते है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 41 ऋचाओं में भुरिक् त्रिष्टुप का प्रयोग मिलता है। इनके पादों की अक्षर संख्या क्रमशः 11+11+12+11=45 है।

स्वराट्

स्वराट् त्रिष्टुप में दो अक्षर अधिक होते हैं। इसमें कुल 46 अक्षर होते हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 5 ऋचाओं में स्वराट् त्रिष्टुप का प्रयोग मिलता है। इनके पादों की अक्षर संख्या क्रमशः 11+11+13+11=46 है।

---

1. ऋ0 प्रा0 16/67
2. ऋग्0– 10/121/4

पङ्क्ति

वैदिक छन्दों में बृहति के बाद पङ्क्ति का स्थान है। इसमें आठ–आठ अक्षर के पॉच पाद होते हैं। कुल मिलाकर इस छन्द में 40 अक्षर होते हैं।[1]

वैदिक छन्दों में अक्षरों की अधिक महत्ता के कारण वे सभी छन्द जिसमें अक्षर संख्या 40 हो चाहे पाद के हों या पॉच पाद के पङ्क्ति छन्द के अन्तरगत आते हैं, परन्तु 8–8 पादों पञ्चपदा पङ्क्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। दशम मण्डल में इसका उदाहरण इस प्रकार है–

वि हि सोतो रसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत।
यत्रामद द्वृषाकपि रर्यः पुष्टेषुमत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।[2]
8+8+8+8+8=40

यह पङ्क्ति के मुख्य स्वरूप को प्रदर्शित करती है, इसलिए इस छन्द का नाम पङ्क्ति छन्द रखा गया है। इस छन्द के देवता मित्र और वरूण तथा इसका वर्ण नील है।[3] ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 39 ऋचाओं में पङ्क्ति छन्द का उल्लेख किया गया है।

आस्तार पङ्क्ति

यदि 8–8 अक्षरों वाले दो पाद आदि में हो तो वह पङ्क्ति आस्तार पङ्क्ति कहलाती है।[4] इसके प्रत्येक पाद में क्रमशः 8+8+12+12=40 अक्षर होते हैं।

प्रस्तार पङ्क्ति

यदि 8–8 अक्षरों वाले दो पाद अन्त में हो तो वह पङ्क्ति प्रस्तार पङ्क्ति कहलाती है।[5] 12+12+8+8=40

इसी प्रकार थोड़े अन्तराल से 'आस्तार, विस्टार' तथा 'संस्तार' पङ्क्ति होती है।

आस्तार– 8+8+12+12=40
विस्टार– 8+12+12+8=40
संस्तार– 12+8+8+12=40

---

1. पञ्चपदापङ्क्तिः– निरू0 7/12, पङ्क्तिरष्टाक्षशः। ऋ0 प्रा0 16/54
2. ऋग्0– 10/86/1
3. ऋ0 प्रा0 17/8/14
4. आस्तारपङ्क्तिरादितः। ऋ0 प्रा0 16/59
5. प्रस्तारपङ्क्तिरन्ततः। ऋ0 प्रा0 16/60

निचृत्

निचृत पर्ङि.त में एक अक्षर कम होता है। इसमें कुल 39 अक्षर होते हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 36 ऋचाओं में निचृत पर्ङि.त का प्रयोग मिलता है। इनके प्रत्येक पादों की अक्षरों का क्रम इस प्रकार है–

10+10+10+9=39

पाद–निचृत

इसके तीन पादों में एक–एक अक्षर कम होता है। इसमें कुल 37 अक्षर होते हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 7 ऋचाओं में पाद–निचृत पर्ङि.त का प्रयोग मिलता है। इनके प्रत्येक पादों की अक्षरों का क्रम इस प्रकार है–

7+8+7+7+8=37

विराट्

इसमें कुल 38 अक्षर होते हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 19 ऋचाओं में विराट् पर्ङि.त का उल्लेख मिलता है। पादों और अक्षरों का क्रम इस प्रकार है–

8+7+8+7+8=38

बृहती

बृहती छन्द सातों छन्दों का मध्यवर्ती माना गया है। इस छन्द में चार पाद और 36 अक्षर होते हैं, जिसमें तीसरा पाद बारह तथा शेष 8–8 अक्षरों के होते हैं।[1] निरूक्तकार यास्क ने बृहती का निर्वचन इस प्रकार किया है– परिबृहत् अर्थात् बढ़ा हुआ होने के कारण इसे बृहती कहा गया है।[2] इस छन्द के देवता बृहस्पति तथा इसका वर्ण कृष्ण है।[3] ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित 9 ऋचाओं में बृहती का उल्लेख मिलता है।

इसका सामान्य अक्षर इस प्रकार है– 8+8+12+8=36

निचृत्

8–8 ऋचाओं में निचृत् बृहती का उल्लेख दशम मण्डल में प्राप्त होता है। इसमें कुल 35 अक्षर होते हैं, एक अक्षर कम होता है। पादों और अक्षरों का क्रम इस प्रकार है–

8+8+11+8=35

---

1. ऋ0 प्रा0 16/45
2. बृहतीपरिर्बृहणात्। निरू0 7/12
3. ऋ0 प्रा0 17/6/14

पाद निचृत्–

केवल दो ऋचाओं में इसका उल्लेख मिलता है। इसमें दो अक्षर कम कुल मिलाकर 34 अक्षर होते हैं। सामान्य अक्षर इस प्रकार है– 8+10+8+8=34

भुरिक

भुरिक बृहती में कुल 37 अक्षर होते हैं, एक अक्षर अधिक होता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित केवल एक ही ऋचा में भुरिक बृहती का उल्लेख मिलता है।

अति जगती

अति जगती 52 अक्षरों की होती है।[1] यह अति छन्द में आता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित केवल एक ही ऋचा में अति जगती का उल्लेख मिलता है। एक अक्षर कम होने से निचृत् अति जगती होती है। इसमें 51 अक्षर होते हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित केवल एक ही ऋचा में इसका भी उल्लेख मिलता है।

पाद–निचृत् शक्वरी

ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित दो ऋचाओं में पाद–निचृत् शक्वरी का उल्लेख मिलता है। इसमें कुल 53 अक्षर होते हैं। इसके पॉच पाद में क्रमशः 11+10+10+11+11=53 अक्षर होते हैं।[2]

स्वर

स्वर लौकिक और वैदिक दोनों वाड्.मय में शब्दों के उचचारण के साथ सम्बन्ध रखता है। 'स्वर' शब्द 'स्व्' धातु से अप् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है।

वेदों के वास्तविक अभिप्राय तक पहॅुचने के लिए जितने भी साधन हैं, उनमें स्वर का सबसे प्रमुख स्थान है। ब्याकरण और निरूक्त जैसे प्रमुख साधन भी इसके सहयोग से ही वेदार्थ तत्व का प्रतिपादन कराते हैं। स्वरशास्त्र के विरोध होने पर ये दोनों शास्त्र वेदार्थ ज्ञान में असमर्थ बने रहते हैं। स्वर के बिना मन्त्र का वास्तविक अभिप्राय आात ही नहीं रहता है, अपितु अर्थ का ज्ञान नितान्त आवश्यक माना गया है।

---

1. प्रथमातिजगत्यासां द्विप×चाशब्दक्षराः। ऋ0 प्रा0 16/80
2. ऋग्0 10/115/9, 133/3

स्वर लौकिक और वैदिक दोनों वाड्.मयों में अनेक अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। निघण्टु में यह वाड्.मय पठित है।[1] सामान्य रूप से पाणिनीय ब्याकरण और वेद में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित के रूप में स्वर अभिहित हैं। वेदों में ऋग्वेद के सूक्तों, यजुर्वेद और सामवेद के मन्त्रों के ऊपर ऋषि, देवता और छन्दों के साथ स्वरों का भी निर्देश रहता है। ये मन्त्रों के स्वर से भिन्न हैं।

इनका सम्बन्ध मन्त्रों के पाठ की दृष्टि से उच्चारण के साथ नहीं होता है, अपितु गायन के साथ होता है। ये मन्त्रों के नहीं अपितु स्वरों के छन्द कहे गये हैं। यहॉ उदात्त आदि स्वर प्रतिपाद्य नहीं है। इस पर अधिकांश कार्य किया जा चुका है, जिस प्रकार ऋषि, देवता और छन्दों के विषय में विचार प्रस्तुत किया गया है, उसी प्रकार गायन से सम्बद्ध छन्दों के स्वरों पर विचार प्रसतुत करना हमारा अभिप्राय है।

वेदों में गायत्री आदि सात छन्दों का प्रयोग किया गया है। इनमें प्रत्येक छन्द का अपना–अपना स्वर है। यथा–

छन्द	**स्वर**
गायत्री	षड्ज
उष्णिक्	ऋषभ
अनुष्टुप्	गान्धार
बृहती	मध्यम
पर्Š.त	प×चम
त्रिष्टुप्	धैवत्
जगती	निषाद।[2]

1. स्वर इति वाड्.नाम। निघ0 1/11
2. स्वराः षड्जभगाान्धार मध्यम प×चम धैवत निषादाः। पि0 छं0 सू0 3/65

इसके अतिरिक्त अतिछन्द अति जगती का स्वर निषाद और शक्वरी का धैवत् है।

1. **षड्ज स्वर–** यह गायत्री का स्वर है। गायत्री तीन पादों वाली 24 अक्षरों की होती है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में गायत्री छन्द के 48 मन्त्र हैं।[1]
2. **ऋषभ स्वर–** यह उष्णिक् का स्वर है। उष्णिक् छन्द तीन पाद अथवा सात अक्षर युक्त चार पादों वाली 28 अक्षरों की होती है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में उष्णिक् छन्द के 5 मन्त्र मिलते हैं।[2]
3. **मध्यम स्वर–** यह चार पाद एवं 36 अक्षरों वाले बृहती छन्द का स्वर है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में बृहती छन्द के 9 मन्त्र मिलते हैं।[3]
4. **गान्धार–** यह अनुष्टुप् छन्द का स्वर है। अनुष्टुप् छन्द बत्तीस अक्षरों से युक्त चार पादों वाला होता है। ऋग्वेद के दषम मण्डल में इसके 99 मन्त्र मिलते हैं।[4]
5. **प×चम स्वर–** यह पर्ङि.त छन्द का स्वर है। चार या पॉच पादों वाली पर्ङि.त 40 अक्षरों वाली होती है। दशम मण्डल में इसके 39 मन्त्र हैं।[5]

---

1. क– तस्माअरं गमाय वो...जनयथा च नः।। ऋग्0 10/9/3
   ख– संनोदेवी......स्रवन्तुनः।। ऋग्0 10/9/4
   ग– ऋग्0 10/19/6, 57/6, 101/4, 118/4, 127/4, 156/5
2. क– आ न इन्द्र पृच्छसे.....यद्धन्नमानुपम्।। ऋ0 10/22/7
   ख– ऋ0 10/26/1.2, 105/2, 145/3
3. त्वां यज्ञेभिरूक्थै.....विवक्षसे।।
   ऋग्0 10/24/2, ऋ0 10/62/6, 93/1, 126/7, 132/1, 150/2
4. क– इदमापः प्र वहत यत् किंच दुरितं मयि।
   यद्वा हर्मीीदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम्।। ऋग्0 10/9/8
   आपो........सृज वर्चसा।। ऋग्0 10/9/9
   ख– ऋग्0 10/14/16, 16/11, 20/2, 85/2,4
5. क– वतो बतासि यम नैव .... लिबुजेववृक्षम्।। ऋ0 10/12/13
   ख– सं गच्छस्व......तन्वा सुवर्चाः।। ऋग्0 10/14/8
   ग– भद्रं नो आपिवातय.......गावो न यवसे विवक्षसे।। ऋ0 10/25/1
   घ– ऋ0 10/47/2, 49/3, 56/4, 63/76

6. **धैवत् स्वर–** यह त्रिष्टुप छन्द का स्वर है। चार या पॉच पादों से युक्त 44 अक्षरों वाला होता है। दशम मण्डल में इसके 253 मन्त्र हैं।[1] इसके अतिरिक्त शक्वरी के भी स्वर धैवत् हैं।
7. **निषाद स्वर–** चार पाद एवं 48 अक्षरों से युक्त जगती का स्वर निषाद है। दशम मण्डल में इसके 53 मन्त्र हैं।[2] अति जगती का भी स्वर निषाद है।

---

1. क– वेपि होत्र मुत पोत्रं जनानां मान्धातासि द्रविणोदा ऋतावा। ऋ0 10/2/2
   ख– यद्वो वयं प्रमिनाम......ऋतुभि कल्पयाति। ऋ0 10/2/4
   ऋग्0 10/5/2, 14/10, 18/2, 30/5, 31/3, 142/3
2. क– चोदयतं सूनृताः ....मघवत्सु नमस्कृतम्। ऋग्0 10/39/2
   ख– अहमिन्द्रो रोधो वक्षो.....मातरिश्वने।। ऋ0 10/48/2
   ऋग्0 10/49/4, 65/5, 66/3, 96/7, 167/3, 170/2

टिप्पणियाँ

9

साधारण स्वर-२

वैदिक काल से लेकर के आज भी गुरुकुलो में तथा विभिन्न प्रतिष्ठानो में गुरु शिष्य माध्यम से वेदपाठ प्रचलित है। वेदों के पाठ गुरु परम्परा के अनुसार स्वर सहित करते है। अत: वेद में स्वर का स्थान सबसे ऊपर है। केवल वेद पाठ से ही वेद में कहा पर क्या स्वर होगा ऐसा विद्वान मनुष्य जानने में समर्थ नहीं हो सकते है। अत: व्याकरण से स्वर निर्णय करने की कुशलता सभी को विदित ही है। बहुत काल पहले ही महर्षि पाणिनि ने सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय के स्वर निर्णय के लिए सूत्रों की रचना की। उन सूत्रों में कुछ विशिष्ट प्रयोग पाणिनि के द्वारा निर्देश नहीं किया है। अत: बाद के काल में वार्तिककार ने कुछ वार्तिकों की रचना की है। अत: इस पाठ में साधारण स्वर प्रतिपादक पाणिनीय सूत्र तथा वार्तिको की आलोचना की है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- सूत्रों के द्वारा स्वर सिद्धि प्रक्रिया को समझ पाने में;
- स्वर सम्बन्धी वार्तिकों को जान पाने में;
- एकश्रुति विषय को जान पाने में;
- सूत्र अर्थ के समन्वय को समझ पाने में; और
- साधारण स्वर विषय में सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर पाने में।

9.1 उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः॥ (८.४.६६)

सूत्र का अर्थ - उदात्त से उत्तर अनुदात्त को स्वरित आदेश होता है।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से स्वरित स्वर का विधान करते हैं। उदात्ताद् अनुदात्तस्य स्वरितः ये सूत्र आये हुए पदच्छेद हैं। तीन पद वाले इस सूत्र में उदात्ताद् यह पञ्चमी का एकवचनान्त है, अनुदात्तस्य यह षष्ठी का एकवचनान्त है, स्वरितः यह प्रथमा का एकवचनान्त पद है। स्वरितः यह प्रथमान्त होने से इसका ही विधायक है। उदात्ताद् अनुदात्तस्य स्वरितः इति सूत्र में आये हुए पद योजना है। उदात्ताद् यहाँ पञ्चमी निर्देश होने से 'तस्मादित्युत्तरस्य' इस परिभाषा से उदात्त से उत्तर का यह अर्थ प्राप्त होता है। और इस प्रकार इस सूत्र का अर्थ होता है उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित स्वर होता है।

उदाहरण- अग्निमीळे (अग्निमीळे) इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- अग्निमीळे यहाँ पर गति अर्थ की अगि धातु से 'धातोः' इस सूत्र के अनुसार से अकार उदात्त है। उसके बाद 'अङ्गेर्नलोपश्च' इस सूत्र से नि-प्रत्यय होने पर इस धातु का इकार इत होने से (अगि-धातु इकार इत्संज्ञक है) इदितो नुम् धातोः इससे नुम आगम और अनुबन्ध लोप होने पर इस स्थिति में नकार का उससे ही (अङ्गेर्नलोपश्च) सूत्र से लोप होने पर अग्नि शब्द निष्पन्न होता है। यहाँ नि प्रत्यय का नकार से उत्तर इकार 'आद्युदात्तश्च' इससे उदात्त है। इस प्रकार अग्नि यहाँ पर दो उदात्त स्वर है, एक धातु का दूसरा प्रत्यय का। यहाँ अगि धातु से अकार का उदात्त स्वर धातुपाठ में निर्देश किया है, परन्तु नि-प्रत्यय के इकार का उदात्त स्वर सूत्र से उपदेश किया है, अतः 'सतिशिष्टस्वरो बलीयान्' (६.१.१५८) इस परिभाषा सूत्र से बाद में होने वाला स्वर का (पर निर्देश किया स्वर) बलवान होता है। उसको 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इस सूत्र से धातु के (अगि-इसके) अकार का अनुदात्त स्वर है प्रत्यय का नहीं है। इसी प्रकार अग्नि-यहाँ पर अकार अनुदात्त, इकार उदात्त ये सिद्ध होते है। उस अम्-प्रत्यय के करने पर 'अनुदात्तौ सुप्पिता' इससे अनुदात्त स्वर है। वहाँ अग्नि अम् इस स्थिति में 'अमि पूर्वः' इससे उदात्त-इकार का और अनुदात्त-अकार के स्थान में पूर्वरूप एकादेश इकार में 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इससे उसका (इकार का) उदात्त स्वर है। ईड स्तुतौ इस धातु से लट लकार उत्तम पुरुष एकवचन में 'ईळे' यह रूप बनता है। यहाँ पर 'द्वयोश्चास्य स्वरयोर्मध्यमेत्य संपद्यते स डकारो लकारः' इस प्रातिशाख्य वचन से डकार के स्थान में लकार होता है। यहाँ अग्निम् ईळे इस स्थिति में 'तिङ्ङतिङः' इस सूत्र से सभी को अनुदात्त स्वर प्राप्त होता है। इसी प्रकार यहाँ उदात्त से (इकार से) पर अनुदात्त का (ईकार का) वर्तमान से प्रकृत सूत्र के द्वारा पर अनुदात्त के स्थान में स्वरित स्वर होता है। ईळे यहाँ पर स्वरित ईकार से परे ळे इसके एकार के अनुदात्त होने से 'स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्' इस सूत्र से एकार की एकश्रुति स्वर (उदात्त अनुदात्त स्वरित का तिरोधान) होता है। इस प्रकार अग्निमीळे यह रूप सिद्ध होता है।

विशेष- यहाँ पर 'अग्निम् ईळे' उदात्त अनुदात्त के (इकार-ईकार के) मध्य में मकार की विद्यमानता होने से कैसे इकार से परे ईकार को स्वरित स्वर होता है इस प्रकार कहा है, 'स्वरविधौ

व्यञ्जनमविद्यमानवद्' इस परिभाषा से यहाँ मकार के विद्यमान होने पर भी स्वर विधि के नहीं होने से उसको ग्रहण नहीं करते है, उससे यहाँ मकार से व्यवधान का अभाव होने से स्वरित का कोई तोड़ नहीं है।

प्रकृत सूत्र आठवें अध्याय के चौथे पाद में है, अत: तीन पाद में स्थित इस सूत्र से जिस स्वरित स्वर का नियम किया है, वह 'अनुदात्तं पदमेकं वर्जम्' (६.१.१५८) इस सवा सात्त अध्याय में स्थित सूत्र की दृष्टि से असिद्ध है। इसलिए ईळे यहाँ पर 'अनुदात्तं पदम् एकवर्जम्' यह सूत्र यहाँ पर नहीं लगता है। उस के द्वारा उदात्त स्वरित दोनों ही स्वर सुने जाते है।

9.2 नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्॥ (८.४.६७)

सूत्र का अर्थ - उदात्त परे है जिससे एवं स्वरित परे है जिससे ऐसे अनुदात्त को स्वरित नहीं होता है। गार्ग्य आदि मत को छोड़कर।

सूत्र की व्याख्या - छ प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह निषेध विधायक सूत्र है। इस सूत्र से स्वरित स्वर का निषेध होता है। न उदात्तस्वरितोदम् अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् ये सूत्र में आये हुए पदच्छेद है। तीन पद वाले इस सूत्र में न यह अव्ययपद है, उदात्तस्वरितोदयम् यह प्रथमा एकवचनान्त है, अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। उदात्तस्वरितोदयं न अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् यह सूत्र में आये पद का अन्वय है। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित:' इस सूत्र से अनुदात्तस्य इस षष्ठ्यन्त पद की और स्वरित: इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। उदात्तश्च स्वरितश्च उदात्तस्वरितौ उदयौ यस्माद् इति उदात्तस्वरितोदयम् इति बहुव्रीहिसमास:। उदय शब्द पर शब्द से समान अर्थ है ऐसा प्रातिशाख्यों में प्रसिद्ध है। उदात्त स्वर परे जिसका उस प्रकार के, अथवा स्वरित स्वर परे जिसका उस प्रकार के अनुदात्त स्वर का यह अर्थ है। न गार्ग्यकाश्यपगालवानाम् इति अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् इति नञ्समास:। गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में तो नहीं होता है यह अर्थ है। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित:' इस सूत्र का ही यहाँ निषेध है। उससे सूत्र का अर्थ होता है, उदात्त परे और स्वरित परे जो अनुदात्त, उसको 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित:' इस सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर नहीं होता है, गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में तो होता ही है।

उदाहरण- वोश्वा: क्वा १ भीर्शव: (ऋ.५।६१।१२) इति। प्र य आ रु: इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- यहाँ पर क्व शब्द से उत्तर 'किमोऽत्' इस सूत्रे से अत्-प्रत्यय करने पर तथा 'क्वाति' इससे किम: के स्थान में क्व- यह आदेश होने पर क्व-यह रूप सिद्ध होता है। अत्-प्रत्यय के तकार की इत्संज्ञक होने से 'तित्स्वरितम्' इस सूत्र से अत्-प्रत्ययान्त के क्व-शब्द का अकार का स्वरित स्वर है। युष्मद् के स्थान में वस् यह आदेश होने पर सकार को रुत्व होने पर 'अतो रोरप्लुतादप्लुते' इससे रु के उत्व होने पर 'आद्गुण:' इससे अकार-उकार के स्थान में गुण ओकार होकर के वो-यह रूप सिद्ध होता है। यहाँ वस्-यह आदेश 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' इसके अधिकार में होता है अत: वकार से उत्तर अकार अनुदात्त है। अशू-धातु से 'अशूप्रुषिलटिकनिखटिविशिभ्य: क्वन्' इस उणादि सूत्र से क्वन्-प्रत्यय करने पर बहुवचन प्रक्रिया में अश्वा: यह रूप सिद्ध होता है। क्वन्-प्रत्यय के नकार की इत् संज्ञा होती है, अत: क्वन् प्रत्ययान्त

अश्व शब्द 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र के अनुसार से आद्युदात्त होता है। उसके बाद में 'वो अश्वा:' इस स्थिति में 'एङ: पदान्तादति' इस सूत्र से ओकार-अकार के स्थान में पूर्वरूप होने पर 'एकादेश उदात्तेनोदात्त:' इस सूत्र से वकार से उत्तर उकार उदात्त है, 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इस सूत्र के अनुसार से श्वा- यहाँ पर आकार अनुदात्त है। यहाँ वोऽश्वा: (व: अश्वा:) क्व इस वकार से उत्तर उकार उदात्त है, श्व से उत्तर आकार अनुदात्त तथा क्व से उत्तर अकार स्वरित है। इस प्रकार यहाँ उदात्त से परे अनुदात्त के होने से 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित:' इस पूर्वसूत्र से अनुदात्त को स्वरित स्वर की प्राप्ति होने पर उसका स्वरित परे होने से इस प्रकृत सूत्र से, पूर्व सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर का निषेध होता है। उससे जैसे पहले अनुदात्त स्वर था वैसे ही रहेगा।

प्र य आ रु: यहाँ पर ये यह यत् शब्द का प्रथमा बहुवचन फिट् स्वर से 'फिषोऽन्त उदात्त:' इस सूत्र से अन्त उदात्त है। 'अतेर्लिटि' प्रथमा बहुवचन में झि प्रत्यय करने पर आरु: यह रूप बनता है। यहाँ पर 'परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमा:' इससे उस्-प्रत्यय का नियम किया है और वह प्रत्यय स्वर से उदात्त है। आरु: यहाँ पर आकार का 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर:' इससे अनुदात्त स्वर है। इस प्रकार यहाँ यकार से उत्तर अकार उदात्त है, आकार अनुदात्त है, और रु: का उकार उदात्त है। उससे यहाँ उदात्त से परे अनुदात्त के होने से 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित:' इस पूर्व सूत्र से अनुदात्त के स्थान में स्वरित की प्राप्ति, उसका उदात्त परे होने पर प्रकृत सूत्र से पूर्व सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर का निषेध होता है। उससे जैसे पूर्व अनुदात्त स्वर था वैसे ही रहेगा। इससे प्र य आ रु: यह सिद्ध होता है।

गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में तो स्वरित का निषेध नहीं होता है, अपितु पूर्व सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर ही होता है।

विशेष- निश्चित रूप से 'अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणा:' (आदि मात्रा के कम होने पर भी पुत्र उत्सव के समान वैयाकरण उत्सव मनाते है) वह यहाँ पर कैसे उदय शब्द के प्रयोग उस स्थल में पर शब्द के प्रयोग से तो लघु होता तो यहाँ कहते है की उदय शब्द मङ्गलार्थ है। 'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि भवन्त्यायुष्मत्पुरुषाणि च' इस प्रकार वृद्धिरादैच् इस सूत्रभाष्य में पतञ्जलि ने कहा है। यहाँ उदय शब्द के प्रयोग से पाणिनि के द्वारा मङ्गल किया है, ये एक समाधान है।

दूसरा समाधान होता है की पर्यायवाची के ग्रहण करने में लघु गुरु की चिन्ता नहीं करते है इस नियम से यहाँ पर-पर्याय का उदय शब्द के ग्रहण करने में कोई हानि नहीं है।

पाठगत प्रश्न 9.1

1. उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित: इस सूत्र से किस स्वर का विधान है?
2. 'अग्निमीळे' यहाँ पर मकार से उत्तर ईकार का क्या स्वर है?
3. 'ईळे' यहाँ पर 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' यह सूत्र कैसे नहीं लगा?

4. उदात्त परे का, स्वरित परे का अनुदात्त का स्वरित निषेध किससे होता है?
5. किनके मत में उदात्त के परे स्वरित के परे अनुदात्त को स्वरित होता है?
6. 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' इस सूत्र में उदय शब्द का क्या अर्थ है?

9.3 एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ॥ (१.२.३३)

सूत्र का अर्थ – दूर से बुलाने में वाक्य एकश्रुति हो जाता है।

सूत्र की व्याख्या – छः प्रकार के सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से वाक्यों की एकश्रुति होने का विधान है। एकश्रुतौ दूरात् सम्बुद्धौ ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। यहाँ पर दूरात् इसमें 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' इस सूत्र से पञ्चमी, सम्बुद्धौ यहाँ पर सप्तमी एकवचन है। और भी एकश्रुति यहाँ नपुंसक लिङ्ग प्रथमा एकवचनान्त पद वाक्य है प्रथमा एकवचनान्त पद का विशेषण है। अतः वहाँ नपुसंक लिङ्ग में प्रथमा एकवचन है। और इस प्रकार दूरात् सम्बुद्धौ वाक्यम् एकश्रुति ये यहाँ सूत्र में आये पदो का अन्वय है।

सूत्र में सम्बुद्धौ इस पद से 'एकवचनं सम्बुद्धिः' इस सूत्र से निर्दिष्ट पारिभाषिक सम्बुद्धि शब्द का बोध नहीं करना है, अपितु सम्बुद्धिः– भली प्रकार से किसी को बुलाना यह अर्थ लिया है। वैसे ही दूरात् इस पञ्चम्यन्त पद का यहाँ वर्तमान सम्बुद्धि से इस शब्द का यहाँ अन्वर्थ रूप से ग्रहण किया है। 'एकवचनं सम्बुद्धिः' इस सूत्र में निर्दिष्ट सम्बुद्धि शब्द का सम्बन्ध तो दूर से है, प्रकृत सूत्र स्थित पद से नहीं हो सकता है। अतः जिस वाक्य से सम्बोधन करते हैं, वह संबोधन है, अर्थात् सम्बुद्धि यह अर्थ यहाँ जानना चाहिए। और उस प्रकार के वाक्य का प्रकृत सूत्र से एकश्रुति होने का विधान है।

यहाँ एकश्रुतिः इस पद में विग्रह क्या है? क्या 'एकस्य श्रुतिः इति', अथवा एका चासौ श्रुतिः' च इति। इस प्रश्न के होने पर कहा जाता है, एकश्रुतिः इस पद में 'एका चासौ श्रुतिः चेति' इस विग्रह में एकश्रुति है, एकश्रुति है इस वाक्य की इति एकश्रुति है। यहाँ श्रुतिः यह वेद का पर्यायवाची शब्द नहीं है। यहाँ श्रवण अर्थ में श्रु-धातु से क्तिन्-प्रत्यय करने पर और विभक्ति कार्य में श्रुतिः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। और उसका सुनना यह अर्थ है। एक ही श्रुति अर्थात् एक श्रवण यह ही अर्थ है। जिस वाक्य में श्रवण का भेद नहीं है, अर्थात् जहाँ भिन्न श्रुति न हो वह ही वाक्य एकश्रुति कहलाता है। यहाँ किसका अभेद है? इस जिज्ञासा में कहते हैं, उदात्त आदि के स्वरो का। और इस प्रकार प्रकृत सूत्र से वाक्यों का उदात्त आदि स्वरों के अभेद का विधान है। उसके द्वारा सूत्र का अर्थ होता है – दूर से बुलाने के अर्थ में अर्थात् सम्बोधन वाक्य में एकश्रुति होती है।

उदाहरण – आगच्छ भो माणवक देवदत्त।

सूत्र अर्थ का समन्वय –यहा वाक्य आगच्छ भों माणवक देववत्त यह है। यह वाक्य जब दूर से किसी को सम्बोधन करने में प्रयोग करते हैं, तब प्रकृत सूत्र यहाँ उदात्त अनुदात्त आदि स्वर गत

भेद को दूर करने से तथा एक का ही उदात्त स्वर का विधान करने से आगच्छ भो माणवक देवदत्त यहाँ एकश्रुति में उदात्त स्वर का ही समावेश होता है।

यहाँ दूर से सम्बोधन होता है, तो ही प्रकृत सूत्र से उस सम्बोधन बोधक पद में एकश्रुति करने का विधान है, अन्यथा एक श्रुति नहीं होती है। जैसे - आगच्छ भों माणवक देवदत्त इस वाक्य को जब पास से ही बुलाने का विधान है, तब उदात्त अनुदात्त आदि स्वर वहाँ होते है।

विशेष- यहाँ दूरं नाम कितने दूर को इस प्रकार की जिज्ञासा स्वाभाविकता से होती ही है। उसका समाधान कहते है की जितने स्थान में स्वाभाविक प्रयत्न से उच्चारण करने पर सम्बोध्य मान व्यक्ति को नहीं सुनाई देता है, उस स्थान को ही दूर शब्द से ग्रहण करते है। इसी प्रकार 'दूराद्धूते च' इत्यादि सूत्र में भी जानना चाहिए।

9.4 यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु॥ (२.१.३४)

सूत्र का अर्थ - यज्ञकर्म में मन्त्र एकश्रुति हो जाते है, जप न्यूङ्ख साम को छोड़कर।

सूत्र की व्याख्या - संज्ञा-परिभाषा-विधि-नियम-अतिदेश-अधिकार छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इससे जप आदि से भिन्न प्रयोगो में वाक्यो के एकश्रुति होने का विधान है। यज्ञकर्मणि अजपन्यूङ्खसामसु यह सूत्र में आये पदच्छेद है। वहाँ यज्ञकर्मणि यह सप्तमी एकवचनान्त पद है, और अजपन्यूङ्खसामसु ये सप्तमी बहुवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ एकश्रुति इस नपुसंक लिङ्ग प्रथमा एकवचनान्त विधेय बोध पद की अनुवृति है। यज्ञ का कर्म यज्ञकर्म यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास है, उस यज्ञकर्म में। जप, न्यूङ्ख और साम जपन्यूङ्खसामानि, न जपन्यूङ्खसामानि अजपन्यूङ्खसामानि, उन अजपन्यूङ्खसामसु यहाँ द्वन्द्वगर्भ नञ्तत्पुरुष समास है। और इस प्रकार यहाँ पर अजपन्यूङ्खसामसु यज्ञकर्मणि एकश्रुति ये सूत्र में आया अन्वय है। और उससे यहाँ सूत्र का अर्थ होता है - यज्ञकर्म में उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरो की एकश्रुति होती है, जप न्यूङ्ख साम को छोड़कर। इस सूत्र का मन्त्र एकश्रुति होता है यह इसका सार है।

जप अनुकरण मन्त्र अथवा उपांशु प्रयोग, न्यूङ्ख सोलह प्रकार का ओंकार, उससे यहाँ मन्त्र उच्चारण का प्रकार विशेष जानना चाहिए। साम वाक्य विशेष में स्थित गीत है। वहाँ जप में, न्यूङ्ख में और साम में उदात्त अनुदात्त आदि स्वर युक्त मन्त्रों का उच्चारण है। यहाँ कहते हैं की यदि इनसे भिन्न यज्ञ सम्बन्धी कर्म में मन्त्रों का प्रयोग होता है, तो उनके मन्त्रों की एकश्रुति होती है। अर्थात् उन यज्ञकर्म में प्रयुङ्क्त मन्त्रों में उदात्त, अनुदात्त आदि भेद नहीं रहता है।

उदाहरण - अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वतो३म् (ऋ. ८.४४.१६)।

सूत्र अर्थ का समन्वय - उदाहरण रूप में दिया यह मन्त्र यज्ञकर्म में प्रयुङ्क्त है। अतः प्रकृत सूत्र से इस मन्त्र में एकश्रुति का विधान है। उससे यहाँ उदात्त आदि स्वरों का भेद नहीं दिखाई देता है। अतः यहाँ उदात्त स्वरो का ही समावेश दिखाई देता है।

यहाँ यह जानना चाहिए की जब जप में, न्यूङ्ख में, और साम में मन्त्रों का प्रयोग होता है, तब प्रकृत सूत्र से यह एकश्रुति नहीं होती है। जैसे - यहाँ उदाहरण रूप से दिए मन्त्र का जब सपाठ में अर्थात् स्वाध्यायकाल में प्रयोग होता है, तब एकश्रुति नहीं होती है। इसी प्रकार जप में प्रयुङ्क्त मन्त्रों की भी एकश्रुति नहीं होती है। न्यूङ्ख सोलह प्रकार के ओकार, उनमे कुछ उदात्त और कुछ अनुदात्त है। अथ वहाँ पर भी प्रकृत सूत्र से एकश्रुति नहीं होती है। साम में भी वैसे ही एकाश्रुति नहीं होती है। जैसे वहाँ उदाहरण है - ए३ विश्वं समन्त्रिणं दह३ इति।

9.5 उच्चैस्तरां वा वषट्कार:॥ (१.२.३५)

सूत्र का अर्थ - यज्ञकर्म में वौषट्- शब्द उदाततर विकल्प से होता है पक्ष में एकश्रुति है।

सूत्र की व्याख्या - छ प्रकार के सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इससे वौषट्- शब्द की विकल्प से उदात्ततर, और एकश्रुतिका विधान है। उच्चैस्तरां वा वषट्कार: ये तीन पद यहाँ है। वहाँ उच्चैस्तराम् इति और वा इति ये दो अव्ययपद हैं, वषट्कार: यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु इस सूत्र से यहाँ यज्ञकर्मणि इस सप्तमी एकवचनान्त पद की, एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ इस सूत्र से एकश्रुति इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। उच्चैस्तराम् इसका अर्थ उदात्ततर है। स्वरित स्वर से यदि अनुदात्त स्वर होता है, तब स्वरित स्वर का आधा भाग उदात्ततर स्वर विशिष्ट होता है। वषट्कार- इस शब्द से यहाँ वौषट् इस अव्यय का ग्रहण है। और इस प्रकार यहाँ यज्ञकर्मणि वषट्कार: उच्चैस्तराम् एकश्रुति: वा ये सूत्र में आये पद अन्वय होते है। और उससे यहाँ सूत्र का अर्थ होता है - यज्ञकर्म में वषट्कार: अर्थात् वौषट्- शब्द एकश्रुति उदात्ततर विकल्प से होता है।

यहाँ वषट्कार: इसमें कार शब्द का कैसे ग्रहण किया है इस विषय में अनेक मत हैं। यहाँ कार शब्द से वौषट् इस अव्यय का ग्रहण किया है ऐसा कुछ का मत है। वौषट्- शब्द से अन्य शब्दों का भी जैसे विकल्प से उदात्ततर और एकश्रुति हो उसके लिए कार शब्द का ग्रहण है ऐसा कुछ मत है। और इनके मत के अनुसार 'अस्तु श्रौषट्' यहाँ पर भी श्रौषट्- शब्द उदात्ततर स्वर विशिष्ट होता है। और अन्यो के मत से यहाँ कार ग्रहण अवर्ण से भी कार प्रत्यय होता है, यह इसका ज्ञापक है, इनके मत के अनुसार ही एवकार इत्यादि पद सिद्ध होते है। और अन्यों के मत से पाणिनि के सूत्र विचित्र होते हैं इसको बताने के लिए यहाँ कार शब्द का ग्रहण किया है। इस कारण से ही पाणिनीय सूत्रों में कही पर कम अक्षरों की प्रधानता होती है, और कही पर ज्ञान लाघव प्रधान होता है। और यहाँ वषट्कार वौषट् इस शब्द में निरूढ यह यहाँ प्रधान रूप से जानना चाहिए।

उदाहरण - सोमस्याग्ने वीहि वौ३षट्। सोमस्याग्ने वीहि३ वौ३षट् (ऐतरेय. ३.५.४.६)।

सूत्र अर्थ का समन्वय -उदाहरण से दिया यह मन्त्र यज्ञकर्म में प्रयुङ्क्त है। अत: वहाँ वर्तमान वौषट्-शब्द विकल्प से उदात्ततर होता है, और उसके अभाव पक्ष में एकश्रुति होती है।

विशेष - स्वरित स्वर से यदि अनुदात्त स्वर होता है, तब स्वरित स्वर का आधा भाग उदात्ततर स्वर विशिष्ट होता है यह तो सभी को ज्ञात ही है, परन्तु यहाँ विधीयमान उदात्ततर स्वर का उस

समय क्या स्वरूप है इस जिज्ञासा में कहते है - उच्चैः इससे उदात्त का ग्रहण करते हैं, यह उदात्त है, यह उदात्त है, यह इन दोनों में उससे अधिक उदात्त है उच्चैस्तराम् अर्थात् उदात्ततर है। वैसे ही उदात्त स्वर का जिस स्थान से उच्चारण करते हैं, उस उच्चतर स्थान से भी जब किसी स्वर का उच्चारण करते है, तब वह स्वर उदात्ततर है ऐसा कहलाता है। और उस प्रकार के उदात्ततर का ही यहाँ प्रकृत सूत्र से विकल्प का विधान है।

9.6 विभाषा छन्दसि॥ (१।२।३६)

सूत्र का अर्थ - वेद विषय में तीनो स्वरों को विकल्प से एकश्रुति हो जाती है।

सूत्र की व्याख्या - संज्ञा-परिभाषा-विधि-नियम-अतिदेश-अधिकार छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस छन्द में अर्थात् वेद में विकल्प से एकश्रुति का विधान है। इस सूत्र में विभाषा छन्दसि ये दो पद हैं। वहाँ विभाषा यह अव्ययपद है, और 'छन्दसि' ये सप्तमी एकवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ पर 'एकश्रुति' इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति आती है। छन्दसि यहाँ पर विषय सप्तमी है, अतः छन्द विषय में ऐसा अर्थ प्राप्त होता है। यहाँ पर पदों का अन्वय - छन्दसि एकश्रुतिः विभाषा है। और उससे सूत्र का अर्थ इस प्रकार होता है - छन्द विषय में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों की एकश्रुति विकल्प से होती है। छन्द में मन्त्रों की उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों की विकल्प से एकश्रुति होती है यह इस सूत्र का निष्कर्ष निकला है। यहाँ एकश्रुतिः यह विशेषण पद नहीं है, अपितु विशेष्य पद ही है। अतः उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों की एक अभिन्न श्रुति होती है ऐसा अर्थ यहाँ पर समझना चाहिए।

यहाँ यह जानना चाहिए की 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से जप, न्यूङ्ख, साम से भिन्न यज्ञकर्म में एकश्रुति का विधान सम्भव होने से प्रकृत सूत्र का प्रयोग स्थलों में छन्दों में भी एकश्रुति सम्भव है, परन्तु यहाँ एकश्रुति विकल्प से चाहिए है, अतः सूत्र में विभाषा यह पद दिया है। और भी यहाँ सूत्र में 'वा' इस पद के प्रयोग करने से ही कार्य सम्भव होने पर, विभाषा इस पद के ग्रहण करने से यज्ञकर्मणि इस पद की निवृत्ति हो जाती है। वैसे ही यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु इस सूत्र से जप, न्यूङ्ख, साम से भिन्न यज्ञकर्म में ही नित्य एकश्रुति का विधान है, अतः जप, न्यूङ्ख, साम से भिन्न में, और यज्ञकर्म से भिन्न स्थलों में छन्द में भी विकल्प से एकश्रुति हो उसके लिए इस नये सूत्र की रचना की है। उस प्रकृत से सूत्र से यज्ञकर्म भिन्न में स्वाध्याय काल में भी वेदों में विकल्प से एकश्रुति होती है।

उदाहरण - 'इषे त्वोर्जे त्वा। इषे त्वोर्जे त्वा' (वाज. सं. १.१.१)। 'अग्न आया हि वीतये। अग्न आया हि वीतये' (ऋ. ६.१६.१०)

सूत्र अर्थ का समन्वय - 'इषे त्वोर्जे त्वा। अग्न आया हि वीतये' इन दोनों मन्त्रों का प्रयोग छन्द में देखते है। अतः प्रकृत सूत्र से इन दोनों मन्त्र में उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों का विकल्प से एकश्रुति होती है। तथा एकश्रुति होने पर इन दोनों मन्त्रों में सभी जगह एक ही उदात्त स्वर का विधान होने पर 'इषे त्वोर्जे त्वा। अग्न आया हि वीतये' ये दोनों वैकल्पिक प्रयोग सिद्ध होते हैं।

विशेष - यहाँ विभाषा इस पद के ग्रहण से यज्ञकर्मणि इसकी निवृत्ति भी होती है, अलग से छन्दसि इस पद के ग्रहण से छन्द रूप में, यज्ञकर्म में, विकल्प से एकश्रुति प्राप्त होती ही है, परन्तु यहाँ कोई दोष नहीं है, उस 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र में यज्ञकर्मणी यहाँ पर कर्म शब्द के ग्रहण से यज्ञकर्म में, छन्द में उस सूत्र से नित्य ही एकश्रुति होती, प्रकृत सूत्र से वैकल्पिक एकश्रुति नहीं होती है। इस प्रकृत सूत्र के वैकल्पिक होने से 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से वहाँ निषेध जप, न्यूङ्ख, और साम में प्रकृत सूत्र से विकल्प में एकश्रुति प्राप्त होती है। परन्तु उन जप आदि पदों का यहाँ ग्रहण के अभाव होने से और 'छन्दसि' इस पद का ही उल्लेख होने से उन जप आदि में प्रकृत सूत्र से वैकल्पिक एकश्रुति नहीं होती है।

पाठगत प्रश्न 9.2

1. वाक्य कब एकश्रुति होता है?
2. सम्बुद्धि क्या है?
3. जप क्या है?
4. न्यूङ्ख क्या?
5. वषट् कार से किस शब्द का ग्रहण होता है?
6. उच्चैस्तराम् इसका क्या अर्थ है?
7. विकल्प से एकश्रुति कहाँ पर होती है?

9.7 न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः॥ (१.२.३७)

सूत्र का अर्थ - सुब्रह्मण्या नामवाले निगद में 'यज्ञकर्मणि' इससे और 'विभाषा छन्दसि' इससे प्राप्त एकश्रुति नहीं होती है, किन्तु स्वरित को उदात्त हो जाता है।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह निषेध सूत्र है, और विधि सूत्र भी है। इससे एकश्रुति का निषेध होता है, और स्वरित के स्थान में उदात्त होता है। 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तु उदात्तः ये सूत्र में आये पदच्छेद है। वहाँ 'न' और 'तु' ये अव्ययपद है, सुब्रह्मण्यायाम् यह सप्तमी एकवचनान्त पद है, स्वरितस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, और उदात्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ 'एकश्रुति' इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति आ रही है। यहाँ पर भी एकश्रुतिः यह विशेषण पद नहीं है, अपितु विशेष्य पद ही है। अतः उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों की एक अभिन्न श्रुति है यह उसका अर्थ है। यहाँ 'सुब्रह्मण्यायाम् एकश्रुतिः न, स्वरितस्य तु उदात्तः' यह सूत्र में आये पद का अन्वय है। सुब्रह्मण्या यह नाम विशेष है। और उससे सुब्रह्मण्या नाम वाले निगद को जानना चाहिए। अथ यह निगद क्या है? इस जिज्ञासा में कहते है निगद शब्द में वर्तमान गद् - धातु से अपाद बन्ध अर्थक है, नि पूर्वक से गद् - धातु

हमेशा गद्यते इस कर्म अर्थ में 'नौ गदनदपठस्वनः' इस सूत्र से अप् - प्रत्यय होता है। और उसके बाद प्रक्रिया कार्य में निगदः यह रूप सिद्ध होता है, यहाँ नि शब्द प्रकर्ष अर्थ में है। ऊँचे से अपादबन्ध यजुरात्मक जो मन्त्र वाक्य पढ़ते हैं, वह निगद होते है। उस निगद में पाद व्यवस्था नहीं है, और न ही अर्द्ध ऋचा की व्यवस्था है। इस प्रकार यहाँ सूत्र का अर्थ होता है - सुब्रह्मण्या नामवाले निगद में एकश्रुति नहीं होती है, और सूत्र से प्राप्त स्वरित के स्थान में उदात्त होता है।

उदाहरण - 'सुब्रह्मण्योइम् इन्द्रागच्छ, ह रिव आगच्छ, मेधातिथेर्मेष वृ षणश्वस्य मेने गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै जार कौशिकब्राह्मण गौतमब्रुवाण श्वः सु त्यागमागच्छ मघवन्' (शत. ब्रा. ३.३.११९)।

सूत्र अर्थ का समन्वय - यहाँ उदाहरण मन्त्र का यज्ञकर्म में विहित होने से और छन्द में होने से 'यज्ञकर्मणि' इस और 'विभाषा छन्दसि' इन दो सूत्रों से प्राप्त एकश्रुति का प्रकृत सूत्र से निषेध प्राप्त होता है। और सुब्रह्मण्योइम् यहाँ पर स्वरित के स्थान में उदात्त होने का उपदेश है। वैसे ही यत् प्रत्ययान्त सुब्रह्मण्य शब्द की स्त्रीत्व विवक्षा में वहाँ 'अजाद्यतष्टाप्' इस सूत्र से टाप् में टाप् के टकार की 'चुटू' इस सूत्र से टकार की और 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से पकार की इत् संज्ञा में और 'तस्य लोपः' इससे उन दोनों इत् संज्ञा के लोप होने पर और विभक्ति कार्य होने पर सुब्रह्मण्य यह रूप बनता है। सुब्रह्मण्य शब्द का यत् प्रत्ययान्त होने से और उस यत् प्रत्यय के तित् होने से 'तित् स्वरितम्' इस सूत्र से यहाँ अन्त्य अकार को स्वरित स्वर होता है। टाप् के आकार के स्थान में और सुब्रह्मण्य शब्द के अकार के स्थान में विहित आकार 'स्थानेऽन्तरतमः' इस सूत्र से अन्तरतम होने से स्वरित ही होता है। यहाँ टाप् प्रत्यय के पित् होने से 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' इस सूत्र से आकार का अनुदात्त स्वर विशिष्ट होने पर भी उन दोनों में स्वरित अनुदात्त के स्थान में स्वरित ही होता है, 'स्वरितानुदात्तसन्निपाते स्वरितम्' इस सूत्र से स्वरित के और अनुदात्त के स्थान में स्वरित का ही निर्देश होने से। अतः पर सुब्रह्मण्या + ओम् इस अवस्था में 'ओमाङोश्च' इससे पररूप ओंकार होने पर 'सुब्रह्मण्योम्' इस शब्द का निपात अन्त होने से और उस निपात का 'निपाता आद्युदात्ताः' इस सूत्र से आद्युदात्त होने से और वहाँ आकार के और ओकार के स्थान में विहित ओंकार का ही स्वरित स्वर होता है। इस प्रकार 'सुब्रह्मण्योम्' यहाँ पर अन्तिम ओंकार स्वरित सिद्ध है। और उसके बाद प्रकृत सूत्र से ओकार के स्थान में सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर के स्थान में उदात्त स्वर का विधान है।

विशेष - यहाँ सुब्रह्मण्या + ओम् इस अवस्था में स्वरित के और उदात्त के स्थान में 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इस सूत्र से एकादेश में उदात्त स्वर नहीं होता है, उस सूत्र में 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' इस सूत्र से अनुदात्तस्य इस पद की अनुवृति होने से उस सूत्र से उदात्त के और अनुदात्त के स्थान में ही उदात्त एकादेश होता है।

9.7.1 असावित्यन्तः॥ (वा. ६५१)

वार्तिक का अर्थ - उस निगद में ही प्रथमान्त का अन्त उदात्त होता है।

वार्तिक की व्याख्या – यह वार्तिक 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा हुआ है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। असौ इति अन्तः ये वार्तिक में आये पदच्छेद हैं। वहाँ असौ यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, इति यह अव्ययम है, और अन्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। 'सुब्रह्मण्योम् सुब्रह्मण्योम् सुब्रह्मण्योम् इन्द्रागच्छ हरिव आगच्छ ...... वासुदेवस्य पुत्रः पशुपतेः पौत्रो नारायणस्य नप्ता रामभद्रस्य पिता महेन्द्रस्य पौत्रः कमलाकस्य प्रपौत्रो देवदत्तो यजते सुत्याम्' – निगद में इस प्रकार का विधान होने से जाना जाता है की मन्त्र में यजमान के नाम प्रथमान्त से प्रयोग करने चाहिए, और उससे पूर्व पुरूषों के नाम षष्ठ्यन्त से प्रयोग करने चाहिए। यहाँ वार्तिक में 'असौ' इस पद से उस यजमान का ही प्रथमान्त नामवाचक पद को ग्रहण किया है। अथ इस वार्तिक से उस यजमान नामवाचक के प्रथमान्त पद के अन्त का उदात्त स्वर करने का नियम है।

उदाहरण – गार्ग्यो यजते।

वार्तक अर्थ का समन्वय – गार्ग्यः यहाँ पर 'गर्गादिभ्यो यञ्' इस सूत्र से यञ् प्रत्यय का विधान है। और उस यञ्प्रत्यय का ञित होने से गार्ग्य शब्द का 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आद्युदात्त की प्राप्ति में प्रकृत वार्तिक से यहाँ अन्त के उदात्त स्वर का विधान किया है।

9.7.2 अमुष्येत्यन्तः॥ (वा. ६५२)

वार्तिक का अर्थ – षष्ठ्यन्त का भी अन्त उदात्त होता है।

वार्तिक की व्याख्या – यह वार्तिक 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा गया है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। यहाँ अमुष्य इति अन्तः ये वार्तिक में आये पदच्छेद है। यहाँ अमुष्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, इति यह अव्यय है, अन्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। यहाँ पर भी 'वासुदेवस्य पुत्रः पशुपतेः पौत्रो नारायणस्य नप्ता रामभद्रस्य पिता महेन्द्रस्य पौत्रः कमलाकस्य प्रपौत्रो देवदत्तो यजते सुत्याम्' – इस रूप से मन्त्र में षष्ठ्यन्त से विहित पद का अमुष्य इस पद से ग्रहण किया है। अतः इस वार्तिक से उस षष्ठ्यन्त से विहित पद के अन्त को उदात्त स्वर का विधान है।

यहाँ यह जानना चाहिए की स्यान्त के विना अन्य षष्ठ्यन्त पदो की यहाँ विवक्षा है। यहाँ स्यान्त षष्ठ्यन्त का तोड़ा हुआ पद है, 'स्यान्तस्योपोत्तमं च' इस वार्तिक में 'स्यान्तस्य' इस पद ग्रहण से।

उदाहरण – दाक्षेः पिता यजते।

सूत्र अर्थ का समन्वय – दाक्षेः यहाँ पर दाक्षि – शब्द का षष्ठी एकवचन का रूप है। दक्ष शब्द से 'अत इञ्' इस सूत्र से इच्ञ्प्रत्यय करने पर इञ्प्रत्यय के ञकार की 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से इत् संज्ञा करने पर 'तस्य लोपः' इस सूत्र से उस ञकार का लोप होने पर और प्रक्रिया कार्य में दाक्षेः यह रूप सिद्ध होता है। यहाँ इञ्प्रत्यय के ञित्त्वाद होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आद्युदात्त की प्राप्ति में प्रकृत वार्तिक से यहाँ अन्त को उदात्त स्वर करने का विधान है।

9.7.3 स्यान्तस्योपोत्तमं च॥ (वा. ६५३)

वार्तिक का अर्थ - स्यान्त के और उपोत्तम के अन्त्य को उदात्त स्वर होता है।

वार्तिक की व्याख्या - यह वार्तिक 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा गया है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। स्यान्तस्य उपोत्तमं च ये वार्तिक में आये पदच्छेद है। वहाँ स्यान्तस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, उपोत्तमम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, च यह अव्ययपद है। यहाँ स्यान्त पद से निगद में षष्ठ्यन्त से प्रयुज्यमान स्यान्त पदों का ग्रहण है। और इस प्रकार प्रकृत वार्तिक से उस पद के ही और उपोत्तम अर्थात् अन्त्य से पूर्व अन्त्य को उदात्त स्वर का विधान है। यहाँ चकार से अन्तः इस पद की अनुवृति आ रही है। उस प्रकृत वार्तिक से स्यान्त पद के अन्त्य का, और अन्त्य से पूर्व का उदात्त स्वर करने का विधान है।

उदाहरण - गार्ग्यस्य पिता यजते।

वार्तिक अर्थ का समन्वय - गार्ग्यस्य यहाँ पर गार्ग्यस्य यह स्यान्त पद है, उससे यहाँ ग्य - इस उपोत्तम अकार का और स्य - यहाँ अकार का प्रकृत वार्तिक से उदात्त स्वर का विधान है।

9.7.4 वा नामधेयस्य॥ (वा. ६५४)

वार्तिक का अर्थ - स्यान्त नामधेय का उपोत्तम उदात्त विकल्प से होता है।

वार्तिक की व्याख्या - यह वार्तिक भी 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा गया है। इससे विकल्प से उदात्त स्वर का विधान है। यह दो पद वाला वार्तिक है। यहाँ वा यह अव्ययपद है, और नामधेयस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है। 'स्यान्तस्योपोत्तमं च' इस वार्तिक से यहाँ स्यान्तस्य इस षष्ठी एकवचनान्त पद, उपोत्तमम् इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। स्यान्तस्य यह नामधेय इस पद का विशेषण है। यहाँ नामधेयस्य इस पद से निगद में षष्ठ्यन्त से प्रयोग किये गये नामवाचक स्यान्त पदो का ग्रहण करते हैं। अतः प्रकृत वार्तिक से उस नामवाचक स्यान्त पद के उपोत्तमस्य अर्थात् अन्त्य से पूर्व का उदात्त स्वर करने का विधान है। यहाँ वा इस पदग्रहण से वह उदात्त स्वर विकल्प से होता है। इस वार्तिक से जिस पक्ष में उपोत्तम के उदात्त स्वर का अभाव है उस पक्ष में स्यान्त के अन्त का उदात्त स्वर होता है। यह भी अन्त स्थानीय उदात्त स्वर इस वार्तिक से ही होता है।

उदाहरण - देवदत्तस्य पिता यजते।

वार्तिक अर्थ का समन्वय - देवदत्तस्य यह नामवाचक पद है, किन्तु यहाँ यह पद स्यान्त है। अतः प्रकृत वार्तिक से यहाँ नामवाचक देवदत्तस्य इस पद के उपोत्तमस्य अर्थात् अन्त्य से पूर्व का विकल्प से उदात्त स्वर होता है। उसके अभाव पक्ष में अन्तस्य इसके स्य - इसके अकार को उदात्त स्वर होता है।

पाठगत प्रश्न 9.3

1. विभाषा छन्दसि इस सूत्र में विभाषा इस पद का ग्रहण कैसे किया है?
2. निगद क्या है?
3. निगद में यजमान के नामवाचक प्रातिपदिक में कौन सी विभक्ति होती है?
4. अमुष्येत्यन्तः इस वार्तिक से कैसे स्यान्तस्य षष्ठ्यन्त पद का अन्त उदात्त नहीं होता है?
5. उपोत्तमं नाम क्या है?

9.8 देवब्रह्मणोरनुदात्तः॥ (१.२.३८)

सूत्र का अर्थ– देव ब्रह्मन् शब्दों को स्वरित के स्थान में अनुदात्त होता है, सुब्रह्मण्या निगद में।

सूत्र की व्याख्या – छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। देवब्रह्मणोः अनुदात्तः ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। वहाँ देवब्रह्मणोः ये सप्तमी द्विवचनान्त पद है। और अनुदात्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। पूर्व 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र से स्वरितस्य इस षष्ठ्यन्त तथा सुब्रह्मण्यायाम् इस सप्तम्यन्त पद की यहाँ अनुवृति है। सुब्रह्मण्यायां देवब्रह्मणोः स्वरितस्य अनुदात्तः यह पद का अन्वय है। देवब्रह्मणोः यहाँ पर 'देवश्च ब्रह्मा च इत्यनयोः द्वन्द्व समास में 'देवब्रह्माणौ, तयोः देवब्रह्मणोः। इस देव शब्द में, ब्रह्मन् शब्द मे परे इस अर्थ में है। अनुदात्तः यह प्रथमान्त विधीयमान पद है। सुब्रह्मण्यायाम् इसके सुब्रह्मण्य नाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में इस अर्थ में। इस प्रकार सूत्र अर्थ होता है – सुब्रह्मण्य नाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में देव ब्रह्मन् शब्द के स्वरित के स्थान में अनुदात्त स्वर होता है। 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र से उदात्त प्राप्ति प्रकृत सूत्र से उसको अनुदात्त स्वर होता है ऐसा जानना चाहिए।

उदाहरण– देवा ब्रह्माण आगच्छत् इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय – सुब्रह्मण्यनाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में देवशब्द तथा ब्रह्मण्-शब्द का प्रयोग है। अतः देवा ब्रह्माण आगच्छत् इस उदाहरण में देवा यहाँ पर वकार से उत्तर आकार का तथा ब्रह्माण यहाँ ह्मा से उत्तर आकार का 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इससे उदात्त की प्राप्ति है इस प्रकृत सूत्र से उसको अनुदात्त स्वर का विधान है।

9.9 स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम्॥ (१.२.३९)

सूत्र का अर्थ– स्वरित से उत्तर संहिता विषय में अनुदातों को एकश्रुति होती है।

सूत्र की व्याख्या – छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। वहाँ स्वरिताद् यह पञ्चमी एकवचनान्त पद है, संहितायाम यह सप्तमी एकवचनान्त तथा अनुदात्तानाम यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ एकश्रुतिः इस

एकवचनान्त पद की अनुवृति आती है। स्वरिताद् यह पञ्चम्यन्त पद है, अतः तस्मादित्युत्तरस्य इस परिभाषा से स्वरित से परे इस अर्थ को जानना चाहिए। एकश्रुतिः यह प्रथमान्त पद है, अतः उसका विधायक पद है। अनुदातों का यहाँ जाति में बहुवचन है। उससे एक दो और बहुतों की विधि समझनी चाहिए। अतः अनुदात्तानाम् इसका अर्थ है, अनुदात्त का, दो अनुदातों का, अथवा अनेक अनुदात्तों का। संहितायाम् यहाँ पर विषय सप्तमी है। 'एका श्रुतिः यस्य तत् एकश्रुति' इति बहुव्रीहि समास है। श्रवण को श्रुति कहते है। दूर से बुलाने पर, उदात्त-अनुदात्त-स्वरित स्वरों की एकश्रुति होती है। जहाँ उदात्त अनुदात्त स्वरित के पृथक् कोई भी स्वर सुनाई नहीं देता है, वह एकश्रुति स्वर है। संहितायां स्वरिताद् अनुदात्तानाम् एकश्रुतिः स्याद ये सूत्र में आये पदों का अन्वय है। सम्पूर्ण रूप से सूत्र का अर्थ होता है - संहिता के होने पर स्वरित स्वर से परे विद्यमान अनुदात्त स्वरों की एकश्रुति होती है, अर्थात् कोई भी विशिष्ट स्वर सुनाई नहीं देता है यह भाव है।

उदाहरण- इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- इस उदाहरण में 'मे' इस शब्द में स्वरित स्वर है। उससे परे गङ्गे-यमुने इत्यादि शब्द है। और ये अनुदात्त है। स्वरित स्वर से परे विद्यमान होने से अनुदातो की उन गङ्गे यमुने इत्यादि शब्दों की एकश्रुति सिद्ध होती है।

9.10 उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः॥ (१.२.४०)

सूत्र का अर्थ- उदात्तस्वरितौ परौ यस्मात्तस्य अनुदात्तस्य सन्नतरः स्यात्।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद विद्यमान है। वहाँ 'उदात्तस्वरितपरस्य' यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, सन्नतरः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, किन्तु अनुदात्तानाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। अनुदात्त ग्रहण की अनुवृति आती है। उदात्तस्वरितपरस्य यहाँ पर 'पर' शब्द का प्रत्येक के साथ अभिसम्बन्ध है। उदात्त परे है जिससे वह उदात्तपरः, स्वरित परे है जिससे वह स्वरितपरः। उदात्त परे और स्वरित परे अनुदात्तके स्थान में अनुदात्तर आदेश हो जाता है। सन्न शब्द का नीचे के इस अर्थ में प्रयोग है। अतः सन्नतर इसका अर्थ अनुदात्ततर है। और इस प्रकार सूत्र का अर्थ होता है - उदात्त स्वर और स्वरित स्वर जब परे रहते है, तब पूर्व के अनुदात्त स्वर को अनुदात्तर आदेश होता है।

उदाहरण- इमं मे गङ्गे सरस्वति शुतुद्रि व्यचक्षयत्स्वः, माणवक जटिलकाध्यापक क्व गमिष्यसि इति च।

सूत्र अर्थ का समन्वय- वेद में सम्बोधन पद को आमन्त्रित शब्द से कहते हैं। और अनुदात्त स्वर निघात शब्द को कहते है। यहाँ 'मे' शब्दको आश्रित करके सरस्वति यहाँ पर आमन्त्रित निघात है। शुतुद्रि शब्द का तो पाद आदि होने से निघात नहीं होता है। पाद के आदि में विद्यमान होने से, आमन्त्रित होने से षष्ठी से और आमन्त्रित के स्थान से शुतुद्रि शब्द के शकार से उत्तर उकार उदात्त होता है, अतः उसके परे होने पर पूर्व सरस्वति शब्द की इकार के स्थान से अनुदात्त के स्थान में अनुदात्तर आदेश होता है। व्यचक्षयत्स्वः यहाँ पर 'वि-इति' उपसर्ग होने से आद्युदात्त है।

टिप्पणियाँ

वि इससे परे अचक्षयत्स्व इस तिङन्त की तिङ् इससे निघात है। स्व: यहाँ 'न्यङ्स्वरौ स्वरितौ' इससे स्वरित है। उस स्वरित स्वर परे होने पर ऊपर के सूत्र से यकार उत्तर अकार को सन्नतर (अनुदात्ततर) स्वर सिद्ध होती है।

द्वितीय उदाहरण में क्व इस शब्द में स्वरित स्वर विद्यमान है। अत: उससे परे होने पर अध्यापक शब्द के ककार से उत्तर अकार अनुदात्त है, उसका इस सूत्र से सन्नतर आदेश होता है।

9.11 अनुदात्तं च॥ (८.१.३)

सूत्र का अर्थ- जिसकी आम्रेडित संज्ञा होती है वह अनुदात्त भी होता है।।

सूत्र की व्याख्या - छ: प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद विद्यमान है। वहाँ अनुदात्तम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। च यह अव्ययपद है। पूर्व से 'तस्य परमाम्रेडितम्' इस सूत्र में आम्रेडित संज्ञा करते है। 'सर्वस्य द्वे' इस अधिकार में यह सूत्र है। इस अधिकार में कहे हुए शब्दों को द्वित्व होता है। द्वित्व करने पर उन दोनों शब्दों के मध्य में जो दूसरा शब्द है, उसकी 'तस्य परमाम्रेडितम्' इस सूत्र से आम्रेडितसंज्ञा होती है। आम्रेडित का उदाहरण है- चौर चौर, वृषल वृषल, दस्यो दस्यो घातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा इत्यादि। उस आम्रेडित संज्ञक की इस सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है। और इस प्रकार सम्पूर्ण सूत्र का अर्थ होता है की दो कहे हुए शब्दों के मध्य में जो पर है, उसको अनुदात्त हो।

उदाहरण- दिवेदिवे इति।।

सूत्र अर्थ का समन्वय- इस उदाहरण में दिवे दिवे यहाँ पर दो बार दिवे-शब्द का प्रयोग है। अत: दूसरे दिवे-शब्द का इस सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है।

विशेष- प्रकृति स्वर में प्राप्त पर के स्थान में अनुदात्त कहा है। अनुदात्त शब्द यहाँ पर शास्त्रीय अनुदात्त नहीं है, तो क्या है? इसका यहाँ अन्वर्थ ही ग्रहण किया है। उसका विग्रह होता है अविद्यमान उदात्त को अनुदात्त को। शास्त्रीय अनुदात्त की यदि विवक्षा होती तो वहाँ सम्बन्ध अर्थ में षष्ठी का उच्चारण होता है यह विशेष है।

पाठगत प्रश्न 9.4

1. 'सुब्रह्मण्यायाम्' इसका क्या अर्थ है?
2. 'देवब्रह्मणोरनुदात्त:' इस सूत्र का क्या अर्थ है?
3. 'सुब्रह्मण्यायाम् उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर:' इस सूत्र में विधीयमान एकश्रुति स्वर क्या है?
4. 'स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम्' इस सूत्र का क्या अर्थ है?

5. सन्नतर नाम क्या है?

6. वेद में आमन्त्रित शब्द का अर्थ क्या है?

7. 'उदात्तस्वरितपरस्य' का विग्रह लिखिए।

8. 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः' इस सूत्र का अर्थ लिखिए।

9. 'अनुदात्तं च' इस सूत्र का अर्थ लिखिए।

10. 'अनुदात्तं च' इस सूत्र में अनुदात्त शब्द का अर्थ क्या है?

पाठ का सार

उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित होता है, परन्तु यदि अनुदात्त के परे उदात्त अथवा स्वरित हो तो पूर्व अनुदात्त के स्थान में स्वरित नहीं होता है। गार्ग्य आदि ऋषियों के मत में तो स्वरित ही होता है उसका निषेध नहीं होता है। दूर से सम्बोधन वाक्य की एकश्रुति का विधान है। यहाँ एकश्रुति विषय में विग्रह सहित उदाहरण का भी वर्णन है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों के लोप को ही एकश्रुति कहते हैं। 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से जप, न्यूङ्ख और साम से भिन्न यज्ञकर्म के मन्त्र में एकश्रुति होती है। जप अनुकरण मन्त्र को कहते है, न्यूङ्खा नाम सोलह प्रकार के ओकार को कहते है, और साम वाक्य विशेषस्थ गीत को कहते है। यहाँ वषट्कारः इस पद से वौषट् इस अव्ययपद को ग्रहण करते है। यहाँ कार शब्द के ग्रहण करने के विषय में अन्य भी अनेक मत है। 'विभाषा छन्दसि' इस सूत्र से छन्द में विकल्प से एकश्रुति का विधान है। 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र से सुब्रह्मण्य नामवाले निगद में 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से विभाषा छन्दसि इस सूत्र से प्राप्त एकश्रुति का निषेध होता, और स्वरित स्वर के स्थान में उदात्त स्वर का विधान है। जिस मन्त्र वाक्य में पाद व्यवस्था नहीं होती है, उसे निगद कहते है। सुब्रह्मण्या+ओम् इत्यादि स्थलों में स्वरित स्वर का और उदात्त स्वर के स्थान में एकादेश उदात्तेनोदात्तः इस सूत्र से एकादेश में उदात्त स्वर नहीं होता है, उस सूत्र में अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः इस सूत्र से अनुदात्तस्य इस पद की अनुवृति आती है, किन्तु उस एकादेश विधायक सूत्र से उदात्त अनुदात्त के स्थान में ही एकादेश उदात्त होता है, उदात्त स्वरित के स्थान में एकादेश नहीं होता है। असावित्यन्तः इस वार्तिक से निगद में प्रथमान्त पद का अन्त उदात्त होता है। स्यान्तस्योपोत्तमं च इस वार्तिक से स्यान्त पद के अन्त के और अन्त से पूर्व उदात्त स्वर होता है। वा नामधेयस्य इस सूत्र से नामवाचक स्यान्त पद के अन्त से पूर्व को विकल्प से उदात्त स्वर होता है, जिस पक्ष में वहाँ अन्त से पूर्व उदात्त नहीं होता है, वहाँ अन्त के स्थान में उदात्त स्वर होता है। देव ब्रह्मण शब्दों के स्वरित के स्थान में अनुदात्त हो। किन्तु स्वरित से परे अनुदात्त की एकश्रुति हो। दोबार कहे हुए शब्दों में बाद वाला आम्रेडित संज्ञक शब्द अनुदात्त होता है।

टिप्पणियाँ

पाठांत प्रश्न

1. 'अग्निमींळे' इस रूप को स्वर सहित सिद्ध कीजिए।
2. 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. 'एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. 'उच्चैस्तरां वा वषट्कार:' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
6. 'विभाषा छन्दसि' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
7. 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्त:' इस सूत्र का एक उदाहरण लिखिए।
8. 'असावित्यन्त:' इस वार्तिक की व्याख्या कीजिए।
9. 'देवब्रह्मणोरनुदात्त:' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
10. 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर:' इस सूत्र के उदाहरण के प्रकारों को लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

9.1

1. स्वरित स्वर का विधान है।
2. स्वरित स्वर।
3. 'उदात्तानुदात्तस्य स्वरित:' इसके असिद्ध होने से।
4. 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' इससे।
5. गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में।
6. पर इस अर्थ में।

9.2

1. दूर से संबोधन करने वाले वाक्य में एकश्रुति होती है।
2. संबोधन करता है, जिस वाक्य से वह सम्बुद्धि है।
3. अनुकरण मन्त्र अथवा उपांशु प्रयोग जप है।
4. न्यूङ्ख नाम सोलह ओकार का है।
5. वौषट् - यह शब्द है।

6. अतितर उदात्त है।
7. छन्द में।

9.3

1. यज्ञकर्मणि इस पद की निवृत्ति के लिए।
2. उच्चै अपाद बन्ध यजुरात्मक है क्योकि जो मन्त्र वाक्य पढ़ते है वे निगद होते है।
3. प्रथमा विभक्ति।
4. 'स्यान्तस्योपोत्तमं च' इस वार्तिक से स्यान्तस्य इस पद ग्रहण से।
5. अन्त्य से पूर्व।

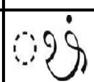
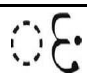
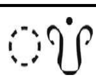
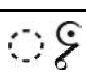
9.4

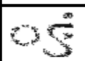
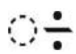
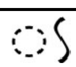
1. सुब्रह्मण्य नाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में यह अर्थ है।
2. देव ब्रह्मण शब्द में स्वरित के स्थान में अनुदात्त हो यह अर्थ है।
3. जहाँ उदात्त, अनुदात्त, स्वरित का पृथक् से कोई भी स्वर सुनाई नहीं देता है वह एकश्रुति स्वर है।
4. स्वरित से परे अनुदात्तों की संहिता में या एकश्रुति हो यह अर्थ है।
5. अनुदात्ततर है।
6. सम्बोधन पद को।
7. उदात्त परे है जिससे वह उदात्तपर:, स्वरित परे है जिससे वह स्वरितपर:।
8. उदात्त स्वरित के परे जिससे उस अनुदात्त के स्थान में अनुदात्तर हो।
9. दो बार कहे हुए शब्दों के पर रूप को अनुदात्त हो।।
10. अविद्यमान उदात्त को, अनुदात्त को।

॥ नौंवाँ पाठ समाप्त॥

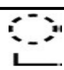
वैदिक चिह्नों की आकृति की पहचान व सम्बोधन			
१	ॵ	वैदिक चिह्न दीर्घ ओ	
२	◌ॏ	वैदिक चिह्न दीर्घ ओ	
३	ष	वैदिक अक्षर ज्ञ	
४	•	वैदिक अनुस्वार बिन्दु	स्वर रहित न म ण ञ ङ
५	◡	वैदिक चिह्न चन्द्र	
६	◌ॅ	वैदिक चिह्न चन्द्र दीर्घ	
७	◌ꣳ	वैदिक अनुस्वार अधो मुखा चन्द्र बिन्दु	
८	ँ	वैदिक अनुस्वार चन्द्र बिन्दु	सामवेद
९	ऽ	वैदिक चिह्न अवग्रह	वेदों में
१०	◌ँ१	वैदिक अनुस्वार चन्द्र बिन्दु त्रियका	यजुर्वेद
११	◌ँ२	वैदिक अनुस्वार चन्द्र बिन्दु द्वि	यजुर्वेद
१२	◌ँ३	वैदिक अनुस्वार चन्द्र बिन्दु त्रि	ऋग्वेद
१३	◌ँऽ	वैदिक अनुस्वार चन्द्र बिन्दु अवग्रह	यजुर्वेद

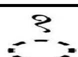
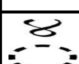
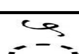
वैदिक चिह्नों की आकृति की पहचान व सम्बोधन

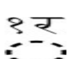
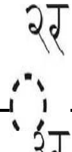
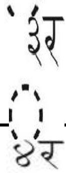
१४		वैदिक अनुस्वार द्वि चन्द्र बिन्दु त्रियका	तैत्रीय प्रतिशाख्य
१५		देवनागरी चिह्न पुष्पिका	
१६		वैदिक अनुस्वार अंत:मुखा	यजुर्वेद
१७		वैदिक अनुस्वार वाममुखा	यजुर्वेद
१८		वैदिक अनुस्वार वाममुखा चन्द्र सहित	शतपथ ब्राह्मण
१९		वैदिक अनुस्वार वाममुखा स्वकरा	यजुर्वेद
२०		वैदिक अनुस्वार दक्षिणामुखा या अनुगामी	शतपथ ब्राह्मण
२१		वैदिक अनुस्वार नागमुखा	शतपथ ब्राह्मण
२२		वैदिक अनुस्वार नागमुखा चन्द्र सहित	यजुर्वेद
२३		वैदिक अनुस्वार कं्कुमुखा	यजुर्वेद
२४		वैदिक अनुस्वार त्थसदिरशा दक्षिणामुखा	यजुर्वेद
२५		वैदिक अनुस्वार दीर्घ	
२६		वैदिक विसर्ग अनुदात्ता अधो वक्र	

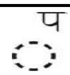
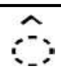
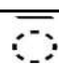
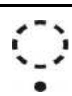
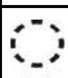
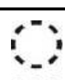
वैदिक चिह्नों की आकृति की पहचान व सम्बोधन			
२७		वैदिक अनुस्वार द्वि बिन्दु अवग्रह	यजुर्वेद
२८		वैदिक विसर्ग दक्षिणा ऊर्ध्वा वक्र	यजुर्वेद
२९		वैदिक विसर्ग दक्षिणा अधो वक्र	यजुर्वेद
३०		वैदिक मध्यरेखा	यजुर्वेद
३१		वैदिक विसर्ग मध्यरेखा	यजुर्वेद
३२		वैदिक चिह्न दक्षिणाता ऊर्ध्वा	यजुर्वेद
३३		वैदिक विसर्ग दक्षिणा ऊर्ध्वा	यजुर्वेद
३४		वैदिक विसर्ग वामतः अधोगा अनुदात्ता	यजुर्वेद
३५		वैदिक विसर्ग वामतः दक्षिणा अनुदात्ता	
३६		वैदिक विसर्ग उदात्ता वामता ऊर्ध्वा	
३७		वैदिक विसर्ग वामता ऊर्ध्वा	यजुर्वेद
३८		वैदिक स्वरित द्वि वक्र खंड	अथर्वेद
३९		वैदिक स्वरित द्वि रेखा ऊर्ध्वा	सामवेद गायन

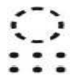
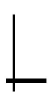
वैदिक चिह्नों की आकृति की पहचान व सम्बोधन

४०		वैदिक स्वरित त्रि रेखा ऊर्ध्वा	यजुर्वेद
४१		वैदिक स्वरित ऊर्ध्वा रेखा अनुदात्त	यजुर्वेद
४२		वैदिक स्वरित अधो रेखा	
४३		वैदिक स्वरित अधो द्वि रेखा	शतपथ ब्राह्मण
४४		वैदिक स्वरित अधो एक रेखा	
४५		वैदिक स्वरित उर्ध्व रेखा	ऋग्वेद
४६		वैदिक स्वरित अधो रेखा	यजुर्वेद
४७		वैदिक स्वरित अध वक्र	यजुर्वेद
४८		वैदिक स्वरित अधो नयुब्जा	यजुर्वेद
४९		वैदिक स्वरित अधो कोना	यजुर्वेद
५०		वैदिक स्वरित अधो बिन्दु	अथर्वेद
५१		वैदिक स्वरित अधो संयुक्त रेखा	यजुर्वेद
५२		वैदिक स्वरित कंपा	अथर्वेद

वैदिक चिह्नों की आकृति की पहचान व सम्बोधन			
५३		वैदिक स्वरित उरसी रेखा	यजुर्वेद
५४		वैदिक पुष्पिका	पाण्डुलिपि
५५		वैदिक मात्राकाल	यजुर्वेद
५६		वैदिक त्रियका	यजुर्वेद
५७	卐	स्वस्तिका	
५८		वैदिक त्रुटिक	पाण्डुलिपि
५९		वैदिक स्वर शून्य	सामगानम या सामवेद
६०		वैदिक स्वर एक उदात्ता	सामगानम या सामवेद
६१		वैदिक स्वर द्वि स्वरित	सामगानम या सामवेद
६२		वैदिक स्वर त्रि अनुदाता	सामगानम या सामवेद
६३		वैदिक स्वर चतुष	सामगानम या सामवेद
६४		वैदिक स्वर पञ्च	सामगानम या सामवेद
६५		वैदिक स्वर षष्ट	नारदीय शिक्षा

वैदिक चिह्नों की आकृति की पहचान व सम्बोधन			
६६		वैदिक स्वर सप्तम	सामगानम या सामवेद
६७		वैदिक स्वर अष्टम	सामगानम या सामवेद
६८		वैदिक स्वर नवम	सामगानम या सामवेद
६९		वैदिक साम स्वर अभिनित्ता	सामगानम या सामवेद
७०		वैदिक साम स्वर नमन	सामगानम या सामवेद
७१		वैदिक साम स्वर र	सामगानम या सामवेद
७२		वैदिक साम स्वर क	सामगानम या सामवेद
७३		वैदिक साम स्वर त्रि क	सामगानम या सामवेद
७४		वैदिक साम स्वर उ	सामगानम या सामवेद
७५		वैदिक साम स्वर एक र	सामगानम या सामवेद
७६		वैदिक साम स्वर द्वि र	सामगानम या सामवेद
७७		वैदिक साम स्वर त्रि र	सामगानम या सामवेद
७८		वैदिक साम स्वर चतुष र	सामगानम या सामवेद

वैदिक चिह्नों की आकृति की पहचान व सम्बोधन			
७९		वैदिक साम स्वर पञ्च र	
८०		वैदिक साम स्वर द्वि उ	सामगानम या सामवेद
८१		वैदिक साम स्वर त्रि क	सामगानम या सामवेद
८२		वैदिक साम स्वर प्राणतं	सामगानम या सामवेद
८३		वैदिक साम स्वर विनिता	सामगानम या सामवेद
८४		वैदिक साम स्वर अवग्रह ऊर्ध्वा	सामगानम या सामवेद
८५		वैदिक साम स्वर कृष्णा	सामगानम या सामवेद
८६		वैदिक स्वर ऊर्ध्व सहारा	सामगानम या सामवेद
८७		वैदिक साम स्वर प्रेन्खा	सामगानम या सामवेद
८८		वैदिक साम गान योग कला	सामगानम या सामवेद
८९		वैदिक स्वरित अधो एक बिन्दु	अथर्वेद
९०		वैदिक स्वरित अधो द्वि बिन्दु	
९१		वैदिक स्वरित अधो त्रि बिन्दु	शतपथ ब्राह्मण

वैदिक चिह्नों की आकृति की पहचान व सम्बोधन			
९२		वैदिक स्वरित अधो षट बिन्दु	
९३		वैदिक स्वरित ह्रस्व कंपा	
९४		वैदिक स्वरित दीर्घ कंपा	अर्थववेद
९५		वैदिक अक्षर चिह्न ळ्ह	ऋग्वेद
९६		वैदिक जिह्वामूल वज्र	
९७		वैदिक जिह्वामूल	
९८		वैदिक चिह्न विभक्त करने वाला	
९९		वैदिक प्रारम्भिक चिह्न	
१००	।	वैदिक अंत चिह्न	

व्यंजन					
जब किसी स्वर प्रयोग नहीं हो, तो वहाँ हलन्त् से दर्शाया जाता है । जैसे कि क् ख् ग् घ् ।					
स्पर्श	अल्पप्राण अघोष	महाप्राण अघोष	अल्पप्राण घोष	महाप्राण घोष	नासिक्य
कण्ठ्य	क	ख	ग	घ	ङ
तालव्य	च	छ	ज	झ	ञ
मूर्धन्य	ट	ठ	ड	ढ	ण
दन्त्य	त	थ	द	ध	न
ओष्ठ्य	प	फ	ब	भ	म
अन्तस्थ	य	र	ल	व	
ऊष्म/ संघर्षी	श	ष	स	ह	

स्थान	स्वर	व्यंजन	अन्तस्थ	उष्म
कण्ठ	अ,आ	क,ख,ग,घ,ड़		ह, अः
तालु	इ,ई	च,छ,ज,झ,ञ		
मूर्द्धा	ऋ,ॠ	ट,ठ, ड, ढ,ण	र	ष
दन्त	ऌ	त,थ,द,ध,न	ल	स
ओष्ठ	उ,ऊ	प,फ,ब,भ,म		
नासिका		अं,ङ,ञ,ण,न्,म्		
कण्ठतालु	ए,ऐ			
कण्ठोष्टय	ओ, औ			
दन्तोष्ठ्य			व	

ध्वन्यात्मक स्वर उच्चारण विधि		
वर्णाक्षर	**“प” के साथ मात्रा**	**ध्वन्यात्मक वर्णन**
अ	प	बीच का मध्य प्रसृत स्वर
आ	पा	दीर्घ विवृत पश्च प्रसृत स्वर
इ	पि	ह्रस्व संवृत अग्र प्रसृत स्वर
ई	पी	दीर्घ संवृत अग्र प्रसृत स्वर
उ	पु	ह्रस्व संवृत पश्च वर्तुल स्वर
ऊ	पू	दीर्घ संवृत पश्च वर्तुल स्वर
ए	पे	दीर्घ अर्धसंवृत अग्र प्रसृत स्वर
ऐ	पै	दीर्घ लगभग विवृत अग्र प्रसृत स्वर

9

साधारण स्वर-२

वैदिक काल से लेकर के आज भी गुरुकुलो में तथा विभिन्न प्रतिष्ठानो में गुरु शिष्य माध्यम से वेदपाठ प्रचलित है। वेदों के पाठ गुरु परम्परा के अनुसार स्वर सहित करते है। अत: वेद में स्वर का स्थान सबसे ऊपर है। केवल वेद पाठ से ही वेद में कहा पर क्या स्वर होगा ऐसा विद्वान मनुष्य जानने में समर्थ नहीं हो सकते है। अत: व्याकरण से स्वर निर्णय करने की कुशलता सभी को विदित ही है। बहुत काल पहले ही महर्षि पाणिनि ने सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय के स्वर निर्णय के लिए सूत्रों की रचना की। उन सूत्रों में कुछ विशिष्ट प्रयोग पाणिनि के द्वारा निर्देश नहीं किया है। अत: बाद के काल में वार्तिककार ने कुछ वार्तिकों की रचना की है। अत: इस पाठ में साधारण स्वर प्रतिपादक पाणिनीय सूत्र तथा वार्तिको की आलोचना की है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- सूत्रों के द्वारा स्वर सिद्धि प्रक्रिया को समझ पाने में;
- स्वर सम्बन्धी वार्तिकों को जान पाने में;
- एकश्रुति विषय को जान पाने में;
- सूत्र अर्थ के समन्वय को समझ पाने में; और
- साधारण स्वर विषय में सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर पाने में।



टिप्पणियाँ

9.1 उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः॥ (८.४.६६)

सूत्र का अर्थ - उदात्त से उत्तर अनुदात्त को स्वरित आदेश होता है।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से स्वरित स्वर का विधान करते हैं। उदात्ताद् अनुदात्तस्य स्वरितः ये सूत्र आये हुए पदच्छेद हैं। तीन पद वाले इस सूत्र में उदात्ताद् यह पञ्चमी का एकवचनान्त है, अनुदात्तस्य यह षष्ठी का एकवचनान्त है, स्वरितः यह प्रथमा का एकवचनान्त पद है। स्वरितः यह प्रथमान्त होने से इसका ही विधायक है। उदात्ताद् अनुदात्तस्य स्वरितः इति सूत्र में आये हुए पद योजना है। उदात्ताद् यहाँ पञ्चमी निर्देश होने से 'तस्मादित्युत्तरस्य' इस परिभाषा से उदात्त से उत्तर का यह अर्थ प्राप्त होता है। और इस प्रकार इस सूत्र का अर्थ होता है उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित स्वर होता है।

उदाहरण- अग्निमीळे (अग्निमीळे) इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- अग्निमीळे यहाँ पर गति अर्थ की अगि धातु से 'धातोः' इस सूत्र के अनुसार से अकार उदात्त है। उसके बाद 'अङ्गेर्नलोपश्च' इस सूत्र से नि-प्रत्यय होने पर इस धातु का इकार इत होने से (अगि-धातु इकार इत्संज्ञक है) इदितो नुम् धातोः इससे नुम आगम और अनुबन्ध लोप होने पर इस स्थिति में नकार का उससे ही (अङ्गेर्नलोपश्च) सूत्र से लोप होने पर अग्नि शब्द निष्पन्न होता है। यहाँ नि प्रत्यय का नकार से उत्तर इकार 'आद्युदात्तश्च' इससे उदात्त है। इस प्रकार अग्नि यहाँ पर दो उदात्त स्वर है, एक धातु का दूसरा प्रत्यय का। यहाँ अगि धातु से अकार का उदात्त स्वर धातुपाठ में निर्देश किया है, परन्तु नि-प्रत्यय के इकार का उदात्त स्वर सूत्र से उपदेश किया है, अतः 'सतिशिष्टस्वरो बलीयान्' (६.१.१५८) इस परिभाषा सूत्र से बाद में होने वाला स्वर का (पर निर्देश किया स्वर) बलवान होता है। उसको 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इस सूत्र से धातु के (अगि-इसके) अकार का अनुदात्त स्वर है प्रत्यय का नहीं है। इसी प्रकार अग्नि-यहाँ पर अकार अनुदात्त, इकार उदात्त ये सिद्ध होते है। उस अम्-प्रत्यय के करने पर 'अनुदात्तौ सुप्पिता' इससे अनुदात्त स्वर है। वहाँ अग्नि अम् इस स्थिति में 'अमि पूर्वः' इससे उदात्त-इकार का और अनुदात्त-अकार के स्थान में पूर्वरूप एकादेश इकार में 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इससे उसका (इकार का) उदात्त स्वर है। ईड स्तुतौ इस धातु से लट लकार उत्तम पुरुष एकवचन में 'ईळे' यह रूप बनता है। यहाँ पर 'द्वयोश्चास्य स्वरयोर्मध्यमेत्य संपद्यते स डकारो लकारः' इस प्रातिशाख्य वचन से डकार के स्थान में लकार होता है। यहाँ अग्निम् ईळे इस स्थिति में 'तिङ्ङतिङः' इस सूत्र से सभी को अनुदात्त स्वर प्राप्त होता है। इसी प्रकार यहाँ उदात्त से (इकार से) पर अनुदात्त का (ईकार का) वर्तमान से प्रकृत सूत्र के द्वारा पर अनुदात्त के स्थान में स्वरित स्वर होता है। ईळे यहाँ पर स्वरित ईकार से परे ळे इसके एकार के अनुदात्त होने से 'स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्' इस सूत्र से एकार की एकश्रुति स्वर (उदात्त अनुदात्त स्वरित का तिरोधान) होता है। इस प्रकार अग्निमीळे यह रूप सिद्ध होता है।

विशेष- यहाँ पर 'अग्निम् ईळे' उदात्त अनुदात्त के (इकार-ईकार के) मध्य में मकार की विद्यमानता होने से कैसे इकार से परे ईकार को स्वरित स्वर होता है इस प्रकार कहा है, 'स्वरविधौ

टिप्पणियाँ

व्यञ्जनमविद्यमानवद्' इस परिभाषा से यहाँ मकार के विद्यमान होने पर भी स्वर विधि के नहीं होने से उसको ग्रहण नहीं करते है, उससे यहाँ मकार से व्यवधान का अभाव होने से स्वरित का कोई तोड़ नहीं है।

प्रकृत सूत्र आठवें अध्याय के चौथे पाद में है, अत: तीन पाद में स्थित इस सूत्र से जिस स्वरित स्वर का नियम किया है, वह 'अनुदात्तं पदमेकं वर्जम्' (६.१.१५८) इस सवा सात्त अध्याय में स्थित सूत्र की दृष्टि से असिद्ध है। इसलिए ईळे यहाँ पर 'अनुदात्तं पदम् एकवर्जम्' यह सूत्र यहाँ पर नहीं लगता है। उस के द्वारा उदात्त स्वरित दोनों ही स्वर सुने जाते है।

9.2 नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्।। (८.४.६७)

सूत्र का अर्थ - उदात्त परे है जिससे एवं स्वरित परे है जिससे ऐसे अनुदात्त को स्वरित नहीं होता है। गार्ग्य आदि मत को छोड़कर।

सूत्र की व्याख्या - छ प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह निषेध विधायक सूत्र है। इस सूत्र से स्वरित स्वर का निषेध होता है। न उदात्तस्वरितोदम् अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् ये सूत्र में आये हुए पदच्छेद है। तीन पद वाले इस सूत्र में न यह अव्ययपद है, उदात्तस्वरितोदयम् यह प्रथमा एकवचनान्त है, अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। उदात्तस्वरितोदयं न अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् यह सूत्र में आये पद का अन्वय है। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित:' इस सूत्र से अनुदात्तस्य इस षष्ठ्यन्त पद की और स्वरित: इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। उदात्तश्च स्वरितश्च उदात्तस्वरितौ उदयौ यस्माद् इति उदात्तस्वरितोदयम् इति बहुव्रीहिसमास:। उदय शब्द पर शब्द से समान अर्थ है ऐसा प्रातिशाख्यों में प्रसिद्ध है। उदात्त स्वर परे जिसका उस प्रकार के, अथवा स्वरित स्वर परे जिसका उस प्रकार के अनुदात्त स्वर का यह अर्थ है। न गार्ग्यकाश्यपगालवानाम् इति अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् इति नञ्समास:। गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में तो नहीं होता है यह अर्थ है। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित:' इस सूत्र का ही यहाँ निषेध है। उससे सूत्र का अर्थ होता है, उदात्त परे और स्वरित परे जो अनुदात्त, उसको 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित:' इस सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर नहीं होता है, गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में तो होता ही है।

उदाहरण- वोश्वा: क्वा १ भीर्शव: (ऋ.५।६१।१२) इति। प्र य आ रु: इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- यहाँ पर क्व शब्द से उत्तर 'किमोऽत्' इस सूत्रे से अत्-प्रत्यय करने पर तथा 'क्वाति' इससे किम: के स्थान में क्व- यह आदेश होने पर क्व-यह रूप सिद्ध होता है। अत्-प्रत्यय के तकार की इत्संज्ञक होने से 'तित्स्वरितम्' इस सूत्र से अत्-प्रत्ययान्त के क्व-शब्द का अकार का स्वरित स्वर है। युष्मद् के स्थान में वस् यह आदेश होने पर सकार को रुत्व होने पर 'अतो रोरप्लुतादप्लुते' इससे रु के उत्व होने पर 'आद्गुण:' इससे अकार-उकार के स्थान में गुण ओकार होकर के वो-यह रूप सिद्ध होता है। यहाँ वस्-यह आदेश 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' इसके अधिकार में होता है अत: वकार से उत्तर अकार अनुदात्त है। अशू-धातु से 'अशूप्रुषिलटिकनिखटिविशिभ्य: क्वन्' इस उणादि सूत्र से क्वन्-प्रत्यय करने पर बहुवचन प्रक्रिया में अश्वा: यह रूप सिद्ध होता है। क्वन्-प्रत्यय के नकार की इत् संज्ञा होती है, अत: क्वन् प्रत्ययान्त

अश्व शब्द 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र के अनुसार से आद्युदात्त होता है। उसके बाद में 'वो अश्वा:' इस स्थिति में 'एङ: पदान्तादति' इस सूत्र से ओकार-अकार के स्थान में पूर्वरूप होने पर 'एकादेश उदात्तेनोदात्त:' इस सूत्र से वकार से उत्तर उकार उदात्त है, 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इस सूत्र के अनुसार से श्वा- यहाँ पर आकार अनुदात्त है। यहाँ वोऽश्वा: (व: अश्वा:) क्व इस वकार से उत्तर उकार उदात्त है, श्व से उत्तर आकार अनुदात्त तथा क्व से उत्तर अकार स्वरित है। इस प्रकार यहाँ उदात्त से परे अनुदात्त के होने से 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित:' इस पूर्वसूत्र से अनुदात्त को स्वरित स्वर की प्राप्ति होने पर उसका स्वरित परे होने से इस प्रकृत सूत्र से, पूर्व सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर का निषेध होता है। उससे जैसे पहले अनुदात्त स्वर था वैसे ही रहेगा।

प्र य आ रु: यहाँ पर ये यह यत् शब्द का प्रथमा बहुवचन फिट् स्वर से 'फिषोऽन्त उदात्त:' इस सूत्र से अन्त उदात्त है। 'अतेर्लिटि' प्रथमा बहुवचन में झि प्रत्यय करने पर आरु: यह रूप बनता है। यहाँ पर 'परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमा:' इससे उस्-प्रत्यय का नियम किया है और वह प्रत्यय स्वर से उदात्त है। आरु: यहाँ पर आकार का 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर:' इससे अनुदात्त स्वर है। इस प्रकार यहाँ यकार से उत्तर अकार उदात्त है, आकार अनुदात्त है, और रु: का उकार उदात्त है। उससे यहाँ उदात्त से परे अनुदात्त के होने से 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित:' इस पूर्व सूत्र से अनुदात्त के स्थान में स्वरित की प्राप्ति, उसका उदात्त परे होने पर प्रकृत सूत्र से पूर्व सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर का निषेध होता है। उससे जैसे पूर्व अनुदात्त स्वर था वैसे ही रहेगा। इससे प्र य आ रु: यह सिद्ध होता है।

गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में तो स्वरित का निषेध नहीं होता है, अपितु पूर्व सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर ही होता है।

विशेष- निश्चित रूप से 'अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणा:' (आदि मात्रा के कम होने पर भी पुत्र उत्सव के समान वैयाकरण उत्सव मनाते है) वह यहाँ पर कैसे उदय शब्द के प्रयोग उस स्थल में पर शब्द के प्रयोग से तो लघु होता तो यहाँ कहते है की उदय शब्द मङ्गलार्थ है। 'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि भवन्त्यायुष्मत्पुरुषाणि च' इस प्रकार वृद्धिरादैच् इस सूत्रभाष्य में पतञ्जलि ने कहा है। यहाँ उदय शब्द के प्रयोग से पाणिनि के द्वारा मङ्गल किया है, ये एक समाधान है।

दूसरा समाधान होता है की पर्यायवाची के ग्रहण करने में लघु गुरु की चिन्ता नहीं करते है इस नियम से यहाँ पर-पर्याय का उदय शब्द के ग्रहण करने में कोई हानि नहीं है।

पाठगत प्रश्न 9.1

1. उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित: इस सूत्र से किस स्वर का विधान है?
2. 'अग्निमीळे' यहाँ पर मकार से उत्तर ईकार का क्या स्वर है?
3. 'ईळे' यहाँ पर 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' यह सूत्र कैसे नहीं लगा?



टिप्पणियाँ

4. उदात्त परे का, स्वरित परे का अनुदात्त का स्वरित निषेध किससे होता है?
5. किनके मत में उदात्त के परे स्वरित के परे अनुदात्त को स्वरित होता है?
6. 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' इस सूत्र में उदय शब्द का क्या अर्थ है?

9.3 एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ॥ (१.२.३३)

सूत्र का अर्थ - दूर से बुलाने में वाक्य एकश्रुति हो जाता है।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से वाक्यों की एकश्रुति होने का विधान है। एकश्रुतौ दूरात् सम्बुद्धौ ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। यहाँ पर दूरात् इसमें 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' इस सूत्र से पञ्चमी, सम्बुद्धौ यहाँ पर सप्तमी एकवचन है। और भी एकश्रुति यहाँ नपुंसक लिङ्ग प्रथमा एकवचनान्त पद वाक्य है प्रथमा एकवचनान्त पद का विशेषण है। अतः वहाँ नपुसंक लिङ्ग में प्रथमा एकवचन है। और इस प्रकार दूरात् सम्बुद्धौ वाक्यम् एकश्रुति ये यहाँ सूत्र में आये पदो का अन्वय है।

सूत्र में सम्बुद्धौ इस पद से 'एकवचनं सम्बुद्धिः' इस सूत्र से निर्दिष्ट पारिभाषिक सम्बुद्धि शब्द का बोध नहीं करना है, अपितु सम्बुद्धिः- भली प्रकार से किसी को बुलाना यह अर्थ लिया है। वैसे ही दूरात् इस पञ्चम्यन्त पद का यहाँ वर्तमान सम्बुद्धि से इस शब्द का यहाँ अन्वर्थ रूप से ग्रहण किया है। 'एकवचनं सम्बुद्धिः' इस सूत्र में निर्दिष्ट सम्बुद्धि शब्द का सम्बन्ध तो दूर से है, प्रकृत सूत्र स्थित पद से नहीं हो सकता है। अतः जिस वाक्य से सम्बोधन करते हैं, वह संबोधन है, अर्थात् सम्बुद्धि यह अर्थ यहाँ जानना चाहिए। और उस प्रकार के वाक्य का प्रकृत सूत्र से एकश्रुति होने का विधान है।

यहाँ एकश्रुतिः इस पद में विग्रह क्या है? क्या 'एकस्य श्रुतिः इति', अथवा एका चासौ श्रुतिः' च इति। इस प्रश्न के होने पर कहा जाता है, एकश्रुतिः इस पद में 'एका चासौ श्रुतिः चेति' इस विग्रह में एकश्रुति है, एकश्रुति है इस वाक्य की इति एकश्रुति है। यहाँ श्रुतिः यह वेद का पर्यायवाची शब्द नहीं है। यहाँ श्रवण अर्थ में श्रु-धातु से क्तिन्-प्रत्यय करने पर और विभक्ति कार्य में श्रुतिः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। और उसका सुनना यह अर्थ है। एक ही श्रुति अर्थात् एक श्रवण यह ही अर्थ है। जिस वाक्य में श्रवण का भेद नहीं है, अर्थात् जहाँ भिन्न श्रुति न हो वह ही वाक्य एकश्रुति कहलाता है। यहाँ किसका अभेद है? इस जिज्ञासा में कहते हैं, उदात्त आदि के स्वरो का। और इस प्रकार प्रकृत सूत्र से वाक्यों का उदात्त आदि स्वरों के अभेद का विधान है। उसके द्वारा सूत्र का अर्थ होता है - दूर से बुलाने के अर्थ में अर्थात् सम्बोधन वाक्य में एकश्रुति होती है।

उदाहरण - आगच्छ भो माणवक देवदत्त।

सूत्र अर्थ का समन्वय -यहा वाक्य आगच्छ भों माणवक देववत्त यह है। यह वाक्य जब दूर से किसी को सम्बोधन करने में प्रयोग करते हैं, तब प्रकृत सूत्र यहाँ उदात्त अनुदात्त आदि स्वर गत

भेद को दूर करने से तथा एक का ही उदात्त स्वर का विधान करने से आगच्छ भो माणवक देवदत्त यहाँ एकश्रुति में उदात्त स्वर का ही समावेश होता है।

यहाँ दूर से सम्बोधन होता है, तो ही प्रकृत सूत्र से उस सम्बोधन बोधक पद में एकश्रुति करने का विधान है, अन्यथा एक श्रुति नहीं होती है। जैसे - आगच्छ भों माणवक देवदत्त इस वाक्य को जब पास से ही बुलाने का विधान है, तब उदात्त अनुदात्त आदि स्वर वहाँ होते है।

विशेष- यहाँ दूरं नाम कितने दूर को इस प्रकार की जिज्ञासा स्वाभाविकता से होती ही है। उसका समाधान कहते है की जितने स्थान में स्वाभाविक प्रयत्न से उच्चारण करने पर सम्बोध्य मान व्यक्ति को नहीं सुनाई देता है, उस स्थान को ही दूर शब्द से ग्रहण करते है। इसी प्रकार 'दूराद्धूते च' इत्यादि सूत्र में भी जानना चाहिए।

9.4 यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु॥ (२.१.३४)

सूत्र का अर्थ - यज्ञकर्म में मन्त्र एकश्रुति हो जाते है, जप न्यूङ्ख साम को छोड़कर।

सूत्र की व्याख्या - संज्ञा-परिभाषा-विधि-नियम-अतिदेश-अधिकार छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इससे जप आदि से भिन्न प्रयोगो में वाक्यो के एकश्रुति होने का विधान है। यज्ञकर्मणि अजपन्यूङ्खसामसु यह सूत्र में आये पदच्छेद है। वहाँ यज्ञकर्मणि यह सप्तमी एकवचनान्त पद है, और अजपन्यूङ्खसामसु ये सप्तमी बहुवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ एकश्रुति इस नपुसंक लिङ्ग प्रथमा एकवचनान्त विधेय बोध पद की अनुवृति है। यज्ञ का कर्म यज्ञकर्म यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास है, उस यज्ञकर्म में। जप, न्यूङ्ख और साम जपन्यूङ्खसामानि, न जपन्यूङ्खसामानि अजपन्यूङ्खसामानि, उन अजपन्यूङ्खसामसु यहाँ द्वन्द्वगर्भ नञ्तत्पुरुष समास है। और इस प्रकार यहाँ पर अजपन्यूङ्खसामसु यज्ञकर्मणि एकश्रुति ये सूत्र में आया अन्वय है। और उससे यहाँ सूत्र का अर्थ होता है - यज्ञकर्म में उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरो की एकश्रुति होती है, जप न्यूङ्ख साम को छोड़कर। इस सूत्र का मन्त्र एकश्रुति होता है यह इसका सार है।

जप अनुकरण मन्त्र अथवा उपांशु प्रयोग, न्यूङ्ख सोलह प्रकार का ओंकार, उससे यहाँ मन्त्र उच्चारण का प्रकार विशेष जानना चाहिए। साम वाक्य विशेष में स्थित गीत है। वहाँ जप में, न्यूङ्ख में और साम में उदात्त अनुदात्त आदि स्वर युक्त मन्त्रों का उच्चारण है। यहाँ कहते हैं की यदि इनसे भिन्न यज्ञ सम्बन्धी कर्म में मन्त्रों का प्रयोग होता है, तो उनके मन्त्रों की एकश्रुति होती है। अर्थात् उन यज्ञकर्म में प्रयुङ्क्त मन्त्रों में उदात्त, अनुदात्त आदि भेद नहीं रहता है।

उदाहरण - अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वतो३म् (ऋ. ८.४४. १६)।

सूत्र अर्थ का समन्वय - उदाहरण रूप में दिया यह मन्त्र यज्ञकर्म में प्रयुङ्क्त है। अतः प्रकृत सूत्र से इस मन्त्र में एकश्रुति का विधान है। उससे यहाँ उदात्त आदि स्वरों का भेद नहीं दिखाई देता है। अतः यहाँ उदात्त स्वरो का ही समावेश दिखाई देता है।

टिप्पणियाँ

यहाँ यह जानना चाहिए की जब जप में, न्यूङ्ख में, और साम में मन्त्रों का प्रयोग होता है, तब प्रकृत सूत्र से यह एकश्रुति नहीं होती है। जैसे - यहाँ उदाहरण रूप से दिए मन्त्र का जब सपाठ में अर्थात् स्वाध्यायकाल में प्रयोग होता है, तब एकश्रुति नहीं होती है। इसी प्रकार जप में प्रयुङ्क्त मन्त्रों की भी एकश्रुति नहीं होती है। न्यूङ्ख सोलह प्रकार के ओकार, उनमे कुछ उदात्त और कुछ अनुदात्त है। अथ वहाँ पर भी प्रकृत सूत्र से एकश्रुति नहीं होती है। साम में भी वैसे ही एकाश्रुति नहीं होती है। जैसे वहाँ उदाहरण है - ए३ विश्वं समन्त्रिणं दह३ इति।

9.5 उच्चौस्तरां वा वषट्कारः॥ (१.२.३५)

सूत्र का अर्थ - यज्ञकर्म में वौषट्- शब्द उदाततर विकल्प से होता है पक्ष में एकश्रुति है।

सूत्र की व्याख्या - छ प्रकार के सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इससे वौषट्- शब्द की विकल्प से उदात्ततर, और एकश्रुतिका विधान है। उच्चौस्तरां वा वषट्कारः ये तीन पद यहाँ है। वहाँ उच्चौस्तराम् इति और वा इति ये दो अव्ययपद हैं, वषट्कारः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु इस सूत्र से यहाँ यज्ञकर्मणि इस सप्तमी एकवचनान्त पद की, एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ इस सूत्र से एकश्रुति इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। उच्चौस्तराम् इसका अर्थ उदात्ततर है। स्वरित स्वर से यदि अनुदात्त स्वर होता है, तब स्वरित स्वर का आधा भाग उदात्ततर स्वर विशिष्ट होता है। वषट्कार- इस शब्द से यहाँ वौषट् इस अव्यय का ग्रहण है। और इस प्रकार यहाँ यज्ञकर्मणि वषट्कारः उच्चौस्तराम् एकश्रुतिः वा ये सूत्र में आये पद अन्वय होते है। और उससे यहाँ सूत्र का अर्थ होता है - यज्ञकर्म में वषट्कारः अर्थात् वौषट्- शब्द एकश्रुति उदात्ततर विकल्प से होता है।

यहाँ वषट्कारः इसमें कार शब्द का कैसे ग्रहण किया है इस विषय में अनेक मत हैं। यहाँ कार शब्द से वौषट् इस अव्यय का ग्रहण किया है ऐसा कुछ का मत है। वौषट्- शब्द से अन्य शब्दों का भी जैसे विकल्प से उदात्तर और एकश्रुति हो उसके लिए कार शब्द का ग्रहण है ऐसा कुछ मत है। और इनके मत के अनुसार 'अस्तु श्रौषट्' यहाँ पर भी श्रौषट्- शब्द उदात्ततर स्वर विशिष्ट होता है। और अन्यो के मत से यहाँ कार ग्रहण अवर्ण से भी कार प्रत्यय होता है, यह इसका ज्ञापक है, इनके मत के अनुसार ही एवकार इत्यादि पद सिद्ध होते है। और अन्यों के मत से पाणिनि के सूत्र विचित्र होते हैं इसको बताने के लिए यहाँ कार शब्द का ग्रहण किया है। इस कारण से ही पाणिनीय सूत्रों में कही पर कम अक्षरों की प्रधानता होती है, और कही पर ज्ञान लाघव प्रधान होता है। और यहाँ वषट्कार वौषट् इस शब्द में निरूढ यह यहाँ प्रधान रूप से जानना चाहिए।

उदाहरण - सोमस्याग्ने वीहि वौ३षट्। सोमस्याग्ने वीहि३ वौ३षट् (ऐतरेय. ३.५.४.६)।

सूत्र अर्थ का समन्वय -उदाहरण से दिया यह मन्त्र यज्ञकर्म में प्रयुङ्क्त है। अतः वहाँ वर्तमान वौषट्-शब्द विकल्प से उदात्ततर होता है, और उसके अभाव पक्ष में एकश्रुति होती है।

विशेष - स्वरित स्वर से यदि अनुदात्त स्वर होता है, तब स्वरित स्वर का आधा भाग उदात्ततर स्वर विशिष्ट होता है यह तो सभी को ज्ञात ही है, परन्तु यहाँ विधीयमान उदात्ततर स्वर का उस

समय क्या स्वरूप है इस जिज्ञासा में कहते है - उच्चै: इससे उदात्त का ग्रहण करते हैं, यह उदात्त है, यह उदात्त है, यह इन दोनों में उससे अधिक उदात्त है उच्चैस्तराम् अर्थात् उदात्ततर है। वैसे ही उदात्त स्वर का जिस स्थान से उच्चारण करते हैं, उस उच्चतर स्थान से भी जब किसी स्वर का उच्चारण करते है, तब वह स्वर उदात्ततर है ऐसा कहलाता है। और उस प्रकार के उदात्ततर का ही यहाँ प्रकृत सूत्र से विकल्प का विधान है।

9.6 विभाषा छन्दसि॥ (१।२।३६)

सूत्र का अर्थ - वेद विषय में तीनो स्वरों को विकल्प से एकश्रुति हो जाती है।

सूत्र की व्याख्या - संज्ञा-परिभाषा-विधि-नियम-अतिदेश-अधिकार छ: प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस छन्द में अर्थात् वेद में विकल्प से एकश्रुति का विधान है। इस सूत्र में विभाषा छन्दसि ये दो पद हैं। वहाँ विभाषा यह अव्ययपद है, और 'छन्दसि' ये सप्तमी एकवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ पर 'एकश्रुति' इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति आती है। छन्दसि यहाँ पर विषय सप्तमी है, अत: छन्द विषय में ऐसा अर्थ प्राप्त होता है। यहाँ पर पदों का अन्वय - छन्दसि एकश्रुति: विभाषा है। और उससे सूत्र का अर्थ इस प्रकार होता है - छन्द विषय में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों की एकश्रुति विकल्प से होती है। छन्द में मन्त्रों की उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों की विकल्प से एकश्रुति होती है यह इस सूत्र का निष्कर्ष निकला है। यहाँ एकश्रुति: यह विशेषण पद नहीं है, अपितु विशेष्य पद ही है। अत: उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों की एक अभिन्न श्रुति होती है ऐसा अर्थ यहाँ पर समझना चाहिए।

यहाँ यह जानना चाहिए की 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से जप, न्यूङ्ख, साम से भिन्न यज्ञकर्म में एकश्रुति का विधान सम्भव होने से प्रकृत सूत्र का प्रयोग स्थलों में छन्दों में भी एकश्रुति सम्भव है, परन्तु यहाँ एकश्रुति विकल्प से चाहिए है, अत: सूत्र में विभाषा यह पद दिया है। और भी यहाँ सूत्र में 'वा' इस पद के प्रयोग करने से ही कार्य सम्भव होने पर, विभाषा इस पद के ग्रहण करने से यज्ञकर्मणि इस पद की निवृत्ति हो जाती है। वैसे ही यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु इस सूत्र से जप, न्यूङ्ख, साम से भिन्न यज्ञकर्म में ही नित्य एकश्रुति का विधान है, अत: जप, न्यूङ्ख, साम से भिन्न में, और यज्ञकर्म से भिन्न स्थलों में छन्द में भी विकल्प से एकश्रुति हो उसके लिए इस नये सूत्र की रचना की है। उस प्रकृत से सूत्र से यज्ञकर्म भिन्न में स्वाध्याय काल में भी वेदों में विकल्प से एकश्रुति होती है।

उदाहरण - 'इषे त्वोर्जे त्वा। इषे त्वोर्जे त्वा' (वाज. सं. १.१.१)। 'अग्न आया हि वीतये। अग्न आया हि वीतये' (ऋ. ६.१६.१०)

सूत्र अर्थ का समन्वय - 'इषे त्वोर्जे त्वा। अग्न आया हि वीतये' इन दोनों मन्त्रों का प्रयोग छन्द में देखते है। अत: प्रकृत सूत्र से इन दोनों मन्त्र में उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों का विकल्प से एकश्रुति होती है। तथा एकश्रुति होने पर इन दोनों मन्त्रों में सभी जगह एक ही उदात्त स्वर का विधान होने पर 'इषे त्वोर्जे त्वा। अग्न आया हि वीतये' ये दोनों वैकल्पिक प्रयोग सिद्ध होते हैं।

विशेष – यहाँ विभाषा इस पद के ग्रहण से यज्ञकर्मणि इसकी निवृत्ति भी होती है, अलग से छन्दसि इस पद के ग्रहण से छन्द रूप में, यज्ञकर्म में, विकल्प से एकश्रुति प्राप्त होती ही है, परन्तु यहाँ कोई दोष नहीं है, उस 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र में यज्ञकर्मणी यहाँ पर कर्म शब्द के ग्रहण से यज्ञकर्म में, छन्द में उस सूत्र से नित्य ही एकश्रुति होती, प्रकृत सूत्र से वैकल्पिक एकश्रुति नहीं होती है। इस प्रकृत सूत्र के वैकल्पिक होने से 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से वहाँ निषेध जप, न्यूङ्ख, और साम में प्रकृत सूत्र से विकल्प में एकश्रुति प्राप्त होती है। परन्तु उन जप आदि पदों का यहाँ ग्रहण के अभाव होने से और 'छन्दसि' इस पद का ही उल्लेख होने से उन जप आदि में प्रकृत सूत्र से वैकल्पिक एकश्रुति नहीं होती है।

पाठगत प्रश्न 9.2

1. वाक्य कब एकश्रुति होता है?
2. सम्बुद्धि क्या है?
3. जप क्या है?
4. न्यूङ्ख क्या?
5. वषट् कार से किस शब्द का ग्रहण होता है?
6. उच्चैस्तराम् इसका क्या अर्थ है?
7. विकल्प से एकश्रुति कहाँ पर होती है?

9.7 न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः॥ (१.२.३७)

सूत्र का अर्थ – सुब्रह्मण्या नामवाले निगद में 'यज्ञकर्मणि' इससे और 'विभाषा छन्दसि' इससे प्राप्त एकश्रुति नहीं होती है, किन्तु स्वरित को उदात्त हो जाता है।

सूत्र की व्याख्या – छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह निषेध सूत्र है, और विधि सूत्र भी है। इससे एकश्रुति का निषेध होता है, और स्वरित के स्थान में उदात्त होता है। 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तु उदात्तः ये सूत्र में आये पदच्छेद है। वहाँ 'न' और 'तु' ये अव्ययपद है, सुब्रह्मण्यायाम् यह सप्तमी एकवचनान्त पद है, स्वरितस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, और उदात्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ 'एकश्रुति' इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति आ रही है। यहाँ पर भी एकश्रुतिः यह विशेषण पद नहीं है, अपितु विशेष्य पद ही है। अतः उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों की एक अभिन्न श्रुति है यह उसका अर्थ है। यहाँ 'सुब्रह्मण्यायाम् एकश्रुतिः न, स्वरितस्य तु उदात्तः' यह सूत्र में आये पद का अन्वय है। सुब्रह्मण्या यह नाम विशेष है। और उससे सुब्रह्मण्या नाम वाले निगद को जानना चाहिए। अथ यह निगद क्या है? इस जिज्ञासा में कहते है निगद शब्द में वर्तमान गद् – धातु से अपाद बन्ध अर्थक है, नि पूर्वक से गद् – धातु

हमेशा गद्यते इस कर्म अर्थ में 'नौ गदनदपठस्वनः' इस सूत्र से अप् - प्रत्यय होता है। और उसके बाद प्रक्रिया कार्य में निगदः यह रूप सिद्ध होता है, यहाँ नि शब्द प्रकर्ष अर्थ में है। ऊँचे से अपादबन्ध यजुरात्मक जो मन्त्र वाक्य पढ़ते हैं, वह निगद होते है। उस निगद में पाद व्यवस्था नहीं है, और न ही अर्द्ध ऋचा की व्यवस्था है। इस प्रकार यहाँ सूत्र का अर्थ होता है - सुब्रह्मण्या नामवाले निगद में एकश्रुति नहीं होती है, और सूत्र से प्राप्त स्वरित के स्थान में उदात्त होता है।

उदाहरण - 'सुब्रह्मण्योऽम् इन्द्रागच्छ, ह रिव आगच्छ, मेधातिथेर्मेष वृ षणश्वस्य मेने गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै जार कौशिकब्राह्मण गौतमब्रुवाण श्वः सु त्यागमागच्छ मघवन्' (शत. ब्रा. ३.३.११९)।

सूत्र अर्थ का समन्वय - यहाँ उदाहरण मन्त्र का यज्ञकर्म में विहित होने से और छन्द में होने से 'यज्ञकर्मणि' इस और 'विभाषा छन्दसि' इन दो सूत्रों से प्राप्त एकश्रुति का प्रकृत सूत्र से निषेध प्राप्त होता है। और सुब्रह्मण्योऽम् यहाँ पर स्वरित के स्थान में उदात्त होने का उपदेश है। वैसे ही यत् प्रत्ययान्त सुब्रह्मण्य शब्द की स्त्रीत्व विवक्षा में वहाँ 'अजाद्यतष्टाप्' इस सूत्र से टाप् में टाप् के टकार की 'चुटू' इस सूत्र से टकार की और 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से पकार की इत् संज्ञा में और 'तस्य लोपः' इससे उन दोनों इत् संज्ञा के लोप होने पर और विभक्ति कार्य होने पर सुब्रह्मण्य यह रूप बनता है। सुब्रह्मण्य शब्द का यत् प्रत्ययान्त होने से और उस यत् प्रत्यय के तित् होने से 'तित् स्वरितम्' इस सूत्र से यहाँ अन्त्य अकार को स्वरित स्वर होता है। टाप् के आकार के स्थान में और सुब्रह्मण्य शब्द के अकार के स्थान में विहित आकार 'स्थानेऽन्तरतमः' इस सूत्र से अन्तरतम होने से स्वरित ही होता है। यहाँ टाप् प्रत्यय के पित् होने से 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' इस सूत्र से आकार का अनुदात्त स्वर विशिष्ट होने पर भी उन दोनों में स्वरित अनुदात्त के स्थान में स्वरित ही होता है, 'स्वरितानुदात्तसन्निपाते स्वरितम्' इस सूत्र से स्वरित के और अनुदात्त के स्थान में स्वरित का ही निर्देश होने से। अतः पर सुब्रह्मण्या + ओम् इस अवस्था में 'ओमाङोश्च' इससे पररूप ओंकार होने पर 'सुब्रह्मण्योम्' इस शब्द का निपात अन्त होने से और उस निपात का 'निपाता आद्युदात्ताः' इस सूत्र से आद्युदात्त होने से और वहाँ आकार के और ओकार के स्थान में विहित ओंकार का ही स्वरित स्वर होता है। इस प्रकार 'सुब्रह्मण्योम्' यहाँ पर अन्तिम ओंकार स्वरित सिद्ध है। और उसके बाद प्रकृत सूत्र से ओकार के स्थान में सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर के स्थान में उदात्त स्वर का विधान है।

विशेष - यहाँ सुब्रह्मण्या + ओम् इस अवस्था में स्वरित के और उदात्त के स्थान में 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इस सूत्र से एकादेश में उदात्त स्वर नहीं होता है, उस सूत्र में 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' इस सूत्र से अनुदात्तस्य इस पद की अनुवृति होने से उस सूत्र से उदात्त के और अनुदात्त के स्थान में ही उदात्त एकादेश होता है।

9.7.1 असावित्यन्तः॥ (वा. ६५१)

वार्तिक का अर्थ - उस निगद में ही प्रथमान्त का अन्त उदात्त होता है।

वार्तिक की व्याख्या - यह वार्तिक 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा हुआ है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। असौ इति अन्तः ये वार्तिक में आये पदच्छेद हैं। वहाँ असौ यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, इति यह अव्ययम है, और अन्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। 'सुब्रह्मण्योम् सुब्रह्मण्योम् सुब्रह्मण्योम् इन्द्रागच्छ हरिव आगच्छ ...... वासुदेवस्य पुत्रः पशुपतेः पौत्रो नारायणस्य नप्ता रामभद्रस्य पिता महेन्द्रस्य पौत्रः कमलाकस्य प्रपौत्रो देवदत्तो यजते सुत्याम्' - निगद में इस प्रकार का विधान होने से जाना जाता है की मन्त्र में यजमान के नाम प्रथमान्त से प्रयोग करने चाहिए, और उससे पूर्व पुरूषों के नाम षष्ठ्यन्त से प्रयोग करने चाहिए। यहाँ वार्तिक में 'असौ' इस पद से उस यजमान का ही प्रथमान्त नामवाचक पद को ग्रहण किया है। अथ इस वार्तिक से उस यजमान नामवाचक के प्रथमान्त पद के अन्त का उदात्त स्वर करने का नियम है।

उदाहरण - गार्ग्यो यजते।

वार्तक अर्थ का समन्वय - गार्ग्यः यहाँ पर 'गर्गादिभ्यो यञ्' इस सूत्र से यञ् प्रत्यय का विधान है। और उस यञ्प्रत्यय का ञित होने से गार्ग्य शब्द का 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आद्युदात्त की प्राप्ति में प्रकृत वार्तिक से यहाँ अन्त के उदात्त स्वर का विधान किया है।

9.7.2 अमुष्येत्यन्तः॥ (वा. ६५२)

वार्तिक का अर्थ - षष्ठ्यन्त का भी अन्त उदात्त होता है।

वार्तिक की व्याख्या - यह वार्तिक 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा गया है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। यहाँ अमुष्य इति अन्तः ये वार्तिक में आये पदच्छेद है। यहाँ अमुष्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, इति यह अव्यय है, अन्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। यहाँ पर भी 'वासुदेवस्य पुत्रः पशुपतेः पौत्रो नारायणस्य नप्ता रामभद्रस्य पिता महेन्द्रस्य पौत्रः कमलाकस्य प्रपौत्रो देवदत्तो यजते सुत्याम्' - इस रूप से मन्त्र में षष्ठ्यन्त से विहित पद का अमुष्य इस पद से ग्रहण किया है। अतः इस वार्तिक से उस षष्ठ्यन्त से विहित पद के अन्त को उदात्त स्वर का विधान है।

यहाँ यह जानना चाहिए की स्यान्त के विना अन्य षष्ठ्यन्त पदो की यहाँ विवक्षा है। यहाँ स्यान्त षष्ठ्यन्त का तोड़ा हुआ पद है, 'स्यान्तस्योपोत्तमं च' इस वार्तिक में 'स्यान्तस्य' इस पद ग्रहण से।

उदाहरण - दाक्षेः पिता यजते।

सूत्र अर्थ का समन्वय - दाक्षेः यहाँ पर दाक्षि - शब्द का षष्ठी एकवचन का रूप है। दक्ष शब्द से 'अत इञ्' इस सूत्र से इच्ञ्प्रत्यय करने पर इञ्प्रत्यय के ञकार की 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से इत् संज्ञा करने पर 'तस्य लोपः' इस सूत्र से उस ञकार का लोप होने पर और प्रक्रिया कार्य में दाक्षेः यह रूप सिद्ध होता है। यहाँ इञ्प्रत्यय के ञित्त्वाद होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आद्युदात्त की प्राप्ति में प्रकृत वार्तिक से यहाँ अन्त को उदात्त स्वर करने का विधान है।

9.7.3 स्यान्तस्योपोत्तमं च॥ (वा. ६५३)

वार्तिक का अर्थ – स्यान्त के और उपोत्तम के अन्त्य को उदात्त स्वर होता है।

वार्तिक की व्याख्या – यह वार्तिक 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा गया है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। स्यान्तस्य उपोत्तमं च ये वार्तिक में आये पदच्छेद है। वहाँ स्यान्तस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, उपोत्तमम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, च यह अव्ययपद है। यहाँ स्यान्त पद से निगद में षष्ठ्यन्त से प्रयुज्यमान स्यान्त पदों का ग्रहण है। और इस प्रकार प्रकृत वार्तिक से उस पद के ही और उपोत्तम अर्थात् अन्त्य से पूर्व अन्त्य को उदात्त स्वर का विधान है। यहाँ चकार से अन्तः इस पद की अनुवृति आ रही है। उस प्रकृत वार्तिक से स्यान्त पद के अन्त्य का, और अन्त्य से पूर्व का उदात्त स्वर करने का विधान है।

उदाहरण – गार्ग्यस्य पिता यजते।

वार्तिक अर्थ का समन्वय – गार्ग्यस्य यहाँ पर गार्ग्यस्य यह स्यान्त पद है, उससे यहाँ ग्य – इस उपोत्तम अकार का और स्य – यहाँ अकार का प्रकृत वार्तिक से उदात्त स्वर का विधान है।

9.7.4 वा नामधेयस्य॥ (वा. ६५४)

वार्तिक का अर्थ – स्यान्त नामधेय का उपोत्तम उदात्त विकल्प से होता है।

वार्तिक की व्याख्या – यह वार्तिक भी 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा गया है। इससे विकल्प से उदात्त स्वर का विधान है। यह दो पद वाला वार्तिक है। यहाँ वा यह अव्ययपद है, और नामधेयस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है। 'स्यान्तस्योपोत्तमं च' इस वार्तिक से यहाँ स्यान्तस्य इस षष्ठी एकवचनान्त पद, उपोत्तमम् इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। स्यान्तस्य यह नामधेय इस पद का विशेषण है। यहाँ नामधेयस्य इस पद से निगद में षष्ठ्यन्त से प्रयोग किये गये नामवाचक स्यान्त पदो का ग्रहण करते हैं। अतः प्रकृत वार्तिक से उस नामवाचक स्यान्त पद के उपोत्तमस्य अर्थात् अन्त्य से पूर्व का उदात्त स्वर करने का विधान है। यहाँ वा इस पदग्रहण से वह उदात्त स्वर विकल्प से होता है। इस वार्तिक से जिस पक्ष में उपोत्तम के उदात्त स्वर का अभाव है उस पक्ष में स्यान्त के अन्त का उदात्त स्वर होता है। यह भी अन्त स्थानीय उदात्त स्वर इस वार्तिक से ही होता है।

उदाहरण – देवदत्तस्य पिता यजते।

वार्तिक अर्थ का समन्वय – देवदत्तस्य यह नामवाचक पद है, किन्तु यहाँ यह पद स्यान्त है। अतः प्रकृत वार्तिक से यहाँ नामवाचक देवदत्तस्य इस पद के उपोत्तमस्य अर्थात् अन्त्य से पूर्व का विकल्प से उदात्त स्वर होता है। उसके अभाव पक्ष में अन्तस्य इसके स्य – इसके अकार को उदात्त स्वर होता है।

पाठगत प्रश्न 9.3

1. विभाषा छन्दसि इस सूत्र में विभाषा इस पद का ग्रहण कैसे किया है?
2. निगद क्या है?
3. निगद में यजमान के नामवाचक प्रातिपदिक में कौन सी विभक्ति होती है?
4. अमुष्येत्यन्तः इस वार्तिक से कैसे स्यान्तस्य षष्ठ्यन्त पद का अन्त उदात्त नहीं होता है?
5. उपोत्तमं नाम क्या है?

9.8 देवब्रह्मणोरनुदात्तः॥ (१.२.३८)

सूत्र का अर्थ- देव ब्रह्मन् शब्दों को स्वरित के स्थान में अनुदात्त होता है, सुब्रह्मण्या निगद में।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। देवब्रह्मणोः अनुदात्तः ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। वहाँ देवब्रह्मणोः ये सप्तमी द्विवचनान्त पद है। और अनुदात्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। पूर्व 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र से स्वरितस्य इस षष्ठ्यन्त तथा सुब्रह्मण्यायाम् इस सप्तम्यन्त पद की यहाँ अनुवृति है। सुब्रह्मण्यायां देवब्रह्मणोः स्वरितस्य अनुदात्तः यह पद का अन्वय है। देवब्रह्मणोः यहाँ पर 'देवश्च ब्रह्मा च इत्यनयोः द्वन्द्व समास में 'देवब्रह्माणौ, तयोः देवब्रह्मणोः। इस देव शब्द में, ब्रह्मन् शब्द मे परे इस अर्थ में है। अनुदात्तः यह प्रथमान्त विधीयमान पद है। सुब्रह्मण्यायाम् इसके सुब्रह्मण्य नाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में इस अर्थ में। इस प्रकार सूत्र अर्थ होता है - सुब्रह्मण्य नाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में देव ब्रह्मन् शब्द के स्वरित के स्थान में अनुदात्त स्वर होता है। 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र से उदात्त प्राप्ति प्रकृत सूत्र से उसको अनुदात्त स्वर होता है ऐसा जानना चाहिए।

उदाहरण- देवा ब्रह्माण आगच्छत् इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय - सुब्रह्मण्यनाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में देवशब्द तथा ब्रह्मण्-शब्द का प्रयोग है। अतः देवा ब्रह्माण आगच्छत् इस उदाहरण में देवा यहाँ पर वकार से उत्तर आकार का तथा ब्रह्माण यहाँ ह्मा से उत्तर आकार का 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इससे उदात्त की प्राप्ति है इस प्रकृत सूत्र से उसको अनुदात्त स्वर का विधान है।

9.9 स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम्॥ (१.२.३९)

सूत्र का अर्थ- स्वरित से उत्तर संहिता विषय में अनुदातों को एकश्रुति होती है।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। वहाँ स्वरिताद् यह पञ्चमी एकवचनान्त पद है, संहितायाम यह सप्तमी एकवचनान्त तथा अनुदात्तानाम यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ एकश्रुतिः इस

एकवचनान्त पद की अनुवृति आती है। स्वरिताद् यह पञ्चम्यन्त पद है, अत: तस्मादित्युत्तरस्य इस परिभाषा से स्वरित से परे इस अर्थ को जानना चाहिए। एकश्रुति: यह प्रथमान्त पद है, अत: उसका विधायक पद है। अनुदातों का यहाँ जाति में बहुवचन है। उससे एक दो और बहुतों की विधि समझनी चाहिए। अत: अनुदात्तानाम् इसका अर्थ है, अनुदात्त का, दो अनुदातों का, अथवा अनेक अनुदात्तों का। संहितायाम् यहाँ पर विषय सप्तमी है। 'एका श्रुति: यस्य तत् एकश्रुति' इति बहुव्रीहि समास है। श्रवण को श्रुति कहते है। दूर से बुलाने पर, उदात्त-अनुदात्त-स्वरित स्वरों की एकश्रुति होती है। जहाँ उदात्त अनुदात्त स्वरित के पृथक् कोई भी स्वर सुनाई नहीं देता है, वह एकश्रुति स्वर है। संहितायां स्वरिताद् अनुदात्तानाम् एकश्रुति: स्याद ये सूत्र में आये पदों का अन्वय है। सम्पूर्ण रूप से सूत्र का अर्थ होता है - संहिता के होने पर स्वरित स्वर से परे विद्यमान अनुदात्त स्वरों की एकश्रुति होती है, अर्थात् कोई भी विशिष्ट स्वर सुनाई नहीं देता है यह भाव है।

उदाहरण- इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- इस उदाहरण में 'मे' इस शब्द में स्वरित स्वर है। उससे परे गङ्गे-यमुने इत्यादि शब्द है। और ये अनुदात्त है। स्वरित स्वर से परे विद्यमान होने से अनुदातो की उन गङ्गे यमुने इत्यादि शब्दों की एकश्रुति सिद्ध होती है।

9.10 उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर:॥ (१.२.४०)

सूत्र का अर्थ- उदात्तस्वरितौ परौ यस्मात्तस्य अनुदात्तस्य सन्नतर: स्यात्।

सूत्र की व्याख्या - छ: प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद विद्यमान है। वहाँ 'उदात्तस्वरितपरस्य' यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, सन्नतर: यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, किन्तु अनुदात्तानाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। अनुदात्त ग्रहण की अनुवृति आती है। उदात्तस्वरितपरस्य यहाँ पर 'पर' शब्द का प्रत्येक के साथ अभिसम्बन्ध है। उदात्त परे है जिससे वह उदात्तपर:, स्वरित परे है जिससे वह स्वरितपर:। उदात्त परे और स्वरित परे अनुदात्तके स्थान में अनुदात्तर आदेश हो जाता है। सन्न शब्द का नीचे के इस अर्थ में प्रयोग है। अत: सन्नतर इसका अर्थ अनुदात्ततर है। और इस प्रकार सूत्र का अर्थ होता है - उदात्त स्वर और स्वरित स्वर जब परे रहते है, तब पूर्व के अनुदात्त स्वर को अनुदात्तर आदेश होता है।

उदाहरण- इमं मे गङ्गे सरस्वति शुतुद्रि व्यचक्षयत्स्व:, माणवक जटिलकाध्यापक क्व गमिष्यसि इति च।

सूत्र अर्थ का समन्वय- वेद में सम्बोधन पद को आमन्त्रित शब्द से कहते हैं। और अनुदात्त स्वर निघात शब्द को कहते है। यहाँ 'मे' शब्दको आश्रित करके सरस्वति यहाँ पर आमन्त्रित निघात है। शुतुद्रि शब्द का तो पाद आदि होने से निघात नहीं होता है। पाद के आदि में विद्यमान होने से, आमन्त्रित होने से षष्ठी से और आमन्त्रित के स्थान से शुतुद्रि शब्द के शकार से उत्तर उकार उदात्त होता है, अत: उसके परे होने पर पूर्व सरस्वति शब्द की इकार के स्थान से अनुदात्त के स्थान में अनुदात्तर आदेश होता है। व्यचक्षयत्स्व: यहाँ पर 'वि-इति' उपसर्ग होने से आद्युदात्त है।

वि इससे परे अचक्षयत्स्व इस तिङन्त की तिङ् इससे निघात है। स्वः यहाँ 'न्यङ्स्वरौ स्वरितौ' इससे स्वरित है। उस स्वरित स्वर परे होने पर ऊपर के सूत्र से यकार उत्तर अकार को सन्नतर (अनुदात्ततर) स्वर सिद्ध होती है।

द्वितीय उदाहरण में क्व इस शब्द में स्वरित स्वर विद्यमान है। अतः उससे परे होने पर अध्यापक शब्द के ककार से उत्तर अकार अनुदात्त है, उसका इस सूत्र से सन्नतर आदेश होता है।

9.11 अनुदात्तं च॥ (८.१.३)

सूत्र का अर्थ- जिसकी आम्रेडित संज्ञा होती है वह अनुदात्त भी होता है।।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद विद्यमान है। वहाँ अनुदात्तम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। च यह अव्ययपद है। पूर्व से 'तस्य परमाम्रेडितम्' इस सूत्र में आम्रेडित संज्ञा करते है। 'सर्वस्य द्वे' इस अधिकार में यह सूत्र है। इस अधिकार में कहे हुए शब्दों को द्वित्व होता है। द्वित्व करने पर उन दोनों शब्दों के मध्य में जो दूसरा शब्द है, उसकी 'तस्य परमाम्रेडितम्' इस सूत्र से आम्रेडितसंज्ञा होती है। आम्रेडित का उदाहरण है- चौर चौर, वृषल वृषल, दस्यो दस्यो घातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा इत्यादि। उस आम्रेडित संज्ञक की इस सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है। और इस प्रकार सम्पूर्ण सूत्र का अर्थ होता है की दो कहे हुए शब्दों के मध्य में जो पर है, उसको अनुदात्त हो।

उदाहरण- दिवेदिवे इति।।

सूत्र अर्थ का समन्वय- इस उदाहरण में दिवे दिवे यहाँ पर दो बार दिवे-शब्द का प्रयोग है। अतः दूसरे दिवे-शब्द का इस सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है।

विशेष- प्रकृति स्वर में प्राप्त पर के स्थान में अनुदात्त कहा है। अनुदात्त शब्द यहाँ पर शास्त्रीय अनुदात्त नहीं है, तो क्या है? इसका यहाँ अन्वर्थ ही ग्रहण किया है। उसका विग्रह होता है अविद्यमान उदात्त को अनुदात्त को। शास्त्रीय अनुदात्त की यदि विवक्षा होती तो वहाँ सम्बन्ध अर्थ में षष्ठी का उच्चारण होता है यह विशेष है।

पाठगत प्रश्न 9.4

1. 'सुब्रह्मण्यायाम्' इसका क्या अर्थ है?
2. 'देवब्रह्मणोरनुदात्तः' इस सूत्र का क्या अर्थ है?
3. 'सुब्रह्मण्यायाम् उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः' इस सूत्र में विधीयमान एकश्रुति स्वर क्या है?
4. 'स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम्' इस सूत्र का क्या अर्थ है?

5. सन्नतर नाम क्या है?
6. वेद में आमन्त्रित शब्द का अर्थ क्या है?
7. 'उदात्तस्वरितपरस्य' का विग्रह लिखिए।
8. 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः' इस सूत्र का अर्थ लिखिए।
9. 'अनुदात्तं च' इस सूत्र का अर्थ लिखिए।
10. 'अनुदात्तं च' इस सूत्र में अनुदात्त शब्द का अर्थ क्या है?

पाठ का सार

उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित होता है, परन्तु यदि अनुदात्त के परे उदात्त अथवा स्वरित हो तो पूर्व अनुदात्त के स्थान में स्वरित नहीं होता है। गार्ग्य आदि ऋषियों के मत में तो स्वरित ही होता है उसका निषेध नहीं होता है। दूर से सम्बोधन वाक्य की एकश्रुति का विधान है। यहाँ एकश्रुति विषय में विग्रह सहित उदाहरण का भी वर्णन है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों के लोप को ही एकश्रुति कहते हैं। 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से जप, न्यूङ्ख और साम से भिन्न यज्ञकर्म के मन्त्र में एकश्रुति होती है। जप अनुकरण मन्त्र को कहते है, न्यूङ्खा नाम सोलह प्रकार के ओकार को कहते है, और साम वाक्य विशेषस्थ गीत को कहते है। यहाँ वषट्कारः इस पद से वौषट् इस अव्ययपद को ग्रहण करते है। यहाँ कार शब्द के ग्रहण करने के विषय में अन्य भी अनेक मत है। 'विभाषा छन्दसि' इस सूत्र से छन्द में विकल्प से एकश्रुति का विधान है। 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र से सुब्रह्मण्य नामवाले निगद में 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से विभाषा छन्दसि इस सूत्र से प्राप्त एकश्रुति का निषेध होता, और स्वरित स्वर के स्थान में उदात्त स्वर का विधान है। जिस मन्त्र वाक्य में पाद व्यवस्था नहीं होती है, उसे निगद कहते है। सुब्रह्मण्या+ओम् इत्यादि स्थलों में स्वरित स्वर का और उदात्त स्वर के स्थान में एकादेश उदात्तेनोदात्तः इस सूत्र से एकादेश में उदात्त स्वर नहीं होता है, उस सूत्र में अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः इस सूत्र से अनुदात्तस्य इस पद की अनुवृति आती है, किन्तु उस एकादेश विधायक सूत्र से उदात्त अनुदात्त के स्थान में ही एकादेश उदात्त होता है, उदात्त स्वरित के स्थान में एकादेश नहीं होता है। असावित्यन्तः इस वार्तिक से निगद में प्रथमान्त पद का अन्त उदात्त होता है। स्यान्तस्योपोत्तमं च इस वार्तिक से स्यान्त पद के अन्त के और अन्त से पूर्व उदात्त स्वर होता है। वा नामधेयस्य इस सूत्र से नामवाचक स्यान्त पद के अन्त से पूर्व को विकल्प से उदात्त स्वर होता है, जिस पक्ष में वहाँ अन्त से पूर्व उदात्त नहीं होता है, वहाँ अन्त के स्थान में उदात्त स्वर होता है। देव ब्रह्मण शब्दों के स्वरित के स्थान में अनुदात्त हो। किन्तु स्वरित से परे अनुदात्त की एकश्रुति हो। दोबार कहे हुए शब्दों में बाद वाला आम्रेडित संज्ञक शब्द अनुदात्त होता है।

पाठांत प्रश्न

1. 'अग्निमींळे' इस रूप को स्वर सहित सिद्ध कीजिए।
2. 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. 'एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. 'उच्चैस्तरां वा वषट्कार:' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
6. 'विभाषा छन्दसि' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
7. 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्त:' इस सूत्र का एक उदाहरण लिखिए।
8. 'असावित्यन्त:' इस वार्तिक की व्याख्या कीजिए।
9. 'देवब्रह्मणोरनुदात्त:' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
10. 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर:' इस सूत्र के उदाहरण के प्रकारों को लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

9.1

1. स्वरित स्वर का विधान है।
2. स्वरित स्वर।
3. 'उदात्तानुदात्तस्य स्वरित:' इसके असिद्ध होने से।
4. 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' इससे।
5. गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में।
6. पर इस अर्थ में।

9.2

1. दूर से संबोधन करने वाले वाक्य में एकश्रुति होती है।
2. संबोधन करता है, जिस वाक्य से वह सम्बुद्धि है।
3. अनुकरण मन्त्र अथवा उपांशु प्रयोग जप है।
4. न्यूङ्ख नाम सोलह ओकार का है।
5. वौषट् - यह शब्द है।

6. अतितर उदात्त है।
7. छन्द में।

9.3

1. यज्ञकर्मणि इस पद की निवृत्ति के लिए।
2. उच्चै अपाद बन्ध यजुरात्मक है क्योकि जो मन्त्र वाक्य पढ़ते है वे निगद होते है।
3. प्रथमा विभक्ति।
4. 'स्यान्तस्योपोत्तमं च' इस वार्तिक से स्यान्तस्य इस पद ग्रहण से।
5. अन्त्य से पूर्व।

9.4

1. सुब्रह्मण्य नाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में यह अर्थ है।
2. देव ब्रह्मण शब्द में स्वरित के स्थान में अनुदात्त हो यह अर्थ है।
3. जहाँ उदात्त, अनुदात्त, स्वरित का पृथक् से कोई भी स्वर सुनाई नहीं देता है वह एकश्रुति स्वर है।
4. स्वरित से परे अनुदात्तों की संहिता में या एकश्रुति हो यह अर्थ है।
5. अनुदात्ततर है।
6. सम्बोधन पद को।
7. उदात्त परे है जिससे वह उदात्तपरः, स्वरित परे है जिससे वह स्वरितपरः।
8. उदात्त स्वरित के परे जिससे उस अनुदात्त के स्थान में अनुदात्तर हो।
9. दो बार कहे हुए शब्दों के पर रूप को अनुदात्त हो।।
10. अविद्यमान उदात्त को, अनुदात्त को।

॥ नौंवाँ पाठ समाप्त॥

INTRODUCTION

1 The *Sāmaveda* and its Schools

The collection of texts known as the *Veda*-s are revealed to the world through a divine process. (यस्य निश्वसितं वेदः ||). The word '*veda*' is derived from the root √विद् - vid - to know, to exist, to obtain, to think, etc. There are four *Veda*-s: *Ṛgveda, Yajurveda, Sāmaveda*, and the *Atharvaveda*. Each *Veda* has four divisions: *Samhita, Brahmaṇa, Āraṇyaka*, and the *Upaniṣad*. The *Samhita* part of each *Veda* is as follows: *Ṛgveda*, as we have it today, has two schools: *Śākala*, and *Bhāṣkala*. The *Yajurveda* has two branches: *Śukla* (white) *Yajurveda* and the *Kṛṣṇa* (black) *Yajurveda*. The *Śukla Yajurveda* has *Mādhyandina*, and *Kaṇva* as two recensions, and the *Kṛṣṇa Yajurveda* has four recensions: *Taittarīya, Maitrāyaṇi, Kāṭaka*, and *Kaṭha-kapisthala*. Even though *Sāmaveda* was originally supposed to have 1000 recensions (Patanjali: सहस्रवर्त्म सामवेदः (*"sahasravartma sāmvedaḥ"*), only three recensions have now survived. They are: *Kauthuma, Rāṇāyanīya*, and *Jaiminīya*. Finally, the *Atharvaveda* is available in two recensions: *Śaunaka*, and *Pillalāda*.

The *Samhita*-s consist of *Mantra* portions only. These are known as *Ṛk* (in *Ṛgveda*), *Yajus* (in *Yajurveda*), *Sāman* (in *Sāmaveda*), and *Mantra* in *Atharvavedava*. Each *Veda* has its own way of rendering the *Samhita pātha* into *Pada pātha*, and vice versa, with some minor, but several essential differences.

The present work here is on the **Kauthuma Samhita** that belongs to the *Sāmaveda*.

2 *Sāmaveda Kauthuma Samhita*

"वेदानां सामवेदोस्मि" declated Lord Kṛṣṇa to Arjuna in the *Bhagavadgīta* (10-22). This speaks volumes about the glory and magnanimity of the sacred literature of the *Sāmaveda*. The *Kauthuma Samhita* of *Sāmaveda* consists of 1875 *mantra*-s arranged in two primary divisions, namely, the *Pūrvārcikā*, and the *Uttarārcikā*. The *Pūrvārcikā* has 650 *mantra*-s and the remaining 1225 belong to the *Uttarārcikā*. Further, the *Pūrvārcikā* has additional subdivisions: *Āraṇya Kāṇḍa, Aindra Kāṇḍa, Pavamāna Kāṇḍa*

and, then follow the *Āraṇya Arcikā*, and the *Mahānāmnya Ārcikā*. The last two are considered as separate units. Thus, the contents can be summarized as follows:

	Mantra sequence
Pūrvārcikā	
Āgnēya Kāṇḍa	1- 114
Aindra Kāṇḍa	115-466
Pavamāna Kāṇḍa	467-585
Āraṇya Ārcikā	586-640
Mahānāmnya Ārcikā	641-650
Uttarārcikā	651-1875

3 The Organization in *Kauthuma Samhita*

A group of *Ṛk*-s is called *Ārcikam*. Each of them has a *Ṛṣi, Devatā* and *Chandas*, associated with it. These verses (*ṙcā*-s) are arranged in decades (*daśati*-s). The fundamental unit of division in the *Pūrvārcikā* is what is called a *Prapāṭhaka*. Each *Prapāṭhaka* is further divided into two *ardha*-s (halves). In *Pūrvārcikā*, there are six *Prapāṭhakā*-s. A group of ten *mantra*-s is a *Daśati*. Though a *Daśati* should normally be a collection of 10 *mantra*-s, many of them have anywhere from 6 to 14 *mantra*-s. The first five *Prapāṭhaka*-s have 10 *Daśati*-s each, the fifth one has only 9 and the sixth *Prapāṭhaka*, that is associated with the *Āraṇya Kāṇḍa* has only 5 *Daśati*-s. Thus, (leaving out the *Mahānm̄nyārcikā*), there are six *Prapāṭhaka*-s, with a total of 64 *Daśati*-s in the *Pūrvārcikā*. The *Mahānāmnyārcikā*, which exists prior to the *Uttarārcikā*, sits as a separate single unit, and has got ten *mantra*-s. Unlike other *mantra*-s, these do not have *Ṛṣi* or *Chandas*. Also no division is made here. In general, *the Pavamāna Kāṇḍa, Āraṇya Kāṇḍa* and the *Mahānm̄nyārcikā* are considered as separate units outside the *Pūrvārcikā*. and so lack some of the divisions.

The structure of various *Daśati*-s in the entire *Pūrvārcikā* can be classifiecd as follows

No.of verses in each Daśati	No. of Daśati-s	Total number Mantra-s
6	1	6
7	1	7
8	7	56
9	5	45
10	41*	400
11	1	11
12	5	60
13	1	13
14	3	42
Total	65*	650

ppn

(* - including the 10 *mantra*-s in the *Mahānāmnyarcikā*)

The arrangement of material in the *Uttarārcikā* is slightly different. The *Uttarārcikā* consists of nine *Prapāṭhaka*-s (with 22 *ardha*-s) (since four of them have three *ardha* s each.). Instead of *Daśati*-s, there are *Sūkta*-s. These *Sūkta*-s in the *Uttarārcikā* usually contain 3 *mantra*-s each, but some have anywhere from 1 to 14 mantras. There are in all a total of 400 Sūkta-s that are distributed as follows:

No.of verses in each Sūka	No. of Sūkta-s	Total no. of Sūkta-s	Total mantra-s
ekartca (1)	एकर्च	11	11
dvyarca (2)	द्वयृच	66	132
tryṛca (3)	तृच	287	861
catur-ṛca (4)	चतुर्ऋच	9	36
pañcarca (5)	पञ्चर्च	4	20
ṣaḍ-ṛca (6)	षड्-ऋच	10	60
saptarca (7)	सप्तर्च	2	14
aṣṭarca (8)	अष्टर्च	1	8
navarca (9)	नवर्च	3	27
daśarca (10)	दशर्च	3	30
dvādaśārca(12)	द्वादशर्च	2	24
Total Sūkta-s	सूक्त	400	1225

The above organization is the older one, but there is also a second tradition in vogue (assigned by some commentators). Here, the primary division is an *Adhyāya*, which has *Khaṇḍa*-s as subdivision (anywhere from 3 to 12), and these *Khaṇḍa*, in turn have the usual *Daśast*-s containg the group of *ṛca*-s.. There are six *Adhyāya*-s, covering a total of 120 *Khaṇḍa*-s in the *Pūrvārcikā*. The *Uttarārcikā* is arranged in 21 *adhyāya*-s and has 125 *Khaṇḍa*-s.

The modern trend (which is the simplest) is to assign a serial number (from 1 to 1875) to each *mantra*, which makes it easy to locate a particulart mantra.

We have provided both classifications in this work, and the exact arrangement of the various segments and categories are furnished in a table (both Roman and Devanāgari) at the end of this introduction.

4 From *Rgveda*

Of the 1875 *Ṛca*-s found in *Kauthuma Samhita*, 1776 are reproductions of *Ṛgvedic mantra*-s with some minor verbal differences. Among the remaining 99 *mantra*-s, 11 appear only in *Atharvaveda*, and 4 only in *Yajurveda*, and two are present in both *Atharvaveda* and *Yajurveda*

The following *mantra*-s (not appearing in other *veda*-s) occur twice in *Sāmaveda*, namely, 438=1768, 444=1115. 445=1114, 446-1114, 453=1770. The verses 444, 445, 446 are repetitively abbreviated into a single composite verse 1113-1115.

Among repetitions in *Kauthuma Samhita*, there are two types:

1. *Pūrvarcikā* verses repeatd in the *Pūrvarcikā* itself: there are 262 in number.

2. *Pūrvarcikā* verses repeatd in *Uttarārcikā*: only seven.

5 Sage, Deity amd Metric information

Each of these *mantra*-s is revealed to certain *Ṛṣi* (sage) and is composed in a particular *Chandas* (poetical metre). This information is provided throught the *Samhita*, at the beginning of each *Daśati* in the *Pūrvārcikā*, and at the commencement of each *adhyāya* in the *Uttarārcikā* (in some books, under each *mantra* separately). Each

mantra in the entire *Kauthuma Samhita* is in praise of a *Devata* (supreme person or a certain illuminated being like *Indra, Agni, Soma Pavanama*, etc).

A variety of *Vedic* metres are employed in these *mantra* verses, and all these are mentioned at the beginning of each *Adhyāya*. The standard *Vedic* metres *Gāyatri, Uṣṇik, Anuṣṭup, Bṛhati, Paṅkti, Triṣṭup, Jagati*, and several of their variants are available. Long metres like *Atijagati, Sakvari, Atyaṣti*, etc., also show up. In *vedic* terminology, when two verses occurring together as a pair are recited together, the pair is known as a *pragatha*. Every *Sūkta* (particularly in the *Uttarācika*) which contain only two *mantra*-s is a *pragatha*. The pairing of two *Bṛhati* or one *Bṛhati* followed by another metre is known as *Bārhata pragatha*. There are plenty of them in the second half. Other varieties are *Uṣṇik pragatha, Kakup pragatha, Anuṣṭup pragatha*.

6 Accent Notation

Ṛgveda utilizes three kinds of *svara* notations: *udātta, anudātta*, and *svarita*. The *anudātta* is indicated by a horizontal bar below the syllable, the *svarita* by a vertical bar above, and *udātta* has no symbol. However, in *Sāmaveda*, the *udātta* is indicated by the Devanāgari numeral (१) placed on top of the syllable, the *svarita* by the numeral (२), and the *anudātta* by the numeral (३). If a syllable is not indicated by any three of these, then it is a *pracaya*. Certain syllables in the *mantra* are indicated with the letter combinations: २र, ३क, or २उ placed above them. A brief explanation for the usage of these accent marks above a syllable is as follows:

२र - If two *udātta*-s occur in sequence, then the first *udātta* is indicated by the numeral १, and the second is not accented, but the *svarita* which follows this second *udātta* gets the accent mark २र (for example, as १ – none – २र).

३क - If an *anudātta* is followed by a *svarita*, then the *svarita* is accented as २र, and the *anudātta* is accented as ३क (for example, as ३क – २र).

२उ - If an *anudātta* occurs after two *udātta*-s in sequence, the first *udātta* is indicated by २उ, and the second *udātta* is not indicated (as in २उ – none – none).

7 Parity check for Accuracy

Our Vedic sages were very practical in developing devises to make the chanting very accurately, so that the correct version is passed on to the next generation.. To make the pronunciation and recitation error-free, our ancestors have cleverly devised some parity checks (similar to the ones we see these days in ISBN numbers in published books or the numbers attached to bar codes in products). We find some count calculation entry (telling how many occurrances), appearing after each *daśaka* in *Pūrvārcikā* and after each *Sūkta* in *Uttarārcikā*. They are written as follows:

For example: [स्वरिताः ९ | उ॰ ना॰ | धा॰ | वे ॥], [स्व॰ ३९ | उ॰ २ | धा॰ ५२ | खा ॥], [स्व॰ ९ | उ॰ २ | धा॰ ५७ | थे ॥], [स्व॰ ९ | उ॰ ३ | धा॰ ८३ | दी ॥], and so on.

In this procedure, an entire group (*Daśati* or *Sūkta*) is regarded as a single unit. At the end of each, a syllable is given. The syllables for the first five *daśati*-s in *Pūrvārcikā* are: वे, खा, टे, धी, षा. From the syllable खा , we can infer the following numbers tor the entire group.

a) the number of unmarked syllables (धारी) not at end of a verse in the entire group, modulo 5.

b) the number of syllables marked २उ .

c) the number of *svarita* symbols marked २र.

All these numbers are given in their (modulo 5) versions.

For instance, consider the second *daśati* of the *Uttarārcikā*. The letter at the end is खा . From this letter, we can infer the following.

(i) Number of *dhārī* symbols (not at the end): 2 (modulo 5)

(ii) Number of syllables marked २उ is: 2

(iii) Number of syllables marked २र is: 6

To illustrate this error detection procedure, consider the group of 3 mantras, (1084-1086) from *Uttarārcikā*.

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम ।।7.5.1 ।।

आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः। ऋणोउक्षं न चक्रयोः ।।7.5.2||

आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम्। ऋणोउक्षं न शचीभिः ।।7.5.3 ।। (ठी)

[धा. 18 । उ 2 । स्व. 4।]

Note that उ = *udatta*; स्व = *svarita*; धा = *dhārī* (Number of syllables (*dhārī*) without any accent). The mysiric syllable associated with this *Sūkta* is ठी. From this syllable, we can derive the following:

ppn

1. Number of syllable (*dhārī*) without any accent; call it धा
2. Number with mark २उ; call it उ
3. Number with mark २र; call it स्व

We can obtain the three numbers from the text:

There are धा: 18, उ:2, and स्व: 4

Note in counting धा, we exclude syllables at the end. These 18 are displayed below.

In the first *mantra* -> र्नः स स न्तु = 4 letters In the second *mantra* धृ ष्णा वि र = 4 letters In the third *mantra* य दु श त क्र का = 10 letters

Accent mark 2उ : mantra 2 -> णो : 3 णो

Hence number उ is 2.

Accent mark २र: mantra 2-> क्रयो , *mantra* 3-> वः मै जी Number स्व equals 4.

The question is “how can we derive these numbers from the single syllable ठी only without looking at the text of the mantra?”

Note: ठी = ठ् + ई (consonant) + (vowel)

1) The number for स्व : it is given by the order of vowel in the vowel in ठी . namely ई has order 4 (remember the order अ (1), आ (2), इ (3), ई (4), उ (5), ऊ (6)-...)

Hence स्व -> 4

Arrange the first 25 consonants in groups of 5 as follows and read off the 3 number from the line in which the consonant occurs.

उ.१ -- क च ट त प

उ.२ -- ख छ ठ थ फ

उ.३ -- ग ज ड द ब

उ.४ -- घ झ ढ ध भ

उ.५ -- ङ ञ ण न म

Hence the consonant is ठ् , it is in line 2 indicating उ is 2.

the *dhārī* count is determined by the *varga* to which the consonant belongs:

Varga 1 क च ट त प

Varga 2 ख छ ठ थ फ

Varga 3 ग ज ड द ब

Varga 5 ङ ञ ण न म

Here the consonant ठ् belongs to *varga* 3. Hence That it can be 3, 8, 13 or 18. Here it is 18.

All this look complicated, but our *vedic* sages had the correct vision.

The material for this section is borrowed from the books: of Dr Śrīpāda Dāmodara Sātvalekar, and the English book by R.L. Kashyap, (bith mentioned in the Bibliograpgy). Our sincere thanks to these great authors.

8 The *Sāma Gāna* Texts

The entire chant literature (*Mantra*-s in musical setting) of the *Kauthuma Samhita* falls under four heads:

1. *Veya* (or *Grāmageya*) - chanted in public, before an audience
2. *Āraṇya* - chanted in forests in contemplation,
3. *Ūhā* - sung during the Soma yajna. The singing here followed a rather complicated pattern
4. *Ūhya* (mystic) singing within oneself

The *Sāma Gāna*-s belonging to *Kauthuma* Branch are distributed as follws:

Gāyati chant	1
Grāmageya gāna	1197
Āranya gāna	296
Ūhā gāna	936
Ūhya gāna	209
Total number of *gāna*-s	2639

According to some authorities, the total number is reckoned as 2723, with 297 in *Āranya*, 1026 in *Ūha*, and 205 in *Ūhya*.

ppn

There are eight modifications of a *Sāma mantra* to generate a *Gāna*.

No.	Modificatiion	Type	Illustration
1	*vikāra*	one letter in place of another	अग्ने -> ओग्नायि
2	*viśleṣa*	breaking up a sandhi	वीतये -> वोइतोयारयि
3	*vikarṣaṇa*	prolongation	ये -> याश्यि
4.	*abhyāsa*	repeatedly pronouncing	तोयारयि -तोयारयि
5	*virāma*	pause even in the middle	ग्र्णानो हव्यदातये -> गृणनोह | व्यदातये |
		of a syllable	ग्र्णानो हव्यदातये -> गृणनोह | व्यदातये |
6.	*stobha*	meaningless letter	ओ, होवा, हाउ, हावु
7.	*Āgama*	more letter than in a mantra	वरेण्यम् -> वरेणियम्
			प्रचोदयात् -> प्रचो५९२५९२
8.	lopa	letter left unpronounced	हुम् १, आ २१ दांयो आ ३ ४ ५

We illustrate how a *Gāna* takes shape from a *Samhitā mantra*, with two examples below. The first one is the very first mantra in *Pūrvārcikā*:

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥ 1.1.1.1

According to what is known as *Parka* of *Gotama* (गोतमस्य पर्कम्) the *Sāman* chant corresponding to the above *mantra* is given below:

आ ग्नाई । आ या हि ऽ३ वो इते या ऽ२ इ ।
तो या ऽ२ इ । गृणानो ह । व्य दा तो या ऽ२ह ।
तोय ऽ२ इ । ना ही ता सा ऽ२३ ।त्सा ऽ२ इ ।
वा २३४ ओहोवा । हो३ ऽ२ ३४ वी५ ॥

There is yet another version of the *Gāna* attributed to *Kāśyapa*, known as काश्यपस्य बर्हिषम् , which is slightly different from the above.

As a second example, the following *mantra* (number 598) appears in *Pūrvārcikā*.

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥ ५९४ ॥ 1.6.1.9

When rendered as a *Gāna* in the *Āraṇya gāna* book, this gets transformed into the following *Sāma gāna*:

॥ स्वर्ग्यम्, सेतुषाम, पुरुषगतिर्वा | प्रजापति ऋषिः | त्रिष्टुप् छन्दः | आत्मा देवता ॥
हा उहा उहा उ । सेतूꣳ स्तर । (३) दुस्त । रान् (२-३) दानेना दानम् । (३)
हा उहा उहा उ । अहमस्मिप्रथमजाऋताऽ२३ स्याऽ३४५ ।
हा उहा उहा उ । सेतूꣳ स्तर । (३) दुस्त । रान् (२-३) अक्रोधेन क्रोधम् । (२) अक्रोधेन क्रोधम् ।
हा उहा उहा उ । पूर्वन्देवेभ्यो अमृतस्यनाऽ२३ माऽ३४५ ॥
हा उहा उहा उ । सेतूꣳ स्तर । (३) दुस्त । रान् (२-३) । श्रद्धया श्रद्धाम् । (३)
हाउहा उहा उ । योमा ददाति सइदेव माऽ२३वाऽ३४५त् ॥
हा उहा उहा उ । सेतूꣳ स्तर । (३) दुस्त । रान् (२-३) । सत्येना नृतम् । (३)
हा उहा उहा उ । अहमन्नमन्नमदन्तमाऽ२३ द्मीऽ३४५ ।
हा उहा उहा उ ॥ एषा गतिः (३) । एतदमृतम् । (३) स्वर्गच्छ । (३)
ज्योतिर्गच्च (३) सेतूꣳ स्तीर्त्वा चतुराऽ३४५ः ॥

The *Gāna* texts of *Kauthuma Samhita* are very vast. These are the ones we often hear in regular *Sāmaveda* chanting sessions.Some of the *Gāna*-s have popular names: *Gāyati Sāma, Rathanthara Sāma, Bṛhat Sāma, Vāmadevya Sāma*, and so on.

9 A Short Bibliography

1. Benfey, Theodor, *Hymnen des Sama-veda, Die*, [herausgegeben übersetzt, und mit Glossar versehen von], Leipzig, F A Brockhaus, 1848

2. Devi Chand [translated by], *Sama Veda*, 1st edition, Hoshiarpur, 1963

3. Ganapati, S.V., [translated by] *Sama veda*. 1st edition, Shri Jainendra Press, Motilal Banarassidas, New Delhi, 1982

4. Griffith, Ralph, T.H., [translated by], Singh, Nag Sharan & Pratap, Surendra [enlarged by] *Samaveda Samhitā, The* Revised and Enlarged Edition, Nag Publishers, Delhi, 1991

5. Kashyap, R.L., *Essentials of Sama Veda and Its Music*, Sri Aurobindo Kapāli Sāstry Institute of Vedic Culture, Bangalore (second edition) 2008.

6. Sarasvati, Swami Satya Prakash [translated by], assisted by Satyakam, Vidyalankar, सामवेद संहिता *Sāmaveda Saṁhitā*. two Volumes, Veda Pratisthana,Arya Samaj, Mandir Marg, New Delhi, 1991-1992

7. Sātvalekar, Padmabhushan DrŚrīpāda Dāmodara [sampādaka], सामवेद का सुबोध अनुवाद (Hindi) - सामवेद संहिता, 4th saṁskraraṇam, pāraḍi Ji, Balasāda, svādhyāya Manḍala, 1985 (also available in 10 volumes)

8. Stevenson, The Rev. J, (DD), *Translation of The Samhitā of The Sāma Veda*, (London), Calcutta, 1906

9. Tulsi Ram (Dr), सामवेद संहिता, text with English Translation, Paropakarini sabha, Ajmer.

10 Colophon

This work was typeset, and the PDF file generated using the **XƎLaTeX** typesetting program (a sibilant of the popular TeX/LaTeX system. The graphics (page borders and the cover page designs) were created using **Ti*k*Z**. The Unicode Devanagari Vedic Font used was **Siddhanta** designed by Mihail Bayaryn. The Keyman Map for typing Sāmevedic accents were kindly created by Shree Devi Kumar. The Operating system was Ubuntu 18.04 Linux system. We offer our sincere thanks to the creaters of all these FREE software packages.

NOTE: In addition to numbering each *mantra* sequentially from 1 to 1875, we have also inserted a four number ordering (such as 1.4.3.9, 2.8.3.7, etc.,) that appears at the end of each *mantra* at the far right. These four entries refer to the number of the *arcika, adhyāya, khaṇḍa* and *Ṛk* (*pūrvārcika* =1, *uttarācika* = 2) respectively.

P P N

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥

ppn

pūrvārcikā

adhyāya	khaṇḍa	prapāṭhaka	ardha	daśati	ṛk
āgneya kāṇḍam					
1	1	1	1	1	1-10
	2			2	11-20
	3			3	21-34
	4			4	35-54
	5			5	45-54
	6		2	6	55-62
	7			7	63-72
	8			8	73-80
	9			9	81-90
	10			10	91-96
	11	2	1	1	97-106
	12			2	107-114
aindra kāṇḍam					
2	1			3	115-124
	2			4	125-134
	3			5	135-144
	4		2	6	145-155
	5			7	156-164
	6			8	165-174
	7			9	175-184
	8			10	185-193
	9	3	1	1	194-203
	10			2	204-213
	11			3	214-222
	12			4	223-232

ppn

3	1	3	1	5	233-242
	2		2	6	243-252
	3			7	253-262
	4			8	263-272
	5			9	273-282
	6			10	283-292
	7	4	1	1	293-302
	8			2	303-312
	9			3	313-322
	10			4	323-331
	11			5	332-341
	12		2	6	342-351
4	1			7	352-359
	2			8	360-369
	3			9	370-380
	4			10	381-390
	5	5	1	1	391-398
	6			2	399-408
	7			3	409-418
	8			4	419-426
	9			5	427-436
	10		2	6	437-446
	11			7	447-456
	12			8	457-466
pāvamāna kāṇḍam					
5	1			9	467-476
	2			10	477-486

	3	6	1	1	487-496
	4			2	497-510
	5			3	511-522
	6			4	523-532
	7			5	533-544
	8		2	6	545-553
	9			7	554-565
	10			8	566-577
	11			9	578-585
āraṇya kāṇḍam					
6	1	-	-	1	586-594
	2			2	596-601
	3			3	602-614
	4			4	615-626
	5			5	627-640
mahānāmnyārcikā					
-	-	-	-	-	641-650

ppn

uttarārcikā

adhyāya	prapāṭhaka	ardha	khaṇḍa	sūkta	ṛk
1	1	1	1-6	1-23	651-712
2		2	1-6	1-22	713-774
3	2	1	1-6	1-19	775-829
4		2	1-6	1-19	830-885
5	3	1	1-7	1-22	886-954
6		2	1-7	1-23	955-1030
7	4	1	1-7	1-24	1031-1115
8		2	1-6	1-14	1116-1174
9	5	1	1-9	1-20	1175-1252
10		2	1-12	1-23	1253-1346
11	6	1	1-3	1-11	1347-1378
12		2	1-6	1-20	1379-1434
13		3	1-6	1-18	1435-1488
14	7	1	1-4	1-16	1489-1534
15		2	1-4	1-14	1535-1572
16		3	1-4	1-21	1573-1616
17	8	1	1-4	1-17	1617-1656
18		2	1-4	1-19	1657-1710
19		3	1-5	1-18	1711-1764
20	9	1	1-5	1-18	1765-1815
		2	1-2	1-13	1816-1848
21		3	1-7	1-9	1845-1875

ppn

पूर्वार्चिका

अध्याय	खण्ड	प्रपाठक	अर्ध	दशति	ऋक्
आग्नेय काण्डम्					
१	१	१	१	१	१-१०
	२			२	११-२०
	३			३	२१-३४
	४			४	३५-५४
	५			५	४५-५४
	६		२	६	५५-६२
	७			७	६३-७२
	८			८	७३-८०
	९			९	८१-९०
	१०			१०	९१-९६
	११	२	१	१	९७-१०६
	१२			२	१०७-११४
ऐन्द्र काण्डम्					
२	१			३	११५-१२४
	२			४	१२५-१३४
	३			५	१३५-१४४
	४		२	६	१४५-१५५
	५			७	१५६-१६४
	६			८	१६५-१७४
	७			९	१७५-१८४
	८			१०	१८५-१९३
	९	३	१	१	१९४-२०३
	१०			२	२०४-२१३
	११			३	२१४-२२२
	१२			४	२२३-२३२

ppn

३	१	३	१	५	२३३-२४२
	२		२	६	२४३-२५२
	३			७	२५३-२६२
	४			८	२६३-२७२
	५			९	२७३-२८२
	६			१०	२८३-२९२
	७	४	१	१	२९३-३०२
	८			२	३०३-३१२
	९			३	३१३-३२२
	१०			४	३२३-३३१
	११			५	३३२-३४१
	१२		२	६	३४२-३५१
४	१			७	३५२-३५९
	२			८	३६०-३६९
	३			९	३७०-३८०
	४			१०	३८१-३९०
	५	५	१	१	३९१-३९८
	६			२	३९९-४०८
	७			३	४०९-४१८
	८			४	४१९-४२६
	९			५	४२७-४३६
	१०		२	६	४३७-४४६
	११			७	४४७-४५६
	१२			८	४५७-४६६
पावमान काण्डम्					
५	१			९	४६७-४७६
	२			१०	४७७-४८६

ppn

	३	६	१	१	४८७-४९६
	४			२	४९७-५१०
	५			३	५११-५२२
	६			४	५२३-५३२
	७			५	५३३-५४४
	८		२	६	५४५-५५३
	९			७	५५४-५६५
	१०			८	५६६-५७७
	११			९	५७८-५८५
आरण्य काण्डम्					
६	१	-	-	१	५८६-५९४
	२			२	५९६-६०१
	३			३	६०२-६१४
	४			४	६१५-६२६
	५			५	६२७-६४०
महानाम्न्यार्चिका					
-	-	-	-	-	६४१-६५०

ppn

उत्तरार्चिका

अध्याय	प्रपाठक	अर्ध	खण्ड	सूक्त	ऋक्
१	१	१	१-६	१-२३	६५१-७१२
२		२	१-६	१-२२	७१३-७७४
३	२	१	१-६	१-१९	७७५-८२९
४		२	१-६	१-१९	८३०-८८५
५	३	१	१-७	१-२२	८८६-९५४
६		२	१-७	१-२३	९५५-१०३०
७	४	१	१-७	१-२४	१०३१-१११५
८		२	१-६	१-१४	१११६-११७४
९	५	१	१-९	१-२०	११७५-१२५२
१०		२	१-१२	१-२३	१२५३-१३४६
११	६	१	१-३	१-११	१३४७-१३७८
१२		२	१-६	१-२०	१३७९-१४३४
१३		३	१-६	१-१८	१४३५-१४८८
१४	७	१	१-४	१-१६	१४८९-१५३४
१५		२	१-४	१-१४	१५३५-१५७२
१६		३	१-४	१-२१	१५७३-१६१६
१७	८	१	१-४	१-१७	१६१७-१६५६
१८		२	१-४	१-१९	१६५७-१७१०
१९		३	१-५	१-१८	१७११-१७६४
२०	९	१	१-५	१-१८	१७६५-१८१५
		२	१-२	१-१३	१८१६-१८४८
२१		३	१-७	१-९	१८४५-१८७५

242hi06

6

सामवेद के संदर्भ में वेदों का संक्षिप्त अध्ययन

वैदिक युग भारतीय संस्कृति के इतिहास का वह प्राचीनतम युग है, जो भारत की प्राचीन संस्कृति के रूप में उपलब्ध है। विद्वानों के अनुसार वैदिक काल प्रायः ईसा पूर्व 5000 वर्ष के लगभग माना गया है। वेद कुल चार हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। चारों वेदों में से सामवेद को भारतीय संगीत का मूल माना जाता है।

उस काल में संगीत धार्मिक प्रयोजनों में उपासना एवं लौकिक समारोहों में मनोरंजन, दोनों का ही माध्यम था। स्वरों का विकास वैदिक युग में ही आरम्भ हो चुका था। प्रारम्भ में तीन वैदिक स्वरों का प्रयोग होता था– उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित। बाद में इन्हीं से सात वैदिक स्वरों का विकास हुआ, जिनका स्थान अंततः लौकिक अथवा गान्धर्व स्वरों ने ले लिया। वैदिक काल में विभिन्न प्रकार के वाद्यों का भी प्रयोग होता था। तंत्री वाद्यों में विभिन्न प्रकार की वीणा प्रचलित थीं। चर्म वाद्यों में दुन्दुभि, फूंक से बजने वाले वाद्यों मे तुणव तथा धातु निर्मित वाद्यों में आघाटि जैसे वाद्य भी उस समय प्रचलित थे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के पश्चात आप–

- वैदिक काल में प्रचलित गान-प्रणाली का वर्णन कर सकेंगे;
- यज्ञों में गायन-वादन करने की विधि को प्रस्तुत कर सकेंगे;
- वैदिक संगीत के मूलाधार उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित आदि स्वरों से उद्भूत सामवैदिक सप्त स्वरों के विकास को रेखांकित कर सकेंगे;
- तत्कालीन प्रचलित चतुर्विध **'तत, सुषिर, अवनद्ध** तथा **घन** वाद्यों के संबंध के बारे में वर्णन कर सकेंगे।

टिप्पणी

6.1 वैदिक काल में प्रचलित संगीत की प्रणाली

वैदिक काल में संगीत का प्रयोग धार्मिक प्रयोजनों के लिये तथा लौकिक समारोहों के अवसर पर प्रचुर मात्रा में किया जाता था। यज्ञों के अवसर पर प्रयोग किये जाने वाला संगीत (वैदिक) कठोर नियमों से आबद्ध था जबकि लौकिक समारोहों के अवसर पर आयोजित संगीत (लौकिक) में लोकरंजन का तत्त्व अधिक होता था। वैदिक ऋचाओं को जीवन्त, शक्ति सम्पन्न तथा दिव्यात्मक माना जाने के कारण इनका गान लौकिक व पारलौकिक कामनाओं की पूर्ति के लिये पृथक-पृथक विधि-विधानों से विविध प्रकार के यज्ञों के लिये किया जाता था। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुये वेदगान करने के लिये ऐसे ब्राह्मणों को योग्याधिकारी माना जाता था जो स्वाभाविक मधुर कंठ वाले उत्तम गायक, उत्तम वादक तथा उत्कृष्ट प्रबन्धकार हों, वेदों के ज्ञान में परिपक्व हों तथा वैदिक क्रियाओं में भी कार्यकुशल व निपुण हों। इन सब विशेषताओं के अतिरिक्त उनको मौखिक रूप से वेद ज्ञान की शिक्षा भी ग्रहण करना अनिवार्य था, अत: इसी उद्देश्य से यक्षों व धार्मिक प्रयोजनों के लिये ब्राह्मणों को संगीत की विशेष शिक्षा दी जाती थी। यह शिक्षा पिता से पुत्र को, गुरू से शिष्य को अथवा गुरूकुल में विद्यार्थियों को सामूहिक रूप से दी जाती थी। वैदिक सिद्धान्तों का अध्ययन करने के लिये कुछ आश्रमों एवं सामपरिषदों की भी स्थापना की जाती थी जिनमें संगीत के स्वर-वैशिष्ट्य तथा उच्चारण-वैशिष्ट्य का विशेष रूप से ज्ञान दिया जाता था। यह नियमबद्ध वैदिक संगीत ही वैदिक काल के शास्त्रीय संगीत का रूप माना जा सकता है।

लौकिक संगीत के परिप्रेक्ष्य में वीर पुरूषों की स्तुतिपरक लोकगाथाओं तथा राजाओं का प्रशंसायुक्त गान के रूप में 'गाथा', 'नाराशंसी' तथा 'रैभ्य' आदि नामक गीत प्रकारों का प्रचार था जिनका प्रयोग धार्मिक तथा लौकिक दोनों प्रकार के समारोहों के अवसर पर किया जाता था। 'गाथा' गीत का गान वीणा वाद्य के साथ किए जाने के कारण गायकों को 'गाथागायक', 'वीणागाथिन' अथवा 'वीणागणगिन्' कहा जाता था।

इस काल में नृत्य की प्रस्तुति खुले वातावरण में एकत्रित जनता के सम्मुख होती थी जिसमें नर तथा नारी दोनों ही भाग लेते थे। '**वाजसनेयी संहिता**' ग्रन्थ के अनुसार इस काल में **रज्जु, अरूण, प्रकृति, पुष्प** तथा **बसन्तादि** समूह नृत्य भी प्रचलित थे। इस प्रकार वैदिक काल में धार्मिक प्रयोजनों के लिये वेदों में निर्दिष्ट नियमों के अनुरूप शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त लौकिक समारोहों पर जनरुचि के आधार पर भी संगीत का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

पाठगत प्रश्न 6.1

1. वैदिक काल में संगीत का प्रयोग किन अवसरों पर किया जाता था?
2. किस प्रकार के ब्राह्मणों को वेदगान का योग्य अधिकारी माना जाता था?
3. वैदिक काल में संगीत-प्रशिक्षण के लिये किन माध्यमों का प्रयोग किया गया?

4. लौकिकसंगीत में प्रयुक्त गीत-प्रकारों का उल्लेख कीजिये।
5. वीणावाद्य के साथ गान करने वाले गायकों को क्या कहते थे?
6. 'वाजसनेयी संहिता' ग्रन्थ में दिये गये समूह नृत्यों के नाम बताइए।

6.2 संगीत का मूल – सामवेद

वैदिक काल में चारों वेदों में संगीत का प्रतिनिधित्व सामवेद करता है इसीलिये सामवेद को भारतीय संगीत का मूल कहा गया है तथा इस वेद को चार वेदों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। जैसा कि गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है – 'वेदानां सामवेदोऽस्मि'। साम का गान ऋग्वेद की ऋचाओं के आश्रय से किया गया है अर्थात वैदिक मन्त्र जब स्वर सहित गाये जाते हैं तब उन्हें साम कहा जाता है। छान्दोग्य उपनिषद ग्रन्थ के अनुसार 'साम' की व्युत्पत्ति में कहा गया है- 'सा' + 'अमः' = साम 'सा' का अर्थ है 'ऋचा' तथा 'अमः' का अर्थ है 'आलाप' अर्थात 'आलाप से युक्त ऋचाओं का गान'। वेदमन्त्रों का स्वर तथा लययुक्त गायन करना ही सामगान कहलाता है।

सामवेद के दो भाग हैं – आर्चिक संहिता तथा गान संहिता। आर्चिक संहिता के पुनः दो भाग माने गये हैं- पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक भाग में एकल गान के रूप में केवल एक ऋचा के ऊपर सामगान किया जाता था जबकि उत्तरार्चिक भाग में तीन-तीन ऋचात्मक सूक्तों के ऊपर गान किया जाता था। इसमें मुख्य गायक के साथ सहगायक भी होते थे। इस प्रकार पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक में मन्त्र (ऋचा) की प्रधानता रहती थी। परन्तु कालान्तर में जैसे-जैसे यज्ञानुष्ठानों में वृद्धि होने लगी वैसे-वैसे गान की प्रधानता की भावना भी बढ़ने लगी और सामवेद की दूसरी संहिता अर्थात **'गान संहिता'** की रचना हुई जो यद्यपि आर्चिक संहिता पर ही आधारित थी तथापि इसमें गेय तत्त्व की प्रधानता रहती थी। **'गान संहिता'** चार भागों में विभक्त है- **ग्रामगेयगान, अरण्यगेयगान, ऊहगान** तथा **उह्यगान।** ग्रामगेयगान के अन्तर्गत वेद की जटिल भाषा के स्थान पर छन्दोबद्ध सरल संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाता था। अरण्यगेयगान को निर्जन वन प्रदेश में गाया जाता था। ऊहगान तथा ऊह्यगान दोनों रहस्यगान माने गये जिन्हें उपनिषदों के रहस्य को समझने वाले साधक ही गाते थे। इस प्रकार आर्चिक ग्रन्थ साम के साहित्य मात्र का संकेत करते हैं तथा गानग्रन्थ साम के स्वरमय-स्वरूप के द्योतक हैं। यज्ञों में सामगान के लिये पांच अथवा सात भक्तियों का निर्देश दिया गया है, जो इस प्रकार है- **(1) प्रस्ताव (2) उद्‌गीथ, (3) प्रतिहार, (4) उपद्रव, (5) निधन**। इसके अतिरिक्त कुछ सामों में 'हिंकार' तथा 'प्रणव' नामक भक्तियों का प्रयोग भी किया जाता था। इन भक्तियों का गायन नियमानुसार करने वाले ऋत्विजों को प्रस्तोता, उद्‌गाता तथा प्रतिहर्ता नाम से सम्बोधित किया जाता था।



टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 6.2

1. 'साम' से क्या तात्पर्य है?
2. पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक में क्या अन्तर माना गया है?
3. 'गान संहिता' किन विभागों में विभक्त की गई है?
4. सामगान की पांचभक्तियों के नाम बताइये।
5. भक्तियों के नियमानुसार गायन करने वाले ऋत्विजों के नाम बताइए।
6. साम की व्युत्पति क्या है?

6.3 सामगान में प्रयुक्त स्वर

प्रारम्भ में सामगान करने के लिये केवल तीन स्वरों का प्रयोग किया जाता था जिन के नाम हैं। **उदात्त, अनुदात्त** तथा **स्वरित**। उदात्त अर्थात ऊँचा, अनुदात्त अर्थात् नीचा तथा स्वरित जिसमें स्वर के उच्चत्व व नीचत्व का समन्वय हो जाता है अर्थात मध्य का स्वर। इन्हीं तीन स्वरों का निर्देश करने के लिये मंत्रों के विविध अक्षरों के ऊपर उदात्त के लिये '1' संख्या, स्वरित के लिये '2' संख्या तथा अनुदात्त के लिये '3' संख्या का प्रयोग किया गया। उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित स्वरों का प्रयोग करते हुये सामगान का त्रिविध स्वरूप निर्मित हुआ– आर्चिक गान, गायिक गान तथा सामिक गान। जब एक ही स्वर का प्रयोग किया जाता था तब आर्चिक गान, दो स्वरों का प्रयोग करने पर गाथिक गान तथा तीन स्वरों का प्रयोग करने पर सामिक गान कहलाया। 'तैत्तरीय प्रातिशाख्य' ग्रन्थ के अनुसार शनैः शनैः इन्हीं तीन स्वरों से सामवैदिक सात स्वरों का विकास हुआ जिनके नाम हैं – **क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र** तथा **अतिस्वार्य** जिन की तुलना क्रमशः लौकिक स्वरों के म, ग, रे, स, ध, नि, प, से की जा सकती है। निम्न तालिका से इनका सम्बन्ध स्पष्ट होता है:

वैदिक स्वरों का लौकिक स्वरों

सामवैदिक स्वर		**लौकिक स्वर**
क्रुष्ट	–	म
प्रथम	–	ग
द्वितीय	–	रे
तृतीय	–	सा

टिप्पणी

चतुर्थ	–	ध
मन्द्र	–	नि
अतिस्वार्य	–	प

पाठगत प्रश्न 6.3

1. उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित से क्या तात्पर्य है?
2. वैदिक वाङ्मय में एक, दो तथा तीन स्वरों से युक्त गायन के लिये किन संज्ञाओं का प्रयोग किया गया।
3. वैदिक संगीत में प्रयुक्त सप्त स्वरों के नाम लिखिये।

6.4 वैदिक काल के वाद्य

वैदिक काल में चार प्रकार के वाद्यों का उल्लेख मिलता है– (1) तन्त्री वाद्य (2) फूंक से बजने वाले वाद्य (3) चमड़े से मढ़े हुये वाद्य (4) धातु निर्मित वाद्य। इन चार प्रकार के वाद्यों को पश्चात्वर्ती समय में क्रमशः तत वाद्य, सुषिर वाद्य, अवनद्ध वाद्य तथा घन वाद्य के नाम से जाना गया।

वैदिक कालीन तन्त्री वाद्यों में वीणा का प्रमुख स्थान था। वीणा के अनेक प्रकार थे, यथा–बाणवीणा, कर्करि वीणा, काण्ड वीणा, अपघाटलिका, गोधा वीणा आदि। बाण वीणा को 'महावीणा' की संज्ञा भी दी गई है। इस वीणा में सौ तार लगे होते थे। महाव्रत यज्ञ के अवसर पर इस वीणा का वादन लकड़ी की शलाका (डण्डी) द्वारा किया जाता था। फूंक से बजने वाले वाद्यों के अन्तर्गत वंशी वाद्य के लिये बहुधा 'तूणव' संज्ञा प्रयुक्त हुई है। 'नाड़ी' भी इसी वंशी वाद्य का पर्याय था। चमड़े से मढ़े अवनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत दुन्दुभि तथा भूमि–दुन्दुभि का विशेष महत्व था। दुन्दुभि वह ढोल प्रकार है जिसे काष्ठ पर चर्म को मढ़कर बनाते थे तथा इसका वादन दण्ड से किया जाता था जिसको 'आहनन' कहते थे। भूमि दुन्दुभि को भूमि में गढ़ा खोदकर उसके ऊपर चर्म मढ़ कर बनाया जाता था। इसका वादन बैल की पूँछ द्वारा ही होता था। 'पणव', 'पिंगा', 'गोधा', 'पटह' तथा 'गर्गर' आदि ये सभी वाद्य इसी श्रेणी के थे। एक वर्ग था जिन्हें गड़क नाम से जाना जाता था। धातु से बने वाद्यों के अंतर्गत 'आघाटि' का उल्लेख मिलता है जिसे कुछ मतानुसार अपघाटालिक अथवा काण्डवीणा भी माना गया है।



पाठगत प्रश्न 6.4

1. वैदिक काल में कितने प्रकार के वाद्य उपलब्ध थे? नाम बताइये।
2. 'महावीणा' से क्या तात्पर्य है?
3. 'भूमिदुन्दुभि' का वर्णन कीजिये।

आपने क्या सीखा

वैदिक काल में संगीत के लौकिक तथा शास्त्रीय दोनों ही रूपों का उल्लेख प्राप्त होता है। इस काल में संगीत को समाज में आदर की दृष्टि से देखा जाता था। वैदिक कालीन भारतीय संस्कृति में चार वेद माने गये – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। ऋग्वेद के मन्त्रों को जब स्वर सहित गाया जाता था तब उन्हें साम की संज्ञा प्राप्त होती थी। साम के दो भाग 'आर्चिक संहिता' तथा 'गान संहिता' के रूप में जाने गये। साम में प्रयुक्त प्रारम्भिक स्वर 'उदात्त' 'अनुदात्त' तथा 'स्वरित' थे। इन्हीं स्वरों से आगे चलकर सप्त स्वरों का विकास हुआ जिन्हें वैदिक स्वर कहा गया। शनैःशनैः इन सात स्वरों का स्थान लौकिक या गान्धर्व स्वरों ने ले लिया। वैदिक काल में चतुर्विध वाद्यों के रूप में वाद्यों का विकास हो चुका था। इनमें वीणा, दुन्दुभि आदि कुछ ऐसे प्रमुख वाद्य थे जिनका प्रयोग यज्ञों के अवसर पर सामगान के साथ विशेष रूप से किया जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक काल संगीत कला के विकास की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध एवं उत्कृष्ट था जिसने आगे चलकर भारतीय संगीत की सांस्कृतिक धारा को परिपक्व किया।

पाठांत प्रश्न

1. वैदिक काल में संगीत की प्रणाली का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।
2. वैदिक काल में संगीत प्रशिक्षण का क्या स्वरूप था?
3. 'साम' शब्द की व्याख्या करते हुये सामवेद के विभिन्न विभागों का उल्लेख कीजिये।
4. सामगान के प्रारम्भिक तीन स्वरों का विस्तृत वर्णन कीजिये।
5. वैदिक काल में सप्त स्वरों के विकास का वर्णन कीजिये।

6. वैदिक कालीन चतुर्विध वाद्यों का परिचय दीजिये।
7. वैदिक काल में प्रचलित प्रमुख तन्त्री वाद्य एवं चर्म वाद्यों का वर्णन कीजिये।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

6.1

1. धार्मिक प्रयोजनों के लिए तथा लौकिक समारोह के अवसर पर।
2. मधुर कंठ वाले उत्तम गायक, उत्तम वादक व उत्कृष्ट प्रबन्धकार, वेदज्ञान तथा वैदिक क्रियाओं में परिपक्व।
3. पिता से पुत्र को, गुरू से शिष्यों को, गुरूकुल में विद्यार्थियों की सामूहिक रूप से शिक्षा तथा आश्रम, परिषद व सम्मेलन आदि माध्यम।
4. गाथा, नाराशंसी, रैभ्य।
5. वीणा गाथिन, गाथागायक, वीणागणगिन।
6. रज्जु, अरूण, प्रकृति, पुष्प तथा बसन्त नृत्य।

6.2

1. वेद मन्त्रों का स्वर व लययुक्त गान करना।
2. पूर्वार्चिक में केवल एक ऋचा का प्रयोग होता था तथा साम का एकल गान किया जाता था जबकि उत्तरार्चिक में एकाधिक गायकों के द्वारा तीन-तीन ऋचात्मक सूक्तों के ऊपर गान किया जाता था।
3. ग्रामगेयगान, अरण्यगेय गान, ऊहगान तथा ऊह्यगान।
4. प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव, निधन।
5. प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्ता।
6. सा + अम:

6.3

1. ऊंचा, नीचा तथा मध्य का स्वर।
2. आर्चिक, गाथिक, सामिक।
3. क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, अतिस्वार्य।

6.4

1. चार प्रकार के वाद्य उपलब्ध थे–

   (1) तन्त्री वाद्य (2) फूंक से बजने वाले वाद्य (3) चर्म वाद्य (4) धातु निर्मित वाद्य।

2. सौ तारों से युक्त 'बाण' नामक वीणा।

3. भूमि–दुन्दुभि को भूमि में गढ्ढ़ा खोद कर उसके ऊपर चर्म मढ़कर बनाया जाता था।

पारिभाषिक शब्दावली

1.	अथर्ववेद	भारतीय संस्कृति के चार वेद
2.	ऋग्वेद	
3.	यजुर्वेद	
4.	सामवेद	
5.	आर्चिक संहिता	– सामवेद की पहली संहिता
6.	पूर्वार्चिक	– सामवेद की आर्चिक संहिता का पूर्व भाग
7.	उत्तरार्चिक	– सामवेद की आर्चिक संहिता का उत्तर भाग
8.	गान संहिता	– सामवेद की दूसरी संहिता
9.	ग्रामगेय गान	– गान संहिता के चार भाग
10.	अरण्यगेयगान	
11.	उहगान	
12.	उह्यगान	
13.	प्रस्ताव	– सामगान की भक्तियाँ
14.	उद्‌गीथ	
15.	प्रतिहार	
16.	उपद्रव	
17.	निधन	
18.	हिंकार	
19.	प्रणव	

टिप्पणी

20.	प्रस्तोता		
21.	उद्‌गाता	–	सामगान की भक्तियों के गायक
22.	प्रतिहर्ता		
23.	आर्चिक	–	सामगान में एक स्वर का प्रयोग
24.	गाथिक	–	सामगान में दो स्वरों का प्रयोग
25.	सामिक	–	सामगान में तीन स्वरों का प्रयोग
26.	अनुदात्त		
27.	उदात्त	–	तीन वैदिक स्वर
28.	स्वरित		
29.	तत	–	तंत्री युक्त वाद्य
30.	सुषिर	–	वायु के प्रयोग से बजने वाले वाद्य
31.	अवनद्ध	–	चर्म द्वारा मढ़ा हुआ वाद्य
32.	घन	–	धातु वाद्य
33.	गाथा		
34.	नाराशंसी	–	वैदिककालीन लौकिक गीत के प्रकार
35.	रैभ्य		
36.	गाथागायक		
37.	वीणागाथिन	–	वीणा वाद्य के साथ गाथा का गायन करने वाले गायक
38.	वीणागणगिन		
39.	रज्जुनृत्य		
40.	अरुण नृत्य		
41.	प्रकृति नृत्य	–	वैदिक काल में प्रचलित समूह नृत्य
42.	पुष्प नृत्य		
43.	बसन्त नृत्य		